साधना

SADHANA

का हिन्दी अनुवाद

लेखक

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

SERVE LOVE MEDITATE E

THE DIVINE LIFE SOCIETY

अनुवादक

श्री स्वामी ज्योतिर्मयानन्द

प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी
पत्रालय : शिवानन्दनगर- २४९ १९२
जिला : टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत
www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org

प्रकाशक का वक्तव्य

सत्य के जिज्ञासुओं तथा ईश्वर साक्षात्कार के मार्ग पर चलने वाले साधकों को भार्ग दिखलाना, उन्हें प्रेरित करना तथा उनमें जागरण लाना यही महर्षि स्वामी शिवानन्द जी के जीवन का एकमेव कार्य रहा है। इस वक्तव्य में हम इस बात को अच्छी तरह समझ लें कि स्वामी शिवानन्द जी साधक से किस प्रकार की अपेक्षा रखते हैं तथा किस प्रकार उन्हें पथ-प्रदर्शन करते हैं। उन्होंने हमें कुछ व्यावहारिक साधन बतलाये हैं। इस ग्रन्थ में सिद्धान्त से अधिक साधना पर जोर दिया गया है। तीन आधारों के ऊपर आध्यात्मिक जीवन का निर्माण तथा परिपोषण होना चाहिए। वे तीन आधार हैं- सुनिश्चित आदर्श, जीवन का सुनिश्चित कार्यक्रम तथा विचार की पृष्ठभूमि।

किसी भी व्यक्ति के लिए पहला पूर्वापेक्ष्य यह है कि उसके पास एक आदर्श होना चाहिए। वह किसी निश्चित वस्तु की प्राप्ति के लिए ही अग्रसर बने। बहुत से आदर्श हैं। एक व्यक्ति सुगठित शरीर बनाना चाहता है; दूसरा विश्व-भ्रमण करना चाहता है; तीसरा लखपति बनना चाहता है। मानवी प्रयास के पीछे अनजानते हुए भी एक आदर्श अवश्य रहता है। साधक के पास आध्यात्मिक आदर्श है जिसका उसे साक्षात्कार करना है।

दूसरा पूर्वापेक्ष्य है उस आदर्श की प्राप्ति के लिए जीवन का एक सुव्यवस्थित कार्यक्रम बनाया जाये। यदि वह जीवन की समुचित योजना न कर सकेगा, यदि कार्यक्रम अधूरा रहेगा तो उसकी सारी शक्ति व्यर्थ ही जायेगी। बिना निश्चित कार्यक्रम के उन्नति करना कठिन है। साधक के लिए कार्यक्रम निर्माण करने की विधि कोई खिलवाड़ नहीं; यह अवश्य ही कठिन है। कई बार साधक को बाधाओं के तूफान से अपने साधना-पोत को तात्कालिक आश्रय के लिए मार्ग से अलग ले जाना होगा।

परन्तु एक मार्ग है जिससे साधक घमासान संग्राम करते हुए भी आश्रय ग्रहण कर सकता है। श्री स्वामी शिवानन्द जी ने बतलाया है कि साधक ठोस विचार की पृष्ठभूमि बनाये रखे; क्योंकि साधक के संग्राम अनन्त हैं। उसे विचार की पृष्ठभूमि रखनी चाहिए तथा जब कभी आवश्यकता हो, वह उसमें आश्रय ग्रहण कर सकता है। ऐसे अवसर बहुत मिलेंगे-दिन में कई बार, हर मिनट, हर पल में भी - जब साधक को आश्रय खोजना पड़ेगा।

जीवन का कार्यक्रम बनाते समय कुछ तथ्यों को याद रखना चाहिए। आध्यात्मिक उन्नति क्रमिक होती है। आध्यात्मिक उन्नति के लिए आन्तरिक संग्राम अनिवार्य है, जिसमें द्विविध पहलू को याद रखना आवश्यक है- पहला है आक्रमण, दूसरा है बचाव अथवा सुरक्षा। साधना के लिए प्रबल मुमुक्षुत्व न हो तो साधक आगे नहीं बढ़ सकता; परन्तु यदि उस मुमुक्षुत्व को प्रलोभनों से सुरक्षित नहीं किया जाये, तो उसकी उन्नति सम्भव नहीं। विवेक तथा विचार ही साधक के लिए बचाव के प्रधान साधन हैं। मुमुक्षुत्व के साथ-साथ वैराग्य एवं सत्संग का संरक्षण मिलना चाहिए। इनके साथ आपको जीवन का कार्यक्रम बनाना है। कार्यक्रम बनाते समय विचार की पृष्ठभूमि बनाये रखिए। यदि विचार की पृष्ठभूमि तैयार न की गयी, तो साधक संकट के समय अपने मन को स्वभावतः इस पृष्ठभूमि में नहीं ला सकता।

भक्तियोग में विचार की पृष्ठभूमि ईश्वर है; ज्ञानयोग में महावाक्य हैं तथा जपयोगी के लिए भगवान् का नाम है। इस विचार की पृष्ठभूमि में स्थिति होने के लिए सतत अभ्यास की आवश्यकता है। सतत अभ्यास के बिना आध्यात्मिक जीवन में आप सफलता की आशा नहीं रख सकते। कभी-कभी साधक को सान्त्वना देने के लिए स्वामी जी ऐसा कह सकते हैं- "यदि आप साधना में यथेष्ट उन्नति नहीं करते, तो खिन्न न होइए। कोई हानि नहीं है।" परन्तु यह सान्त्वना मात्र ही है, जिससे साधक का मन खिन्न न बने। साधक को सदा आगे बढ़ने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। विचार, वैराग्य तथा सत्संग के कवच से युक्त हो कर जीवन के कार्यक्रम में बढ़ते समय उसे अपनी रक्षा करनी चाहिए। जिस

तरह कछुवा आपत्ति के समय अपने अंगों को समेट लेता है, उसी तरह साधक को भी अपने को विचार की पृष्ठभूमि में समेट लेना चाहिए। दोनों में अन्तर केवल इतना ही है कि कछुआ बाहर आने पर पुनः पहले ही जैसा रहता है, जब कि साधक हर बार सबल हो कर बाहर आता है।

सारांशतः आध्यात्मिक मार्ग पर चलने के लिए (१) साधक एक आदर्श रखे, (२) जीवन का कार्यक्रम बना ले, (३) अभ्यास तथा वैराग्य से युक्त बने तथा (४) विचार की पृष्ठभूमि रखे, जिसमें वह संकट काल में विश्राम ले सके। इन सभी बातों के लिए इस पुस्तक की सहायता अमूल्य है। वास्तव में यह साधक-जगत् के लिए सबसे महान् वरदान है। साधना का ऐसा कोई पहलू नहीं है जिसका इसमें वर्णन न किया गया हो, ऐसा कोई मार्ग नहीं जिसे इसमें न दिखाया गया हो, साधना-सम्बन्धी ऐसा कोई तथ्य नहीं है जिसे खोल कर यहाँ न रखा गया हो।

-द डिवाइन लाइफ सोसायटी

अनुवादकीय

मानव-जीवन प्रकृति के साथ अनवरत संग्राम है; क्योंकि प्रकृति के तीनों गुणों से परे आत्मा ही उसका लक्ष्य है। वही उसका शाश्वत धाम है। वही महासागर है जहाँ जीवन-सरिता अपने बन्धनों और उपाधियों का परित्याग कर असीम के क्रोड़ में कल्लोलें करती, आनन्द की तरंगों में उछलती-कूदती तथा अमरत्व में विलीन हो जाती है। तब शोक नहीं रहता, भय नहीं रहता, क्लेशों का लेश नहीं रहता, कर्मों के भार नहीं रहते तथा त्रितापों की ज्वाला भी शान्त हो जाती है।

मानव-हृदय में सच्चिदानन्द की अमर पिपासा सदा बनी रहती है। उसके हर कार्य, इच्छा तथा भावना में वही अमर आत्म-संगीत स्पन्दित होता रहता है। इस ईश्वरीय विधान में मानव जीवन स्वतः ही साधना है; क्योंकि मनुष्य इस जगत् से शिक्षा ग्रहण करता, अपने अनुभवों को बढ़ाता, अपनी दृष्टि को सूक्ष्म बनाता तथा उसी के अनुसार अपने जीवन को ढालता है। परन्तु, विशेष रूप से हम साधना उसी को कहते हैं जब हममें विवेक और वैराग्य के आधार पर ईश्वर-प्राप्ति की लगन लग जाती है तथा हम सचेतन साधना के द्वारा जीवन में त्वरित उन्नति लाने के लिए प्रयत्नशील बन जाते हैं।

साधना की चेतना ही ईश्वरीय कृपा है। यह साधना ही अमृत-धाम की कुंजी है। साधना के द्वारा मनुष्य ईश्वरत्व को प्राप्त कर लेता है। साधना के द्वारा वह भव-सागर का सन्तरण करता है। साधना का स्वाँग रच कर स्वर्गिक सिद्धि ही मानव जीवन में दिव्य ज्योति का जागरण लाती है।

निरन्तर अभ्यास, अदम्य उत्साह तथा पूर्ण ईश्वरार्पण के द्वारा गुरु-कृपा-कटाक्ष के होते ही साधना जब अनायास होने लगती है, तब वही सिद्धि हो जाती है। बारम्बार ईश्वर की ओर मन को लगाना साधना है; परन्तु जब मन ईश्वरीय आलोक में ही निमग्न हो जाता है, जब वह ईश्वर के अलग कदापि होता ही नहीं, जब वह शनैः शनैः ईश्वर में ही अमृत-रस का आस्वादन करते हुए विलीन होने लगता है, तब साधना सिद्धावस्था को प्राप्त कर लेती है। साधना ही वैयक्तिक प्रयास का अतिक्रमण कर अनायास ईश्वरीय सिद्धि बन जाती है। यही जीवन का परम निःश्रेयस् है।

श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने इस 'साधना' ग्रन्थ में आध्यात्मिक जीवन के सभी पहलुओं पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। यह उनकी उत्कृष्ट कृति है। यह सभी व्यक्तियों के लिए हर अवस्था में तथा जीवन के हर क्षेत्र में अमूल्य सन्देश रखती है। 'साधना' अन्य ग्रन्थों की भाँति सिद्धान्तों की ही बातें नहीं करती; अपितु हृदय-मंजूषा से जीवन के अमूल्य रत्नों को निकालने के लिए व्यावहारिक मार्गों को बतलाती है- जिन मार्गों पर चल कर मनुष्य स्वतः ही अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त कर सकता है।

मूल ग्रन्थ अँगरेजी में है। उसी का हिन्दी भाषा में अनुवाद कर मैंने इस अनुपम ग्रन्थ को हिन्दी भाषा-भाषी व्यक्तियों की सेवा में प्रस्तुत किया है। आशा एवं विश्वास है कि हिन्दी-जगत् में यह ग्रन्थ महान् स्थान प्राप्त करेगा तथा सभी व्यक्तियों को जीवन के परम लक्ष्य-आत्म-साक्षात्कार अथवा ईश्वर-साक्षात्कार की ओर प्रेरित कर राष्ट्र के नैतिक एवं आध्यात्मिक स्तर को उन्नत बनाने में सफलता प्राप्त करेगा।

यह सदा आपके मार्ग को आलोकित करता रहे!

- स्वामी ज्योतिर्मयानन्दन्य

प्रार्थनाएँ

(१)

हे सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अखण्डैकरस प्रभु! हे जगत् के उपास्य देव! तू परदे के पीछे इस जगत् के नाटक को देख रहा है। तू स्वयं-प्रकाश है। तू इन सारे नाम-रूपों का आधार है। तू एकमेवाद्वितीय है। तेरी महिमा अपार है। तू ही सारे ज्ञान, विज्ञान तथा ऐश्वर्य का मूल है।

मैं नहीं जानता कि कैसे तुम्हारी पूजा करूँ। मुझमें किसी प्रकार की साधना करने की शक्ति नहीं है। में दोष एवं दौर्बल्य से पूर्ण हैं। मेरा मन विक्षिप्त है। इन्द्रियाँ शक्तिशाली तथा अशान्त हैं। कुछ लोग कहते हैं, 'तू निराकार तथा निर्गुण है।' मैं विवाद, वितण्डा तथा तर्क-वितर्क में पड़ना नहीं चाहता। मुझे शान्ति एवं भक्ति दे! प्रलोभनों पर विजय पाने के लिए मुझे शक्ति दे! मैं अपना शरीर तेरी सेवा में लगा दूँ। सदा तेरी याद करूँ। मैं सदा तेरे मधुर प्रिय चेहरे को देखता रहूँ। हे प्रेम सागर प्रभु! इस प्रार्थना को स्वीकार कर!

मुझे सच्चा विवेक तथा स्थायी वैराग्य प्रदान कर। मेरा आत्मार्पण भी पूर्ण तथा सच्चा नहीं है। मैं अपने दोषों को स्वीकार करता हूँ। मेरी आँखों से प्रेमाश्रु की एक बूँद नहीं टपकती। मुझे एकान्त में प्रेमाश्रु बरसाने दे। मैं मिथ्या रुदन करना नहीं चाहता। मैं अपने आँसुओं में तुझे देख सकता हूँ। मेरा हृदय इस्पात तथा पाषण से भी अधिक कठोर है। मैं इसे मक्खन-सा कोमल कैसे बनाऊँ? मुझे प्रह्लाद या गौरांग का हृदय प्रदान कर। यही मेरी हार्दिक प्रार्थना है। हे मेरे प्रभु! इस विनीत प्रार्थना को स्वीकार कर। मैं तेरी शरण में हूँ, मैं तेरा शिष्य हूँ, तू ही मेरा गुरु है।

(२)

हे असीम ज्ञान के गुरु! मुझे यह वरदान दे कि मैं रोगियों, गरीबों तथा पीड़ितों की अथक सेवा करता रहूँ, बुराई का साथ न करूँ, कदापि झूठ न बोलूँ तथा विषय-पदार्थों की आसक्ति में न पडूँ।

हे प्रभु! मैं तुझमें हूँ, तू मुझमें है। मैं वही हूँ जिससे मैं प्रेम करता हूँ तथा जिससे मैं प्रेम करता हूँ, वह मैं ही हूँ। हे ज्योति ! मेरी बुद्धि को आलोकित कर। हे प्रेम! मेरे हृदय को परिप्लावित कर। हे शक्ति ! मुझे शक्ति प्रदान कर।

हे प्रभु! तू साहस है, मुझमें साहस भर दे। तू करुणा है, मुझे करुणा से भर दे। तू शान्ति है, मुझे शान्ति से भर दे। तू प्रकाश है, मुझे प्रकाश से भर दे।

हे प्रभु! तू नदी है। तू बादल है। तू सागर है। तू पौधा है। तू रोगी है। तू चिकित्सक है। तू ही रोग है। तू ही औषधि है।

सब-कुछ ईश्वर का ही है। मैं उसी का कार्य कर रहा हूँ। मैं उसके हाथों का निमित्त मात्र हूँ। उसी की इच्छा हो कर रहेगी।

(३)

हे प्रभु! मेरी इच्छा सबल बना दे जिससे मैं प्रलोभनों का संवरण कर सकूँ, इन्द्रिय तथा निम्न-प्रकृति का दमन कर सकूँ, अपनी पुरानी बुरी आदतों को बदल सकूँ। आत्मार्पण को पूर्ण तथा सत्य बना सकूँ। मेरे हृदय में आसीन हो जा। एक क्षण भी इस स्थान से अन्यत्र कहीं न जा। मेरे शरीर, मन तथा इन्द्रियों को अपने काम में ला। मुझे इसके योग्य बना कि मैं सदा-सर्वदा तुझमें ही निवास करूँ।

विश्व-प्रार्थना

हे स्नेह और करुणा के आराध्य देव !
तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है।
तुम सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हो।
तुम सच्चिदानन्दघन हो।
तुम सबके अन्तर्वासी हो।

हमें उदारता, समदर्शिता और मन का समत्व प्रदान करो।
श्रद्धा, भक्ति और प्रज्ञा से कृतार्थ करो।
हमें आध्यात्मिक अन्तःशक्ति का वर दो,
जिससे हम वासनाओं का दमन कर मनोजय को प्राप्त हों।
हम अहंकार, काम, लोभ, घृणा, क्रोध और द्वेष से रहित हों।
हमारा हृदय दिव्य गुणों से परिपूरित करो।

हम सब नाम-रूपों में तुम्हारा दर्शन करें।
तुम्हारी अर्चना के ही रूप में इन नाम-रूपों की सेवा करें।
सदा तुम्हारा ही स्मरण करें।
सदा तुम्हारी ही महिमा का गान करें।
तुम्हारा ही कलिकल्मषहारी नाम हमारे अधर-पुट पर हो।
सदा हम तुममें ही निवास करें ।

-स्वामी शिवानन्द

शिवानन्द-साधना-शतकम्

१. साधना के मौलिक पहलू

१. साधना से आपमें अधिकाधिक मुदिता, मन की एकाग्रता, प्रसन्नता, समत्व-बुद्धि, शान्ति, सन्तोष, सुख, वैराग्य, निर्भयता, साहस, करुणा, विवेक, अन्तर्मुखी-वृत्ति, असंगता, अक्रोध, निरहंकारिता, निष्कामता आदि का विकास होना चाहिए। साधना से आपका आन्तरिक जीवन सम्पन्न होना चाहिए। आपकी दृष्टि अन्तर्मुखी तथा मन सभी अवस्थाओं में अविचल होना चाहिए। ये ही आपकी आध्यात्मिक उन्नति के लक्षण हैं। दर्शन, ज्योति, अनाहत नाद, दिव्य गन्ध, ऊपर तथा नीचे को प्राण-सम्बन्धी प्रवाह का अनुभव ये सब अधिक आध्यात्मिक मूल्य नहीं रखते। हाँ, ये धारणा की प्रथम अवस्था के परिचायक हैं।

२. भक्ति सभी के लिए आवश्यक है। कितना भी प्रबल मनुष्य का पुरुषार्थ क्यों न हो, मन की सूक्ष्म वृत्तियों काम, क्रोध, मोह, ईर्ष्या और अभिमान के सूक्ष्म रूपों को विनष्ट करना असम्भव है। आप भले ही करोड़ों जन्मों तक साधना करें; परन्तु आप बुरी वृत्तियों के मूल को विदग्ध नहीं कर सकते। ईश्वर की कृपा से ही यह सम्भव है। ईश्वर उस मनुष्य को चुन लेता है, जिसे वह उन्नत करना तथा मोक्ष प्रदान करना चाहता है। कठोपनिषद् का कथन है- "आध्यात्मिक प्रवचन द्वारा, बुद्धिमत्ता द्वारा, बहुत से ग्रन्थों के स्वाध्याय से यह आत्मा प्राप्त नहीं होता; परन्तु वह मनुष्य, जो ईश्वर के द्वारा चुन लिया गया है, ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।"

३. साधना में सच्चाई ही सफलता की कुंजी है। उग्र साधना के द्वारा ही आत्म-साक्षात्कार सम्भव है। साधना केवल कार्यक्रम ही नहीं रहे। ईश्वर-दर्शन के लिए, समाधि द्वारा अमृत-पान करने के लिए तथा शुद्ध भावना बनाये रखने के लिए सच्ची पिपासा होनी चाहिए। जो कुशल है, जो दृढ़ संकल्प है, जो मुमुक्षु है, उसके लिए परम धाम का मार्ग सुगम है।

४. नियमित धारणा तथा भगवन्नाम के जप से अनास्था दूर होगी। किसी प्रकार की भी साधना गम्भीर योग-संस्कार डालती है तथा आध्यात्मिक शक्ति में वृद्धि लाती है। मोमबत्ती के जलने पर कुछ भी क्षति नहीं होती। योग में भी यही बात है। आध्यात्मिक उन्नति धीमी होती है। अतः प्रारम्भ में इसको परखना कठिन है; परन्तु उसका परिणाम तो है ही। कुछ समय के बाद वह स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होने लगेगी।

५. आत्मार्पण वह वस्तु नहीं है जिसे एक सप्ताह या एक मास में प्राप्त कर लिया जाये। साधना के प्रारम्भ में ही आप पूर्ण आत्मार्पण नहीं कर सकते। अहंकार रहता है तथा बारम्बार अपने को बनाये रखता है। यह जोंक की भाँति पुरानी आदतों, तृष्णाओं तथा कामनाओं से आसक्त रहता है। यह छिप कर युद्ध करता है। इसकी गुप्त तृप्ति के लिए कुछ विषय चाहिए। सम्पूर्ण व्यक्तित्व का आत्मार्पण आवश्यक है। यही कारण है कि भगवान् कृष्ण कहते हैं, "तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत- हे भरतवंशी अर्जुन । सर्वभाव से उसकी शरण में जाओ।" चित्त, अहंकार, मन, बुद्धि तथा आत्मा को ईश्वर के पाद-पद्मों में अर्पित कर देना चाहिए। मीरा ने ऐसा ही किया था। यही कारण है कि उसे श्री कृष्ण की कृपा प्राप्त हुई तथा वह ईश्वर से मिल कर एक हो गयी।

२. साधना की प्रक्रिया

६. कामना तथा अहंकार हर कदम पर आत्मार्पण का विरोध करते हैं। जब पूर्ण अशेष आत्मार्पण हो जाता है, तब ईश्वरीय कृपा प्रवाहित हो कर साधक के द्वारा साधना करने लगती है। वह ईश्वरीय शक्ति मन, इच्छा, जीवन तथा शरीर पर पूर्ण अधिकार कर लेती है; तब साधना में त्वरित गति आ जाती है।

७. साधना प्रारम्भ में यन्त्रवत् होती है; परन्तु बाद में वह जीवन का अंग बन जाती है। प्रारम्भ में वह भार मालूम पड़ती है; परन्तु बाद में वह सुख, शक्ति, साहस एवं मुक्ति प्रदान करती है।

८. यदि आपमें वैराग्य नहीं है, मुमुक्षुत्व नहीं है, हृदय की शुद्धता नहीं है, तो साधना में विफलता होगी ही। यदि आपमें इन तीनों की कमी है, तो आसन का अभ्यास, तीन घण्टे तक एक आसन में रहना, प्राणायाम का अभ्यास, बन्ध तथा मुद्रा आपको आध्यात्मिक उन्नति प्रदान नहीं कर सकते हैं।

९. ध्यान के समय आन्तरिक प्रकाश की एक किरण भी आपके मार्ग को आलोकित कर डालेगी। आप पर्याप्त उत्साह तथा आन्तरिक बल प्राप्त करेंगे। यह आपको अधिक उग्र साधना के लिए प्रेरित करेगी। जब ध्यान अधिक गम्भीर बन जायेगा, जब आप शरीर-चेतना से ऊपर उठ जायेंगे, तब आप प्रकाश-किरण का अनुभव करेंगे।

१०. सारी घटनाओं का आधार ईश्वरीय शक्ति ही है। हर वस्तु के लिए कुछ-न-कुछ कारण अवश्य है। किसी वस्तु के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध न रखिए। साक्षी बन कर तमाशा देखिए। ईश्वर साक्षात्कार प्राप्त करना आपका लक्ष्य है, अन्य सब मिथ्या तथा निषेध के योग्य हैं। आइए, बद्धपरिकर बनिए। साधना में डूब जाइए। इसी जीवन में ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त कीजिए। ईश्वर का आशीर्वाद आपको प्राप्त हो!

११. वैराग्य तथा अभ्यास के दो पंखों से आप निर्विकल्प समाधि की चोटी पर उड़ कर जा सकते हैं। ये दोनों पंख समान रूप से मजबूत होने चाहिए। यदि वैराग्य दुर्बल है, तो शक्ति का स्राव होगा, इन्द्रियाँ उपद्रवी हो जायेंगी। आप पतन को प्राप्त होंगे। यदि साधना में ढिलाई करेंगे, तो भी पतन की प्राप्ति होगी। पुनः गम्भीर ध्यान तथा समाधि को प्राप्त करना कठिन हो जायेगा।

१२. सांसारिक व्यक्ति बहुत से कार्यों में व्यस्त रहने के कारण कभी-कभी अपनी साधना में नियमित नहीं रहता। उन परिस्थितियों में साधना के सारे अंगों को करने की आवश्यकता नहीं है। जब कभी उसको सुविधा हो, वह दिन में एक बार लिखित जप कर सकता है।

३. धारणा तथा सावधानी की आवश्यकता

१३. अपनी साधना में ढीले न रहिए। साधना ही कालान्तर में आपको सहायता देगी। यही जीवन में एकमेव वरदान है। साधना में नियमित रह कर इसी जन्म में आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लीजिए।

१४. यदि अखबार पढ़ना और ताश खेलना आप त्याग दें, यदि निद्रा-काल को कम करें, यदि टेनिस, फुटबाल आदि खेलों के समय को कम करें, तो आप साधना के लिए पर्याप्त समय प्राप्त करेंगे।

१५. ध्यान दो प्रकार का है- एक है स्मरण, दूसरा है गम्भीर ध्यान। ईश्वर का सतत स्मरण अथवा नाम स्मरण का अभ्यास सदैव करना चाहिए। इसे बिना किसी आसन के भी किया जा सकता है; परन्तु गम्भीर ध्यान आसन में ही सम्भव है। यह उसी के लिए सम्भव है, जो पूर्ण जाग्रत स्थिति में ध्यान के लिए बैठता है। बिछावन में लेटे-लेटे, खड़े हो

कर तथा चलते-चलते गम्भीर ध्यान करना सुगम नहीं है; क्योंकि मन में विक्षेप उठना आसान है। स्मरण से ध्यान बहुत ही बढ़ कर है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अतः ध्यान के लिए आसन में बैठने की परमावश्यकता है।

१६. अच्छी धारणा-शक्ति के अभाव में ईश्वर की मूर्ति मन में स्पष्टतः नहीं आती। धारणा-शक्ति अधिकाधिक बढ़ाइए। मन की किरणों को लक्ष्य पर एकाग्र कीजिए। देर तक ईश्वर की मूर्ति पर उन किरणों को केन्द्रित बनाये रखिए। यही धारणा है। यदि आप कुछ देर तक इसी तरह करते रहें, तो आप ईश्वर का स्पष्ट ज्ञान कर पायेंगे तथा दीर्घ काल तक ईश्वरीय चेतना बनाये रखेंगे। यही ध्यान है।

१७. अज्ञान के फन्दे से निकल जाइए। ज्ञान की रश्मि में धूप सेंकिए। नित्य-प्रति कुछ जप तथा कीर्तन कीजिए। इससे काम-ज्वर उतर जायेगा तथा लोभ-मोह का ताप भी दूर होगा। दश मिनट तक आँखें बन्द कर भगवान् कृष्ण, राम अथवा शिवजी की मूर्ति पर ध्यान कीजिए। आध्यात्मिक शान्ति का शीतल समीर आपमें शीघ्र ही शीतलता एवं स्फूर्ति भर देगा।

१८. जीवात्मा का परमात्मा में विलीन हो जाना ही सारे प्रकार के ध्यान की चरमावस्था है। अनुभव जो आते और चले जाते हैं, वे आध्यात्मिक उन्नति के लक्षण हैं। उनको ही महत्त्वपूर्ण न मान लीजिए। अन्तिम एकता प्राप्त कीजिए जहाँ तीनों अवस्थाएँ विलुप्त हो जाती हैं तथा एकमेव तुरीय ही विभासित होता है।

४. योग-साधना के लिए आवश्यक

१९. आप नगरों में रह कर कल-कारखानों की दूषित वायु में श्वास ले कर, अस्वाभाविक गरिष्ठ भोजन खा कर, सिनेमा, थियेटर, बालरूम आदि में सम्मिलित हो कर, अधिक वीर्य-क्षय कर, स्नायुओं को तनाव की अवस्था में रख कर, मोटर-कार तथा मशीनों के कोलाहलपूर्ण वातावरण में रह कर योगाभ्यास नहीं कर सकते। भगवान् कृष्ण कहते हैं- "योगी एकान्त में गुप्त रूप से निवास कर शुद्ध स्थान में सतत योगाभ्यास करे।"

२०. जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने से स्थिरता तथा दृढ़ संकल्प-शक्ति प्राप्त होगी। दूसरे तट पर पहुँचने से पहले तरंगों से लोहा लेना होगा। छोटी-छोटी गलतियों का सुधार, शुद्धता, जप तथा ब्रह्मचर्य के सिवा मुक्ति के लिए और कोई सुगम मार्ग नहीं है। निम्न मन पर विश्वास कर न भटकिए।

२१. एक साधु ने धारा में बहते हुए बिच्छू को बचाने के लिए तीन बार कोशिश की। बिच्छू ने दो बार उसे डंक मारा; परन्तु तीसरी बार साधु को उसकी रक्षा करने में सफलता मिल गयी। दर्शकों ने साधु से कहा- "आपको प्रथम अनुभव से ही पाठ सीख लेना चाहिए था।" उसने उत्तर दिया- "जब यह छोटा जानवर अपना धर्म नहीं छोड़ता, तो फिर भला साधु हो कर मैं अपना धर्म क्योंकर छोड़ूँ?" जो हानि पहुँचाये, उसके प्रति भी भला ही कीजिए। इसी में सच्ची शक्ति तथा महिमा निहित है।

२२. वहीं जिह्वा है जिससे भगवान् के नाम का गायन हो। वही हाथ हैं जिनसे ईश्वर तथा मानव जाति की सेवा हो। वही मन है जो सतत ईश्वर का स्मरण करे। वही श्रोत्र है जो सतत ईश्वर की लीला का श्रवण करें।

२३. वही शिर है जो सदा साधुओं तथा देवमूर्तियों के समक्ष झुके। वही आँखें है जो ईश्वर की मूर्ति के दर्शन करें। वे ही अंग हैं जो भगवान् विष्णु तथा उनके भक्तों के चरणामृत का सेवन करें।

५. साधना, दिव्य नाम और समता

२४. शिर, हाथ तथा हृदय में कर्म, भावना तथा विचार में सन्तुलन रखिए। समत्व को ही योग कहते हैं। आप इसमें कई बार विफल रहेंगे। उठिए, बारम्बार युद्ध कीजिए। अन्ततः आप सफल होंगे ही। उत्साह, संलग्नता, साहस और संकल्प योग में सफलता के लिए इनकी आवश्यकता है।

२५. एक अज्ञानी व्यक्ति चाँदनी में कोई वस्तु ढूँढ़ रहा था। एक यात्री ने उससे पूछा, "हे मनुष्य, तू यहाँ क्या खोज रहा है?" उसने उत्तर दिया, "मैंने घर में सुई खो दी है और उसी को मैं यहाँ ढूँढ़ रहा हूँ।" उस मुसाफिर ने कहा, "हे मूर्ख ! घर में सुई खो कर उसे तुम यहाँ क्यों ढूँढ़ रहे हो? घर में खोजो, वहाँ तुम उसे पा लोगे।" मनुष्य ने उत्तर दिया, "यहाँ चाँदनी का प्रकाश है; अतः मैं यहाँ ढूँढ़ रहा हूँ।" यही हालत है सांसारिक बुद्धि वाले मनुष्यों की। आनन्द-सागर उनके हृदय में ही है; परन्तु वे सुख के लिए बाह्य विषयों की ओर दौड़ते हैं, जहाँ दुःख एवं विपत्ति की ही प्राप्ति होती है।

२६. निम्न प्रकृति का दमन कीजिए। मांस-कामना को नष्ट कर डालिए। रागों का शमन कीजिए। आत्म-संयम रखिए। तभी आप ईश्वरीय जाँच को सहन करने की शक्ति रखेंगे।

२७. हर महीने के लिए एक सद्गुण चुन लीजिए तथा अपने सामने उसका आदर्श बनाये रखिए। प्रातः-सायं उस पर ध्यान कीजिए। मैं सलाह देता हूँ कि इस माह आप शुद्धता को ही रखें।

२८. मैं आपको ईश्वर-साक्षात्कार तथा जीवन में सफलता की कुंजी दे रहा हूँ। यह ईश्वर का नाम है। जब कभी अवकाश हो, उसी क्षण से अपने इष्टदेव के नाम का जप कीजिए। प्रातः-सायं नियमित जप की बैठक रखिए। सोते समय भी ईश्वर से प्रार्थना कर लीजिए। महामन्त्र का कीर्तन कीजिए:

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।

६. प्रेम के परिणाम

२९. यदि आप अहिंसा में प्रतिष्ठित हैं, तो आप कुछ भी बुराई नहीं कर सकते। आप एक पल के लिए रुक्ष, कटु तथा क्रोधी नहीं बन सकते। आपके मन में दूसरों को हानि पहुँचाने का विचार प्रवेश नहीं कर सकता। आपका हृदय प्रेम, दया तथा सहानुभूति से परिप्लावित रहेगा।

३०. यदि आप मन, वचन और कर्म से दूसरों की बुराई न कर सकें, यदि आपके मन में बुरे विचार प्रवेश न पा सकें, तो आप समस्त जगत् के मानव-हृदय को प्रेरित कर देंगे, आपमें प्रबल आत्म-शक्ति होगी।

३१. मान लीजिए कि किसी लड़के को स्कूल में इस तरह सिखाया जाये कि ५+५=८। घर में उसके माता-पिता तथा भाई भी यही सिखाते हैं कि ५+५=८। कुछ साल तक ऐसी ही शिक्षा मिलती है। यदि कोई व्यक्ति उस लड़के से कहे कि ५+५=१०, तो वह इस पर विश्वास नहीं करेगा। वह विवाद करने लगेगा। इसी तरह जब गुरु और सद्ग्रन्थ कहते हैं कि 'तू अमर सर्वव्यापक आत्मा है। तू नश्वर शरीर नहीं है', तो आप संन्यासियों तथा साधुओं से झगड़ने लगते हैं; क्योंकि आप बहुत दिनों से यही सोचते आये हैं कि 'यह जगत् सत्य है तथा यह शरीर ही आत्मा है।'

३२. ज्ञानियों के सत्संग, गुरु के पथ प्रदर्शन और श्रुतियों के परिशीलन से पुराने सांसारिक संस्कार दूर हो जायेंगे।

३३. मान लीजिए कि आप शरीर से पृथक् हैं। इसके लिए सतत मानसिक प्रयास की आवश्यकता है। कभी-कभी शिथिल रहने पर आप शरीर, इन्द्रियों तथा विषयों से मिल जायेंगे। परन्तु कोई बात नहीं। पुनः प्रयत्न कीजिए तथा पंचकोशों से स्वयं को पृथक् कीजिए।

७. उन्नत साधना के लिए मन्त्र

३४. किसी भी कर्म में लगे रहने पर साक्षी बने रहिए। इस मन्त्र का जप कीजिए- "मैं मूक साक्षी हूँ ॐ ॐ ॐ।" यदि आपको मन के निरीक्षण के लिए पर्याप्त समय न हो, तो भी यह देख लीजिए कि मन क्या कर रहा है, कौन-सी वृत्ति इसमें काम कर रही है। कम-से-कम घण्टे में एक बार ऐसा देखिए। ऐसा करने से आप अपने मन के दोष जान जायेंगे और तब अनुकूल साधनों से उन्हें दूर करेंगे। प्रबल धैर्य, महान् उत्साह, अनवरत संलग्नता तथा लौह संकल्प के साथ आपको जप तथा ध्यान करने होंगे। भगवान् ने कहा है-"हे अर्जुन ! मेरा स्मरण कर तथा युद्ध कर।" अतः भगवान् का स्मरण कर अधिकाधिक उत्साह तथा अटूट श्रद्धा के साथ अपनी साधना करते जाइए।

३५. आपका पात्र सबल होना चाहिए जिससे कि वह ईश्वरीय ज्योति को ग्रहण कर सके, अन्यथा किसी भी क्षण वह भग्न हो सकता है। अतःकरण ही वह पात्र है। सतत अधक निष्काम सेवा, जप, कीर्तन, सत्संग, स्वाध्याय, ध्यान तथा प्राणायाम के द्वारा ही यह पात्र सबल बन सकता है। घन-विद्युत् की चमक को सहना भी कितना कठिन है। आप डर कर काँपने लगते हैं। लक्ष्मी भी भगवान् नृसिंह के तेज को सहन करने में असमर्थ थीं। वे काँपने लगीं। प्रह्लाद ही शुद्ध भक्ति के कारण उस तेज को सहन कर सकता था। आप ईश्वरीय ज्योति की प्राप्ति के लिए पहले अपने मन को तैयार कर लीजिए। उसे शुद्ध बनाइए। उसे पूर्णतः निष्कल्मष बनाइए।

३६. चित्त का जीवन सामान्य बाह्य जीवन से कहीं अधिक शक्तिशाली होता है। सचेतन जीवन से परे सुप्त जीवन का विस्तृत क्षेत्र है। चित्त का जीवन आपके चेतन जीवन को प्रभावित कर बदल सकता है। सारी आदतें चित्त से ही उत्पन्न होती हैं। सारी आदतें चित्त में ही गड़ी हुई हैं। अति चैतन्य अनुभव तुरीय है। यह निर्विकल्प समाधि है।

८. साधना तथा आध्यात्मिक नियति

३७. आप पूर्ण विस्मृति तथा अन्धकार से युक्त हो कर इस जगत् में नहीं आते हैं। पूर्व-जन्म की स्मृतियों तथा आदतों से युक्त हो कर आप आते हैं। कामनाओं की उत्पत्ति पूर्व-अनुभवों से ही होती है। कोई भी व्यक्ति निष्काम्य जन्म नहीं लेता। हर व्यक्ति कुछ-न-कुछ इच्छा ले कर जन्म लेता है। वे इच्छाएँ उन वस्तुओं से सम्बन्ध रखती हैं जिनका उसने अपने पूर्व जीवन में उपभोग किया था। इच्छा पूर्व-जन्मों में आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करती है।

३८. शुद्धता, श्रद्धा, भक्ति तथा पूर्ण आत्म-समर्पण के द्वारा ईश्वर की ओर मुड़िए। ईश्वरीय कृपा प्रवाहित होगी। आप अपने भीतर काम करने वाली ईश्वरीय शक्ति से अवगत होंगे। अपने अहंकार, सूक्ष्म तृष्णा तथा वासना द्वारा ईश्वर-कृपा के अवतरण में बाधा न डालिए।

१८३९. मनुष्य में ही यह संकल्प है कि वह अपने को बन्धन से छुड़ा ले। उग्र साधना द्वारा प्राप्त ज्ञान-खड्ग से अविद्या के आवरण को नष्ट करके ही वह आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर सकता है।

४०. मनुष्य कष्ट सहता है। वह मनन तथा चिन्तन करता है। वह विवेक तथा ध्यान करता है। वह विचार करता है, "मैं कौन हूँ?" अन्ततः वह आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करता है। वह जन्म-मृत्यु, कष्ट तथा सुख-सभी को दीर्घ स्वप्न मानने लगता है।

४१. जब तक आप अपनी वाणी द्वारा दूसरों को आघात पहुँचाते हैं, तब तक आप समझ लें कि आपको रंचमात्र भी आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त नहीं हुई है। जिह्वा में खड्ग अथवा परमाणु बम है। देखिए ! मधुर बोलिए। जिह्वा पर बारम्बार नियन्त्रण कीजिए। मौन-व्रत का पालन कीजिए। प्राणायाम का अभ्यास कीजिए तथा वाणी के वेग को संयमित कीजिए। प्रार्थना, जप तथा ध्यान से आपको काफी सहायता प्राप्त होगी।

९. साधना तथा मन

४२. मन सभी प्रकार के संकल्प-विकल्प, धारणाओं तथा शोकों का स्रष्टा है। जब मन के बाह्य धरातल पर उद्वेग की छोटी वृत्तियाँ उठें, तभी उनका शमन कर लेना चाहिए। बन्द कमरे में बैठ जाइए तथा नाम जप के द्वारा विचारों को बलपूर्वक भगा दीजिए। मन जब शान्त हो जाता है, तब वह स्वतः ही अपना भावी कार्यक्रम निश्चित कर लेता है। बहुधा यह आत्मा की वाणी ही होगी।

४३. दृष्टिकोण बदल डालिए। आप बुराई में भलाई, कुरूपता में सौन्दर्य, प्रस्तर में जीवन तथा दुःख में सुख देखेंगे। सब-कुछ अच्छा ही है। सब-कुछ सुन्दर ही है। सब-कुछ जीवित है। सब-कुछ सुखमय है। इसका भान कीजिए। इसका साक्षात्कार कीजिए।

४४. चित्त अपने भीतर के गुप्त विचारों को मन के धरातल पर लायेगा। शुभविचारों को ही ग्रहण कीजिए तथा दुर्विचारों को नष्ट कर डालिए। शुभ विचारों को मन में विश्राम करने दीजिए तथा बुरे विचारों को भगा दीजिए।

४५. आपका आध्यात्मिक उत्साह शनैः शनैः वृद्धि को प्राप्त करे। आपके अन्तर की ज्योति अधिकाधिक स्थिर हो कर जले। हृदय के द्वारा ही आध्यात्मिक साधना के फल को मापा जा सकता है। विचार में शुद्धता, कर्म में शुद्धता, दूसरों के प्रति प्रेम का विकास, ईश्वर का स्मरण होते ही अनुपात, रोमांच, जाति, लिंग, धर्म आदि का भेद न रखते हुए सबके प्रति विशेष आकर्षण का भाव, नम्रता, सच्चाई ये आध्यात्मिक उन्नति के कुछ लक्षण हैं।

४६. शान्त बैठ कर मन को देखिए। इसकी आदत तथा वृत्तियों को जान लीजिए। यह भी जान लीजिए कि यह बारम्बार किस वस्तु का चिन्तन किया करता है। शनैः शनैः इसे उन विषयों से हटाइए तथा बारम्बार ईश्वर पर स्थिर कीजिए। धारणा की सीढ़ी पर कदम-कदम चढ़ते जाइए। धैर्य रखिए। कठिन संग्राम कीजिए।

४७. जो नश्वर वस्तु का परित्याग कर नित्य की खोज करता है, जो प्रेय का परित्याग कर श्रेय का अनुगमन करता है, जो बुराई के बदले भलाई करता है, जो घृणा करने वाले के प्रति भी प्रेम करता है, जो दिव्य जीवन यापन करता है, वह निस्सन्देह इस धरा पर ईश्वर ही है।

१०. आध्यात्मिक उन्नति के पूर्वापेक्ष्य

४८. नैतिक पूर्णता के बिना आध्यात्मिक उन्नति सम्भव नहीं है। आध्यात्मिक उन्नति के बिना मुक्ति नहीं। यम तथा नियम के अभ्यास से ही नैतिक पूर्णता की प्राप्ति होती है। आसन तथा प्राणायाम द्वितीय सीढ़ी है तथा धारणा एवं ध्यान तीसरी सीढ़ी है। समाधि लक्ष्य है। इस प्रकार जीव हर सीढ़ी से होते हुए सुखमय लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। नैतिक पूर्णता आधी आध्यात्मिक सफलता की प्राप्ति है।

४९. ध्यान के द्वारा आप मन से उद्भूत बाधाओं को जीत सकते हैं। परिणाम से निराश न बनिए। आप शनैः शनैः धारणा को प्राप्त कर सकते हैं। जब मन भागने लगे, तो उसे पुनः वापस लाइए। ऐसा सोचिए कि आप ड्रिल कर रहे हैं। तब कभी मन भागे, कहिए- 'सावधान।' आपका मन शीघ्र ही ईश्वर की मूर्ति पर स्थिर हो जायेगा। कुछ दिनों तथा महीनों के लिए इसका अभ्यास कीजिए। आपको धीरे-धीरे धारणा प्राप्त होगी। आध्यात्मिक पथ में हर विफलता सफलता की ही सीढ़ी है। धैर्य रखिए।

५०. बन्द कमरे में दीर्घ काल तक बैठे रह कर साधक समझ लेते हैं कि उन्होंने ध्यान एवं समाधि में काफी प्रगति कर ली है; परन्तु वे मामूली बातों से ही अशान्त हो जाते हैं। वे सम्मान, सद्व्यवहार तथा अच्छे आसन की अपेक्षा रखते हैं। वे छोटी-छोटी बातों से ही पिनक जाते हैं। वे बड़प्पन की भावना के गुलाम हैं। वे दूसरों के साथ मिल कर नहीं रह सकते। अतः वे एक स्थान से दूसरे स्थान को अशान्त मन से भ्रमण करते रहते हैं। नम्रता, यथाव्यवस्था, निष्काम भाव, प्रेम-इन गुणों का अर्जन अनिवार्य है। यदि एक भी गुण आपमें है, तो समाधि स्वतः ही आपको प्राप्त हो जायेगी।

५१. आप किसी भी साधना को सच्चाईपूर्वक नहीं करते। यदि गुरु कहता है, "उपनिषद् का अध्ययन कर मनन तथा निदिध्यासन करो", तो आप कहते हैं, "इसके लिए मेरे पास समय नहीं है। मुझे आफिस में बहुत काम करना है। मैं इन सत्यों को समझ भी नहीं पाता हूँ। मेरी बुद्धि तीक्ष्ण नहीं है।" यदि गुरु कहता है, "तब राजयोग का अभ्यास करो तथा एक आसन पर एक या दो घण्टे के लिए बैठ कर धीरे-धीरे वृत्तियों का निरोध करो।" तब आप कहते हैं, "मैं तो पन्दरह मिनट से अधिक बैठ ही नहीं पाता। यदि मैं दीर्घ काल तक बैठूं, तो मेरा शरीर दुःखने लगता है।" यदि गुरु कहता है, "तो उपासना करो। भगवान् कृष्ण की पूजा करो। अपने सामने एक चित्र रखो।" आप कहेंगे, "उपासना में क्या रखा है। मूर्ति पूजा व्यर्थ है। मैं चित्र पर ध्यान नहीं कर सकता। यह तो कलाकार की कल्पना मात्र है। मैं तो निराकार सर्वव्यापक ब्रह्म पर ध्यान करना चाहता हूँ। चित्र पर ध्यान करना तो बच्चों का खेल है। यह मेरे लायक नहीं है।" फिर गुरु कहता है, "तब नित्य-प्रति दो घण्टे कीर्तन तथा जप करो।" आप कहते हैं, "जप तथा कीर्तन में कुछ नहीं रखा है। यह तो मन्द अधिकारियों के लिए है। मैं तो विज्ञान जानता हूँ। मैं इन चीजों को नहीं कर सकता। मैं जप तथा कीर्तन से ऊपर उठ गया हूँ। मैं आधुनिक व्यक्ति हूँ।" यदि पुरोहित विधिवत् हवन करता है तो आप कहेंगे, "हे पुरोहित जी! आप यह सब क्या कर रहे हैं? शीघ्रता कीजिए। मुझे भूख लगी हुई है। मुझे दश बजे आफिस जाना है।" यदि पुरोहित जल्दबाजी करता है, तो आप कहेंगे- "यह क्या? इस पुरोहित ने कुछ समय के लिए कुछ मन्त्र उच्चारण किये और अब कहता है कि हवन पूरा हो गया। यह केवल समय, रुपये तथा शक्ति की बरबादी है। मुझे हवन में श्रद्धा नहीं। इससे कुछ भी भलाई नहीं होती है।" यदि गुरु कहता है, "तो प्राणायाम करो, शीर्षासन का अभ्यास करो। तुम्हारी कुण्डलिनी शीघ्र ही जग पड़ेगी।" आप कहेंगे, "मैंने छह महीने तक प्राणायाम किया है। शरीर बहुत ही गरम हो जाता है। मैंने अभ्यास छोड़ दिया। शीर्षासन करते समय मैं गिर पड़ता था। मैंने उसे भी त्याग दिया।" यही आपकी हालत है; फिर भी आप पल मात्र में निर्विकल्प समाधि प्राप्त करना चाहते हैं।

५२. ईर्ष्या तथा द्वेष से मुक्ति सुखमय है। काम, लोभ तथा अभिमान का अभाव सुखमय है। शोक, विपत्ति तथा बन्धन से मुक्त बनिए। शरीर में आत्मा का अध्यास न कीजिए। देहाध्यास भयावह है। अज्ञान तथा शरीर के साथ आसक्ति के कारण ही भूलें हुआ करती हैं। भ्रम से कष्टों की उत्पत्ति होती है।

५३. आपने लाखों जन्मों में विषय पदार्थों को भोगा है। इस जन्म में भी गत पचास वर्षों से विषय-भोगों को भोग रहे हैं। यदि अभी तक तृप्ति नहीं हुई, तो कब होगी? इन विषय-पदार्थों की मृगतृष्णा के पीछे न दौड़िए। इन्द्रियां आपको मोहित कर रही हैं। वैराग्य तथा संन्यास का विकास कीजिए और आत्म-साक्षात्कार कीजिए। तभी आप नित्य-तृप्ति, शाश्वत शान्ति तथा अमरानन्द प्राप्त कर सकते हैं। आप अज्ञान-निद्रा से जग पड़ेंगे।

५४. प्राचीन काल में साधक आध्यात्मिक शिक्षा के लिए गुरु के पास अपने हाथ में समिधा ले कर जाते थे। इसका अभिप्राय यह है कि साधक गुरु से प्रार्थना करता- "हे पूज्य गुरुवर ! आपकी कृपा से ज्ञानाग्नि में मेरे पापों का गट्ठर जल जाये। मैं परम ज्ञान प्राप्त करूँ ! ईश्वरीय ज्योति प्रखर हो! आन्तर स्वयं-प्रकाश आत्मा का मैं साक्षात्कार करूँ! मेरे इन्द्रिय, वासना, मन, प्राण तथा अहंकार ज्ञानाग्नि से भस्मीभूत हो जायें! मैं ज्योतियों की ज्योति बन जाऊँ !"

५५. कामुक, पाममय सांसारिक जीवन के बीच दिव्य जीवन के लिए सतृष्ण होना, आत्म-साक्षात्कार के लिए पिपासु होना और सात्त्विक परिवार में जन्म लेना-ये ईश्वर के अनुपम वरदान हैं। इनकी रक्षा कीजिए। सावधान रहिए। योग की शीतल छाया में आश्रय ग्रहण कीजिए। ईश्वरीय वरदान तथा कृपा से पूरा लाभ उठाइए। उनके नाम का जप कीजिए। अपने परिवार तथा मित्रों के साथ उसकी महिमा का गायन कीजिए।

५६. सच्चा भक्त यह जानता है कि ईश्वर सब कुछ उसकी भलाई के लिए ही करता है। यदि कष्ट आते हैं, तो इससे उसमें वैराग्य बढ़ेगा तथा मन अधिकाधिक ईश्वर की ओर मुड़ेगा। वह तितिक्षा तथा संकल्प-शक्ति को बढ़ा पायेगा। मूर्ख सांसारिक मनुष्य यह नहीं जानता।

५७. जब तक मनुष्य यह नहीं जानता कि वास्तव में वह अमर आत्मा है, तब तक वह अज्ञानी है। वह अज्ञानवश शरीर को ही आत्मा मानता है। अज्ञान-नाश के द्वारा जब ज्ञान का उद्भव होता है, तब देहाध्यास भी विलुप्त हो जाता है। वह परमात्मा से एक बन जाता है।

५८. यदि ध्यान में मन केन्द्रित नहीं होता, यदि वह भटकता रहता है, यदि वह मनोराज्य में विचरण करता है, यदि उसमें बुरे विचार उठा करते हैं तो अच्छा होगा कि आप उठ कर कुछ निष्काम कर्म अथवा स्वाध्याय में लग जायें। इस मानसिक स्थिति में बैठे रहना समय का अपव्यय ही है।

११. साधना में पथ-प्रदर्शन

५९. आवेगों पर पूर्ण नियन्त्रण रखिए। उनसे चलायमान न बनिए। उनका दमन कीजिए। आप परम शान्ति का उपभोग करेंगे। प्राणायाम, जप तथा नियमित ध्यान आपको आवेगों के नियन्त्रण में सहायक सिद्ध होंगे।

६०. श्रुति कहती है, "जो सभी भूतों में एक आत्मा को ही देखता है, उसके लिए शोक कहाँ? मोह कहाँ? वह किसी से भय नहीं करता" (ईश उपनिषद्)। "योग से युक्त हुए आत्मा वाला योगी आत्मा को सम्पूर्ण भूतों में और सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में देखता है। वह सर्वत्र एक के ही दर्शन करता है" (गीताः ६/२९)। "ज्ञानी जन विद्या और विनय-युक्त ब्राह्मण में तथा गाय, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में भी सम भाव से देखने वाले ही होते हैं" (गीताः ५/१८)। सभी भूतों में एक ही आत्मा के दर्शन कीजिए। यही समदृष्टि है।

६१. विषय-पदार्थों का चिन्तन संग है। उनका चिन्तन न करना वैराग्य है। ब्रह्म-चिन्तन के द्वारा विषय चिन्तन को रोकिए।

६२. मन में वासनाओं को बनाये रखना सर्प को दूध पिला कर पालने के समान है। आपका जीवन सदा खतरे में है। विचार, वैराग्य तथा ध्यान के द्वारा इन वासनाओं को नष्ट कर डालिए।

६३. अधिक आवेगात्मक न बनिए। आवेशों से चलायमान न होइए। सहानुभूति तथा करुणा होनी चाहिए; परन्तु किसी के बीमार पड़ जाने पर भावनाओं से चलायमान न होइए। इस संसार में रोग तथा मृत्यु साधारण घटनाएँ हैं।

हर व्यक्ति किसी-न-किसी रोग से पीड़ित है। किसी व्यक्ति से आसक्त न बनिए। आसक्ति से दुःख तथा अशान्ति की प्राप्ति होती है।

६४. यदि आपको धर्मशाला या किसी सराय में रहना हो और आपके बगल वाले कमरे में अकेली स्त्री रहती हो, तो तुरन्त ही उस स्थान को छोड़ कर चले जाइए। आप नहीं जानते कि क्या घटना घट सकती है। स्वयं को प्रलोभनों के समक्ष न लाइए। श्री व्यास तथा उनके शिष्य जैमिनि की कहानी याद रखिए।

६५. आपके सारे दुःख तथा कष्ट आपके अहंकार के कारण हैं। आपके दुःख का कारण बाहर से नहीं आता। इस अहंकार को विनष्ट कीजिए। आप असीम सुख तथा विकास को प्राप्त करेंगे।

६६. आपके विषय-सुख ही दुःखों के मूल हैं। आपकी कामनाएँ तथा इच्छाएँ आपको विनाश की ओर ले जाती हैं। आपके इन्द्रिय तथा मन ही आपके शत्रु हैं। सभी विषय आपको प्रलोभित करते तथा मोहित बनाते हैं। इस जगत् में कुछ भी स्थायी नहीं है। सारे विषयों की चमक अस्थायी है। कुछ भी आपको शाश्वत सुख प्रदान नहीं कर सकता। आप आत्मा में ही सुख को प्राप्त कर सकते हैं। आत्मा ही नित्य, शुद्ध तथा आनन्दमय है।

६७. अहंता, ममता तथा कामनाओं का त्याग ही संन्यास का रहस्य है। स्त्री, बच्चे, धन, घर, सम्बन्धी, मित्र आदि के त्याग से ही सच्चा त्याग नहीं हो पाता है। आपको विषय-पदार्थ नहीं बाँधते हैं; अपितु ममता संसार-चक्र में आपको बाँधती है।

६८. अपने भीतर गुप्त अक्षय खजाने को खोजिए। आप यह साक्षात्कार करेंगे कि समस्त जगत् का साम्राज्य, यहाँ तक कि देवलोक भी आत्मज्ञान के सामने धूलि के समान है। इस जगत् का बन्धन भयंकर है। इस भौतिक जीवन से परे जा कर नित्य-वस्तु में जीवन यापन कीजिए।

६९. जब आप ज्ञान-चक्षु को प्राप्त करेंगे, तो आप अपने विगत जन्मों को देख सकेंगे तथा आध्यात्मिक मार्ग में अपनी उन्नति का ज्ञान कर सकेंगे। योग-पथ में टिके रहिए। श्रमपूर्वक अभ्यास कीजिए। ध्यान में नियमित रहिए। संसार के प्रलोभनों से ऊपर उठिए। आप शीघ्र आत्मज्ञान प्राप्त करेंगे। मैं आपकी सेवा करूँगा तथा आपको मार्ग दिखाऊँगा।

१२. आध्यात्मिक उन्नति के सिद्धान्त

७०. मन तथा इन्द्रियों को अनुशासित कीजिए। सद्गुणों का अर्जन कीजिए। आत्मा के स्वरूप को जानने के लिए प्रयत्नशील बनिए। नियमित ध्यान का अभ्यास कीजिए। तभी आप अमृतत्व तथा गम्भीर शाश्वत सुख प्राप्त कर सकेंगे।

७१. जब आप अपने स्वरूप को जान लेंगे, तब यह जगत् स्वप्न मात्र, नाम-रूप मानसिक कल्पना मात्र रह जायेंगे। जो सुख तथा दुःख में स्थिर रहता है, वहीं अमृतत्व का अधिकारी है।

७२. निराश न होइए। आपके अन्दर असीम शक्ति तथा बल है। आपका भविष्य सुन्दर है। मुस्कराते हुए सारे कष्टों का सामना कीजिए। दुःख आँखें खोलता है। यही वास्तविक पथ-प्रदर्शक है। ईश्वर आपको उग्र जाँचों द्वारा सबल बनाना चाहता है। इस रहस्य को समझ लीजिए। कभी निराश न बनिए। सदा हँसिए, उछलिए, कूदिए, गाइए तथा मुस्कराइए।

७३. कष्ट तथा निराशा की घड़ियों में ईश्वर में अविचल श्रद्धा होनी चाहिए। जब मनुष्य पूर्णतः असहाय-सा भान करता है, तब आशा तथा सहायता अन्दर से प्राप्त होती है। कष्ट के बिना शक्ति नहीं मिल सकती। कष्ट के बिना सफलता नहीं। बिना कष्ट के, बिना पीड़ा के कोई मनुष्य सन्त नहीं बन सकता। हर कष्ट का उद्देश्य है आपको ऊपर उठाना। कष्ट से तितिक्षा, करुणा, श्रद्धा तथा निरभिमानता बढ़ती है।

७४. जो वस्तुएँ छुरी, ताँबे तथा पीतल के बरतन नित्य काम में नहीं लायी जातीं, उनमें जंग लग जाता है। उसी प्रकार यदि शरीर का व्यायाम न हो, तो शरीर भी दुर्बल हो जाता है, मनुष्य तामसिक बन जाता है। अतः साधक को सावधान रहना चाहिए। कभी भी तमस् के वशीभूत नहीं होना चाहिए। आसन, सूर्यनमस्कार आदि का अभ्यास करना चाहिए।

१३. साधना के तत्त्व

७५. विषय-पदार्थ महान् विषों से भी भयंकर है। विष तो एक ही शरीर को मारता है; परन्तु विषय नाना जन्मों में कितने ही शरीरों को नष्ट कर डालता है। प्रेम तथा सेवा के द्वारा मन पर विजय प्राप्त कीजिए।

७६. जो सत्संग करता है; करुणा, नम्रता, साहस आदि सद्गुण रखता है तथा छोटी अवस्था से ही आत्मज्ञान के लिए संलग्न रहता है, वही मोक्ष प्राप्त करता है।

७७. किसी भी प्राणी को मन, वचन तथा कर्म से चोट न पहुँचाइए। सत्य बोलिए। ब्रह्मचर्य का पालन कीजिए। सरल जीवन बिताइए। उन्हीं वस्तुओं को रखिए जो जीवन यापन के लिए आवश्यक हों। सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय कीजिए। सद्गुणों का अर्जन करते समय जितने भी क्लेश आ पड़ें, उनको धैर्यपूर्वक सहन करते जाइए। ईश्वर की पूजा कीजिए। धारणा तथा ध्यान कीजिए। यही परम कल्याण का पथ है।

७८. नित्य दो घण्टे के लिए मौन व्रत रखिए। आसन के द्वारा स्थिरता लाइए। विषयों से इन्द्रियों को समेट लीजिए। प्राणायाम कीजिए। मन को साम्यावस्था में लाइए। यही असीम सुख का मार्ग है।

७९. पूर्ण ईश्वरार्पण कीजिए। ईश्वर के लिए उन सभी का संन्यास कीजिए जो अनात्मा हैं। इस प्रकार जीवन यापन कीजिए मानो ईश्वर तथा आपके अतिरिक्त और कोई है ही नहीं।

८०. शुद्ध आहार कीजिए। इन्द्रिय-सुखों का परित्याग कीजिए। धार्मिक कर्म कीजिए। एकान्त में रहिए। गम्भीरतापूर्वक ध्यान कीजिए। यही आत्म-साक्षात्कार का मार्ग है।

१४. विचार की पृष्ठभूमि

८१. गम्भीर आन्तरिक साधना को ही जीवन का रहस्य बना डालिए। ईश्वर के सतत स्मरण तथा उसकी सत्ता के सतत अनुभव के ऊपर ही अपने जीवन को आश्रित रखिए।

८२. ईश्वर का नाम अमृत है। नाम आपका एकमेव आधार, अवलम्ब तथा खजाना है। नाम तथा नामी एक ही है। भक्ति के साथ सदा भगवान् के नामों का जप कीजिए, कीर्तन कीजिए। यही कलियुग की मुख्य साधना है।

८३. सदा कुछ प्रेरणात्मक श्लोक अथवा मन्त्र अथवा ईश्वर के नाम का जप कीजिए। यही ईश्वरीय विचार की पृष्ठभूमि है।

८४. अपने हृदय के अन्तरतम से ईश्वर की प्रार्थना कीजिए:

मैं तेरा हूँ, सब-कुछ तेरा ही है। तेरी इच्छा ही पूर्ण हो। मैं तो तेरे हाथों का निमित्त हूँ। तू ही सब-कुछ करता है, तू न्यायी है। मुझे श्रद्धा तथा भक्ति प्रदान कर।

८५. जो ब्रह्मचर्य का अभ्यास करता है, वह धीर है। वह जीवन के कष्टों एवं आपत्तियों का सामना कर सकता है। ब्रह्मचर्य के बिना शिक्षा खोखली तथा छिछली है।

८६. इसी क्षण से शरीर तथा मन को इस तरह अहोरात्र संलग्न रखिए कि बुरे विचारों को अवसर ही न मिले। यदि बुरे विचार आक्रमण करें, तो जेबी गीता निकाल लीजिए तथा उसे पढ़ना शुरू कीजिए अथवा नोट-बुक में कुछ मन्त्र लिखिए अथवा जप-माला के सहारे कुछ जप कीजिए। "मुझे ईश्वर ने आध्यात्मिक मार्ग के लिए चुन लिया है। मुझमें प्रबल संकल्प-शक्ति है।" इसका निश्चय कीजिए। तब तक न सोइए, जब तक निद्रा आपको वशीभूत न कर ले। रात्रि में अधिक भोजन न कीजिए।

८७. हर मन्त्र बहुत ही शक्तिशाली है। दुर्गा-मन्त्र द्वारा आप माता की कृपा प्राप्त करेंगे। अहर्निश माता का ध्यान कीजिए जो सर्वशक्तिमयी हैं। माया विलुप्त हो जायेगी। सत्य से डिगिए नहीं।

८८. जिसे विश्वात्म-दृष्टि प्राप्त है, वही सभी घटनाओं के रहस्य को समझ सकता है। वह जानता है कि भगवद्-इच्छा के बिना प्रबल झंझावात भी एक सूखे पत्ते को उड़ा नहीं सकता। 'क्यों' तथा 'कैसे' ये अतिप्रश्न हैं। ईश्वर के नाम का जप कीजिए। विश्व-कल्याण के लिए प्रार्थना कीजिए। प्रेम, सेवा-भाव तथा त्याग का आदर्श अपनाइए। आप इस विश्व को स्वर्ग बना सकते हैं।

८९. साधना में गोता लगाइए। निश्चय कीजिए कि आप अखण्ड ब्रह्म हैं। योग के द्वारा जगत् के साथ एक हो जाइए। सारी शंकाएँ दूर हो जायेंगी। कोई प्रश्न नहीं रह जायेगा।

९०. ईश्वर आपके हृदय में निवास करता है, फिर आप एकाकीपन का भान कैसे कर सकते हैं? प्रार्थना, जप, कीर्तन, ध्यान, मन्त्र लेखन तथा योगाभ्यास के द्वारा उसकी संगति प्रेरणा प्रदान करती है। आप अक्षय शान्ति, सुख तथा शक्ति प्राप्त करेंगे। सांसारिक लोगों के संग से दुःख ही प्राप्त होगा। प्रारम्भ में आपको संघर्ष करना होगा; परन्तु ज्यों-ही आपको ईश्वरीय संगति के माधुर्य का रस मिलेगा, त्यों-ही आप सांसारिक लोगों से भागने लगेंगे। जब कभी आप उदासी का अनुभव करें, तो आध्यात्मिक पुस्तक पढ़िए या एकाग्रतापूर्वक मन्त्र लिखिए।

१५. साधना तथा समाधि

९१. दुःख, कष्ट, दुर्भाग्य-ये सब मानसिक सृष्टियाँ हैं। वास्तव में इनका अस्तित्व ही नहीं है। ईश्वर ही सब-कुछ करता है। इस महान् सत्य पर ध्यान कीजिए तथा इसके आश्चर्यकर परिणाम का अनुभव कीजिए। जब आप सुख और दुःख-दोनों को ईश्वर का प्रसाद समझ कर ग्रहण करने लगेंगे, तब आप परम आनन्द तथा शान्ति प्राप्त कर लेंगे।

९२. सर्व भाव से हृदय, मन, आत्मा तथा सम्पूर्ण भाव से - भगवान् के पास जाइए। सूक्ष्म कामना भी अपने लिए बचाये न रखिए। आप भगवान् की पूर्ण कृपा प्राप्त करेंगे।

९३. कुछ ज्योति देख कर, कुछ नाद श्रवण कर, कुछ दिव्य गन्ध का अनुभव कर साधक समझ बैठते हैं कि उन्हें निर्विकल्प समाधि मिल गयी है। यह भारी भूल है। निर्विकल्प समाधि सस्ती वस्तु नहीं है। इसके लिए पूर्ण शुद्धता आवश्यक है। वे जाँच करने पर विफल सिद्ध होते हैं। कुछ समाधि का बहाना करते हैं। वे भारी ठग हैं। लाखों में एक ही ईश्वर की कृपा से समाधि प्राप्त कर सकता है। यदि आप अच्छे साधक हैं, यदि आपको सच्चरित्रता, विवेक, वैराग्य, शास्त्र ज्ञान, नैतिक पूर्णता प्राप्त है, तो यह भारी प्राप्ति है। लाखों में एक ही ईश्वर की कृपा से अच्छा साधक बन सकता है। यह साधक समस्त जगत् को शुद्ध बना सकता है।

९४. मन्त्र लिखते समय सदा मौन व्रत का पालन कीजिए। ऐसा अनुभव कीजिए कि ईश्वरीय शक्ति आपमें प्रवाहित हो रही है। लिखना जब तक पूरा न हो जाये, आसन न बदलिए। मन्त्र-लेखन में अचिन्त्य शक्ति है। इससे साधक में धारणा बढ़ती है। इन दोनों के मिलने से आनन्द का प्रवाह सारे शरीर को पुलकित कर देता है। साधक आन्तरिक शान्ति का अनुभव करता है। वह ईश्वर के विचार में निमग्न हो जाता है।

१६. आध्यात्मिक साधना के रूप

९५. सभी परिस्थितियों में शान्त रहिए तथा समत्व बुद्धि रखिए। बारम्बार कठिन प्रयास द्वारा शम का अर्जन कीजिए। शम चट्टान के समान है। इस पर अशान्ति की लहरें टकरा सकती हैं; परन्तु वे इसे प्रभावित नहीं कर सकी। उस शाश्वत शान्त आत्मा पर नित्य-प्रति ध्यान कीजिए। शम-युक्त साधक गम्भीर ध्यान के द्वारा निर्विकल्प समाधि प्राप्त कर लेगा। वही निष्काम कर्मयोग का अभ्यास भी कर सकता है।

९६. हर प्रलोभन का संवरण करने से, हर वृत्ति का दमन करने से, हर कटु शब्द को सहन करने से, हर शुभेच्छा को प्रोत्साहित करने से आपमें संकल्प-शक्ति तथा सच्चरित्रता का विकास होगा और आप नित्य-सुख एवं अमृतत्व को प्राप्त कर लेंगे।

९७. आध्यात्मिक मार्ग में आपका कितना भी क्षीण प्रयास क्यों न हो, उससे आपकी आन्तरिक शक्ति बढ़ेगी। प्रार्थना, कीर्तन, जप और स्वाध्याय-ये नित्य-सुख के द्वार खोलेंगे। अनवरत साधना के द्वारा सिद्धि प्राप्त कर लीजिए।

९८. बारम्बार विफलता की परवाह न कीजिए। निराश न होइए। साधना न त्यागिए। कटिबद्ध हो कर पुनः युद्ध कीजिए। आप हर बार सफलता के निकटतर होते जा रहे हैं। हर विफलता सफलता की सीढ़ी है। आप कालान्तर में सफल हो जायेंगे।

९९. कामना, आसक्ति तथा अभिमान के बिना मन का अस्तित्व नहीं रह सकता। यह किसी-न-किसी को अवश्य पकड़े रहेगा। सात्त्विक कामनाओं को प्रश्रय दीजिए। मुक्ति की प्रबल कामना रखिए। इससे आप सारी सांसारिक कामनाओं को नष्ट कर सकते हैं। स्त्री-पुरुष से आसक्त न हो कर मन को भगवान् कृष्ण अथवा भगवान् राम की मूर्ति से आसक्त बनाइए। 'मैं अमरात्मा हूँ' अथवा 'मैं कृष्ण का दास हूँ' - इस भावना द्वारा सात्त्विक अहंकार रखिए।

१००. यदि आप विश्वात्म-चैतन्य से एक बनना चाहते हैं, तो अपने हृदय को विकसित बनाइए। आपको विश्व के साथ एक बनना होगा। आपको अहंकार, स्वार्थ, ईर्ष्या, घृणा, लोभ आदि का उन्मूलन करना होगा; क्योंकि ये आप तथा

जगत् के बीच व्यवधान डालते हैं। कर्मयोगी बनिए और विश्व-कल्याण के लिए कार्य कीजिए। आप विश्वात्म-चैतन्य में विलीन हो जायेंगे। सार्वभौम चेतना से एकता की अवस्था प्राप्त करने के लिए आपको सार्वभौमिक सेवा करनी होगी।

प्रस्तावना

साधना शब्द की उत्पत्ति 'साध्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है- 'प्रयत्न करना', 'किसी विशेष सिद्धि की प्राप्ति के लिए प्रयास करना। जो प्रयत्न करता है, उसे साधक कहते हैं। यदि अभीष्ट फल-सिद्धि की प्राप्ति हुई, तो उसे सिद्ध कहते हैं। जिसे ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान है, वह पूर्ण सिद्ध है। साधना के बिना आत्म-साक्षात्कार अथवा ईश्वर-दर्शन सम्भव नहीं है। कोई भी आध्यात्मिक प्रयत्न साधना है। साधना तथा अभ्यास पर्यायवाची शब्द हैं। जो साधना से प्राप्य हो, उसे साध्य कहते हैं। ईश्वर-साक्षात्कार ही साध्य अथवा लक्ष्य है। ब्रह्म-साक्षात्कार के लिए साधना के प्रायः सभी प्रकारों का इस पुस्तक में वर्णन किया गया है। इस पुस्तक का क्षेत्र सर्वग्राही है।

यदि आप शीघ्र उन्नति करना चाहते हैं, तो आपको ठीक प्रकार की साधना मालूम हो जानी चाहिए। यदि आप आत्मावलम्बी हैं, तो स्वतः ही नित्य प्रति के अभ्यास के लिए साधना को चुन सकते हैं। यदि आपमें आत्मार्पण का भाव है, तो अपने गुरु से अपने लिए उपयुक्त साधना का प्रकार प्राप्त कर लीजिए तथा गम्भीर श्रद्धा के साथ उसका अभ्यास कीजिए।

ॐ! उस पूज्य प्रभु को नमस्कार, जिससे महत्तर इस जगत् में कुछ भी नहीं है तथा जो इस जगत् से अतीत है।

आप अनावश्यक ही अपना बन्धन दीर्घ काल तक क्यों बनाये रखेंगे? अभी-अभी आप अपने जन्माधिकार को प्राप्त क्यों नहीं करते? अभी आप अपने बन्धन को क्यों नहीं तोड़ते ? विलम्ब का अर्थ है कष्टों की वृद्धि। आप किसी भी क्षण बन्धन को तोड़ सकते हैं। यह आपकी शक्ति के अन्दर है। अभी कीजिए। खड़े हो जाइए। कटिबद्ध होइए। उग्र तथा अनवरत साधना कीजिए। मुक्ति प्राप्त कर नित्य-सुख का उपभोग कीजिए।

अनुशासन, तप, आत्म-संयम तथा ध्यान के द्वारा निम्न प्रकृति को उच्च प्रकृति का सेवक बना डालिए। यही आपकी मुक्ति का समारम्भ है।

आपके अन्दर का ईश्वरत्व आपके बाहर की सभी वस्तुओं से अधिक शक्तिशाली है। अतः किसी भी वस्तु से भय न कीजिए। अपनी अन्तरात्मा पर ही निर्भर रहिए। अन्तर्दृष्टि द्वारा मूल से शक्ति पाइए।

त्याग के बिना आप कदापि सुखी नहीं हो सकते। त्याग के बिना आप कभी विश्राम नहीं कर सकते। अतः सब-कुछ त्याग डालिए। सुख पर अपना अधिकार जमाइए। त्याग को ही सर्वश्रेष्ठ मानिए।

अपना सुधार कीजिए। चरित्र निर्माण कीजिए। हृदय को शुद्ध बनाइए। वृत्तियों को शान्त कीजिए। उफनते हुए आवेगों को स्तब्ध कीजिए। बहिर्मुखी इन्द्रियों को समेट लीजिए। वासनाओं को नष्ट कीजिए। आप गम्भीर ध्यान में महिमामय आत्मा के दर्शन करेंगे।

पूर्ण स्वतन्त्रता तथा निर्वाण प्राप्ति के पाँच साधन हैं। इनसे ही परम सुख की प्राप्ति होती है। ये हैं सत्संग, विवेक, वैराग्य, 'मैं कौन हूँ' का विचार तथा ध्यान। ये ही स्वर्ग हैं। ये ही धर्म हैं। ये ही सर्वोच्च सुख हैं।

पहले भला मनुष्य बनिए। तब इन्द्रियों का दमन कीजिए। तब निम्न मन को उच्च मन से पराजित कीजिए। तब ईश्वरीय ज्योति का अवतरण होगा।

बिना जल्दबाजी किये शान्तिपूर्वक, संलग्नतापूर्वक ध्यान का अभ्यास कीजिए। आप शीघ्र ही समाधि प्राप्त कर लेंगे।

आध्यात्मिक जीवन कठिन तथा श्रमयुक्त है। इसके लिए सतत सावधानी तथा दीर्घ उत्साह की आवश्यकता है। तभी ठोस उन्नति सम्भव है।

आपने स्वयं ही अज्ञानवश बन्दीगृह की दीवारें अपने लिए खड़ी की हैं। आप विवेक तथा 'मैं कौन हूँ' के विचार द्वारा इन दीवारों को ध्वस्त कर सकते हैं।

कष्ट आदमी को शुद्ध बनाते हैं। वे पाप तथा मल को जला डालते हैं। ईश्वरत्व अधिकाधिक प्रकट होने लगता है। उससे आन्तरिक शक्ति मिलती है, इच्छा-शक्ति विकसित होती तथा तितिक्षा-शक्ति बढ़ती है। अतः कष्ट भी छिपे रूप से वरदान ही हैं।

ध्यान के समय प्रकाश की एक किरण भी आपके मार्ग को आलोकित करेगी। इससे आपको पर्याप्त उत्साह तथा आन्तरिक बल मिलेगा। इससे आप अधिकाधिक साधना करने के लिए प्रेरित होंगे। ध्यान की गम्भीरता बढ़ने पर, शरीर-चैतन्य से ऊपर उठने पर आप इस प्रकाश-किरण का अनुभव करेंगे।

आत्मा की प्रसुप्त क्षमताओं का प्रस्फुटन ही जीवन है। दिव्य जीवन बिताइए। ध्यान, जप, कीर्तन तथा स्वाध्याय के द्वारा दिव्य विचारों को उन्नत कीजिए।

शाश्वत जीवन की सरिता में स्नान कीजिए। डुबकी लगाइए। गोता लगाइए। तैरिए, उसमें उतराइए। आनन्द कीजिए।

सूर्य-स्नान के द्वारा शरीर को स्वस्थ बनाइए। नित्य वस्तु आत्मा में सूर्य-स्नान के द्वारा आत्मा को स्वस्थ बनाइए। आप सुन्दर स्वास्थ्य तथा शाश्वत जीवन प्राप्त करेंगे।

आत्मा-रूपी पुष्प की कली का प्रस्फुटन ही पूजा है। पूजा ही जीवन है। पूजा से ही नित्य जीवन की प्राप्ति होती है। आप युद्ध में लाखों व्यक्तियों को जीत सकते हैं; परन्तु मन पर विजय पाने से ही आप वास्तविक विजेता बन सकेंगे।

जब तक आपकी इन्द्रियाँ विजित नहीं होतीं, तब तक आपको तपस्या, दम तथा प्रत्याहार का अभ्यास करते रहना होगा।

जब विद्युत् बल्ब कई परतों वाले कपड़े से ढका रहता है, तब उसकी प्रखर रोशनी प्राप्त नहीं होती। एक-एक परत हटाते जाइए और रोशनी प्रखरतर होती जायेगी। उसी तरह स्वयं-प्रकाश आत्मा भी पंचकोशों से ढका हुआ है। ध्यान अथवा 'नेति-नेति' के अभ्यास के द्वारा एक-एक कर कोश को उतारते जाइए। आत्मा का प्रकाश बढ़ता जायेगा।

शान्तचित्त हो कर बैठ जाइए। शरीर तथा मन के ऊपर अपना स्वामित्व स्थापित कीजिए। अपने हृदय-प्रकोष्ठ में गहरा गोता लगाइए तथा गम्भीर मौन-सागर में निमग्न हो जाइए। इस निःशब्द वाणी को सुनिए।

पहले हृदय को शुद्ध बनाइए, तब योग की सीढ़ी पर साहस तथा अविचल उत्साह के साथ चढ़ते जाइए। शीघ्र ही ऊपर चढ़िए। ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त कर ज्ञान-मन्दिर में प्रवेश कीजिए, वहाँ धर्ममेघ से अमृत की वर्षा होती है।

निश्चित भित्ति पर आध्यात्मिक जीवन का निर्माण कीजिए। ईश्वर-कृपा तथा चरित्र-बल ही पक्की नींव है। ईश्वर तथा उसके सनातन नियम की शरण में जाइए। इस पृथ्वी तथा स्वर्ग में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो आपके मार्ग में व्यवधान डाल सके। आत्म-साक्षात्कार में सफलता निश्चित है। आपके लिए विफलता है ही नहीं। आपके मार्ग पर आलोक है। सब-कुछ प्रकाशमय है।

साधना का अर्थ कोई भी आध्यात्मिक अभ्यास है जिससे साधक ईश्वर को प्राप्त कर सके। साधना वह साधन है जिससे जीवन के लक्ष्य को पाया जाये। योग्यता, रुचि तथा उन्नति के स्तर के अनुसार व्यक्ति-व्यक्ति में साधना की भिन्नता है। प्रत्येक व्यक्ति को अनुकूल साधना अवश्य ग्रहण कर लेनी चाहिए जिससे परम लक्ष्य की प्राप्ति हो। साध्य वह है जो साधना से प्राप्त किया जाये। यह ईश्वर या आत्मा या पुरुष है।

जो भक्ति-मार्ग का अनुगमन करते हैं, उन्हें जप, भागवत या रामायण का स्वाध्याय करना चाहिए। नवधा-भक्ति श्रवण, स्मरण, कीर्तन, वन्दन, अर्चन, पाद-सेवन, सख्य, दास्य तथा आत्म-निवेदन के द्वारा भक्त उच्च कोटि की भक्ति को प्राप्त कर सकता है। भक्त को व्रत, अनुष्ठान, प्रार्थना तथा मानसिक पूजा भी करनी चाहिए। उन्हें दूसरों की नारायण-भाव से सेवा करनी चाहिए। भक्तियोगी के लिए यही साधन है।

जो कर्मयोग का अनुगमन करते हैं, उन्हें पीड़ित मानव जाति तथा समाज की विविध रूप से निष्काम सेवा करनी चाहिए। उन्हें कर्म के फल को ईश्वरार्पित कर देना चाहिए। अपने को ईश्वर के हाथों का निमित्त समझ कर उन्हें कर्ता-भाव का त्याग करना चाहिए। स्वार्थ से मुक्त हो कर इन्द्रियों का दमन करना चाहिए। अपने जीवन को मानव-सेवा के लिए पूर्णतः अर्पित कर देना चाहिए। उन्हें यह मानना चाहिए कि सारा जगत् ईश्वर का ही रूप है। इस भाव के साथ सेवा करने पर कालान्तर में चित्त शुद्ध हो जाता है। यही कर्मयोगियों की साधना है। यह स्वतः लक्ष्य नहीं है। बहुत से भ्रमवश ऐसा मान कर उन्नत साधना का अभ्यास नहीं करते हैं। उन्हें धारणा, ध्यान तथा समाधि का अभ्यास कर परम लक्ष्य को प्राप्त करना चाहिए।

राजयोगी क्रमशः आठ सीढ़ियों से हो कर चढ़ता है। प्रारम्भ में वह यम-नियम का पालन करता है। तब वह आसन स्थिर बनाता है। वह प्राणायाम के द्वारा मन को स्थिर बनाता है तथा नाड़ियों का संशोधन करता है। प्रत्याहार, धारणा तथा ध्यान का अभ्यास कर वह समाधि प्राप्त करता है। संयम के द्वारा उसे विविध सिद्धियाँ मिलती हैं। वह चित्त की सभी वृत्तियों का निरोध करता है।

जो ज्ञान-मार्ग अथवा वेदान्त का अवलम्बन करते हैं, उन्हें सर्वप्रथम साधन-चतुष्टय-विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत् तथा मुमुक्षुत्व से युक्त होना चाहिए। तब वे ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाते हैं एवं उनसे श्रुतियों का श्रवण करते हैं। श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन के अभ्यास से वे आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करते हैं। तब ज्ञानी आनन्द में कह उठता है, "आत्मा ही एकमेव है, वह **'**एकमेवाद्वितीयम्**'** है। आत्मा ही एक सत्य है। मैं ब्रह्म हूँ। अहं ब्रह्मास्मि । शिवोऽहम्। सर्वं खल्विदं ब्रह्म।**"** जीवन्मुक्त आत्मा को सभी भूतों में तथा सभी भूतों को आत्मा में देखता है।

हठयोग के साधकों को चाहिए कि वे कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने के लिए प्रयत्नशील बनें। मुद्रा, बन्ध, आसन तथा प्राणायाम के द्वारा मूलाधार चक्र में प्रसुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जगाया जाता है। उन्हें प्राण तथा अपान से संयुक्त कर इस संयुक्त प्रवाह को सुषम्ना नाड़ी से ले जाना चाहिए। कुम्भक के द्वारा गरमी बढ़ती है तथा कुण्डलिनी के साथ

वायु विभिन्न चक्रों से होते हुए सहस्रार को जाती है। सहस्रार चक्र में जब कुण्डलिनी भगवान् शिव से मिल जाती है, तब योगी परम शान्ति, सुख तथा अमृतत्व प्राप्त कर लेता है।

जीवन का लक्ष्य भगवत्साक्षात्कार अथवा आत्म-साक्षात्कार है। यह सभी का लक्ष्य है। इसमें वर्ण, राष्ट्रीयता, शैक्षणिक योग्यता, सामाजिक परिस्थिति, जाति, सम्प्रदाय और स्त्री-पुरुष का कोई अपवाद नहीं है। सभी प्राणी चेतन अथवा अचेतन अवस्था में इस लक्ष्य की ओर ही प्रगतिशील हैं। मनुष्य का जीवन आत्मिक है; परन्तु उसने इसे भुला दिया है। उसका इहलौकिक जीवन इस आत्मिक जीवन की योग्यता प्राप्त करने के लिए है। इस विस्मृत आध्यात्मिक जीवन की पुनःप्राप्ति ही उसके इहलौकिक जीवन के संघर्ष की पूर्णता तथा उसकी सफलता और उपलब्धियों की पूर्णता है। जब मनुष्य भगवत्साक्षात्कार के पीछे लगता है और वह अपने को अपूर्ण, ससीम, छुद्र एवं विनाशशील पदार्थों से मुक्त बनाने के लिए संघर्षरत होता है, तभी उसके मानव-व्यक्तित्व का पूर्ण सौन्दर्य, उसके अस्तित्व का पूर्ण गाम्भीर्य तथा उसकी प्रकृति की गरिमा और महिमा प्रकट होती है।

संकल्प और इच्छा मात्र से ही परम लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो जाती। आत्मज्ञान की प्राप्ति एक महान् कार्य है। श्रुतियों ने इस संघर्ष को 'क्षुरस्य धारा' की संज्ञा दी है। साधक जब तक भगवत्साक्षात्कार नहीं कर लेता, तब तक उसे निरन्तर एक बलिदान के बाद दूसरा बलिदान देना होता है, एक कठोर परीक्षा के अनन्तर दूसरी कठोर परीक्षा से गुजरना होता है तथा एक समस्या के पश्चात् दूसरी समस्या का समाधान ढूँढ़ना होता है। अतृप्त आध्यात्मिक पिपासा, अक्षुण्ण उत्साह और गम्भीरता, मन की एकाग्रता तथा किसी भी मूल्य पर लक्ष्य तक पहुँचने का दृढ़ निश्चय-ये ही वे अस्त्र हैं जिनसे भगवान् का अनुसन्धान करने वाले व्यक्ति को सुसज्जित होना पड़ता है। तब निश्चय ही उसे आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ति होगी और वह सन्त के रूप में विभासित होगा।

यह 'साधना' पुस्तक साधकों के लिए बहुत ही उपयोगी है, क्योंकि इसमें योग के विभिन्न रूपों और योगाभ्यास का निःशेष तथा विस्तृत विवेचन है। इसमें साधकों के जीवन में उठने वाली सभी समस्याओं की पर्यालोचना की गयी है तथा उनके समाधान का सुझाव भी दिया गया है। वीर साधक ! शाश्वत जीवन, चिरन्तन ज्योति तथा अनन्त आनन्द के पथ पर दृढ़ता से अग्रसर होओ ! भगवान् की प्राप्ति के लिए आप जो संघर्ष कर रहे हैं, सर्वशक्तिमान् प्रभु उसमें आपका साथ दें!

शिवानन्दनगर
२४ दिसम्बर १९६२

- स्वामी शिवानन्द

स्वामी शिवानन्द और जाग्रत भारत

पवित्र भारतवर्ष के उत्तरी क्षेत्र में द्रुतगामिनी पतितपावनी गंगा के तट पर बसे हुए देश-प्रेमी अन्वेषकों के एक छोटे केन्द्र द्वारा आध्यात्मिक जागृति के लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे हैं, जिसकी लहर अत्यन्त तीव्र गति से चतुर्दिक् प्रसारित होती दिखायी पड़ रही है। इसी पावन क्षेत्र में स्वामी शिवानन्द जी महाराज का सुन्दर पवित्र निवास-स्थान शिवानन्दनगर है। यह स्थान द डिवाइन लाइफ सोसायटी (दिव्य जीवन संघ) का प्रधान केन्द्र है। यह संघ जाति तथा धर्म निरपेक्ष प्रतिष्ठान है जिसे शक्तिशाली दार्शनिक महात्मा शिवानन्द जी महाराज ने स्थापित किया था और जिसके द्वारा वे अपने उच्च आदशों, भारतीय संस्कृति तथा आध्यात्मिक उत्थान के कार्यों को प्रगतिवान् तथा विश्व में भारतीय आदर्शों के प्रचार और प्रसार में संलग्न रहे थे।

यह अपूर्व व्यक्तित्व-सम्पन्न सन्त अपने देश भारतवर्ष तथा उसके निवासियों के प्रति अगाध प्रेम रखते थे तथा उनके हृदय में अपनी पवित्र भूमि की विशाल संस्कृति तथा उच्च आदर्शों के प्रति आश्चर्यजनक प्रशंसा के भाव भरे पड़े थे। ये प्रशंसा तथा श्रद्धा की भावनाएँ हमारे देश स्वतन्त्र भारत की जनता के लिए, जो आधुनिक सभ्यता की कृत्रिम चकाचौंध में उलझी हुई है, एक महत्त्वपूर्ण शिक्षा के विषय हैं। इन अद्वितीय आध्यात्मिक सन्त के जीवन का उच्चतम ध्येय भारत माता के खोये हुए यश तथा गौरव को पुनः प्राप्त करना है जिसके लिए इन महात्मा ने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। इन महात्मा ने इस पुनीत कार्य को अपने जीवन का महान् उद्देश्य बना लिया था; क्योंकि उन्हें विश्वास था कि पुनर्जाग्रत तथा पुनरुत्थापित भारत विश्व की मानवता के भाग्य निर्णय तथा चरित्र-गठन में बड़ा हाथ बँटा सकेगा और विश्व को प्रेम, शान्ति तथा सार्वभौम बन्धुत्व के आदर्श की ओर ले जाने में समर्थ हो सकेगा।

महान् आध्यात्मिक कार्य

श्रद्धेय स्वामी शिवानन्द जी महाराज अपने जीवन के अन्तिम काल तक रात-दिन स्वयं ही मानवतापूर्ण तथा विश्वोपकारी कार्यों की देख-रेख, छानबीन तथा उसके संचालन-कार्य में लगे रहे। इस कार्य को वे बड़ी ही तत्परता, तल्लीनता, रुचि और प्रसन्नता से करते थे। अपने प्रेम तथा आध्यात्मिक व्यक्तित्व के द्वारा वे अपने शिष्य कार्यकर्ताओं, जिनको उन्होंने विश्व में आध्यात्मिकता के प्रचार और प्रसार करने के लिए सुशिक्षित किया था, में प्राण तथा गति भरते रहते थे।

स्वामी शिवानन्द जी के कार्यों ने उन्हें देश-विदेश के स्त्री-पुरुषों में समान रूप से लोकप्रिय बना दिया है। उनके कार्य अत्यन्त तीव्र गति से राष्ट्र की सम्मति प्राप्त करते जा रहे हैं। जो भी व्यक्ति इनके हृदयस्पर्शी विचारों और शिक्षाओं के सम्पर्क में एक बार आ जाता है, उसका हृदय अनायास ही इन महात्मा के आकर्षक व्यक्तित्व तथा इनके सच्चे और प्रिय स्वभाव के अपूर्व प्रभाव के कारण खिंच जाता है।

शिक्षित वर्ग का एक बड़ा समुदाय आज स्वामी जी को आधुनिक भारत का सुनिश्चित आध्यात्मिक नेता स्वीकार करता है। वे अपने तथा समाज के जीवन में ज्ञान, गति और प्रकाश के लिए स्वामी जी की ओर उन्मुख हैं। इसी प्रकार भारत के बाहर विदेशों से भी अनेक सुशिक्षित तथा विचारशील स्त्री-पुरुष स्वामी जी में पथ-प्रदर्शक, मित्र, प्रेरक तथा उपदेशक की भावनाओं को पा कर अपने को धन्य समझते हैं।

मनमोहक व्यक्तित्व

खुशी से ओत-प्रोत, शान्ति तथा आशीर्वाद-युक्त मुद्रा वाले, शरीर से लम्बे-चौड़े, हृष्ट-पुष्ट, महान् दिव्य दृष्टिमय साधु अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व रखते थे। जब भी आप उनके निकट सम्पर्क में जाते, वे अपनी अद्‌भुत किन्तु वस्तुतः विवश कर देने वाली दैवी विद्वत्ता की भावना के रूप में आप पर छा जाते थे। उनके नेत्रों की शक्ति अत्यन्त तेज तथा वाणी अलौकिक ओजपूर्ण थी जो आपके अन्दर प्रवेश करके एक परिवर्तन ला देती थी। जहाँ भी वे जाते थे, वहाँ शान्ति का एक वातावरण छा जाता था। उनकी मुस्कान आपके अन्तस्थ दुःखों का निवारण करती थी। वे जब ईश्वर-नाम का संकीर्तन करते थे, तो मनुष्य भौतिक प्रमाद को छोड़ कर उससे ऊपर उठ जाता था और उस पर आत्मानुभूति की अपूर्व भव्यता छा जाती थी तथा वह अभूतपूर्व आनन्द का अनुभव करने लगता था। कभी अन्तः मुग्ध तथा शान्त और कभी अत्यधिक आनन्द-उत्साह से उद्वेलित स्वामी जी एक स्फुलिंगित व्यक्तित्व, चमचमाती ओजस्विता तथा शिक्षापूर्ण विनोदी थे जो कोमल, सूक्ष्म, सहानुभूति, दूरदर्शिता और सहनशीलता से पूर्ण होता था। उनका प्रेम असीम तथा विघ्न बाधाओं से परे था।

प्रारम्भिक जीवन

स्वामी शिवानन्द जी महाराज आधुनिक युग के व्यक्ति थे। यद्यपि उनका जन्म १९ वीं शताब्दी के अन्त में हुआ, तथापि स्वामी जी २० वीं शताब्दी के अति-वैज्ञानिक युग के व्यक्तियों में से थे। अपनी कार्य प्रणाली एवं विचारों के आदान-प्रदान में स्वामी के सब तरह से आधुनिक तथा परिपूर्ण थे। दक्षिण भारत के एक उच्चकुलीन ब्राह्मण परिवार में जन्म ग्रहण कर स्वामी जी अपने विद्यार्थी-जीवन-काल में ही अपनी तीव्र बुद्धि, चातुर्व और ओजस्विता के कारण एक स्वतन्त्र तथा अमूल्य जीवन की झाँकी दे चुके थे। उन्होंने बड़ी साधना तथा रुचि के साथ औषधविज्ञान की शिक्षा लेनी आरम्भ कर दी। अध्ययन में अति प्रतिभावान् तथा अभूतपूर्व परिश्रमी होने के कारण युवक कुप्पुस्वामि (स्वामी जी पूर्वाश्रम में इसी नाम से पुकारे जाते थे) औषधशास्त्र के छात्रों के बीच अपना अलग व्यक्तित्व प्रसारित करते रहे जो उनके भावी जीवन की उच्चता का परिचायक था। अध्ययनोपरान्त डा. कुप्पुस्वामि ने समुद्र पार मलाया की यात्रा की, जहाँ एक सुयोग्य और अद्‌भुत चिकित्सक के रूप में उनकी ख्याति चारों ओर फैल गयी और एक अन्तर्राष्ट्रीय सुख्याति प्राप्त चिकित्सक हुए। वे अपनी अपूर्व आध्यात्मिक तथा शुद्ध परोपकारी भावना के कारण एक प्रकार से जनता द्वारा पूजे जाने लगे थे। उनके हृदय में मानव-कल्याण के लिए अथाह तथा अगम्य उदारता और प्रेम थे। उनके जीवन का वह काल पीड़ितों तथा असहायों के अनवरत सेवा-यज्ञ में हर प्रकार से उत्सर्ग हो चुका था। इस उदारता और प्रेम के रास्ते में उनके लिए दिन और रात बराबर थे और कोई भी सेवा-कार्य उनकी नजरों में बड़ा या छोटा नहीं था जिसे वे खुशी से अंगीकार न कर लेते।

एक परिवर्तन-बिन्दु

परन्तु, नियति ने भारत के इस शील-सम्पन्न पुत्र के द्वारा इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण सार्वभौमीय कार्य करवाने की सोची। यह स्मरण रहे कि अर्घ शताब्दी के मध्य पश्चिमी सभ्यता की बाहरी तड़क-भड़क तथा उसके खोखले सिद्धान्तों ने भारत की नयी पीढ़ी के विचारों को आक्रान्त करना आरम्भ कर दिया था। खासकर मध्यवर्गीय भारतीय जनता शनैः शनैः उनकी ओर झुकने लगी जो उन्हें अपनी तड़क-भड़क के कारण भारतीय संस्कृति और सभ्यता से अधिक ऊँची और आकर्षक प्रतीत होती थी। किन्तु कुछ काल तक यह सर्वनाशकारी दृष्टिकोण बहुत छोटे दायरे में ही अवस्थित रहा; क्योंकि उस समय तक मध्यवर्गीय भारतीयों का पश्चिमी सभ्यता से विशेष सम्बन्ध स्थापित न हो सका था, लेकिन शीघ्र ही १९१७ के प्रथम विश्व युद्ध के अन्तिम काल में यह नशा उतरने लगा। सन् १९१८ में बहुत से भारतीय युवक जो यूरोप तथा मध्य-पूर्व के देशों में युद्धकालीन सेवाओं में संलग्न हुए थे, युद्ध-समाप्ति के पश्चात् जब वे

स्वदेश लौटे, तो उनका हृदय और मस्तिष्क पश्चिमी भौतिकवाद तथा उसकी मिथ्या आडम्बर-युक्त अर्थवादिता, कीर्ति, तड़क-भड़क और विज्ञान से प्रभावित था।

यह एक शोचनीय अवसर था जब कि भारतीय नवयुवकों ने आडम्बरपूर्ण आधुनिक फैशन तथा आलोचनात्मक भावों व विचारों से भर कर अपनी घृणापूर्ण दृष्टि भारतीय संस्कृति और सभ्यता की ओर डाली और आपस में एक-दूसरे से नफरत करने लगे। विदेशी सिद्धान्तों का इस रूप में हमारे देश पर यह आक्रमण हमारी मूल्यवान् भारतीय संस्कृति के लिए एक धमकी-भरी खुली चुनौती था। किन्तु इन बातों का असर डा. कुप्पुस्वामि के विचारशील तथा अलौकिक मस्तिष्क पर बिलकुल नहीं हुआ, जो उस समय सिंगापुर में विराजमान थे। उन्होंने भारत की प्राचीन संस्कृति तथा उसके अपूर्व संस्कार की पुकार का अनुमान किया जो पश्चिमी सभ्यता की बाहरी चकाचौंध तथा हृदयग्राही आकर्षणों के द्वारा आक्रान्त हो रहा था। भारतीय क्रान्ति का यह आरम्भ काल था। ख्याति प्राप्त युवक डाक्टर ने अनुभव किया कि उनके कार्य करने का अवसर आ गया है, फलतः वे अपने जीवन के नये अध्याय को कार्यान्वित करने के लिए जुट पड़े और १९२३ के आरम्भ में ही इस प्रभावशाली तथा ख्याति प्राप्त चिकित्सक ने सदा के लिए अपने चिकित्सा कार्य को तिलांजलि दे दी और स्वतः आत्म-प्रेरणा से ईश्वरोपासना में लग गये।

साधु-जीवन का विकास

यद्यपि मलाया से हिमालय तक एक बड़ी लम्बी दूरी है, फिर भी इस नवयुवक का मन विश्व-जागृति के ईश्वरीय कार्यों के लिए प्रज्वलित हो उठा था। वे जून १९२३ में ऋषिकेश पहुँचे और कठिन आध्यात्मिक अनुशासन-युक्त पवित्रता तथा घोर तपस्या में लीन हो गये। साधना का कठोर जीवन यापन करते हुए, बीमार साधुओं, पीड़ित ग्रामवासियों, थके-माँदे पहाड़ के लोगों एवं तीर्थयात्रियों की निःस्वार्थ सेवा करने के कारण यह विचित्र संन्यासी उन रूढ़िवादी सम-सामयिक संन्यासियों द्वारा, जो अनासक्ति तथा पृथकत्व में विश्वास करते हैं, आलोचना का पात्र बना। किन्तु उन संन्यासियों का यह आलोचनापूर्ण दृष्टिकोण स्वामी शिवानन्द के योग के ऊपर अधिकार तथा आन्तरिक आध्यात्मिक प्रकाश के आगे आदर-युक्त श्रद्धा में परिवर्तित हो गया। जब उनका जीवन ईश्वरीय कृपा से परिस्फुटित हो उठा, तो एक नया रूप उठ खड़ा हुआ और यह पवित्रात्मा सभी प्राणियों पर भक्ति, तपस्या तथा आत्मानुभूति के अपूर्व फलों की वर्षा करने लगा। भाग्य ने भारतीय धर्म तथा आध्यात्मिक सिद्धान्तों की सफलता तथा उसकी सूक्ष्मता का दिग्दर्शन कराने के लिए इन्हें अपना आदर्श दूत चुना और स्वामी शिवानन्द जी महाराज के द्वारा भारतीय धर्म तथा आध्यात्मिकता के आदर्श ने नव-जीवन प्राप्त किया तथा मानवों के जीवन में उसको स्थान प्राप्त हुआ। यह विभूति नव-भारत के निर्माण करने वालों में से एक है।

मुक्तिदाता

वह चित्र जिसे विश्व आज हमारे सामने प्रस्तुत करता है, निरंकुश घृणा, लालच, उत्तेजना और युद्ध-क्रीड़ाओं का है। मानवता का एक बड़ा समूह बेचैनी, असन्तोष, नैराश्य की गहरी आशाहीनता में डूब गया। पूर्व और पश्चिम दोनों में मनुष्य अपने बाह्य रूप को सभ्यता, संस्कृति और श्रृंगार के पतले रोगन से रंग रहा है; किन्तु कठिन परीक्षा होने पर यह रोगन तुरन्त उतर जाता है और मनुष्य में निर्दयता, क्रोध, उपेक्षा का भाव, क्रूरता, अधिकार-शून्यता और बेशर्मी आ जाती है। स्वार्थ और अभिमान मनुष्य-जीवन को नारकीय बना रहे हैं। पूर्णेन्द्रिय सुख, क्रोध, कुटिलता और चातुर्य आदि मनुष्य के अन्दर की ईश्वरीय प्रवृत्ति का नाश कर देते हैं।

यह थोड़ा हो या ज्यादा, आज की दुनिया का चित्र है। स्वामी शिवानन्द जी महाराज उन भगवत्कृपा प्राप्त ईश्वरीय सन्तों में से हैं जो दुनिया के उपर्युक्त चित्र को बदलने का प्रयास कर रहे थे। उनके ये प्रयास उपेक्षा को प्रेम में और

निराशा को आशा तथा खुशी में परिणत कर देते थे। स्वामी शिवानन्द जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन मनुष्य को जाग्रत करके उसे जीवन के मुख्य लक्ष्य की ओर सचेष्ट कर असत् से सत्, अन्धकार से प्रकाश, दुःख और व्यथा के निम्न जीवन से स्वर्गीय सुख और शान्ति के जीवन में प्रवेश कराने में लगाया।

अपनी अमूल्य रचनाओं के द्वारा स्वामी जी ने विश्व के भाग्यशाली पुरुष और स्त्रियों के हृदय में आन्तरिक विचारों तथा आदर्शों में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। शारीरिक, मानसिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान को लक्ष्य में रखते हुए स्वामी जी का साहित्य विभिन्न मनुष्यों के जीवन की रुचि के विषयों को प्रभावित करता है।

उद्देश्य

स्वामी शिवानन्द जी आक्रान्त तथा दुःखी मानवता को अपनी सेवाओं तथा प्रकाश एवं नव-जीवन प्रदान करते हुए आध्यात्मिक जीवन के सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे थे। वे केवल भारत की आध्यात्मिकता के प्रतिरूप ही नहीं थे; वरन् अपनी उच्च आदर्शवादिता के उदाहरण थे जिसने ज्ञान और कर्म के द्वारा मानवता के आध्यात्मिक तथा चारित्रिक उत्थान में अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया था। उनका उद्देश्य इस प्राचीन देश की जनता में भारतीय आदर्शों को जाग्रत करना था तथा भारतीय जीवन की प्राचीन सभ्यता की सूक्ष्मता के मूल्य और सौन्दर्य को सामने ला कर उसके अनुसरण के लिए उन्हें प्रोत्साहित करना था। वे जनता में धर्म, सदाचार और परोपकार की विचारधाराओं का पुनर्स्थापन करना चाहते थे। वे मनुष्य के जीवन में चारित्रिक तथा आध्यात्मिक आदर्श का पुनर्निर्माण करने के लिए संलग्न थे, जिससे दूर हो कर आज संसार घृणा, युद्ध, विनाश तथा अहर्निश दुःख और भय की सुलगती भट्ठी में गिर गया है।

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

अपने इस सुन्दर उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने द डिवाइन लाइफ सोसायटी (दिव्य जीवन संघ) की स्थापना की जो मानवता को अपवित्र, निम्न पाशविक प्रवृत्ति के ऊपर विजय प्राप्त करना सिखाता है तथा उन्हें सद्‌गुण, सच्चाई, पवित्रता, दया, प्रेम, निःस्वार्थता और बन्धुजनों के प्रति सेवाभाव, सद्भाव, चारित्रिक गठन और आध्यात्मिकता के आदर्शों का विकास करने में प्रयत्नशील है। द डिवाइन लाइफ सोसायटी के द्वारा स्वामी जी क्रमबद्ध रूप से इस बृहत् देश तथा विदेश की जनता को उच्च जीवन स्तर का विकास करने तथा पापमय जीवन को हटा कर शुद्ध जीवन को अंगीकार करने में प्रशिक्षित करना चाहते थे। घृणा, लालच, वासना, अहंकार, असहिष्णुता तथा चरित्रहीनता को दूर करने की उनकी शिक्षा पद्धति बड़ी ठोस तथा प्रभावोत्पादक है। मनुष्य में चरित्र के विरोधी गुणों को काबू में लाने तथा सद्‌गुणों के विकास के क्षेत्र में उनकी शिक्षा का ढंग बड़ा ही असर डालने वाला है। वे सभी को आध्यात्मिक जीवन की शिक्षा-दीक्षा तथा उसको कार्य-रूप में लाने के उपाय बताते थे।

एक यथार्थवादी

अपने उद्देश्य को कार्य रूप देने तथा मानव को पतन तथा निम्न स्तर से उठाने में स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने केवल काल्पनिक सिद्धान्तों से काम नहीं लिया। वे एक यथार्थवादी थे। उन्होंने समस्याओं के समाधान के लिए ठोस कदम उठाये। वे शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक तथा आध्यात्मिक सभी क्षेत्रों में संस्कृति का पुनरुत्थान करने के लिए संलग्न थे और हमारी भारतीय संस्कृति के उत्थान तथा उसके प्रचार के लिए उन्होंने सभी आधुनिक उपायों का अवलम्बन लिया; उदाहरणार्थ चलचित्र, टेप रिकार्डर इत्यादि। इस प्रकार उन्होंने विश्व को भारत की जनता के

सम्बन्ध में यह ज्ञान कराया कि वे उपनिषद्-काल के उन महात्माओं की सन्तान हैं जिनका अध्यात्मवाद विश्व में सर्वोच्च है।

शारीरिक उन्नति

इनके आश्रम में शारीरिक उन्नति हेतु योगासन, प्राणायाम तथा सूर्यनमस्कार आदि वैज्ञानिक तौर-तरीकों से कराये जाते हैं। इस क्षेत्र में द डिवाइन लाइफ सोसायटी की ओर से सारे देश में योगासन और प्राणायाम की शिक्षा का युवकों और वृद्धों के बीच प्रचार करने के लिए विशेष केन्द्रों की स्थापना हुई है। प्राकृतिक रहन-सहन तथा स्वास्थ्योन्नति के वैज्ञानिक प्रचार के लिए इस संस्था ने बहुत सारी किताबें, समाचार पत्र, सामयिक पत्रिकाएँ, विज्ञप्तियाँ तथा साहित्य का मुफ्त वितरण किया है। इस संस्था में अनेक तरीकों से ब्रह्मचर्य की शिक्षा, अनुशासित रहन-सहन एवं जीवन क्षेत्र में धैर्य के तरीकों का मुफ्त प्रचार किया जाता है।

धार्मिकता और सच्चरित्रता

स्वामी जी के पुनःस्थापन के कार्यों में धर्म और चारित्रिक रहन-सहन का मुख्य स्थान है। राष्ट्र के समक्ष सच्चरित्रता का एक उच्च आदर्श रखते हुए उन्होंने देश के जवान, वृद्ध, स्त्री और बच्चों सभी को जगाने के लिए अथक परिश्रम किया है। चरित्र-निर्माण, मन पर नियन्त्रण इत्यादि बातों पर भारत के यह ख्याति प्राप्त दूरदर्शी सन्त विशेष रूप से ध्यान देते थे।

निःस्वार्थ सेवा

वे प्राचीन संस्कृति के पुजारी थे तथा निःस्वार्थ सेवा के सिद्धान्त को मानते थे। वे कभी यह कहते हुए नहीं थकते थे कि जीवन का सार निःस्वार्थ सेवा है। वे निःस्वार्थ सेवा को जीवन का उच्चतम विचार तथा प्रार्थनीय कार्य मानते थे। उनके मतानुसार स्वार्थ रहित सेवा हमारी प्रकृति को शुद्ध करने तथा जीवन की प्रतिष्ठा बढ़ाने की सबसे बड़ी और महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इसीलिए सोसायटी के शिवानन्दनगर-स्थित मुख्य प्रतिष्ठान में एलोपैथिक चिकित्सालय सब प्रकार के उपकरणों एवं औषधियों से सुसज्जित है और यहाँ पीड़ितों को मुफ्त दवा दी जाती है।

अरण्य अकादमी

असंख्य कार्यकर्ताओं को इस देश की प्रभावशाली संस्कृति तथा आध्यात्मिक कार्यों में निपुण बनाने के लिए स्वामी जी ने योग-वेदान्त अरण्य अकादमी (योग-वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी) का संस्थापन किया। यहाँ हमारी आन्तरिक स्व-संस्कृति के प्रयोगात्मक तथा सिद्धान्तात्मक कार्य समय की गति-विधि के अनुसार सिखाये जाते हैं। इस अकादमी के भाषणों को पत्रिकाओं द्वारा जनता में प्रचारित किया जाता है। बहुमूल्य प्रकाशनों का यह क्रम द डिवाइन लाइफ सोसायटी के मुख्य उद्देश्य तथा संस्कृति के प्रचारार्थ चलाया जा रहा है। जो व्यक्ति या विद्यार्थी मुख्य प्रतिष्ठान में आते हैं और कुछ काल तक निवास करते हैं, उनको प्रयोगात्मक योग एवं वेदान्त की विभिन्न शाखाओं के विशेषज्ञों द्वारा निजी पथ-प्रदर्शन प्राप्त होता है। संस्था अपने खुद के मुद्रणालय की बहुत ऋणी है जहाँ से स्वास्थ्य, योग साधना और भारतीय संस्कृति की असंख्य पुस्तकें तथा अनेकों पत्र-पत्रिकाएँ हिन्दी तथा अँगरेजी भाषा में प्रकाशित होती हैं। स्वामी जी की सरल, ओजस्वी और श्रेष्ठ प्रयोगात्मक शिक्षाओं के प्रभाव से अनेक स्त्री-पुरुषों ने धर्म को जीवन का मुख्य अंग मान लिया है तथा वे उसे निराशा, निर्बलता से उठा कर नयी आशा तथा आत्मोन्नति के स्तर पर ला देने वाली एक निर्माणकारी और मुक्तिदायिनी शक्ति मानते हैं। वर्तमान वास्तविकता की जागरूकता में सचेत स्वामी जी

महाराज अपने कार्यों में निरत रहते हुए उस ईश्वरीय केन्द्र से बारम्बार सम्बन्धित रहते हैं। उन्होंने अपने आध्यात्मिक कार्य की भित्ति पवित्र प्रेम पर आधारित की है; क्योंकि भगवान् के इस दूत ने पार्थसारथि द्वारा उच्चारित स्वर्गीय संकेत 'मुझमें सबको देखो और सबमें मुझे देखो' की सत्यता को ग्रहण कर लिया था। ॐ तत्सत् !

-स्वामी चिदानन्द

शिवानन्द-गीता

तमिलनाडु के तिरुनेल्वेली जिले के पत्तमडै गाँव में अप्पय्य दीक्षित के वंश में ८ सितम्बर, सन् १८८७ को श्रीमान् पी. एस. वेंगु अय्यर एवं पार्वती अम्माल के यहाँ मेरा जन्म भरणी नक्षत्र में हुआ। मैं लड़कपन में बड़ा नटखट था। मेरी शिक्षा-दीक्षा एस. पी. जी. कालेज, त्रिचरापल्ली में हुई थी। १० वर्षों तक एक डाक्टर की हैसियत से मैंने मलाया रियासत के निवासियों की सेवाएँ कीं। सन् १९२४ में ऋषिकेश में मैंने संन्यास धारण किया। मैंने १५ वर्षों तक योग, तप एवं भगवद्-आराधना में व्यतीत किये। १० वर्षों तक चारों तरफ घूम-घूम कर शिक्षा-प्रचार करता रहा और सन् १९३६ और १९४५ में क्रमशः The Divine Life Society व All-word Religious Federation की स्थापना की।

मेरा स्वभाव बालकों-जैसा है, जिसके कारण मैं सबमें घुल-मिल जाता हूँ। मैं हमेशा प्रसन्नचित्त रहता हूँ और दूसरों को भी प्रसन्न व आनन्दमन रखता हूँ। मेरे मन की भावनाएँ सुसंस्कृत और विनोदपूर्ण हैं जिनके द्वारा मैं चारों तरफ प्रसन्नता एवं आनन्द का प्रचार और प्रसार करता हूँ। मैं सभी का सम्मान करता हूँ और सभी को सर्वप्रथम प्रणाम करता हूँ। मैं सदैव मधुर भाषा का प्रयोग करता हूँ। मैं तेज गति से चलता हूँ तथा हर समय चाहे जिस कार्य में क्यों न रत रहूँ या रास्ते में चलता रहूँ, मेरा जप और ध्यान चालू रहता है।

मैं काफी परिश्रमी हूँ और परिश्रम में मेरी आस्था है। किसी कार्य में लगने पर मैं उसे पूरा करके ही दम लेता हूँ-किसी कार्य में आलस्य न कर उसे तत्काल ही पूरा कर देता हूँ। मैं काम करने में काफी तेज हूँ तथा सेवा की मेरे अन्दर जो असीम भावना है, उसका कभी भी शमन नहीं करता हूँ। तात्पर्य यह है कि बिना सेवा कार्य के मैं एक क्षण भी नहीं रह सकता। सेवा से मुझे बेहद खुशी होती है। सेवा ने मुझे उच्च पद पर आसीन किया है और सेवा ने मुझे हर प्रकार से पाक-साफ बना दिया है। यही नहीं, मैं यह भी भली-भाँति जानता हूँ कि दूसरों से कैसे काम लिया जाता है। मैं दूसरों से दया, सेवा, आदर और प्रेम के सहारे काम लेता हूँ।

मैं आसन और व्यायाम तो नित्य-प्रति करता ही हूँ, साथ-ही-साथ प्राणायाम भी करता हूँ, जिसके द्वारा मेरे अन्दर एक आश्चर्यजनक शक्ति का संचार होता है। मेरा स्वास्थ्य सुन्दर है। मैं अपने आराध्य मन्दिर की परिक्रमा करता हूँ। किसी विशेष प्रकार के बने हुए आसन या मंच पर आरूढ़ हो कर मैं सुन्दर भाषण नहीं कर सकता; क्योंकि इस तरह के बने हुए आसन मुझे चुभते हैं अर्थात् मन में घृणा होती है और इसीलिए मैं उस पर से उठ खड़ा होता हूँ और भाषण देना शुरू कर देता हूँ। जब कभी मुझे किसी आध्यात्मिक सम्मेलन की अध्यक्षता करनी पड़ी, मैं कभी भी विशेष प्रकार से बनाये गये आसनों पर नहीं बैठा। दान करने में मुझे बड़ा आनन्द आता है और मैं सर्वदा दान करता हूँ।

इस ७३ वर्ष की आयु में भी मैं अपने को नौजवान, तेजस्वी, शक्तिवान् और चैतन्यमय महसूस करता हूँ। मैं खुशी से गायन कर सकता हूँ, नृत्य कर सकता हूँ, दौड़ लगा सकता हूँ, कूद-फाँद भी सकता हूँ मेरा शरीर वज्र के समान है। हर प्रकार के भोजन को पचाने की शक्ति मेरे अन्दर विद्यमान है। मैं पढ़ने-लिखने या अन्य कार्य को नियमित धारावाहिक रूप में कर सकता हूँ। अवकाश के समय कभी भी मैं पर्वतीय या समुद्रतटीय स्वास्थ्यवर्धक स्थलों की यात्राएँ नहीं कर, केवल अपने नियमित कार्यक्रमों में हेर-फेर और परिवर्तन कर आनन्द प्राप्त कर लेता हूँ। भगवदाराधन से मुझे काफी शक्ति, आराम और शान्ति मिलती है, कार्य करने से प्रसन्नता मिलती है, सेवा करने से आनन्द मिलता है। यही नहीं लेखन, भगवदाराधन एवं कीर्तन से मुझे जीवन-दान मिलता है।

'अहं ब्रह्मास्मि, शिवोऽहम्, सोऽहम्, सत् चित् आनन्द स्वरूपोऽहम्' - यह मेरा वेदान्तिक अध्ययन और प्रभु के ध्यान का प्रिय नुस्खा है और 'चिदानन्द, चिदानन्द' मेरा प्रिय गीत है।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।।

यह महामन्त्र-कीर्तन मेरा परम कीर्तन है।

वर्तमान क्षणों में मैं विश्व का सर्वाधिक वैभव-सम्पन्न व्यक्ति हूँ। मेरा हृदय उसके प्रेम से परिपूर्ण है। इसलिए उस प्रभु की सारी सम्पत्ति का मालिक मैं ही हूँ। इसलिए मैं राजाओं का राजा, बादशाहों का बादशाह, शहंशाहों का शहंशाह और महाराजाओं का महाराजा हूँ। मुझे इन सांसारिक राजाओं के ऊपर दया आती है, मेरा अधिकार अपरिमित है, मेरी सम्पदा अक्षय है, मेरी प्रसन्नता अवर्णनीय है, मेरा कोष अक्षय है और यह सब मैंने संन्यास, त्याग, अक्लान्त और निष्काम सेवा, जप, कीर्तन तथा ध्यान से प्राप्त किया है।

मेरी ऊँचाई ६ फुट है; शरीर का ढाँचा काफी हृष्ट-पुष्ट है; शरीर के अवयव काफी सुडौल हैं; मैं अब्बल दर्जे का कसरती हूँ। प्रत्येक एकादशी को निर्जल (जल रहित) व्रत करता हूँ। रविवार के दिन फल और दूध का सेवन करता हूँ, मैं एक सीधा-सादा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता हूँ और मेरे अन्दर जवानी का स्रोत है।

मैं प्राकृतिक दृश्य, संगीत, कला, दर्शन-शास्त्र, सौन्दर्य, सत्संग, एकान्त-वास, ध्यान, योग और वेदान्त को पसन्द करता हूँ। मैं सीधा-सादा और निष्पक्ष हूँ, क्षमावान् और उदार प्रवृत्ति का हूँ। मैं दया और सहानुभूति से परिपूर्ण हूँ। मैं स्वेच्छाचारी, बाघ। रहित और उदारमना हूँ। मैं बहादुर एवं हँसमुख हूँ, शान्त स्वभाव का हूँ। मेरे अन्दर अनादर और आघात को सहन करने की क्षमता है। मैं क्षमाशील हूँ-बदला लेने की प्रवृत्ति नहीं रखता। बुराई के बदले भलाई करता हूँ और उस आदमी का सेवक बन जाता हूँ जो अपने सुन्दर विचारों से मेरे हृदय को जीत लेता है।

मैं गंगा और हिमालय का प्रेमी हूँ। गंगा मेरी प्रकृत माता और हिमालय मेरा प्रकृत पिता है। वे मेरे रक्षक और प्रेरणादायक हैं। मैं गंगा में स्नान करता हूँ, गंगा की पूजा करता हूँ, गंगा की मछलियों को दाना चुगाता हूँ। मैं गंगा माँ को दीप दिखाता हूँ (दीप-दान करता हूँ), गंगा माँ की प्रार्थना करता हूँ, उन्हें प्रणाम करता हूँ और उनके यश और वैभव का गान करता हूँ। मैं गंगा के महत्त्व व यश के बारे में लिखता भी हूँ; क्योंकि गंगा मेरा पालन-पोषण करती है, मुझे हर तरह से आराम देती है और उपनिषदों के अन्दर भरी हुई सच्चाई से मुझे परिचित कराती है- "जय माँ गंगा की!"

मेरे दैनन्दिन कार्यक्रम भगवान् बुद्ध के समान हैं। मैं हमेशा कमरे में रहता हूँ, जप करता हूँ, कीर्तन और ध्यान करता हूँ, पवित्र पुस्तकों का अध्ययन करता हूँ, लिखता हूँ। मैं कमरे से उस समय थोड़ी देर के लिए बाहर आता हूँ, जब कि मुझे किसी का साक्षात्कार करना होता है या कोई सेवा-कार्य करना होता है। मैं बहुत कम बोलता हूँ, सोचता अधिक हूँ और ध्यान ज्यादा करता हूँ तथा मुझमें सेवा की भावना अधिक रहती है। मैं अपना एक क्षण भी बेकार नहीं जाने देता हूँ। मैं सर्वदा कार्यरत रहता हूँ और एक नियमबद्ध जीवन यापन करता हूँ- हर समय आत्म-चिन्तन तथा दूसरों की भलाई करने में रत रहता हूँ।

गीता, उपनिषद्, भागवत, योगवासिष्ठ, अवधूतगीता, विवेकचूड़ामणि आदि ग्रन्थ मेरे अभिन्न मित्र हैं। मैं सेवा, निष्ठा, योग और ज्ञान का एक विचित्र मिश्रण हूँ। मैं श्री शंकर का उपासक और कैवल्य अद्वैत वेदान्ती हैं- ऐसा वेदान्ती नहीं

जो मात्र नाम के लिए ही हो, बल्कि उसको कार्य-रूप में भी लाता हो। मैं भौतिक योग का समर्थन तथा अभ्यास करता हूँ। मैं श्री शंकर के प्रताप से अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य का अभ्यासी हूँ-"जय श्री शंकर की!"

मैं प्रत्येक धर्म के सन्तों और पैगम्बरों (धर्मगुरुओं) का आदर करता हूँ। मैं सभी धर्मों एवं उनकी उपासना-विधियों और मतों का सम्मान करता हूँ। मैं सभी की सेवा और सभी को प्यार करता हूँ और सबमें घुल-मिल कर उन सभी में मंगलमूर्ति भगवान् का दर्शन करता हूँ। मैं अपने वायदों पर दृढ़ रहता हूँ, गरीबों की सेवा करता हूँ जिससे मुझे खुशी नसीब होती है। मैं गर्दभ, श्वान, वृक्ष, ईंट-पत्थर एवं प्रत्येक जीव मात्र को मन-ही-मन साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करता हूँ। मैं बुजुर्गों एवं साधुओं का सम्मान करता हूँ, उनकी आज्ञा का पालन करता हूँ एवं सभी को अपनी निष्काम एवं निष्कपट सेवाओं से सन्तुष्ट करता हूँ। मैं सावधानी से इधर-उधर दौड़ कर अतिथियों की सेवा करता हूँ, साधु-सन्तों एवं पीड़ित व्यक्तियों के चरण प्रक्षालित करता हूँ।

मैं पत्रों का तत्काल उत्तर लिखता हूँ, एक-साथ कई काम करता हूँ। द्रुत गति से लेखन-कार्य सम्पादित करता हूँ। काफी दान देता हूँ, सब-कुछ व्यय कर देता हूँ, यहाँ तक कि अपने पास कुछ भी नहीं रखता हूँ। मैं गरीबों एवं अपने विद्यार्थियों को खिलाने-पिलाने में काफी आनन्द-लाभ करता हूँ और उनके मातृ-तुल्य बनने की कोशिश करता हूँ। मैं अपने अनुभवगम्य विषयों पर दूसरों से वार्तालाप करता हूँ, अपने-आपमें सर्वदा मनन, चिन्तन, विवेचन तथा परीक्षण करता हूँ। मैं दैनन्दिन सत्, तम, रज (सतोगुण, तमोगुण, रजोगुण) त्रिगुणों का आध्यात्मिक लेखा रखता हूँ और उन पर मनन तथा विचार भी करता हूँ।

मैंने अपने गुरुओं की ईमानदारी, प्रचण्ड विश्वास और निष्ठा से सेवा की, जीवन के बहुत ही मूल्यवान् पाठ सीखे, बहुत-सी सच्चाइयों का विकास किया, अपने परिव्राजक जीवन में बिना भोजन के अनेक यात्राएँ कीं, जाड़ों में सड़कों के किनारे वस्त्र-विहीन दशा में शयन किया, पानी में भिगो भिगो कर सूखी रोटियाँ खायीं, अपने नियमों व सिद्धान्तों पर दृढ़ और अडिग रहा। मैं ज्यादा वाद-विवाद नहीं करता और शान्त रहता हूँ। रुग्ण व्यक्तियों के स्वास्थ्य एवं शान्ति, मृतात्माओं और प्रेतात्माओं की शान्ति एवं कल्याण के लिए प्रार्थना एवं कीर्तन करता हूँ। वे लोग जो गंगा स्नान के लिए तरसते हैं, उन सबके नाम ले कर मैं गंगा में डुबकी लगाता हूँ, भजन-मन्दिर में सब विविध धर्मावलम्बियों के सन्तों एवं मुनियों के नाम का स्मरण करता हूँ।

मैं सर्वदा निम्नोक्त सूत्रों पर ध्यान देता हूँ :

"प्रज्ञानं ब्रह्म**,** अहं ब्रह्मास्मि**,** तत्त्वमसि**,** अयं आत्मा ब्रह्म**,** सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म**,** शान्तं शिवं अद्वैतम्**,** अहं आत्मा गुडाकेश**,** अहं आत्मा निराकारः सर्वव्यापी स्वभावतः**,** ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः**,** अकर्ता**,** अभोक्ता**,** असंग साक्षी**,** अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो**,** ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः ।**"**

गिरे हुओं को उठाना, अन्धों को मार्ग दिखाना, अपनी वस्तु में दूसरों को भी भागीदार बनाना तथा दुःखियों एवं पीड़ितों को सान्त्वना देना मेरा परम ध्येय है। भगवान् में पूर्ण विश्वास और अन्तरंग प्रेम रखना; पड़ोसियों के साथ अपने-जैसा बरताव और प्यार करना; गाय, बालक और त्रिया (स्त्री) की रक्षा करना मेरा परम लक्ष्य है। मेरा सांकेतिक शब्द 'प्रेम' है और सहज समाधि अवस्था मेरी परम सिद्धि है।

स्वामी शिवानन्द

विषय-सूची

प्रकाशक का वक्तव्य....3

अनुवादकीय....5

प्रार्थनाएँ....7

(१)....7

(२)....7

(३)....8

विश्व-प्रार्थना....9

शिवानन्द-साधना-शतकम्....10

प्रस्तावना....26

स्वामी शिवानन्द और जाग्रत भारत....31

शिवानन्द-गीता....38

अध्याय १: साधना के आधार स्तम्भ....58

१. साधना के बारह मूल-मन्त्र....58

२. साधना के तीन प्रमुख घटक....59

३. आध्यात्मिक साधना के लिए पूर्वापेक्ष्य-१....63

४. आध्यात्मिक साधना के लिए पूर्वापेक्ष्य-२....65

५. साधना के लिए कुछ आवश्यकीय बातें....67

६. साधना के मूल सिद्धान्त तथा विपरीत बुद्धि....68

७. अभ्यास : साधना का प्रथम पहलू....72

८. साधना में इन चार बातों का स्मरण रखिए....73

९. आध्यात्मिक साधना की मूल-भित्ति....73

१०. आध्यात्मिक साधना के कुछ पहलू....75

११. साधना तथा विशिष्ट मनोविज्ञान....85

१२. सांसारिक वातावरण में साधना का सुगम तरीका....86

१३. साधना के कुछ गुप्त रहस्य....87

१४. साधना का सारांश....88

अध्याय २:साधना की महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाएँ....90

१. साधना में वासना की गति....90

२. साधना में संयम का स्थान....92

३. साधना में दबाव तथा उसके परिणाम....94

४. साधना में त्रिविध अन्तर्गमन....97

५. साधना में धैर्य....98

६. साधना में संलग्नता....102
७. साधना के प्रवाह....104
८. साधना में उन्नति के चार क्रम....104
अध्याय ३:साधना के प्रकार....105
१. साधन-चतुष्टय....105
२. सरल साधना....108
३. महत्त्वपूर्ण साधना....110
४. अन्तरंग-साधना....111
५. सदाचार-साधना....112
६. मौन-साधना....113
७. ब्रह्मचर्य-साधना....119
८. अन्तर्मुख वृत्ति की साधना....120
९. सावधानी के द्वारा साधना....121
१०. आत्म-विश्लेषण की साधना....121
११. प्रतिपक्ष-भावना की साधना....122
१२. आध्यात्मिक दृष्टि की साधना....122
१३. विश्व-प्रेम के लिए अनुशासन....123
अध्याय ४:प्रस्थानत्रयी में साधना....125
१. ब्रह्मसूत्र में साधना....125
२. उपनिषदों की साधना....126
३. भगवद्गीता की साधना....132
अध्याय ५:महाकाव्यों तथा पुराणों में साधना....138
१. रामायण में साधना....138
२. महाभारत में साधना....138
३. भागवतपुराण में साधना....139
४. विष्णुपुराण में मुक्ति के लिए साधना....150
५. गरुड़पुराण में साधना....151
अध्याय ६ :योगवासिष्ठ की साधना तथा अन्य सम्प्रदायों की साधना....153
१. वीरशैव में साधना....153
२. शक्तियोग-साधना....153
३. काश्मीर शैव में साधना....154
४. पाशुपतयोग में साधना....155
५. योगवासिष्ठ की साधना....155

अध्याय ७ :शिवानन्द-सूत्र में साधना....158
१. शिवानन्द-उपदेशामृत की साधना....158
२. शिवानन्द-मनोविज्ञान-साधना-सूत्र....162
३. शिवानन्द-हठयोग-साधना-सूत्र....164
४. शिवानन्द-कर्मयोग-साधना-सूत्र....165
५. शिवानन्द-भक्ति-साधना-सूत्र....166
६. शिवानन्द-योग-साधना-सूत्र....167
७. शिवानन्द-वेदान्त-साधना-सूत्र....168
८. शिवानन्दवाद में सम्पूर्ण साधना....169
अध्याय ८ :सर्व-साधना-संग्रह....172
१. चार मुख्य साधनाओं के त्रिक्....172
२. स्वर-साधना....172
३. लययोग-साधना....176
४. प्रणव-साधना....179
५. सोऽहम्-साधना....181
६. विचार-साधना....182
७. ध्यानयोग-साधना....187
८. जपयोग-साधना....195
९. गायत्री-साधना....200
१०. मन्त्रयोग-साधना....204
११. संकीर्तन-साधना....210
१२. तन्त्रयोग-साधना....211
१३. शैव-साधना....212
१४. क्रियायोग-साधना....213
१५. संगीत-साधना....215
१६. प्रार्थना के द्वारा साधना....218
१७. समन्वययोग की साधना....221
अध्याय ९:साधना का महत्त्व....226
१. मानव-स्वभाव का अध्यात्मीकरण....226
२. जीवन का परम उद्देश्य....229
३. पूर्णता के लिए संग्राम....231
४. साधना की आवश्यकता....232
५. इन्द्रियों की बहिर्मुखी वृत्तियाँ तथा आत्म-संयम की आवश्यकता....234

६. साधना के लिए आवश्यक गुण......235
७. साधना- जीवन का मुख्य उद्देश्य......237
८. ब्राह्ममुहूर्त-साधना के लिए सर्वोत्तम समय......238
९. साधना-सम्बन्धी उपदेश......240
अध्याय १०:निम्न प्रकृति पर विजय-प्राप्ति के लिए साधना......242
१. मन पर विजय प्राप्त करने के लिए साधना......242
२. दशों इन्द्रियों के दमन के लिए साधना......246
३. वैराग्य-विकास के लिए साधना (१)......248
४. वैराग्य-विकास के लिए साधना (२)......248
५. अहंकार को दूर करने के लिए साधना......249
६. ईर्ष्या को दूर करने के लिए छह साधन......256
७. दर्प को दूर करने की साधना......259
८. द्वेष के दमन के लिए साधना......261
९. क्रोध के दमन के लिए साधना......261
१०. भय पर विजय पाने के लिए साधना......263
अध्याय ११ :विभिन्न सिद्धियों के लिए साधना......265
१. ईश्वर-साक्षात्कार के लिए चार साधनाएँ......265
२. आत्म-बल के लिए साधना......265
३. इन्द्रिय-दमन के लिए साधना (१)......267
४. इन्द्रिय-दमन के लिए साधना (२)......268
५. राग-द्वेष पर विजय प्राप्ति के लिए साधना (१)......269
६. राग-द्वेष पर विजय प्राप्ति के लिए साधना (२)......272
७. दुर्घटनाओं से मुक्ति के लिए साधना......273
८. सफलता, सम्पत्ति तथा ज्ञान के लिए साधना......274
९. शान्ति के लिए उन्नीस बातें......275
१०. छह महीने में समाधि-प्राप्ति के लिए साधना......278
११. कुण्डलिनी-जागरण के लिए साधना......279
१२. एकता-साक्षात्कार के लिए साधना......279
अध्याय १२:साधना में बाधाएँ......281
१. साधक का मन-मनोवैज्ञानिक अध्ययन......281
२. साधना तथा साधक......283
३. साधना में प्रलोभन......284
४. साधना में कठिनाई......284

५. साधना के मुख्य व्यवधान......285
अध्याय १३:कर्मयोग-साधना......288
१. सेवा आवश्यक है......288
२. कर्म को योग में परिणत किया जा सकता है......291
३. कर्मयोग-साधना के फल......292
अध्याय १४:भक्तियोग-साधना......295
१. भक्तियोग-साधना की रूपरेखा......295
२. भक्तियोग-साधना के कुछ पहलू......301
३. श्रद्धा, मुमुक्षुत्व तथा आत्मार्पण......303
४. भक्ति-साधना के नौ प्रकार......304
५. भक्तियोग-साधना के लिए आवश्यक......305
६. भक्ति-साधना में श्रद्धा का महत्त्व......306
७. सच्चे आत्मार्पण का स्वरूप......306
८. भक्तियोग के लिए प्रमुख साधना......307
९. भक्तियोग-साधना का सारांश......309
अध्याय १५:योग-साधना......311
१. योग-साधना : भूमिका......311
२. योग-साधना के आठ अंग......312
३. मानसिक शुद्धता : अनिवार्य......315
४. मन को रिक्त बनाने की राजयौगिक विधि......315
५. योग-साधना की आवश्यकता......316
६. योग-साधना का सारांश......318
७. योग-साधना की रूपरेखा......319
८. योग-साधना का अभ्यास......323
९. व्यावहारिक यौगिक उपदेश......325
१०. आन्तर यौगिक अनुशासन......329
११. योग-साधना-प्रश्नोत्तरी......337
१२. योग-साधना में मुख्य बाधाएँ......339
अध्याय १६:वेदान्तिक साधना......343
१. परिचय......343
२. ज्ञान-साधना के पहलू......344
३. सप्त-ज्ञान-भूमिका......345
४. वेदान्तिक साधना की विधि......346

५. वेदान्त-साधना की बाधाएँ....347
६. वेदान्तिक साधना के विषय में कुछ संकेत....348
७. वेदान्त-सूत्र....364
८. वेदान्त-साधना का सारांश....370
अध्याय १७:विभिन्न योगों में साधना के फल....373
१. योग की परिभाषा....373
२. चार योग....373
३. सम्पूर्ण विकास की आवश्यकता....374
४. विवादास्पद विषय का समाधान....374
५. राजयोग....375
६. हठयोग....377
७. भक्तियोग....377
८. ज्ञानयोग....377
९. जीवन्मुक्ति तथा विदेह-मुक्ति में भेद....378
१०. भक्त तथा ज्ञानी....378
११. ज्ञानी तथा राजयोगी....379
१२. हठयोगी तथा राजयोगी....379
१३. आन्तरिक मार्ग के लिए अनुशासन....379
अध्याय १८:व्यावहारिक साधना का पाठ्यक्रम....382
१. सगुण ध्यान-साधना के बारह पहलू....382
२. साधना का कार्यक्रम....383
३. व्यावहारिक साधना (१)....384
४. व्यावहारिक साधना (२)....390
५. दश दिन के लिए साधना....394
६. चालीस दिन के लिए साधना....394
७. शाश्वत साधना कैलेण्डर....395
८. शाश्वत आध्यात्मिक कैलेण्डर....398
९. दैनिक कार्य-तालिका....400
१०. बारह सद्गुणों के ऊपर दश-दश मिनट के लिए साधना....407
११. बीस महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक उपदेश....408
१२. साधना-तत्त्व अर्थात् सप्त-साधन-विद्या....410
१३. आध्यात्मिक दैनन्दिनी का महत्त्व....413
१४. शीघ्र आध्यात्मिक उन्नति के लिए संकल्प....419

१५. प्रतिज्ञा-पत्र या संकल्प-पत्र....420
१६. साधना में सफलता का रहस्य....421
१७. आदर्श गृहस्थ साधक....422
१८. साधना के लिए कुछ संकेत....423
१९. कबीर की साधना-विधि....426
अध्याय १९:साधना-सम्बन्धी प्रश्नोत्तरी....428
१. धर्म, साधु तथा योगी....428
२. साक्षात्कार के लिए पूर्वापेक्ष्य....429
३. मन्त्र जप का विज्ञान....430
४. जपयोग....434
५. साधना-सम्बन्धी समस्याएँ....435
६. हमारा लक्ष्य क्या हो ?....437
७. मानसिक शुद्धता के साधन....437
८. आत्म-साक्षात्कार की समस्याएँ....439
९. हठयोग....439
१०. आध्यात्मिक गुरु की आवश्यकता....442
११. श्रद्धा तथा भक्ति....444
१३. वेदान्त-सम्बन्धी प्रश्न....451
१४. राजयोग-सम्बन्धी प्रश्न....451
१५. योग तथा दिव्य जीवन....453
अध्याय २०:साधकों को आवश्यक उपदेश....455
१. साधकों का पथ-प्रदर्शन....455
२. संन्यासियों को उपदेश (१)....459
३. संन्यासियों को उपदेश (२)....464
४. पथ पर आलोक....466
५. साधक में माधुर्य....469
६. साधकों के लिए आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन....470
७. महान् सावधानी की आवश्यकता....472
८. आध्यात्मिक प्रेरणा....473
९. साधना और समाधि....475
१०. कुछ आध्यात्मिक 'निषेध'....477
११. साधना तथा गुरु (१)....477
१२. साधना तथा गुरु (२)....478

१३. पुराणों में पथ-प्रदर्शन..480
१४. श्री शंकराचार्य का साधना-पंचकम्...482
अध्याय २१:साधकों के लिए प्रेरणात्मक स्वाध्याय...484
१. भौतिक शरीर तथा दिव्य जीवन..484
२. दिव्य नाम का जप...484
३. मनुष्य तथा उसकी सीढ़ी..484
४. शान्ति, जीवन-लवण तथा संकीर्तन..484
५. ज्ञानी, सुख तथा शक्ति..485
६. जीवन, द्रवित हृदय तथा ईश्वरीय कृपा...485
७. मानवता, प्रेम तथा सज्जनता..486
८. शुद्धता, मुमुक्षुत्व तथा साक्षात्कार..486
९. साधना तथा शक्ति...487
१०. क्रोध, मन तथा आत्म-विजय...487
११. करुणा, सत्संग तथा विवेक...488
१२. सत्य, वेदान्त तथा मानव-कल्याण...488
१३. अन्तर सुख तथा ईश्वर की सर्वव्यापकता...489
१४. ईश्वर तथा उसका नाम...490
१५. शरीर तथा मानव-जन्म..490
१६. साधना के लिए मुख्य अवलम्ब...491
१७. योग की माँग तथा सांसारिक बुद्धि वाले मनुष्य...491
१८. जीवन में कठिनाइयाँ तथा साधुओं के सन्देश...492
१९. ईश्वर-चैतन्य तथा सच्चिदानन्द..492
२०. धैर्य, सन्तोष तथा ईश्वरीय ज्योति...493
२१. प्रेम तथा ईश्वर-साक्षात्कार का रहस्य..494
२२. ज्ञान तथा पूर्णता..495
२३. ईश्वर, उसका रूप तथा उसकी सत्ता...496
२४. उपमा तथा वरदान...498
२५. पार्थिव जीवन तथा मुक्त ज्ञानी...498
२६. आत्म-संयम तथा ब्रह्मज्ञान...499
२७. सद्गुण तथा भक्ति..499
२८. जप तथा उपनिषद् के स्वाध्याय का फल...500
२९. वैराग्य, अभ्यास तथा ध्यान..501
३०. अज्ञान तथा काम..502

३१. दिव्य सौन्दर्य के प्रतिनिधि........503
३२. शुद्धता का मार्ग........503
३३. ज्ञानी तथा समदृष्टि........504
३४. विचार तथा मधुर आचरण........504
३५. प्रसन्नता तथा ईश्वर से एकता........505
३६. मनुष्य अपनी परिस्थितियों का निर्माता........505
३७. योग- धार्मिक अनुभव की पराकाष्ठा........506
३८. कामना का मूल तथा ब्रह्म-साक्षात्कार........506
३९. सदाचार तथा मार्ग की बाधाएँ........507
४०. व्यापक ब्रह्म तथा सूक्ष्म शरीर........507
४१. वेदान्त-ज्ञान का मार्ग........508
४२. श्रद्धा तथा भगवत्प्रेम........508
४३. आन्तरिक ज्योति तथा सच्चा ज्ञानी........509
४४. धर्म की परिभाषा तथा ईश्वर-परायण जीवन........509
४५. आध्यात्मिक उन्नति की बाधाएँ तथा कष्ट का महत्त्व........510
४६. जगत्, मन तथा प्रार्थना........511
४७. ईश्वर-चैतन्य के गुण........512
४८. अविवेक, क्रोध तथा हृदय की भावना........513
४९. साधुता तथा हृदय की कोमलता........513
५०. कला, जीवन तथा भक्ति........514
५१. ईश्वर का बौद्धिक ज्ञान........515
५२. अमृतत्व की खोज........516
५३. गौरांग तथा नाम का चमत्कार........517
५४. नैतिक जीवन तथा आवेगों का दमन........517
५५. आदर्श........518
५६. धर्म तथा प्रेम की महिमा........519
५७. आत्म-संयम के घटक........520
५८. मौन, इसका अर्थ तथा इसका स्थान........520
५९. मध्यम मार्ग........520
६०. उन्नतिशील जीवन........521
६१. कल्याण-पथ........521
६२. श्री शंकराचार्य का मानसिक पूजा-श्लोक........523
६३. ध्यान के लिए अवधूतगीता के कुछ महत्त्वपूर्ण श्लोक........523

६४. विजयी जीवन........523
६५. आत्मवृक्ष, साधना तथा समाधि........524
अध्याय २२:साधना-गीत........525
१. साधना-गीत........525
२. साधना का सारांश........525
३. आध्यात्मिक उपदेश........529
४. सच्ची साधना........529
५. उपदेश........530
६. साधना-सप्ताह के लिए संगीत........530
७. साधक का गीत........532
८. साधना........533
अध्याय २३ :साधकों के कुछ अनुभव........535
१. साधना का उद्देश्य........535
२. साधकों के अनुभव........537
३. सामूहिक साधना........540
४. साधकों को उपदेश........541
अध्याय २४:शिवानन्द-साधना-सप्तशती........545
१. दिव्य जीवन के आधार........545
२. अनासक्ति के लिए अनुशासन........545
३. योग-साधना का अभ्यास........546
४. साधना का सर्वोत्तम रूप........546
५. साधकों के लिए योग्यताएँ........547
६. इन्द्रिय-संयम तथा आत्म-शुद्धि........549
७. साधना में बाधाएँ........550
८. अहंकार-जन्म-मृत्यु का बीज........552
१०. तीन प्रधान शत्रु........554
११. स्वार्थ- महापातक........558
१२. व्यावहारिक साधना के मुख्य सिद्धान्त........559
१३. आन्तर आध्यात्मिक अनुशासन........560
१४. ज्ञानयोग की साधना........560
१५. पथ पर आलोक........565
१६. विशेष आध्यात्मिक उपदेश........566
१७. निवृत्ति-साधना........571

१८. योग-साधना का विज्ञान.....573
१९. पुरुषार्थ तथा भाग्य.....573
२०. ब्रह्मचर्य - सारी साधनाओं का आधार.....574
२१. भलाई, शुद्धता तथा ज्ञान.....576
२२. दान-साधना का एक रूप.....577
२३. कष्ट सफलता का सोपान.....578
२४. साधना तथा आत्म-साक्षात्कार.....579
२५. आध्यात्मिक जीवन के लिए आवश्यक.....580
२६. आध्यात्मिक साधना की महत्ता.....581
२९. प्रलोभनों पर विजय पाइए.....586
३०. ध्यान कीजिए और आत्म-साक्षात्कार कीजिए.....588
३१. आदर्श साधक.....589
३२. साधना पर आलोक (क).....590
३३. साधना पर आलोक (ख).....592
३४. साधना पर आलोक (ग).....593
३५. साधकों को सलाह.....594
३६. आत्म-साक्षात्कार.....596
३७. कैवल्य का मार्ग (क).....597
३८. कैवल्य का मार्ग (ख).....598
३९. मार्ग में उन्नति.....600
४०. साधना-जीवन का एकमेव उद्देश्य.....601
४१. साधना तथा ध्यान.....602
४२. ब्रह्म-चैतन्य.....604
४३. परम श्रेय की कुंजी.....606
४४. साधना तथा कुछ अनुभव.....608

ॐ श्री सद्गुरुपरमात्मने नमः

साधना

असतो मा सद्गमय ।

मृत्योर्मा अमृतं गमय ।।

तमसो मा ज्योतिर्गमय ।

अध्याय १: साधना के आधार स्तम्भ

१. साधना के बारह मूल-मन्त्र

(भाव के साथ इनका सतत स्मरण करना चाहिए।)

१. ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या ।

एकमेव ब्रह्म ही सत्य है। जगत् असत्य है।
(इससे आपमें आध्यात्मिक बल एवं शान्ति का संचार होगा।)

२. जगत् दीर्घ स्वप्न है तथा केवल दुःखों से पूर्ण है।

(इससे वैराग्य होगा तथा बहुत-सी चिन्ताएँ दूर हो जायेंगी।)

३. यह भी गुजर जायेगा।

(इससे वैराग्य बढ़ेगा। 'यह' के अन्दर सौभाग्य (सम्पत्ति) तथा दुर्भाग्य (विपत्ति) दोनों ही सम्मिलित हैं। आप सुख तथा दुःख में मन के समत्व को बनाये रख सकेंगे।)

४. तेरी ही इच्छा पूर्ण होगी।

(यह सारे शोकों एवं दुःखों को दूर करेगा तथा अहंकार को विनष्ट करेगा।)

५. ईश्वर की कृपा से मैं दिन-प्रति-दिन हर प्रकार से अच्छा बनता जा रहा हूँ।

(इससे शक्ति मिलेगी तथा बहुत से रोग दूर हो जायेंगे।)

६. अहं ब्रह्मास्मि, शिवोऽहम् शिवोऽहम्। मैं शरीर नहीं हूँ। मैं मन नहीं हूँ। मैं आत्मा हूँ।

(यह तत्काल की आपको आध्यात्मिक ऊँचाइयों की ओर उन्नत करेगा- आत्म-महिमा के सर्वोपरि शिखर पर आरोहित करेगा।)

७. मैं उसकी सत्ता का भान कर रहा हूँ।

(यह शीघ्र ही बल तथा प्रेरणा प्रदान करेगा।)

८. सब एक ही है। सब ईश्वर अथवा आत्मा ही है। सारे शरीर मेरे हैं। सब मैं ही हूँ।

(यह विश्वात्म-चेतना एकात्मता तथा एकता की भावना उत्पन्न करेगा और कारुण्य-भाव को प्रोत्साहित करेगा। आप घृणा के भाव को दूर कर सकेंगे।)

९. में कुछ भी नहीं हूँ, मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं कुछ भी नहीं कर सकता।

(यह अहंकार तथा ममता को दूर कर ईश्वरार्पण, आत्म-निवेदन अथवा शरणागति प्रदान करेगा। यह भक्त का तरीका है।)

१०. मैं सब हूँ। मैं सर्वोपरि हूँ। मैं सबसे एक हूँ।

(यह वेदान्त का तरीका है। इससे आपका हृदय विकसित होगा; एकता की वृद्धि होगी।

११. तू सब-कुछ है। मैं तेरा हूँ। सब तेरा ही है।

(यह भक्त का तरीका है। ममता तथा अहंता विलुप्त हो जायेंगी। इससे आत्मार्पण तथा ईश्वर-साक्षात्कार की प्राप्ति होगी।)

१२. अहं ब्रह्मास्मि, प्रज्ञानं ब्रह्म, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म।

(यदि आप इनमें से किसी एक को भी सदा याद रखेंगे, तो आपको ब्राह्मी चैतन्य बनाये रखने में सहायता मिलेगी।)

नोट : अपने घर की दीवालों पर कई स्थानों पर उपर्युक्त आप्त-वाक्यों को बड़े-बड़े अक्षरों में लिखवा लीजिए। आपके भूल जाने पर भी वे आपको याद दिला देंगे।

२. साधना के तीन प्रमुख घटक

धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रन्थों के प्रचुर परिशीलन के पश्चात् भी बहुत से लोग यह नहीं जानते कि व्यवहार में क्या लाना चाहिए जिससे जीवन के लक्ष्य-ईश्वर-साक्षात्कार की प्राप्ति हो। ईश्वर साक्षात्कार के लिए तीन बातें आवश्यक हैं: (१) ईश्वर का सतत स्मरण, (२) सद्‌गुणों का अर्जन तथा (३) सारे कार्यों का अध्यात्मीकरण।

(१) ईश्वर का सतत स्मरण**:** प्रारम्भ में कुछ त्रुटि होगी; परन्तु बारम्बार के अभ्यास से आप शनैः शनैः सतत स्मरण बनाये रख सकेंगे। अधिकांश लोगों के लिए सतत स्मरण ही सम्भव है। कुण्डलिनी का जागरण तथा ब्रह्माकार-वृत्ति की प्राप्ति बहुत ही कठिन है; परन्तु मन के शुद्ध हो जाने पर उनकी प्राप्ति स्वतः ही हो जाती है।

(२) सद्‌गुणों का अर्जन **:** सारे सद्‌गुणों में अहिंसा, सत्य तथा ब्रह्मचर्य सर्वोपरि हैं। यदि आप एक सद्‌गुण में भी सुप्रतिष्ठित हैं, तो अन्य सारे सद्‌गुण स्वतः ही आपके पास आ जायेंगे। वृत्तियों का निरीक्षण कीजिए। अन्तर्निरीक्षण कीजिए। मन, वाणी तथा कर्म से शुद्ध बनिए। प्रारम्भ में कम-से-कम शारीरिक ब्रह्मचर्य का पालन कीजिए। मानसिक ब्रह्मचर्य की प्राप्ति तब स्वतः ही हो जायेगी।

(३) सारे कार्यों का अध्यात्मीकरण**:** मान लीजिए कि आप ईश्वर के हाथों में निमित्त मात्र हैं तथा सारी इन्द्रियाँ उसकी ही हैं। इस मन्त्र का जप कीजिए: "मैं तेरा हूँ, सब तेरा है, तेरी ही इच्छा पूर्ण होगी।" यह आत्मार्पण के लिए सुन्दर मन्त्र है। हो सकता है कि आप इस मन्त्र को भूल जायें। अहंकार अपना प्रभाव जमाना चाहेगा; परन्तु बारम्बार के अन्तर्निरीक्षण के द्वारा अपने दोषों को ढूंढ़ निकालिए। इस भाव में स्थित होने का प्रयास कीजिए : "मैं ईश्वर के हाथों में एक यन्त्र हूँ।" गीता के इस श्लोक को याद रखिए।

आत्मार्पण

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।। (गीता : ९/२७)

- जो-कुछ भी कर्म तुम करते हो, जो खाते हो, जो हवन करते हो, जो कुछ दान देते हो और जो तपस्या करते हो, उसे ईश्वरार्पण के रूप में ही करो।

"प्रसीद देवेश जगन्निवास**-** हे देवाधिदेव! जगत् के आश्रय प्रसन्न होइए।" यह मन्त्र **'**प्रचोदयात्**'** से भी अधिक अथवा उसके समान ही प्रभावशाली है। **'**प्रचोदयात्**', '**पाहि माम्**', '**पालय माम्' - ये सभी मन्त्र अत्यन्त प्रभावशाली हैं। भाव एवं अर्थ के साथ इनका बारम्बार स्मरण कीजिए।

'श्री रामः शरणं मम', 'श्री कृष्णः शरणं मम', 'हरिः शरणं मम'- ये सभी शक्तिशाली शरणागति-मन्त्र हैं। ईश्वर के प्रति आत्मार्पण करना अथवा ईश्वर की शरण में जाना शरणागति है।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।।
(गीता: २/७)

(मेरा हृदय कायरता के दोष के वशीभूत हो चला है, मेरा मन कर्तव्य के विषय में भ्रमित है। मैं आपसे पूछता हूँ। आप निश्चयपूर्वक बतलाइए कि मेरे लिए क्या श्रेय है। मैं आपका शिष्य हैं। मुझे उपदेश दीजिए। मैं आपकी शरण में हैं।) यह सदगुर शरणागति-मन्त्र है।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्या सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।। (गीता : १८/६६) (सारे धर्मों का परित्याग कर तू एक मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सारे पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक न कर।)

ये सभी शरणागति के मन्त्र हैं। गीता के अठारहवें अध्याय में यह श्लोक है।

निमित्त भाव

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।

हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ।।
(गीता : १८/१७)

(जिसमें अहंकार नहीं है, जिसकी बुद्धि शुभाशुभ से लिप्त नहीं है, वह पुरुष यदि सारे जगत् को भी मार दे तो भी वह न तो वास्तव में किसी को मारता ही है और न कर्म के बन्धन में ही पड़ता है।) इसे श्रीकृष्ण ने अर्जुन से उस समय कहा था जब वह संग्राम से कातर हो कर अपने क्षात्र धर्म को भूल चला था।

इन श्लोकों को याद रखिए। आपमें शरणागति की भावना बढ़ेगी। आप अनुभव करेंगे कि ईश्वर आपमें है और आप ईश्वर में हैं।

दिन-भर कार्य करने के उपरान्त सारे किये हुए कार्यों को ईश्वर को अर्पित कर डालिए। कर्मों के साथ अपना तादात्म्य सम्बन्ध न जोड़िए। ऐसा अनुभव कीजिए कि ईश्वर के हाथों में निमित्त मात्र हो कर अनासक्त भाव से आप काम कर रहे हैं।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्यात्मना वा प्रकृतेः स्वभावात् ।
करोमि यद्यत् सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयामि ।।

सारे कर्मों तथा उनके फलों को ईश्वर को अर्पित कर डालिए; तब आप बन्धन में नहीं पड़ेंगे। इस प्रकार आपको अपने समस्त कर्मों का अध्यात्मीकरण कर डालना चाहिए। अनुभव कीजिए कि अखिल संसार ईश्वर की अभिव्यक्ति है तथा आप सभी नाम-रूपों में ईश्वर की ही सेवा कर रहे हैं तथा जो कुछ भी कर्म आप करें, उन्हें तथा उनके फल को ईश्वर को अर्पित कर डालिए, तब आपका हृदय शुद्ध हो जायेगा और ईश्वरीय ज्योति तथा कृपा के अनुकूल हो जायेगा।

सुनिश्चित मार्ग

अतः इन तीनों का अभ्यास कीजिए-ईश्वर का सतत स्मरण कर, अपने कार्यों का अध्यात्मीकरण तथा सद्गुणों का अर्जन।

ये तीनों बहुत ही आवश्यक हैं। इनका अभ्यास कीजिए। ईश्वर-साक्षात्कार के लिए यही सबसे सुगम तथा सुनिश्चित मार्ग है।

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोऽऽत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वक्रयया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ।।
(कठ : १/३/१२)

(यह आत्मा सभी भूतों में छिपा हुआ है; परन्तु सूक्ष्मदर्शियों को ही सूक्ष्म एवं तीक्ष्ण बुद्धि से इसका दर्शन प्राप्त होता है।)

ब्रह्मसूत्रों को समझने के लिए आपकी बुद्धि छुरे की धार के समान तीव्र होनी चाहिए, तभी आप उन्हें ठीक-ठीक समझ सकते हैं; किन्तु सभी इसके लिए उपयुक्त नहीं होते। फिर भी व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करना आवश्यक है। अतः

अधिकांश जनता के लिए तो भगवान् का सतत स्मरण अपने सारे कार्यों का अध्यात्मीकरण तथा अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य जैसे सद्गुणों का अर्जन यही साधना का महत्त्वपूर्ण भाग है। भगवान् बुद्ध का अष्टांग मार्ग भी इसमें सन्निहित है। प्रभु यीशु के 'पर्वत पर के उपदेश' भी इनसे मिलते-जुलते हैं। सारे धर्मों में ये ही सार-तत्त्व हैं। अतः कृपया इनका अभ्यास कर ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त कीजिए। सभी से प्रेम कीजिए। भला बनिए। भले कर्म कीजिए। भगवान् आप सभी पर कृपा करें!

३. आध्यात्मिक साधना के लिए पूर्वापेक्ष्य-१

मैं यहाँ उन मुख्य गुणों की चर्चा करूँगा जो कि वास्तविक साधना के लिए आवश्यक हैं। प्राचीन काल से ही आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त सन्त, ऋषि तथा भक्त जन यह घोषणा करते आ रहे हैं कि यदि मनुष्य पाप-पंकिल-मय विषय जीवन से मुख मोड़ ले और उन्नत दिव्य जीवन के लिए प्रयत्नशील हो तो वह महान् सुख, अपार शक्ति तथा असीम ज्ञान का अनुभव कर सकता है। फिर भी आज हम देखते हैं कि मनुष्य सांसारिकता में यदि अधिक नहीं तो उतना ही निमग्न है जितना कि वह शताब्दियों पूर्व था तथा मानव-जाति आत्मिक जीवन के प्रश्नों के प्रति उतनी ही उदासीन तथा आलसी है जितनी कि वह सृष्टि के प्रारम्भ में थी। बहुत से महर्षियों की घोषणाओं, सत् शास्त्रों के विश्वसनीय आश्वासनों तथा मनुष्य के बारम्बार ऐहिक विषय-सुख के मिथ्यात्व-सम्बन्धी अनुभवों के होते हुए भी आप बारम्बार धोखे में पड़ रहे हैं; ऐसा क्यों? मनुष्य ने साधना-पथ पर अभी तक चलना सीखा नहीं; ऐसा क्यों? हम सैकड़ों आध्यात्मिक पुस्तकें पढ़ते हैं, हम प्रवचनों को सुनते हैं तथा साधना-सप्ताह में सम्मेलन भी बुलाते हैं। वर्षों तक आध्यात्मिक ग्रन्थों के गम्भीर अनुशीलन, साधुओं की संगति तथा बारम्बार उपदेश-श्रवण के अनन्तर भी मनुष्य रचनात्मक रूप से कुछ करता नहीं; क्योंकि उसमें साधुओं के उपदेशों तथा धर्मग्रन्थों के प्रति गम्भीर तथा स्थायी श्रद्धा नहीं है। बाह्य पदार्थों में उसकी श्रद्धा उसके लिए अधिक सत्य है। यदि मनुष्य को इन महापुरुषों में श्रद्धा होती, तो वह उनके कथनानुसार चलने के लिए अवश्य बाध्य होता। श्रद्धा का अभाव ही साधना में विफलता का मूल कारण है। साधना आवश्यक है; किन्तु मनुष्य इसे करता नहीं, क्योंकि इसकी आवश्यकता में उसे विश्वास नहीं है। मनुष्य को इसमें विश्वास है कि उसके सुख के लिए उसे धन की आवश्यकता है। मनुष्य को विश्वास है कि यदि उसे अच्छी नौकरी मिल जाये, तो उसे धन प्राप्त होगा। उसे विश्वास है कि यदि उसे कालेज-शिक्षा प्राप्त हो, तो उसे अच्छी नौकरी मिल सकती है और उससे धन और धन से उसके इच्छानुसार सुख की प्राप्ति हो सकती है। इस पर विश्वास कर माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल भेजते हैं तथा शैशवावस्था से ही उस बच्चे में यह विश्वास जमाया जाता है कि यदि वह अच्छे अंकों से परीक्षा में उत्तीर्ण होगा तो उसे अच्छी नौकरी मिलेगी और उसे अच्छा वेतन, मोटर कार इत्यादि प्राप्त होंगे। वह इन बातों में विश्वास करता है और परीक्षा पास कर आशातीत नौकरी प्राप्त करता है। क्योंकि उसमें विश्वास था, उसने इनकी आवश्यकताओं को समझ लिया था; अतः वह इन्हें प्राप्त कर लेता है। परन्तु सभी मनुष्यों का यह दुःखद अनुभव है कि यह सुख दशगुने दुःख से मिश्रित है। मनुष्य एक आना सुख प्राप्त करता है और उसके साथ-साथ उसे पन्दरह आना दुःख भी मिला होता है, जब कि दुःख के लिए तो उसने कोई कामना ही नहीं की थी। अतः यदि मनुष्य को साधना के कार्यक्रम में विश्वास हो तो वह अवश्य तद्नुकूल कार्य करेगा। इस विश्वास के अभाव में ही वह साधना नहीं करता। यदि मनुष्य को साधना-मार्ग का अवलम्बन करना है, यदि वास्तव में ही वह उस सुख को चाहता है जो दुःखों से मिश्रित न हो, तो उसे निश्चय ही श्रद्धा पर आश्रित होना होगा। इसे अन्धविश्वास भी कह सकते हैं; परन्तु अन्धविश्वास नामक कोई वस्तु है ही नहीं, क्योंकि इस पृथ्वी की सभी वस्तुएँ विश्वास-पारस्परिक श्रद्धा पर ही अवलम्बित हैं।

यदि आज मनुष्य जी रहा है तो केवल पारस्परिक विश्वास एवं श्रद्धा के कारण ही। दश रुपये का नोट कागज का एक टुकड़ा ही तो है; परन्तु चूँकि उस पर राजा के शिर की छाप है, इससे आप बाजार से जो चाहे खरीद सकते हैं। आपको इस कागजी टुकड़े में विश्वास है। यदि आपको इस टुकड़े में विश्वास न होता, तो आप घर से बाजार के लिए निकलते

ही नहीं और न कभी आप अपने उद्देश्य की पूर्ति में ही समर्थ होते। डाक्टर आपको कागज के एक टुकड़े पर औषधि लिख कर देता है। यदि आपको विश्वास न हो, तो आप उससे यह टुकड़ा लेंगे ही नहीं; परन्तु श्रद्धा के कारण-जिस पर सारा समाज टिका है- आप उसकी बातों में विश्वास करते हैं, उसके परामर्श के लिए उसे रुपये देते हैं, उस कागज को औषधि-विक्रेता के पास ले जाते हैं तथा औषधि खरीद कर रोग-मुक्त बनते हैं। यह सारा सामाजिक विधान श्रद्धा एवं विश्वास के ऊपर ही चलता है। यदि आप गतिशील मानव जाति पर श्रद्धा रखने को तैयार हैं, तो इन वस्तुओं के स्रष्टा भगवान् के प्रति श्रद्धा रखने में झिझक क्यों? ऋषियों की वाणी पर श्रद्धा रख कर तथा साधना की आवश्यकता समझ कर तदनन्तर क्या करना चाहिए? आपमें श्रद्धा हो सकती है, आपके सहस्रों हितैषी बहुत अच्छी-अच्छी सम्मतियाँ आपको दें और आपको उन पर पूर्ण विश्वास भी हो; परन्तु यदि आप उन्हें अभ्यास में न लायें तो वे योजना मात्र ही रह जायेंगी। अतः साधना में श्रद्धा के उपरान्त अभ्यास की बारी आती है। आपको अभ्यास में लग जाना होगा। केवल श्रद्धा ही पर्याप्त नहीं। श्रद्धा को कार्य रूप में परिणत करना होगा। सन्तों की बात में विश्वास रख कर आप साधना प्रारम्भ कर दें। एक बार साधना प्रारम्भकर लेने के पश्चात् दूसरी मुख्य बात ध्यान देने योग्य यह है कि आप उसे फिर त्याग न दें। संलग्नता बहुत ही आवश्यक है। संसार के समस्त विधान क्रमिक हैं। उनमें अवस्थाएँ हैं। कृषि क्रमिक है। इसमें बारह महीने लग जाते हैं। आपको बोना है, खेत की सिंचाई करनी है, मोथों को उखाड़ फेंकना है तथा समय आने पर फसल काटनी है। यदि आप अधीर हैं- आप बीज बो दें और अंकुरित होते ही आप उसे भूमि से निकाल लें, तो वह विनष्ट हो जायेगा। यदि आपको फसल प्राप्त करनी है, तो धैर्य के साथ उसकी सारी अवस्थाओं से गुजरना होगा। कोई व्यक्ति कुएँ से पानी खींचते समय यदि अचानक रस्सी खींचना बन्द कर दे, तो पानी का वह पात्र पहिए के सहारे पुनः कुएँ में जा गिरेगा। उसे तब तक खींचते जाना चाहिए, जब तक कि पात्र ऊपर न आ जाये। तब तक संलग्न रहिए, जब तक कि फल प्राप्त न हो जाये। आपको उसे त्यागना नहीं चाहिए। दूसरी प्रमुख बात यह है कि आध्यात्मिक साधना में केवल सहायक शक्तियाँ ही काम करतीं। बहुत-सी विरोधी शक्तियाँ भी हैं जो साधक पर आक्रमण कर उसे नीचे घसीट लाती है। अतः चौद आवश्यक अख धुति की बारी आती है। संलग्न रहते हुए मनुष्य को इतना तो साहस रखना ही चाहिए कि वह बाधाओं से सुगमतया न डिगे। उसे तूफानों का सामना करना पड़ेगा तथा विपरीत परिस्थितियों एवं कठिनाइयों से लड़ते हुए साधना के मार्ग पर अविचल रहना होगा। धृति के सहारे वह हतोत्साह नहीं होता तथा अन्तरात्मा पर आश्रित हो कर साधना में अग्रसर होता है और अन्ततः वह उस आदर्श को प्राप्त कर लेता है जिसके लिए इस जगत् में उसका जन्म हुआ है। इस प्रक्रिया से गुजरते हुए उसे इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिए कि वह मार्ग की छोटी-छोटी बातों पर भी विशेष ध्यान रखे, उनकी अवहेलना न करे। यदि ऐसा समझ कर कि यह तो निरर्थक है, कोई भी छोटी बात छूट गयी, तो उसे अन्त में पता चलेगा कि उसने व्यर्थ में ही अपना बहुमूल्य समय तथा श्रम गँवाया है। इससे उन्नति में विलम्ब होता है। उच्च आदशों की प्राप्ति में छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देना अत्यावश्यक है; क्योंकि उन्हीं के संग्रह से ही उच्च आदर्श की प्राप्ति होती है। अतः दृढ़ श्रद्धा, व्यावहारिक साधना, संलग्नता, छोटी-छोटी बातों के प्रति सावधानी तथा परीक्षण में धृति रखते हुए आपको साधना-मार्ग पर पग रखना चाहिए।

४. आध्यात्मिक साधना के लिए पूर्वापेक्ष्य-२

किसी भी प्रश्न पर विचार करते समय उसके विभिन्न पहलुओं पर भी विचार कर लेना आवश्यक होता है जिससे कि उसे पूर्ण रूप से समझा जा सके। साधारणतः कुछ पहलुओं पर तो विशेष जोर डाला जाता है; परन्तु अन्य को यों ही छोड़ दिया जाता है। यह व्यक्ति की अपनी-अपनी रुचि पर निर्भर करता है। ऋषियों ने मानव-जीवन के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें बतलायी हैं- यह जीवन किससे निर्मित है, यह क्योंकर क्षणभंगुर है। इसका लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार अथवा भगवद्-दर्शन है। इसके लिए विभिन्न साधन- जैसे कि भगवन्नाम का जप आदि- बतलाये गये हैं। महर्षि पतंजलि ने यम, नियम आदि के अभ्यास को बतलाया है। अमृतत्व के प्रासाद के निर्माण हेतु हमें यम-नियम की दीवारें खड़ी करनी पड़ेंगी तथा शम-दम के दरवाजे और खिड़कियाँ बनानी पड़ेंगी। यहाँ कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसे आप

अपनी कह सकें। सर्वत्र ही जीवन क्षणभंगुर है, सर्वत्र ही अनित्यता है। ये सभी विषय की समस्या के पहलू हैं। इसके समाधान का भी पहलू है। समाधान का सिद्धान्त एक उप-पहलू है तथा समाधान का अभ्यास उसका दूसरा उप-पहलू है। जीवन पर विचार करते समय हम जीवन की समस्या-शोक, दुःख, क्लेश, इनसे कैसे छुटकारा पाया जाये आदि प्रश्नों को रखते हैं, फिर उसके समाधान पर विचार करते हैं- सत्संग, भगवन्नाम का जप, शम, दम तथा धर्म के विषय का प्रतिपादन करते हैं। समाधान के पहलू में समाधान के सिद्धान्त का अपना स्थान है; किन्तु साधक एवं सच्चे जिज्ञासु होने के नाते आप सभी साधना के पहलू को अन्य बातों की अपेक्षा विशेष पसन्द करेंगे। दो पहलू हैं। एक पुस्तक कहती है कि यदि आप अमुक औषधि लें तो आपका रोग दूर हो जायेगा। यह ठीक इसी प्रकार का कथन है जैसा कि 'जप तथा उपासना से विक्षेप को दूर किया जा सकता है।' परन्तु एक दूसरी पुस्तक है, वह कहती है कि यदि आपको यह रोग है तो इस औषधि को इतने तोले खरीद लायें, इस ढंग से उसका शोधन करें, इस अनुपात में उसे मिलायें, उसे गरम करें, इतने समय तक उसे भट्ठी पर छोड़ दीजिए, इन-इन वस्तुओं को उसमें मिला दीजिए। इस विस्तृत प्रक्रिया को पढ़ कर कोई भी मनुष्य उस औषधि का निर्माण आसानी से कर सकता है। केवल औषधि बतला देना और उसे विस्तृत रूप से समझा देना- दोनों में अन्तर है।

सच्चे साधकों के लिए व्यावहारिक पहलू ही सबसे मुख्य है। अब हम आपको दो-एक बातें इस सम्बन्ध में बतलायेंगे। जब आप साधना करना प्रारम्भ कर देते हैं, तब आपके सामने कई कठिनाइयाँ आ खड़ी होती हैं। साधकों को बाहरी शक्तियों की अपेक्षा आन्तरिक शक्तियों का ही अधिक सामना करना पड़ता है। रोगों के मामले में हम देखते हैं कि कुछ बाह्य परिस्थितियाँ कई बीमारियाँ उत्पन्न करती हैं। उन परिस्थितियों को दूर कर देने से ही वह बीमारी दूर हो जाती है। परन्तु यहाँ तो अधिकांश शक्तियाँ, जिनका आपको विरोध करना है, मानसिक ही हैं। अतः आपको अपने मन के एक भाग को इस तरह प्रशिक्षित करना होगा कि आपके आध्यात्मिक साधना, जप आदि में संलग्न रहते समय भी वह सावधानीपूर्वक निरन्तर पहरा देता रहे। ज्यों ही कोई बुरा विचार या कोई बुरी शक्ति आपके मानसिक क्षेत्र में प्रवेश करना चाहे, त्यों-ही आपका यह संरक्षक उसे तुरन्त ही मार डाले। इसके लिए अनवरत साधना तथा अभ्यास की आवश्यकता है। मन इतना बुरा है कि जब-जब आप उसे किसी विशेष दिशा में ले जाना चाहेंगे, तब-तब उसके बुरे संस्कार आपको बाधा पहुचायेंगे; अतः हमें बड़ी उग्रतापूर्वक उसका दमन करना चाहिए। हमें अपने मानसिक संरक्षक को तैयार रखना चाहिए जिससे कि कोई विरोधी शक्ति प्रवेश न कर पाये। मानसिक संरक्षक के रहने पर साधना में बड़ी सुविधा होती है। यह गहरे जल से हो कर गुजरने के समान है। साधक का जहाज शत्रुओं के समुद्र से हो कर गुजरता है जिसके तल में विरोधी शक्तियाँ काम कर रही हैं। विश्व युद्ध के समय में समुद्र तल पर चलने वाले जहाजों को शत्रु-पक्षी जल के अन्दर चुम्बकीय पदार्थों के सहारे डुबा देते थे; परन्तु चुम्बकीय आकर्षण से बचने के लिए जहाज को चुम्बक-विसंवाहक बना दिया जाता था जिससे कि वे चुम्बक की ओर आकृष्ट न हों। ठीक उसी प्रकार साधकों को भी अपने मन को विषय-पदार्थों के आकर्षणों से विसंवाहक बना डालना होगा। मुमुक्षुत्व तथा ईश्वर में श्रद्धा-ये दोनों विसंवाहक का काम करेंगे। जब आपकी दृष्टि ऊँची नहीं है, जब आप विषय-सुखों के स्तर पर ही हैं, तभी आप विषय-पदार्थों की ओर आकृष्ट हो जाते हैं और ये विषय-पदार्थ आपकी प्रगति को नष्ट कर डालते हैं। अतः मन को इनकी ओर से विसंवाहक बना लेने के पश्चात् आपको दूसरी बात पर ध्यान रखना है। हमें उस आदर्श को अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य बना लेना चाहिए। साधक को बहुत-सी वस्तुओं में दिलचस्पी हो सकती है जैसे कि पारिवारिक परिस्थितियाँ, समाज, वातावरण आदि। परन्तु जिस प्रकार सैनिक गण पहले से ही अपनी तोपों के मुख लक्ष्य की ओर करके उन्हें आगे से चलाते हैं, उसी प्रकार साधक को भी उस आदर्श की ओर ही लक्ष्य रखना होगा। हर स्थिति में साधक को मोक्ष को ही अपना लक्ष्य बनाये रखना होगा। यह विचार इतना गहरा जम जाना चाहिए कि अनेकानेक बाधाएँ भी उसे लक्ष्य से डिगा न सकें। राग-द्वेष से तरंगायमान जगत् में काम करते हुए भी इस बात पर ध्यान रखिए कि आपके अन्दर एक शक्ति बराबर काम करती रहे, जिससे आपकी आन्तरिक अवस्था दिव्य, समत्वपूर्ण तथा आध्यात्मिक बनी रहे। कर्म होते रहेंगे, शक्तियाँ आप पर आघात प्रतिघात करेंगी; परन्तु आपको ऐसी कला जाननी होगी जिससे आप पर उनका कोई प्रभाव न हो। जब मनुष्य बाह्य शक्तियों की ओर प्रतिक्रिया करता है, तभी वह विफल होता है जिसके

परिणाम स्वरूप उसे कष्ट उठाने पड़ते हैं। आपके अन्दर मशीनगन की तीव्रता है। पल-भर में ही अनेकानेक गोले छूट पड़ते हैं तथा बैरेल अधिकाधिक परितप्त हो जाता है। राग, द्वेष, क्रोध तथा लोभ के सम्पर्क में आने पर हमें यह देखना है कि संघर्ष हमें सन्तप्त न कर डाले। भगवान् के शीतल नाम तथा भगवत्-चिन्तन को सदा अपने साथ रखिए। यह हमारी प्रकृति को सदा शीतल बनाये रखेगा। इससे आध्यात्मिक सन्तुलन सदा बना रहेगा। युद्ध काल में शत्रु-पक्ष के सैनिकों को बन्दी बना लिया जाता है और उन्हें अपने पक्ष में लगाया जाता है। ठीक इसी प्रकार अपनी बुरी आदतों को रूपान्तरण के तरीके से अपने हित के लिए लगाया जा सकता है। हममें दोष-दृष्टि का स्वभाव है। हम सर्वत्र दोष ही ढूँढ़ निकालने का प्रयास करते हैं। यह साधकों का बड़ा भारी दोष है। इससे आध्यात्मिक उन्नति रुक जाती है; किन्तु यह आदत छूटती नहीं। यदि इस आदत को साधक अपने प्रति लागू करे तो वह इससे अपना बड़ा हित कर सकता है। उसे दूसरों के दोष देखने का मौका ही नहीं मिलेगा। तब वह दूसरों के स्वल्प सद्गुण का भी प्रशंसक बन जायेगा।

५. साधना के लिए कुछ आवश्यकीय बातें

अहंकार से मुक्त होने पर मनुष्य में प्रेम तथा भक्ति का विकास होता है। चरियै, किरियै, योग तथा ज्ञान- अहंकार के दमन एवं ईश्वर-प्राप्ति के लिए ये चार साधन हैं। मन्दिर बनवाना, उनकी सफाई करना, फूलों के हार गूँथना, ईश्वर की स्तुति करना, मन्दिरों में दीप जलाना, फूलों की वाटिका लगवाना- ये सब चरियै साधना हैं।

पूजा-अर्चना ये किरियै हैं। इन्द्रियों का दमन तथा अन्तर्ज्योति पर ध्यान योग है। पति, पशु और पाश के तत्त्व को समझना तथा तीन मल-अणव (अहंकार), कर्म तथा माया को दूर कर भगवान् पर सतत ध्यान करते हुए भगवान् से एक हो जाना ज्ञान है।

बाह्य रूपों के द्वारा सर्वव्यापक, अमर परमात्मा की पूजा करना चरियै है। इसके लिए साम्य-दीक्षा दी जाती है। अमर शासक प्रभु के विश्वात्म रूप का अन्तर्बाह्य पूजन ही किरियै है। उसके निराकार रूप का आन्तरिक पूजन योग है। किरियै तथा योग के लिए विशेष दीक्षा दी जाती है। ज्ञान-गुरु के द्वारा भगवान् का साक्षात्कार ज्ञान कहलाता है। इसके लिए निर्वाण-दीक्षा है।

साधक को तीन प्रकार के मल- अणव, कर्म तथा माया से मुक्त होना होगा, तभी वह भगवान् से एक हो कर उनकी कृपा का उपभोग करता है। उसे अभिमान का पूर्णतः उन्मूलन करना चाहिए, कर्म के बन्धन से मुक्त बनना चाहिए तथा सारे मलों की जननी माया को विनष्ट कर देना चाहिए।

निर्वाण प्राप्ति के लिए गुरु बहुत ही आवश्यक है। प्रभु कृपा-सागर है। वह साधकों की सहायता करता है। वह उन पर अपनी कृपा की वर्षा करता है जो श्रद्धा तथा भक्ति के साथ उसकी पूजा करते हैं तथा जिनमें शिशुवत् विश्वास है। भगवान् ही गुरु हैं। ईश्वर की कृपा ही मुक्ति का पथ है। वह गुरु में निवास करता है तथा गुरु के नेत्रों से हो कर वह अपार प्रेम के साथ सच्चे साधकों पर अपनी दृष्टि रखता है। जब आपमें मानव जाति के लिए प्रेम रहेगा, तभी आप ईश्वर की भक्ति कर सकेंगे।

यदि साधक स्वयं तथा ईश्वर के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है तो भक्ति में उसकी शीघ्र उन्नति होगी। वह कोई भी भाव रख सकता है। दास्य-भाव- प्रभु उसके स्वामी तथा वह उनका दास है। तिरुनावुकरसर इस भाव को रखते थे। वात्सल्य भाव- ईश्वर पिता है तथा साधक उसका शिशु। तिरुज्ञानसम्बन्धर इस भाव को रखते थे। सख्य-भाव-प्रभु साधक का सखा है। सुन्दरार इस भाव को रखते थे। सन्मार्ग - भगवान् ही भक्त का प्राण है। मानिक्कवासगर इस भाव को रखते थे। वैष्णव जन इसे माधुर्य-भाव या आत्म-निवेदन कहते हैं।

तीनों मलों के नष्ट हो जाने पर भक्त भगवान् के साथ उसी प्रकार मिल जाता है, जिस प्रकार लवण जल में; परन्तु वह सृष्टि आदि ईश्वरीय कार्यों को नहीं कर सकता। ईश्वर ही उन्हें कर सकता है।

मुक्त पुरुष को जीवन्मुक्त कहते हैं। यद्यपि वह शरीर में रहता है, फिर भी अनुभूति से ब्रह्म के साथ एक है। वह ऐसे कर्मों को नहीं करता जिनसे अन्य शरीरों का निर्माण हो सके। अभिमान से मुक्त होने के कारण कर्म उसे बन्धन में नहीं डालते। वह विश्व-कल्याण के लिए लोक-संग्रह करता है। प्रारब्ध कर्म के अनुसार वह शरीर में रहता है। सारे वर्तमान कर्म ईश्वर की कृपा से विनष्ट हो जाते हैं। जीवन्मुक्त अपने अन्तर्हित प्रभु की प्रेरणा से ही सारे कार्यों को करता है।

६. साधना के मूल सिद्धान्त तथा विपरीत बुद्धि

साधना का मार्ग कठिनाइयों एवं समस्याओं के जंगल में से हो कर गुजरता है। उन समस्याओं में एक तो यह है कि आपका मन सर्वोत्तम मित्र है और साथ ही निकृष्ट शत्रु भी। मन आपका सच्चा मित्र तभी बनता है, जब उसे धीरे-धीरे प्रशिक्षित किया जाता है। आध्यात्मिक साधना में पर्याप्त उन्नति कर लेने के बाद ही मन सहायक बन जाता है। जब तक यह अवस्था नहीं प्राप्त होती, तब तक मन को अपने अन्दर दुष्ट शत्रु के रूप में ही समझना चाहिए। यह अत्यन्त कूटनीतिज्ञ, धूर्त तथा चालाक है। यह सबसे बड़ा धोखेबाज है। मन की चालाकियों में एक चालाकी यह है कि यह साधक को इस धोखे में डाल देता है कि साधक भ्रमवश यह समझने लगता है कि उसने मन पर विजय पा ली है। मन असावधान साधक को ऐसे भ्रम में डाल देता है कि वह समझने लगता है कि मन मेरे वश में है; परन्तु अन्त में उसे मूर्ख बनना पड़ता है। मन की चालें सूक्ष्म हैं।

आपने यह सुना है: "शैतान अपने उद्देश्य के समर्थन के लिए शास्त्रों की उक्तियों के उद्धरण दे सकता है।" उसी प्रकार मन भी किसी सद्गुण का प्रयोग पाप कर्म में कर सकता है। विपरीत बुद्धि तो इसका जन्मजात गुण है। यह किसी निकृष्ट कार्य के समर्थन में किसी अच्छे सिद्धान्त का आश्रय ले सकता है। जब तक वैराग्यपूर्वक इसका अन्तर्निरीक्षण नहीं करते, तब तक इसकी चालें पूर्ण रूप से प्रकट नहीं होतीं।

कुछ विपरीत बुद्धि के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं। सच्चे साधक उनसे पर्याप्त लाभउठा सकते हैं।

साधकों से कहा जाता है- "स्त्रियों के साथ रहते समय मातृ-भाव या देवी-भाव बनाये रखिए।" आपकी शुद्धता तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए यह महान् आदर्श है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि आप स्त्रियों के साथ रहिए। न तो इसका यह मतलब है कि यदि आप इस भाव को रखें, तो आपको स्त्रियों के साथ चलने की छूट मिल गयी। मन तो कहेगा, "क्यों नहीं? यदि ऐसा करूँ तो हानि ही क्या है? उनसे दूर भागना तो कायरता है। जब देवी-भाव रखते हैं तो डर ही क्या?" सावधान! हे साधक, इस वासना के प्रति सावधान ! देवी-भाव का अर्थ अपने नियन्त्रणों को दूर हटाना नहीं है। साथ ही स्त्रियों से घृणा भी नहीं रखनी है। स्त्रियों का आदर कीजिए; परन्तु कुछ दूरी रख कर ही। देवी-भाव इत्यादि का यह अर्थ नहीं है कि आप सदा उनके साथ रहें। मन का निरीक्षण कीजिए।

दूसरा सिद्धान्त है : "आप फुफकार मार सकते हैं, परन्तु डसिए नहीं- आप धमका सकते हैं, परन्तु दण्डित न कीजिए।" यह सिद्धान्त उनके लिए लाभदायक है जो व्यावहारिक जीवन में अत्यन्त ही सीधे हैं; परन्तु यह नीति साधना-मार्ग अथवा निवृत्ति-मार्ग के साधकों के लिए उपयुक्त नहीं है। निश्चय ही नहीं है। साधक इन शब्दों पर ध्यान रखे। साधक न तो धमकाये और न दण्ड ही दे। यदि आपने फुफकारना शुरू कर दिया, तो यह आपकी आदत हो जायेगी और आप सर्वत्र हर वस्तु को ले कर फुफकारते ही रहेंगे। अन्त में आप हिंसात्मक कार्य कर बैठेंगे। मन सदा अवसर की ताक में

रहता है। थोड़ी ढिलाई भी इसके लिए यथेष्ट है। यह स्वभावतः नीचे की ओर जाना चाहता है। हे साधक ! नम्र बनिए, शिष्ट बनिए। दृढ़ परन्तु नम्र रहिए। यदि आप क्रोध करना चाहें, तो अपने मन के प्रति क्रोध कीजिए। अहंकार को कुचल डालिए। षड्-रिपुओं से संग्राम छेड़िए। मन का निरीक्षण कीजिए।

इस सिद्धान्त का भी गलत अर्थ लगाते हैं- "दृढ़ रहिए। अपने सिद्धान्तों पर अटल रहिए। इंच मात्र भी न डिगिए।" यद्यपि यह आदेश सर्वोत्तम है, फिर भी साधक इसे अपने हठी स्वभाव का समर्थन मान बैठते हैं। हठ तामसिक गुण है; परन्तु मन आपको बतलायेगा कि यही आत्म-बल अथवा दिव्य संकल्प है। यही मन का काम है। यह साधक को अहंकार के साथ पूर्णतः आसक्त बना डालता है। यही धोखेबाजी है। सावधान साधक को सात्त्विक निष्ठा तथा हठबाजी में विवेक रखना चाहिए। दीर्घकालीन प्रयास, अनुशासन तथा संकल्प-साधन के बिना आत्म-बल मिलने का नहीं। वास्तविक ऊँचे दिव्य सिद्धान्तों के प्रति ही अडिग दृढ़ता की आवश्यकता है। अहंकारपूर्ण भावनाओं के प्रति निष्ठा तो हानिकारक ही है। आध्यात्मिक यौगिक नियमों के पालन में कट्टर बनिए; परन्तु हठी न बनिए। धोखे में न पड़िए। मन का निरीक्षण कीजिए।

"सदा सत्य बोलिए, स्पष्ट बोलिए" - यह उपदेश है। जब आपसे पूछा जाये, आप सत्य ही बोलिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि आप हर व्यक्ति के सामने उसके सम्बन्ध में अपने विचार रखते चलें। यह सदाचार नहीं है। दूसरों की भावनाओं का ध्यान न रखते हुए, स्वेच्छापूर्वक अपने विचारों को प्रकट करते रहना आर्जव नहीं है। यह कम-से-कम अविचार तो है ही; परन्तु अधिक बढ़ने पर यह उद्दण्डता है। यह साधक को शोभा नहीं देता। जो आपको सत्य बोलने तथा स्पष्ट बोलने की शिक्षा देता है, वही आपके लिए यह भी उपदेश देता है कि 'मित भाषण, मधुर भाषण कीजिए।' मन आपको स्पष्टवादिता के बहाने दूसरों को अपमानित करने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है। अप्रिय सत्य को न कहा जाये तो अच्छा ही है। यदि कहना अनिवार्य है तो उसे मधुर शब्दों में नम्रतापूर्वक कहिए। "दूसरों की भावनाओं पर आघात न पहुँचायें" यह उपदेश उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि सत्य बोलना। सत्य तथा अहिंसा दोनों को साथ-साथ चलना चाहिए। अपना अध्ययन कीजिए। मन का निरीक्षण कीजिए।

अब दूसरा सिद्धान्त है- "वैराग्य तो वास्तव में मानसिक अवस्था है, मानसिक अनासक्ति है।" मन इस सिद्धान्त के द्वारा अपने अविवेकपूर्ण विषय-परायण जीवन का भी समर्थन करने लगता है। तर्क यही रहेगा- "हाँ, मैं तो इन सभी से आसक्त नहीं हूँ। मैं तो एक क्षण में ही इनसे परे जा सकता हूँ। मैं तो स्वामी की भाँति इनका उपभोग करता हूँ। मैं तो मानसिक रूप से अनासक्त हूँ।" विषयों के सम्पर्क ने विश्वामित्र जैसे तपस्वियों को गिरा डाला है। अतः वैराग्य को आसान न समझिए। श्रमपूर्वक वैराग्य का अर्जन कीजिए। सावधानीपूर्वक वैराग्य की रक्षा कीजिए। सावधान रहिए। मन का निरीक्षण कीजिए।

"तपस्या में अति नहीं करनी चाहिए" - इस उपदेश की भी वैसी ही दुर्दशा होती है। मनुष्य का सहज स्वभाव इन्द्रिय-परायण है। मन आराम चाहता है तथा तपस्या से घृणा करता है। अविवेकी साधक उपर्युक्त सम्मति में अति शब्द को हटा देता है और तपस्या को ही घृणा से देखने लगता है। परिणाम स्वरूप वह विलासी बन बैठता है, उसमें अल्प मात्र भी तितिक्षा नहीं रह जाती तथा वह सैकड़ों इच्छाओं का दास बन जाता है। मूर्खतापूर्ण अति के लिए ही उपयुक्त सावधानी बरतनी चाहिए। परन्तु प्रारम्भिक अवस्था में किसी सीमा तक साधकों को तपस्या अनिवार्य है। मन तो इस पक्ष में बहुत से सुझावों को प्रस्तुत करेगा। वह गीता को अपने पक्ष में ला कर यह दिखलाना चाहेगा कि भगवान् स्वयं तपस्या के विरोधी हैं। हे साधक ! भगवान् ने तो तामसिक तपस्या का ही खण्डन किया है। उन्होंने तो शरीर, मन तथा वाणी की सात्त्विक तपस्या को आवश्यक बतलाया है। सावधानीपूर्वक मनन कीजिए। सदा मन का निरीक्षण कीजिए।

"सारवस्तु पर ध्यान रखो। गौण (अनावश्यक) पर विशेष ध्यान न दो।" इस उपदेश को भी साधक अपनी भ्रान्ति का सहायक बना डालते हैं। मन का तो आलसी स्वभाव है ही। यह किसी भी प्रकार के नियम तथा सदाचार से स्वभावतः

ही घृणा करता है; अतः वह सभी को अनावश्यक समझ बैठता है। तब बचा क्या रहता है, यह तो ईश्वर ही जाने। मन जो कुछ चाहता है, एकमात्र वही आवश्यक है। साधक को विचार करना चाहिए कि आध्यात्मिक उपदेश का वास्तव में अर्थ क्या है तथा उसे क्यों दिया गया है। आध्यात्मिक साधक की प्रगति के स्तर के अनुसार आवश्यक तथा अनावश्यक में विभिन्नता भी है। जो साधना कालान्तर में अनावश्यक प्रतीत होगी, वह अभी आवश्यक हो सकती है। भूसे के साथ-साथ बहुमूल्य अन्न को न फेंक डालिए। मन का निरीक्षण कीजिए।

अन्ततः साधना के विषय में ही मन सबसे बड़ा धोखा देता है। जिस साधना को साधक अपने जीवन को दिव्य बनाने तथा अपना रूपान्तरण करने के लिए अपनाता है, उसी साधना को वह अहंकार तथा इन्द्रियों के विहार के लिए आधार बना डालता है। पूरी सच्चाई तथा हार्दिक प्रयास के बिना इस मोहक जाल से बचना कठिन है। इस कलुष के कारण ही साधक अपने मार्ग में स्तब्ध-सा रह जाता है और वर्षों की साधना के बाद भी उन्नति नहीं हो पाती। उदाहरणतः युवक साधक, जिनका गला मधुर है तथा जो संगीत-प्रेमी हैं, स्वभावतः कीर्तन तथा भजन को अपनी साधना बना लेते हैं। कला के द्वारा बहुत से लोग आकृष्ट होते ही हैं। सारे शुभ कार्यों में उनकी माँग होती है। वे सत्संगियों में विख्यात हो जाते हैं। सूक्ष्म मन जाल फैला देता है। दिनानुदिन कीर्तन और मधुर होता जाता है। उनके संगीत में नये राग एवं तान भी आ जुड़ते हैं। कीर्तन एक साधन बन गया, जिससे वे अनजाने ही अपनी ख्याति की वृद्धि करने लग जाते हैं। इस प्रकार साधक के दो उद्देश्य हो जाते हैं मुख्यतः ईश्वर का दर्शन और साथ-ही-साथ संसार का आकर्षण। परिणामतः साधना मोचक न बन कर बन्धन बन जाती है। माया विस्मयकारी तथा अनिर्वचनीय है। उसकी गति रहस्यमयी है।

निष्काम कर्मयोग को ही लीजिए। दूसरों की सेवा करना तथा प्रत्युपकार की भावना न रखना व्यावहारिक जगत् के लिए अश्रुत वस्तु ही है। निष्काम सेवी अतिमानव समझा जाने लगता है। उसके लिए सारे दरवाजे खुले हुए हैं। बहुत से लोग अपनी कठिनाइयाँ उसके सामने रखते, अपने हृदय खोलते तथा अपनी गुप्त समस्याओं को उसके सामने प्रस्तुत करते हैं। यहाँ साधक जीवन के छुरे की धार पर चलता है। मन शैतान है। लोगों के निकट-सम्पर्क में रहने के कारण विषय-परायणता के लिए काफी क्षेत्र मिल जाता है। दम्भ तथा पाशविकता उसके भीतर घुस पड़ते हैं। साधक निष्काम सेवा में खूब दिलचस्पी लेने लग जाता है। परन्तु निर्मम अन्वेषण करने पर पता लगेगा कि यह साधना विषय-परायणता की उतनी ही पोषक है जितनी कि सेवा की। अतः मन साधना को विनष्ट कर डालता है।

तितिक्षा का अभ्यासी साधक भी ऐसे ही कुछ सुप्त-चेतन कारणों से तितिक्षा से आसक्त हो जाता है। उसकी तितिक्षा उसके लिए यश का साधन बन जाती है। वह असाधारण सिद्ध समझा जाता है। तितिक्षा-साधना के उद्देश्य की पूर्ति होने पर भी वह तितिक्षा में लगा रहेगा; क्योंकि इस साधना ने जिस पद को उसे प्रदान किया है, उस पद को वह त्यागना नहीं चाहता। दूसरे प्रकार के साधक शरीर तथा उसकी माँग के प्रति उदासीन होने के कारण केश बनाना भी नहीं चाहते। प्रारम्भ में उनमें पूरी सच्चाई रहती है। परन्तु इस उदासीनता के कारण केश-दाढ़ी लम्बे हो जाते हैं और तब साधक माया का शिकार बन बैठता है। अब वह केश सँवारता, दर्पण में चेहरा देखता, तेल लगाता तथा फैशनदार कपड़े पहनने लगता है। क्षण मात्र में ही भ्रम उत्पन्न हो कर उसको अपना शिकार बना बैठता है। ठीक उसी प्रकार कुछ लोग हठयोग के आसनों द्वारा अतिभोजन में सहायता पाते हैं, वज्रोली को व्यभिचार का साधन बना बैठते हैं तथा योग भोग का साधन बन जाता है। ये सारे भ्रम असंस्कृत मन से उत्पन्न होते हैं; अतः मन का निरीक्षण कीजिए।

सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि मन आपको उपर्युक्त उपदेशों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने नहीं देगा। वह कहेगा, "आप ठीक कह रहे हैं; परन्तु यह आपके लिए नहीं है। इन सभी पर ध्यान न दीजिए। जैसे चल रहा है, चलने दीजिए।" हे साधक ! मन की बातों पर ध्यान न दीजिए। इस दुष्ट को सहयोग न दीजिए। उपदेशों को हृदयंगम कीजिए।

मार्ग में आप कहाँ हैं ठीक-ठीक इसको ज्ञात करना बड़ा कठिन है। मन की चालें बहुत ही सूक्ष्म हैं। सतत विचार आपको सावधान तथा सुरक्षित रखेगा। गम्भीर अन्तर्निरीक्षण से ही आप मन के रहस्य को समझ सकते हैं। मन के अन्दर घुसते जाइए। मन को ढीला न छोड़िए। मन के गुप्त विचारों को ढूँढ़ निकालिए। नित्य-प्रति इसका विश्लेषण कीजिए। विचार के द्वारा मन का विश्लेषण कीजिए। गुरु की कृपा के लिए प्रार्थना कीजिए। गुरु ही मन को पराजित कर उसे आपके अधीन बना सकेगा। ईश्वर से प्रार्थना कीजिए कि वह ज्ञान की ज्योति से आपकी बुद्धि को विभासित करे। मन का निरीक्षण कीजिए। प्रार्थना कीजिए। अन्तर्निरीक्षण, विश्लेषण, विवेक, सावधानी तथा प्रार्थना के द्वारा आप इस विचित्र मन के सूक्ष्म जादू को समझ कर इसके भ्रमों तथा चालों से मुक्त हो सकते हैं।

७. अभ्यास : साधना का प्रथम पहलू

मन की वृत्तियों को स्थिर बनाने का प्रयास ही अभ्यास है। मन की सारी वृत्तियों का दमन कर निर्वात स्थान में रखे प्रदीप की लौ की भाँति मन को स्थिर करने का प्रयास ही अभ्यास है। मन को उसके उद्गम स्थान हृदय-गुहा में ले जा कर आत्मा में विलीन कर देने का नाम अभ्यास है। मन को अन्तर्मुखी बना कर उसकी सारी बहिर्मुखी प्रवृत्तियों को विनष्ट करने का नाम अभ्यास है। यह अभ्यास चिरकाल तक भक्तिपूर्वक निर्विघ्न रूप से करना चाहिए।

अभ्यास के द्वारा आपको अपनी बहिर्मुखी विषय-वृत्तियों को बदलना होगा। मन की वृत्तियों के बिना आप विषय-वस्तुओं का उपभोग नहीं कर सकते। संस्कार के साथ-साथ वृत्तियों का दमन कर लेने पर मनोनाश हो जायेगा।

दीर्घ काल तक निर्विघ्न साधना करने के बाद अभ्यास स्थिर तथा स्थायी हो जाता है। पूर्ण मनोनिग्रह के लिए स्थिर अभ्यास अनिवार्य है। इससे असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है जिससे संस्कार के बीज परिदग्ध हो जाते हैं। अतः दीर्घ काल तक सतत तथा उग्र अभ्यास की आवश्यकता है। तभी भटकता हुआ मन आपके वश में आ पायेगा। तब जहाँ-कहीं आप इसे लगायेंगे, यह सदा स्थिर रहेगा। अभ्यास के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है। पूर्ण श्रद्धा तथा भक्ति के साथ अभ्यास करना चाहिए। यदि श्रद्धा तथा नियमितता नहीं है तो सफलता असम्भव है। जब तक आपको पूर्णता की प्राप्ति न हो, अभ्यास को जारी रखें।

८. साधना में इन चार बातों का स्मरण रखिए

१. संसार के दुःखों का स्मरण रखिए।

२. मृत्यु का स्मरण रखिए।

३. सन्तों का स्मरण रखिए।

४. ईश्वर का स्मरण कीजिए।

पहला तथा दूसरा आपको वैराग्य प्रदान करेंगे। तीसरा आपमें प्रेरणा भरेगा। चौथा आपको ईश्वर-साक्षात्कार प्रदान करेगा। प्रत्येक साधक को इन चार प्रमुख बातों की याद सदा बनाये रखनी चाहिए।

९. आध्यात्मिक साधना की मूल-भित्ति

समाज तथा उसके कार्य-व्यवहारों को बुरा कह कर कुछ लोग एकान्तवास के लिए चले जाते हैं। इन लोगों में सहनशीलता का विकास उतना नहीं हुआ होता जितना कि समाज में रहने वाले मानव-सेवी में हुआ होता है। यदि बन्दर अथवा कुत्ता कुटीर में घुस कर उसकी रोटी ले कर भाग जाये, तो हो सकता है कि एकान्तवासी विरक्त उस जानवर पर श्रापों की बौछार करने लगे तथा आजीवन उसके प्रति वैर-भाव बनाये रखे। यथाव्यवस्था के गुण का विकास भी तरह-तरह की प्रवृत्तियों वाले मनुष्यों के रहने पर ही सम्भव है। निष्काम कर्म तथा सेवा के द्वारा ही मनुष्य विभिन्न स्थानों की विशेषताओं के अनुकूल अपने को बना सकता है। आत्मा की एकता तथा विश्व-बन्धुत्व के साक्षात्कार के लिए यदि आप किसी विजन गुहा में स्वयं को बन्द कर वेदान्तिक मन्त्रों का जप करें, तो सम्भव है, आप तामसी बन जायें। साथ ही आपमें सहनशीलता का अभाव तथा असन्तुलित व्यक्तित्व का गठन होगा। धीरे-धीरे आप अपने सद्‌गुणों को भी खो बैठेंगे। इसीलिए यह कहावत है- "अपने सद्‌गुणों को व्यवहार से हटा कर विनष्ट न कीजिए।"

यह ठीक है कि एकान्तवासी विरागी कुछ विशेषता प्राप्त कर सकेगा। ध्यान के मार्ग से वह अपने शरीर के प्रति अनासक्ति, वातावरण पर विजय तथा राजसिक प्रकृति पर नियन्त्रण प्राप्त कर सकेगा। आत्म-संयम तथा आत्म-त्याग भी कुछ हद तक विकसित होंगे।

परन्तु निष्काम कर्म, अनासक्त कर्म तथा सप्रेम सेवा के द्वारा ही मनुष्य शुद्धता, धैर्य एवं नम्रता जैसे बहुमूल्य सद्‌गुणों का अर्जन कर सकता है। निष्काम सेवा द्वारा ही नम्रता का अर्जन होता है। नम्रता ही सारे सद्‌गुणों का मूल है। नम्र व्यक्ति ही अन्य सभी गुणों का अर्जन उत्सुकतापूर्वक कर लेता है। अभिमानी व्यक्ति के लिए व्यापक क्षेत्र कहाँ है?

उदारता तथा दया का विकास भी दीनों, पीड़ितों तथा असहायों की सेवा से ही सम्भव है। निष्काम कर्म ऐसे कर्म हैं जिनको सर्वशक्तिमान् प्रभु की पूजा के रूप में किया जाता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य में प्रसुप्त तथा जाग्रत दो प्रकार के सद्‌गुण रहते हैं। उदाहरणतः शुद्धता का प्रसुप्त गुण व्यावहारिक जीवन में ब्रह्मचर्य के रूप में प्रकट होता है। अभय का गुण संकट-काल में साहस के रूप में प्रकट होता है। आत्म-निग्रह के अभ्यास की आदत प्रलोभन के समय स्वेच्छापूर्ण आत्म-संयम के रूप में प्रकट होती है। इन दोनों पहलुओं के सन्तुलन के लिए कर्मयोग अनिवार्य है।

पुनः एकान्तवास से अर्जित आध्यात्मिक गुणों को व्यवहार में उतारना चाहिए। केवल बुराई को ही दूर कर मनुष्य को सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए; अपितु अपने सद्‌गुणों को सभी प्राणियों के हितार्थ व्यवहार में लाने की प्रवृत्ति होनी चाहिए, तभी वे सद्‌गुण सफल बनते हैं, तभी वे परिपक्व फल अथवा प्रस्फुटित प्रसून बन जाते हैं, तभी वे व्यक्ति-वृत्त से निकल कर समस्त मानव जाति को तथा विश्व को अपने अन्तर्गत करेंगे। वे सद्‌गुण विश्वात्म बन जायेंगे।

प्रगति तथा विकास को सक्रिय होना चाहिए, तभी वे असीमता को प्राप्त कर सकेंगे। नैतिक तथा आध्यात्मिक सुख के मार्ग पर एकान्तवास का जीवन सद्‌गुणों के निर्माण-प्रवाह को अवरुद्ध कर पंकिल बना सकता है। अतः निष्काम कर्म एवं सेवा को कभी भी कम नहीं समझना चाहिए।

अन्ततः इस मुख्य बात को याद रखिए। ऐसा हम देख चुके हैं कि सभी भलाई की मूल-भित्ति नम्रता है। साथ ही सभी सद्‌गुणों की पोषक तथा पालक नम्रता ही है। नैतिक तथा आध्यात्मिक घमण्ड रूपी महान् शत्रु के विरुद्ध नम्रता ही कवच है। धर्म के मार्ग पर कुछ अधिक उन्नति कर लेने पर साधक अनजाने ही अभिमान का शिकार बन बैठता है। वह उन दूसरे लोगों से घृणा करने लगता है जो उसके समान जीवन व्यतीत नहीं करते। नम्रता के अभ्यास के द्वारा इस शत्रु

से लोहा ले सकते हैं। जो व्यक्ति अपने छोटे 'अहं' को निष्काम कर्म और नारायण-भाव के साथ विनम्र एवं सप्रेम सेवा के द्वारा मिटा देता है, वही परम सुख एवं आनन्द को प्राप्त करता है। उसके आनन्द की थाह कौन लगा सकता है।

सभी सद्गुणों के अर्जन के महत्त्व को समझें। सभी उन्हें अपने जीवन में उतार कर निष्काम कर्मयोगी बनें!

१०. आध्यात्मिक साधना के कुछ पहलू

(१)

जब घर में आग लगी हो, तब आप कितने साहस के साथ घर में घुस कर सोये हुए बच्चे को उठा लाते हैं। ठीक उसी प्रकार आध्यात्मिक मार्ग में भी आपको बहुत ही साहसी होना चाहिए। आपको पूर्णतः निर्भय होना चाहिए। आपको शरीर से जरा भी आसक्ति नहीं होनी चाहिए। तभी आप शीघ्र आत्म-साक्षात्कार कर सकते हैं। कायर लोग आध्यात्मिक मार्ग के लिए सर्वथा अयोग्य हैं।

यदि किसी बड़े वृक्ष के ऊपर आम लगे हों, तो आप एक ही छलाँग लगा कर उसे तोड़ नहीं लेते। यह असम्भव है। आप कई शाखाओं को पकड़ते हुए वृक्ष पर धीरे-धीर चढ़ते हैं। ठीक उसी प्रकार आप एक ही छलाँग में आध्यात्मिक निश्रयिणी के ऊपर नहीं चढ़ सकते। आपको सावधानीपूर्वक हर सीढ़ी पर कदम रखना होगा। आपको यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा तथा ध्यान का अभ्यास करना होगा। तभी आप योग की सबसे ऊँची सीढ़ी समाधि को प्राप्त कर सकते हैं। यदि आप वेदान्त के साधक हैं तो आप पहले साधन-चतुष्टय से सम्पन्न हो लीजिए; तब आपको श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन करना होगा। तभी आप ब्रह्म-साक्षात्कार कर सकेंगे। यदि आप भक्तियोग के साधक हैं तो आपको नवधा भक्ति- श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन- का अभ्यास करना होगा। तभी आप परा-भक्ति की अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं।

घरेलू मुरगी, बत्तख आदि जब गन्दी चीजें खाने लगते हैं, तब उनका मालिक क्या करता है? वह उनके शिर पर हल्की थपकी लगाता है तथा उनके सामने चुगने के लिए अनाज के दाने रखता है। धीरे-धीरे गन्दे पदार्थों को खाने की उनकी आदत छूट जाती है। ठीक उसी प्रकार यह मन यत्र-तत्र गन्दे पदार्थों को खाने के लिए तथा पाँच प्रकार के विषयों के उपभोग के लिए दौड़ता है। उसके शिर पर थोड़ी थपकी लगाइए तथा उसमें धीरे-धीरे जप तथा ध्यान के अभ्यास से आध्यात्मिक सुख के आस्वादन की आदत डालिए।

जीवन्मुक्त अथवा भागवत की आँखें चमकीली होती हैं। उनके शिर के ऊपर तथा त्रिकुटी में उभार रहता है। वे जो कुछ भी कहते हैं, उसकी छाप आपके मन के ऊपर अमिट रहती है। आप उसे आजीवन नहीं भूल सकते। उनमें अपनी आकर्षण शक्ति होती है। वे आपकी सारी शंकाओं को जादू की तरह भगा देते हैं। उनके सामीप्य में आप विशिष्ट आनन्द तथा शान्ति का अनुभव करेंगे। सारी शंकाएँ दूर हो जायेंगी। वे बहुत ही कारुणिक होते हैं। वे स्वार्थ, लोभ, क्रोध, अहंकार, काम तथा अभिमान से मुक्त होते हैं। वे सत्य, शान्ति, ज्ञान तथा सुख की प्रतिमूर्ति होते हैं।

कोयले को जलाने में बहुत समय लगता है; परन्तु बारूद एक क्षण में ही भभक उठती है। उसी प्रकार जिस मनुष्य का हृदय मलिन है उसमें ज्ञानाग्नि जलाने में अधिक समय लगता है; परन्तु जिसका हृदय शुद्ध है, वह पल-भर में ही, उँगलियों से फूल को मसलने में जितना समय लगता है, उतने काल में ही आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है।

माया एक विशाल आरे के समान है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, द्वेष, घृणा, अभिमान इत्यादि उसके तीखे दाँत हैं। सांसारिक बुद्धि वाले सारे व्यक्ति इस आरे के दाँतों में पिसे जा रहे हैं। जिनमें शुद्धता, नम्रता, प्रेम, भक्ति, वैराग्य तथा विचार है, उनको कुछ भी हानि नहीं पहुँचती। वे इस आरे के नीचे से आसानी से निकल कर अमृतत्व के धाम को प्राप्त करते हैं।

साधारण सफेद कागज के टुकड़े का कोई मूल्य नहीं है। आप उसे फेंक देते हैं। परन्तु उसी पर जब सम्राट् या राष्ट्रपति की मुद्रा या उनका चित्र लगा रहता है, तब आप उसे अपनी थैली में सँभाल कर रखते हैं। ठीक उसी प्रकार पत्थर के साधारण टुकड़े का कोई मूल्य नहीं है; परन्तु यदि आप पण्ढरपुर या किसी अन्य मन्दिर में भगवान् कृष्ण की प्रस्तर मूर्ति को देखते हैं, तो आप शिर झुका कर उसकी पूजा करते हैं; क्योंकि उसमें भगवान् की मुहर लगी है। भक्त प्रस्तर मूर्ति में अपने प्रिय प्रभु तथा उसके सारे विशेषणों को देखता है। प्रारम्भिक साधकों के लिए मूर्ति-पूजा बहुत ही आवश्यक है।

(२)

कुछ साधक लगातार साधना करते हैं; किन्तु धीमे रूप से। कुछ उग्र साधना करते हैं-दो घण्टा प्रातःकाल तथा दो घण्टा सन्ध्या को। यदि आप शीघ्र आत्म-साक्षात्कार करना चाहते हैं तो आपको दीर्घ काल तक सतत उग्र साधना करनी होगी।

आप भगवान् कृष्ण का दर्शन कर सकते हैं। आप उनसे कई बार बातें भी कर सकते हैं। आप उनके साथ भोजन तथा क्रीड़ा भी कर सकते हैं। परन्तु यदि आप मुक्ति चाहते हैं, तो आपको आत्म-साक्षात्कार करना होगा। नामदेव को भगवान् कृष्ण के दर्शन कई बार प्राप्त हुए थे; फिर भी सन्त गोरा कुम्हार ने उन्हें अधपका ही बतलाया। कैवल्य-प्राप्ति के लिए उन्हें विशोबा खेचर के पास जाना पड़ा था।

ध्यान के लिए आसन पर आप बैठते हैं, परन्तु शीघ्र ही उठ जाना चाहते हैं। पैरों में दर्द के कारण नहीं, वरन् अधीरता के कारण। धीरे-धीरे धैर्य का विकास कर इस दुर्गुण को दूर कीजिए। तब आप लगातार तीन या चार घण्टे तक बैठ सकेंगे।

ध्यान में आप किसी-न-किसी व्यक्ति से मानसिक सम्भाषण करना शुरू कर देते हैं। इस बुरी आदत को बन्द कीजिए। मन के ऊपर निगरानी रखिए।

एक साधक मुझे लिखता है "किसी व्यक्ति ने तीन बजे प्रातः दरवाजा

खटखटाया। मैं उठ पड़ा और द्वार खोला। मैंने भगवान् कृष्ण को मुकुट सहित देखा। वे शीघ्र ही अदृश्य हो गये। मैं उनकी खोज में गली में गया। मैं उन्हें खोज न सका। तब मैं घर वापस लौट आया और भगवान् के पुनर्दर्शन के लिए दरवाजे पर सूर्योदय के समय तक बैठा रहा।"

निद्रा-भ्रमण की घटनाएँ भी असाधारण नहीं हैं। चलते-फिरते भी लोग स्वप्न में रहते हैं। उपर्युक्त घटना निद्रा-भ्रमण की घटना हो सकती है। आपको आध्यात्मिक अनुभव की सत्यता जानने के लिए बहुत ही सावधान रहना होगा। भगवान् कृष्ण का दर्शन इतना सस्ता नहीं है। साधक प्रारम्भ में गलती कर बैठते हैं।

जिस प्रकार पीड़ा देने वाले कंकड़ को जूते से निकाल फेंकते हैं, उसी प्रकार आपको अपने मन से कष्टदायक विचार को शीघ्र ही निकाल फेंकना चाहिए। तभी समझिए कि आपने विचार संयम में पर्याप्त बल प्राप्त किया है, तभी आध्यात्मिक पथ में कुछ वास्तविक प्रगति की है।

एक साधक लिखता है: "मैं तीन घण्टे तक एक ही आसन में ध्यान कर सकता है। अन्त में मैं बेहोश हो जाता हूँ; परन्तु जमीन पर गिरता नहीं।" यदि वह वास्तविक ध्यान है तो आप कभी भी संज्ञाहीन नहीं होंगे। आपमें पूर्ण चेतना बनी रहेगी। यह तो अवांछनीय मानसिक अवस्था है। पूर्ण सावधानी रखते हुए आपको इस अवस्था पर विजय पानी होगी।

कल्पना कीजिए कि मन एक ही घण्टे में चालीस बार बाहर दौड़ता है। यदि आप उसे अड़तीस बार ही दौड़ने दें तो निश्चय ही आप प्रगति पर हैं। आपने मन पर अवश्य ही कुछ विजय पा ली है। मन के विक्षेप को पूर्णतः रोकने के लिए चिरकाल तक उग्र साधना की आवश्यकता है। विक्षेप शक्ति बड़ी बलवती है; परन्तु सत्त्व विक्षेप-शक्ति से भी अधिक बलशाली है। सत्त्व की वृद्धि कीजिए। आप बड़ी सुगमता से मन के विक्षेप को नियन्त्रित कर सकेंगे।

गम्भीर धारणा के समय आप महान् सुख तथा आध्यात्मिक उन्माद का अनुभव करेंगे। आप शरीर तथा वातावरण को भूल जायेंगे। सारे प्राण आपके शिर में चले जायेंगे।

कमरे के भीतर यदि धारणा का अभ्यास करने में कठिनाई हो तो बाहर खुले स्थान में आ जाइए। किसी नदी के तट पर अथवा वाटिका के एक शान्त कोने में बैठिए। आप अच्छी धारणा कर सकेंगे।

बिछावन पर लेटे हुए कभी-कभी आप एक बड़ी ज्योति को अपने ललाट से गुजरते हुए देखेंगे। ज्यों-ही आप ध्यान के आसन पर बैठ कर उसे पुनः देखना चाहेंगे, त्यों-ही वह विलुप्त हो जायेगी। आप पूछ सकते हैं, "अनायास ही वह ज्योति आती है; परन्तु जब मैं प्रयास करता हूँ, तब वह नहीं आती। ऐसा क्यों?" कारण यह है कि रजस् के आते ही आपकी धारणा टूट गयी।

अपने केन्द्र को ढूँढ़ निकालिए। केन्द्र में ही सदा निवास कीजिए। वह केन्द्र आत्मा है; यह केन्द्र ही इडेन की वाटिका है। यही आपका मूल धाम है। आप अब शोक, चिन्ता तथा भय से मुक्त रह सकते हैं। कितना मधुर है यह धाम, जहाँ नित्य ज्योति तथा शाश्वत आनन्द है।

हे मित्र ! जागिए! अधिक न सोइए। ध्यान कीजिए। ब्राह्ममुहूर्त की बेला है। प्रेम की कुंजी से हृदय-मन्दिर के द्वार खोलिए। आत्म-संगीत का श्रवण कीजिए। अपने प्रियतम को प्रेम-संगीत सुनाइए। असीम की तान छेड़िए। उसके ध्यान में अपने मन को विलीन कर डालिए। उसके साथ एक बन जाइए। प्रेम तथा आनन्द के सागर में निमग्न हो जाइए।

(३)

ध्यान के समय ज्यों-ही आप यह विचार करेंगे- "मैं अब शुद्ध हूँ, मैं अपने मन में पहले जैसे बुरे विचारों को नहीं पाता।" त्यों-ही आप पायेंगे कि बुरे विचारों का एक दल आपके सचेतन मन में आ धमका है; परन्तु वे शीघ्र दूर हो जायेंगे। आप अभी संग्राम की अवस्था में हैं। ऐसा समय आयेगा, जब आप अपने मन में एक भी बुरा विचार नहीं आने देंगे। ध्यान बुरे विचारों का प्रबल शत्रु है। बुरे विचार सोचते हैं- "हम शीघ्र ही कुचल दिये जायेंगे। हमारा यजमान अब ध्यान करने बैठ गया है। एक बार पुनः हम आक्रमण करें।" उग्रतापूर्वक ध्यान को जारी रखिए। सूर्य के सामने बादल और कोहरा नहीं ठहर सकते।

प्रारम्भ में भगवान् कृष्ण के पूरे चित्र पर मन को एकाग्र करना कठिन रहेगा; क्योंकि मन की सारी किरणें एकाग्र नहीं हुई हैं। कभी चेहरा, कभी पैर तो कभी नेत्र को आप मानसिक पटल पर ला सकेंगे। चित्र के किसी भी भाग पर, जहाँ इसे पसन्द हो, मन को एकाग्र कीजिए।

मन को कुछ नये शब्दों अथवा शहरों एवं व्यक्तियों के नामों की ओर आकर्षण रहता है। कल्पना कीजिए, आपने इन नामों को सुना है- 'फैजाबाद', 'जान हर्बर्ट'। ध्यान में बैठते समय मन इन नामों को दुहरायेगा- 'फैजाबाद', 'जान हर्बर्ट'। कभी-कभी यह कुछ गाना गायेगा, संस्कृत के पुराने श्लोकों को दुहरायेगा। सावधानीपूर्वक मन का निरीक्षण कीजिए और उसे पुनः केन्द्र पर लाइए।

उग्र ध्यान के लिए शरद् ऋतु बहत ही अनुकूल है। लगातार घण्टों तक ध्यान करने पर भी आप नहीं थकेंगे। परन्तु प्रातः आपको सुस्ती धर दबाती है। एक या दो कम्बलों से ढक लेने पर आप बड़ा आराम अनुभव करते हैं। आप प्रातः उठना नहीं चाहते। घड़ी की घण्टी बारम्बार बजती है। आप सोचते हैं- "पन्दरह मिनट तक और सो लूँ, फिर ध्यान आरम्भ करूँगा।" तब आप अपने पाँव के खुले भाग को अच्छी तरह कम्बल से ढक लेते हैं। अब बड़ा मजा आता है। आखिर परिणाम क्या हुआ? आप गहरी नींद में जा कर सूर्योदय होने पर ही उठते हैं। दिन, सप्ताह तथा महीने इसी तरह बीतते जाते हैं। हर शरद् ऋतु इसी तरह चली जाती है। मन आपको धोखा देता है। शरद् का सुअवसर हाथ से निकल जाता है। मन बहुत बड़ा जादूगर है। यह कई चालें तथा जादू जानता है। माया मन से ही कार्य करती है। मन रहस्यमय है। माया रहस्यमय है। सावधान बनिए। सतर्क रहिए। आप मन तथा माया को वशीभूत कर सकते हैं। ज्यों ही घड़ी का एलार्म बजे, कम्बल अलग डाल दीजिए। वज्रासन पर बैठ कर कुछ प्राणायाम कीजिए। तन्द्रा दूर हो जायेगी।

खुली आँखों से ध्यान करते समय आप अपने मित्र को देखते तथा उसकी वाणी को भी सुनते हैं; परन्तु जब मन आँख या कान से अलग रहेगा, तब आप न तो अपने मित्र को पहचानेंगे और न उसकी वाणी ही सुनेंगे। यदि मन को विषय-पदार्थों से पूर्णतः मोड़ लिया गया है, यदि वृत्तियों का दमन कर दिया गया है, यदि राग-द्वेष विनष्ट कर दिये गये हैं, तो फिर आप संसार को कैसे देख सकेंगे? आप मन रहित हो जायेंगे। आप सर्वत्र आत्मा को ही देखेंगे। सारे नाम-रूप विलुप्त हो जायेंगे।

मन को एकाएक एक ही बिन्दु पर एकाग्र करना बड़ा कठिन है। मन बड़े वेग से चलता है। जिस प्रकार सरकस का घोड़ा एक वृत्त में बारम्बार दौड़ता रहता है, उसी प्रकार मन भी वृत्त में बारम्बार दौड़ता रहता है। मन को एक बड़े वृत्त में न छोड़ कर उसे अधिकाधिक छोटे वृत्त में सीमित बनाइए। अन्ततः इसे एक ही बिन्दु पर लगाया जा सकता है। आपको बुद्धिमानीपूर्वक मन को पकड़ना होगा। केवल बल तथा युद्ध काम नहीं करेगा। इससे तो मामला और भी बिगड़ जायेगा।

कभी-कभी आप निराश हो कर ऐसा अनुभव करेंगे, "मुझमें बहुत से दोष हैं। मैं कैसे उनको दूर कर सकूँगा? क्या मैं इसी जन्म में निर्विकल्प समाधि प्राप्त कर लूँगा? गत आठ वर्षों से ध्यान का अभ्यास करने पर भी मुझे अधिक लाभ की प्राप्ति नहीं हुई है।" हिम्मत न हारिए। यदि आपने एक या दो इन्द्रियों को भी वश में कर लिया है, यदि आपने कुछ विचारों को वशीभूत कर लिया है, तो आधा संग्राम आपने जीत लिया। एक विचार के दमन अथवा एक वासना के विनाश से भी आप मानसिक बल प्राप्त करेंगे। हर विचार के दमन से, हर कामना के विनाश से हर इन्द्रिय के नियन्त्रण से हर दोष के उन्मूलन से आपके मन को अधिक बल प्राप्त होगा और आप लक्ष्य की ओर एक कदम आगे बढ़ जायेंगे। मित्रो! फिर विनाश तथा पश्चात्ताप के लिए स्थान ही कहाँ है? आध्यात्मिक संग्राम में वीरतापूर्वक युद्ध कीजिए। आध्यात्मिक सैनिक बनिए। विजयी बन कर दिव्य ज्ञान, नित्य शान्ति तथा परम सुख के पारितोषिक को प्राप्त कीजिए।

(४)

कभी-कभी मन आलसी रहेगा। आप धारणा नहीं कर सकेंगे। वह काम करने से इनकार करेगा। ध्यान के शुरू में मन सतर्क रहेगा, बाद में वही सुस्त हो सकता है। जिस तरह घोड़ा यात्रा के प्रारम्भ में जोरों से दौड़ता है; परन्तु अन्त में सुस्त पड़ जाता है। उस समय जिस तरह सवार घोड़े को थोड़ा घास तथा पानी दे कर पुनः स्फूर्तिमान बनाता है, उसी तरह आपको कुछ प्रेरणात्मक विचार तथा सावधानीपूर्वक अनुशासन के द्वारा मन में ताजगी लानी होगी।

यदि मन अशान्त तथा विक्षिप्त है तो एकान्त कमरे में बैठ जाइए। पन्दरह मिनट के लिए शवासन में शिथिल पड़ जाइए। कुछ सुखद विचारों को प्रश्रय दीजिए। किसी सुन्दर फूल, हिमालय की हिम-नदियों, सुविस्तृत नीलाकाश, अपार महासागर अथवा हिमालय, कश्मीर व अन्य किसी स्थान के रमणीक दृश्यों का स्मरण कीजिए। अब पुनः आप ध्यान में बैठ सकते हैं।

कभी-कभी मन उपद्रव कर बैठेगा। आप अनुभव करेंगे, "मैंने तपस्या, अनुशासन तथा ध्यान के द्वारा अधिक लाभ प्राप्त नहीं किया है। अब मैं ब्रह्मचर्य व्रत का खण्डन करूँगा। मैं सारे आहार-संयम को त्याग दूँगा। अब मैं सारे विषय-सुखों का उपभोग करूँगा। अब खूब छक कर भोजन करूँगा।" झुकिए नहीं। मन को फटकारिए। उग्र जप तथा कीर्तन कीजिए। भर्तृहरि के वैराग्य-शतक को बारम्बार पढ़िए। संसार के दुःखों को याद कीजिए। विषयी जीवन के दुःखों पर विचार कीजिए। साधुओं तथा उनके उपदेशों को बारम्बार याद कीजिए। अविचल रहिए। सावधान रहिए। सतर्क रहिए। निरीक्षण कीजिए और प्रार्थना कीजिए। उपद्रवी मन धीरे-धीरे ठण्ढा पड़ जायेगा।

कभी-कभी मन उदासीन रहेगा। मन पूर्णतः खाली रहेगा। यदि ऐसी हालत रही, तो कुछ ही देर में आप सो जायेंगे। इसे लयावस्था कहते हैं। यह ध्यान में बाधा है। दश-बीस प्राणायाम उग्र रूप से कीजिए, तब दश बार जोरों से ॐ का जप कीजिए। यह अवस्था शीघ्र ही दूर हो जायेगी।

शुद्ध ब्रह्मचारी भी शुरू में कुतूहल के कारण कठिनाई का सामना करेगा। वह लैंगिक सुख को जानने का कुतूहल रखेगा। वह कभी-कभी सोचता है- "कम-से-कम एक बार तो मुझे मैथुन-सुख मिलना चाहिए। तब मैं इस काम-वृत्ति को पूर्णतः दूर कर दूँगा। यह कुतूहल मुझे बहुत परेशान कर रहा है।" मन ब्रह्मचारी को धोखे में डालना चाहता है। माया कुतूहल के द्वारा ही भयानक कार्य करवा डालती है। कुतूहल प्रबल कामना में परिणत हो जाता है। विषय-सुख कामना को तृप्त नहीं कर सकता। मानव-रुधिर का एक बार आस्वादन कर लेने पर व्याघ्र मनुष्य के पीछे पड़ता है। उसी प्रकार एक बार मैथुन-सुख प्राप्त करने पर मन सदा उसके लिए लालायित रहेगा। विचार के द्वारा कुतूहल की तरंग को मार डालिए। अलिंग आत्मा का चिन्तन कीजिए। ब्रह्मचर्य की महिमा, अशुद्ध जीवन के दोष तथा सतत आत्म-चिन्तन के द्वारा कामुक वृत्तियों को नष्ट कर डालिए।

अन्धे ब्रह्मचारी में भी, जिसने स्त्री के मुख को कभी देखा तक नहीं, काम-वृत्ति बड़ी प्रबल रहती है। ऐसा क्यों? यह पूर्व जन्म के संस्कारों का फल है। आप जो-कुछ भी करते अथवा विचारते हैं, वह आपके चित्त में गहरा जम जाता है। आत्म-ज्ञान से ही इन संस्कारों को परिदग्ध किया जा सकता है। काम-वासना से शरीर एवं मन परिपूरित हो जाते हैं, संस्कार बड़ी वृत्तियों का रूप लेते हैं और वह बेचारा अन्धा व्यक्ति पीड़ित होता है। इससे यह स्पष्टतः प्रमाणित होता है कि पुनर्जन्म सत्य है।

विचार ही सच्चा कार्य है। परन्तु किसी मनुष्य को वास्तव में गोली से मार देना तथा उसे गोली मारने का विचार करना-दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है। लैंगिक सुखोपभोग करना तथा इसका विचार करना-इन दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है।

दार्शनिक रूप से मनुष्य को मारने का विचार करना तथा मैथुन-सुख भोगने का विचार करना-दोनों ही वास्तविक कार्य हैं। कामना कर्म से भी अधिक है। ईश्वर मनुष्य की प्रवृत्ति के अनुसार ही फल देता है। अपने विचारों से शुद्ध बनिए, तभी आप ईश्वर के साम्राज्य में प्रवेश कर सकेंगे, तभी ईश्वर आपके हृदय सिंहासन पर आसीन होगा।

हिमालय की गुहा में मौन रूप से ध्यान करने वाला योगी ऐसा विचारता है कि 'मैंने आध्यात्मिकता में बड़ी प्रगति कर ली है।' वह उन लोगों के प्रति घृणा का भाव रखता है जो ध्यान के साथ-साथ अथक निष्काम सेवा के द्वारा अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयास कर रहे हैं। वह योगी वैराग्य तथा तितिक्षा से सम्पन्न हो सकता है। आध्यात्मिक शास्त्रों के अध्ययन में वह काफी कुशल हो सकता है। वह कठिन सर्दी सह सकता है। वह रोटी-दाल पर ही रह सकता है। वह एक आसन में बहुत देर तक बैठ सकता है। परन्तु उसमें करुणा, विश्व-प्रेम, सहिष्णुता, उदारता, साहस इत्यादि गुणों की कमी हो सकती है। मैदानी भाग में आने पर वह गरमी नहीं सह सकेगा तथा समाज के लोगों के बीच अपने मन का समत्व भी नहीं रख सकेगा। परन्तु कर्मयोगी सद्गुणों से सम्पन्न तथा समत्व-बुद्धि का हो सकता है। ऐसी हालत में वह हिमालय के ध्यानयोगी से कहीं बढ़ कर है। साधक में सभी सद्गुणों का विकास होना चाहिए। वह गरमी-सर्दी सहने में भी समर्थ बने। तभी वह पूर्ण ज्ञानी बन सकता है। **"समत्वं योग उच्यते।"**

सांसारिक मनुष्य को धन तथा पद का अभिमान होता है। उसे अपने बच्चे तथा स्त्री के लिए बड़ा मोह हो सकता है। परन्तु संन्यासी या योगी को महान् आध्यात्मिक एवं नैतिक अभिमान होता है। वह ऐसा समझता है, "मैं गृहस्थी से बढ़ कर हूँ। मैं तो महान् योगी हूँ। मैं बारह घण्टे तक ध्यान कर सकता हूँ। मुझमें बहुत शुद्धता, त्याग तथा वैराग्य है।" इस प्रकार का संन्यास-अभिमान गृहस्थियों के अभिमान से कहीं अधिक खतरनाक है। इसको दूर करना बड़ा ही कठिन है।

'मैं कौन हूँ' का विचार सुगम साधना नहीं है। वही मनुष्य इसका अभ्यास कर सकता है जिसके पास सबल, शुद्ध तथा सूक्ष्म बुद्धि है; जो साधन चतुष्टय से सम्पन्न है; जिसे वेदान्तिक प्रक्रिया-पंचीकरण, नेति नेति-सिद्धान्त, अन्वयव्यतिरेक, भाग-त्याग-लक्षण, अध्यारोप-अपवाद, पंचकोश-विवेक, आत्म-तत्त्व का समुचित ज्ञान है। अधिकारी साधक ही 'मैं कौन हूँ' प्रश्न का उत्तर ध्यान में प्राप्त कर सकता है, अन्यथा मन साधक को भ्रमित करता रहेगा।

(५)

प्रत्येक हृदय में दिव्य ज्योति जल रही है। इन्द्रियों को समेट कर तथा मन को शान्त बना कर आप अन्तर्चक्षु द्वारा दिव्य ज्योति को देख सकते हैं।

नव-द्वारों से सम्पन्न पिंजड़े में जीव नाम का एक छोटा पक्षी वास करता है। अहंता, ममता तथा वासनाओं को विनष्ट कर इस मांस-पिंजर से मुक्त हो सकता है।

पत्थर पिघल सकता है; परन्तु अभिमानी व्यक्ति का हृदय नहीं पिघल सकता। वह हीरा या वज्र से भी अधिक कठोर है। अथक मानव सेवा, सत्संग, जप तथा ध्यान के द्वारा उसे कोमल बनाया जा सकता है।

भगवान् का नाम कितना मधुर है। हरि, राम, कृष्ण, शिव के नाम कितने शीतल तथा प्रेरणात्मक हैं। नाम आपके भय, शोक, दुःख तथा दर्द को दूर भगा देता है और आपके हृदय को सुख, शान्ति, बल एवं साहस से भर देता है। सन्तप्त हृदय तथा दुर्बल स्नायुओं के लिए नाम ही परम औषधि है। नाम वह अमृत है जो अमृतत्व एवं अमर सुख प्रदान करता है। सदा ईश्वर के नाम का स्मरण कीजिए। उसके नाम का गायन कीजिए। अपनी साँस के साथ उसके नाम को लीजिए। आप जन्म-मृत्यु के चक्र से विमुक्त हो जायेंगे।

धारणा का फल है ध्यान। ध्यान का फल है आत्म-साक्षात्कार। आत्म-साक्षात्कार का फल है मोक्ष। धारणा में आप अपने सारे विचारों को समेटते हैं तथा मन को किसी एक बिन्दु या विचार में एकाग्र बनाते हैं। ध्यान में एक ही विचार का अनवरत प्रवाह बना रहता है।

जो चट्टान के भीतर रहने वाले मेढक की देखभाल करता है, वही आपकी भी देखभाल करेगा। श्रद्धा की कमी क्यों? हे राम ! भगवान् में तथा उसकी कृपा में जीवन्त, अविचल एवं अटूट श्रद्धा रखिए। निश्चिन्त बन जाइए।

जो कहता है, वह जानता नहीं। जो जानता है, वह कहता नहीं। अधजल गगरी छलकती जाती है। जो अधिक बोलता है, वह सोचता कम है और काम भी कम ही करता है।

सावधान बनिए। लोगों के स्वभाव का अध्ययन कीजिए। लोगों के साथ रहते समय बहुत सावधान रहना चाहिए। धोखे में न पड़िए। मनोविज्ञान का ज्ञान रखिए। लोगों के आचरण, वाणी, मुखाकृति, मुस्कान तथा चाल-ढाल से ही उनका अध्ययन कर लीजिए। उनके आहार-विहार, उनकी पढ़ने की पुस्तकें तथा उनके संगियों के अध्ययन से आप उनका अध्ययन कर सकेंगे।

अपने स्वप्नों के अध्ययन द्वारा आप अपनी आध्यात्मिक उन्नति का भी मापन कर सकते हैं। यदि स्वप्न में बुरे विचार नहीं आते, यदि आप अपने इष्टदेवता का समय-समय पर दर्शन करते हैं, यदि स्वप्न में भी आप इष्ट-मन्त्र का जप करते हैं तो निश्चित ही आपने आध्यात्मिक मार्ग में बड़ी उन्नति कर ली है।

पतंजलि महर्षि के योग-सूत्र में तथा किसी भी वेदान्त-ग्रन्थ में कुण्डलिनी का नाम नहीं आता। 'तत्त्वमसि', 'अहं ब्रह्मास्मि' महावाक्यों के लक्ष्यार्थ पर ध्यान कर ज्ञानयोगी ब्रह्माकार-वृत्ति के द्वारा निर्विकल्प समाधि में प्रवेश करता है। वह कुण्डलिनी शक्ति को जगाने के लिए कभी भी प्रयास नहीं करता। कुण्डलिनी को बिना जगाये ही वह समाधि में प्रवेश कर सकता है। परन्तु यदि वह कुछ भौतिक सिद्धियों को प्राप्त करना चाहे तो कुण्डलिनी को जगा सकता है। वह संकल्प-शक्ति के द्वारा ही कुण्डलिनी को जगा सकता है। इसके लिए उसे प्राणायाम, आसन, बन्ध, मुद्रा अथवा अन्य किसी भी हठयौगिक क्रिया की आवश्यकता नहीं पड़ती।

आत्मज्ञान प्राप्त कर लेने पर ही आपमें पूर्ण अनासक्ति हो सकती है। साधना-काल में मन एक-न-एक वस्तु से आसक्त रहेगा ही। आपको बारम्बार सभी प्रकार की आसक्तियों को असंग-शस्त्र से दृढ़तापूर्वक दूर करना होगा- "असंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा" (गीता : १५/३)।

आपको यह भाव बनाये रखना चाहिए कि आत्मा, ईश्वर, देवता तथा मन्त्र एक ही हैं। भाव के साथ आपको गुरु-मन्त्र अथवा इष्ट-मन्त्र का जप करना चाहिए। तभी आप मन्त्र-सिद्धि या ईश्वर-साक्षात्कार शीघ्र प्राप्त कर सकेंगे।

सबसे सुन्दर पुष्प जो आप भगवान् को अर्पित कर सकते हैं, वह आपका हृदय ही है। अपने अन्दर कैलास के असीम धाम में, अपार आनन्द तथा शाश्वत शान्ति के साम्राज्य की अधिकाधिक गहराई में प्रवेश कीजिए।

आप अपने इष्ट, पथ प्रदर्शक, परम आश्रय तथा लक्ष्य का साक्षात्कार करें !

(६)

अमर आत्मा हिमालय के हिम जैसा शुद्ध, सूर्य जैसा चमकीला, आकाश जैसा व्यापक, सागर जैसा अथाह, ऋषिकेश की गंगा जैसा शीतल है। वह जगत्, शरीर, मन तथा प्राण का अधिष्ठान है। इस आत्मा से अधिक मधुर कोई वस्तु नहीं है।

हृदय को शुद्ध बनाइए तथा ध्यान कीजिए। अपने हृदय में गहरा गोता लगाइए। आप आत्मा को प्राप्त करेंगे। गम्भीर गोता लगा कर ढूँढ़ने पर ही आप आत्म-मुक्ता को प्राप्त कर सकेंगे। यदि किनारे-किनारे ही रहेंगे तो टूटी-फूटी कौड़ियाँ ही हाथ लगेंगी।

जिस प्रकार वर्षा बादलों में, मक्खन दूध में, सुगन्धि पुष्प में निहित है, उसी प्रकार आत्मा सभी नाम-रूपों में निहित है। जिसकी बुद्धि सूक्ष्म, एकाग्र तथा तीव्र है, वह सतत गम्भीर ध्यान से आत्मा का दर्शन कर सकता है।

जो किसी स्त्री की ओर उसी तरह दृष्टि-निक्षेप करता है जिस तरह पुत्र अपनी माँ की ओर और साथ ही उससे अलग रहता है, जिसने काम तथा क्रोध को वशीभूत कर लिया है, जिसको संसार की नश्वर वस्तुओं की ओर कोई आकर्षण नहीं और जो ध्यान का नियमित अभ्यास कर रहा है, वह शीघ्र ही उस परम धाम को प्राप्त करेगा जहाँ से पुनः इस मृत्युलोक को नहीं लौटते।

चीनी तथा चीनी के खिलौने, बरतन तथा मिट्टी, लोहे की कांटी तथा तलवार, जल तथा फेन, आभूषण तथा सोना- ये दो वस्तुएँ नहीं हैं। ये एक ही हैं। इसी भाँति सच्चे ज्ञान के उदय होने पर विभिन्नतामय जगत् केवल आत्मा ही रह जाता है, जीवात्मा परमात्मा एक बन जाते हैं।

आत्मा सारे संसार में व्याप्त है। सभी आत्मा है। ऐसी कोई वस्तु नहीं जो आपमें न हो। आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लेने पर आप किसकी कामना करेंगे, क्योंकि आपके लिए कोई काम्य वस्तु नहीं रह जायेगी।

पुराने अशुभ संस्कार बदले तथा विनष्ट किये जा सकते हैं। मन तो संस्कारों का गट्ठर ही है। उसके साथ साहसपूर्वक युद्ध कीजिए। वीरतापूर्वक संग्राम कीजिए-रोटी के लिए नहीं, रुपये के लिए नहीं, नाम तथा यश के लिए नहीं; अपितु आत्म-साम्राज्य के लिए, नित्य शान्ति के असीम धाम के लिए सांसारिक संस्कारों का विनाश कीजिए। वही महान् योद्धा है जो आन्तरिक संग्राम-क्षेत्र में अपने पुराने संस्कारों के साथ वैराग्य की तलवार तथा विवेक के कवच को धारण कर युद्ध करता है। वह वास्तविक योद्धा नहीं है जो मशीनगनों से शत्रुओं को परास्त करता है। आध्यात्मिक सैनिक के लिए सत्त्व-बल का आधार है; परन्तु सांसारिक सैनिक के लिए रज तथा तम का। राम-रावण युद्ध में राम सात्त्विक थे और रावण तामसिक। एवरेस्ट पर्वत के शिखर पर चढ़ जाना सुगम है, नन्दा पर्वत की ऊँचाइयों पर विजय प्राप्त कर लेना आसान है; परन्तु हिमालय रूपी आत्मा की चोटी पर चढ़ना बड़ा कठिन है। अडिग साधक धैर्य, संलग्नता, श्रम तथा साहस के साथ धीरे-धीरे एक-एक चोटी करके ऊपर चढ़ता है, एक-एक कर इन्द्रियों का दमन करता है, एक-एक कर वृत्तियों का निरोध करता है, एक-एक कर वासनाओं का उन्मूलन करता है तथा अन्ततः आत्म साक्षात्कार की चोटी को प्राप्त कर लेता है।

नये साधकों को रसोईघर के निकट वाले कमरे में ध्यान के लिए नहीं बैठना चाहिए; क्योंकि मन सुस्वादु पकवानों का चिन्तन करने लगेगा।

यदि अपने सामने गरम चाय तथा कुछ मिठाई रख कर आप उपनिषद् का स्वाध्याय अथवा ध्यान करेंगे, तो आपको गम्भीर ध्यान नहीं लग सकेगा। मन का एक भाग मिठाई तथा चाय के विषय में विचार करता रहेगा। नये साधकों को विक्षेप के इन अल्प कारणों को दूर कर लेना चाहिए, तब उन्हें ध्यान में बैठना चाहिए।

सभी के साथ समान रूप से बरताव कीजिए। गरीबों तथा रोगियों की सेवा कीजिए। सभी प्रकार की आसक्तियों को काट डालिए। पीड़ितों की सहायता कीजिए। आवेगों को कुचल डालिए। वासनाओं तथा अभिमान का उन्मूलन कीजिए। विषय-सुखों का परित्याग कीजिए। ध्यान कीजिए तथा आत्मा की एकता का साक्षात्कार कीजिए। दूसरों को भी उनके ज्ञानार्जन में सहायता दीजिए।

जीवन्मुक्त अथवा ज्ञानी ईश्वरीय चेतना से प्रदीप्त, अमृत-पान से उन्मत्त असीम आत्मा में परिपूर्ण, समदृष्टि से युक्त तथा समत्व बुद्धि से सम्पन्न हो कर सर्वत्र आत्मा के ही दर्शन करता है तथा अपने शुद्ध प्रेम में सभी को सन्निहित करता है।

११. साधना तथा विशिष्ट मनोविज्ञान

सावधानीपूर्वक अपनी सारी भावनाओं का निरीक्षण कीजिए। यदि आपमें उदासी की भावना हो, तो थोड़ा दूध या चाय पी लीजिए। शान्त बैठ जाइए। आँखें बन्द कर लीजिए। उदासी के कारण का पता लगाइए और उसे दूर करने का प्रयास कीजिए। प्रतिपक्ष-भावना सर्वोत्तम तरीका है। धनात्मक से ऋणात्मक पर विजय मिलती है। यह प्रकृति का महान् नियम है। गम्भीरतापूर्वक प्रसन्नता का विचार कीजिए। अनुभव कीजिए कि आपमें यह गुण वर्तमान है। बारम्बार इस मन्त्र को मन-ही-मन दुहराइए : **"**ॐ प्रसन्नता**,** मुदिता।**"** मुस्कराइए तथा कई बार हँसिए। कभी-कभी संगीत गाइए जिससे प्रेरणा मिल सके। उदासी को दूर करने के लिए संगीत बहुत ही लाभकर है। ॐ का जप जोरों से कीजिए। खुली वायु में दौड़िए। शीघ्र ही उदासी दूर हो जायेगी। यही राजयोगियों की प्रतिपक्ष भावना का तरीका है। इच्छा-शक्ति के प्रयोग से तथा आज्ञा दे कर बलपूर्वक उदासी को हटाने से 'इच्छा-शक्ति' पर आघात पहुँचता है, अन्यथा यह सबसे अधिक प्रभावशाली है। इसके लिए प्रचुर इच्छा-शक्ति की आवश्यकता है। साधारण लोग इसमें सफल नहीं होंगे। प्रतिपक्ष भावना के द्वारा थोड़े समय में ही ऋणात्मक भावना को बदल सकते हैं। इसका प्रयास कीजिए और अनुभव कीजिए। बारम्बार विफल होने पर भी इस अभ्यास को जारी रखिए। कुछ अभ्यास के बाद आप सफल हो ही जायेंगे।

अन्य सभी ऋणात्मक भावनाओं को आप इसी प्रकार दूर कर सकते हैं। यदि क्रोध है तो उसे प्रेम से, कठोरता को दया से, बेईमानी को ईमानदारी से, कृपणता को उदारता से दूर कीजिए। मोह को विवेक तथा आत्म-विचार द्वारा भगाइए। अभिमान के लिए नम्रता का चिन्तन कीजिए। दम्भ को सरलता से, द्वेष को भद्रता तथा हृदय की विशालता से, कायरता को साहस से दूर भगाइए। आप ऋणात्मक को दूर भगा कर धनात्मक अवस्था में स्थित हो जायेंगे। लगातार अभ्यास की आवश्यकता है। अपने साथियों के चुनाव में सावधान रहिए। बहुत थोड़ा बोलिए और वह भी उपयोगी मामलों में ही।

१२. सांसारिक वातावरण में साधना का सुगम तरीका

अविद्या के आवरण के कारण ही मनुष्य अपने स्वरूप-सच्चिदानन्द को भूल गया है। अपने खोये हुए ईश्वरत्व को प्राप्त करने के लिए संसार का त्याग कर हिमालय की गुफाओं में जाने की कोई आवश्यकता नहीं। यहाँ मैं सबसे सुगम साधना बतला रहा हूँ जिसके अभ्यास से वह विविध कार्यों में रत रहते हुए भी ईश्वर-चैतन्य को प्राप्त कर सकता है। आपको ध्यान के लिए अलग कमरा तथा निश्चित समय की आवश्यकता नहीं। काम करते हुए हर दो-तीन घण्टे में एक बार आँखें बन्द कर ईश्वर तथा उसके दिव्य गुण-करुणा, प्रेम, शान्ति, सुख, ज्ञान, शुद्धता, पूर्णता आदि पर ध्यान कर

लीजिए तथा 'हरि ॐ' या 'श्री राम' या 'राम राम' या 'कृष्ण कृष्ण' किसी भी मन्त्र का जप कीजिए। रात्रि में भी जब कभी मल-मूत्र त्याग के लिए उठें या किसी भी कारणवश उठें, तो उस समय ऐसा ही करें। करवट लेते समय भी इस अभ्यास को करें। अभ्यास के द्वारा ही इसकी आदत दृढ़ हो जायेगी। अनुभव कीजिए कि शरीर ईश्वर का चल-मन्दिर है, आपका कार्यालय अथवा व्यवसायगृह ही बड़ा मन्दिर या वृन्दावन है तथा हर कार्य-टहलना, बोलना, चलना, खाना, श्वास लेना, देखना, सुनना आदि ईश्वर की पूजा ही है। कार्य ही उपासना है। कार्य ही ध्यान है।

फल की भावना तथा कर्तापन की भावना का परित्याग कीजिए। 'मैं कर्ता हूँ', 'मैं भोक्ता हूँ' की भावना का परित्याग कीजिए। अनुभव कीजिए- "मैं ईश्वर के हाथ में निमित्त मात्र हूँ।" वह आपकी इन्द्रियों से कर्म करता है। यह भी अनुभव कीजिए कि यह जगत् ईश्वर की अभिव्यक्ति है, यह विश्व वृन्दावन है तथा हमारे बच्चे, स्त्री, माता-पिता सभी ईश्वर के बच्चे हैं। हर चेहरे तथा विषय में ईश्वर को ही देखिए। सदा शान्त तथा सन्तुलित मन रखिए। यदि आप इस परिवर्तित दृष्टिकोण तथा दिव्य भाव को अपने दैनिक जीवन में बनाये रखें, तो दीर्घकालीन प्रयास के द्वारा आपके सारे कर्म योग बन जायेंगे। यह पर्याप्त है। आप शीघ्र ही ईश्वर साक्षात्कार करेंगे। यह सक्रिय योग है। यह बहुत ही शक्तिशाली साधना है। मैंने आपको बहुत ही सुगम साधना दी है। फिर कभी ऐसा न कहियेगा, "स्वामी जी, मेरे पास तो आध्यात्मिक साधना के लिए समय ही नहीं है।" यदि उपर्युक्त साधना का अल्प अभ्यास भी आप तीन महीने कर लेंगे, तो आपको अपने में पूर्ण परिवर्तन का अनुभव होगा।

नित्य आधे घण्टे तक अपनी नोटबुक में इष्टमन्त्र को लिखिए। मन्त्र लिखते समय मौन रहिए तथा शरीर को एक ही आसन पर रखिए। मोटे अक्षरों में कागज के टुकड़ों पर

इन्हें लिख डालिए : **"**सत्य बोलो**"**, **"**ॐ साहस**"**, **"**शुद्धता**"**, **"**मुझे अभी ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहिए**"**, **"**समय बहुमूल्य है**"**, **"**ब्रह्मचर्य दिव्य जीवन है**"**, **"**मैं साहस**,** शुद्धता**,** करुणा**,** प्रेम तथा धैर्य का मूर्त रूप हूँ।**"** इन्हें अपने शयनगृह, भोजनालय, बरामदे तथा अन्य कमरों में लगा दीजिए। कुछ पत्रों को अपनी जेब तथा डायरी में भी रखिए। दिव्य गुणों के अर्जन के लिए यह सुगम मार्ग है।

१३. साधना के कुछ गुप्त रहस्य

प्राणायाम के अभ्यास से साधक दीर्घायु प्राप्त कर सकते हैं। स्वस्थ मनुष्य हर मिनट में १४ या १६ श्वास लिया करता है। निद्रा, व्यायाम, दौड़ आदि के समय श्वास की गति बढ़ जाती है। कुम्भक के अभ्यास से श्वास को रोकने पर योगी की आयु बढ़ती है। श्वास की संख्या जितनी कम होगी, उतनी ही अधिक आयु की प्राप्ति होगी।

कुत्ता और घोड़ा अधिक श्वास लेते हैं। कुत्ता करीब-करीब ५० बार प्रति मिनट श्वास लेता है और यही कारण है कि इसकी आयु १४ वर्ष के लगभग होती है। घोड़ा ३५ बार श्वास लेता है और उसकी आयु २९ से ३० वर्ष की है। हाथी २० बार प्रति मिनट श्वास लेता है और इसकी आयु करीब १०० वर्ष की है। कछुआ एक मिनट में ५ बार श्वास लेता है तथा इसकी आयु ४०० साल की है। सर्प एक मिनट में दो या तीन बार श्वास लेता है तथा इसकी आयु ५०० से १००० वर्ष की है।

कामनाएँ तथा इच्छाएँ जितनी कम होंगी, उतनी ही श्वास की संख्या में कमी होगी। जो जप, ध्यान, ब्रह्मचर्य तथा स्वाध्याय करता है, उसकी श्वास कम तथा धारणा-शक्ति अधिक होगी। श्वास की संख्या में कमी का अर्थ है- धारणा शक्ति में वृद्धि, आत्मिक जीवन में गम्भीरता तथा अधिकाधिक शान्ति।

नाभि में सूर्य-मण्डल अथवा अग्नि है। चन्द्र मण्डल अथवा अमृत आज्ञा चक्र से थोड़ा नीचे है। अमृत का स्राव होता है तथा अग्नि उसे सुखा डालती है। इससे आपकी आयु क्षीण होती है। यदि आप विपरीतकरणी मुद्रा या सर्वांगासन का अभ्यास करें, तो आप मृत्यु पर विजय प्राप्त करेंगे। आपकी आयु दीर्घ होगी। इस आसन में अग्नि ऊपर रहती है। अमृत का स्राव अग्नि में नष्ट नहीं हो पाता। अतः अमृत शरीर तथा नाड़ियों का पोषण करता है तथा जीवन दीर्घ होता है। अतः सुन्दर स्वास्थ्य एवं दीर्घायु की प्राप्ति के लिए इस आसन का अभ्यास बहुत ही लाभकर है।

यह शारीरिक विपरीतकरणी मुद्रा है। ज्ञान विपरीतकरणी मुद्रा के अभ्यास से आप अमृतत्व तथा नित्य सुख को प्राप्त कर सकते हैं। आप ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। ज्ञान विपरीतकरणी मुद्रा क्या है? अपने दृष्टिकोण को बदल डालिए। नाम-रूपों का निषेध कर ब्रह्म अथवा आत्मा के ही सर्वत्र दर्शन कीजिए।

मनुष्य को सबल मन की प्राप्ति नहीं हो सकती, यदि वह मन की विक्षिप्त किरणों को उसी प्रकार एकाग्र न कर ले, जिस तरह लेंस से सूर्य की किरणों को एकाग्र करते हैं। जिस प्रकार लेंस के सहारे किरणों को एकाग्र कर आप बहुत चीजों को जला सकते हैं, उसी प्रकार मन की विक्षिप्त किरणों को वैराग्य, विवेक के द्वारा केन्द्रित कर आप चमत्कार कर सकते हैं, आप अमरात्मा के आश्चर्यों का अनुभव कर सकते हैं।

मल, मूत्र तथा कफ में अल्पता, आँख तथा चेहरे में तेज, सुन्दर वर्ण, शरीर में स्फूर्ति, मधुर वाणी, प्रचुर वीर्य, ज्योति दर्शन, रोग तथा आलस्य से मुक्ति ये योगाभ्यास के प्रथम लक्षण हैं।

दूर-दर्शन, दूर-श्रवण-ये योग-मार्ग के द्वितीय लक्षण हैं।

अग्नि, जल तथा तेज तलवार के ऊपर योगी चल सकता है। वह आकाश में विचरण कर सकता है। उसे त्रिकाल ज्ञान की प्राप्ति होती है। ये तीसरे, चौथे तथा पाँचवें लक्षण हैं। अन्ततः वह प्रकृति तथा तीन गुणों से मुक्त हो कर निर्विकल्प या निर्बीज समाधि के द्वारा कैवल्य प्राप्त कर लेता है।

१४. साधना का सारांश

राजयोगी इन आठ सीढ़ियों पर एक-एक कर चढ़ता है-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। प्रारम्भ में यम तथा नियम के द्वारा वह नैतिक सम्पत्ति प्राप्त कर अपने में शुद्धता लाता है। तब वह आसन में स्थिरता लाता है। इसके बाद वह मन को स्थिर बनाने तथा नाड़ी-शुद्धि के लिए प्राणायाम का अभ्यास करता है। तदनन्तर प्रत्याहार, धारणा तथा ध्यान के अभ्यास से समाधि प्राप्त करता है। संयम के द्वारा उसे बहुत-सी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। वह अपने मन की सारी वृत्तियों का निरोध करता है।

हठयोग भौतिक शरीर तथा प्राणायाम से सम्बन्ध रखता है। राजयोग मन से सम्बन्ध रखता है। राजयोग तथा हठयोग परस्परावलम्बी हैं। दोनों के अभ्यास तथा ज्ञान के बिना कोई भी योगी पूर्ण नहीं हो सकता। हठयोग के समुचित समाप्त होने पर राजयोग का प्रारम्भ होता है। हठयोगी शरीर तथा प्राण से अपनी साधना का प्रारम्भ करता है; परन्तु राजयोगी अपने मन के स्तर से। ज्ञानयोगी अपनी बुद्धि तथा इच्छा-शक्ति से साधना प्रारम्भ करता है। यही मुख्य अन्तर है। राजयोग में सफलता पाने के लिए मनुष्य को मन के रहस्य तथा उसके नियन्त्रण के तरीकों का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए।

हठयोग के साधक को चाहिए कि वह आसन, प्राणायाम, मुद्रा तथा बन्ध के द्वारा मूलाधार चक्र में प्रसुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करे। उसे प्राण तथा अपान के योग के लिए प्रयत्न करना चाहिए तथा संयुक्त प्राण-अपान को सुषुम्ना नाड़ी से ले जाना चाहिए। श्वास को रोकने से गरमी बढ़ती है तथा वायु कुण्डलिनी के साथ ऊपर सहस्रार चक्र की ओर विभिन्न चक्रों से होते हुए जाती है। जब कुण्डलिनी सहस्रार चक्र में भगवान् शिव से संयुक्त होती है, तब योगी समाधि प्राप्त कर परम शान्ति, सुख तथा अमृतत्व का उपभोग करता है।

अध्याय २: साधना की महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाएँ

१. साधना में वासना की गति

साधक इस व्यावहारिक जगत् के तूफ़ानों के बीच संग्राम करता है। हर कदम पर कठिनाइयाँ आ खड़ी होती हैं। प्रलोभन तथा जाँच समय-समय पर उस पर आक्रमण करते हैं। वह वीरतापूर्वक उन कठिनाइयों का सामना करता है; परन्तु अन्ततः वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि इन बाधक परिस्थितियों से अलग रह कर ही साधना करना उचित होगा। वह संसार के व्यावहारिक कार्यों के कोलाहल से अलग हट कर किसी आध्यात्मिक संस्था में जाता है तथा कुछ समय निष्काम सेवा में लगा कर अपनी साधना क्रमिक रूप से करता है; परन्तु कुछ साधना करने के उपरान्त वह अपने में अधिकाधिक शुद्धता, नैतिक तथा आध्यात्मिक प्रगति को न देख कर उसके विपरीत अधिकाधिक मलिनता, बुरे विचार तथा आवेगों का अनुभव करने लगता है। कैसा आश्चर्य है यह? क्या उसका पतन हो रहा है? कैसी विचित्र स्थिति से उसको गुजरना पड़ रहा है? क्या वह सचमुच प्रकाश की ओर मुड़ रहा है या अधिकाधिक अन्धकार की ओर ? ये विचार उसके मन को अशान्त कर डालते हैं। यदि वह धैर्यपूर्वक अपने मन का निरीक्षण एवं विश्लेषण करे, तो वह शीघ्र ही सत्य को जान पायेगा और उसका मन शान्त हो जायेगा।

यह पतन नहीं है; अपितु शुद्धिकरण की प्रक्रिया है। आध्यात्मिक विकास में कभी-कभी ठीक उलटा प्रतीत होता है। इसका कारण है। जो वस्तुएँ पूर्णतः विपरीत हैं, वे कभी-कभी समान मालूम पड़ती हैं। अति अल्प स्पन्दन कानों को सुनायी नहीं देते और अत्यधिक स्पन्दन भी सुनायी नहीं पड़ते। स्थिर वस्तु गतिशील नहीं मालूम पड़ती। अत्यधिक वेग से घुमाने पर भी वह वस्तु स्थिर मालूम पड़ती है। उसी तरह साधना के मार्ग में जब शुद्धिकरण की प्रक्रिया जारी होती है, जिससे मल दूर होने लगता है, तब वह ठीक विपरीत अशुभ वासना या मल के अर्जन के समान मालूम पड़ती है।

यहाँ हमें इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए। जब ये आन्तरिक वासनाएँ निकलने लगें, तो साधक को बड़ी सावधानी रखनी चाहिए कि कहीं उनको शारीरिक सहयोग प्राप्त न हो। जिस प्रकार बाँध के छोटे-छोटे द्वारों से अधिक पानी को बाहर निकाल दिया जाता है, उसी प्रकार साधक भी अपने मन से वासनाओं को निकल जाने दे। फिर साधक स्वस्थ हो जाता है और अपनी साधना में प्रगति करने लगता है। यदि इन वासनाओं को क्रिया में परिणत किया गया तो इससे और बन्धनों का निर्माण होगा; मुक्ति की ओर न बढ़ कर आप बन्धन की ओर बढ़ने लगेंगे।

दो प्रकार की प्रक्रियाएँ हैं जिन्हें साधक को याद रखना चाहिए तथा विचारपूर्वक उनका उपयोग करना चाहिए। यह सदा आवश्यक नहीं कि आप सदा उन अशुभ शक्तियों को निकल जाने दें। उनको चित्त में ही, जो उनकी जड़ है, विनष्ट अथवा रूपान्तरित किया जा सकता है। जिस प्रकार सूर्य की गरमी जल को सुखा डालती है, ठीक उसी तरह नियमित साधना के द्वारा वासना दिन-प्रति-दिन रूपान्तरित होती जाती है। फिर भी जो शक्तियाँ बाहर निकलने लगें, उन्हें भौतिक जगत् में रूपान्तरित किया जा सकता है, उनको आध्यात्मिक कार्यों में लगा कर दिव्य बनाया जा सकता है। अशुभ वासनाओं के रूपान्तरण के लिए दो प्रकार हैं: आन्तरिक मान लीजिए, काम-वृत्ति अपने को व्यक्त करना चाहती है तो आप उसे दश-बारह बार सूर्यनमस्कार, प्राणायाम, आसन या पुरुषसूक्त, सहस्रनाम, शिवमहिम्नः आदि के कीर्तन में रूपान्तरित कर सकते हैं। रूपान्तरित हो कर ये शक्तियाँ साधना में सहायक बन जाती हैं।

यदि क्रोध की वासना व्यक्त होना चाहे, तो कमरे के अन्दर जा कर जोरों से हँसिए या शान्त बैठ कर प्रेम की तरंगों को एक-एक कर प्रेषित कीजिए। उपनिषद् के शान्ति-मन्त्रों का बारम्बार पाठ कीजिए। आप विश्व-प्रेम से परिप्लावित हो जायेंगे। क्रोध की सारी वासनाएँ विलुप्त हो जायेंगी; उनका स्थान शुद्ध प्रेम ग्रहण कर लेगा।

यह आन्तरिक अथवा आध्यात्मिक तरीका अधिक लाभकर है। रजोगुणी तथा तमोगुणी वासनाओं के रूपान्तरण के लिए यह आवश्यक है। कुछ ऐसी वासनाएँ हैं जिनके लिए समाज की ओर जाने की आवश्यकता पड़ती है।

जब समाज का आकर्षण आपको बलपूर्वक खींचे तो बाजार, चाय की दुकान, डाकघर आदि की ओर जा कर राजनीति, समाचार तथा गपशप में अपनी शक्ति विनष्ट न कीजिए। गरीबों के पास जाइए, पीड़ितों के पास जाइए और देखिए कि आप उनकी सहायता किस प्रकार कर सकते हैं। इस प्रकार आप अपनी साधना को सम्पन्न बना सकते हैं।

यदि भावावेश उमड़ने लगे, तो शान्त रहिए। अपने मित्रों तथा साथियों की ओर न दौड़िए। प्रकृति की ओर जाइए। मेमने तथा गिलहरियों से बातें कीजिए। छोटी-छोटी चिडियों तथा तितलियों से बातें कीजिए। इस तरह चित्त से वासनाओं को निकाल डालिए। आप सुरक्षित रहेंगे।

हाँ, एक बात का आप ध्यान रखें। इसी के सदृश्य एक दूसरी प्रक्रिया है। वासनाएँ निकलना चाहती हैं। बाह्य विषय अथवा उत्तेजना के द्वारा ये वासनाएँ व्यक्त होना चाहती हैं। इस स्थिति को प्रलोभन कहते हैं। यह खतरनाक है। आपके समक्ष दो शक्तियाँ हैं जिनसे आपको लोहा लेना है-आन्तरिक वासना की शक्ति तथा बाह्य उत्तेजना की शक्ति।

इसके लिए कई तरीकों का समन्वय लाभदायक होगा। उपर्युक्त रूपान्तरण की विधि का अनुसरण कीजिए, साथ ही प्रार्थना, उपवास, आत्म-संयम, स्थान-परिवर्तन तथा संकल्प के द्वारा उस विधि को प्रभावशाली बनाइए। आप प्रलोभन के ऊपर विजय प्राप्त करेंगे।

जिस तरह गन्दे जल को फिल्टर कर शुद्ध बनाने के लिए उसे बालू, कोयला तथा कुछ कीटाणुनाशक माध्यमों से हो कर ले जाते हैं, उसी प्रकार जीव चैतन्य को भी मानसिक तथा आवेगात्मक अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। जगत् के व्यावहारिक अनुभव रूखड़े बालू के समान हैं। इनसे स्थूल मल का नाश होता है। परन्तु सूक्ष्म मल को नष्ट करने के लिए जिस प्रकार जल को कोयले से हो कर गुजरना पड़ता है, उसी तरह चित्त के मल को दूर करने के लिए मानसिक अवस्था से हो कर गुजरना पड़ता है। मल-शोधन की यह क्रिया जाग्रत तथा स्वप्न- दोनों अवस्थाओं में होती है।

स्वप्नावस्था में साधक को अपने चित्त पर ही निर्भर करना है। गुरु के विचारों का प्रभाव, इष्टदेव की कृपा (दोनों वास्तव में एक ही हैं) साधक की स्वप्नावस्था में रक्षा करते हैं। कभी-कभी साधक स्वप्न की बातों से जागृति में हर्षित या खिन्न रहता है; परन्तु कभी-कभी स्वप्न की बात मन को याद ही नहीं रहती।

मनुष्य स्वप्न देखता है, उसकी वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं। परन्तु साधक को उसका बोध नहीं रहता; जाग उठने पर वह स्वयं को परिवर्तित-सा अनुभव करता है।

सावधान साधक को विजय प्राप्त होती है। गुरु के चरणों में श्रद्धा रखने वाले सच्चे साधक सफलता प्राप्त करते हैं।

२. साधना में संयम का स्थान

गंगा-जल गंगा-तट के वासियों के लिए सर्वस्व ही है; परन्तु वही जब बाढ़ का रूप धारण करता है तो सैकड़ों जानें चली जाती हैं; वही जल खतरनाक बन जाता है। मनुष्य के जीवन में भी ऐसी ही बात है।

साधारण मनुष्य अपनी इन्द्रियों का गुलाम है। साधारणतः उसका जीवन अनेकानेक विषयों से आक्रान्त है। मनुष्य दो प्रकार के कार्यों के लिए प्रेरित होता है-सुखद एवं आकर्षक वस्तुओं की ओर तथा कुछ विशेष वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करने की ओर। कभी-कभी विशेष विषयों के मामले में दोनों काम जारी रहते हैं- (१) भोग तथा (२) खपत। ये दोनों इन्द्रिय-परायणता के दो पहलू हैं।

इन्द्रिय-परायणता विस्तृत अर्थ रखती है। इन्द्रियों के द्वारा सभी प्रकार के भोग इसमें सन्निहित हैं। फिर भी सभी प्रकार के भोग अनैतिक, अशिष्ट तथा अपराध नहीं हैं। कुछ प्रकार के भोग-जैसे शराबखोरी, व्यभिचार आदि प्रत्यक्ष ही अनैतिक तथा अपराध हैं। इन्हें तो पूर्णतः दूर करना चाहिए। कुछ दूसरे प्रकार के यद्यपि अपराध नहीं हैं, फिर भी मनुष्य के शरीर, मन तथा समाज के लिए हानिकर हैं। तम्बाकू, नसवार लेना, बीड़ी पीना, जुआ खेलना आदि इस श्रेणी में आते हैं। इन कर्मों का भी तिरस्कार किया जाता है। भोजन, पान, शयन, विश्राम तथा शरीर के लिए वस्त्र-ये शारीरिक आवश्यकताएँ हैं। ये कार्य बहुत हद तक नीति-निरपेक्ष हैं; परन्तु इनमें अति लाने पर ये नीति-विरुद्ध बन जाते हैं। सोना सभी के लिए आवश्यक है; परन्तु अत्यधिक सोने से मनुष्य आलसी, मन्द-बुद्धि तथा अन्ततः अपने तथा समाज के लिए भार-स्वरूप बन जाता है। साधक के लिए यह खतरनाक आदत है। उसके लिए यह पाप है जिसका उन्मूलन करना चाहिए। अति-शयन से तमोगुण की वृद्धि होती है जो साधना का निराकरण कर उसकी प्रगति को रोकती है।

भोजन करना भी शरीर के लिए अनिवार्य है। अत्यधिक भोजन करना अनुचित, अनैतिक तथा अपराध है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी ऐसा करना गलत है। शिष्टाचार की दृष्टि से भी यह अनुचित है। अति-भोजन से मनुष्य की कामुक प्रवृत्तियाँ परिपुष्ट होती हैं। मनुष्य में विषय-परायणता बढ़ती है। आर्थिक दृष्टि से भी यह अपराध है।

पहले दो प्रकार के कर्मों का तो पूर्णतः परित्याग करना चाहिए; परन्तु इस तीसरे प्रकार के कर्म में संयम बरतना चाहिए। तीसरे प्रकार के कर्म में वैषयिक खपत तथा उपभोग-दोनों अनिवार्य हैं, फिर भी अत्यधिक करने से ये कर्म भी अनैतिक बन जाते हैं। संयम के द्वारा ही अत्यधिक उपभोग पर रोक लगाते हैं।

संयम के दो प्रकार हैं: (१) अति से बचना तथा (२) चुनाव करना। भोजन को अधिक परिमाण में करने से बचने के लिए मिताहार के सिद्धान्त को लागू कीजिए। यदि स्वादवश अति उपयोग करते हैं, तो आहार का चुनाव कीजिए। राजसिक एवं तामसिक आहार को त्याग कर सात्त्विक आहार कीजिए. भले ही सात्त्विक आहार कम स्वादिष्ट क्यों न हो। रात्रि में एक घण्टा और सो लीजिए; किन्तु दिन में न सोइए।

संयम मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र है। यह मनुष्य की विषय-वृत्तियों पर रोक रखता है। संयम खपत तथा उपभोग की प्रक्रिया को एक सीमा में बाँध कर रखता है। संयम से आप स्वास्थ्य, प्रगति तथा आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करेंगे।

संयम से ही जीवन सार्थक बनता है। संयमी बनिए। जितेन्द्रिय योगी बनिए। संयम से आप तीनों लोकों के सम्राट् बन सकते हैं। संयम से आप आत्म-साक्षात्कर कर सकते हैं।

संयम की जय हो ! संयम ईश्वरीय विभूति है।

३. साधना में दबाव तथा उसके परिणाम

आध्यात्मिक साधना में वास्तविक उन्नति की प्राप्ति के लिए इन्द्रियों पर विजय तथा आत्म-जय अनिवार्य है। इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के लिए मन पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है; क्योंकि वास्तविक इन्द्रिय कर्मेन्द्रिय या बाह्य शरीर के अंग नहीं हैं, अपितु ज्ञानेन्द्रिय हैं जिनका स्थान मनोमय कोश है। बाहरी शारीरिक इन्द्रिय तो वाहन मात्र हैं जिनसे ज्ञानेन्द्रियाँ अपनी तृष्णाओं को परितृप्त करती हैं। अतः यदि मन के दमन तथा प्रत्याहार के द्वारा आन्तरिक पंचेन्द्रिय के शोरगुल को शान्त कर दिया गया, तो कर्मेन्द्रिय केवल मांस के अंग रह जाते हैं जिनमें मनुष्य को उत्तेजित करने की शक्ति नहीं रह पाती। जब मन अन्तर्मुखी रहता है, तो शब्द कानों में प्रवेश करने पर भी कोई चिह्न नहीं छोड़ते। नासिका बहुत प्रकार की गन्धों को लेती है; परन्तु मन को बोध नहीं होता। आत्मलीन मन वाला व्यक्ति टकटकी लगा कर देखते हुए भी कुछ नहीं देखता। गम्भीर अध्ययन में बैठे हुए व्यक्ति की पीठ पर थपकी लगाइए, वह उसका बोध नहीं कर पायेगा। अतः आन्तरिक पंचेन्द्रियों की तृष्णा ही मनुष्य की बाह्य इन्द्रियों में उत्तेजना तथा अशान्ति लाती है।

इससे यह स्पष्टतः परिलक्षित होता है कि इन्द्रियों पर विजय प्राप्ति के लिए तृष्णाओं के उन्मूलन तथा मन पर विजय प्राप्त करने की आवश्यकता है। फिर भी बहुत से साधक इस बात को भूल कर बाह्य इन्द्रियों के दमन के लिए अत्यधिक तपस्या करते तथा उनसे लड़ाई करके, उन्हें भूखे रख कर उनको वशीभूत करना चाहते हैं। प्रारम्भ में थोड़ी सफलता भी मिलती है और साधक गलत साधना को और भी घनीभूत बनाने लगते हैं। जब बाह्य भौतिक दबाव अधिक अनुचित हो जाता है, तब व्यक्ति के मन पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। मनुष्य विभिन्न प्रकार से अपनी प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्तियों का प्रदर्शन करने लगता है। मनुष्य अब तक के सारे दबावों को तोड़ कर इन्द्रिय-भोगों में पिल पड़ता है। दबाव के सारे बन्धन ढीले पड़ जाते हैं। इसके साथ ही मनुष्य के चित्त में बहुत-सी ग्रन्थियाँ पड़ जाती हैं जिनको आसानी से पहचान नहीं सकते।

एकान्त में रहने वाले साधक के लिए यह स्थिति और भी कठिन है। दूसरों के द्वारा समालोचना, सुधार तथा सावधानी का अवसर उसे प्राप्त नहीं होता है। वह स्वयं अपने ऊपर निर्भर है। रजस् तथा विषय-वासना के प्रतिक्रियात्मक आवेग के समय विवेक तथा बुद्धि काम नहीं करते। परन्तु यदि साधक किसी आश्रम अथवा समाज में हो तो अन्य लोग, जिन्हें अनुभव है, उसे पहले ही सावधान कर देंगे। परन्तु ऐसा देखा जाता है कि सावधान करने पर साधक अपने शुभेच्छु व्यक्ति का विरोधी बन बैठता है तथा उसका दुश्मन बन जाता है। उसकी विरोधी प्रवृत्ति के तीन घटक हैं: अचेतन भय, बुद्धि-भ्रम तथा क्षतिपूर्ति की क्रिया।

पहली हालत में यद्यपि वह जानता है तथा अनुभव करता है कि उसका आचरण यद्यपि अनुचित है, फिर भी वह सारी सम्मति तथा सलाहों का विरोध करता है; क्योंकि यदि वह उनके अनुसार चलना प्रारम्भ करे, तो उसे आत्म-संयम की प्राप्ति होगी; परन्तु इससे जिस भोग को प्राप्त करने का उसने निश्चय किया है, उसे वह प्राप्त नहीं कर सकेगा। भोग-वृत्ति से उसके मन का जो भाग आक्रान्त है, वह भय खाता है कि दूसरों के आदेश को मानने से उसे भोगों से हाथ धोना पड़ेगा। यह भय अपनी रक्षा के लिए विरोध का रूप धारण करता है। यह विरोध कभी-कभी इतना उग्र रूप धारण करता है कि उसके अपने शुभ-चिन्तक भी उसके शत्रु बन बैठते हैं।

दूसरी हालत में अनोखे तर्क द्वारा व्यक्ति स्वयं को समझा लेता है कि 'हाँ, मैं ठीक रास्ते पर हूँ।' वह ऐसा अनुभव करता है कि आत्म-संयम के कुछ काल के अभ्यास से अब कुछ दिनों तक उसे उपभोग करने का अधिकार प्राप्त हो गया है तथा वह अपने निश्चय के विरुद्ध किसी प्रकार की सम्मति को सुनना नहीं चाहता। उसकी अन्तरात्मा जानती है कि वह भूल

कर रहा है; परन्तु अन्तरात्मा की वाणी को चित्त में दबा दिया जाता है। यह भ्रम है जो व्यक्ति के राग वशीभूत मन की उपज है।

अल्प विचार से ही स्पष्ट हो जाता है कि साधक भोग में निमग्न होने से पहले स्वयं को समझा लेता है कि यह बिलकुल ठीक है। उपद्रवी इन्द्रियों के वशीभूत हो कर वह गलत कार्य कर बैठता है, तदुपरान्त उन्हें ठीक प्रमाणित करने का प्रयास करता है। वह ऐसा क्यों कर रहा है, इसकी व्याख्या तो नहीं देता; वरन् बुद्धि-भ्रम के कारण ऐसा निश्चय करता है कि जो कुछ मैं कर रहा हूँ, वह ठीक ही है। दुराचार के उपरान्त वह उसे शिष्टाचार प्रमाणित करने के व्यर्थ प्रयास करता है। वह गलत करता है और उसे ठीक बतलाने का प्रयास करता है। वह घोड़े के सामने गाड़ी रखता है।

तीसरी हालत है क्षतिपूर्ति की क्रिया। साधक को यह पता लग जाता है कि वह दूसरों की दृष्टि में नीचे गिर गया है। उसका 'सम्मान' खतरे में है। वह अपने को छोटा समझता है। उसकी क्षतिपूर्ति के लिए तथा दूसरों की दृष्टि में ऊँचा उठने के लिए वह अचेतन रूप से प्रथमाक्रमण का तरीका अपनाता है।

क्षतिपूर्ति की कामना से यह स्पष्ट होता है कि साधक अपनी निम्नात्मा से अभी तक आसक्त है। वह अपने अभिमान को बचाये रखना चाहता है। क्षतिपूर्ति की प्रवृत्ति इसी की परिचायक है। यह साधक को शोभा नहीं देता। आध्यात्मिक मार्ग में प्रवेश करने के समय से ही उसे स्वेच्छापूर्वक अपने उच्च मन के अधीन अपने को अर्पित कर देना चाहिए। आसुरी अभिमान को दमन करने में वह विफल रहा। उसे कम-से-कम अपने गुरु के प्रति आत्मार्पण तो करना ही चाहिए। यह भी उसने नहीं किया। साथ ही उसने मार्ग के आधारभूत सिद्धान्तों की भी उपेक्षा की है। यम तथा नियम ही आधार हैं। यदि उसमें नम्रता है तो क्षतिपूर्ति के प्रथमाक्रमक तरीकों की आवश्यकता न रह जायेगी। मनुष्य शीघ्र ही अपनी गलती स्वीकार कर लेगा और उससे शिक्षा ग्रहण करेगा। न तो उसमें नम्रता है और न अपनी गलती स्वीकार करने की बौद्धिक सच्चाई। वह इस गलत तरीके को काम में लाता है। अब आपको स्पष्ट हो जायेगा कि यद्यपि 'क्षतिपूर्ति' का यह विश्लेषण पूर्णतः मनोवैज्ञानिक है, फिर भी इससे आध्यात्मिक जीवन की निर्माण सम्बन्धी त्रुटियों पर प्रकाश पड़ता है। इससे यह पता चलता है कि साधक में सदाचार की कमी है। इन मामलों को ठीक करने में बड़ी कुशलता, कला तथा अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता है। उनके साथ कैसे व्यवहार किया जाये, यह व्यक्ति-विशेष तथा उसकी परिस्थिति विशेष पर निर्भर करता है।

अब आप शंका कर सकते हैं कि दबाव की क्रिया गलत कैसे हो सकती है? क्या यह सत्य नहीं कि ईंधन को हटा लेने पर अग्नि स्वतः बुझ जाती है। इन्द्रियों की अग्नि के लिए विषय-पदार्थ ही ईंधन हैं। हाँ, यदि इन्द्रिय अग्नि है तो विषय-पदार्थ ईंधन ही ठहरेंगे; परन्तु विचार करने पर पता चलेगा कि इन्द्रिय वास्तव में अग्नि नहीं है। वास्तविक अग्नि तो सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियों की तृष्णा तथा उत्तेजना हैं, जिनकी ज्वाला कर्मेन्द्रिय तथा उनके विषय-भोगों से हो कर फट-फट करती रहती है। स्वाद का उपभोग अस्थिहीन मांसपिण्ड जिह्वा नहीं करती, न तो हाथ का चमड़ा ही स्पर्श के सुख का अनुभव करता है। जिह्वा चखती नहीं, वरन् स्वाद का सन्देश देती है। चर्म स्पर्श नहीं करता, वरन् स्पर्श-सुख का सन्देश देता है।

ज्ञानेन्द्रिय अग्नि हैं। स्मृति, कल्पना, विषय-पदार्थों का चिन्तन तथा उपभोग की सतत कामना और आशा- ये ही ईंधन हैं। ईंधन के आयात को बन्द करना आवश्यक है। भूत की स्मृति को पूर्णतः रोकना, सारी कल्पनाओं का निरोध, दृढतापूर्वक मानसिक विषय-चिन्तन पर रोक तथा विषयों की आशा के परित्याग से ही ईंधन के आयात को बन्द कर सकते हैं। यहीं कारण है कि ऐसा उपदेश दिया जाता है: "भूत को भूल जाइए। भविष्य के लिए योजना न बनाइए। वर्तमान में रहिए।" "वास्तविक त्याग संकल्प-विकल्प के त्याग में ही है।" "मनोजयं एव महाजयम्" तथा "मन जीता तो जग जीता।"

मानसिक विकारों पर विजय पाने के लिए अहिंसक तरीका विशेष प्रभावशाली है। आसन तथा सात्त्विक आहार के द्वारा आन्तरिक समता लाइए, प्राणायाम के द्वारा मन को सूक्ष्म बनाइए, नियमित स्वाध्याय द्वारा कल्पना को दिव्य विचारों में लगाइए और श्रवण, लक्ष्य-चिन्तन, उपासना आदि के द्वारा इन्द्रियों पर विजय पाइए।

अपने मन के ऊपर एक निरीक्षक को नियुक्त कीजिए। सतत विवेक तथा दृढ़ निरोध होना चाहिए। विचार तथा सत्वर निरोध को कभी भी बन्द नहीं करना चाहिए। मनुष्य नैतिक आचरण में आलसी है। वह इस मुख्य कार्य को करने में दिलचस्पी नहीं रखता। अभिमान इस मार्ग में बाधक है; क्योंकि यह तो पूर्णतः आन्तरिक प्रशिक्षण है जिसके लिए प्रदर्शन की कोई आवश्यकता नहीं, जब कि शारीरिक तप तथा बलपूर्वक बाहरी तरीके सभी के लिए वीरतापूर्ण मालूम पड़ते हैं और उनकी प्रशंसा की जाती है। यह अभिमान बड़ा सूक्ष्म है तथा इसे आसानी से समझा नहीं जा सकता। परन्तु फिर भी नैतिक आलस्य तथा शुभेच्छा का अभाव ही मुख्य कारण है। यदि आप वास्तव में प्रगति करना चाहते हैं, तो आप वास्तविक मानसिक नियन्त्रण के लिए सच्चा प्रयास करेंगे। आपको मानसिक आलस्य को दूर भगा कर उच्च मन को सहयोग देना होगा तथा अशुद्ध मन के साथ असहयोग करना होगा। इसको किये बिना आप हठपूर्वक बाह्य साधनों में विफल होते हैं तथा बाहरी कारणों एवं व्यक्तियों को दोष देते हैं अथवा आध्यात्मिक साधना के ही खिलाफ हो जाते हैं। यह आपकी बड़ी भारी गलती है। आपको इससे सबसे भारी क्षति उठानी पड़ती है।

इस विषय का उपसंहार करते हुए एक बात पर विशेष ध्यान रखिए। आप कह सकते हैं कि क्या बाह्य इन्द्रियों को वश में रखने में कोई लाभ या पुण्य नहीं? उनका भी दमन करना आवश्यक है। यह अच्छा है। परन्तु पहले आप इसके उपलक्षण तथा परिसीमा को अच्छी तरह समझ लें। सहज बुद्धि के साथ इनका अभ्यास सहायक सिद्ध होता है। तितिक्षा के अभ्यास में इन्द्रियों से युद्ध करना ठीक है। कभी-कभी एक या दो इन्द्रियों को पूर्णतः नियन्त्रण में रखना ठीक है। उदाहरणतः महीने में एक बार या दो बार एकादशी को आप पूर्ण निर्जल उपवास तथा रात्रि में जागरण रख सकते हैं। इसे एक तरीका मानना चाहिए, न कि इसे ही लक्ष्य समझ बैठने की गलती कर लेनी चाहिए। आन्तरिक आत्म-संयम के लिए यह एक सहायक साधन है। तितिक्षा के विकास के लिए यह उपयोगी है। निःसन्देह इसके बहुत लाभ हैं; परन्तु इसमें त्रुटियाँ भी हैं। मूर्खतापूर्वक अति करने पर साधक की साधना-शक्ति बहुत ही कम हो जाती है।

बाह्य इन्द्रिय-दमन आवश्यक है; परन्तु स्वयं लक्ष्य नहीं है। यह छुरी की तेज धार के सदृश है। अनुचित प्रयोग करने पर खतरा भी हो सकता है। साधना में इसके सम्यक् स्थान को समझ लीजिए और बुद्धिमान् बनिए। इसका समुचित उपयोग कर मन पर नियन्त्रण कीजिए। आप सफल होंगे। आप महिमान्वित होंगे।

आत्म-दमन तथा मन के निग्रह की ओर गीता आपका पथ-प्रदर्शन करे ! भगवान् कृष्ण तथा गौतम बुद्ध जैसे योगीश्वर आपको इन्द्रिय-दमन के लिए अन्तर्दृष्टि प्रदान करें ! ईश्वर आपको इस ज्ञान के सम्यक् उपयोग के लिए प्रेरित करें! आप पूर्णता प्राप्त करें!

४. साधना में त्रिविध अन्तर्गमन

कठोपनिषद् कहती है, "स्वयम्भू ब्रह्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया और यही कारण है कि मनुष्य जगत् को देखता है, परन्तु अन्तरात्मा को नहीं। पर कुछ धीर पुरुष, जो अमृतत्व के इच्छुक हैं, स्थिर मन से दृष्टि को अन्तर्मुख कर अन्तरात्मा को देखते हैं।"

दृष्टि को अन्तर्मुख करने का अर्थ है-सारी इन्द्रियों को समेट लेना। प्रत्याहार तथा दम के अभ्यास से इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों से समेट ली जाती है।

किसी भी सुविधाजनक आसन में बैठ जाइए। आँखें बन्द कर लीजिए। त्रिकुटी (दोनों भौंहों के बीच का स्थान) पर धारणा कीजिए।

गुदा को सिकोड़ कर मूलबन्ध का अभ्यास कीजिए तथा श्वास भीतर खींचिए। श्वास को रोकिए तथा जालन्धरबन्ध का अभ्यास कीजिए ठुड्डी को कण्ठ में लगा कर एकाग्रता का अभ्यास कीजिए।

प्राण को समेटना, मन को इन्द्रिय-विषयों से समेटना तथा इन्द्रियों को उनके विषयों से समेटना-योग-साधना में इन तीनों का अभ्यास एक ही साथ करते हैं। तीनों के सम्मिलित अभ्यास से अधिक लाभ होता है। इस शक्तिशाली योग-साधना से मन सुगमतापूर्वक नियन्त्रित हो जायेगा।

धीरे-धीरे श्वास नासिका में ही संचरित होगी। मन का वेग रुक जायेगा। मन एकाग्रता प्राप्त करेगा। वासनाएँ स्वल्प हो जायेंगी। उपद्रवी इन्द्रियाँ शान्त हो जायेंगी। समता तथा शान्ति रहेगी। योगनिष्ठा की प्राप्ति होगी। निर्विकल्प समाधि लग जायेगी।

५. साधना में धैर्य

योग की पहली आधारशिला है नैतिक पूर्णता-यम-नियम का अभ्यास। अतः सभी दुर्गुणों को दूर करने के लिए प्रयत्नशील बनिए। अन्तर्निरीक्षण कीजिए तथा मन का विश्लेषण कीजिए। एक दुर्गुण के दूर होने पर दूसरा दुर्गुण आ जायेगा। धैर्य रखिए। एक-एक कर सभी दुर्गुणों को दूर कीजिए। यदि आपमें धैर्य है तो आप निश्चय ही सफल होंगे। हम अखबारों को पढ़ने में बहुत समय खोते हैं। आप संसार का समाचार जानने के लिए अखबार पढ़ सकते हैं; परन्तु आवेगों को उत्तेजना देना इसका उद्देश्य नहीं होना चाहिए। अपने निम्न आवेगों का दमन कर लेने पर ही आप वास्तविक शान्ति प्राप्त करेंगे। तभी आपके लिए आध्यात्मिक जीवन की सम्भावना होगी।

आपका मन अनुशासित नहीं है। यही कारण है कि आपको कष्ट भोगना पड़ता है। आप विचार नहीं करते कि वास्तविक सुख का मूल कहाँ है? आप विचार नहीं करते, "मैंने कौन-कौन-से अच्छे कार्य किये हैं।" मातृ-गर्भ में प्रवेश करते समय हमने ईश्वर से जो प्रतिज्ञा की है, उस प्रतिज्ञा को हम याद नहीं रखते। हम आदर्श को याद नहीं रखते। ईश्वर है या नहीं-इन व्यर्थ के विवादों में न पड़ कर धार्मिक जीवन बिताइए। ये सब बेकार विवाद हैं। क्रोधी बनना तो बहुत खराब है। क्रोध का दमन कीजिए। यदि कोई व्यक्ति कुछ अप्रिय कह डालता है, तो आप तुरन्त उसका प्रतिकार करने लगते हैं। हममें सहन-शक्ति नहीं है। हम दुर्बल हैं। मनुष्य पहलवान हो सकता है। वह छह से बारह घण्टे तक शारीरिक व्यायाम कर सकता है। वह बड़ी चट्टान को तोड़ सकता है। परन्तु कटु वचन को सहने की उसमें शक्ति नहीं हो सकती, वह मन से दुर्बल है। हमें मानसिक बल तथा सद्गुणों का अर्जन करना होगा। परन्तु खेद है कि हम इसे शीघ्र ही भूल जाते हैं। हम थोड़ा-बहुत यदा-कदा लिखित जप कर लेते हैं और सिद्धियों की प्रतीक्षा करते हैं। यह पर्याप्त नहीं है। आपको गम्भीर साधना करनी होगी।

अपने घर में एक पृथक् कमरा रखिए। यह आवश्यक है। सदा प्रातः चार बजे उठने का अभ्यास आवश्यक है। लोग कुछ दिनों तक अभ्यास करते हैं, फिर अभ्यास बन्द कर पुनः उसका अभ्यास प्रारम्भ करते हैं। इस आदत को छोड़िए। ब्राह्ममुहूर्त में अभ्यास करने पर आपका मन शीघ्र ही एकाग्र हो जायेगा। यदि आप ध्यान में हैं, तो एकाग्रता में बहुत

सुगमता होगी। अभ्यास से समय पर ध्यान लगने लगेगा। शरीर में पीड़ा रहने पर भी उस समय आपका मन अन्तर्मुखी हो जायेगा। यदि आपको निद्रा सता रही है, तो जोरों से कुछ दार्शनिक कीर्तन गाइए, जैसे- "चिदानन्द, चिदानन्द।" आपमें स्फूर्ति आ जायेगी। अपने मन पर बारम्बार प्रहार कीजिए- "चिदानन्द, चिदानन्द, चिदानन्द हूँ; मैं अमर आत्मा हूँ।" इस गान को गाइए। थोड़ा टहलिए। सारे रोग दूर हो जायेंगे। अपने अन्दर ईश्वरीय सत्ता का भान कीजिए। हर नाम ईश्वरीय शक्ति से पूर्ण है। ईश्वर के नाम के जप से आप आध्यात्मिक ऊँचाइयों को प्राप्त करेंगे।

आपमें दान देने की आदत होनी चाहिए। आपको सहज ही दान देना चाहिए। अपनी दानशीलता के कारण हम अपने भाई-बहनों को कुछ रुपया दे सकते हैं, परन्तु अनजान व्यक्तियों को नहीं। दानशीलता सभी के लिए होनी चाहिए। यह सारा जगत् ईश्वर से उत्पन्न है। दूसरों के दुःख को देख कर आपको ऐसा भान होना चाहिए कि आपका ही शरीर पीड़ित है। तभी आप ईश्वर-कृपा प्राप्त करेंगे। सारी सिद्धियाँ तथा ऋद्धियाँ आपके चरणों पर लोटेंगी। परन्तु अभाग्यवश आपका हृदय बहुत संकीर्ण है। आपकी बुद्धि अच्छी हो सकती है, आप पी-एच. डी. हो सकते हैं; परन्तु आपका हृदय संकीर्ण है। आत्म-त्याग की भावना का यह अभाव क्यों है? क्योंकि हम गीता के उपदेशों का पालन नहीं करते। वही सबसे बड़ा योगी है जो सभी को ईश्वर की अभिव्यक्ति समझ कर आत्म-त्याग करता है। दानशीलता को तो आपका स्वभाव ही बन जाना चाहिए। जहाँ-कहीं भी जायें, अपनी जेब में कुछ सिक्के रख लें। जहाँ-कहीं दुःख हो, दान दीजिए और यथासम्भव मानवी कष्टों को दूर कीजिए। ऐसा करने से आप जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने लायक बन जायेंगे। बहुतों ने निष्काम सेवा के द्वारा ईश्वर के दर्शन प्राप्त किये और आप भी लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

जप तथा प्रार्थना कीजिए। ईश्वर के विचारों को प्रश्रय दीजिए। विषय-सुखों के दोषों पर विचार कीजिए। तत्सम्बन्धी कुछ श्लोकों को याद रखिए। सोने से पूर्व अच्छे विचारों को लाइए। आपको धीरे-धीरे अपने मन को अनुशासित करना पड़ेगा। साथ ही आध्यात्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय भी बहुत आवश्यक है। उपनिषदों को पढ़िए। पतंजलि के योगसूत्र-राजयोग को पढ़िए। आपको सैद्धान्तिक ज्ञान होना चाहिए। किताबें आवश्यक हैं। ये सभी आपकी बाधाओं को दूर करेंगी।

भोजन के पहले गीता के पन्दरहवें अध्याय का पाठ कीजिए। आपमें से कितने जन इसको याद रखते हैं? बहुत कम हैं। मनुष्य भोजन से बना है तथा भोजन तभी शुद्ध होता है, जब आप इन श्लोकों का पाठ कर लें। विभिन्न प्रकार के अन्न विभिन्न संस्कार बनाते हैं। सात्विक अन्न से मन की एकाग्रता बढ़ती है। अन्न को ईश्वर को अर्पित करने से यह आत्म-त्याग का एक कार्य हो जाता है। अतः यदि आप कुछ श्लोक याद रखें, तो यह उपयोगी सिद्ध होगा।

हम अपने जीवन में नये पृष्ठ बदलें। थोड़ा जप तथा थोड़ा कीर्तन भी प्रबल शक्ति को उत्पन्न करते हैं। अतः हम सभी ईश्वर-प्रेम के प्रति अधिक सच्चे बनें तथा अपने समक्ष आदर्श रखें। गीता पढ़िए। समय भागा जा रहा है। क्रोध आने पर अवन्ती ब्राह्मण को याद कीजिए। सभी परिस्थितियों, प्रलोभनों एवं जाँच की घड़ियों में ईश्वर की याद बनाये रखिए। आपको सदा मधुर शब्द बोलने चाहिए। दिन-प्रति-दिन बल प्राप्त कीजिए। अपने जीवन का निश्चित कार्यक्रम बना लीजिए। मानव-जन्म प्राप्त करना कठिन है। अपने बहुमूल्य जीवन को नष्ट न कीजिए। अपने देश के महान् सन्त रामदास, शम्सतवरेज़, श्री रामकृष्ण परमहंस आदि को याद रखें। इसी जन्म में जीवन्मुक्त बनने की शुभेच्छा रखें। सदाशिव ब्रह्म की कहानी सुनिए।

सदाशिव ब्रह्म करूर में एक योगी थे। आज भी उनकी समाधि वहाँ वर्तमान है। उन्होंने ब्रह्मसूत्र के ऊपर बड़ी सुन्दर टिप्पणी तथा अन्य पुस्तकें लिखी हैं। वे विद्वान् पण्डित थे तथा गुरु के अधीन शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उसी समय उनको यह तार मिला कि उनकी पत्नी रजस्वला हो चुकी है। वे अध्ययन के उपरान्त अपने गुरु-गृह से लौट रहे थे। उनकी माँ खुशियाँ मना रही थी कि उनका पुत्र लौट रहा है। उन्होंने पायस तथा अन्य बहुत से सुस्वादु भोजन तैयार किये। सदाशिव ब्रह्म को भोजन के लिए तीन बजे शाम तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। वे विवेकी पुरुष थे। वे योगभ्रष्ट थे। उन्होंने

अपने पिछले जन्म को याद किया तथा वैवाहिक जीवन के कष्टों का स्मरण किया। उन्होंने अपने-आप ही विचार किया, "आज तो मुझे तीन बजे भोजन मिल रहा है। जब मैं पूर्ण रूप से गृहस्थाश्रम में स्थित हो जाऊँगा, तो पता नहीं भोजन भी मिलेगा या नहीं। गृहस्थाश्रम से लाभ ही क्या?" उन्होंने तुरन्त संसार का संन्यास कर दिया। उन्होंने अपनी स्त्री तथा माता के प्रति कोई कर्तव्य पालन नहीं किया, फिर भी उनके लिए बन्धन नहीं रहा।

इन अत्युक्तिपूर्ण कहावतों पर ध्यान न दीजिए- "आपके सन्तान नहीं हुई; अतः आप पूर्वजों के श्राप प्राप्त करेंगे आदि।" सदाशिव ब्रह्म को बन्धन नहीं हुआ। जब उन्हें समाधि लग गयी, वे जमीन के अन्दर दब गये। खेत जोतते समय कुछ किसानों ने अनजाने में उन्हें चोट पहुँचायी। खून बह निकला। उस स्थान पर खोदने से सदाशिव ब्रह्म निकले। उन्हें जरा भी इसकी खबर न थी। समाधि से उठने पर सदाशिव ब्रह्म ने बहुत से चमत्कार दिखलाये।

इन सभी से यह स्पष्ट है कि विवाह सामाजिक संस्था है, क्योंकि बहुत से लोग कामुक संस्कारों के साथ जन्म लेते हैं तथा इन संस्कारों को थोड़ी परितृप्ति मिलनी चाहिए, जिससे कि मनुष्य यह समझ ले कि इस जगत् से सुख नहीं मिल सकता। उसे ठोकरें खानी पड़ती हैं। उसके स्त्री-बच्चे उसकी कामना की पूर्ति नहीं कर पाते। वह संसार से असन्तुष्ट हो धर्म की ओर मुड़ जाता है। इसी अनुभव को प्राप्त करने के लिए मनुष्य गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करता है। परन्तु जिनमें जन्मजात आध्यात्मिक संस्कार हैं, वे गृहस्थी के अनुभवों को प्राप्त किये बिना ही वैराग्य प्राप्त कर लेते हैं। बहुतों ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किये बिना ही संन्यास ले लिया।

ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन कीजिए। हम सैकड़ों जन्मों से गुजर चुके हैं। फिर भी ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन हमने नहीं किया। वासना बड़ी बलवती है। पुत्र के उत्पन्न होते ही पत्नी आपकी माता बन जाती है। इसे याद रखिए। जानवरों से सीखिए कि किस प्रकार वे प्राकृतिक नियमों का पालन करते हैं। केवल मनुष्य ही इन नियमों की अवहेलना करता है तथा मनुष्य में ही विवेक बुद्धि है। ईश्वरत्व की प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य आवश्यक है। सारी शक्ति को ओज-शक्ति में परिणत करना होगा, तभी जीवन-संग्राम में वह वरदान-स्वरूप सिद्ध होगी। जिसने अपने वीर्य का संरक्षण किया है, वह इस संसार में अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकता है। अधिक सम्पत्ति का अर्जन भी वह कर सकता है। आध्यात्मिक साधक के लिए यह बहुत ही आवश्यक है; क्योंकि वह ब्रह्मचर्य के बिना उन्नति कर ही नहीं सकता। आपसे पुनः कहता हूँ- "चार बजे प्रातः उठना बहुत ही आवश्यक है।" यह जगत् गतिशील है। हर क्षण बहुमूल्य है। आप कब तक तर्क करते रहेंगे- ईश्वर है या नहीं। जितना अधिक सम्भव हो, जप कीजिए।

सतत सेवा तथा सहज एवं अबाध दानशीलता के द्वारा आपको मन के मल का शोधन करना होगा। जिन लोगों के पास दो करोड़ रुपये हैं, वे यदि युद्ध-कोष में एक लाख रुपये दान में दे दें, तो इसमें अधिक उदारता नहीं है; परन्तु एक गरीब भक्त जिसके पास दो रुपये हैं, यदि एक रुपये का दान कर दे तो इसमें बड़ी महिमा है। उपनिषदों की भी घोषणा है कि आप धन का संचय न करें। उसे वितरण कर डालें। कुछ लोग काफी कमाते हैं और सामाजिक कार्यों तथा संस्थाओं को काफी दान भी देते हैं। यह महान् सहायता है, परन्तु बिना पाप किये धन का अर्जन होता नहीं। जो अपने अल्प धन में ही दूसरों को भी दान देता है, वही सच्चा योगी है, न कि वह मनुष्य जिसके पास चार करोड़ रुपये हैं, परन्तु दान में वह बीस लाख ही खर्च करता है। जो मनुष्य आठ आना ही कमाता है और उसी में से दूसरों को भी देता है, वह ईश्वर को अधिक प्रिय है।

आपने एक गरीब ब्राह्मण तथा उसके परिवार की कहानी सुनी होगी। बहुत दिनों के उपवास के उपरान्त उस ब्राह्मण को अल्प अन्न प्राप्त हुआ था। ज्यों-ही वह सपरिवार भोजन करने बैठा कि भगवान् नारायण उसकी दानशीलता की जाँच करने के लिए अतिथि के रूप में प्रकट हो गये। वह ब्राह्मण, उसकी स्त्री तथा बच्चे सभी ने अतिथि को अपना-अपना भोजन दे दिया। सभी उपवास कर गये। यही सच्चा दान है। दान सहज, अबाध एवं उदार होना चाहिए। हमारे

दैनिक जीवन का यह एक भाग बन जाना चाहिए। जीवन किसी भी क्षण समाप्त हो सकता है, फिर धन से चिपटे रहना तो मूर्खता ही है।

मैं आपको एक उदाहरण दूँगा। स्वर्गाश्रम में एक धनी व्यक्ति ने मन्दिर का निर्माण करवाया। उनके पास ठेके का काम था तथा वे प्रचुर रुपया कमा लेते थे। ईश्वर उनके काम से प्रसन्न था। उन्होंने चीनी की एक फैक्टरी बनायी तथा करोड़ों रुपये का अर्जन कर लिया। धीरे-धीरे उनमें आध्यात्मिक लगन बढ़ी। वे साधना करने लगे, लेकिन कोई विशेष लाभ न हुआ। उनमें कुछ रोग के चिह्न प्रकट होने लगे और एक दिन उनका देहान्त हो गया। उनको रुपये का बड़ा लोभ था। उनके पास एक करोड़ रुपया था। उन्होंने कई अस्पताल खोले थे, कई धर्मार्थ कार्य किये थे, फिर भी वे बुद्धिमान् न थे। बुद्धिमान् तो वही है जो अपने सारे धन को दूसरों के दुःख निवारण में लगा दे। ईश्वर ने कम-से-कम वर्तमान क्षण को तो आपके पास दिया है, इसका तो अपव्यय न कीजिए। दूसरों की अधिकाधिक भलाई में अपने हर क्षण का उपयोग कीजिए। अस्पताल आदि का निर्माण करना अच्छा है। इनसे हृदय का विकास होता है। परन्तु यदि निर्धन व्यक्ति दान दे तो वह ईश्वर का प्रिय है; क्योंकि उसके पास दानशील हृदय है। जिनके पास धन है, वे अवश्य उसको खर्च करें। कल का कोई निश्चय नहीं। भले कामों को करने के लिए ही ईश्वर आपको धन देता है।

६. साधना में संलग्नता

जीवन शक्ति की अभिव्यक्ति है। सारे जीवन सक्रिय हैं। आधे क्षण के लिए भी कोई वस्तु स्थिर नहीं रहती। विश्वात्म-शक्ति सदा अथक एवं अविरत रूप से काम करती रहती है। वही शक्ति एक तुच्छ परमाणु से ले कर विशाल सूर्य तक सभी में कार्य करती है। अनवरत प्रगति एवं विकास ही प्रकृति का नियम है।

हे साधक, आप भी इस विश्वात्म-शक्ति के केन्द्र हैं। कार्य तथा प्रगति आपके जीवन का भी नियम है। आपको सदा आध्यात्मिक मार्ग में बढ़ते रहना चाहिए। संकल्प-पत्र तथा दैनिक आध्यात्मिक डायरी को भर कर ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। अच्छा ध्यान-गृह, मृगचर्म तथा माला को प्राप्त कर लेना ही पर्याप्त नहीं है। ठीक है, आपने अपने जीवन में परिवर्तन लाया है। परन्तु अपने नये जीवन में आपने कहाँ तक प्रगति की है?

एक महर्षि ने एक बार कहा था, एक क्षण के लिए भी स्तब्ध खड़े न होओ; क्योंकि पवित्रता और पूर्णता के मार्ग में स्तब्ध खड़ा होना मनुष्य में स्फूर्ति नहीं लाता, वरन् उसे पहले से अधिक कमजोर बना डालता है जिससे कि वह पीछे मुड़ जाये।" इसे याद रखिए। आध्यात्मिक मार्ग में दो ही बातें सम्भव हैं- उन्नति या अवनति। इसमें ठहरना कहाँ? आराम करना तो सड़ना ही है। ज्वलन्त मुमुक्षुत्व को ले कर आगे बढ़ते जाइए। उन्नति साधना-काल पर निर्भर नहीं करती। यह तो इस पर निर्भर करती है कि आपने कहाँ तक अपने पुराने विचार तथा आचार के तरीकों पर विजय प्राप्त की है, किस हद तक आपने बाह्य परिस्थितियों पर विजय प्राप्त की है। क्या आपका मन शान्त एवं सन्तुलित रहता है? क्या आप छोटे-छोटे क्रोधोद्दीपक कार्यों से अप्रभावित रहते हैं? क्या क्षमा के लिए तो अधिक, परन्तु प्रतिकार करने की कम-ऐसी आपकी प्रवृत्ति है? क्या आप अधिकाधिक साधना कर रहे हैं, या आप ईश्वरीय कृपा की प्रतीक्षा कर रहे हैं जिससे आप अपने संकल्पों तथा व्रतों का पालन कर सकें? क्या आप सन्तों तथा अवतारों से आशीर्वाद-प्राप्ति की प्रतीक्षा करते हैं। आशीर्वाद तो सदा मिलते हैं; किन्तु जब तक आप वीरतापूर्वक उन्नति के लिए युद्ध नहीं करेंगे, तब तक उनका उपयोग उस व्यक्ति के लिए जूते और छड़ी के समान है जो यात्रा में चलना नहीं चाहता।

जंगल-पथ के किनारे पर्वतीय भाग में एक साधु रहते थे। वे बड़े ही अध्यवसायी थे। उन्होंने पत्थरों को एकत्रित कर एक सुन्दर कुटीर का निर्माण किया। फिर उन्होंने कुटीर के चारों ओर का स्थान साफ कर दिया, परन्तु दरवाजे के सामने एक पत्थर रख छोड़ा। उन्हें लोग पत्थर बाबा कहते थे। वे बहुत बड़े विरक्त थे। लोग उनके दर्शनों को जाते तथा

आशीर्वाद की याचना करते। बाबा चुप रहते, परन्तु लोगों के अधिक जोर देने पर वे उन्हें पत्थर की कुटीर दिखा कर कहते, "देखो, यही परिश्रम का फल है।" और पुनः उस पड़े हुए पत्थर को दिखा कर कहते- "आप आशीर्वाद चाहते हैं? उस पत्थर को देखिए। वह दिन में तीन बार मेरा आशीर्वाद प्राप्त करता है, फिर भी वह पत्थर का पत्थर ही है। आशीर्वाद से पत्थर जहाँ-का-तहाँ पड़ा है; परन्तु परिश्रम से यह देखिए, सुन्दर कुटीर तैयार हो गया है।"

अतः सदा बाहरी सहायता पर निर्भर न रहिए। आगे बढ़ते जाइए। आवश्यकता पड़ने पर अन्तर से सहायता प्राप्त होती है। आपको बहुत दूरी तय करनी है। समय कम है। बाधाएँ अधिक हैं। दिन, महीने तथा वर्ष जल्दी-जल्दी गुजरते जा रहे हैं। हर क्षण बहुमूल्य है। अतः लक्ष्य की ओर शीघ्रतापूर्वक बढ़िए।

ईश्वर बहुत कारुणिक है। यदि आप एक कदम उसकी ओर बढ़ते हैं, तो वह दश कदम आगे बढ़ कर आपकी अगवानी करता है। यह कथन सत्य है। परन्तु पहले आपको ही एक कदम उसकी ओर बढ़ना है। आप शायद ऐसा समझते हैं कि आपकी परिस्थितियाँ प्रतिकूल हैं। तराई में रहने वाला व्यक्ति कभी भी कोहरे को साफ नहीं कर सकता। उसे थोड़ी ऊँचाई चढ़नी होगी, तभी कोहरा उसकी नजरों से दूर होगा। अतः परिस्थिति तथा कमजोरियों की चिन्ता न कीजिए। स्थिर साधना के द्वारा आप आत्मज्ञान की ऊँची सीढ़ियों पर चढ़िए। अन्धकार में बैठ कर 'प्रकाश', 'प्रकाश' चिल्लाते रहना तो मूर्खता ही है। उठिए और सूर्य के प्रकाश की ओर बढ़िए।

सेवा में अग्रसर बनिए, प्रेम में विकास कीजिए, ज्ञान में उन्नति कीजिए। सेवा के लिए सुअवसर का निर्माण कीजिए। प्रतिदिन कुछ-न-कुछ नयी बात सीख लीजिए। ईश्वर के प्रति अधिकाधिक भक्ति का विकास कीजिए। साधना बढ़ाइए। मार्ग में संलग्न रहिए। आपकी उन्नति सतत होती रहेगी। अवनति होने का प्रश्न ही नहीं रहेगा। यही सफलता के लिए सुनिश्चित मार्ग है। कभी ठहरिए नहीं। कभी ढिलाई न दीजिए। आगे बढ़ते जाइए। आप शीघ्र ही लक्ष्य को प्राप्त करेंगे।

७. साधना के प्रवाह

अल्प अनुभव प्राप्त कर लेने पर ही साधना को बन्द न कीजिए। तब तक अभ्यास करते जाइए, जब तक कि आप भूमा में पूर्णतः स्थित न हो जायें। यह बहुत आवश्यक है। यदि अभ्यास बन्द कर आप संसार में घूमने लगेंगे, तो आपका कभी भी पतन हो सकता है। प्रबल प्रतिक्रियाएँ होगी। इसके उदाहरणों की कमी नहीं है। अनेक लोग विनष्ट हो गये हैं। एक झलक से ही आप सुरक्षित नहीं रह सकते। लोकैषणा तथा यश के प्रलोभन में न पड़िए। आप स्त्री, बच्चे, माता-पिता, गृह, मित्र तथा सम्बन्धियों का परित्याग कर सकते हैं; परन्तु बौद्धिक सुख, नाम तथा यश के सुख का परित्याग करना कठिन है। मैं आपको चेतावनी देता हूँ। जो व्यक्ति आत्मा से सुख प्राप्त करता है, वह इस तुच्छ नाम-यश की जरा भी परवाह नहीं करेगा। सांसारिक व्यक्ति के लिए ही यह जगत् महान् वस्तु है। ब्रह्मज्ञानी के लिए यह जगत् तृणवत् है। ब्रह्मज्ञानी के लिए यह राई के समान, बूँद के समान तथा शून्य के समान ही है। विचारशील बनिए। सभी तुच्छ वस्तुओं की उपेक्षा कीजिए। अपने अभ्यास में स्थिर बनिए। परम-साक्षात्कार की प्राप्ति जब तक न हो जाये, तब तक साधना को बन्द न कीजिए। पूर्ण ब्रह्म-चैतन्य में जब तक स्थित न हो जायें, तब तक साधना कदापि बन्द न कीजिए।

८. साधना में उन्नति के चार क्रम

साधना की उन्नति में पहली अवस्था है मन की शुद्धता, दूसरी अवस्था है धारणा-शक्ति-मन को एकाग्र करने की शक्ति बहुत ही बढ़ जाती है, तब वह अवस्था आती है जिसमें गम्भीर ध्यान लगने लगता है तथा चतुर्थावस्था में आत्म-

साक्षात्कार होता है। अन्तरात्मा का सर्वव्यापक, सर्वज्ञ परमात्मा के साथ तादात्म्य हो जाता है और अन्ततः जीवात्मा असीम आत्मा में विलीन हो जाता है।

अध्याय ३:साधना के प्रकार

१. साधन-चतुष्टय

ज्ञानयोग के मार्ग में साधन-चतुष्टय से सम्पन्न बनना पड़ता है। विवेक, वैराग्य, षट् सम्पत् तथा मुमुक्षुत्व-ये ही साधन-चतुष्टय हैं।

ईश्वर की कृपा से उस व्यक्ति में विवेक का जागरण होता है जिसने पूर्व-जन्म में निष्काम कर्म तथा बहुत से सुकर्म किये हैं। सत्य एवं असत्य, नित्य एवं अनित्य, आत्मा तथा अनात्मा के बीच भेद की पहचान करना ही विवेक है।

सर्वप्रथम आपको सत्य एवं असत्य के बीच विवेक और इहलौकिक तथा पारलौकिक भोगों के प्रति वैराग्य का विकास करना चाहिए, तभी आपको शम के अभ्यास में सफलता मिलेगी। विवेक से उत्पन्न वैराग्य ही आपकी आध्यात्मिक साधना में सहायक बन सकता है। कारण वैराग्य जो पत्नी, पुत्र तथा सम्पत्ति के विनाश से उत्पन्न होता है, स्थायी नहीं रह सकता। इससे आपको कोई लाभ नहीं। यह तो अमोनिया के समान ही उड़ जाने वाला है।

वासनाओं के सतत उन्मूलन के द्वारा शम-मन की शान्ति की प्राप्ति होती है। जब कभी आपके मन में कामनाएँ स्फुटित हों, तो उन्हें पूर्ण न होने दीजिए। विवेक, विचार तथा वैराग्य के द्वारा उनका निषेध कीजिए। सतत अभ्यास से आप मन की शान्ति तथा मनोबल प्राप्त करेंगे। मन क्षीण हो जायेगा। इसकी बहिर्मुखी वृत्ति निरुद्ध हो जायेगी। यदि कामनाओं का उन्मूलन कर दिया गया, तो संकल्प स्वतः ही विनष्ट हो जायेंगे। विषयों में दोष-दर्शन के द्वारा मन विविध विषय-पदार्थों से अनासक्त हो कर ब्रह्म में स्थिर हो जाता है। शम के अभ्यास में पंच-ज्ञानेन्द्रिय कान, नेत्र, नासिका, जिह्वा तथा त्वचा को भी नियन्त्रित करते हैं।

बाह्य इन्द्रियों-पंच-कर्मेन्द्रिय, वाणी, हाथ, पैर, जननेन्द्रिय तथा गुदा का नियन्त्रण करना यम कहलाता है। ये इन्द्रियाँ विषयों से समेट ली जाती हैं तथा उनके विशेष केन्द्रों में स्थिर कर दी जाती हैं।

आँखें किसी वस्तु को देखने के लिए बाहर दौड़ती हैं। यदि आप तुरन्त उस वस्तु से आँखों को मोड़ लें तो यह दम है। दम के द्वारा आपको अपनी अन्य इन्द्रियों का भी दमन करना चाहिए।

कुछ लोग कहते हैं- "दम का अभ्यास आवश्यक नहीं है। यह शम में ही सन्निहित है। इन्द्रियाँ स्वतन्त्र काम नहीं कर सकतीं। वे मन के सहयोग से ही काम करती हैं। यदि मन को वश में कर लिया गया, तो इन्द्रियाँ स्वतः ही नियन्त्रित हो जायेंगी।"

यदि दम का भी अभ्यास किया गया, तो मन सुगमता से वश में आ जायेगा। शत्रु को भीतर तथा बाहर-दोनों ओर से मारना चाहिए। इस प्रकार वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। यदि अन्तर्बाह्य दोनों ही दरवाजे बन्द कर दिये गये, तो वह शीघ्र ही पकड़ में आ जाता है। भागने के लिए कोई मार्ग ही नहीं रह जाता। दम के अभ्यास से आप इन्द्रिय तथा मन को किसी भी विषय के सम्पर्क में आने नहीं देते। आप मन को बाह्य इन्द्रियों से-जैसे आँख से आ कर वस्तु को आकार धारण करने नहीं देते। नये साधकों में शम का उग्र अभ्यास करने पर भी मन आत्म-स्थित नहीं हो पाता। यह बाह्य वस्तुओं की ओर दौड़ने की कोशिश करता है। दम का अभ्यास करने पर मन को शीघ्र ही वश में कर लिया जाता है।

यदि किसी उपद्रवी लड़के के हाथ को आप बाँध दें, तो वह पाँव से उत्पात करने की कोशिश करेगा; परन्तु यदि पैरों को भी बाँध दें, तो वह शान्त हो जायेगा। शम के द्वारा हाथों को बाँधते हैं और दम के द्वारा पैरों को; अतः दम का अभ्यास आवश्यक है।

ज्ञानयोग के साधक के लिए दम का अभ्यास है। प्रत्याहार दम के ही समान है। राजयोगी प्रत्याहार का अभ्यास करता है। शम के बाद दम की बारी आती है। प्राणायाम के बाद प्रत्याहार की बारी आती है। ज्ञानयोग के अभ्यास में मन को शान्त अथवा निरुद्ध कर इन्द्रियों को समेट लेते हैं। राजयोग में प्राण का निरोध कर इन्द्रियों को समेट लेते हैं। प्राण तथा मन दोनों के नियन्त्रण से इन्द्रियाँ शीघ्र ही विषयों से हट जायेंगी। मन ही इन्द्रियों को गतिशील करता है। प्राण इन्द्रियों को स्फूर्ति प्रदान करता है। शम तथा दम वास्तव में राजयोग के अभ्यास हैं।

अब हम उपरति का वर्णन करेंगे। कुछ लोग सारे कर्मों का त्याग तथा संन्यास-ग्रहण को उपरति कहते हैं। शम तथा दम के बाद उपरति की बारी आती है। उपरति आत्मा का अन्तर्मुख होना है। बाह्य विषयों के द्वारा मन कार्य करना बन्द कर देता है। उपरति प्रत्याहार की सीमा है। इसमें मन विषय-भोगों से मुड़ जाता है।

सुन्दर वस्तु को देखने पर भी उपरति में स्थित साधक का मन जरा भी उद्विग्न नहीं होगा, जरा भी आकर्षित न होगा। वह स्त्री, वृक्ष तथा काष्ठ-सबकी ओर एक-सी दृष्टि रखेगा। सुस्वादु भोजन की ओर देखते हुए भी उसको प्रलोभन न होगा। उसे किसी विशेष वस्तु की ओर तृष्णा न रहेगी। वह ऐसा कदापि न कहेगा, "मैं अमुक पकवान चाहता हूँ।" जो-कुछ भी उसके समक्ष रख दिया जाये, वह उसी से सन्तुष्ट हो जाता है। विवेक, वैराग्य, शम तथा दम के अभ्यास से उसे मनोबल की प्राप्ति होती है। मनोबल के कारण ही ऐसा सम्भव है। उपर्युक्त अभ्यासों से मन अपूर्व शान्ति तथा आध्यात्मिक सुख का अनुभव करता है। वह भ्रामक अल्प सुखों को नहीं चाहता। यदि आपके पास मिश्री है, तो आपका मन छोओं की ओर नहीं दौड़ेगा। मन को ऊँचे प्रकार के सुख का स्वाद चखा कर उसे निम्न प्रकार के सुखास्वादन से उपरत कर सकते हैं। यदि आप गाय या बैल को बिनौले की खली दें, तो वह घास-भूसे की ओर नहीं दौड़ेगा। मन भी बैल के समान ही है।

ब्रह्मचर्य के अभ्यासियों को शम, दम तथा उपरति का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए, तभी वे ब्रह्मचर्य-पालन में स्थित हो सकते हैं।

सहन करने की शक्ति तितिक्षा है। तितिक्षु व्यक्ति कष्ट, अपमान, गरमी तथा सर्दी को सहन कर सकता है। वह सारी व्यथाओं से मुक्त है। वह इनके कारण अशान्त नहीं होता।

ब्रह्म के अस्तित्व, गुरु तथा शास्त्रों के उपदेश तथा अपनी आत्मा में अविचल विश्वास ही श्रद्धा है। यदि किसी में उपर्युक्त साधना की सम्पन्नता है, तो उसे समाधान या मन की एकाग्रता तथा मुमुक्षुत्व मुक्ति प्राप्ति की ज्वलन्त कामना की प्राप्ति होगी। मन स्वभावतः सदा अन्तरात्मा की ओर मुड़ेगा। साधक को अब किसी ब्रह्मश्रोत्री, ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाना, श्रुतियों का श्रवण, तदनन्तर मनन तथा 'तत्त्वमसि' महावाक्य के लक्ष्यार्थ पर सतत निदिध्यासन का अभ्यास करना चाहिए। उसे आत्म-साक्षात्कार मिलेगा।

यदि आपमें विवेक है, तो वैराग्य स्वतः ही आ जायेगा। यदि आपमें विवेक, वैराग्य तथा शम हैं, तो दम स्वतः ही आ जायेगा। यदि आपमें शम तथा दम हैं, तो उपरति स्वतः ही प्राप्त होगी। यदि आपमें उपर्युक्त सभी मौजूद हैं तो तितिक्षा, श्रद्धा तथा समाधान (एकाग्रता) स्वतः ही आ जायेंगे। यदि आपमें विवेक, वैराग्य, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा तथा समाधान हैं, तो मुमुक्षुत्व स्वतः प्रकट होगा।

जीवन्मुक्त की भी आँखें स्वभाववश वस्तुओं की ओर जायेंगी; परन्तु यदि वह चाहे, तो आँखों को पूर्णतः समेट कर उन्हें खाली नेत्र-गोलक के रूप में भी रख सकता है। जब वह किसी स्त्री को देखता है तो वह उसे अपने से अलग नहीं देखता। वह समस्त जगत् को अपने भीतर देखता है। वह स्त्री को भी अपनी आत्मा ही जानता है। उसमें लिंग-विचार नहीं है। उसके मन में बरे विचार नहीं हैं। उसे उस स्त्री के प्रति कामुक आकर्षण नहीं, जब कि सांसारिक व्यक्ति स्त्री को अपने से अलग देखता है। वह कामुक विचारों को रखता है। उसे आत्मा का ज्ञान नहीं है। वह उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है। ज्ञानी तथा संसारी जन की दृष्टि में यही अन्तर है। स्त्री की ओर देखने में कोई हानि नहीं है; परन्तु आपको उसके प्रति बुरे विचार नहीं लाने चाहिए। ऐसा भाव बनाइए कि स्त्री माँ काली की अभिव्यक्ति है। भान कीजिए कि स्त्री की सुन्दरता ईश्वर की ही सुन्दरता है। भान कीजिए कि सारे रूप ईश्वर की ही मूर्ति हैं। आपका मन उन्नत हो जायेगा।

कुछ साधक पूछते हैं, "क्या हमें विवेक, वैराग्य आदि का क्रमशः अभ्यास करना चाहिए या सभी का एक-साथ ? यदि हम एक-एक कर अभ्यास करें तो इस जीवन में एक या दो अंगों पर भी प्रभुत्व होना शायद ही सम्भव है। सभी अंगों पर पूर्ण अधिकार करने में तो कई जन्म लग जायेंगे। जीवन बहुत अल्प है। हम क्या करें?" यह साधक की रुचि तथा क्षमता पर निर्भर करता है। कुछ एक-एक कर अंगों को पूर्ण करते हैं। कुछ लोग सभी अंगों का एक बार ही अभ्यास करते हैं। छह महीने तक विवेक, वैराग्य तथा शम के अभ्यास में अपने मन को लगाइए। दूसरे छह महीने में श्रद्धा, समाधान तथा मुमुक्षुत्व के अर्जन में लग जाइए। उस सद्गुण के विकास में अधिक समय लगाइए जिसकी आपमें कमी हो। यदि आप अपने प्रयास में सच्चे हैं, तो आप साधन-चतुष्टय का विकास कर इसी जन्म में आत्म-साक्षात्कार कर सकते हैं।

दूसरा साधक कहता है, "स्वामी जी, इन साधन-चतुष्टय-विवेक, वैराग्यादि की कोई आवश्यकता नहीं। यह तो लम्बा तथा जटिल मार्ग है। मैं तो कई जन्मों में भी उन्हें प्राप्त नहीं कर सकता हूँ। संक्षिप्त मार्ग तो सदा ब्रह्म-चिन्तन करते रहना है। सारे सद्गुण स्वतः ही आ जायेंगे। तब मैं गम्भीर ध्यान कर सकूँगा।" वह ठीक कहता है। प्रथम श्रेणी का साधक इस तरीके को व्यवहार में लाये, क्योंकि अपने पिछले जन्म में ही उसने साधन-चतुष्टय का अभ्यास कर लिया है। मध्यम श्रेणी का साधक प्रारम्भ में ही ब्रह्म-चिन्तन नहीं कर सकता है। जब मन मलों से भरा हुआ हो, इन्द्रियाँ उपद्रवी हों, तो फिर ब्रह्म-चिन्तन कैसे होगा? यह असम्भव है। वह ब्रह्म-चिन्तन के लिए बैठेगा, उसका मन आकाश-महल बनाने लगेगा, उसका मन विषय-चिन्तन में निरत रहेगा। वह मूर्खतावश इसी को निर्विकल्प समाधि समझ बैठेगा। गम्भीर निद्रा ही उसे समाधि जान पड़ेगी। बहुत से लोग इस भ्रम में पड़ जाते हैं। उनकी कुछ भी आध्यात्मिक उन्नति नहीं होती। उन्हें जरा भी ब्रह्म-तत्त्व का ज्ञान नहीं होता। जो मन विवेक, वैराग्य, शम, दम आदि से शुद्ध बन गया है, वही ब्रह्म को निश्चित रूप से जान सकता है। अशान्त, मलिन मन में ब्रह्म-विचार नहीं टिक सकता।

आप सभी विवेक, वैराग्य, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान तथा मुमुक्षत्व के अभ्यास से ब्रह्मज्ञान में निमग्न हो जायें।

२. सरल साधना

मनुष्य तीन घटकों का मिश्रण है- मानवी तत्त्व, पाशवी वृत्ति तथा ईश्वरीय किरण। उसके पास सीमित बुद्धि, नश्वर शरीर, अल्प ज्ञान तथा अल्प शक्ति है। यही उसका मानवी रूप है। काम, क्रोध, द्वेषये उसकी पाशवी प्रकृति हैं। उसकी बुद्धि में विश्वात्म-चैतन्य का प्रतिबिम्ब है; अतः वह ईश्वर की मूर्ति है। जब पाशवी वृत्ति विनष्ट हो जाती है, जब अविद्या को ध्वस्त कर दिया जाता है, जब वह अपमान एवं आघात सहने में सक्षम हो जाता है, तब वह दिव्य बन जाता है।

वही मुमुक्षु साधक है जो आत्म-त्याग का अभ्यास करता है। वह सदा इसका अभ्यास करता है कि शरीर उसका नहीं है। यदि कोई व्यक्ति उसको पीटे, उसका गला काट ले, तो भी उसे शान्त रहना चाहिए। उसे एक भी कटु शब्द नहीं कहना चाहिए, क्योंकि शरीर उसका नहीं है। वह इस साधना का आरम्भ करता है, "मैं शरीर नहीं हूँ। मैं मन नहीं हूँ। चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।"

एक कटु शब्द ही मनुष्य को असन्तुलित बना देता है। अल्प अनादर ही उसे अशान्त कर देता है। वह कई दिनों तक इसकी चिन्ता रखता है। विद्वत्ता, बुद्धि, समाज में उच्च स्थान, पद, डिग्री आदि रखते हुए भी मनुष्य कितना दुर्बल है?

अपमान सहो। नुकसान सहो। यही सारी साधना का सारांश है। यही प्रमुख साधना है। यदि आप इस एक साधना में सफल बन जायें, तो निश्चय ही आप निर्विकल्प समाधि के असीम सुख को प्राप्त करेंगे। यह सबसे कठिन साधना है; परन्तु जिनमें ज्वलन्त वैराग्य तथा मुमुक्षुत्व है, उनके लिए यह बहुत सुगम है।

आपको चट्टानवत् बन जाना चाहिए। तभी आप इस साधना में स्थित हो सकते हैं। गाली, मजाक, व्यंग, अपमान तथा शारीरिक कष्ट कुछ भी आपको प्रभावित नहीं कर सकेगा।

भगवान् जीसस के उपदेशों को याद रखिए: "यदि कोई व्यक्ति एक गाल में थप्पड़ मारे, तो दूसरा गाल भी उसके आगे कर दो। यदि कोई आपका कोट ले ले, तो उसे अपनी टोपी भी दे डालो।" यह उपदेश कितना महान् है! यदि आप इसका पालन करेंगे, तो आपको महान् आध्यात्मिक बल तथा तितिक्षा की प्राप्ति होगी। इससे आप दिव्य बन जायेंगे। इससे आपके विरोधी की भी प्रकृति परिवर्तित हो जायेगी।

श्रीमद्भागवत के नवें स्कन्ध में अवन्ती ब्राह्मण की कथा पढ़िए। आप प्रेरणा तथा बल प्राप्त करेंगे। इस ब्राह्मण के ऊपर पाखाना फेंका गया, लोगों ने थूक फेंका, फिर भी वह अविचल रहा। एक मुसलमान ने सन्त एकनाथ के ऊपर एक सौ आठ बार थूका, फिर भी वे जरा भी प्रभावित न हुए। सभी सन्त तथा पैगम्बरों में तितिक्षा होती है। लोगों ने पैगम्बर मुहम्मद के ऊपर पत्थर बरसाये तथा ऊँटनी के गर्भाशय को उनके शिर के ऊपर फेंका, फिर भी हजरत मुहम्मद शान्त बने रहे। यहूदियों ने भगवान् जीसस के शरीर में कीलें गार्डी, उनके साथ तरह-तरह से दुर्व्यवहार किया गया। उन्होंने शान्त रह कर उन सभी को सहन किया और बदले में उन आततायियों को आशीर्वाद दिया। क्रास पर चढ़ाये जाने पर भी उन्होंने कहा : "हे प्रभु, इन लोगों को क्षमा कर दो। वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं।" प्रभु जीसस के 'शर्मन आन दी माउंट' (पर्वत पर के उपदेश) को बारम्बार पढ़िए।

ईश्वर सभी साधकों की जाँच करेगा और एक समय आयेगा, जब सभी साधकों को चरम आपत्ति झेलनी पड़ेगी; परन्तु इन जाँचों से वे बहुत ही शक्तिशाली हो जायेंगे। उन्हें सदा इन जाँचों एवं कष्टों को झेलने के लिए तैयार रहना चाहिए।

आपमें अपूर्व धैर्य एवं तितिक्षा का विकास होना चाहिए। आपको अपने अहंकार, मद तथा देहाभिमान को विनष्ट करना होगा, तभी आप अपमान तथा नुकसान को सह सकेंगे।

प्रारम्भ में भौतिक भावनाओं तथा प्रतिक्रियाओं के नियन्त्रण का अभ्यास कीजिए। उलाहना न दीजिए। अश्लील शब्द न बोलिए। बदला न लीजिए। बदला लेने की भावना को मार डालिए। वाणी, विचार तथा कार्यों में आवेग को रोकिए। आप धीरे-धीरे नियन्त्रण में सफल होंगे। नियमित जप, ध्यान, कीर्तन, प्रार्थना, विचार, एकान्त सेवन, सत्संग, निष्काम सेवा, मौन, आसन, प्राणायाम आदि के अभ्यास से आप अपार आत्म-बल प्राप्त करेंगे। आप अपमान तथा नुकसान सहने में समर्थ हो जायेंगे। आपकी इच्छा-शक्ति प्रबल होगी।

३. महत्त्वपूर्ण साधना

नमक, खटाई तथा इमली के अत्यधिक व्यवहार से अधिक उत्तेजना एवं क्रोध का आवेग होता है; अतः इन तीन वस्तुओं का पूर्णतः परित्याग कीजिए या इन्हें स्वल्प मात्रा में ग्रहण कीजिए।

अल्प बोलिए। सदा मधुर बोलिए। कटु तथा अश्लील शब्द न बोलिए। वाणी का बारम्बार नियन्त्रण कीजिए। जब दूसरे गाली दें, तो शान्त रहिए।

विचार कीजिए। गाली कुछ भी नहीं है। यह शब्द-जाल है। जो गाली देता है, वह अपनी शक्ति का अपव्यय करता है तथा जिह्वा एवं चरित्र को बिगाड़ता है।

मन अत्युक्ति करता है। कल्पना आपको कष्ट पहुँचाती है। आप व्यर्थ ही कल्पना करने लगते हैं कि अमुक व्यक्ति आपको हानि पहुँचाना चाहता है। वास्तव में तो वह व्यक्ति निर्दोष ही है। वह आपका मित्र तथा हितैषी है। मन अत्युक्ति तथा कल्पना के द्वारा बहुत नुकसान पहुँचाता है।

सास बेकार की कल्पना करने लग जाती है कि बहू उसका अनादर कर रही है। बहू भी यह कल्पना कर लेती है कि सास उसके प्रति दुर्व्यवहार कर रही है। हर गृह में नित्य ही सास-बहू में झगड़ा होता रहता है। व्यवस्थापक व्यर्थ ही यह कल्पना कर लेता है कि अधिकारी उसके प्रति दुर्व्यवहार कर रहा है। किरानी भी कल्पना कर लेता है कि उसका आफिसर उसके साथ उचित व्यवहार नहीं कर रहा है; अतः वह अपने आफिसर से द्वेष रखता है। यह माया का जादू है। यह सब मन का खेल है। सावधान! मन के खेलों को समझिए। ज्ञानी बनिए। विवेक करना सीखिए। निष्काम सेवा करना सीखिए।

दलबन्दी न कीजिए। दल में सम्मिलित न होइए। उदासीन रहिए। अकेले रहिए। साधुओं एवं महात्माओं की संगति कीजिए। जप, प्रार्थना तथा ध्यान के द्वारा अपनी अन्तरात्मा की संगति कीजिए।

जो आपको शाप दे, उसे आशीर्वाद दीजिए। जो कष्ट पहुँचाये, उस मनुष्य के लिए प्रार्थना कीजिए। उस मनुष्य की सेवा कीजिए जो आपकी निन्दा करे। उस मनुष्य से प्रेम कीजिए जो आपको हानि पहुँचाना चाहता हो। सभी को गले लगाइए। सभी की सेवा कीजिए। सभी से प्रेम कीजिए। आत्म-भावनारायण-भाव का विकास कीजिए। राग-द्वेष स्वतः ही विनष्ट हो जायेंगे।

आदर तथा मान का परित्याग कीजिए। इसे विष्ठा या विष के तुल्य समझिए। अनादर तथा अपमान को आभूषण समझिए। ऊँचे पद तथा स्तुतिमय शब्दों की अपेक्षा न रखिए। फूलदार गद्दियों पर न बैठिए। जमीन पर बैठिए। गौरांग महाप्रभु उस स्थान पर बैठते थे, जहाँ जूते रखे जाते थे। नम्र बनिए। उन सेवा कार्यों को कीजिए जिन्हें संसार के लोग हेय दृष्टि से देखते हैं, परन्तु जो वास्तव में ईश्वर की पूजा तथा कर्मयोग हैं। अन्तिम भोजन के समय जीसस ने अपने शिष्यों के चरण धोये तथा उन्हें जूते पहनाये। त्रिलोक के स्वामी भगवान् कृष्ण ने राजसूय यज्ञ के समय अतिथियों के चरण धोये। इन बातों को सदा याद रखिए। इससे आप नम्र बनेंगे।

अपने मन तथा भावनाओं का नित्य निरीक्षण कीजिए। सावधान रहिए। शनैः-शनैः धैर्य का विकास कीजिए। बढिए। उन्नति कीजिए। विकास कीजिए। अवन्ती ब्राह्मण, एकनाथ या जीसस के समान आध्यात्मिक बल से युक्त बनिए तथा आत्मा में शान्तिपूर्वक विश्राम कीजिए।

अपमान तथा नुकसान सहने के लिए ईश्वर आपको आन्तर आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करे ! आप जीवन्मुक्त बन जायें!

४. अन्तरंग-साधना

निष्काम कर्मयोग बहिरंग साधना है। यह आपको 'अहं ब्रह्मास्मि' के निदिध्यासन लिए तैयार बनाता है। साधन-चतुष्टय की अपेक्षा कर्मयोग बहिरंग साधन है। श्रवण की अपेक्षा साधन-चतुष्टय बहिरंग है। मनन की अपेक्षा श्रवण बहिरंग है। निदिध्यासन की अपेक्षा मनन बहिरंग है। 'अहं ब्रह्मास्मि' तथा इसके अर्थ पर गम्भीर ध्यान करना ही निदिध्यासन है। पतंजलि महर्षि के अष्टांगयोग में भी बहिरंग तथा अन्तरंग साधनाएँ हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार बहिरंग साधनाएँ हैं। धारणा, ध्यान तथा समाधि अन्तरंग साधनाएँ हैं।

५. सदाचार-साधना

१. आत्मा एक ही है। सभी भूतों में एक ही चैतन्य है। सारे जीव एक ही परमात्मा के प्रतिबिम्ब हैं। जिस प्रकार सारे जलपूर्ण पात्रों में एक ही सूर्य प्रतिबिम्बित होता है, उसी प्रकार एक ही परमात्मा सभी मनुष्यों में प्रतिबिम्बित हो रहा है। एक अनेक नहीं हो सकता। एक अनेक प्रतीत होता है। अनेक मिथ्या है। पृथकता अस्थायी है। एकता सत्य है। सभी भूतों में एक ही जीवन स्पन्दित हो रहा है। पशु, पक्षी तथा मानव में जीवन एक ही है। अस्तित्व एक ही है। यही उपनिषदों की घोषणा है। धर्म का यह मूल सत्य सदाचार का आधार है। यदि आप किसी अन्य व्यक्ति को चोट पहुँचाते हैं, तो आप अपनी ही हानि करते हैं। यदि आप किसी व्यक्ति की सहायता करते हैं, तो यह आपकी ही सहायता है। अज्ञान के कारण एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति हो हानि पहुँचाता है। वह सोचता है कि दूसरे व्यक्ति उससे पृथक् हैं; अतः वह दूसरों को हानि पहुँचाता है। इससे वह स्वार्थी, लोभी और अभिमानी बना रहता है। यदि आप इसकी चेतना रखते हैं कि एक ही आत्मा सभी भूतों में व्याप्त है तथा सभी भूत एक ही आत्मा में वैसे ही ग्रथित हैं जिस प्रकार एक ही सूत्र में पुष्प पिरोये रहते हैं; फिर आप किसी को कष्ट कैसे पहुँचा सकते हैं।

२. हममें से कौन ईश्वर अथवा दिव्य जीवन के सत्य के विषय में जानने के लिए उत्कण्ठा रखता है? हम इन प्रश्नों की जिज्ञासा रखते हैं: "इम्पीरियल बैंक में आपके कितने रुपये हैं? किसने मेरे विरुद्ध कहा? क्या आप जानते हैं कि मैं कौन हूँ? आपके स्त्री-बच्चे कैसे हैं?" परन्तु हम ऐसे प्रश्नों की जिज्ञासा नहीं रखते: "मैं कौन हूँ? यह संसार क्या है? मैं कहाँ से आया हूँ? मैं कहाँ जाऊँगा? ईश्वर कौन है? ईश्वर के विशेषण क्या हैं? ईश्वर के साथ हमारा सम्बन्ध क्या है? मोक्ष कैसे प्राप्त किया जाये? मोक्ष का स्वरूप क्या है?"

३. अपने प्रति तथा अपने वातावरण एवं कार्यों के प्रति चिन्तन करना ही सदाचार का प्रारम्भ है। काम करने से पहले थोड़ा ठहर कर विचार कर लेना आवश्यक है। अपने कर्तव्यों को पहचान कर यदि आप सच्चाईपूर्वक उनका पालन करें, तो आपकी उन्नति होगी; आपकी शान्ति एवं सम्पत्ति की वृद्धि होगी, आपके सुख अधिक शुद्ध होंगे तथा आपके भोग तथा मनोरंजन अधिक शिष्ट होंगे। सुख छाया के समान है। इसके पीछे पड़ने से यह भागता जाता है। यदि मनुष्य इसके पीछे न पड़ कर अपना कर्तव्य पालन करता है, तो वह सर्वत्र शुद्ध एवं शिष्ट सुख को प्राप्त करेगा। यदि वह सुख के पीछे न पड़े, तो सुख उसके पीछे पड़ेगा।

४. सुख की शुद्धता तथा वृद्धि भी सदाचार का चरम लक्ष्य नहीं है; क्योंकि बुद्धि की वृद्धि के साथ-साथ मनुष्य के दुःख तथा अशान्ति की वृद्धि होती जाती है। सारे अस्तित्व का सारांश है प्रगति अथवा नये आदर्शों का सतत साक्षात्कार। अतः सदाचार का लक्ष्य मनुष्य के अस्तित्व को ऊपर उठाना है, उसे सुख-दुःख के आवेगों से ऊपर उठाना है।

५. सुकरात का वचन, 'सदाचार ही ज्ञान है' नैतिक जीवन की सम्यक् व्याख्या है। "ठीक क्या है?" इसकी जानकारी एक वस्तु है। उसे व्यवहार में लाना दूसरी वस्तु है। बुद्धि के आदेश के विरुद्ध कामनाएँ काम करती हैं। मनुष्य आसान मार्ग को ग्रहण कर लेता है। बुद्धि के आदेश पर चलने के लिए सहनशीलता की आवश्यकता है, कामनाओं का परित्याग करना होगा। बौद्धिक ज्ञान मात्र ही सदाचार को परिपक्व नहीं बनाता; अतः इच्छा-शक्ति को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है जिससे वह बुद्धि के आदेश पर चले तथा कामनाओं का परित्याग कर सके।

६. शुद्ध बुद्धि मनुष्य को उस कार्य के लिए प्रेरित करती है जो श्रेष्ठ है। मनुष्य की आसुरी प्रकृति उसके विरुद्ध संग्राम करती है। जिस मनुष्य में नैतिक अनुशासन नहीं है, उसके आवेग उसकी बुद्धि के विरुद्ध काम करते हैं। सारे सलाह, उपदेश, डाँट-फटकार इस बात को प्रमाणित करते हैं कि मनुष्य अपनी निम्न प्रकृति को बुद्धि के अधीन ला सकता है।

७. आत्म-निर्भरता ही सदाचार का आधार है। यही कारण है कि सारे उपदेशकों तथा पैगम्बरों ने अपने अन्दर ईश्वर को पहचानने की आवश्यकता बतलायी है। आत्म-निर्भरता ही शिष्टाचार का आधार है।

८. जिस मनुष्य के जीवन में आदर्शों एवं सदाचार के मूल्यों की प्रधानता है, उसमें आत्म-संयम सबसे अधिक रहेगा। सदाचार का चरम लक्ष्य आत्म-संयम ही है। मनुष्य की सारी प्रकृति को अनुशासित करना चाहिए। हर तत्त्व को विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। अनुशासन से आत्म-विरोधी तत्त्वों का दमन होता है। आत्म-संयम से साधक सत्य को जानने, शुभेच्छा की वृद्धि करने तथा आत्म-साक्षात्कार में समर्थ बन जाता है।

९. शास्त्रीय आधार पर उपदेश तथा अभ्यास के द्वारा अपनी कामनाओं को प्रशिक्षित करना ही अनुशासन है। आपको केवल बुद्धि को ही नहीं, वरन् संकल्प तथा आवेगों को भी अनुशासित करना चाहिए। अनुशासित व्यक्ति अपने कर्मों को नियन्त्रित करेगा। वह आवेग के वशीभूत नहीं होगा। वह इन्द्रियों का गुलाम नहीं रहेगा। ऐसा प्रभुत्व एक दिन के प्रयास का परिणाम नहीं है। सतत अभ्यास तथा नित्य आत्मानुशासन के द्वारा ही मनुष्य इस शक्ति को प्राप्त कर सकता है। आवेगों की माँग को इनकार करने की कला सीखनी होगी। आत्म-संयमित मनुष्य ऐसे बुरे कर्मों से स्वयं को रोकता है जिन कर्मों में सांसारिक लोग फँसे हुए हैं।

६. मौन-साधना

मौन-साधना का शैक्षणिक विवेचन

मौन चुप रहने का एक व्रत है। आध्यात्मिक जीवन के लिए यह परमावश्यक है। व्यर्थ बकवास में बहुत अधिक शक्ति का अपव्यय हो जाता है। सारी शक्ति को ओज-शक्ति में परिणत करना होगा। इससे आपको ध्यान में सहायता मिलेगी।

यदि परिस्थितियाँ मौन के अनुकूल न हों तो लम्बी बातें, बेकार की बातें और सभी प्रकार के विवादों एवं बहस आदि से जहाँ तक बन सके, बचिए। यदि मौन के द्वारा आप अपनी शक्ति को सुरक्षित रखेंगे, तो यह ओज-शक्ति में परिणत हो कर आपकी साधना में अधिक सहायक होगी। छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार वाणी तेजोमय है। अग्नि का स्थूल भाग हड्डी का मध्यम भाग मज्जा का तथा सूक्ष्म भाग वाणी का निर्माण करता है। अत: वाणी बड़ी शक्तिशाली है। इसे याद रखिए। एक साल या छह महीने के लिए मौनव्रत रखिए। यदि आप छह महीने के लिए मौन व्रत नहीं रख सकते तो सप्ताह में कम-से-कम एक दिन इस व्रत को रखिए। श्री कृष्णाश्रम महाराज जैसे महात्माओं मे आपको प्रेरणा लेनी

चाहिए। वे हिमालय के बरफीले प्रदेशों में आठ वर्षों से नंगे ही रहते हैं। वे आठ वर्षों से काष्ठ-मौन का पालन कर रहे हैं। काष्ठ-मौन में आपको दूसरों से संकेत द्वारा अथवा लेखनी द्वारा भी बातें नहीं करनी चाहिए।

इन्द्रियों के मौन हो जाने पर इसे इन्द्रिय-मौन या कारण-मौन कहते हैं। यदि शरीर को स्थिर रखें, तो इसे काष्ठ-मौन कहते हैं। सुषुप्ति में सुषुप्ति-मौन रहता है। द्वैत तथा नानात्व के अन्त होने पर, वृत्तियों के निरोध होने पर ही वास्तविक मौन की प्राप्ति होती है। यही महामौन है। यही परब्रह्म है।

मौन-साधना का महत्त्व

यदि आप गम्भीर ध्यान का अभ्यास तथा शीघ्र आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करना चाहते हैं, तो ये पाँच वस्तुएँ अनिवार्य हैं मौन, मिताहार या दूध-फल का आहार, मनोरम स्थान में एकान्तवास, गुरु का व्यक्तिगत सम्पर्क तथा ठण्ढी जलवायु।

वाक् इन्द्रिय माया का सबल अस्त्र है जिससे जीवों के मन विक्षिप्त हो जाया करते हैं। इस उपद्रवी इन्द्रिय के कारण झगड़े तथा युद्ध हुआ करते हैं। यदि आपने इस इन्द्रिय को नियन्त्रित कर लिया तो आपका आधा मन नियन्त्रित हो चुका है।

वाक् इन्द्रिय बहुत ही उपद्रवी तथा हठी है। इसका दमन स्थिरतापूर्वक शनैः शनैः करना चाहिए। इसको नियन्त्रित करने के लिए प्रयास करने पर यह आप पर द्विगुणित राक्ति से आक्रमण करेगी। आपको वीर तथा साहसी होना चाहिए।

वाक् इन्द्रिय द्वारा मन की किसी भी बात को बाहर न निकलने दीजिए। मौन-व्रत रखिए। इससे सहायता मिलेगी। इससे अशान्ति के बहुत बड़े कारण को आपने बन्द कर डाला है। आप अब शान्ति में निवास करेंगे। ईश्वर पर ध्यान कीजिए।

वाक् इन्द्रिय का दमन कारण-मौन है। शारीरिक क्रियाओं का पूर्ण निरोध काष्ठ-मौन है। वाक्-मौन तथा काष्ठ-मौन में मानसिक वृत्तियों का निरोध नहीं होता। काष्ठ-मौन में आपको शिर भी नहीं हिलाना चाहिए। आपको किसी तरह का संकेत भी नहीं करना चाहिए। आपको किसी पत्र पर कुछ लिख कर व्यक्त नहीं करना चाहिए।

महामौन की प्राप्ति में वाक्-मौन सहायक है। महामौन में मन सच्चिदानन्द ब्रह्म में विश्राम करता है। सारी वृत्तियाँ विनष्ट हो जाती हैं। मौन से शक्ति की सुरक्षा, संकल्प-बल की वृद्धि तथा वाणी के आवेगों का नियन्त्रण होता है। सत्य के अभ्यास में तथा क्रोध के दमन में यह बहुत ही सहायक है।

जीवन्मुक्त में ब्रह्मानन्द का सुख सुषुप्ति-मौन है। संसार तथा इसके गुणों के मिथ्या स्वरूप के ज्ञान से मन में सारी शंकाओं का विनष्ट हो जाना सुषुप्ति-मौन है। इसका निश्चय कि यह जगत् ब्रह्म से परिपूर्ण है, सुषुप्ति-मौन है। सबके प्रति सम दृष्टि तथा सत्-असत् एवं सभी में चिदाकाश का अनुभव सुषुप्ति-मौन है।

साधना के प्रारम्भ में ब्रह्मवादियों को भी वाक्-मौन का अभ्यास करना चाहिए। मिथ्या अहंकार तथा अभिमान से फूल नहीं जाना चाहिए। 'मैं वेदान्ती हूँ', 'मेरे लिए वाक्-मौन की कोई आवश्यकता नहीं है।' वेदान्ती के लिए भी वाक् - मौन बहुत सहायक है। यदि आप काष्ठ-मौन न कर सकें, तो वाक्-मौन से प्रारम्भ कीजिए।

मौन-व्रत रखने वाले को जप, ध्यान तथा मन्त्र लेखन में संलग्न रहना चाहिए। उसे दूसरों से नहीं मिलना चाहिए। उसे कमरे से बार-बार बाहर नहीं आना चाहिए। वाणी की शक्ति को आध्यात्मिक शक्ति में रूपान्तरित कर उसे ध्यान में लगाना चाहिए। तभी आप शम, शान्ति तथा आन्तर आध्यात्मिक बल का अनुभव कर सकते हैं।

आपको अनुभव करना चाहिए कि आप मौन-व्रत से बहुत लाभ उठायेंगे तथा अधिकाधिक शान्ति, आन्तरिक बल तथा सुख का अनुभव करेंगे। तभी आप मौन-व्रत के पालन में दिलचस्पी लेंगे। तभी आप एक शब्द भी बोलने का प्रयास न करेंगे। दूसरों की नकल के लिए अथवा बलपूर्वक मौन करने से तो आप अशान्त एवं उदास रहेंगे।

मौन के समय आप अच्छी तरह अन्तर्निरीक्षण तथा आत्म-विश्लेषण कर सकते हैं। आप अपने विचारों को देख सकते हैं। आप मन के तरीके तथा उसके कार्यों को समझ सकेंगे। आप यह देख पायेंगे कि मन किस तरह एक मिनट में ही एक वस्तु से दूसरी वस्तु की तरफ दौड़ता रहता है। मौन के अभ्यास से आपको बहुत लाभ होगा। मन का मौन ही वास्तविक मौन है। वाणी का मौन अन्त में मन के मौन की ओर ले जायेगा।

मौन से आत्म-बल की वृद्धि होती है। यह संकल्पों को रोकता, वाणी के आवेगों का दमन करता तथा मन को शान्ति प्रदान करता है। आपमें तितिक्षा बढ़ेगी। आप झूठ नहीं बोल सकेंगे। आपको वाणी के ऊपर विजय प्राप्त होगी।

मौन सत्य के पालन तथा क्रोध के दमन में बहुत ही सहायक है। इससे आवेगों का नियन्त्रण होता तथा चिड़चिड़ापन बन्द हो जाता है। मौनी व्यक्ति नपे-तुले शब्द बोलता है तथा उसकी वाणी बहुत ही प्रभावशाली होती है। साधारण लोगों में वाणी पर जरा भी नियन्त्रण नहीं रहता। मौनी पहले सोच लेता है कि उसके शब्द दसरों की भावना पर आघात पहुँचायेंगे या नहीं तथा उनसे दूसरों पर कैसा प्रभाव पड़ेगा। वह अपनी वाणी में बड़ा सावधान रहता है। वह बहुत विचारशील होता है। अपने मुँह से निकालने के पहले वह अपने प्रत्येक शब्द को तोल लेता है। मौनी एकान्त में भी बहुत दिनों तक रह सकता है। सांसारिक बातूनी आदमी कुछ घण्टों के लिए भी एकान्त में नहीं रह सकते। वे सदा संगति चाहते हैं। मौन के लाभ अनिर्वचनीय हैं। अभ्यास कीजिए। शान्ति का अनुभव कीजिए तथा स्वतः मौन का उपभोग कीजिए।

संस्कृत के अध्ययन से कुछ लोग बातूनी बन जाते हैं। वे अपनी विद्वत्ता के प्रदर्शनार्थ अनावश्यक वाद-विवाद में फँस जाते हैं। इन विवादों में शक्ति का कितना अपव्यय होता है? इस शक्ति को सुरक्षित करने से कितना लाभ होगा? ध्यान में कितनी सहायता मिल सकेगी? वह इस बल से आकाश-पाताल को चलायमान कर सकता है।

पीड़ा के समय मौन-व्रत से मन को बहुत शान्ति मिलती है। इससे मन के तनाव दूर होते हैं। मौन से शक्ति सुरक्षित होती है। आप अधिक मानसिक तथा शारीरिक कार्य कर सकेंगे। आप अधिक ध्यान कर सकेंगे। यह मस्तिष्क तथा स्नायुओं पर आश्चर्यकर विश्रान्तिदायक प्रभाव डालता है। मौन के अभ्यास से वाक्-शक्ति शनैः शनैः ओज-शक्ति में बदल जाती है।

अपने आध्यात्मिक उत्थान के लिए मौन का पालन कीजिए। इस प्रदर्शन के लिए मौन न रखिए कि लोग आपको महान् समझें। किसी भी कार्य को करते समय अपनी प्रवृत्ति की जाँच कर लीजिए।

भोजन करते समय मौन रहिए। अकेले रहिए। दूसरों से न मिलिए। संकेत, हाव-भाव तथा 'हू हूहू' ध्वनि न कीजिए। 'हूहू हू' करना बोलने के समान ही है। यह तो बोलने से भी अधिक बुरा है। 'हूहू हू' करने से शक्ति का और भी अधिक अपव्यय होता है।

कामकाजी लोगों को कम-से-कम एक घण्टा नित्य मौन-व्रत रखना चाहिए। रविवार को छह घण्टे के लिए या पूरे दिन तक मौन-व्रत रख सकते हैं। यह जान कर कि आप नियमित मौन-व्रत का पालन कर रहे हैं, अन्य लोग भी आपको विघ्न न पहुँचायेंगे। आपके परिवार के लोग भी आपको कष्ट न पहुँचायेंगे। मौन के समय को जप तथा ध्यान में लगाइए। प्रातः ध्यान के समय तो मौन रहता ही है. उसके अतिरिक्त प्रातः या साद किसी भी समय अपनी सुविधा के अनुसार मौन व्रत रखिए। प्रातः ध्यान के समय को यदि मौन में गिनेंगे तो निद्रा के समय को भी मौन में गिन सकते हैं।

यदि परिस्थितियाँ आपके अनुकूल न हों तो बड़ी बातें करना, व्यर्थ बातें करना, सभी प्रकार के विवाद और बहस को बन्द कीजिए तथा समाज से जितना अधिक हो सके, स्वयं को अलग रखिए।

यदि स्थान मौन के अनुकूल न हो, तो किसी एकान्त स्थान में चले जाइए जहाँ आपके मित्र आपको तंग न कर सकें।

अच्छा हो कि आप कुछ समय के लिए एकान्त में मौन-व्रत का पालन कर उन्नति करने की कोशिश करें। पूर्णता प्राप्ति के अनन्तर आप कम समय में ही आश्चर्यजनक कार्य कर सकेंगे।

यदि आप चालीस दिनों तक अनुष्ठान करना चाहते हैं तो इस बीच पूर्ण मौन रखिए। आपको अद्भुत शान्ति तथा आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त होगी। ऋषिकेश, हरिद्वार या प्रयाग में गंगा के तट पर अनुष्ठान कीजिए। घर में रहने वाली स्त्रियाँ बहुत बातूनी होती हैं। वे सदा कुछ-न-कुछ विघ्न खड़ा किया करती हैं। सास तथा बहू एक क्षण के लिए भी शान्त नहीं बैठतीं। घर में किसी-न-किसी प्रकार का झगड़ा चलता रहेगा। अनुष्ठान करने के लिए एकान्त स्थान में चले जाइए।

बहुत दिनों तक लम्बे मौन अथवा काष्ठ-मौन की आवश्यकता नहीं है। अविकसित साधक के लिए बहुत दिनों तक मौन रखना हानिकारक है। बहुत दिनों तक मौन-व्रत न रखिए। कुछ दिनों के लिए या एक माह के लिए मौन व्रत रखना वाणी के नियन्त्रणार्थ बड़ा ही लाभकर सिद्ध होगा। शक्ति की अत्यधिक सुरक्षा होगी। आप असीम शक्ति का अनुभव करेंगे।

आप बहुत समय के लिए भी मौन रख सकते हैं; परन्तु यदि इससे आपको कठिनाई मालूम पड़े और जप तथा ध्यान में समय का सदुपयोग न हो, तो तुरन्त ही उसे तोड़ दीजिए। परिमित शब्दों वाला मनुष्य बनिए। यह मौन ही है। छह महीनों तक खूब बातें करना और छह महीने तक मौन रहना व्यर्थ ही है।

मौन का अभ्यास क्रमशः होना चाहिए, अन्यथा आप दश या पन्दरह दिन तक एकाएक मौन नहीं रख सकेंगे। जो लोग नित्य दो या तीन घण्टे मौन रखते हैं तथा छुट्टियों में चौबीस घण्टे मौन रखते हैं, वे एक सप्ताह या पन्दरह दिन मौन रखने में समर्थ रहेंगे। आपको मौन का महत्त्व समझ लेना चाहिए। नित्य-प्रति दो घण्टे मौन रहिए। धीरे-धीरे छह घण्टे तक समय बढ़ा दीजिए। धीरे-धीरे चौबीस घण्टे, दो दिन, एक सप्ताह और इसी तरह अधिक रख सकते हैं।

वाणी-शक्ति को संयमित कर यदि उसे आप जप तथा ध्यान में न लगायें, तो पूर्ण रूपान्तरित न होने के कारण वह तो उपद्रव करेगी। मौनव्रतधारी 'हूहूहू' का उच्चारण करता रहता है तथा हाथों से तरह-तरह के संकेत करता रहता है। 'हू हू हूं' करना तो बोलने से भी अधिक बुरा है।

मौन के समय 'हू हू हू' ध्वनि न कीजिए, हाथों से संकेत भी न कीजिए। यह बातें करने से भी बुरा है। इससे अधिक शक्ति नष्ट होती है। यदि अनिवार्य कार्य हो तो किसी कागज के टुकड़े पर लिख कर बातें कीजिए। आपको इसका भी त्याग करना चाहिए।

मौन के समय बिना चीनी मिला दूध, बिना नमक की दाल तथा साग-भाजी का आहार कीजिए। यह वाणी का संयम है। दूध में चीनी मिलाने की आवश्यकता नहीं है। दूध में तो प्राकृतिक चीनी रहती ही है। मनुष्य आदत के कारण अपनी जिह्वा की तृप्ति के लिए चीनी मिलाया करता है। जिह्वा के संयम से अन्य सभी इन्द्रियाँ शीघ्र ही नियन्त्रित हो जायेंगी। जिह्वा बहुत ही उपद्रवी इन्द्रिय है। जिह्वा का नियन्त्रण मन का ही नियन्त्रण है। हर वासना के दमन से आपको आत्म-बल की प्राप्ति होगी, जिससे आप अन्य वासनाओं का दमन कर सकेंगे।

एकान्त में मौन-व्रत का पालन करते समय मानसिक संन्यास का भाव रखिए। कम-से-कम कुछ दिनों के लिए मन को जरा भी ढीला न छोड़िए। ऐसा विचार न कीजिए- "मैं तो अभी गृहस्थी हूँ। मैं संन्यासी नहीं हूँ।" कठोर तप से सारी दुर्बलताएँ दूर हो जायेंगी। आपको शीघ्र उन्नति होगी। उग्र संयम के बिना मन को नियन्त्रित नहीं किया जा सकता।

एकान्तवास के समय मौन व्रत की अवस्था में अखबार न पढ़िए। अखबार पढ़ने से सासारिक संस्कारों का जागरण होगा, जिससे आपकी शान्ति भंग हो जायेगी। हिमालय में रहते हुए आप नगरों में ही रहेंगे। मौन से आपको अधिक लाभ न होगा। आपको ध्यान में सफलता न मिलेगी।

मौन के समय कागज के टुकड़े पर, स्लेट पर अथवा अपनी उँगली से अपने हाथ पर लिख कर अपने पड़ोसियों से अधिक बातें न कीजिए। आपको हँसना भी नहीं चाहिए। ये सभी मौन-व्रत के खण्डन हैं। ये सब बोलने से भी अधिक बुरे हैं।

अपनी आवश्यकताओं को कम कीजिए। पहले से ही भोजन तथा उसके समय आदि की व्यवस्था कर लीजिए। अपने आहार में बारम्बार परिवर्तन न लाइए। सदा तरह-तरह के खाद्य-पदार्थों का चिन्तन न कीजिए।

कमरा साफ करना, पानी लाना, कपड़े साफ करना आदि स्वतः कीजिए। दाढ़ी बनाना, जूते में पालिश करना, धोबी से कपड़े धुलाना आदि की चिन्ता न कीजिए। इससे आपके ईश्वर-चिन्तन में विघ्न होगा। शरीर, भोजन तथा दाढ़ी की अधिक चिन्ता न कीजिए। ईश्वर का चिन्तन कीजिए।

मन सदा ताक में रहेगा कि वह साधक को पतन के खड्ड में गिरा दे; अतः बहुत सावधान तथा सतर्क रहिए।

मौन के द्वारा आप शान्ति प्राप्त करें! मौन के द्वारा आप शान्ति के असीम सागर में गोता लगायें! मौन के द्वारा आप महामौनी या जीवन्मुक्त बनें! ईश्वर आपको बल दे, जिससे आप अखण्ड मौन व्रत का पालन कर सकें ! ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः !

७. ब्रह्मचर्य-साधना

विचार, वाणी तथा कर्म में शुद्धता ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य केवल जननेन्द्रिय का ही नहीं, वरन् अन्य सभी इन्द्रियों का भी संयम है। यह ब्रह्मचर्य की विस्तृत व्याख्या है। ब्रह्मचर्य दो प्रकार का है- शारीरिक तथा मानसिक। शरीर का नियन्त्रण शारीरिक है तथा बुरे विचारों का नियन्त्रण मानसिक है। मानसिक ब्रह्मचर्य में कामुक विचार भी मन में प्रवेश नहीं करेंगे। जाग्रत तथा स्वप्न में कामुक विचार से मुक्ति ही पूर्ण ब्रह्मचर्य है।

वीर्य, जो आपके जीवन को धारण करता है, आपका महान् धन है। यह रुधिर का सार-तत्त्व है। ब्रह्मचर्य सचमुच ही बहुमूल्य मुक्ता है। यह सबसे अधिक प्रभावशाली महौषधि है जो रोग, क्षय तथा मृत्यु को विनष्ट करता है। इस आत्मा का स्वरूप ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्मचर्य में ही आत्मा का निवास है।

वीर्य जीवन, विचार, बुद्धि तथा चैतन्य का सार है। वीर्य के एक बार नष्ट होने पर पुनः आप दूध, मक्खन, बादाम, मकरध्वज, टानिक आदि के आजीवन सेवन से भी उसकी पूर्ति न कर सकेंगे। वीर्य को सावधानीपूर्वक सुरक्षित रखने से यह ईश्वरीय धाम के द्वारों को खोलता है तथा जीवन के सभी ऊँचे आदर्शों की प्राप्ति में सहायक बनता है। ब्रह्मचर्य के द्वारा ही प्राचीन काल के ऋषियों ने मृत्यु पर विजय पायी तथा सुख एवं आनन्द के धाम को प्राप्त किया।

ब्रह्मचर्य के बिना आप स्वास्थ्य तथा आध्यात्मिक जीवन प्राप्त नहीं कर सकते। जीवन के हर क्षेत्र में ब्रह्मचर्य ही सफलता की कुंजी है। ब्रह्मचर्य ही अतीव सुख का प्रवेश-द्वार है। यह मोक्ष के द्वार को खोलता है। ब्रह्मचारी के चरणों पर सिद्धि तथा ऋद्धि लोटती हैं। ब्रह्मचारी की महिमा का कौन वर्णन कर सकता है? ब्रह्मचर्य अथवा निष्कलंक पवित्रता सर्वोत्तम तप है। इस संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जिसे ब्रह्मचारी न प्राप्त कर सके। वह समस्त जगत् को चलायमान कर सकता है।

इन्द्रिय-परायणता जीवन, सौन्दर्य, बल, वीर्य, स्मृति-शक्ति, धन, यश, पवित्रता तथा ईश्वर-भक्ति का विनाश करती है। शरीर से वीर्य के बहिर्गमन से मृत्यु निकट आ जाती है। उसके संरक्षण से आयु बढ़ती है। जिन लोगों ने वीर्य का अत्यधिक क्षय किया है, वे शीघ्र ही अशान्त तथा आलसी बन जाते हैं। वे शीघ्र ही रोग के शिकार बन जाते हैं। वे अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

ब्रह्मचर्य के अभाववश अथवा वीर्य-शक्ति के क्षय के कारण मनुष्य शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक दुर्बलता प्राप्त करता है। ऐसे व्यक्ति छोटी-छोटी वस्तु के लिए भी चिड़चिड़ा पड़ते हैं। वे बहुत से रोगों के शिकार हो कर अकाल मृत्यु को प्राप्त करते हैं।

सुसंयमित जीवन, धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय, सत्संग, जप, ध्यान, सात्त्विक आहार, सदाचार, तीन प्रकार के तप तथा अन्य आध्यात्मिक साधनाओं से अन्ततः इसकी प्राप्ति होती है।

ब्रह्मचर्य के अभ्यास से किसी तरह की हानि नहीं होती; किसी तरह के रोग अथवा मानसिक ग्रन्थियों की उत्पत्ति नहीं होती। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक गलत बतलाते हैं। उन्हें विषय का अनुभवात्मक ज्ञान नहीं है। उनकी यह गलत धारणा है कि अतृप्त काम-शक्ति बहुत-सी ग्रन्थियों का रूप धारण करती है। अधिक क्रोध, घृणा, द्वेष, चिन्ता, उदासी आदि के कारण ही ये रोग उत्पन्न होते हैं।

अश्लील चित्रों को न देखिए। अश्लील शब्द न बोलिए। कामोत्तेजक उपन्यासों को न पढ़िए। अशिष्ट भावनाओं को हृदय में स्थान न दीजिए। कुसंगति का परित्याग कीजिए। सिनेमा न जाइए। प्याज, लहसुन, चटपटी चीजें, चटनी तथा मसालों का त्याग कीजिए। पौष्टिक सात्त्विक आहार लीजिए। काम-शक्ति को ओज में बदल डालिए। जप, कीर्तन, दिव्य विचार अथवा आत्म-विचार तथा प्राणायाम के अभ्यास से यह परिवर्तन सम्भव होगा। शीर्षासन, सर्वांगासन का अभ्यास कीजिए और उपनिषद् तथा गीता का स्वाध्याय कीजिए। योगियों, महात्माओं तथा साधुओं का सत्संग कीजिए। आप ब्रह्मचर्य में स्थित हो जायेंगे। काम-शक्ति का रूपान्तरण हो जायेगा।

८. अन्तर्मुख वृत्ति की साधना

खोजिए, समझिए, साक्षात्कार कीजिए-इस त्रितय को याद रखिए। खोजना श्रुतियों का श्रवण है। समझना - मनन अथवा सुनी हुई बात का चिन्तन करना है। 'मैं ब्रह्म हूँ' - इस विचार के सतत गम्भीर निदिध्यासन से आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ति होती है। वेदान्त के अनुसार आत्म-साक्षात्कार के ये तीन साधन हैं।

विश्लेषण कीजिए, समझिए तथा त्यागिए यह दूसरा त्रितय भी महत्त्वपूर्ण है। इससे वैराग्य का विकास होगा, विषयों के प्रति मोह का नाश होगा। ज्यों-ही कोई विषय आपको आकृष्ट करे, त्यों-ही इस त्रितय को याद कीजिए। उस विषय के विभिन्न अंगों का विश्लेषण कीजिए। इन विषयों के वास्तविक स्वरूप को समझ लीजिए तथा इनका परित्याग कर दीजिए। उपर्युक्त त्रितय के सतत स्मरण से आप बहुत लाभ उठायेंगे। इससे वैराग्य की वृद्धि होगी। मन विषयों की ओर नहीं दौड़ेगा। यह विषयों से मुड़ जायेगा। विषयों के प्रति राग धीरे-धीरे विलुप्त हो जायेगा। इस तरीके से मैंने बहुत लाभ उठाया है। सभी विषयों के प्रति राग के नष्ट हो जाने पर मन हृदय की ओर मुड़ेगा। यही मन का यथास्थान है। मन ईश्वर की ओर मुड़ेगा। यही अन्तर्वृत्ति है।

९. सावधानी के द्वारा साधना

जो व्यक्ति अपने दोषों को उसी प्रकार देख सकता है जिस प्रकार दूसरों के दोषों को देखता है, वह शीघ्र ही महात्मा हो जायेगा। सत्य के साथ सतत अनुराग रखिए। सत्य के लिए अपने सर्वस्व को भी न्योच्छावर करने के लिए तैयार रहिए।

भूत की विफलताओं तथा गलतियों की चिन्ता न करते रहिए; क्योंकि इससे आपका मन शोक, पश्चात्ताप तथा अवसाद से भर जायेगा। भविष्य में उनका स्मरण न कीजिए। सावधान रहिए। अपनी विफलताओं के कारण का विचार कीजिए और उसे दूर करने के लिए यत्नशील बनिए। सतर्क तथा सावधान रहिए। नयी शक्ति तथा सद्गुणों से सबल बनिए। धीरे-धीरे संकल्प-शक्ति का विकास कीजिए।

१०. आत्म-विश्लेषण की साधना

नित्य आत्म-विश्लेषण या आत्म-निरीक्षण अनिवार्यतः आवश्यक है। तभी आप अपने दोषों को दूर कर शीघ्रतापूर्वक आध्यात्मिक उन्नति कर सकेंगे। माली नये पौधों की देख-रेख बड़ी सावधानी से करता है। वह नित्य-प्रति मोथों को निकालता है। वह उन पौधों के चारों ओर मजबूत घेरा डालता है। वह उचित समय पर पानी डालता है। तभी वे अच्छी तरह बढ़ते तथा शीघ्र फलप्रद होते हैं। ठीक उसी प्रकार दैनिक आत्म-निरीक्षण तथा आत्म-विश्लेषण के द्वारा आपको अपने दोषों का पता लगा लेना होगा तथा अनुकूल साधनों से उन्हें दूर करना होगा। यदि एक तरीके से सफलता न मिले, तो कई तरीकों का समन्वय कीजिए। यदि प्रार्थना से सफलता न मिले तो सत्संग, प्राणायाम, ध्यान, विचार आदि कीजिए। आपको अभिमान, दम्भ, काम, क्रोध आदि की बड़ी वृत्तियों को ही नष्ट नहीं करना है, वरन् उनकी सूक्ष्म वासनाओं, जो चित्त के प्रकोष्ठों में छिपी रहती हैं, को भी नष्ट करना होगा, तभी आप पूर्णतः सुरक्षित होंगे।

ये सूक्ष्म वासनाएँ बहुत ही खतरनाक हैं। ये चोर की भाँति घात लगाये रहती हैं तथा आपको असावधान पा कर अथवा आपके वैराग्य में कमी देख कर अथवा साधना में ढिलाई होने पर अथवा आपके उत्तेजित होने पर आप पर आक्रमण कर बैठती हैं। कई अवसरों पर अति-उत्तेजना मिलने पर भी जब वे दोष प्रकट न हों, कई दिनों तक नित्य अन्तर्निरीक्षण तथा आत्म-विश्लेषण की साधना भी बन्द हो, तो आपको निश्चित रूप से मानना चाहिए कि सूक्ष्म संस्कार विनष्ट हो गये हैं। आप सुरक्षित हैं। आत्म-विश्लेषण तथा आत्म-निरीक्षण के अभ्यास के लिए धैर्य, संलग्नता,

जोंक की भाँति चिपके रहना, अध्यवसाय, लौह-संकल्प, सूक्ष्म-बुद्धि, साहस आदि की आवश्यकता है। परन्तु इसका फल अनमोल है। वह फल है अमृतत्व, परम शान्ति, परमानन्द। इसके लिए आपको काफी मूल्य चुकाना होगा। अतः अपनी साधना करते समय असन्तोष न प्रकट कीजिए। आध्यात्मिक अभ्यास में आपको पूर्ण मन, हृदय, बुद्धि तथा आत्मा को लगाना होगा; तभी त्वरित सफलता सम्भव है।

नित्य आध्यात्मिक दैनन्दिनी का पालन कीजिए तथा रात्रि में आत्म-विश्लेषण का अभ्यास कीजिए। डायरी में यह अंकित कीजिए कि दिन-भर में आपने कितनी गलतियाँ की हैं तथा कितने भले कार्य किये हैं। प्रातः समय ऐसा संकल्प कीजिए: "मैं आज क्रोध के वशीभूत नहीं बनूँगा। मैं आज ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा। मैं आज सत्य बोलूँगा।"

११. प्रतिपक्ष-भावना की साधना

बुरे विचारों के घुसने पर उन्हें भगाने के लिए अपनी इच्छा-शक्ति का प्रयोग न कीजिए। इससे आपकी शक्ति का क्षय होगा। इससे आप थक जायेंगे। जितना अधिक आप प्रयास करेंगे, उतनी ही द्विगुणित शक्ति के साथ वे आप पर आक्रमण करेंगे। वे बारम्बार आप पर आक्रमण करेंगे। वे विचार बहुत मजबूत हो जायेंगे। उपेक्षा कीजिए।शान्त रहिए। वे शीघ्र चले जायेंगे। उनके स्थान पर प्रतिपक्ष-भावना रखिए। काम, क्रोध, मद, लोभ आदि को ब्रह्मचर्य, प्रेम, नम्रता तथा अपरिग्रह आदि के अभ्यास से दूर भगाइए अथवा ईश्वर के चित्र का अथवा मन्त्र का बारम्बार विचार कीजिए तथा प्रार्थना कीजिए।

१२. आध्यात्मिक दृष्टि की साधना

आसुरी प्रकृति को दैवी प्रकृति में परिणत करने के चार साधन हैं। जो इस साधना का अभ्यास करता है, वह कदापि बुरी दृष्टि नहीं रखेगा। उसे आध्यात्मिक दृष्टि की प्राप्ति होगी। उसका दृष्टिकोण परिवर्तित हो जायेगा। वह बुरे वातावरण की शिकायत नहीं करेगा। आपको इन चारों की साधना नित्य-प्रति करनी चाहिए।

१. कोई भी व्यक्ति पूर्णतः बुरा नहीं है। हर व्यक्ति में कुछ-न-कुछ सद्गुण अवश्य हैं। हर व्यक्ति में शुभ के दर्शन कीजिए। शुभ दृष्टि का विकास कीजिए। दोषान्वेषक दृष्टि के लिए यह बहुत ही प्रभावशाली उपचार है।

२. पहले दर्जे का दुष्ट व्यक्ति भी प्रसुप्त सन्त ही है। वह भविष्य में होने वाला सन्त है। इसको अच्छी तरह याद रखिए। वह शाश्वत दुष्ट नहीं है। उसे सन्तों की संगति में रखिए, उसकी चोर-वृत्ति तुरन्त ही बदल जायेगी। दुष्टता से घृणा कीजिए, परन्तु दुष्ट से नहीं।

३. याद रखिए कि भगवान् नारायण स्वयं दुष्ट, चोर तथा वेश्या के रूप में संसार के रंगमंच पर नाट्य-क्रीड़ा कर रहे हैं। यह उनकी लीला है। आपकी सारी दृष्टि तत्क्षण परिवर्तित हो जायेगी। दुष्ट को देखते ही आपके हृदय में भक्ति की भावना उत्पन्न होगी।

४. सर्वत्र नारायण-दृष्टि रखिए। सर्वत्र नारायण को देखिए। उसकी स्थिति का भान कीजिए। जो कुछ भी आप देखते, छूते तथा चखते हैं, वह ईश्वर के सिवा और कुछ नहीं है।

मानसिक दृष्टिकोण को बदल डालिए। दृष्टिकोण को बदलिए, तभी आप इस पृथ्वी पर स्वर्ग को प्राप्त कर सकते हैं। उपनिषदों तथा वेदान्त-सूत्रों के अध्ययन से क्या लाभ, यदि मनुष्य की दृष्टि बुरी और जबान गन्दी हो।

१३. विश्व-प्रेम के लिए अनुशासन

इस जगत् में प्रेम ही एक सार-वस्तु है। यह नित्य, असीम तथा अविनाशी है। शारीरिक प्रेम राग या मोह है। सार्वभौमिक प्रेम ईश्वरीय प्रेम है। ईश्वर प्रेम है। प्रेम ईश्वर है। स्वार्थ, लोभ, अभिमान, मद तथा घृणा हृदय को संकुचित बनाते हैं और विश्व-प्रेम के विकास में बाधक हैं।

निष्काम सेवा, सत्संग, प्रार्थना, मन्त्र जप आदि के द्वारा विश्व प्रेम का क्रमशः विकास कीजिए। स्वार्थ के द्वारा हृदय के आंकुचित हो जाने पर मनुष्य अपने स्त्री, बच्चे तथा सम्बन्धियों से ही प्रेम करता है। थोड़ी उन्नति करने पर वह अपने जिले के लोगों से प्रेम करने लगता है। तब वह प्रान्त के लोगों से प्रेम करता है। तब वह अपने देशवासियों से तथा अन्ततः विभिन्न देशों के वासियों से भी प्रेम करने लगता है। चरमावस्था में वह सभी से प्रेम करने लगता है। वह विश्व-प्रेम को प्राप्त करता है। सारी बाधाएँ दूर हो जाती हैं। हृदय विशाल हो जाता है।

विश्व-प्रेम के बारे में बातें करना तो बहुत आसान है; परन्तु उसे व्यवहार में लाना अति-कठिन है। मन की संकीर्णताएँ मार्ग में बाधक बन कर आती हैं। पहले के बुरे संस्कार बाधक बनते हैं। लौह-संकल्प, प्रबल इच्छा शक्ति, धैर्य, संलग्नता तथा विचार के द्वारा आप सभी बाधाओं को बड़ी आसानी से जीत सकते हैं। हे मेरे प्रिय मित्रो ! यदि आप सच्चे हैं, तो ईश्वर की कृपा आपको प्राप्त होगी।

विश्व-प्रेम की परिसमाप्ति अद्वैत चेतना में होती है। यही उपनिषद् के ऋषियों की चेतना है। शुद्ध प्रेम महान् समताप्रदायक है। हाफिज, कबीर, मीरा, गौरांग, तुकाराम, रामदास सभी ने इस विश्व-प्रेम का आस्वादन किया था। दूसरे लोगों ने जिसे प्राप्त किया है, उसे आप भी प्राप्त कर सकते हैं।

अनुभव कीजिए कि सारा जगत् आपका शरीर है, आपका अपना घर है। मनुष्य तथा मनुष्य के बीच जितने भी अवरोधक हैं, उन्हें विनष्ट कर डालिए। बड़प्पन की भावना तो मूर्खता है। विश्व-प्रेम का विकास कीजिए। सभी से एकता रखिए। अलग होना तो मृत्यु है। एकता नित्य जीवन है। अनुभव कीजिए कि सारा जगत् विश्व-वृन्दावन है। अनुभव कीजिए कि यह शरीर ईश्वर का चल-निकेतन है। जहाँ भी आप हों, घर, आफिस, स्टेशन या बाजार में सर्वत्र अनुभव कीजिए कि आप मन्दिर में ही हैं। हर कार्य को ईश्वर की ही पूजा समझिए। कर्म-फल को ईश्वरार्पित कर हर कार्य को योग में परिणत कर डालिए। वेदान्त के साधकों को अकर्ता तथा साक्षी-भाव बनाये रखना चाहिए। भक्ति-मार्ग के साधकों को निमित्त-भाव रखना चाहिए। ऐसी भावना कीजिए कि सारे प्राणी ईश्वर के ही रूप हैं। 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' - यह जगत् ईश्वर द्वारा परिव्याप्त है। भावना कीजिए कि एक ही वस्तु अथवा ईश्वर सभी हाथों से कार्य करता, सभी नेत्रों से देखता तथा सभी कानों से सुनता है। आप परिवर्तित हो जायेंगे। आप परम शान्ति तथा सुख का उपभोग करेंगे।

अध्याय ४: प्रस्थानत्रयी में साधना

१. ब्रह्मसूत्र में साधना

ब्रह्मसूत्र के साधनाध्याय नामक तृतीय अध्याय में ब्रह्म-साक्षात्कार के लिए साधनाओं का वर्णन है। इस अध्याय में उन साधनाओं का निश्चय किया गया है जिनसे ब्रह्म-साक्षात्कार प्राप्त हो सके। इस अध्याय के प्रथम तथा द्वितीय पादों में दो बातें बतलायी गयी हैं- ब्रह्म-साक्षात्कार के लिए प्रबल मुमुक्षुत्व तथा ब्रह्म से इतर सभी वस्तुओं के प्रति तीव्र वैराग्य; क्योंकि सभी साधनाओं के ये ही दो मूल आधार हैं।

वैराग्य की वृद्धि के लिए प्रथम पाद के सूत्रों में सारे लौकिक अस्तित्वों की अनित्यता का निरूपण किया गया है। छान्दोग्य उपनिषद् की पंचाग्निविद्या पर यह आधारित है जिसमें मृत्यु के उपरान्त जीवात्मा की गति का वर्णन किया गया है।

प्रथम पाद पुनर्जन्म के महान् सिद्धान्त, भौतिक शरीर से जीवात्मा का गमन, तृतीय कक्ष में चन्द्रलोक की यात्रा तथा उसके पृथ्वी पर जन्म की शिक्षा देता है। इहलोक तथा परलोक के विषय-सुखों के प्रति वैराग्य उत्पन्न करने के लिए ही ऐसा विवरण दिया गया है। द्वितीय पाद में ब्रह्म के सारे विशेषणों जैसे सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता, सर्वप्रियता आदि का वर्णन है जिससे कि सारे जन ब्रह्म की ओर आकृष्ट हों तथा ब्रह्म को ही अपनी खोज का एकमात्र लक्ष्य बनायें।

तृतीय पाद में ब्रह्मसूत्र के सूत्रकार श्रुतियों में वर्णित विभिन्न विद्याओं या उपासनाओं या ध्यानों का निश्चय करते हैं।

साधक को ब्रह्मज्ञान में समर्थ बनाने के हेतु श्रुतियों में विविध प्रकार की विद्याओं का वर्णन है। साधारण मनुष्य के लिए असीम ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान होना असम्भव है; क्योंकि ब्रह्म अत्यन्त सूक्ष्म है तथा इन्द्रियों स्वयं स्थूल बुद्धि की पहुँच के परे है। अतः श्रुतियाँ सगुण ध्यान के सुगम साधन बतलाती हैं जिससे कि ब्रह्म की प्राप्ति हो। वे ब्रह्म के बहुत से प्रतीकों का वर्णन करती हैं जैसे वैश्वानर या विराट्, सूर्य, आकाश, अन्न, प्राण तथा मन। नये साधकों के ध्यानार्थ ये बहुत ही उपयोगी हैं। प्रारम्भ में ये प्रतीक आलम्बन का काम करते हैं। ऐसे सगुण ध्यान से मन सूक्ष्म, तेज तथा एकाग्र बन जाता है।

निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति के लिए इन साधनों को विद्या या उपासना कहते हैं। इस पाद में विभिन्न विद्याओं का वर्णन है जिनसे जीव परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। इन सभी विद्याओं का लक्ष्य ब्रह्म-साक्षात्कार है। ब्रह्म ही एकमेव जीवन्त सत्य है। ब्रह्म ही सत्य है। ब्रह्म सत् या परम अस्तित्व है। कोई भी विद्या ब्रह्म-प्राप्ति के लिए अन्य विद्याओं के समान ही शक्ति रखती है।

ब्रह्म पर ध्यान करने के लिए श्रुति या तो साक्षात् साधना बतलाती है या सूर्य, आकाश, अन्न, मन, प्राण, नेत्र स्थित पुरुष, हृदय स्थित दहराकाश, ॐ जैसे प्रतीकों के माध्यम से परोक्ष ध्यान की साधना बतलाती है।

आपको इन प्रतीकों में तथा इन प्रतीकों के द्वारा ब्रह्म की उपासना तथा खोज करनी चाहिए। परन्तु ध्यान रखिए कि ये प्रतीक ही ब्रह्म के स्थान को ग्रहण न कर लें। आपको इन प्रतीकों के ऊपर मन को एकाग्र करना होगा तथा

सर्वशक्तिमत्ता, सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता, सच्चिदानन्द, शुद्धता, पूर्णता, स्वतन्त्रता आदि विशेषणों पर ध्यान करना होगा।

प्रतीकों की भिन्नता की दृष्टि से ही ये विद्याएँ विभिन्न जान पड़ती हैं; परन्तु सर्वत्र लक्ष्य एक ही है। इसको सदा ध्यान में रखिए।

कुछ विद्याओं में ब्रह्म के समान विश्लेषण पाये जाते हैं। आपको अपने को ब्रह्म से पृथक् नहीं समझना चाहिए। यही महत्त्व की बात है।

सभी विद्याओं में तीन बातें समान हैं। सभी का लक्ष्य ब्रह्म-साक्षात्कार के द्वारा-चाहे प्रतीकों की सहायता से इसकी प्राप्ति हो अथवा बिना प्रतीकों की सहायता के ही- नित्य-सुख तथा अमृतत्व की प्राप्ति है। सारी विद्याओं में जो समान विशेषण मिलते हैं जैसे आनन्द, शुद्धता, पूर्णता, ज्ञान, अमृतत्व, कैवल्य, नित्य-तृप्ति आदि, उन्हें ब्रह्म की धारणा के साथ संयोजित करना चाहिए। ध्याता स्वयं को ब्रह्म से एक समझे। वह ब्रह्म को अपनी अमर आत्मा समझ कर उसकी उपासना करे।

२. उपनिषदों की साधना

उपनिषद् हिन्दू-धर्म तथा दर्शन के केन्द्रीय आधार हैं। वे वेदान्त अथवा वेदों का अन्त अथवा ज्ञान की पराकाष्ठा हैं। उपनिषदों की गम्भीरता अतुलनीय है। जगत् के सबसे महान् विचारकों ने भी उनसे तृप्ति पायी है, सबसे अधिक महान् आध्यात्मिक पुरुषों ने भी सान्त्वना पायी है। उपनिषदों के पूर्व अथवा बाद का कोई भी ग्रन्थ उनके ज्ञान की गहरायी तथा तृप्ति एवं शान्ति के सन्देश का अतिक्रमण नहीं कर सकता। दध्यांच, उद्दालक, सनत्कुमार, शाण्डिल्य तथा याज्ञवल्क्य-ये उपनिषद के प्रसिद्ध ऋषियों में हैं जिन्होंन ज्ञान की ज्योति जगायी है। उपनिषदें मुख्यतः दर्शन-पद्धति के द्वारा ज्ञान की शिक्षा देती हैं। आत्मान्वेषियों के लिए ये पाठ्य-ग्रन्थ है। इन्हें विभिन्न नामों से पुकारा जाता है: ब्रह्मविद्या, अध्यात्म शास्त्र, वेदान्त, ज्ञान आदि। जो उपनिषदों के उपदेशों का अभ्यास करता है, वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेगा। वह हृदय-ग्रन्थि का भेदन कर तथा शंकाओं को दूर कर सारे पापों को विनष्ट कर देता है। वह सबमें प्रवेश कर जाता है। वह जन्म-मृत्यु से विमुक्त हो जाता है। वह अमर हो जाता है। वह आत्मा ही बन जाता है। वह आप्त-काम है। वह धन्य है। वह शोकों का अतिक्रमण कर लेता है। वह पाप से पार चला जाता है। वह मर्त्यशील शरीर को पुनः धारण नहीं करता। वह ब्रह्म हो जाता है।

उपनिषद् आध्यात्मिक ज्ञान की पुस्तकें हैं। इन सारी प्रतीयमान वस्तुओं में ब्रह्म ही परिव्याप्त है। सांसारिकता के भाव का परित्याग कर मनुष्य को शुद्ध आनन्द का भोग करना चाहिए। उसे दूसरे के धन का लोभ नहीं करना चाहिए।

जीवन दुःख नहीं है। राग रहित हो कर्मों को करते हुए मनुष्य शतायु हो। सम्यक् दृष्टि से देखने पर जीवन बन्धन नहीं है। ऐसा ज्ञानी सभी भूतों में अपनी आत्मा को तथा अपनी आत्मा को सभी भूतों में देखता है। उसके लिए हर वस्तु उसकी आत्मा है तथा वह शोक, मोह अथवा किसी प्रकार के दुःख से प्रभावित नहीं होता।

परब्रह्म अवर्णनीय है। वह मन तथा इन्द्रियों की पहुँच से परे है। वह बुद्धि से भी परे है। वह सभी की रोशनी है। उसके लिए कोई आलोक नहीं। वाणी उसे व्यक्त नहीं कर सकती। मन उसे सोच नहीं सकता। बुद्धि उसे समझ नहीं सकती। इन्द्रियाँ उसे ग्रहण नहीं कर सकतीं। ऐसी विचित्र वस्तु है वह सत्य। ब्रह्मज्ञान किसी वस्तु का ज्ञान नहीं, वरन् परम ज्ञान ही बन जाता है। वाणी के द्वारा कहा जाये तो उसे 'असीम कर्ता' कह सकते हैं। वह अनुभव है, विषय-संवेदन

नहीं। वह पारमार्थिक तत्त्व है; अतः वह द्वैत एवं द्वन्द्वों से परे है। उसको जानना ही सबसे महान् लाभ है। वह व्यक्ति अभागा ही है जो उसे बिना जाने ही मर जाता है।

पार्थिव वस्तुएँ नाशवान् हैं; अतः उनके पीछे नहीं पड़ना चाहिए। बहुत वर्षों का सारा जीवन भी अल्प ही है। वह कुछ भी नहीं है। विषयों के भोग से कोई लाभ नहीं है। मनुष्य धन से तृप्त नहीं हो सकता है। अपनी चेतना के विरुद्ध भी वह अमर बनना चाहता है। दुर्भाग्यवश वह उन वस्तुओं के पीछे दौड़ता है जो सुखद मालूम पड़ती हैं, परन्तु वास्तव में सुखद नहीं हैं। श्रेय एक वस्तु है और प्रेय दूसरी वस्तु। पहली मुक्ति प्रदान करती है और दूसरी बन्धन में डालती है। मनुष्य को एक क्षण के लिए भी प्रेय को ग्रहण नहीं करना चाहिए, यद्यपि क्षण मात्र के लिए सुख की प्राप्ति ही क्यों न हो।

आत्मा जन्म नहीं लेती और न मरती ही है। वह कहीं से उत्पन्न नहीं हुई और न तो वह किसी रूप में परिणत हुई है। अज, अव्यय, नित्य, पुराण यह आत्मा शरीर के मारे जाने पर भी नहीं मरती। यह आत्मा सभी भूतों के हृदय के अन्तरतम में छिपी हुई है। कितने भी तर्क, अध्ययन अथवा उपदेश के द्वारा इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह परम कृपा से ही प्राप्य है। दुराचारी व्यक्ति, जिसने अपनी कुटिलता का परित्याग नहीं किया, आत्म-प्राप्ति की आशा नहीं रख सकता।

ब्रह्म का मार्ग काँटों से भरा हुआ है। यह छुरे की धार के समान तीव्र है। यह बहुत ही कठिन है। ज्ञानियों के ज्ञान की सहायता से ही इस पर चलना सम्भव है। इसको जान लेने पर मनुष्य मृत्यु के भयानक क्रोड़ से विमुक्त हो जाता है।

मन तथा इन्द्रियाँ सदा बाहर की ओर दौड़ते हैं। आत्मानुशासन से युक्त धीर पुरुष ही अन्तर की ओर दृष्टि-निक्षेप कर आत्मा के स्वरूप का दर्शन कर सकता है। बाल-प्रकृति वाले मनुष्य, जिन्हें सत्य का ज्ञान नहीं, बाह्य सुखों की ओर दौड़ते हैं तथा मृत्यु के फैले हुए पाश में जा गिरते हैं। ज्ञानी मनुष्य ही अमृतत्व की अवस्था का ज्ञान कर क्षणभंगुर वस्तुओं में अव्यय ब्रह्म की खोज नहीं करते।

मनुष्य को संसार के धन की लिप्सा नहीं रखनी चाहिए। जो भी यहाँ है, वह वहाँ है। जो वहाँ है, वह यहाँ है। वह मनुष्य मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त करता है जो यहाँ अनेकता देखता है। वास्तव में यहाँ अनेकता नहीं है। वह एक परम वस्तु विभिन्न नाम-रूपों तथा क्रियाओं का परिधान पहन कर बहुत वस्तुओं के रूप में प्रतीयमान होती है।

आत्मा अथवा ब्रह्म का परिवर्तनशील जगत् से कोई सम्बन्ध नहीं है। जिस प्रकार नेत्र के दोषों से सूर्य मलिन नहीं होता, उसी प्रकार संसार के दोषों से आत्मा कलुषित नहीं होती। जिस प्रकार एक ही अग्नि जगत् में प्रवेश कर सभी रूपों के अनुसार अपना रूप धारण करती है, उसी प्रकार अन्तरात्मा भी सभी वस्तुओं में प्रवेश कर उनके आकारों को धारण करती है और फिर भी वह उन सबसे परे है।

संसार के सुख, ज्योति, सौन्दर्य तथा शुभ नाम मात्र भी वहाँ नहीं हैं। सूर्य की ज्योति तथा स्रष्टा की महिमा ब्रह्म के समक्ष कुछ भी नहीं है। जब मन के साथ सारी इन्द्रियाँ काम करना बन्द कर देती हैं, जब बुद्धि भी कार्य नहीं करती, जब वह चिन्मात्र ही रह जाता है, तब उच्च अवस्था की अनुभूति होती है। जब हृदयगत सारी कामनाएँ विमुक्त हो जाती हैं, तब मरणशील मनुष्य अमर हो जाता है। वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

ब्रह्म की अवस्था हमारी सभी प्रिय वस्तुओं का तिरोधान नहीं, वरन् हमारी सभी कामनाओं की चरम परिपूर्ति है। हमारी ससीमता टूट जाती है, अपूर्णताएँ नष्ट हो जाती है तथा हम नित्य-तृप्ति की पुण्यावस्था में प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

हमारी सारी कामनाएँ एक-साथ ही उसी समय परितृप्त हो जाती हैं। हम असीम सुख तथा आनन्द के मूल बन जाते हैं। हम अजन्मता तथा अमरता का अनुभव करते हैं। हमसे बढ़ कर कुछ भी नहीं है।

वह क्या है जिसे जान लेने पर अन्य सभी वस्तुएँ जान ली जाती हैं? वह ब्रह्म है। उसे जानना चाहिए। ब्रह्म सत्य, ज्ञान, असीम तथा आनन्द है। ब्रह्म भूमा है; जहाँ मनुष्य अन्य कुछ भी नहीं देखता, अन्य कुछ भी नहीं सुनता, अन्य कुछ भी नहीं विचारता। वह किसी पर स्थित नहीं है। उसी पर सभी स्थित हैं। जो उसे जानता है, अपनी आत्मा में ही आनन्द उठाता है तथा अपनी आत्मा में ही परितृप्त रहता है।

यज्ञों (कर्मों) से मुक्ति नहीं मिलती। वे प्रलोभन मात्र हैं जो मनुष्य को जन्म-मृत्यु के बन्धन में डालते हैं। अज्ञ मनुष्य सोचते हैं कि कर्म तथा दान से ही नित्य-सुख की प्राप्ति हो जायेगी। वे भ्रम में हैं। जो कर्म का फल नहीं, वह कितना भी कर्म करने से प्राप्त नहीं हो सकता। ब्रह्म, जो कृत नहीं, कृत वस्तु से प्राप्त नहीं हो सकता। संसार की वस्तुस्थिति को परख कर बुद्धिमान् मनुष्य को उदासीनता तथा वैराग्य का अर्जन करना चाहिए। ऐसा सौभाग्यशाली मनुष्य अविद्या ग्रन्थी का भेदन करता है।

आत्मा पर ध्यान करने के अतिरिक्त मनुष्य का अन्य कोई कर्तव्य नहीं है। सब-कुछ का परित्याग कर मनुष्य को आत्मा में संस्थित होना चाहिए। आत्मानुभव प्राप्त कर लेने पर कुछ भी करने अथवा पाने के लिए शेष नहीं रह जाता; क्योंकि वह ब्रह्म ही ऊपर-नीचे, दायें-बायें, आगे-पीछे सब कुछ है। वही महान् तथा लघु है। ब्रह्म के सिवा कुछ भी नहीं है। यह सब ब्रह्म ही है।

सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं। मिथ्या तथा झूठ, धोखा अथवा असत्य अपने प्रयासों में सफल नहीं हो सकते। सत्य ही शाश्वत है। ज्ञान युक्त ध्यान के द्वारा ही उस सत्य की प्राप्ति होती है।

शुद्ध प्रकृति वाला मनुष्य जो कुछ भी संकल्प करता है, अथवा जो कुछ भी कामना करता है, वही वह प्राप्त करता है, उसे ही वह पूर्ण करता है। अतः मनुष्य को शुद्ध तथा पूर्ण संकल्प होना चाहिए। जिन विषयों की वह कामना करता है, वह उन कामनाओं की पूर्ति के लिए बारम्बार जन्म लेता है। जिसकी कामना तृप्त हो चुकी है, जो पूर्ण है, उसकी कामनाएँ स्वतः यहीं पर विलीन हो जाती हैं।

मोक्ष की अवस्था बड़ी ही महान् है। इस अवस्था को प्राप्त करने वाली पुण्यात्माएँ सभी में प्रवेश कर जाती हैं। वे सब बन जाती हैं। वे राग से मुक्त हो जाती हैं। वे प्रशान्त तथा परिपूर्ण हैं। वे मृत्यु से विमुक्त हो जाती हैं। वे परब्रह्म से एक बन जाती हैं।

जिस प्रकार बहती हुई नदियाँ अपने नाम-रूपों का त्याग कर समुद्र में विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष नाम-रूप से विमुक्त हो कर परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है। वह शोक तथा मृत्यु का सन्तरण कर लेता है। वह अमर बन जाता है।

चैतन्य की चतुर्थावस्था में परमात्मा का अनुभव होता है। वहाँ न यह है, न वह है। उसमें कोई विशेष गुण नहीं है। वह सब है। वह शान्त, सुन्दर तथा अद्वैत है। वह दृश्य का उपशमन है। वही आत्मा है। उसे जानना तथा उसका साक्षात्कार करना चाहिए। यही जीवन का उद्देश्य है।

जीवन्मुक्त यह अनुभव करता है कि वह सब-कुछ है। वह वृक्ष तथा पर्वत है। वह सूर्य के समान विभासित है। वह ज्योति पुंज, प्रज्ञानघन, अमर तथा अव्यय है। वह अन्न तथा अन्न का भोक्ता है। वह ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान- तीनों एक में है। वह स्वयं में समस्त जगत् है।

आनन्द सत्य का चरम स्वरूप है। आनन्द से ही यह सब उत्पन्न हुआ है। आनन्द से ही यह सब-कुछ अनुप्राणित है और अन्ततः आनन्द में ही यह सब प्रवेश पाता है। ब्रह्मानन्द के समक्ष चौदहों लोकों का सुख कुछ भी नहीं है। संसार का सारा सुख आत्म-सुख की छाया ही है। आत्म-सुख परम वस्तु है। एकमेव यही सच्चा सुख है। सुख के अन्य साधन गतिमान कल्पनाएँ हैं। अन्य सुख आत्म-सुख की ही क्षीण छाया है। शुद्ध आत्म-सुख अथवा ब्रह्मानन्द के सामने जगत् तथा स्वर्ग का सबसे बड़ा आनन्द भी कुछ नहीं है। सुख की प्राप्ति के लिए मनुष्य को बाह्य पदार्थों की ओर दौड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। आत्मा सारे सुखों का मूल है। आत्मा ही सब-कुछ है, सम्पूर्ण सुख तथा ज्ञान है।

यह सब चैतन्य द्वारा ही अनुशासित है और चैतन्य पर ही आधारित है। चैतन्य ही इस जगत् का विधायक है। चैतन्य ब्रह्म है। वही तू है। यह आत्मा ब्रह्म है। ये सब ब्रह्म की दार्शनिक व्याख्याएँ हैं। "यह सब ब्रह्म ही है।" यह परम साक्षात्कार है। जो इसे जानता है, वह जगत् में पुनर्जन्म नहीं प्राप्त करता।

जिस प्रकार मिट्टी के एक टुकड़े से मिट्टी की बनी हुई सभी चीजें जान ली जाती हैं; जिस प्रकार स्वर्ण के एक टुकड़े से स्वर्ण की बनी सभी चीजें जान ली जाती हैं; जिस प्रकार कैंची के द्वारा लोहे की बनी सभी चीजें जान ली जाती हैं- ये सारे विकार तो नाम मात्र ही हैं। सत्य तो मिट्टी, सोना अथवा लोहा ही है, उसी प्रकार यह जगत् ब्रह्म ही है। ब्रह्म को जान लेने पर सब-कुछ जान लिया जाता है।

प्रारम्भ में एकमेव सत् ही था। वह एकमेवाद्वितीय था। उससे सभी वस्तुओं की उत्पत्ति हुई। उसे विकार केवल प्रतीयमान है। नाम-रूप से परे जगत् है ही नहीं। रंग तथा भ्रामक रूपों के सिवा सूर्य तथा चन्द्र भी नहीं हैं। रंगों को अलग करने पर सूर्य सूर्य नहीं रहता, चन्द्र चन्द्र नहीं रहता, वस्तु वस्तु नहीं रह जाती। ब्रह्म ही रह जाता है।

गुरु के द्वारा पथ-प्रदर्शन प्राप्त मनुष्य सत्य को सुगमतापूर्वक जानता है, अन्यथा आध्यात्मिक अन्धेपन के कारण वह मार्ग भूल जायेगा। गुरु उपदेश देता है- "जो सूक्ष्मतम सार है, वही इस समस्त जगत् की आत्मा है। वही सत्य है। वही आत्मा है। वही तू है।"

भूमा, असीम पूर्णता ही सुख है। अल्प वस्तुओं में सुख कहाँ? असीम ही सुख है। जहाँ मनुष्य अन्य कुछ भी नहीं देखता, अन्य कुछ भी नहीं सुनता, अन्य कुछ भी नहीं समझता वही भूमा है। जहाँ मनुष्य अन्य देखता है, अन्य सुनता है, अन्य समझता है-वही अल्प है। भूमा अमर है। अल्प विनश्वर है। वही भूमा सर्वत्र है। यह सब वही है।

आहार की शुद्धि से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। अन्तःकरण की शुद्धि (सत्त्वशुद्धि) से ध्रुवास्मृति मिलती है। ध्रुवास्मृति से हृदय की सम्पूर्ण ग्रन्थियों का भेदन हो जाता है, मनुष्य अमर बन जाता है।

आत्मा ही प्रिय है। जो आत्मा से इतर अन्य वस्तुओं से प्रेम करता है, वह अपनी प्रिय वस्तु को खो बैठता है। आत्मा ही परम है। जो इसे जानता है, वह अक्षय हो जाता है। वह तो पशु के समान ही है जो स्वयं को ईश्वर से भिन्न समझता है। इसके लिए ये सब प्रिय नहीं हैं; परन्तु आत्मा के लिए ही ये सब प्रिय हैं। उस आत्मा को जान लेने पर यह सब स्वतः ही जान लिया जाता है, क्योंकि आत्मा ही यह सब है।

आत्मा अपार एवं अगाध सागर है। यह सत्, चित् तथा आनन्द मात्र है। जहाँ द्वैत है वहीं मनुष्य एक-दूसरे से बातें करता है, एक-दूसरे को देखता है, एक-दूसरे को समझता है; परन्तु जहाँ सब-कुछ आत्मा ही है, वहाँ कौन किससे बातें करेगा, कौन किसे देखेगा, कौन किसे समझेगा? वही परम लक्ष्य है। वही परम वरदान है। वही परम आनन्द है। उसी आनन्द के एक अंश में सभी प्राणी जीते हैं।

जो इच्छा रहित है, जो इच्छाओं से मुक्त है, जिसकी इच्छाएँ परितृप्त हैं, जिसकी इच्छा आत्मा ही है, उसके प्राण गमन नहीं करते। वह ब्रह्म तो है ही, शीघ्र ही ब्रह्म बन जाता है।

जीवन्मुक्त बालकवत् है। वह सारे ज्ञान का मूल है, फिर भी अज्ञ की भाँति व्यवहार करता है। वही सच्चा ब्राह्मण है जिसने ब्रह्म को जान लिया।

जो सबमें निवास करता है, फिर भी सबसे अलग है, जिसे सभी वस्तुएँ नहीं जानतीं, जिसके शरीर में ये सारी वस्तुएँ हैं, जो अन्तर से इन सारी वस्तुओं पर नियन्त्रण करता है वही आत्मा अन्तर्यामी तथा अमृत है। वह अदृष्ट द्रष्टा है, अश्रुत श्रोता है, अमंत मंता है। उसके अतिरिक्त किसी भी समय कुछ भी नहीं है। ब्रह्म को जाने बिना ही जो शरीर-त्याग करता है, वह निष्फल ही रह जाता है। वह अभागा है। वह महान् है जो ब्रह्म को जान कर मरता है। वह सच्चा ब्राह्मण है।

वह महान्, अज, अव्यय, अमर, अभय आत्मा ही ब्रह्म है। ब्रह्म अभय है। जो उसे प्राप्त करता है, वह अभय ब्रह्म बन जाता है। वह पूर्ण है। यह पूर्ण है। पूर्ण से पूर्ण की उत्पत्ति हुई है। पूर्ण से पूर्ण को निकाल लेने पर पूर्ण ही बचा रहता है। यही सारे उपनिषदों का सार है।

उपनिषदों की साधना भ्रमर-कीट-न्याय के अनुसार है। उपनिषद् में घोषित सत्य पर ध्यान ही साधना है। यह साधना बहुत ही उच्च कोटि की है। उन्नत साधक ही साधना के इस मार्ग को ग्रहण कर सकते हैं। साधना के इस मार्ग को ज्ञानयोग कहते हैं। इसमें बौद्धिक विश्लेषण के द्वारा अपरोक्षानुभूति को प्राप्त करते हैं। ज्ञानयोगी विज्ञान अथवा बुद्धि से ही साधना का प्रारम्भ करता है। वह आवेगों, प्राणों के संयम आदि पर निर्भर नहीं करता। वह सारे आवेगों को शान्त कर मन को परमात्मा पर केन्द्रित करता है। वह सद्योमुक्ति प्राप्त कर लेता है। वह सभी में प्रवेश कर सबकी आत्मा बन जाता है। यही मानव-जीवन का लक्ष्य है।

३. भगवद्गीता की साधना

गीता-साधना

भगवद्गीता खेतों में काम करने वाले कृषकों से ले कर अद्वैत वेदान्त के दार्शनिकों तक सभी के लिए व्यावहारिक साधना का ग्रन्थ है। यह मनुष्य के किसी भी पहलू की उपेक्षा नहीं करती। यह कर्म, आवेग तथा विचार- इन तीनों को ध्यान में रखती है। यह ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र- सिद्धान्त तथा साधना, दोनों ही है। यह कृष्णार्जुनसंवाद, जीव तथा परमात्मा का मिलन है। गीता दार्शनिक सिद्धान्त की पुस्तक नहीं, वरन् मनुष्य के नित्य जीवन में साधना की पथ-प्रदर्शिका है। शुद्ध ज्ञान का मार्ग बहुत उन्नत व्यक्तियों के लिए ही सम्भव है; परन्तु गीता का मार्ग सरल है। सभी इसका अर्थात् ईश्वर-भक्ति का अभ्यास कर सकते हैं।

गीता कर्मयोग पर बल देती है। किसी कर्म को प्रारम्भ कर देने के पश्चात् उससे भागने की कोई आवश्यकता नहीं। कर्म से आत्मा बँधती नहीं तथा आत्मा बाह्य विकारों से प्रभावित नहीं होती, क्योंकि आत्मा नित्य है। मृत्यु तो शरीर का परिवर्तन मात्र है तथा शरीर का विनाश होने पर मनुष्य को शोक करने की आवश्यकता नहीं। आत्मा भूत, भविष्य तथा वर्तमान में एक ही दशा में रहती है। जो इसे जानता है, वह शोक नहीं करता। आत्मा को कोई भी नष्ट नहीं कर सकता। यह अमर तथा अक्षर है। आत्मा किसी को मारती नहीं तथा किसी के द्वारा मारी नहीं जाती। आत्मज्ञान महान् प्राप्ति है।

सुख तथा दुःख में समत्व बुद्धि बनाये रखनी चाहिए। तब मनुष्य पाप-कर्म नहीं कर सकता। मनुष्य का कर्तव्य केवल कर्म करने का है, उसके फल की कामना रखने का नहीं। अनासक्ति के द्वारा मनुष्य कर्मयोग में स्थित हो जाता है। मूर्ख जन ही कर्म-फल के साथ आसक्त बनते हैं।

स्थितप्रज्ञ वह है जो अपनी आत्मा में स्थित तथा तृप्त है। उसे किसी वस्तु से आसक्ति नहीं। वह किसी से द्वेष नहीं रखता। वह किसी से डरता नहीं। ब्रह्म को देख लेने पर विषयों की तृष्णा विलीन हो जाती है। इन्द्रियाँ बड़ी ही शक्तिशाली हैं, वे उन्हें भी भ्रमित कर लेती हैं जो इन्द्रिय-दमन के लिए सतत अभ्यास कर रहे हैं। परन्तु स्थितप्रज्ञ की सारी इन्द्रियाँ उसके वश में होती हैं। विषयाकर्षण से अन्त में मनुष्य का विनाश ही हो जाता है। वही शान्ति प्राप्त कर सकता है जो निरभिमान है, जो ब्रह्मावस्था को प्राप्त है।

कर्म के बिना कोई एक क्षण भी नहीं रह सकता। प्रकृति मनुष्य को उसकी इच्छा के विरुद्ध भी कर्म में लगाये रखती है। वह तो पाखण्डी है जो शरीर से तो शान्त बैठता है; परन्तु मन से विषयों का चिन्तन करता रहता है। वही संन्यासी है जो मन से विरक्त है। कर्म के बिना जीवन सम्भव नहीं; परन्तु उसके लिए कोई कर्म नहीं जो आत्मा में क्रीड़ा कर रहा है तथा आत्मा में ही सन्तुष्ट है। उसे कोई कर्तव्य करना बाकी नहीं है।

यदि परमेश्वर स्वयं कार्य न करे, तो समस्त जगत् ही विनष्ट हो जाये। बड़े जन इसलिए कार्य करते हैं कि दूसरे लोग उनका अनुगमन कर सकें। जिस प्रकार अज्ञ आसक्तिवश काम करते हैं, उसी प्रकार ज्ञानी को आसक्ति रहित हो विश्व-कल्याण के हेतु कार्य करना चाहिए। ज्ञानी मनुष्य को अज्ञानी मनुष्य के मन को अव्यवस्थित नहीं बनाना चाहिए। इन्द्रियों के रूप में गुण विषयों के रूप में गुणों के साथ कार्य करते हैं। ऐसा जान कर ज्ञानी जन आसक्त नहीं होते। प्रकृति के विरुद्ध जाना कठिन है। ज्ञानी भी प्रकृति के बल से प्रेरित होता है। रजोगुण से उत्पन्न काम तथा क्रोध ही मनुष्य के महाशत्रु हैं। वे सद्‌गुणों को विनष्ट कर शुद्धता का भक्षण करते हैं। वे महान् पापों के मूल हैं। ज्ञान काम से आच्छन्न है; अतः मनुष्य को काम का विनाश करना चाहिए, जो महान् शत्रु है।

वही ज्ञानी ज्ञानी पुरुष है जो कर्म में अकर्म तथा अकर्म में कर्म को देखता है। वही ज्ञानी है जिसने सारे कर्मों को ज्ञान से जला दिया है। वह कर्म के फलों से अविचलित रहता है। उसके लिए सब-कुछ ब्रह्म मात्र ही है। उसके लिए कर्म का कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि वह सभी में ब्रह्म को ही देखता है। सेवा, आत्मार्पण तथा विचार के द्वारा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्ञान महान् पापों को भी विनष्ट कर देता है। सबसे बड़ा पापी भी परम ज्ञान को प्राप्त कर लेता है। जिस प्रकार अग्नि ईंधन को जला डालती है, उसी प्रकार ज्ञान सारे कर्मों को जला डालता है। कालान्तर में ही ज्ञान की प्राप्ति होती है।

ज्ञान तथा कर्म भिन्न-भिन्न नहीं हैं, क्योंकि दोनों ही मुक्ति के साधन हैं। राग रहित कर्म पूर्ण त्याग से कहीं बढ़ कर है। कर्मों का त्याग करना कठिन है। राग रहित कर्म से ब्रह्म की प्राप्ति सुगमता से हो जाती है। वह सारे कार्यों को करते हुए भी असंग रहता है। वह जल में पद्मपत्रवत् अलिप्त रहता है।

परमात्मा मनुष्य को पाप-पुण्य कर्म प्रदान नहीं करता। प्रकृति ही ऐसा करती है। ज्ञान अज्ञान से आवृत है। यही कारण है कि सारे जीव भ्रमित हो रहे हैं। उनके लिए ब्रह्म प्रकट होता है जिन्होंने आत्मज्ञान के द्वारा अज्ञान को हटा दिया है। वे सदा ब्रह्म में निमग्न रहते हैं- ब्रह्म से एक बने रहते हैं। वे उसी ब्रह्म को सभी में देखते हैं। उन्होंने यहीं जन्म और मृत्यु पर विजय पा ली है।

विषयों के सम्पर्क से उत्पन्न सुख भावी दुःख की जननी है। ज्ञानी लोग उसमें सुख को नहीं देखते। जो आत्मा में स्थित है, जो आत्मा में आनन्दोपभोग करता है, जो आत्मा में शान्ति के साथ संस्थित है, जो आत्म-ज्योति का द्रष्टा है, वह परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

सच्चा योगी वही है जिसने विचारों का संन्यास कर लिया है। आत्मा पर ध्यान के द्वारा इस योग की प्राप्ति होती है। वह अक्षय, अतीत, नित्य, ज्ञानस्वरूप तथा इन्द्रियों से परे है। इसको प्राप्त कर लेने पर मनुष्य के लिए अन्य लाभ नहीं रह जाता। इसमें स्थित हो कर मनुष्य गुरुतम आपत्तियों में भी विचलित नहीं होता। यही योग है जो सारे दुःखों को विनष्ट करता है। उसी का अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा मनुष्य योग में स्थित हो जाता है। यदि इस जीवन में लक्ष्य प्राप्ति न हई, तो वह दूसरा अनुकूल जन्म ले कर अभ्यास जारी रखता है। पिछले संस्कार उसका मार्ग-दर्शन करते हैं। वह ब्रह्म को पा जाता है।

परमात्मा सारे लोकों की योनि है। वह स्रष्टा, पालक तथा संहारक है। वह सबसे महान् है। तीन गुणों ने समस्त संसार को भ्रम में डाल दिया है। अतः ईश्वर को कोई जानता नहीं। ईश्वरार्पण के बिना इस माया को जीतना असम्भव है। ऐसे लोग ईश्वर के प्रिय है। उनमें ज्ञानी सर्वोत्तम भक्त है; क्योंकि उसमें स्वार्थपूर्ण इच्छाएँ नहीं रहीं। बहुत जन्मों के पश्चात् ही मनुष्य यह साक्षात्कार करता है कि सब-कुछ वासुदेव ही है। सभी विभिन्न कामनाओं से मोहित हैं। वे विविध जन्म-मृत्यु के चक्कर से हो कर ही ईश्वर को प्राप्त करेंगे।

जो मृत्यु-काल में ॐ का जप करता है तथा ईश्वर का ध्यान करता है, वह परम पद को पा लेता है। उसको प्राप्त कर लेने पर संसार का भय नहीं रह जाता। ब्रह्मलोक भी विनश्वर है। वहाँ से भी मनुष्य को मृत्युलोक में आना पड़ता है; परन्तु परम धाम को प्राप्त करने पर मनुष्य पुनः मृत्युलोक में नहीं लौटता।

स्वर्ग का सुख भी विनश्वर है। पुण्य-कर्म के समाप्त होने पर जीव मृत्युलोक में जा गिरता है। जो ईश्वर को ही आश्रय मान कर सदा उसका चिन्तन करते रहते हैं, ईश्वर स्वयं उनके योग-क्षेम को देखता है। जो गलती से अन्य देवताओं की पूजा करते हैं, वे भी अनजाने उसी परमात्मा की पूजा कर रहे हैं तथा यह सारी आराधना उसी परमात्मा को प्राप्त होती है। वह सभी का ईश्वर है। भक्तिपूर्वक अर्पित किये गये सूखे पत्ते को भी वह ग्रहण कर लेता है। उसका भक्त कभी भी विनष्ट नहीं होता। स्त्रियाँ तथा शूद्र भी ईश्वरार्पण के द्वारा मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। यह जगत् अनित्य है। मनुष्य को नित्य प्रभु की शरण में जाना चाहिए। ईश्वर समस्त जगत् में व्याप्त है। ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें वह न हो। उसके एक अंश से ही समस्त जगत् स्थित है।

ईश्वर को प्राप्त करने के लिए भक्ति ही केन्द्रीय मार्ग है। भक्त ही ईश्वर का दर्शन प्राप्त कर सकता है। निष्काम प्रेम के बिना देवता भी ईश्वर का दर्शन प्राप्त नहीं कर सकते। ऐसा शुद्ध भक्त किसी से घृणा नहीं करता तथा सुख-दुःख में सन्तुलित रहता है। वह न तो हर्षित होता है न घृणा करता है, न शोक करता है और न कामना ही करता है। वह जगत् से भय नहीं खाता है और न जगत् ही उससे भय खाता है। उसके लिए मान तथा अपमान समान हैं। उसके लिए मित्र तथा शत्रु समान हैं। उसने सारे कर्मारम्भों का परित्याग किया है। उसने सारे गुणों का अतिक्रमण कर लिया है।

परब्रह्म अनिर्वचनीय है। वह ज्योतियों की ज्योति तम से परे है। वह न तो सत् है और न असत्। वह सभी को व्याप्त कर रहा है। वह निकट और दूर है, सूक्ष्म और स्थूल है। वह सभी के हृदय में अन्तरात्मा के रूप में स्थित है। जब मनुष्य सारी अनेकता को उस एक में स्थित देखता है, तब वह ब्रह्म बनने के योग्य हो जाता है।

सत्त्व से प्रकाश मिलता है। रज विक्षेप उत्पन्न करता है। तम उसे जड़वत् बनाता है। मनुष्य रज तथा तम का सम्मिश्रण है। वह कदाचित् ही कभी शुद्ध सत्त्व की अवस्था का अनुभव करता है। जब मनुष्य यह अनुभव कर लेता है कि गुणों के अतिरिक्त कोई भी कर्ता नहीं, तब वह इन गुणों का अतिक्रमण कर अमर बन जाता है।

यह संसार वृक्ष के समान है, जिसका मूल ऊपर है तथा शाखाएँ नीचे फैली हुई हैं। असंग शस्त्र के द्वारा इस वृक्ष का मूलोच्छेदन करना चाहिए। तब मनुष्य ब्रह्मावस्था को प्राप्त कर लेता है; जहाँ सूर्य तथा चन्द्र नहीं विभासित होते, जहाँ अग्नि की कोई विसात नहीं रहती। जगत् की सबसे बड़ी ज्योति भी उसी परम ज्योति का एक अंश है। जगत् की हर वस्तु उसी ब्रह्म की छाया है। वह सभी वस्तुओं का अतिक्रमण करता है। वह जीव तथा माया से परे है। वह पुरुषोत्तम है जिसका वर्णन वेदों में है। जो उसे जानता है, उसने सारे कर्तव्य कर लिये। वह ज्ञानी है, उसने सब-कुछ जान लिया।

आसुरी सम्पत्ति वाले जन ईश्वर से प्रेम नहीं करते। वे ईश्वर के अस्तित्व के प्रति शंका करते हैं तथा जगत् को काम से उत्पन्न हुआ मानते हैं। वे अभिमानी तथा अहंकारी हैं। वे कठोर तथा क्रोधी हैं। वे अनेकानेक कामनाओं के पाश से बद्ध हैं। वे भोग के लिए ही जीते हैं। वे धन का अभिमान रखते हैं तथा मृत्यूपरान्त नरक में पतित होते हैं। वे ब्रह्म को प्राप्त नहीं करते। काम, क्रोध तथा लोभ-ये नरक के तीन दरवाजे हैं।

मन के संयम के बिना जो शारीरिक तप करता है, वह तो पाखण्डी है। मनुष्य को शारीरिक, मानसिक तथा वाचिक तपस्या करनी चाहिए। मन, वचन तथा कर्म से मनुष्य को शुद्ध बनना चाहिए। स्वार्थ-कार्य अनैतिक है। निःस्वार्थता ही नीति तथा सदाचार है। हर कर्म परमात्मा के स्मरण के साथ करना चाहिए। परमात्म-चिन्तन के बिना सारे कर्म व्यर्थ हैं।

स्वार्थपूर्ण कर्मों का परित्याग ही संन्यास है; परन्तु अपना कर्तव्य त्यागा नहीं जा सकता। अपना कर्तव्य ही पवित्र है। सारे कर्म आसक्ति से रहित हो कर करने चाहिए। कर्म को इसलिए नहीं त्यागना चाहिए; क्योंकि वह कठिन है। सुख के लिए कर्म नहीं करते। विषय-सुख प्रारम्भ में अमृत-से जान पड़ते हैं; परन्तु अन्त में विषवत हैं। उनका त्याग करना चाहिए। वर्णाश्रम-प्रणाली पूर्ण प्रणाली है। इसका पालन करना चाहिए।

ब्रह्म-साक्षात्कार के लिए एकान्त-वास तथा आत्म-चिन्तन करना चाहिए। बाह्य पदार्थों से असंग हो कर उसे परमात्मा में स्थित होना चाहिए। सारे सांसारिक धर्मों का परित्याग कर उस परमात्मा की शरण में जाना चाहिए। वह पाप के बन्धन से मुक्त हो जायेगा।

गीता मनुष्य को पूर्णता की ओर लक्ष्य करती है जिससे कि वह ईश्वरीय बन जाये। श्री कृष्ण जी का जीवन ही गीता के आदर्शों का सर्वोत्तम उदाहरण है। उनका जीवन ही गीता की सर्वोत्तम टिप्पणी है। कृष्ण के समान बनना ही गीता का आदर्श है। ऐसा बनने के लिए मनुष्य को भक्त, दार्शनिक, योगी तथा कर्मयोगी में से कोई एक नहीं बनना है, वरन् सब बनना है एक-साथ ही। वह किसी भी मार्ग को अपने स्वभावानुसार चुन सकता है; परन्तु उसे अनुभव होगा कि एक मार्ग में उन्नति करने का अर्थ है समानान्तर रूप से सभी मार्गों में उन्नति करना। व्यक्ति की एकांगी उन्नति नहीं हो सकती। यदि सच्ची तथा स्थायी पूर्णता पानी है तो उसे सर्वांगीण होना चाहिए। ब्रह्म का साक्षात्कार करने के लिए ब्रह्म ही बन जाना होगा, जो पूर्ण है। मनुष्य को असीम बनना है और उसके लिए उसे अपने समस्त अस्तित्व को विकसित करना होगा।

हमारा मन आन्तरिक संग्राम के लिए महाभारत का कुरुक्षेत्र है जहाँ हर समय संग्राम जारी रहता है, जहाँ एक प्रकार के विचार दूसरे प्रकार के विचारों से टकराते रहते हैं। अतः हम सभी ज्योति, ज्ञान तथा सम्मति प्राप्त करना चाहते हैं जिसे भगवान् कृष्ण ने गीता में अर्जुन को दिया है। जीवन के मुख्य तत्त्वों का वर्णन करते हुए परमात्मा कृष्ण ने जगत्-समस्या के मूल का ही निदर्शन किया है तथा ऐसे सत्यों को प्रकट किया है जो सार्वभौमिक हैं। अर्जुन के निमित्त से भगवान् कृष्ण ने सारी मानव जाति के लिए भगवद्गीता प्रदान की है। कृष्ण नित्य-तत्त्व का प्रतीक हैं और अर्जुन ससीम मनुष्य का। गीता के उपदेश किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं, वरन् सभी मनुष्यों के लिए हैं।

संसार में रहिए। मानव जाति की सेवा कीजिए। सबको समान रूप से प्रेम कीजिए; परन्तु आसक्त न बनिए। अनासक्त रहिए। आत्मा में सन्तुष्ट रहिए। जीवन में बन्धनकारक कामनाएँ न रखिए। सेवा कीजिए। प्रेम कीजिए। दान दीजिए। शुद्ध बनिए। ध्यान कीजिए। साक्षात्कार कीजिए। अपने को ईश्वर के प्रति अर्पित कीजिए। यही गीता का सारांश है।

इस चेतना से काम कीजिए कि सभी आत्मा हैं, सभी ईश्वर हैं। ईश्वर ही नर और नारी है तथा वही लड़खड़ाता हुआ वृद्ध भी है। विषयों में आसक्ति नहीं होनी चाहिए। सभी आत्मा ही है। सभी में स्वयं के दर्शन कीजिए। दूसरों से ठीक उसी प्रकार प्रेम कीजिए जिस प्रकार आप स्वयं से करते हैं। शरीर की भिन्नताओं को न देखिए। अन्तर के सारतत्त्व को देखिए। कर्मों को करते समय अकर्ता-भाव अथवा नारायण-भाव रखिए। जब तक आप शरीरधारी हैं, काम तो आपको करने ही होंगे। शरीर का यह स्वभाव ही है। मन आपको कर्म के लिए बाध्य करेगा। प्रकृति शक्तिशाली है। बुद्धिमान् लोग भी उसके फेर में पड़ जाते हैं। प्रकृति अथवा माया के बन्धन से मुक्त होने के लिए ईश्वरार्पण ही एकमेव मार्ग है।

जीवन की सारी घटनाओं के साक्षी रहिए। अपने कर्तव्य कर्म को कीजिए। फल की आकांक्षा न रख कर सेवा कीजिए। यही योग का सारांश है।

सभी भूतों के हृदय में प्रभु का निवास है। वह अन्तर्यामी तथा अमर है। उसी की ओर दौड़िए। उसी में शरण ग्रहण कीजिए। मुक्ति के लिए अन्य कोई मार्ग नहीं है। आपके सारे कर्म नष्ट हो जायेंगे, सारे पाप विदग्ध हो जायेंगे, सारी शंकाएँ दूर हो जायेंगी। ईश्वरार्पण कीजिए।

मन के विक्षेपों को नियन्त्रित कीजिए। एकान्त स्थान में बैठ कर आत्मा पर ध्यान कीजिए। तब ज्ञान का उदय तथा अज्ञान का विनाश होगा। अमृतत्व की प्राप्ति होगी। परमानन्द का फल मिलेगा। सारे साधनों का एकमेव लक्ष्य नित्य-तृप्ति है। उपर्युक्त समन्वययोग से इसकी प्राप्ति होगी। गीता को मानव जगत् के लिए यही उपदेश प्रदान करना है।

साधना-सम्बन्धी गीता के श्लोक

कर्मयोग : दूसरा अध्याय ४८ वाँ श्लोक; चौथा अध्याय २०, २२ तथा २४ वाँ श्लोक।

भक्तियोग : नवाँ अध्याय २७ तथा ३४ वाँ श्लोक; बारहवाँ अध्याय ८ वाँ श्लोक; अठारहवाँ अध्याय ५२ से ५४ तक के श्लोक

जपयोग : अठारहवाँ अध्याय १४ वाँ श्लोक

अभ्यासयोग : बारहवाँ अध्याय १० तथा १२ वाँ श्लोक

हठयोग : आठवाँ अध्याय १० तथा १२ वाँ श्लोक

राजयोग : छठा अध्याय २५ तथा २६ वाँ श्लोक

ज्ञानयोग : तीसरा अध्याय २८ वाँ श्लोक; पाँचवाँ अध्याय ८ तथा ९ वाँ श्लोकअध्याय ५

अध्याय ५:महाकाव्यों तथा पुराणों में साधना

१. रामायण में साधना

रामायण जगत् के सबसे प्राचीन तथा महान् ग्रन्थों में परिगणित है। हिन्दू संस्कृति तथा सभ्यता के उच्चतम आदर्श इसमें निहित हैं।

यह युवकों के लिए नीति-शास्त्र है। यह उन्हें आचार तथा चरित्र के उन्नत आदशों की ओर प्रेरित करती है।

रामायण का गूढ़ार्थ इस प्रकार है: रावण अहंकार का प्रतीक है। उसके दश शिर, दश इन्द्रियाँ हैं। लंका नगरी नव द्वार-पुरी यह शरीर ही है। विभीषण बुद्धि है। सीता शान्ति है। राम ज्ञान है। रावण को मारने का अर्थ है- अहंकार को मारना तथा इन्द्रियों का दमन करना। सीता को प्राप्त करने का अर्थ है- शान्ति को प्राप्त करना, जिसे जीव ने कामनाओं के कारण खो दिया है। ज्ञान प्राप्त करने का अर्थ है-राम के दर्शन पाना।

जो मोह के सागर को पार कर राग-द्वेष रूपी राक्षसों को विनष्ट करता है, वही महान् योगी है। वह शान्ति से युक्त है। वह आत्मा में स्थित हो कर नित्य-सुख का उपभोग करता है। वही आत्मा-राम है।

श्री राम सत्त्व के प्रतीक हैं। रावण तम का प्रतीक है। श्री राम तथा रावण में लड़ाई हुई। अन्ततः राम विजयी हुए। धनात्मक की ऋणात्मक के ऊपर विजय होती है। सत्त्व सदा तम पर विजय पाता है। शुभ अशुभ को पराजित करता है।

बाल्मीकि मुनि के अनुसार दैनिक जीवन के अनुशासन के द्वारा ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त करना चाहिए। बाल, अरण्य तथा युद्ध काण्ड में शरणागति और ईश्वरार्पण पर विशेष जोर दिया गया है।

२. महाभारत में साधना

महाभारत का सन्देश सत्य तथा धर्म का सन्देश है। यह महाकाव्य पाठकों में नैतिक जागरण लाता है तथा उन्हें सत्य एवं धर्म के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता है। यह

सत्कर्म करने, धर्म पर चलने तथा इस जगत् की भ्रान्ति को देख कर वैराग्य की वृद्धि कर नित्य-सुख एवं अमृतत्व की प्राप्ति के लिए प्रेरणा देता है। यह लोगों में युधिष्ठिर का आदर्श भरता है तथा दुर्योधन के कृत्यों से दूर रहने की शिक्षा देता है। दृढ़तापूर्वक धर्म पर स्थिर रहिए। आप भौतिक तथा आध्यात्मिक सम्पत्ति प्राप्त करेंगे। आप नित्य-सुख तथा मोक्ष प्राप्त करेंगे। यही महाभारत का मुख्य तात्पर्य है।

अन्धा धृतराष्ट्र अविद्या का प्रतीक है। युधिष्ठिर धर्म है। दुर्योधन अधर्म है। द्रौपदी माया है। दुःशासन दुर्गुण है। शकुनी ईर्ष्या तथा अत्याचार है। अर्जुन जीवात्मा है। श्री कृष्ण परमात्मा हैं। अन्तःकरण मनुष्य का अन्तर्मन ही कुरुक्षेत्र है।

धीर तथा वीर पितामह भीष्म, जिन्होंने मृत्यु पर भी विजय पायी थी तथा जो संग्राम में देवताओं द्वारा भी दुर्दम्य थे, हममें आत्म-त्याग, अप्रतिहत साहस तथा शुद्धता की ओर प्रेरित करते हैं। युधिष्ठिर न्याय तथा धर्म की प्रतिमूर्ति हैं। उसके नाम के स्मरण मात्र से हमारे हृदय में हर्षातिरेक हो उठता है तथा सत्य एवं धर्म की चेतना जाग पड़ती है। कर्ण भी अपनी दानशीलता के कारण हम लोगों के हृदय में निवास करता है। कर्ण का नाम कहावत ही बन गया है। जब कभी लोग किसी की दानशीलता की प्रशंसा करते हैं, तो कहते हैं- "वह दान में कर्ण ही है।"

आज भी अर्जुन को पूर्ण मनुष्य के रूप में तथा भगवान् कृष्ण को अपने त्राता के रूप में देखते हैं। जब कभी हम विपत्ति में पड़ते हैं, हम कृष्ण से प्रार्थना करते हैं- "हे प्रभु! मुझे उसी प्रकार बचाओ जिस प्रकार तुमने दौपदी तथा गजेन्द्र को बचाया था।"

पाण्डवों तथा द्रौपदी के दुःख एवं कष्ट, नल तथा दमयन्ती, सावित्री तथा सत्यवान के कष्टये स्पष्टतः बतलाते हैं कि जीवन-लक्ष्य की परिपूर्णता की प्राप्ति दुःख एवं कष्टों के द्वारा ही सम्भव है। दुःख वह साधन है जिससे मनुष्य दिव्य साँचे में ढलता, अनुशासित एवं सबल बनता है। जिस प्रकार अशुद्ध सोने को गला कर शुद्ध बनाया जाता है, उसी प्रकार मलिन एवं अपूर्ण मनुष्य दुःख एवं कष्ट में गल कर शुद्ध, पूर्ण एवं सबल बनता है; अतः मनुष्य को दुःख एवं कष्टों से भय नहीं खाना चाहिए। वे सभी गुप्त वरदान ही हैं। वे आँखों को खोलते हैं। वे मूक गुरु हैं। वे मन को ईश्वरोन्मुख करते तथा हृदय में करुणा भरते एवं आत्म-बल तथा तितिक्षा-शक्ति की वृद्धि करते हैं। वे सब ईश्वर-साक्षात्कार के लिए अनिवार्य हैं।

३. भागवतपुराण में साधना

अवधूत के चौबीस गुरु

धर्म में पारंगत यदु ने एक युवक ब्राह्मण संन्यासी को निर्भय विचरते देखा तथा धर्म-तत्त्व को जानने की इच्छा से उससे निम्नांकित प्रश्न पूछे :

यदु ने कहा, "हे ऋषि ! बिना किसी कार्य को करते हुए भी आपने इस विशुद्ध ज्ञान को कैसे पाया, जिसके बल से आप सारे संगों से मुक्त हो कर शिशुवत् निर्भय अवस्था में सम्पूर्ण सुख में विचरण कर रहे हैं?

"साधारणतः इस जगत् के लोग धर्म, अर्थ, काम तथा आत्म-चिन्तन का अभ्यास चिरायु, यश तथा सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए ही करते हैं। आपका सुगठित शरीर है। आप ज्ञान तथा विज्ञान से पूर्ण तथा सुन्दर हैं। आपकी वाणी मधुर तथा अमृत के समान है, यद्यपि आप कोई काम नहीं करते और न तो कोई प्रयास ही करते हैं। आप किसी वस्तु से राग नहीं रखते। संसार के लोग काम तथा लोभ की अग्नि से झुलस रहे हैं; परन्तु आप इस अग्नि से जरा भी सन्तप्त नहीं हैं। आप आत्म-तृप्त तथा सुखी हैं।

"जिस प्रकार गंगा-जल में बैठा हुआ हाथी दावानल से पीड़ित नहीं होता, उसी प्रकार आप भी क्लेशाग्नि से पीड़ित नहीं हैं। आपके सुख एवं आनन्द का मूल क्या है, इसकी मुझे शिक्षा दीजिए। एकान्त जीवन में विषय-पदार्थों से अलिप्त आत्मा में ही आप कैसे सुख को प्राप्त करते हैं? आपका न तो परिवार है और न विषय-सुख, आपको सुख कहाँ से मिलता है?"

श्री कृष्ण ने कहा, "बुद्धिमान् यदु से इस प्रकार पूछे जाने पर उस ब्राह्मण ने राजा से कहा। राजा आदर से विनत हो रहा था।"

ब्राह्मण ने कहा, "मेरे बहुत से गुरु हैं। मैंने अपनी बुद्धि से उन गुरुओं से शिक्षा पायी। उनसे ज्ञान को प्राप्त कर मैं असंग इस पृथ्वी पर विचरण करता हूँ। सुनिए, वे कौन-कौन हैं।

"पृथ्वी, वायु, गगन, जल, अग्नि, चन्द्र, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंगा, भौरा, हाथी, मधुमक्खी, हरिण, मछली, पिंगला नर्तकी, काग, शिशु, स्त्री, तीर-निर्माता, सर्प, मकड़ा, भृंगी हे राजन्, ये मेरे चौबीस गुरु हैं जिनसे मैंने शिक्षा पायी है। उनके स्वाभाविक गुणों से मैंने अपने सारे पाठ पढ़े हैं। अब बतलाऊँगा कि मैंने उनसे क्या-क्या सीखा है।

"ज्ञानी मनुष्य अपने धर्म-मार्ग से कभी भी विचलित न हो। नियति के वशीभूत हो यदि जीवगण उसे कष्ट भी दें तो भी वह अविचल रहे। इस तितिक्षा को मैंने पृथ्वी से सीखा है। मैंने पर्वतों से, जो पृथ्वी के ही भाग है, यह सीखा कि हमारे सारे कर्म परोपकार के लिए होने चाहिए तथा हमारा अस्तित्व ही परोपकारार्थ होना चाहिए। मैंने वृक्षों से, जो पृथ्वी के ही भाग हैं, सीखा कि मुझे सदा दूसरों की सेवा में ही लगे रहना चाहिए।

"ज्ञानी अपने जीवन-निर्वाह में ही सन्तुष्ट रहे। वह इन्द्रिय-सुख के लिए लालायित न हो; क्योंकि इससे व्यर्थ पदार्थों में पड़ कर मन विक्षिप्त हो जायेगा तथा ज्ञान नष्ट हो जायेगा।

"वायु के समान ही योगी वस्तुओं से निर्लिप्त रहे। शरीर में तथा विभिन्न वस्तुओं के मध्य में रहते हुए भी वह उनसे असंग रहे। वस्तुओं के भले-बुरे परिणामों से भी उसका मन अप्रभावित रहना चाहिए। वायु सुगन्धित एवं दुर्गन्धपूर्ण पदार्थों से हो कर बहते हुए भी अलिप्त रहता है, ठीक उसी प्रकार ज्ञानी को भी रहना चाहिए। आत्मा शरीर में प्रवेश करती है तथा शरीर के गुण उसके अपने जैसे मालूम पड़ते हैं; परन्तु ऐसा नहीं है। वायु गन्ध का वहन करता है; परन्तु गन्ध वायु का गुण नहीं है। यह शिक्षा मैंने बाह्य वायु से ग्रहण की है।

"मैंने प्राण से यह शिक्षा ली है कि मनुष्य को जीवन-रक्षा के लिए आहार करना चाहिए न कि आहार के लिए ही जीवन यापन करना चाहिए। वह इन्द्रियों के पोषण तथा उन्हें सबल बनाने के लिए भोजन न करे। उतना ही भोजन करे जो जीवन की ज्योति को बनाये रखे।

"आत्मा सर्वव्यापक है। वह शरीर तथा शरीर के गुणों से अलिप्त है। ऐसा मैंने आकाश से सीखा जो सर्वव्यापक है और मेघ तथा अन्य वस्तुओं से अलिप्त है। शरीर में रहते हुए भी ज्ञानी गगन सदृश आत्मा के साथ एकता स्थापित कर आत्म-चिन्तन करें। जिस प्रकार एक ही सूत्र में माला के फूल ग्रथित रहते हैं, उसी प्रकार उस आत्मा के अधिष्ठान में सारे चल एवं अचल भूत पदार्थ ग्रथित हैं। आत्मा देश-काल से सीमित नहीं है तथा वह किसी भी वस्तु से लिप्त नहीं होती।

"जल स्वभावतः शुद्ध, स्निग्ध तथा मधुर होता है। उसी प्रकार मनुष्यों में ज्ञानी भी रहता है। वह तीर्थ के जल के समान लोगों को अपने दर्शन, स्पर्श तथा भगवन्नाम के उच्चार के द्वारा शुद्ध बनाता है। यह मैंने जल से सीखा।

"भास्वर, ज्ञान में सबल, तपस्या से विभासित, पेट के अतिरिक्त भोजन के लिए अन्य कोई पात्र न रखते हुए तथा सब-कुछ भक्षण करते हुए ज्ञानी अग्नि के समान ही अलिप्त रहता है। वह कभी-कभी दृष्टि में नहीं आता। कभी-कभी वह कल्याण-कृत मनुष्यों की दृष्टि में आ जाता है। श्रद्धालु भक्तों द्वारा प्रदत्त भिक्षा को वह खाता है तथा उनके भूत एवं भविष्य के मलों को भस्मीभूत कर डालता है। अग्नि एक ही है, यद्यपि वह विभिन्न प्रकार के ईंधनों में प्रवेश करती है।

ईंधन के आकार के अनुसार अग्नि भी त्रिकोण, वृत, आयत तथा अन्य आकारों में जलती है। उसी प्रकार परमात्मा भी सभी भूतों में गुप्त हो कर विभिन्न शरीरों में उन उपाधियों के समान ही प्रतीत होता है। अपनी ही माया से रचित इस जगत् के ऊँचे-नीचे विभिन्न पदार्थों में प्रवेश कर हर पदार्थ के समान ही वह प्रतीत होता है। जन्म तथा मृत्यु शरीर के लिए हैं, आत्मा के लिए नहीं तथा ये कालानुसार होते हैं। लपटें ही परिवर्तनशील हैं, अग्नि नहीं।

"चन्द्रमा का घटना-बढ़ना चन्द्रमा के परिवर्तन के कारण नहीं होता, वरन् सूर्य के प्रकाश के परिवर्तन के कारण होता है। अतः मैंने यह सीखा कि जन्म, वृद्धि, जरा, मृत्यु इत्यादि शरीर के विकार हैं, आत्मा के नहीं। आत्मा असीम, अजर तथा अमर है। चन्द्रमा ज्यों-का-त्यों रहता है, केवल ग्रह-गति के कारण ही उसमें प्रतीयमान परिवर्तन होता है।

"सूर्य रोशनी के द्वारा जल खींचता है और कालान्तर में सारे जल को लौटा देता है। ज्ञानी भी ग्रहण करता है देने के लिए ही, अपने अधिकार की वृद्धि के लिए नहीं। जिस प्रकार एक ही सूर्य विभिन्न जलपूर्ण पात्रों में प्रतिबिम्बित हो कर विभिन्न मालूम पड़ता है, ठीक उसी प्रकार आत्मा भी विभिन्न शरीरों में मन की उपाधियों में विभिन्न रूप से प्रतिबिम्बित हो कर विभिन्न मालूम पड़ता है।

"अधिक आसक्ति बुरी है। मनुष्य को किसी भी व्यक्ति के साथ अधिक ममता अथवा आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। किसी भी वस्तु के प्रति अत्यधिक आसक्ति मनुष्य के विनाश का कारण है, यह मैंने कबूतर के जोड़े से सीखा। किसी जंगल में एक वृक्ष के ऊपर एक कबूतर ने घोंसला बनाया तथा अपनी मादा के साथ कुछ वर्षों तक निवास किया। वे दोनों एक-दूसरे के प्रति रागासक्त थे। बड़ी ममता के साथ उन्होंने बच्चों का पालन-पोषण किया। एक दिन घोंसले में ही बच्चों को छोड़ वे भोजन की तलाश में चल पड़े। एक शिकारी ने जाल फैला कर उनके बच्चों को पकड़ लिया। वे कबूतर भोजन ले कर नीड़ को लौटे। माँ को बच्चों पर अत्यधिक ममता थी। वह जान-बूझ कर जाल में गिर पड़ी। नर कबूतर भी जाल में जा फँसा। शिकारी ने बच्चों के साथ कबूतर को भी पकड़ लिया। वह बहुत ही सन्तुष्ट हो कर घर को चला। उसी प्रकार अनियन्त्रित इन्द्रिय वाले दुःखी गृहस्थ वैवाहिक जीवन में सुखोपभोग करते हुए उस कपोत और कपोती के समान ही शोक में निमग्न हो जाते हैं। मानव-जन्म पा कर जो व्यक्ति गृहस्थ-जीवन से ही आसक्त है, वह उन पक्षियों के समान ही जाल में जा गिरा है।

"इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त सुख, चाहे इस लोक में चाहे परलोक में, नश्वर तथा गतिमान है। ज्ञानी जन उसके पीछे नहीं पड़ते।

"विशाल अजगर अपने स्थान पर ही स्थिर रहता है और जो कुछ भी आहार उसे स्वतः आ प्राप्त होता है, उसी से तृप्त रहता है। अजगर की भाँति मनुष्य को भी प्रयत्न रहित बन कर जो कुछ भी आहार संयोगवश आ प्राप्त हो, सुस्वादु या नीरस, अधिक या अल्प, उसी को ग्रहण करना चाहिए। यदि भोजन उसके पास न पहुँचे, तो उसे दीर्घ काल तक भी शान्त पड़े रहना चाहिए तथा उसके लिए प्रयास भी नहीं करना चाहिए। अजगर की भाँति उसे नियति के अवलम्ब पर रहना चाहिए। शक्तिशाली शरीर के रहते हुए भी तथा बल और धैर्य से युक्त हो कर भी वह सजग पड़ा रहे तथा सबल इन्द्रियों के रहते हुए भी प्रयत्न न करे।

"ज्ञानी को प्रशान्त सागर की भाँति शान्त, गम्भीर, अथाह, असीम तथा अविचल रहना चाहिए। सागर कभी-कभी नदियों से अत्यधिक जल को प्राप्त करता है और कभी-कभी अत्यल्प; फिर भी वह एक समान ही बना रहता है। उसी प्रकार वह ज्ञानी भी, जिसने अपने हृदय को ईश्वर पर स्थिर किया है, न तो हर्ष से फूलता है और न शोक से खिन्न होता है। अत्यधिक उपभोग से वह फूलता नहीं, प्रबल विपत्ति से भी वह खिन्न नहीं होता।

"अनियन्त्रित इन्द्रिय रखने वाला मनुष्य स्त्री, ईश्वरीय माया को देख कर, उसके भाव एवं व्यवहार से मोहित हो कर अन्ध तम में ठीक उसी प्रकार जा गिरता है जिस प्रकार पतंगे अग्नि में जा मरते हैं। वह मूर्ख जो स्त्री, स्वर्णाभूषण, वस्त्र आदि माया रचित वस्तुओं को भोग-वस्तु मानता है, वह अपनी शुद्ध दृष्टि को खो कर पतंगे की भाँति ही विनष्ट हो जाता है।

"ज्ञानी मनुष्य घर-घर भिक्षा लेने के लिए जाये। हर घर से हथेली-भर प्राप्त करे। उतना ही भोजन करे जितना उसके शरीर निर्वाह के लिए पर्याप्त हो। किसी गृहस्थ के ऊपर भार न डाले। मधुमक्खी जिस प्रकार सभी फूलों से मधु एकत्र करती है, ठीक उसी प्रकार वह भी भिक्षा एकत्र करे।

"बुद्धिमान् मनुष्य सभी छोटे-बड़े शास्त्रों के सारतत्त्व को ग्रहण करे, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मधुमक्खी फूलों से मधु एकत्र करती है। ज्ञानी पुरुष शाम के लिए अथवा दूसरी सुबह के लिए भोजन संग्रह न करे। हाथ तथा पेट ही उसके पात्र हों। वह मधुमक्खी की भाँति एकत्र न करे। जो भोजन एकत्र करता है, वह मधुमक्खी की भाँति भोजन के साथ-साथ ही विनष्ट हो जाता है।

"संन्यासी अपने पैरों से भी काष्ठ-निर्मित युवा स्त्री को न छुए। ऐसा करने पर वह उसी प्रकार बँध जायेगा, जिस प्रकार नर हाथी को मादा हथिनी के स्पर्श के द्वारा बाँध लिया जाता है। ज्ञानी मनुष्य स्त्री के संग को उसी तरह त्यागे मानो कि वे मृत्यु ही हैं।

"कृपण मनुष्य जो धन का संग्रह करता है, वह न तो दान देता है और न स्वयं ही धन का उपभोग करता है। जो कुछ भी कठिनाई के साथ एकत्र करता है, उसे अन्य ले जाते हैं। जिस प्रकार मधुमक्खी के छत्ते से मधु ले लिया जाता है, ठीक उसी प्रकार कंजूस से धन छीन लिया जाता है।

"यति विषय-सम्बन्धी संगीतों का श्रवण न करे। वह मृग से शिक्षा ले। मृग शिकारियों के संगीत के मोह में पड़ कर बंध जाता है। मृगी से उत्पन्न श्रृंग ऋषि स्त्रियों द्वारा विषय-संगीत को सुन कर आसानी से बन्धन में पड़ गये। वे स्त्रियों के हाथों का खिलौना बन गये।

"जिस प्रकार मछली बंसी में लगे हुए आहार से आकृष्ट हो कर बंध जाती है, उसी प्रकार जिह्वा के प्रलोभन में पड़ कर मूर्ख मनुष्य मृत्यु का शिकार बन जाता है। जिह्वा अथवा स्वाद के प्रति राग को जीतना सबसे अधिक कठिन है। जिह्वा को नियन्त्रित करने पर अन्य सभी इन्द्रियों का दमन हो जाता है। स्वादेन्द्रिय को वशीभूत किये बिना कोई भी इन्द्रियों का स्वामी नहीं बन सकता। विचारशील मनुष्य उपवास द्वारा शीघ्र ही इन्द्रियों का दमन कर लेते हैं।

"प्राचीन काल में विदेह नगरी में एक वेश्या रहती थी। उसका नाम पिंगला था। मैंने उससे भी शिक्षा ली। हे राजन् ! सुनिए। एक दिन सुन्दर वस्त्रों से सज्जित हो कर वह गृह-द्वार पर शाम तक ग्राहकों की प्रतीक्षा में बैठी रही। उसने कुछ लोगों को आमन्त्रित किया; परन्तु इस आशा में कि अन्य धनिक व्यक्ति उसे अधिक धन देगा, उसने उन्हें भेज दिया। इस तृष्णा से वह निद्रा रहित हो कर, दरवाजे पर, कभी भीतर तो कभी बाहर आ कर, आधी रात तक प्रतीक्षा करती रही। धन की अभिलाषा के आशा-ज्वर से पीड़ित हो उसने निराशा एवं शोक में रात्रि व्यतीत की। उसे अपने लोभ, काम एवं तृष्णामय जीवन से बड़ी विरक्ति हुई।

"अत्यधिक निराश हो कर उसने यह गाना गया, 'विषयों के प्रति उदासीनता उस खड्ग की भाँति है जिससे मनुष्य अपनी कामनाओं के धागों को काट सकता है। मनुष्य तब तक शरीर के बन्धन से छूटना नहीं चाहता, जब तक उसे निराशा न हो। जिस प्रकार मनुष्य ज्ञान के बिना अहंता तथा ममता का परित्याग नहीं करता, उसी प्रकार निराशा के

बिना मनुष्य शरीर-बन्धन से नहीं छूटता।' पिंगला ने कहा, 'अहा! मन के अनियन्त्रित होने से मैं कितनी भ्रमित हूँ। कितनी मूर्ख हूँ मैं। मनुष्य जैसे क्षुद्र व्यक्तियों से मैं काम-तृप्ति की चाहना करती हूँ।'

"भगवान् नारायण के सिवा कौन मुझे शाश्वत सुख तथा सम्पत्ति दे सकता है। वे वास्तविक प्रेमी हैं, जो मुझे तृप्ति दे सकते हैं। मैं क्षुद्र मनुष्य को प्रसन्न कर रही हूँ जो मेरी कामनाओं की पूर्ति नहीं कर सकता तथा जिससे दुःख, भय, रोग, शोक तथा मोह की प्राप्ति होती है। मैं सचमुच ही बड़ी मूर्खा हैं।

"मैंने व्यर्थ ही इस निन्दित व्यवसाय में अपनी आत्मा को पीड़ित किया। मैंने दयनीय मनुष्यों से, जो लोभी तथा स्त्रियों के गुलाम हैं, अपने शरीर को बेच कर धन तथा सुख की कामना की।

"मेरे सिवा अन्य कौन व्यक्ति इस गृह में वास करेगा जिसमें हड्डियाँ ही शहतीर, खम्भे तथा छत हैं, जो चर्म, केश तथा नखों से ढका हुआ है, जो नव-द्वारों से युक्त है जिनसे मल-मूत्र विसर्जित होते रहते हैं।

"इस विदेह नगर में, जो ज्ञानियों से भरा हुआ है, मैं ही एक स्त्री हूँ जिसने अपने सुख, आशा तथा कामना को शरीर में स्थापित किया है। मैं ही एकमेव मूर्खा हूँ जो मुक्तिदाता ईश्वर को छोड़ कर विषय-पदार्थों में सुख की कामना करती हूँ।

"वही सच्चा मित्र, रक्षक, प्रभु, परम प्रिय, मालिक तथा सभी भूतों की आत्मा है। उसे मना कर अपने शरीर को उसी पर अर्पित कर मैं लक्ष्मी के समान ही उसी में शाश्वत सुख प्राप्त करूँगी।

"दूसरों की सेवा से क्या लाभ ? देवताओं तथा मनुष्यों में देश, क्षमता तथा अन्य बहुत से बन्धन हैं। इन्द्रिय-सुख, मनुष्य तथा देवता स्त्रियों को कैसे आनन्द दे सकते हैं? सभी का आदि तथा अन्त है।

"निश्चय ही अपने पूर्व-जन्मों में मैंने विष्णु के लिए व्रतादि किये हैं; क्योंकि उसी की कृपा से यह वैराग्य मेरे मन में उत्पन्न हुआ है जो सारी अपवित्र कामनाओं का उन्मूलक है। उसकी ही कृपा से मैंने शाश्वत शान्ति तथा सुख के मार्ग को प्राप्त किया है।

"यदि प्रभु मेरे ऊपर प्रसन्न न होते तो इस प्रकार की निराशा तथा इससे उत्पन्न वैराग्य का उदय न होता जिससे मैं सारे रागों तथा सुखों को त्यागने में समर्थ बन सकूँ।

"मैं विनम्र भक्ति के साथ ईश्वर की इस देन को शिर पर ग्रहण करती हूँ। मैं सारी व्यर्थ इच्छाओं तथा कामनाओं का परित्याग कर परम प्रभु की शरण में जाती हैं। सन्तुष्ट, ईश्वर में अटूट श्रद्धा रख कर, संयोगवश जो भी मिल जाये, उसी से जीवन-निर्वाह करते हुए मैं परमात्मा के नित्य-सुख का उपभोग करूँगी। ईश्वर के सिवा उस जीव को अन्य कौन उबार सकता है जो विषयान्ध हो कर संसार गहरे गड्ढे में गिरा हुआ काल रूपी अजगर का शिकार बन रहा है।"

"जब मनुष्य इस जगत् की विनश्वरता का साक्षात्कार करता है, जब इस जगत् को काल रूपी अजगर के गाल में देखता है, तब वह निश्चय ही इस लोक तथा परलोक के चलायमान, भ्रान्तिमय, तत्त्वहीन सुखों से घृणा करेगा। वह सावधान हो कर मिथ्या पदार्थों से अलग रहेगा तथा अपनी आत्मा में ही नित्य-सुख का उपभोग करेगा। जब मनुष्य सारे विषय-पदार्थों के प्रति उपेक्षा करता है, तब आत्मा ही आत्मा की रक्षा करती है।"

ब्राह्मण ने कहा, "इस प्रकार निश्चय कर पिंगला अपने मन को ईश्वर में लगा कर, प्रेमियों के लिए अपनी सारी आशाओं एवं तृष्णाओं का परित्याग कर शान्त मन से बिछावन पर जा बैठी। उसने सारी अपवित्र कामनाओं का परित्याग किया, जिनसे उसको अशान्ति मिल रही थी। शान्त मन से वह गहरी नींद में सो गयी। आशा ही कष्ट देती है। आशा के

परित्याग से मनुष्य परमानन्द को प्राप्त करता है। यह परम सुख की अवस्था है। वैराग्य सुख का मूल है जैसा कि पिंगला के उदाहरण से स्पष्ट होता है जिसने प्रेमियों के प्रति तृष्णा का परित्याग कर सुखपूर्वक निद्रा ली।

"मनुष्य जिसको सबसे अधिक प्रिय मानता है, उसको प्राप्त करना ही सारे क्लेशों तथा दुःखों का मूल है। सत्य को जानने वाला सारे पदार्थों का परित्याग कर असीम सुख को प्राप्त करता है।

"एक कुरर पक्षी की चोंच में मांस का एक टुकड़ा था। उससे बलवान् एक पक्षी ने, जिसके पास कोई टुकड़ा न था, उस पक्षी को जा दबोचा। परन्तु कुरर ने उस मांस के टुकड़े को गिरा दिया। वह स्वतन्त्र हो सुखी बन गया। प्रिय वस्तुओं का परित्याग भला है। इससे शान्ति मिलती है।

"मैं मानापमान की चिन्ता नहीं करता। मैं गृह, स्त्री अथवा बच्चे की चिन्ता नहीं करता। मैं आत्मा में क्रीड़ा करता हूँ, आत्मा में रमण करता हूँ तथा शिशुवत् विचरण करता हूँ।

"दो जन ही दुःखों से विमुक्त तथा सर्वोच्च सुख में निमग्न हैं- शिशु जो कुछ भी जानता नहीं तथा वह मनुष्य जिसने परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया है, जो गुणों के प्रभाव से परे चला गया है।

"किसी एक स्थान में एक लड़की थी। उसके साथ विवाह-सम्बन्ध के लिए आये हुए लोगों का उसे ही स्वागत-सत्कार करना था; क्योंकि उसके परिवार के लोग अन्यत्र कहीं गये हुए थे। वह एकान्त स्थान में धान कूट रही थी। ऐसा करते समय उसकी चूड़ियों से बड़ी आवाज होती थी। बुद्धिमान् लड़की अपनी निर्धनता पर लज्जित हुई। उसने विचार किया कि आये हुए अतिथियों को उसकी निर्धनता का पता नहीं चलना चाहिए। उसने एक-एक कर चूड़ियाँ तोड़ डालीं। केवल दो चूड़ियाँ हर हाथ में रह गयी थीं; परन्तु धान कूटते समय इन दो चूड़ियों से भी आवाज हो रही थी। उसने उनमें से एक को भी तोड़ दिया। बची हुई एक से आवाज न हुई और वह अपना काम करती रही।

"सत्य तथा अनुभवों की खोज में भ्रमण करते हुए मैंने उस लड़की के अनुभव से इस उपदेश को ग्रहण किया। जहाँ बहुत लोग रहते हैं, वहाँ झगड़ा होगा। दो मनुष्यों के बीच भी वाद-विवाद अथवा बातचीत का मौका मिलेगा। अतः मनुष्य को एकान्तवास करना चाहिए। लड़की की एक चूड़ी के समान अकेले ही रहना चाहिए।

"श्वास को वशीभूत कर, आसन में स्थिरता ला कर, मनुष्य तीर-निर्माता के समान अपने मन को परमात्मा में एकाग्र करे। वैराग्य, सतत ध्यान तथा क्रमिक साधना के द्वारा वह सावधान हो कर अपने मन को स्थिर करे। जिस प्रकार ईंधन के नष्ट हो जाने पर अग्नि स्वयमेव बुझ जाती है, उसी प्रकार मन की बहिर्मुखी वृत्तियों को रोके रखने पर गुणजन्य नानात्व का निराकरण होता है, मन धीरे-धीरे कर्म के बन्धनों का परित्याग करता है, कर्म की प्रवृत्ति का संन्यास करता है, सत्त्व की वृद्धि रजस् एवं तमस् को त्यागता है तथा गुण रूपी जलावन के हट जाने से तथा इन्द्रिय-संस्कारों के अभाव के कारण मन विलीन हो कर प्रशान्त हो जाता है, वह ध्येय वस्तु के साथ एक बन जाता है। मन को आत्मा में विलीन कर मनुष्य अन्तर्बाह्य कुछ भी नहीं देखता। जिस प्रकार एक तीर-निर्माता ने तीर-निर्माण करने में अपने मन को इतना लीन कर रखा था कि वह राजा की सवारी तथा जुलूस को अपने सामने से गुजरते हुए भी नहीं देख पाया। मैंने उससे मन की एकाग्रता की शिक्षा ग्रहण की।

"ज्ञानी मनुष्य अकेले ही भ्रमण करे। वह गृह रहित तथा सावधान रहे। वह गुहा का आश्रय ग्रहण करे तथा अपनी योग्यता का प्रदर्शन न करे। वह मित्र रहित रहे। यथासम्भव स्वल्प बोले।

"शरीर नश्वर तथा गतिशील है फिर साधु के लिए गृह-निर्माण करना व्यर्थ तथा दुःख की जड़ है। जिस प्रकार सर्प दसरों के बनाये बिल में प्रवेश करता है और बड़े आराम से समय काटता है, उसी प्रकार संन्यासी भी जो वास स्थान उसे मिल जाये, उसी में आराम से रहे। उसके लिए कोई एक ही निश्चित स्थान की आवश्यकता नहीं है।

"जिस प्रकार मकड़ी अपने भीतर से ही सूत्र निकालती है और उससे जाला फैलाती है, उसी में खेलती है और पुनः उसे अपने पेट के भीतर डाल लेती है; उसी प्रकार प्रभु भी अपने भीतर से ही त्रिगुणात्मिका माया के द्वारा जगत् को निकालता, उसमें लीला करता तथा उसे स्वयं में ही विलीन कर देता है।

"प्रेम, घृणा अथवा भय के द्वारा जिस वस्तु पर मनुष्य सदा ध्यान बनाये रखता है, वह भ्रमर-कीट-न्याय से कालान्तर में उसी वस्तु के रूप को प्राप्त कर लेता है। जैसे भृंगी एक कीड़े को ले जा कर अपने बिल में बन्द कर देती है और वह कीड़ा भय से उसी का चिन्तन करते-करते उसी शरीर से तद्रूप हो जाता है। इसलिए मनुष्य को अन्य वस्तु का चिन्तन न करके केवल परमात्मा का ही चिन्तन करना चाहिए।

"इस प्रकार उपर्युक्त चौबीस गुरुओं से मैंने ये शिक्षाएँ ग्रहण कीं। हे राजन् ! सुनिए। मैंने अपने शरीर से भी शिक्षा ली है। यह शरीर भी मेरा गुरु है। यह मुझे विवेक तथा वैराग्य की शिक्षा देता है। मरना और जीना तो इसके साथ लगा ही रहता है। यद्यपि इस शरीर से तत्त्व-विचार करने में सहायता मिलती है, तथापि मैं इसे अपना कभी नहीं समझता। सर्वदा यही निश्चय रखता हूँ कि एक दिन इसे गीदड़ या कुत्ते खा जायेंगे।

"शरीर के आराम के लिए मनुष्य स्त्री-पुत्र, हाथी-घोड़े, नौकर-चाकर, घर-द्वार और भाई-बन्धुओं के पालन-पोषण में लगा रहता है तथा बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ सह कर धन-संचय करता है। अन्ततः वृक्ष के सदृश यह शरीर भी विनष्ट हो जाता है और दूसरे शरीर के लिए बीज भी रख छोड़ता है।

"जिह्वा उसे एक ओर खींचती है तो प्यास उसे दूसरी ओर; जननेन्द्रिय उसे एक ओर ले जाना चाहती है तो त्वचा, कान और पेट दूसरी ओर; नाक कहीं सुन्दर गन्ध सूँघने के लिए ले जाना चाहती है तो चंचल नेत्र कहीं दूसरी ओर सुन्दर रूप देखने के लिए। इस प्रकार कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियाँ दोनों इसे सताती रहती हैं। ये इन्द्रियाँ उसके प्राण-तत्त्व को उसी प्रकार खींच लेती हैं जिस प्रकार बहुत-सी सौतें अपने एक पति को।

"ईश्वर ने वृक्ष, रेंगने वाले जन्तु, पशु, पक्षी, डांस और मछली आदि अनेकों प्रकार की योनियाँ रचीं; परन्तु उनसे उन्हें सन्तोष न हुआ। तब उन्होंने मनुष्य की सृष्टि की। यह मनुष्य-शरीर ऐसी बुद्धि से युक्त है जो ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकती है। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

"इसलिए अनेक जन्मों के बाद यह अत्यन्त दुर्लभ मानव शरीर पा कर बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि शीघ्र-से-शीघ्र मृत्यु के पूर्व ही मोक्ष प्राप्ति का प्रयत्न कर ले। इस जीवन का मुख्य उद्देश्य मोक्ष ही है। विषय-भोग तो सभी योनियों में प्राप्त हो सकते हैं, इसलिए इनके संग्रह में यह अमूल्य जीवन नहीं खोना चाहिए।

"राजन् ! शरीर से यह शिक्षा ले कर मुझे जगत् से वैराग्य हो गया। मेरे हृदय में ज्ञान-विज्ञान की ज्योति जगमगाती रहती है। न तो कहीं मेरी आसक्ति है और न कहीं अहंकार ही।

"अकेले गुरु से ही यथेष्ट और सुदृढ़ सुबोध नहीं होता; क्योंकि ऋषियों ने एक ही अद्वितीय ब्रह्म का अनेकों प्रकार से गायन किया है।"

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा- "प्यारे उद्धव ! परम ज्ञानी अवधूत दत्तात्रेय ने राजा यदु को इस प्रकार उपदेश दिया। यदु ने उनकी पूजा और वन्दना की, फिर वे उनसे अनुमति ले कर बड़ी प्रसन्नता से इच्छानुसार पधार गये। हमारे पूर्वजों के भी पूर्वज राजा यदु अवधूत की यह बात सुन कर समस्त आसक्तियों से छुटकारा पा गये और समदर्शी हो गये।"

विषय-पदार्थों से कैसे अनासक्ति हो ?

उद्धव ने कहा- "हे कृष्ण ! साधारणतः लोग जानते हैं कि इन्द्रियों के विषय विपत्ति में जा गिराते हैं। फिर भी कुत्ते, गधे और बकरे के समान उनके पीछे क्यों दौड़ते रहते हैं?"

भगवान् ने कहा- "अविवेकी मनुष्य के हृदय में शरीर के प्रति 'अहं' की भ्रान्ति-भावना उत्पन्न होती है, तब भयंकर रजस् मन के ऊपर अधिकार कर लेता है। मन मूलतः सात्त्विक है। रजस् से पूर्ण होने पर शंका तथा कामनाएँ उत्पन्न होती हैं। वह सोचता है, 'मैं अमुक वस्तु को अमुक प्रकार से प्राप्त करूँगा, उसका उपभोग करूँगा इत्यादि।' तब मन विषयों के बाह्य गुणों का चिन्तन करता है, 'अहा! कितना सुन्दर है यह ! कितना अच्छा है यह पदार्थ !' इससे राग दृढ़ होता तथा तृष्णा बढ़ती है।

"मूर्ख मनुष्य कामनाओं तथा तृष्णाओं के वशीभूत हो जाता है। उसका अपनी इन्द्रियों पर वश नहीं चलता। रजस् के तीव्र प्रवाह से भ्रमित हो कर वह जान-बूझ कर ऐसे कर्मों को करता है जिनसे दुःख तथा बुरे परिणाम प्राप्त होते हैं।

"विवेकी मनुष्य भी रजस् तथा तमस् से विक्षिप्त बन जाता है; परन्तु उनकी बुराइयों से अवगत होने के कारण वह सजग रह कर मन का नियन्त्रण करता है तथा मन की एकाग्रता का अभ्यास करता है। वह उनसे आसक्त नहीं होता।

"सतर्क तथा सजग रह कर मनुष्य आसन तथा प्राणायाम में दृढ़ता प्राप्त कर ले तथा मन को मुझ (ईश्वर) में लगा कर धीरे-धीरे एकाग्रता का अभ्यास करे।

"यही योग है जिसे मेरे शिष्य सनक तथा अन्य ऋषियों ने बतलाया है जिससे कि मनुष्य सभी वस्तुओं से मन हटा कर मुझ (ईश्वर) में स्थिर कर सके।

"इस जगत् को भ्रान्ति समझो, मन का खेल समझो। यह अभी दिखायी देता है तथा दूसरे ही क्षण नष्ट हो जाता है। स्वप्नवत् तथा अलात्-चक्र के समान है। एक ही चैतन्य विविध रूपों में प्रतीयमान होता है। गुणों के परिणामजन्य त्रिविध भेद-जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति माया है।

"अपनी इन्द्रियों को संसार के पदार्थों से हटाओ। सारी कामनाओं का परित्याग करो। शान्त बनो तथा अपनी आत्मा के सुख में ही निमग्न रहो। मौन रहो तथा कर्मों में निरत रहो। जगत् को एक बार मिथ्या समझ लेने पर यदि कभी जगत् का अनुभव हुआ, दैनिक जीवन की आवश्यकताओं के लिए विषय-पदार्थों का अनुभव हो भी गया, तो उससे आपमें मोह उत्पन्न न होगा। जब तक शरीर है, तब तक स्मृति रूप से अनुभव होता रहेगा।"

एकादश स्कन्ध में ध्यान-विधि का वर्णन

भगवान् ने कहा : "जो न तो बहुत ऊँचा हो और न बहुत नीचा ही- ऐसे आसन पर शरीर को सीधा रख कर आराम से बैठ जाये, हाथों को अपनी गोद में रख ले और दृष्टि अपनी नासिका की नोक पर जमाये। इसके बाद पूरक, कुम्भक तथा रेचक के द्वारा नाड़ियों का शोधन करे।

"मूलाधार के ऊपर ॐ का घण्टानाद के समान स्वर फैलता है। प्राणायाम के द्वारा वह इस पवित्र ॐ को ऊपर ले जाये। कमलनालवत् पतले सूत के समान उस स्वर का प्रवाह टूटने न पाये। हृदय से ले जा कर उसे घण्टानाद के समान बजने दे, उसमें एकाक्षर ॐ को जोड़ दे।

"इस प्रकार दिन में वह तीन बार प्राणायाम करे और हर बैठक में ॐ सहित दश बार प्राणायाम करे। श्वास-प्रश्वास के साथ वह ॐ का मानसिक जप करे। एक महीने में ही प्राण वश में हो जायेगा। शरीर के भीतर हृदय-कमल है, उसकी डण्डी ऊपर की ओर है तथा मुँह नीचे की ओर। फूल के आठ दल हैं और सुकुमार कर्णिका (गद्दी) है। फूल बन्द रहता है। उस पर ध्यान करो मानो वह ऊपर उठ गया हो तथा प्रस्फुटित हो गया हो। कर्णिका पर सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि का, एक के अन्दर दूसरे का चिन्तन करो। तदनन्तर अग्नि के अन्दर मेरे इस रूप का स्मरण करना चाहिए। मेरा यह स्वरूप ध्यान के लिए बड़ा ही मंगलमय है।

"मेरा रूपसुडौल, सुन्दर, चार लम्बी मनोहर भुजाएँ, बड़ी ही सुन्दर और मनोहर गरदन, सुस्निग्ध कपोल तथा अनोखी मुस्कान।

"दोनों ओर के कानों में मकराकृत कुण्डल झिलमिला रहे हैं, मेघश्यामल शरीर, पीताम्बर वस्त्र, श्रीवत्स एवं लक्ष्मी जी का चिह्न, वक्षःस्थल पर दायें बायें विराजमान हैं।

"हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये हुए हैं। गले में वनमाला, चरणों में नूपुर, छाती पर कौस्तुभ मणि है।

"अपने-अपने स्थान पर चमकते हुए किरीट, कंगन, करघनी और बाजूबन्द शोभायमान हो रहे हैं। सुन्दर मुख और प्यार भरी चितवन कृपा-प्रसाद की वर्षा कर रही है। मेरे इस रूप पर मन को जमाना चाहिए- अपने मन को एक-एक अंग में लगाना चाहिए। वह मन के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से खींच ले और मन को बुद्धि-रूप सारथि की सहायता से मुझमें ही लगा दे, चाहे मेरे किसी भी अंग में क्यों न लगे। जब सारे शरीर का ध्यान होने लगे, तब अपने चित्त को खींच कर एक स्थान में स्थिर करे और अन्य अंगों का चिन्तन न करके मुस्कान युक्त मेरे मुख का ही ध्यान करे। जब चित्त मुखारविन्द में ठहर जाये, तब उसे वहाँ से हटा कर आकाश या परम कारण में स्थिर करे। तदनन्तर उसका भी त्याग कर निर्विशेष शुद्ध ब्रह्म मेरे स्वरूप में निवास करे, अन्य कुछ भी न सोचे। त्रिपुटी-ध्याता, ध्येय तथा ध्यान को विलीन हो जाने दे। त्रिविध भेद को भूल जाये। यही सर्वोच्च निर्विकल्प समाधि है।"

४. विष्णुपुराण में मुक्ति के लिए साधना

ऋभु ने कहा- "हे राजन् ! राजा निदाघ ! आप धर्मज्ञ हैं। आप सभी भूतों को अपनी आत्मा जानते हैं। आप शत्रु तथा मित्र को समान जानते हैं। जिस प्रकार एक ही आकाश उजला तथा नीला प्रतीत होता है, उसी प्रकार आत्मा जो वास्तव में एक ही है, भ्रान्ति के कारण विविध रूप मालूम पड़ती है, आत्म-तत्त्व एक ही है। वह अच्युत है। उसके अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु नहीं है। वही मैं हूँ। वही तू है। वही सब है। यह जगत् उसी का रूप है। अतः भेद-भ्रान्ति के दर्शन का परित्याग कीजिए।"

ब्राह्मण ने कहा- "जीवन का महान् लक्ष्य ज्ञानियों ने नित्य-ब्रह्म ही बतलाया है। यदि विनश्वर पदार्थों से उसकी प्राप्ति हो, तो वह भी विनश्वर ही रहेगा। वह चैतन्य जो अपने शरीर तथा अन्य सभी शरीरों में एक है, वहीं सच्चा ज्ञान है,

वही सभी वस्तुओं का सारत्तत्त्व है। सारे जगत् में व्याप्त वायु वंशी के छिद्र से संचरित होने पर विभिन्न स्वरों में निकल पड़ती है, उसी प्रकार आत्मा भी एक होने पर भी कर्म-फल के अनुसार विभिन्न रूपों को धारण करती है। जब विभिन्न रूपों के भेद का विनाश हो जाता है, जब ईश्वर तथा मनुष्य के बीच का भेद नष्ट हो जाता है, तब नानात्व का अन्त हो जाता है।"

केशिध्वज ने कहा- "दुःख, अज्ञान तथा मल प्रकृति के हैं, आत्मा के नहीं। हे मुनि ! जल तथा अग्नि में कोई सम्बन्ध नहीं; परन्तु किसी बरतन में जल को रख कर अग्नि पर रखने से जल भी उबलने लगता है, अग्नि के गुण को धारण करता है। उसी प्रकार आत्मा भी प्रकृति के संग में आ कर अहंकार आदि मोहात्मिका शक्तियों से मलिन हो जाती है। अविद्या का बीज ऐसा ही है जिसका मैंने वर्णन किया है। सारे शोकों की एक ही दवा है-भक्ति का अभ्यास। अन्य कोई औषधि नहीं है।

"जिसे विवेक-बुद्धि है, वह अपने मन से सारे विषयों को अलग करे तथा परमात्मा पर ध्यान करे। वह परमात्मा अन्तरात्मा ही है। जिस प्रकार चुम्बक लोहे को अपनी ओर आकृष्ट करता है, उसी प्रकार जो मनुष्य परमात्मा पर ध्यान करता है, वह परमात्मा की ओर खिंच जाता है; क्योंकि जीवात्मा का स्वरूप परमात्मा ही है। ध्यान युक्त भक्ति से ब्रह्म के साथ योग की प्राप्ति होती है। जब मन ध्यान के द्वारा पूर्ण हो जाता है, जब पूर्ण आत्म-संयम हो जाता है, तब वह जगत् के बन्धन से मुक्त होने लायक बन जाता है।

"उपासना के लिए निम्नांकित रूप से मन को सम्यक् अवस्था में लाना चाहिए। आशाओं का परित्याग, ब्रह्मचर्य, करुणा, सत्य, नेकी, उदासीनता के अभ्यास से मन को ब्रह्म पर स्थिर करना चाहिए। स्वाध्याय, शौच, सन्तोष, तप तथा आत्म-संयम का अभ्यास करना चाहिए। इन साधनों से सुन्दर फलों की प्राप्ति होती है। निष्काम भाव से करने पर उनसे मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है।"

५. गरुड़पुराण में साधना

गरुड्पुराण के सोलहवें अध्याय में मुक्ति के लिए नियम दिया गया है। मानव-जीवन के क्षेत्र का विवेकपूर्ण विश्लेषण किया गया है, दिव्य जीवन यापन में बाधाओं तथा विफलताओं का विवरण तथा परमात्म-साक्षात्कार पर बल दिया गया है। संग का परित्याग बड़ा ही कठिन है। मनुष्य को शिष्ट एवं महापुरुषों के साथ मित्रता स्थापित करनी चाहिए। अज्ञानवश केवल कर्मकाण्ड से ही मुक्ति नहीं मिलती, न तो केवल वेदों तथा शास्त्रों के अध्ययन से; मुक्ति तो ज्ञान से ही प्राप्त होती है। इन दो शब्दों से ही बन्धन तथा मुक्ति सम्भव है- 'मम' से बन्धन, 'अमम' से मुक्ति। जो 'मेरा' कहता है, वह बँधा हुआ है। जो 'मेरा' नहीं कहता, वह मुक्त है। वही कर्म बन्धन में नहीं डालता, वही ज्ञान मुक्ति प्रदान करता है जो 'मेरा नहीं' पर आश्रित है। अन्य कर्म तथा ज्ञान तो क्लेश एवं विवाद ही हैं। असंग शस्त्र के द्वारा मनुष्य को शरीर-सम्बन्धी कामनाओं का उन्मूलन करना चाहिए। ॐ का मानसिक जप करना चाहिए। श्वास वशीभूत कर मन को निरुद्ध कर मनुष्य को ॐ का ध्यान करना चाहिए। कामनाओं को वश में ला कर, संग रहित हो कर, अभिमान तथा मोह को दूर कर, अविवेक पर विजय प्राप्त कर मनुष्य को परमात्मा में निवास करना चाहिए। प्रशान्तात्मा, ज्ञानालोक से पूर्ण, विचारों से मुक्त मनुष्य को परमात्मा का ही ध्यान करना चाहिए।

अध्याय ६ :योगवासिष्ठ की साधना तथा अन्य सम्प्रदायों की साधना

१. वीरशैव में साधना

वीरशैव या लिंगायत मत में लक्ष्य अथवा भगवान् शिव की प्राप्ति का मार्ग बतलाया गया है। भगवान् शिव, भगवान् सुब्रह्मण्य, राजा ऋषभ, सन्त लिंगर, कुमार देवी, शिवप्रकाश-सभी ने वीरशैव दर्शन की विस्तृत व्याख्या की है। इस दर्शन का मूल वीरागम है।

साधारण शैव शिवलिंग को सन्दूक में रखते हैं तथा पूजा के समय उसकी उपासना करते हैं। लिंगायत जन सोने या चाँदी की पेटी में एक छोटे शिवलिंग को रख कर उसे शरीर पर धारण करते हैं। लिंग को शरीर में धारण करने का तात्पर्य यह है कि इससे भगवान् की याद बनी रहेगी। ईसाई भी गले में क्रास पहनते हैं। उसका भी तात्पर्य ऐसा ही है। वीरशैव के अनुयायी, जिन्हें लिंगायत कहते हैं, लिंग-रूप में शिव-ध्यान को मुक्ति का एकमात्र साधन मानते हैं। लिंग पर धारणा की पूर्णता होने पर मनुष्य शिव-साक्षात्कार प्राप्त करता है।

२. शक्तियोग-साधना

जो मनुष्य ईश्वर को माता के रूप में पूजता है, जो परम शक्ति जगत् को रचने वाली, पालन करने वाली तथा संहार करने वाली है, उसे शाक्त कहते हैं। सभी स्त्रियाँ उस परम शक्ति के रूप हैं। शरीर के भीतर प्रसुप्त शक्तियों के जागरण के द्वारा शाक्त शक्ति को शिव से युक्त करने के लिए साधना करता है। कुण्डलिनी को जाग्रत कर, षट् चक्र के भेदन के अनन्तर वह अपनी साधना में सिद्ध बन जाता है। किसी सिद्ध गुरु के पथ-प्रदर्शन में ही व्यावहारिक ढंग से यह साधना करनी चाहिए। ध्यान से, भाव से, जप से तथा मन्त्र-शक्ति से शक्ति को जगाना चाहिए।

पचास अक्षरों की स्वरूप माता शक्ति विभिन्न चक्रों में विभिन्न अक्षरों के रूप से व्यक्त हैं। किसी वाद्य यन्त्र के तारों को तालबद्ध रूप से बजाने पर सुमधुर संगीत का संचार होता है। उसी प्रकार अक्षरों के तारों को क्रमानुसार स्पन्दित करने पर, जो छह चक्रों से स्पन्दित होती है तथा जो इन अक्षरों की आत्मा है, जग उठती हैं। माता के जगने पर साधक शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है। ऐसा कहना कठिन है कि कब, किसको और कैसे माता अपना दर्शन देंगी।

साधना का अर्थ है-शक्ति का जागरण अथवा प्रस्फुटन। साधक की क्षमता तथा प्रवृत्ति के ऊपर ही साधना-विधि निर्भर है।

माता की कृपा के बिना कोई भी अपने को मन और पदार्थ के बन्धन से मुक्त नहीं कर सकता। माया के बन्धनों को तोड़ना बड़ा कठिन है। यदि आप उसे माता के रूप में पूजेंगे, तो उसकी कृपा तथा उसके आशीर्वाद से आप सुगमतापूर्वक प्रकृति से परे चले जायेंगे। वह सारी बाधाओं को दूर करेगी तथा आपको असीम सुख के धाम में ले जा कर मुक्त बना देगी। उसके प्रसन्न हो कर आशीर्वाद देने से ही आप इस प्रबल संसार से मुक्त हो सकेंगे।

शाक्त भुक्ति तथा मुक्ति दोनों ही प्राप्त करते हैं। शिव आनन्द तथा ज्ञान का स्वरूप है। शिव ही मनुष्य के सुख-दुःखमय जीवन से व्यक्त होता है। यदि इस बात को आप सदा याद रखेंगे तो सारे द्वैत, द्वेष, ईर्ष्या, घमण्ड विलीन हो जायेंगे। सारे कार्यों को धार्मिक कार्य समझना चाहिए। यदि आपमें सम्यक् भाव है तो चलना, देखना, सुनना ये सब ईश्वर की उपासना बन जाते हैं। शिव ही मनुष्य में तथा उससे हो कर कार्य कर रहा है। फिर कहाँ अभिमान अथवा जीवत्व है? सारे कार्य ईश्वरीय हैं। एक ही सार्वभौम जीवन सभी हृदयों में स्पन्दित होता है, सभी श्रोत्रों से सुनता है। कितना महान् है यह अनुभव ! इस क्षुद्र अहंकार को कुचल कर ही आप इसे प्राप्त करेंगे। पुराने संस्कार, पुरानी वासनाएँ और विचारने की पुरानी आदत इस पूर्ण अनुभव के मार्ग की बाधाएँ हैं।

साधक इस जगत् को माता का ही रूप समझता है। वह अपने रूप को माता का रूप मानते हुए सर्वत्र एकता देखता है। वह ईश्वरीय माता को परब्रह्म से एक मानता है।

शाक्तवाद केवल दर्शन ही नहीं है। यह साधकों की रुचि, क्षमता तथा प्रगति के अनुसार योग की विधियों को बतलाता है। यह साधक को कुण्डलिनी के जागरणार्थ तथा उसे शिव से मिलाने और तत्फलतः निर्विकल्प समाधि के लिए सहायता प्रदान करता है। कुण्डलिनी जब तक सोती रहती है, तब तक मनुष्य जगत् के प्रति जाग्रत रहता है। उसके जग जाने पर मनुष्य संसार के प्रति सो जाता है। वह जगत् तथा शरीर की सारी चेतना खो कर ईश्वर से एक बन जाता है। समाधि में शरीर अमृत द्वारा पोषित होता है। सहस्रार में शिव तथा शक्ति के मेल से अमृत का संचार होता है।

अटूट श्रद्धा तथा पूर्ण भक्ति एवं आत्मार्पण के साथ माता की उपासना के द्वारा आप उसकी कृपा प्राप्त करेंगे। उसकी कृपा से ही आप अविनाशी तत्त्व का ज्ञान कर सकेंगे।

३. काश्मीर शैव में साधना

आगम काश्मीर शैव के आधार पर हैं। काश्मीर शैव मत में ईश्वर, जगत्, जीव, बन्धन तथा मोक्ष-ये प्रमुख विचारणीय तत्त्व हैं। बन्धन का कारण है अज्ञान। जीव समझता है कि 'मैं सीमित हूँ। मैं शरीर हूँ।' वह यह भूल जाता है कि आत्मा तथा शिव के बीच तादात्म्यता है तथा शिव के सिवा यह जगत् पूर्णतः मिथ्या है।

चरम मोक्ष के लिए प्रत्यभिज्ञा सत्य-साक्षात्कार की आवश्यकता है। जब आत्मा स्वयं को शिव-रूप से जान लेता है, तब ईश्वरैक्य के नित्य सुख को प्राप्त करता है। मुक्त आत्मा शिव में विलीन हो जाते हैं। जिस तरह जल जल में, दूध दूध में विलीन हो जाता है, ठीक उसी तरह द्वैत-भ्रम के दूर होने पर आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाता है।

आगमों के उपदेशों के अनुसार चलने पर सीमित होने का भ्रम तथा देहाध्यास एवं विनश्वर वस्तुओं के साथ आत्मा के संग का विनाश होता है। अज्ञानजन्य मल के क्षीण होने अथवा दूर होने पर मनुष्य आलोक प्राप्त करता है। आध्यात्मिक साधना के द्वारा अपने आन्तर दिव्य चैतन्य स्वरूप का अनुभव करना होगा। असीम आध्यात्मिक अनुभव के लिए जीव को पहले भगवान् परम शिव की कृपा प्राप्त कर लेनी चाहिए। मल तथा अज्ञान से छुटकारा पाने के लिए चार साधन या उपाय हैं- अनुपाय, शम्भवोपाय, शाक्तोपाय तथा अनवोपाय। इन चार उपायों के अभ्यास से मनुष्य परम चैतन्य को प्राप्त कर लेता है।

४. पाशुपतयोग में साधना

इन्द्रियों के दमन के द्वारा आत्मा को परम शिव-तत्त्व से मिला देना ही वास्तव में भस्म को धारण करना है; क्योंकि भगवान् शिव ने अपने तृतीय ज्ञान-नेत्र से काम को क्षार-क्षार कर दिया था। जप के द्वारा प्रणव पर ध्यान करना चाहिए। स्थिर अभ्यास के द्वारा मनुष्य को सच्चे ज्ञान, योग तथा भक्ति की प्राप्ति करनी चाहिए। हृदय में दश-दल पद्म हैं। इसमें दश नाड़ियाँ हैं। यह जीवात्मा का धाम है। यह जीवात्मा मन में सूक्ष्म रूप से रहता है। यह चित्त या पुरुष है। मनुष्य को गुरु के उपदेशानुसार नियमित योगाभ्यास तथा वैराग्य, सदाचार एवं समता के अभ्यास से दशाग्नि-नाड़ी का भेदन कर अथवा उसका अतिक्रमण कर चन्द्र को प्राप्त करना चाहिए। नियमित ध्यानाभ्यास तथा नाड़ी-शुद्धि के द्वारा प्रसन्न हो कर चन्द्रमा धीरे-धीरे पूर्णता को प्राप्त करता है। इस अवस्था में साधक जाग्रत तथा सुषुप्ति की अवस्था का अतिक्रमण कर ध्यानाभ्यास के द्वारा जाग्रतावस्था में ही ध्येय-वस्तु-शिव में विलीन हो जाता है।

५. योगवासिष्ठ की साधना

योगवासिष्ठ में साधना के विषय में अपूर्व व्यावहारिक बातें बतायी गयी हैं। अत्यधिक सांसारिक व्यक्ति भी इस ग्रन्थ के अध्ययन से वैराग्य प्राप्त कर मन की शान्ति तथा सान्त्वना प्राप्त करेगा।

जिनका मन इस संसार से पराङ्मुख हो गया है, जो विषय-पदार्थों से उदासीन बन गये हैं तथा जिनमें मुमुक्षुत्व की ज्वाला जल रही है, वे इस बहुमूल्य ग्रन्थ के अध्ययन से अपूर्व लाभ उठायेंगे। वे इस ग्रन्थ में ज्ञान के विशाल भण्डार को प्राप्त करेंगे तथा दैनिक जीवन में व्यवहरणीय उपदेश को प्राप्त करेंगे। योगवासिष्ठ पहले किसी सिद्धान्त को रखता है, फिर बहुत-सी दिलचस्प कहानियों के द्वारा उसकी व्याख्या करता है। यह सतत स्वाध्याय का ग्रन्थ है। इसे बार-बार पढ़ना चाहिए।

जीवन के सभी क्लेशों एवं विपत्तियों में आत्मा एवं परमात्मा की एकता को स्थापित करने की यह शिक्षा देता है। जीवात्मा तथा परमात्मा की एकता के लिए यह विभिन्न प्रकार की विधियों का प्रतिपादन करता है।

इसमें ब्रह्म के स्वरूप तथा आत्म-साक्षात्कार की विधियों का वर्णन दिया गया है। यह सबसे महान् प्रेरणात्मक ग्रन्थ है। वेदान्त का हर साधक इसका नित्य स्वाध्याय करता है। ज्ञानयोग के साधक का यह चिर-साथी है। यह प्रक्रिया-ग्रन्थ नहीं है। यह वेदान्त की प्रक्रियाओं का निरूपण नहीं करता। उन्नत साधक ही अपने स्वाध्याय के लिए इस ग्रन्थ को ले सकते हैं। साधकों को पहले श्री शंकराचार्य लिखित आत्मबोध, तत्त्वबोध, आत्मानात्मविवेक तथा पंचीकरण का अध्ययन कर लेना चाहिए, तब योगवासिष्ठ का अध्ययन करना चाहिए।

आत्मज्ञान के द्वारा ब्रह्मानन्द को प्राप्त करना ही मोक्ष है। जन्म-मृत्यु से मुक्त होना मोक्ष है। यह ब्रह्म का विशुद्ध एवं अक्षय धाम है, जहाँ संकल्प और वासना नहीं रहते। यहाँ मन प्रशान्त हो जाता है। मोक्ष-सुख के सामने समस्त संसार का सुख एक बूँद के समान है। जिसे मोक्ष कहते हैं, वह न तो देवलोक में है, न पाताललोक में है और न पृथ्वी पर ही। जब सारी कामनाएँ विनष्ट हो जाती हैं, इस विस्तृत मन का विनाश हो जाता है, वही मोक्ष है। मोक्ष में न तो देश है और न काल। अन्तर्बाह्य भी नहीं है। अहंकार की भ्रान्ति के दूर होने पर, माया के विनष्ट होने पर मोक्ष हो जाता है। वासनाओं का विनाश मोक्ष है। संकल्प ही संसार है। संकल्प का विनाश ही मोक्ष है। संकल्प का अशेष नाश ही मोक्ष अथवा परम ब्रह्म का धाम है। मोक्ष सर्व-दुःख-निवृत्ति तथा परमानन्द की प्राप्ति है। जन्म तथा मृत्यु दुःख के कारण हैं। जन्म-मृत्यु से विमुक्त होना ही सभी दुःखों से मुक्त होना है। ब्रह्मज्ञान अथवा आत्मज्ञान से ही मोक्ष सम्भव है। विषयों की कामनाओं के तिरोधान से मन की प्रशान्तावस्था ही मोक्ष है।

यदि मोक्ष-द्वार के चार द्वारपालों से मित्रता कर ली गयी, तो मोक्ष-प्राप्ति में बाधा नहीं रह पायेगी। वे चार द्वारपाल ये हैं- शान्ति, विचार, सन्तोष एवं सत्संग। यदि इनमें से एक की भी प्राप्ति हो गयी, तो अन्य स्वतः ही आ प्राप्त होंगे।

ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेने पर आप जन्म-मृत्यु के झमेले से मुक्त हो जायेंगे, सारी शंकाएँ दूर हो जायेंगी तथा सारे कर्म विनष्ट हो जायेंगे। निज-पुरुषार्थ से ही मनुष्य अमर, सुखमय ब्रह्म-धाम को प्राप्त कर सकता है।

मन ही आत्मा का हनन करने वाला है। मन का स्वरूप संकल्प ही है। मन का स्वभाव वासना है। मन के कर्म ही वास्तव में कर्म कहे जाते हैं। यह जगत् ब्रह्म की माया-शक्ति के द्वारा मन का ही विकास है। शरीर का चिन्तन करने से मन शरीर ही बन जाता है तथा शरीर के बन्धन में पड़ कर क्लेशों से सन्तप्त हो उठता है।

सुख तथा दुःख के रूप में मन ही बाह्य जगत् के रूप में व्यक्त होता है। स्वरूपतः मन चैतन्य है, बाह्यतः यह जगत् है। मन विवेक के द्वारा नष्ट हो कर परब्रह्म की अवस्था प्राप्त कर लेता है। मन से सारी कामनाओं के हट जाने पर, नित्य-ज्ञान के द्वारा मन के सूक्ष्म रूप के विनष्ट होने पर वास्तविक सुख का उदय होता है। आपसे उत्पन्न संस्कार तथा वासना ही आपको फन्दे में डाल देते हैं। परब्रह्म की स्वयं ज्योति ही मन अथवा जगत् के रूप में व्यक्त हो रही है।

आत्म-चिन्तन से रहित व्यक्ति इस जगत् को सत्य मानता है जो वास्तव में संकल्प मात्र ही है। मन का विकास ही संकल्प है। भेद-शक्ति के द्वारा संकल्प ही जगत् का निर्माण करता है। संकल्पों का विनाश ही मोक्ष है।

आत्मा का शत्रु यह मन है जो अत्यधिक मोह तथा अनेकानेक विषय-संकल्पों से भरा हुआ है। इस शत्रु मन पर विजय के अतिरिक्त अन्य कोई नौका नहीं है जिससे पुनर्जन्म के सागर को पार किया जाये।

दुःखद अहंकार के अंकुर से पुनर्जन्म के कोमल तने निकल आते हैं, जो समय पा कर चतुर्दिक् फैल जाते हैं, उनमें 'मेरा', 'तेरा' की लम्बी शाखाएँ लग जाती हैं तथा मृत्यु, रोग, जरा, दुःख तथा शोक के फल लगते हैं। ज्ञानाग्नि से ही इस वृक्ष का उन्मूलन किया जा सकता है।

ये सारे नानात्वपूर्ण दृश्य, जो इन्द्रियों से गृहीत होते हैं, सब मिथ्या हैं; परब्रह्म ही एकमेव सत्य है।

यदि सारे विषय-पदार्थ आँखों के काँटे बन जायें, उनके प्रति अनुराग की पहली भावना बदल जाये, तब मन नष्ट हो जाता है। आपकी सारी सम्पत्तियाँ व्यर्थ हैं। सारे धन आपको खतरे में ले जायेंगे। निष्कामता ही आपको नित्य-सुख के धाम को ले जायेगी।

वासनाओं तथा संकल्पों को विनष्ट कीजिए। अभिमान को मारिए। साधन-चतुष्टय से सम्पन्न बनिए। शुद्ध, अमर, सर्वव्यापक आत्मा का ध्यान कीजिए। आत्मज्ञान के द्वारा अमर, शाश्वत शान्ति, नित्य-सुख, मुक्ति तथा परिपूर्णता प्राप्त कीजिए।

अध्याय ७ :शिवानन्द-सूत्र में साधना

१. शिवानन्द-उपदेशामृत की साधना

प्रिय अमर आत्मन् !

आप दिव्य हैं। इसके अनुसार जीवन यापन कीजिए। अपने दिव्य स्वरूप का अनुभव तथा साक्षात्कार कीजिए। आप अपने भाग्यविधाता हैं। जीवन-संग्राम में आने वाले शोकों, कठिनाइयों तथा कष्टों से हतोत्साह न बनिए। अन्तर में आध्यात्मिक बल एवं साहस प्राप्त कीजिए। अन्दर शक्ति तथा ज्ञान का अथाह भण्डार है। उससे उन्हें निकालने का तरीका सीखिए। अन्दर गोता लगाइए। भीतर डूबिए। आन्तरिक त्रिवेणी, अमृतधारा में डुबकी लगाइए। आप स्फूर्ति, शक्ति तथा नव-चेतना से सम्पन्न हो जायेंगे। 'मैं ही अमर आत्मा हूँ'- आप इसका साक्षात्कार करेंगे।

जगत् के नियमों को समझिए। इस संसार में कुशलतापूर्वक रहिए। प्रकृति के गुप्त रहस्यों को समझ लीजिए। मन को वशीभूत करने के सर्वोत्तम साधनों को जान लीजिए। मन पर विजय पाइए। मन पर विजय ही प्रकृति तथा जगत् पर विजय है। मनोजय के द्वारा आप आत्मा को प्राप्त करेंगे। आप साक्षात्कार करेंगे, "मैं ही अमर आत्मा हूँ।"

कष्ट तथा शोक आने पर शिकायत न कीजिए। हर कठिनाई संकल्प-शक्ति के विकासार्थ सुयोग है। इससे आप सबल बनेंगे। इसका स्वागत कीजिए। आपकी सहन-शक्ति बढ़ेगी तथा आपका मन ईश्वर की ओर मुड़ेगा। मुस्कान के साथ उनका स्वागत कीजिए। आपकी दुर्बलता में ही आपकी सच्ची शक्ति छिपी हुई है। आप अजेय हैं। आपको कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकता। एक-एक कर कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कीजिए। यही नव-जीवन का समारम्भ है- यह है व्यापकता, महिमा तथा दिव्य ज्योति का जीवन। महत् कामना कीजिए तथा शक्ति प्राप्त कीजिए। बढ़िए। विकास कीजिए। सारे सद्गुणों का अर्जन कीजिए। दैवी सम्पत्ति-जैसे धैर्य, क्षमा तथा साहस - आपमें सुप्त हैं। नये जीवन का आरम्भ कीजिए। आध्यात्मिक मार्ग का अनुसरण कीजिए तथा साक्षात्कार कीजिए : "मैं ही अमर आत्मा हूँ।"

नये दृष्टिकोण को रखिए। विवेक, विचार, प्रसन्नता तथा बुद्धि से सम्पन्न हो जाइए। आपके लिए स्वर्णिम भविष्य प्रतीक्षा कर रहा है। भूत को गड़े रहने दीजिए। आप चमत्कार कर सकते हैं। आप आश्चर्य कर सकते हैं। आशा न छोड़िए। आप अपने संकल्प-बल से दुष्ट ग्रहों के प्रभाव को दूर कर सकते हैं। आप अपने विरुद्ध काम करने वाली शक्तियों को निष्क्रिय बना सकते हैं। आप विपरीत परिस्थितियों को भी अनुकूल बना सकते हैं। आप भाग्य को बदल सकते हैं। बहुतों ने ऐसा किया है। आप भी ऐसा कर सकते हैं। निश्चय कीजिए। अपने जन्म-सिद्ध अधिकार का साक्षात्कार कीजिए : "आप वही अमरात्मा हैं।"

आत्म-साक्षात्कार में सफलता के लिए निश्चय तथा आत्म निर्भरता की बड़ी आवश्यकता है। मुण्डकोपनिषद् में आप पायेंगे: "यह आत्मा उसके द्वारा प्राप्य नहीं है जो बल से रहित है अथवा जिसमें सच्चाई नहीं है अथवा जो संन्यास रहित तपस्या करता है। परन्तु यदि कोई बुद्धिमान् व्यक्ति उपर्युक्त साधनों से सम्पन्न हो कर प्रयास करता है तो उसकी आत्मा ब्रह्म में प्रवेश पा जायेगी?" साधक के लिए अभय मुख्य गुण है। मनुष्य को इस जीवन का भी परित्याग करने के लिए हर क्षण तैयार रहना चाहिए। इस विषय-जीवन के संन्यास के बिना नित्य-आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति नहीं हो सकती। गीता के सोलहवें अध्याय के पहले श्लोक में दैवी-सम्पद् का वर्णन है जिसमें अभय का नाम सर्वप्रथम दिया गया है। भीरू व्यक्ति मृत्यु से पहले ही कई बार मर चुकता है। आध्यात्मिक साधना के लिए एक बार निश्चय कर बैठने पर

हर हालत में उसे करते जाइए। जीवन की बाजी लगा कर भी साधना से च्युत न होइए। उठिए, सत्य का साक्षात्कार कीजिए। सर्वत्र घोषणा कीजिए, "तू अमर आत्मा है।"

भाग्य आपकी ही सृष्टि है। अपने विचारों तथा कार्यों के द्वारा आपने अपने भाग्य का निर्माण किया है। सद्विचार तथा सत्कार्यों के द्वारा आप अपने भाग्य को बदल सकते हैं। यदि कोई बुरी शक्ति आप पर आघात करे तो आप दृढ़तापूर्वक उसका निषेध कर, अपने मन को उससे हटा कर उसके बल को कम कर सकते हैं। इस प्रकार आप भाग्य से लोहा ले सकते हैं। "मैं अमर आत्मा हूँ" - यह एक विचार ही सारी बुरी शक्तियों को विनष्ट कर सकता है तथा आपमें साहस एवं आन्तर आध्यात्मिक बल को भर सकता है। बुरे विचार मानव-कष्ट के मूल कारण हैं। सद्विचार एवं सत्कार्य का अर्जन कीजिए। आत्म-भाव के साथ एकतापूर्वक निःस्वार्थतः काम कीजिए। यही सत्कार्य है और सद्विचार है : "मैं ही अमर आत्मा हूँ।"

पाप कोई वस्तु नहीं। पाप भ्रान्ति है। पाप मानसिक कल्पना है। प्रगति के मार्ग में बाल-आत्माएँ भूलें करेंगी ही। गलतियाँ ही आपकी सर्वोत्तम गुरु हैं। पाप के विचार विनष्ट हो जायेंगे, यदि आप ऐसा विचार करें- "मैं अमर आत्मा हूँ।"

ऐसा न कहिए : "कर्म, कर्म। मेरे कर्म ने ऐसी अवस्था ला दी है।" प्रयास कीजिए। पुरुषार्थ कीजिए। तप कीजिए। धारणा कीजिए। शुद्ध बनिए। ध्यान कीजिए। भाग्यवादी न बनिए। तामसिक न बनिए। मेमने की तरह 'में-में' न कीजिए। वेदान्त-केसरी की तरह 'ॐ ॐ' का गर्जन कीजिए। देखिए, किस तरह मार्कण्डेय, जिनके भाग्य में सोलह साल की अवस्था में मृत्यु होने वाली थी, अपने तपोबल द्वारा चिरंजीवि बन गये और यह भी विचार कीजिए कि किस तरह सावित्री ने अपने मृत पति को जीवित कर लिया। किस तरह बेंजामिन फ्रेंकलिन तथा चेन्नै के स्वर्गीय सर टी० मुत्तुस्वामि अय्यर ने अपने को उन्नत बनाया। हे प्रिय निरंजन ! याद रखिए, मनुष्य स्वयं ही अपने भाग्य का निर्माता है। विश्वामित्र, जो क्षत्रिय राजा थे, वसिष्ठ के समान ही ब्रह्मर्षि बन गये तथा उन्होंने अपने तपोबल से त्रिशंकु के लिए एक लोक का ही निर्माण कर दिया। रत्नाकर तपस्या के द्वारा बाल्मीकि महर्षि बन गये। बंगाल के दुष्ट स्वभाव वाले जगाई और मधाई महात्मा बन गये। वे गौरांग महाप्रभु के शिष्य बन गये। जैसा दूसरों ने किया, वैसा आप भी कर सकते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि आप आध्यात्मिक साधना, तप तथा ध्यान में संलग्न रहें तो आप भी चमत्कार कर सकते हैं। जेम्स एलेन की पुस्तक, 'गरीबी से शक्ति' (पावर्टी टु पावर) को सावधानीपूर्वक पढ़िए। आपको प्रेरणा मिलेगी। अपने जीवन का कार्यक्रम निश्चित कर लीजिए। मेरे 'बीस आध्यात्मिक उपदेश' तथा 'चालीस स्वर्णिम उपदेश' का पालन कीजिए। 'जीवन में सफलता के रहस्य' पढ़िए। आध्यात्मिक कार्य तालिका के अनुसार कार्य कीजिए। साधना में उत्साह रखिए। नैष्टिक ब्रह्मचारी बनिए। अपने अभ्यासों में क्रमिक तथा स्थिर रहिए। ब्रह्म-विभा से विभासित होइए। जीवन्मुक्त बनिए। याद रखिए: "तू अमृतत्व की सन्तान है।"

हे सौम्य, प्रिय अमर आत्मा, वीर बनिए। यद्यपि आपके पास खाने को कुछ न हो, आप फटे चिथड़ों में क्यों न हों, सदा प्रसन्न रहिए। सच्चिदानन्द ही आपका स्वरूप है। बाह्य शारीरिक कोश तो माया की उपज है। मुस्कराइए। हँसिए। कूदिए। आनन्द में नाचिए। 'ॐ राम, राम, राम, श्याम, श्याम, श्याम, शिवोऽहम्, शिवोऽहम्, सोऽहम्, सोऽहम्, ॐ ॐ ॐ' का गायन कीजिए। इस शरीर पिंजर से बाहर निकल आइए। आप यह नश्वर शरीर नहीं हैं। आप अमर आत्मा हैं। आप अलिंग आत्मा हैं। आप सम्राटों के सम्राट्, उपनिषदों के ब्रह्म के पुत्र हैं। वह आत्मा आपकी हृदय-गुहा में वास करता है। ऐसा अनुभव कीजिए। इसी क्षण अपने जन्माधिकार को प्राप्त कीजिए। निश्चय कीजिए। साक्षात्कार कीजिए। कल या परसों से नहीं, अभी से, इसी क्षण से ही। "तत्त्वमसि" - हे निरंजन ! तू अमरात्मा है।

हे भाई ! साहस आपका जन्माधिकार है, भय नहीं। शान्ति आपका जन्माधिकार है, अशान्ति नहीं। अमृतत्व आपका जन्माधिकार है, मृत्यु नहीं। स्वास्थ्य आपका जन्माधिकार है, रोग नहीं। आनन्द आपका जन्माधिकार है, शोक नहीं। ज्ञान आपका जन्माधिकार है, अज्ञान नहीं।

आप अपने भाग्य के निर्माता हैं। आप अपने भाग्य के विधाता हैं। आप बना सकते हैं, बिगाड़ सकते हैं। सद्विचार, सद्भावना तथा सत्कार्य के द्वारा आप ब्रह्म को प्राप्त कर सकते हैं। आप संकल्प-शक्ति के द्वारा पुरानी गन्दी आदतों को हटा सकते हैं। आप बुरे संस्कारों, अपवित्र कामनाओं तथा बुरी कल्पनाओं को विनष्ट कर सकते हैं। आप नयी आदतों का निर्माण कर सकते हैं। आप अपनी प्रकृति को बदल सकते हैं। आप सुन्दर चरित्र का निर्माण कर सकते हैं। आप अपनी आध्यात्मिक शक्ति से समस्त जगत् को हिला सकते हैं। आप दूसरों को भी ईश्वरत्व की ओर प्रेरित कर सकते हैं। आप प्रकृति की शक्ति पर शासन कर सकते हैं। आप पंचतत्त्वों पर शासन कर सकते हैं।

अपनी आत्मा पर निर्भर रहिए। संकीर्ण-बुद्धि न बनिए। अन्तःकरण की वाणी सुनिए। गुलाम न बनिए। अपनी स्वतन्त्रता को खो न दीजिए। आप अमर आत्मा हैं। छोटेपन की ग्रन्थि को नष्ट कर दीजिए। अपने भीतर से शक्ति, साहस तथा बल प्राप्त कीजिए। मुक्त बनिए। अन्ध श्रद्धा न रखिए। सावधानीपूर्वक विचार कीजिए और तब किसी वस्तु को मानिए। अन्धे आवेगों के अधीन न होइए। उनका दमन कीजिए। असहिष्णु न बनिए। विकसित बनिए। आपके अन्दर शक्ति तथा ज्ञान का विशाल क्षेत्र है। उसे प्रदीप्त करना है, तब आत्मा का सारा रहस्य आपको प्रकट हो जायेगा। आत्मज्ञान की ज्योति से अज्ञान का अन्धकार विनष्ट हो जायेगा। आत्मा का सतत ध्यान ज्ञान के साम्राज्य में प्रवेश पाने के लिए एकमात्र कुंजी है। मैंने इन कुछ पंक्तियों में ही वेदान्त का सारांश दे दिया है। वेदान्त-अमृत का पान कर अमृतत्व प्राप्त कीजिए। यही जीवन का लक्ष्य है। यही जीवन की सार्थकता है। कर्मयोग तथा उपासना के द्वारा आप परम साक्षात्कार के लिए समर्थ बन जायेंगे।

अनासक्तिमय जीवन बिताइए। मन को शनैः शनैः अनुशासित कीजिए। कोई भी व्यक्ति दुःख, रोग, कठिनाई तथा बाधाओं से मुक्त नहीं है। आपको अपने स्वरूप-सुखमय आत्मा में ही निवास करना होगा। वही आपके जीवन का मूल तथा आधार है। आपको अपने दिव्य स्वरूप की याद बनाये रखनी होगी, तभी आपको जीवन की कठिनाइयों का सामना करने के लिए आन्तरिक शक्ति प्राप्त होगी, तभी आप समत्व-बुद्धि प्राप्त करेंगे। आप बाह्य बुरे प्रभावों तथा दुःखद मलिन स्पन्दनों से प्रभावित न होंगे। नित्य प्रातः ध्यान के द्वारा आप नयी शक्ति तथा आन्तरिक जीवन, शाश्वत सुख एवं विशुद्ध आनन्द प्राप्त करेंगे। इसका अभ्यास कीजिए। अपनी विपरीत परिस्थितियों में भी इसका अभ्यास कीजिए। धीरे-धीरे आप आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करेंगे। आप अन्ततः आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करेंगे।

आपकी वर्तमान व्याधि कर्म की शोधक है। यह आपमें ईश्वर-स्मरण जगाने के लिए, हृदय में करुणा भरने के लिए, आपको सबल बनाने तथा आपमें सहनशीलता की वृद्धि करने के लिए आपको आ प्राप्त हुई है। कुन्ती ने भगवान् से प्रार्थना की थी, "मुझे सदा विपत्ति में रखो जिससे मैं सदा आपको याद किया करूँ।" भक्त लोग दुःख में अधिक प्रसन्न होते हैं। रोग, पीड़ा, सर्प, बिच्छू, विपत्ति आदि ईश्वर के ही सन्देशवाहक हैं। भक्त प्रसन्नतापूर्वक उनका स्वागत करता है। वह कभी भी परेशान नहीं होता। वह कहता है: "मैं तेरा हूँ, मेरे प्रभु। तू सब-कुछ मेरी ही भलाई के लिए करता है।"

मेरे प्रिय निरंजन ! दुःख तथा शोक करने को स्थान ही कहाँ है? तू तो ईश्वर का प्रिय है। यही कारण है कि वह तुम्हें कष्ट देता है। जब वह किसी व्यक्ति को अपनी ओर खींचना चाहता है तो वह उसके सारे धन को ले लेता है। वह उसके स्वजनों से उसे अलग करता है। वह उसके सारे सुख-केन्द्रों को नष्ट कर डालता है जिससे कि उसका मन पूर्णतः ईश्वर के चरण-कमलों में स्थापित हो जाये। प्रसन्न मुद्रा में हर वस्तु का सामना कीजिए। उसकी रहस्यमयी लीला को समझिए। हर वस्तु में ईश्वर को देखिए। हर चेहरे में ईश्वर को देखिए। ईश्वर को मन में बनाये रखिए। शरीर से दूर रहते हुए भी हम उसके निकट हैं। श्री कृष्ण अचानक अपने को छिपा लेते हैं जिससे राधा तथा अन्य गोपियाँ उनके लिए अधिक

उत्सुकता प्रकट करें। राधा के समान गाइए। गोपियों के समान कृष्ण-दर्शन को तड़पिए। श्री कृष्ण की कृपा आपको प्राप्त होगी। वह आपका अमर सखा है। वृन्दावन के बाँसुरी वाले को न भूलिए। वही आपका आधार है। वही देवकी का आनन्द है।

आपके हृदय-प्रकोष्ठ में करुणा-सागर भगवान् निवास करता है। वह आपके निकट है। आप उसे भूल गये हैं; परन्तु वह सदा आपकी देख-रेख करता है। कठिनाइयाँ उसी का आशीर्वाद है। वह आपके शरीर तथा मन को इस प्रकार गठित करना चाहता है कि उनसे हो कर वह अपनी लीला अबाध रूप से जारी रख सके। वह आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति इस तरह से करता है जैसी आप स्वयं नहीं कर सकते। अहंकार के कारण आप अपने कन्धों पर जो बोझ लिये हुए हैं, उसे उतार दीजिए। अहंकार त्याग दीजिए। स्वार्थ-निर्मित उत्तरदायित्वों को त्याग कर पूर्ण आराम से रहिए। उसमें पूर्ण श्रद्धा रखिए। पूर्ण आत्मार्पण कीजिए। उसकी ओर दौड़िए। वह हार्थो को फैला कर आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। वह आपके लिए सब-कुछ करेगा। मेरा विश्वास कीजिए। शिशु के समान अपने हृदय को ईश्वर के प्रति खोले रखिए। सारे दुःख समाप्त हो जायेंगे। कम-से-कम एक बार भी भाव के साथ कहिए: "मैं तेरा हूँ! हे मेरे प्रभु। सब-कुछ तेरा ही है। तेरा ही चाहा हो कर रहेगा।"

विरह का अन्त होगा। सारे दुःख, कष्ट, शोक और रोग विलीन हो जायेंगे। आप ईश्वर के साथ एक हो जायेंगे।

अनुभव कीजिए कि सारा संसार ही आपका शरीर है। उन सारे अवरोधों को नष्ट कीजिए जो एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से अलग रखते हैं। बड़प्पन की भावना अज्ञान अथवा मोह है। "ईशावास्यमिदं सर्वम्" - विश्व-प्रेम का विकास कीजिए। सभी से मिल कर रहिए। एकता अमर जीवन है। पार्थक्य मृत्यु है। सारा जगत् विश्व-वृन्दावन है। अनुभव कीजिए कि यह शरीर ईश्वर का चल-निकेतन है। जहाँ भी आप हों- घर में, कार्यालय में, समझिए कि यही ईश्वर का मन्दिर है। हर कार्य को उसकी पूजा समझिए। अनुभव कीजिए कि सारे प्राणी उसके रूप हैं। हर कर्म को योग बना डालिए। आप वेदान्त-साधक हों तो साक्षी तथा अकर्ता-भाव बनाये रखिए। यदि भक्तियोगी हों तो निमित्त-भाव रखिए। अनुभव कीजिए कि ईश्वर आपके हाथों से कर्म करता है। वह एक प्रभु ही सारे हाथों से कर्म करता है, सारे कानों से सुनता है, सारी आँखों से देखता है, आप परिवर्तित हो जायेंगे। आपको नयी दृष्टि मिलेगी। आप परम शान्ति एवं सुख का उपभोग करेंगे।

२. शिवानन्द-मनोविज्ञान-साधना-सूत्र

अभ्यास तथा वैराग्य से मन को नियन्त्रित किया जा सकता है। मन को ईश्वर पर स्थापित करने का सतत प्रयास ही अभ्यास है। विषय-पदार्थों के प्रति अनासक्ति ही वैराग्य है।

'मैं कौन हूँ' का विचार कीजिए। ॐ का मानसिक जप कीजिए। सारे विचार स्वतः ही विलीन हो जायेंगे। आप सच्चिदानन्द आत्मा में विश्राम करेंगे।

अकेले बैठिए तथा मन की वृत्तियों का निरीक्षण कीजिए। उदासीन बनिए। साक्षी बने रहिए। वृत्तियों से तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित न कीजिए। मन आपके अधीन हो जायेगा।

कामना रूपी जलावन को नष्ट कीजिए, संकल्प रूपी अग्नि बुझ जायेगी। संकल्प-नाश के अनन्तर ब्रह्म विभासित हो जायेगा।

सुख, दुःख, धर्म तथा अधर्म के प्रति मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा का अर्जन कीजिए। आप मन की शान्ति प्राप्त करेंगे।

भूत की चिन्ता न कीजिए। भविष्य की योजना न बनाइए। मन को हवाई किले न बनाने दीजिए। ठोस वर्तमान में निवास कीजिए।

उसी कार्य को कीजिए जिसे मन पसन्द नहीं करता। उस काम को न कीजिए जो मन पसन्द करता है।

अपनी कामनाओं को पूर्ण करने का प्रयत्न न कीजिए। आशा न कीजिए। किसी वस्तु की कामना न रखिए। शुभ कामनाओं के द्वारा अशुभ कामनाओं को विनष्ट कर दीजिए। अशुभ कामनाओं को भी मुमुक्षुत्व की कामना द्वारा नष्ट कर डालिए।

प्राणायाम का अभ्यास रजस् तथा तमस् को नष्ट करता है। इससे मन स्थिर होता है।

धार्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय, तप, दान तथा महात्माओं, साधुओं एवं संन्यासियों के साथ सत्संग के द्वारा अशुभ संस्कार दूर होते हैं तथा मन के निग्रह में सुगमता होती है।

किसी भी मन्त्र के जप तथा उपासना के द्वारा मन के मल नष्ट होते हैं, मन अन्तर्मुखी बनता है, वैराग्य विकसित होता है, धारणा में सहायता मिलती है तथा अन्ततः मनोनिग्रह की प्राप्ति होती है।

"कलौ केशव कीर्तनात्**"**- इस कलियुग में भगवान् के नाम का कीर्तन ही मनोनिग्रह के लिए सबसे सुगम मार्ग है।

अन्न का मन के ऊपर प्रभाव पड़ता है। सात्त्विक आहार (दूध, फल इत्यादि) मन को शान्त बनाता है। राजसिक आहार मन को उत्तेजित करता है। सात्त्विक आहार कीजिए। मिताहार कीजिए।

नयी अच्छी आदतों के द्वारा बुरी आदतों को विनष्ट कीजिए। निम्न मन को उन्नत मन के द्वारा नियन्त्रित कीजिए। आत्मभाव के साथ सतत निष्काम सेवा मन के नियन्त्रण तथा चित्त-शुद्धि के लिए लाभदायक है।

मन के साथ युद्ध मत कीजिए। धारणा तथा ध्यान के अभ्यास में नियमित रहिए। आप शान्ति, सुख, आनन्द तथा अमृतत्व प्राप्त करेंगे!

३. शिवानन्द-हठयोग-साधना-सूत्र

१. अथ अतः हठयोग की जिज्ञासा करते हैं।

२. हठयोग शरीर तथा प्राण से सम्बन्ध रखता है।

३. हठयोगी प्राणायाम के द्वारा नाड़ी-शुद्धि करता है।

४. षक्रिया के द्वारा वह शरीर को शुद्ध बनाता है।

५. वह त्राटक का अभ्यास कर दृष्टि को स्थिर बनाता है।

६. वह आसन, प्राणायाम, बन्ध तथा मुद्रा का अभ्यास करता है।

७. वह प्राण तथा अपान को मिलाता है।

८. ऐसे अभ्यासों द्वारा वह कुण्डलिनी को जगाता है।

९. तब वह उसे षड्चक्रों द्वारा सहस्रार में सदाशिव से मिलाता है।

१०. वह इन चक्रों पर धारणा करता है।

११. वह कुण्डलिनी को सहस्रार में सदाशिव से मिलाता है।

१२. वह अमृत-पान कर अमृतत्व प्राप्त कर लेता है।

१३. हठयोगी काया-सिद्धि प्राप्त करता है।

१४. जहाँ हठयोग की समाप्ति होती है, वहीं से राजयोग का समारम्भ हो जाता है।

४. शिवानन्द-कर्मयोग-साधना-सूत्र

१. अब कर्मयोग-साधना की जिज्ञासा होती है।

२. कर्मयोग की साधना हृदय को शुद्ध बनाती है।

३. यह ज्ञान का सहायक है।

४. चित्त-शुद्धि के बिना ज्ञान सम्भव नहीं है।

५. कर्मयोग की साधना प्रेम तथा करुणा का विकास करती है।

६. कर्मयोग से हृदय विशाल बनता है।

७. अहंता तथा ममता का परित्याग कीजिए।

८. यथाव्यवस्था, सहनशीलता तथा साहस का विकास कीजिए।

९. अपने आवेगों को वश में रखिए।

१०. स्वार्थ तथा बड़प्पन की भावना को नष्ट कीजिए।

११. नम्र, सुशील तथा शिष्ट बनिए।

१२. नपे-तुले शब्द बोलिए।

१३. सत्यवादी तथा सच्चा बनिए।

१४. फल की कामना न कीजिए।

१५. ईश्वर के हाथों का निमित्त बनिए।

१६. फल को ईश्वर पर अर्पित कर डालिए।

१७. शरीर, मन तथा धन को ईश्वर के प्रति अर्पित कर डालिए।

१८. समदृष्टि तथा समत्व-बुद्धि रखिए।

१९. ऐसा अनुभव कीजिए कि सभी रूप ईश्वर के ही रूप हैं।

२०. अनुभव कीजिए कि आप एकमेव ईश्वर की ही सेवा कर रहे हैं।

२१. गरीब, रोगी तथा अपने माता-पिता की सेवा कीजिए।

२२. देश की सेवा कीजिए।

५. शिवानन्द-भक्ति-साधना-सूत्र

१. अथ अतः भक्ति-साधना की जिज्ञासा होती है।

२. भक्ति-साधना वह प्रक्रिया है जिससे हम ईश्वर को प्राप्त करते हैं।

३. नवविधा भक्ति का विकास कीजिए।

४. पाँच भावनाओं का विकास कीजिए।

५. साधुओं की सेवा कीजिए।

६. अपने गुरु के प्रति निष्ठा रखिए।

७. अटूट अविचलित श्रद्धा रखिए।

८. भागवत, रामायण का स्वाध्याय कीजिए।

९. ईश्वर की लीला तथा महिमा का श्रवण कीजिए।

१०. सर्वत्र ईश्वर की सत्ता का भान कीजिए।

११. सम्पूर्ण, अशेष आत्मार्पण कीजिए।

१२. सदा ईश्वर के नाम का जप कीजिए।

१३. उसकी स्तुतियों का गान कीजिए। कीर्तन कीजिए।

१४. भक्ति-साधना का फल है ज्ञान।

१५. पराभक्ति तथा ज्ञान एक ही हैं।

६. शिवानन्द-योग-साधना-सूत्र

१. अथ अतः योग-साधना की जिज्ञासा होती है।

२. योग-साधना से ईश्वर-साक्षात्कार की प्राप्ति होती है।

३. गुरु के अधीन योग सीखिए।

४. अहिंसा, सत्य तथा ब्रह्मचर्य का अभ्यास कीजिए।

५. करुणा, नम्रता तथा धैर्य का अर्जन कीजिए।

६. सरल, सुखद तथा स्थिर आसन में बैठिए।

७. श्वास को नियन्त्रित कीजिए, प्राण को वशीभूत कीजिए।

८. मन की वृत्तियों का निग्रह कीजिए।

९. अपने कर्म-फल को ईश्वर पर अर्पित कर डालिए।

१०. धारणा, ध्यान तथा समाधि का अभ्यास कीजिए।

११. हल्का आहार, दूध तथा फल ग्रहण कीजिए।

१२. सिद्धियाँ योग में बाधक हैं। उनका परित्याग कीजिए।

१३. पहले सविकल्प समाधि का अभ्यास कीजिए।

१४. तब असम्प्रज्ञात समाधि में प्रवेश कीजिए।

७. शिवानन्द-वेदान्त-साधना-सूत्र

१. अथ अतः ब्रह्म की जिज्ञासा होती है।

२. ब्रह्म जगत् का निमित्त तथा उपादान कारण है।

३. ब्रह्म असीम, नित्य तथा अव्यय है।

४. जो सत्य वस्तु को छिपा लेती है, वह माया है।

५. जो जीव के लिए आवरण का काम करती है, वह अविद्या है।

६. नित्य-सुख की प्राप्ति तथा सारे दुःखों का नाश ही मोक्ष है।

७. ज्ञान ही मुक्ति प्रदान करता है।

८. साधन-चतुष्टय ज्ञान के लिए सहायक है।

९. श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होती है।

१०. ब्रह्माकार-वृत्ति अविद्या को दूर करती है।

११. ध्यान कीजिए : "मैं ब्रह्म हूँ" - यही अहंग्रह उपासना है।

१२. जीवन्मुक्त सदा सुखी रहता है। उसे समदृष्टि प्राप्त है।

१३. जीवन्मुक्त को प्रारब्ध भोग करना पड़ता है।

१४. उसके प्राण ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं। वह कहीं जाता नहीं।

८. शिवानन्दवाद में सम्पूर्ण साधना

व्यक्तित्व का सम्पूर्ण गठन

स्वयं भगवान् ने गीता में दो मार्गों को बतलाया है और उन दोनों मार्गों में कर्मयोग को श्रेष्ठ कहा है। कर्मयोग ज्ञानयोग से भिन्न नहीं है; क्योंकि ज्ञान कर्म का अन्तर्वर्ती है। कर्मों के संन्यास अथवा अहंकार, राग तथा कामना का त्याग करते हुए कर्मों का सम्यक् सम्पादन-ये ही दो रास्ते हैं।

कर्म तो सृष्टि का प्राण है। अव्यक्त में स्पन्दन द्वारा ही जगत् की उत्पत्ति हुई है। सृष्टि का अतिक्रमण करने पर ही कर्म का अन्त होगा। बाह्य इन्द्रियों के बलपूर्वक नियन्त्रण द्वारा मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का दम्भपूर्ण निरोध ही हो सकेगा, उनका ईश्वरत्व में रूपान्तरण नहीं होगा। इसी ज्ञान ने जनक तथा अन्य ज्ञानियों को कर्मयोग के लिए बाध्य किया।

आत्म-साक्षात्कार के लिए जीव-चैतन्य को अनन्त में विलीन होना चाहिए। अहंकार को विनष्ट करना चाहिए जो जीव को पंचकोशों से आबद्ध करता है। कैसा भी अस्त्र आप क्यों न चुन लें, लक्ष्य तो अहंकार का नाश ही है। विवेक के द्वारा ही अहंकार का पूर्ण नाश सम्भव है। यही योग का आधार है।

जब अहंकार के बन्धन टूट जाते हैं, योगी सदा निश्चल आत्मा का अनुभव करता है जो बाह्य कार्यों से अप्रभावित रहता है, जो नित्य साक्षी है, जो न कर्ता है न भोक्ता । कर्म प्रकृति के अन्तर्गत है। कर्म पुरुष या आत्मा के लिए नहीं। छह भाव-विकार गुणों के हैं, आत्मा के नहीं जो सदा समरस और एकरस रहता है।

योगी प्रखर कार्यों को करता है; परन्तु अन्तर में सदा शान्त रहता है। लोक-संग्रह के लिए भले ही वह महान् कार्य का सम्पादन करे, परन्तु वह अपनी आन्तरिक शान्ति से लेश मात्र भी विचलित नहीं होता। प्रबल कार्य भी उसके लिए बन्धन उत्पन्न नहीं करते; क्योंकि उसने संस्कार-बीज को जला डाला है। अहंकार के नष्ट हो जाने पर कर्मों के फल, जो संसार के बन्धन हैं, उसके पास नहीं आते।

इस कर्म-ज्ञान-समन्वय में भक्ति भी निहित है। मनुष्य के गठन में भावना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भावना का स्थान हृदय है। चेतना का त्वरित विकास भावना पर अवलम्बित है। गीता के अनुसार उन्नति के लिए अपरा तथा परा-दोनों प्रकार की भक्ति अनिवार्य है। अपरा भक्ति से परा भक्ति की प्राप्ति होती है। परा भक्ति और ज्ञान एक ही हैं। सच्चा भक्त ईश्वर को अपने हृदय में अवस्थित देखता है। जब हृदय असीमता के विकास को प्राप्त करता है, अहंकार का आवरण धीरे-धीरे पतला पड़ता जाता है तथा अन्ततः विलुप्त ही हो जाता है। लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

इस समन्वय से मनुष्य का पूर्ण व्यक्तित्व सर्वांगीण विकास को प्राप्त करता है। उसकी दैवी प्रकृति के विकास में जरा भी त्रुटि नहीं रह पाती। वह अहंकार रूपी भयंकर शेर का शिकार नहीं बन पाता; क्योंकि उसका कोई भी भाग शिकार के अनुकूल भेद्य नहीं रह जाता। विशाल चैतन्य के लिए सांसारिकता का स्थान नहीं रह पाता।

ध्यानयोग के अभ्यास को भी छोड़ा नहीं गया है। योगी प्रातः-सायं अपने लिए किले का निर्माण करता है-बाह्य तथा आन्तर शत्रुओं से रक्षा पाने के लिए। ध्यान के अभ्यास द्वारा ही मनुष्य दिन-भर ज्ञान की भावना बनाये रखता है।

यही समन्वययोग है।

सर्वांगीण विकास

मनुष्य सोचता, अनुभव करता तथा इच्छा करता है। उसे हृदय, बुद्धि तथा हाथ का विकास करना चाहिए। तीन योगों से तीन दोष दूर होते हैं। कर्मयोग से मल, भक्तियोग से विक्षेप तथा ज्ञानयोग से आवरण दूर होते हैं। किसी एक योग को आधार बना लीजिए। अन्य योगों का भी समन्वय कीजिए। यही समन्वययोग है।

मोक्षप्रिय कहते हैं:

हे गुरुदेव ! आप प्रायः समन्वययोग की बात करते हैं। आप इस बात पर बहुत जोर देते हैं। आप इसके बड़े हिमायती हैं। इस योग के सम्बन्ध में उपदेश दीजिए।

स्वामी शिवानन्द उत्तर देते हैं**:**

सर्वसाधारण के लिए समन्वययोग अनुकूल है। यह अनोखा योग है।

मनुष्य विचारता है, अनुभव करता है, इच्छा करता है। वह तीनों का समन्वय है।

वह त्रिचक्र रथ है। उसमें प्रचुर भाव तथा आवेग हैं। वह तर्क एवं विचार करता है। वह संकल्प एवं इच्छा करता है। उसे हृदय, बुद्धि तथा हाथ का विकास करना ही चाहिए। तभी वह पूर्णता को प्राप्त कर सकता है। बहुत से साधकों में असन्तुलित विकास होता है। उनमें सम्पूर्ण विकास नहीं रहता।

ये तीनों पहिए स्वस्थ होने चाहिए, तभी रथ सुगमतापूर्वक चल सकेगा।

मन के तीन दोष हैं: मल, विक्षेप तथा आवरण ।

मल को निष्काम कर्मयोग से दूर किया जा सकता है। विक्षेप को उपासना अथवा भक्ति से तथा आवरण को वेदान्त-ग्रन्थों के स्वाध्याय, विचार तथा आत्म-साक्षात्कार से दूर करते हैं।

अतः हर व्यक्ति को एक योग को आधार बना लेना चाहिए। उसे निष्काम कर्मयोग, हठयोग, राजयोग, भक्तियोग इत्यादि का समन्वय करना चाहिए। यही समन्वययोग है।

हठयोग का अल्प अभ्यास आपको सुन्दर स्वास्थ्य देगा। राजयोग से मन स्थिर रहेगा। उपासना तथा कर्म आपके हृदय को शुद्ध बनायेंगे तथा आप वेदान्त के लिए योग्य बन जायेंगे। संकीर्तन से आपका मन विश्राम प्राप्त करेगा तथा आपको प्रेरणा मिलेगी।

ऐसा योगी सर्वांगीण विकास को प्राप्त करता है। समन्वययोग से आप शीघ्र ही ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त कर सकते हैं। उपनिषद्, गीता तथा अन्य ग्रन्थ इस योग की प्रशंसा करते हैं। अतः हे मोक्षप्रिय! इस समन्वययोग का अभ्यास कीजिए और शीघ्र आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कीजिए।

अध्याय ८ :सर्व-साधना-संग्रह

१. चार मुख्य साधनाओं के त्रिक्

कर्मयोग

बढ़िए	विकसित बनिए	त्याग कीजिए
सेवा कीजिए	दान दीजिए	शुद्ध बनिए

भक्तियोग

प्रेम कीजिए	कीर्तन कीजिए	आत्मार्पण कीजिए
स्मरण कीजिए	रुदन कीजिए	पूजा कीजिए
		(राम राम राम)

राजयोग

दमन कीजिए	वश में लाइए	निरोध कीजिए

ज्ञानयोग

श्रवण कीजिए	मनन कीजिए	निदिध्यासन कीजिए
विचार कीजिए	अनुसन्धान कीजिए	चिन्तन कीजिए
निश्चय कीजिए	जानिए	भावना कीजिए
खोजिए	समझिए	साक्षात्कार कीजिए
		(ॐ ॐ ॐ)

२. स्वर-साधना

विवरण

मनुष्य के शरीर में कुल ७२,००० नाड़ियाँ हैं जिनसे प्राण का संचरण होता है। उनमें चौबीस नाड़ियाँ मुख्य हैं। इन चौबीस में भी दश मुख्य हैं तथा उन दश में भी तीन मुख्य हैं। वे तीन नाडियाँ हैं: (१) इड़ा या इंगला या चन्द्र, (२) पिंगला या सूर्य, तथा (३) सुषुम्ना।

एक दिन तथा एक रात में मनुष्य २१,६०० बार श्वास लेता तथा छोड़ता है। दाहिनी नासिका से श्वास चलती हो, तो उस समय पिंगला नाड़ी या सूर्य नाड़ी काम कर रही है। जब बायीं नासिका से श्वास भीतर आती तथा बाहर जाती तो चन्द्र अथवा इड़ा नाड़ी काम कर रही है।

पृथ्वी-तत्त्व का रंग पीला है। जल-तत्त्व का रंग उजला है। अग्नि-तत्त्व का रंग लाल है। वायु-तत्त्व का रंग हरा है। आकाश-तत्त्व का रंग काला है।

प्रातः यदि सूर्य नाड़ी काम कर रही हो, तो सबसे पहले दायें पैर को जमीन पर रख कर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर चलना लाभदायक है। प्रातः बिछावन से उठते समय नाड़ी के अनुसार पैर को जमीन पर रखना लाभदायक है। चन्द्र नाड़ी काम कर रही हो, तो बायें पैर को पहले जमीन पर रखते हुए दक्षिण या पश्चिम दिशा की ओर तीन पग चलना चाहिए।

यदि कोई मनुष्य प्रश्न पूछे और उस समय सूर्य नाड़ी काम कर रही हो तथा प्रश्नकर्ता के नीचे से पीछे या दायीं ओर खड़ा हो कर प्रश्न कर रहा हो, तो सफलता मिलेगी। यदि चन्द्र नाड़ी काम कर रही हो और प्रश्नकर्ता ऊपर, सामने या बायीं ओर खड़ा हो, तो सफलता मिलेगी।

प्रातः उठ कर सबेरे दाहिनी हथेली देखना शुभ है। नाड़ी के अनुसार हथेली से चेहरे को छूना बड़ा ही लाभदायक है। यदि सूर्य नाड़ी काम कर रही हो, तो दायीं हथेली को चेहरे पर घुमाइए।

रविवार, मंगलवार तथा शनिवार- ये तीन दिन सूर्य नाड़ी के लिए हैं। चन्द्र नाड़ी के लिए सोमवार, बुधवार, बृहस्पतिवार तथा शुक्रवार हैं। इन दिनों जब उनके अनुकूल नाड़ी चल रही हो, तो कोई भी प्रश्न पूछे जाने पर सफल रहेंगे। सुषुम्ना के समय पूछने प्रश्न पर सफलता नहीं मिलती।

श्वास की साधारणतः लम्बायी १२ अंगुल, खाते समय २० अंगुल, टहलते समय २४ अंगुल, सोते समय ३० अंगुल, मैथुन के समय ३६ अंगुल तथा व्यायाम के समय और भी अधिक रहती है।

ढाई घटिका के अन्तर पर अथवा हर घण्टे के बाद इड़ा तथा पिंगला में परिवर्तन होता रहता है। सुषुम्ना के समय ईश्वर का ध्यान कीजिए।

किसी भी महीने के शुक्ल पक्ष में पहले तीन दिनों तक चन्द्र नाडी का चलना लाभदायक है। चतुर्थी, पंचमी तथा षष्ठी के दिन सूर्य नाड़ी शुभ है। सप्तमी, अष्टमी तया नवमी को चन्द्र नाड़ी फलप्रद है। दशमी, एकादशी तथा द्वादशी को सूर्य नाड़ी तथा त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं पूर्णिमा को चन्द्र नाड़ी फलप्रद है। कृष्ण पक्ष में प्रथम तीन दिन सूर्य नाड़ी, दूसरे तीन दिन चन्द्र नाड़ी लाभकर है। इसी भाँति आगे भी समझें।

इड़ा के समय पवित्र कार्यों को कीजिए। सूर्य नाड़ी के समय भोजन तथा मैथुन कीजिए। इड़ा नाड़ी सभी अंगों में अमृत का संचार करती है।

चन्द्र नाड़ी के समय लम्बी यात्रा या तीर्थयात्रा के लिए निकलिए, धार्मिक त्यौहार मनाइए; कुएँ-तालाब खुदवाइए, मन्दिर-मूर्ति का उद्घाटन कीजिए, दवा लीजिए, विवाहोत्सव कीजिए, नये गृह में जाइए, कृषि कीजिए, मित्र तथा मालिक से मिलिए, गुरु की पूजा कीजिए तथा अध्ययन आरम्भ कीजिए।

सूर्य नाड़ी के समय व्यायाम कीजिए। किसी गृह या नगर में प्रवेश करते समय तथा बाहर जाते समय नाड़ी के अनुकूल पैर पहले रख कर चलिए।

षण्मुखी या योनि मुद्रा का अभ्यास कीजिए-दोनों कानों को दोनों अँगूठों से, दोनों नासिकाओं को मध्यमा उँगलियों से, मुख को कनिष्ठा तथा अनामिका उँगलियों से तथा नेत्रों को तर्जनी उँगलियों से बन्द कर लीजिए। हलका कुम्भक कीजिए। दोनों भौंहों के बीच मन को एकाग्र कीजिए।

यदि वृत्त पीला देखने में आये तो पृथ्वी तत्त्व है, उजला तो जल-तत्त्व है, लाल तो अग्नि-तत्त्व है, हरा तो वायु तत्त्व है, काला तो आकाश-तत्त्व है।

सूर्य नाड़ी के लिए ३, ५, ७, ९ विषम संख्याएँ हैं। चन्द्र नाड़ी के लिए २, ४, ६, ८ सम संख्याएँ हैं। सूर्य नाड़ी के समय प्रश्न पूछे जाने पर यदि प्रश्न के अक्षर विषम हों, तो उससे अच्छे फल की प्राप्ति होगी।

यदि पुत्र-पुत्री के जन्म-विषयक प्रश्न पूछा जाये तो चन्द्र नाड़ी के समय पूछे जाने पर लड़की, सूर्य नाड़ी में लड़का तथा सुषुम्ना के समय नपुंसक की प्राप्ति होगी। स्त्री के मासिक शौच के अनन्तर पाँचवें दिन यदि पति की सूर्य नाड़ी तथा पत्नी की चन्द्र नाड़ी चल रही हो तो उस समय उनका प्रसंग पुत्र उत्पन्न करेगा। यदि नाड़ी वाले पार्श्व में खड़े हो कर प्रश्न पूछा जाये, तो पुत्र की प्राप्ति होगी। खाली नासिका वाले पार्श्व से पूछने पर पुत्री की प्राप्ति होगी तथा सुषुम्ना के समय यमज की।

विधि

श्वास-प्रश्वास की गति को जानने तथा स्वर-साधना के ज्ञान एवं अभ्यास से भूत, वर्तमान तथा भविष्य-तीनों कालों का ज्ञान हो जाता है। यह विज्ञान रहस्यों का रहस्य है। यह सत्य अथवा ब्रह्म का प्रकाशक है तथा ज्ञानियों के लिए शिरोमणि है। यदि साधक में श्रद्धा, संलग्नता तथा अवधान हो, तो यह ज्ञान आसानी से समझा जा सकता है। नास्तिकों में यह आश्चर्य लाता है। स्वर में वेद तथा शास्त्र निहित हैं। स्वर परब्रह्म का प्रतिबिम्ब है। स्वर-ज्ञान से अधिक कोई गुप्त ज्ञान, स्वर-ज्ञान से अधिक उपयोगी कोई धन न तो सुनने में आया है और न देखने में ही। स्वर-शक्ति के द्वारा मित्र पुनः संगठित हो जाते हैं।

शरीर में नाड़ियाँ हैं जिनके रूप तथा विस्तार विविध हैं। ज्ञानार्जन के लिए साधकों को उनका परिज्ञान रखना चाहिए। नाभि-स्थित कन्द से निकल कर ७२,००० नाड़ियाँ शरीर में फैलती हैं। कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार चक्र में सर्प की भाँति सोयी हुई है। यहाँ से दश नाड़ियाँ ऊपर को तथा दश नाड़ियाँ नीचे को जाती हैं। इनमें तीन नाड़ी-इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना मुख्य है।

इड़ा मेरुदण्ड के बायें भाग में, पिंगला दायें भाग में तथा सुषुम्ना मध्य भाग में है। प्राण इन नाड़ियों से हो कर शरीर के विभिन्न भागों में संचरित होते हैं। इड़ा बायीं नासिका से, पिंगला दाहिनी नासिका से तथा सुषुम्ना दोनों नासिकाओं से चलती है। इड़ा चन्द्र नाड़ी है। पिंगला सूर्य नाड़ी है। जीव सदा सोऽहम् का जप करता रहता है। सावधानीपूर्वक श्वास का निरीक्षण कीजिए। श्वास के समय 'सो' की ध्वनि होती है तथा प्रश्वास के समय 'हम्' की। इड़ा तथा पिंगला की गति को बड़ी सावधानी से देखिए। प्राण तथा मन को शान्त रखिए। जो लोग सूर्य तथा चन्द्र को समुचित क्रम में रखते हैं, उनके लिए भूत तथा भविष्य हस्तामलकवत् बन जाते हैं।

इड़ा में श्वास अमृत के रूप में है। यह जगत् का पोषक है। दक्षिण में जगत् की उत्पत्ति होती है। मध्य में सुषुम्ना चलती है। चन्द्र नाड़ी के समय शान्तिपूर्ण कार्य कीजिए। सूर्य नाड़ी के समय कठोर कार्यों को कीजिए। सुषुम्ना नाड़ी के समय सिद्धि, योग तथा मोक्ष प्राप्ति के लिए साधना कीजिए।

चन्द्र तथा सूर्य के बीच पाँच घटिका (दो घण्टे) का अन्तर पड़ता है। दिन की साठ घटिका तक वे क्रमानुमार चलते रहते हैं। एक-एक घटिका के क्रम से पाँच तत्त्व चलते हैं। प्रतिपदा के दिन से शुरू होते हैं। क्रम बदल देने से परिणाम में भी अन्तर होता है। शुक्ल पक्ष में चन्द्र शक्तिमान् है। कृष्ण पक्ष में सूर्य शक्तिमान् है। यदि श्वास सूर्योदय के समय इड़ा से चलती है और दिन-भर इसी तरह चलती रहती है तथा सूर्यास्त के समय पिंगला से चलती है, तो मनुष्य बहुत लाभ प्राप्त करता है।

सूर्योदय से सूर्यास्त तक सारे दिन श्वास को इड़ा से चलने दीजिए तथा सूर्यास्त मे सूर्योदय तक सारी रात पिंगला से। यही स्वर-साधना का रहस्य है।

जो ऐसा अभ्यास करता है, वह महान् योगी है। इसका अभ्यास कीजिए। अपने आलस्य को दूर कीजिए। व्यर्थ बातों का त्याग कीजिए। कुछ तो लाभदायक कार्य कीजिए। कुछ तो व्यावहारिक कार्य कीजिए। गलत स्वर के द्वारा बहुत-सी बीमारियों उत्पन्न होती हैं। उपर्युक्त स्वर-साधना के द्वारा स्वास्थ्य एवं दीर्घायु की प्राप्ति होती है। इससे आप निस्सन्देह आश्चर्यजनक लाभ प्राप्त करेंगे।

स्वर का परिवर्तन कैसे हो ?

निम्नांकित अभ्यास दिये जा रहे हैं जिनसे इड़ा से पिंगला में स्वर को बदला जा सकता है। अपने अनुकूल किसी भी विधि को चुन लीजिए। पिंगला से इड़ा में बदलने के लिए उसी अभ्यास को दूसरी तरफ से कीजिए।

(१) बायीं नासिका को महीन वस्त्र अथवा रुई से कुछ मिनट के लिए बन्द कर दीजिए।

(२) दश मिनट के लिए बायीं करवट लेट जाइए।

(३) सीधे बैठिए। बायें घुटने को ऊपर उठाइए। बायीं एड़ी को बायें नितम्ब के निकट रखिए। बायीं बगल को घुटने से दबाइए। कुछ ही क्षण में पिंगला चलने लगेगी।

(४) दोनों एड़ियों को दाहिने नितम्ब की ओर, दाहिनी एड़ी को बायीं एड़ी के ऊपर रखिए। बायीं हथेली को एक फुट की दूरी पर जमीन पर रखिए। आपके शरीर का भार बायें हाथ पर पड़ना चाहिए। सिर को भी बायीं ओर मोड़ लीजिए। दाहिने हाथ से बायें हाथ की कुहनी पकड़ लीजिए। यह प्रभावशाली विधि है।

(५) नौली क्रिया के द्वारा भी स्वर-परिवर्तन किया जा सकता है।

(६) योग-दण्ड (करीब दो फीट लम्बा) के U (यू) आकार के सिरे को बार्थी काँख के नीचे रखिए तथा उस पर भार दे कर बार्थी ओर झुकिए।

(७) खेचरी मुद्रा के द्वारा तत्क्षण ही परिवर्तन हो जाता है। योगी जिह्वा को मोड़ कर जिह्वा के अग्र भाग से नासिका छिद्र को बन्द कर देता है।सर्व-साधना-संग्रह

३. लययोग-साधना

साधना की विधि

लययोग में धारणा परमावश्यक है। किसी आन्तरिक चक्र अथवा बाह्य वस्तु अथवा अनाहत नाद अथवा किसी सुक्ष्म विचार पर मन को एकाग्र करने तथा अन्य सारे विषयों एवं जगत् से मन को मोड लेने से धारणा गम्भीर हो जाती है।

पद्म अथवा सिद्ध आसन में बैठ जाइए। अँगूठों से कान को बन्द कर योनि मुद्रा का अभ्यास कीजिए। दाहिने कान से आन्तरिक ध्वनि का श्रवण कीजिए। जिस ध्वनि को आप सुनेगे, वह आपको अन्य सारी ध्वनियों के प्रति बहरा बना देगी। सारी बाधाओं पर विजय पा कर आप लययोग के अभ्यास से पन्दरहवें दिन तुरीयावस्था को प्राप्त करेंगे। अभ्यास के प्रारम्भ में आप बहुत जोरों की आवाज सुनेंगे। वह धीरे-धीरे सुरीली होती जायेगी तथा अभ्यास के अनन्तर सूक्ष्म होती जायेगी। आपको अधिकाधिक सूक्ष्मतर ध्वनि का अनुसन्धान करना होगा। आप स्थूल ध्वनि से सूक्ष्म ध्वनि में और सूक्ष्म ध्वनि से स्थूल ध्वनि में अपनी धारणा बदल सकते हैं; परन्तु अपने मन को किसी अन्य वस्तु की ओर न भागने दीजिए।

सर्वप्रथम मन किसी भी एक नाद पर एकाग्र हो जाता है तथा धीरे-धीरे उसी में विलीन हो जाता है। बाह्य ध्वनियों से विरत हो कर मन उस एक नाद से उसी प्रकार तन्मय - हो जाता है जैसे दूध और पानी, तथा शीघ्र ही वह चिदाकाश में विलीन होने लगता है। सभी विषयों से उपरत हो कर अपने आवेगों का दमन कर सतत अभ्यास के द्वारा आपको नादानुसन्धान करना होगा, जो मनोनाश कर डालता है। सभी विचारों का परित्याग कर, सभी कर्मों से उपरत हो कर आपको सदा नाद पर ध्यान का अभ्यास करना चाहिए, तब आपका चित्त उसमें विलीन हो जायेगा। जिस प्रकार मधुमक्खी मधु-पान करते समय सुगन्ध की परवाह नहीं करती, उसी तरह चित्त भी सतत नाद में निरत रह कर विषय-पदार्थों की कामना नहीं करता; क्योंकि वह नाद की मधुर गन्ध में ही बँधा रहता है और उसने अपनी चंचलता का परित्याग कर डाला है। चित्त-रूपी सर्प नाद का श्रवण करते हुए अन्ततः नाद में ही पूर्णतः विलीन हो जाता है। चित्त अन्य सभी पदार्थों के प्रति अचेतन हो कर नाद पर ही रमा रहता है। नाद तेज अंकुश का काम करता है, जिससे - चित्त-रूपी मदमत्त गज वश में आ जाता है। यह चित्त-रूपी हिरण को फँसाने का काम करता है। यह चित्त-रूपी समुद्र-तरंगों के लिए किनारे का काम करता है।
प्रणव से उद्भुत नाद प्रकाशमय होता है। मन उसमें विलीन हो जाता है। यही विष्ण का परम पद है। जब तक नाद है, मन भी रहता है; परन्तु नाद की परिसमाप्ति हो जाने पर त्रीयावस्था की प्राप्ति होती है। वह नाद ब्रह्म में ही विलीन हो जाता है; तथा निःशब्द अवस्था ही परम पद है। नाद पर सतत ध्यान के द्वारा यह प्राणयुक्त मन, जिसमें कर्माशय है, ब्रह्म में ही विलीन हो जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं। सभी अवस्थाओं तथा वृत्तियों से मुक्त हो जाने पर शरीर मृतवत् अथवा काष्ठवत् - शीतोष्ण, सुख-दुःख से विमुक्त प्रतीत होगा। जब आध्यात्मिक दृष्टि निर्विषय अवस्था में स्थिर हो जाती है, जब प्राण अनायास ही स्थिर हो जाते हैं तथा जब चित्त बिना किसी आलम्बन के ही स्थिर हो जाता है, तब आप ब्रह्म बन जाते हैं। जब मन विनष्ट हो जाता है, जब पाप तथा पुण्य विदग्ध हो जाते हैं, आप विशुद्ध, नित्य, निष्कलंक ब्रह्म के रूप में विभासित हो उठते हैं। आप अब मुक्त हैं।

लययोग-साधना में अनुभव

पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में बैठ जाइए। कानों को अँगूठों से बन्द कर लीजिए। यह षण्मुखी मुद्रा या वैष्णवी मुद्रा या योनि मुद्रा है। ध्यानपूर्वक अनाहत ध्वनि सुनिए। समय-समय पर आप बायें कान से भी ध्वनि सुन सकते हैं। केवल दाहिने कान से ही सुनने का अभ्यास कीजिए। आप दाहिने कान से ही स्पष्टतः कैसे सुन पाते हैं? क्योंकि सूर्य नाड़ी उधर है। पिंगला नाक के दाहिने भाग में है। अनाहत ध्वनि को ओंकार ध्वनि कहते हैं। यह प्राण के स्पन्दन के कारण है।

श्वास के साथ सोऽहम् (अजपाजप) का जप कीजिए। एक या दो महीने के लिए प्राणायाम का अभ्यास कीजिए। आप स्पष्टतः दश अनाहत ध्वनि सुन सकते हैं तथा आत्म-संगीत का उपभोग कर सकते हैं। सारे जागतिक विचारों का आप परित्याग कर सकते हैं। मन की सारी विक्षिप्त किरणों को समेट कर अनाहत ध्वनि पर लगाइए। यम अथवा सदाचार का अभ्यास कीजिए।

दश प्रकार के नाद अथवा अनाहत सुनायी पड़ते हैं। पहला है चिनी, दूसरा है चिनी-चिनी, तीसरा है घण्टा ध्वनि के समान, चौथा है शंख-घोष के समान, पाँचवाँ है तन्त्री के समान, छठा है ताल के समान, सातवाँ है बाँसुरी के समान, आठवाँ है भेरी के समान, नौवाँ है मृदंग के समान और दशवाँ घनघोष के समान है।

नाद की निश्रयिणी की ऊपरी सीढ़ी पर पैर रखने से पहले आपको अपनी अन्तरात्मा की वाणी को सात प्रकार से सुनना होगा। पहली है बुलबुल की सुरीली ध्वनि-उस समय की जिस समय वह अपने जोड़े से बिछुड़ती है। दूसरी है ध्वनियों के रजत-तालों की ध्वनि, जो टिमटिमाते तारों को जगमगाती है। तीसरी है बन्दी सामुद्रिक वैताल के फरियाद के संगीत के समान और इसके बाद वीणा की टंकार। पाँचवीं ध्वनि बाँसुरी की है जो आपके श्रोत्रों को गूँजा डालती है। बाद में यह मृदंग की ध्वनि में परिणत होती है। अन्तिम ध्वनि नभ-गर्जन के सदृश होती है। यह सातवीं ध्वनि अन्य सारी ध्वनियों को आत्मसात् कर लेती है। वे विलीन हो जाती हैं और फिर सुनायी नहीं पड़ीं।

सातवीं में आप गुप्त वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करेंगे। इसके बाद की अवस्थाओं में आप परावाक का श्रवण करेंगे तथा दिव्य चक्षु का विकास करेंगे। अन्ततः आप परब्रह्म को प्राप्त कर लेंगे।

ध्वनि मन को फन्दे में डालती है। मन ध्वनि के साथ उसी प्रकार एक हो जाता है जिस प्रकार दूध पानी से मिल कर। यह परब्रह्म में विलीन हो जाती है।

हृदय की शुद्धि के बिना आप लययोग में जरा भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। आपको सर्वप्रथम निष्काम कर्मयोग, कीर्तन, जप, ध्यान, दिव्य गुणों का अर्जन तथा दुर्गुणों के त्याग के द्वारा अपने हृदय को शुद्ध बना लेना होगा। आपको पहले साधन-चतुष्टय से सम्पन्न बनना चाहिए और फिर लययोग का अभ्यास करना चाहिए, तभी आप नित्य-सुख एवं अमृतत्व के धाम को प्राप्त कर सकते हैं।

४. प्रणव-साधना

भवसागर में डूबते हुए मनुष्यों के लिए प्रणव नौका के समान है। बहुतों ने इस नौका के सहारे समुद्र का सन्तरण किया है। आप भी यदि ॐ पर सतत ध्यान करें, तो संसार का सन्तरण कर सकते हैं।

अमर सर्वव्यापक परमात्मा का एकमेव प्रतीक ॐ ही है। सभी विषय-विचारों का परित्याग कर ॐ का चिन्तन कीजिए। सारे सांसारिक विचारों को बन्द कर डालिए। वे बारम्बार आयेंगे। परन्तु आपको शुद्ध आत्मा का बारम्बार विचार करना होगा। ॐ के साथ शुद्धता, पूर्णता, मुक्ति, ज्ञान, अमृतत्व, नित्यता, असीमता आदि विचारों को संयोजित कीजिए। ॐ का मानसिक जप कीजिए।

सदा निम्नांकित विचारों पर ध्यान कीजिए तथा उनका मानसिक जप कीजिए :

मैं हूँ ज्योति का सर्वव्यापक सागर ॐ ॐ ॐ

मैं हूँ ज्योतियों की ज्योति	ॐ ॐ ॐ
मैं हूँ सूर्यों का सूर्य	ॐ ॐ ॐ
मैं हूँ असीम	ॐ ॐ ॐ
मैं हूँ शुद्ध चैतन्य	ॐ ॐ ॐ
मैं हूँ सर्वव्यापक असीम ज्योति	ॐ ॐ ॐ
मैं हूँ व्यापक परिपूर्ण	ॐ ॐ ॐ
मैं हूँ ज्योतिर्मय ब्रह्म	ॐ ॐ ॐ
मैं हूँ सर्वव्यापक, सर्वज्ञ	ॐ ॐ ॐ
मैं हूँ सुखमय, शुद्ध स्वरूप	ॐ ॐ ॐ
मैं हूँ पूर्ण महिमा, पूर्ण आनन्द	ॐ ॐ ॐ
मैं हूँ पूर्ण स्वास्थ्य, पूर्ण शान्ति	ॐ ॐ ॐ

वीर साधक ! अद्वैत की चरम शिक्षा को सदा याद रखिए : 'तत्त्वमसि'तू वही है-ऐसा अनुभव कीजिए, ऐसा पहचानिए। सर्वसुखमय आत्मा के साथ अपना तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित कीजिए। अभी इसी क्षण कीजिए।

ॐ का जप ब्रह्म के साथ तादात्म्य सम्बन्ध रख कर करना चाहिए। "तज्जपः तदर्थ भावनम् ।" सुखमय आत्मा के साथ तादात्म्य सम्बन्ध बनाइए। जब आप ॐ का जप या ध्यान या विचार करें, तो पंचकोशों का निराकरण कर आत्मा के साथ तादात्म्यता स्थापित कीजिए।

ॐ को सच्चिदानन्द ब्रह्म अथवा आत्मा का प्रतीक जानिए। यही अर्थ है। ध्यान के समय भावना कीजिए कि आप शुद्ध स्वरूप, ज्योति स्वरूप तथा सर्वव्यापक सत्ता है। नित्य आत्मा पर ध्यान कीजिए। विचार कीजिए कि आप मन अथवा शरीर से पूर्णतः पृथक् हैं। अनुभव कीजिए कि मैं सच्चिदानन्द आत्मा हूँ, मैं सर्वव्यापक चैतन्य हूँ। यह वेदान्तिक ध्यान है।

भावना तथा अर्थ के साथ ॐ पर ध्यान करने से ब्रह्मज्ञान का साक्षात्कार होता है। यही ज्ञानयोग है। 'अ', 'उ', 'म्' तथा अर्धमात्रा के अतिरिक्त ॐ के चार और अंग हैं: बिन्दु, बीज, शक्ति तथा शान्ति। ध्यान में भावना के द्वारा इन चारों का अनुभव करना चाहिए। ॐ के लय-चिन्तन से अद्वैत निष्ठा या निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति होती है।

(क) विश्व विराट् में लय होता है। विराट् 'अ' में लीन होता है।

(ख) तैजस् हिरण्यगर्भ में लय होता है तथा हिरण्यगर्भ 'उ' में।

(ग) प्रज्ञा ईश्वर में लय होती है तथा ईश्वर 'म' में।

तुरीय दोनों में समान है जीव तथा ईश्वर । 'अ' मात्रा कूटस्थ में लय होती है: "जीव ब्रह्मैक्यम्" जीव तथा ब्रह्म की एकता। इस तरह आपको प्रणव-साधना के द्वारा के साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करना पडेगा।

आप सभी अद्वैत ब्रह्म में निवास कर अमृत रस का पान करें। जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्थाओं के अनुभवों का विश्लेषण कर आप सभी तुरीय को प्राप्त करें। आप ओंकार अथवा प्रणव तथा 'अ' मात्रा का समुचित ज्ञान रखें। 'अ' 'उ' तथा 'म' अतिक्रमण कर आप निःशब्द ॐ में प्रवेश करें। आप सभी ॐ पर ध्यान करें तथा काम सत्य लक्ष्य को प्राप्त करें। यह ॐ आपका पथ-प्रदर्शन करे! यह ॐ आपका केन्द्र लक्ष्य तथा आदर्श हो !

५. सोऽहम्-साधना

सोऽहम् का अर्थ है मैं वही है या मैं ब्रह्म है। सः का अर्थ है - वह। अहम् का अर्थ है मैं। यही सबसे बड़ा मन्त्र है। यह अभेद बोध वाक्य है जिसका अर्थ है जीव तथा ब्रह्म की एकता।

सोऽहम वास्तव में ॐ ही है। 'स' तथा 'ह' व्यंजनों का निषेध कीजिए। आप ॐ प्राप्त करेंगे। सोऽहम ॐ का ही रूपान्तरण है। सोऽहम पर ध्यान का अर्थ है ॐ पर ध्यान करना। सोऽहम-साधना करने से पहले नेति-नेति का अभ्यास करना चाहिए। शरीर तथा अन्य कोशों का आपको निषेध कर लेना चाहिए- "नाहम इदं शरीरम्" "अहमेतत् न"। मैं शरीर, मन अथवा प्राण नहीं हूँ। मैं वही हूँ। वह मैं हूँ। सोऽहम् सोऽहम्।

जीव चौबीस घण्टे के अन्दर २१,६०० बार इस मन्त्र का अनजाने ही जप करता रहता है। सुषुप्ति में भी सोऽहम् का जप जारी रहता है। श्वास का सावधानीपूर्वक निरीक्षण कीजिए और आप इसे जान जायेंगे। श्वास लेते समय 'सो' की ध्वनि होती है तथा श्वास छोड़ते समय 'हम्' की। यह अजपा मन्त्र है।

इस मन्त्र का मानसिक जप कीजिए। पूरे हृदय से आप ऐसा अनुभव कीजिए कि आप सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सुखपूर्ण ब्रह्म अथवा आत्मा हैं। यन्त्रवत् जप आपको अधिक सहायता नहीं दे सकता। अनुभूति के द्वारा ही अधिकाधिक लाभ की प्राप्ति हो सकती है। यदि बुद्धि यह भावना करने का प्रयास करे, 'मैं ब्रह्म हूँ, मैं सर्वशक्तिमान् हूँ, परन्तु चित्त यह अनुभव करे. 'मैं अमुक व्यक्ति हैं, मैं दर्शल हैं. मैं असहाय हैं तो अन्धविश्वास एवं भय को नष्ट करना पड़ेगा। आपको अविद्या को विनष्ट करना होगा। मर साक्षात्कार सम्भव नहीं है। आपको सारे गलत संस्कार, झूठी कल्पनाएँ दुर्वलताएँ तथा ने ही मनुष्य को देहाध्यास के द्वारा इस बन्धन में डाल दिया है। अविद्या के आवरण का भेदन कीजिए। पंचकोशों को विदीर्ण कर डालिए। अविद्या के परदे को उठाइए। सोऽहम् साधना की शक्ति के द्वारा अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में स्थित हो जाइए। निश्चय कीजिए, "अहं ब्रह्मास्मि ।" घोषणा कीजिए: "तत्त्वमसि ।"

गाइए:

मैं शरीर और मन से अतीत हूँ, मैं हूँ अमरात्मा सोऽहम्
मैं हूँ तीनों अवस्था का साक्षी, परम अस्तित्व सोऽहम्
मैं हूँ तीनों अवस्था का साक्षी, परम चैतन्य सोऽहम्
मैं हूँ तीनों अवस्था का साक्षी, परम आनन्द सोऽहम्
सोऽहम् सोऽहम् शिवोऽहम् सोऽहम्,

सोऽहम् सोऽहम् शिवोऽहम् सोऽहम्
यह शरीर नहीं हूँ मैं, न शरीर है यह मेरा
यह प्राण नहीं हूँ मैं, न यह प्राण है मेरा
यह मन नहीं हूँ मैं, न यह मन है मेरा
यह बुद्धि नहीं हूँ मैं, न यह बुद्धि है मेरी
मैं हूँ वही मैं हूँ, मैं हूँ वहीं मैं हूँ
मैं हूँ वही, मैं हूँ वही, मैं हूँ वही

सोऽहम् सोऽहम् शिवोऽहम् सोऽहम्
सोऽहम् सोऽहम् शिवोऽहम् सोऽहम्

मैं हूँ सच्चिदानन्द-स्वरूप, मैं हूँ नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव
मैं हूँ स्वयं प्रकाश, मैं हूँ शान्ति-स्वरूप
मैं हूँ अकर्ता अभोक्ता, मैं हूँ असंग साक्षी
प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि
तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, सत्यं ज्ञानं, अनन्तं ब्रह्म
एकमेवाद्वितीयम्, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, नेह नानास्ति किंचन
ॐॐॐॐ ॐॐॐॐ

शरीर-भावना का निराकरण कर ब्रह्म भावना के द्वारा अपने स्वरूप का साक्षात्कार कीजिए। सदा सोऽहम् का मानसिक जप कीजिए। सच्चिदानन्द अद्वैतव्रता ब्रह्म का ध्यान कीजिए। बैठते हुए, खड़े होते हुए, खाते हुए, बोलते हुए मौन रूप से सोऽहम् का उच्चारण कीजिए तथा श्वास का निरीक्षण कीजिए। धारणा के लिए यह सुगम विधि है। सोऽहम् -भाव आपका स्वभाव बन जाना चाहिए।

सोऽहम् साधना आध्यात्मिक मार्ग में आगे बढ़े हुए साधकों के लिए ही उपयुक्त है- खास कर उन लोगों के लिए जो अद्वैत वेदान्त के साधक हैं। फिर भी मनुष्य को प्रारम्भिक अभ्यासों से गुजरना होगा ही। उसे योग की निश्रयिणी पर एक-एक सीढी केही चढ़ना होगा। जब तक हृदय शुद्ध नहीं होगा जब तक मन का मल दूर नहीं देवा, जब तक कर्तृत्वाभिमान तथा अहंकार पूर्णतः विनष्ट नहीं होंगे, तब तक मनुष्य सोम-साधना के मार्ग में विशेष उन्नति नहीं कर सकता।

६. विचार-साधना

(१)

बहुधा हम वस्तु को पीछे छोड छाया के पीछे दौडते रहते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से यह सिद्धान्त ही बन्धन का मूल है। ईश्वर को न खोज कर मनुष्य उसकी छाया जगत के पीछे पड़ता है। यह सारे दःखों का कारण है।

'ईश्वर' शब्द से भी बहुधा हम 'छाया' के बारे में ही जानते हैं, उस 'वस्तु' के विषय में नहीं। इस असत्य छाया के पीछे हम इतना संलग्न हो जाते हैं कि वृक्ष की चेतना भूली जाती है तथा अरण्य का सुन्दर दृश्य तिरोहित हो जाता है।

सद्ग्रन्थों के अध्ययन-सम्बन्धी विषय में भी यही बात है। सुधारकों तथा पैगम्बरों को जनता की गलत धारणा में सुधार लाने के लिए बारम्बार प्रयत्न करना पड़ता है। सद्ग्रन्थों का तत्त्व गलत धारणाओं से बारम्बार आच्छन्न हो जाता है। जगत् के अधिकांश धर्मों की उत्पत्ति इसी प्रकार के सुधार का ही परिणाम है। सभी का मूल एक ही धर्म है। कालान्तर में भ्रमवश लोगों ने उसे मत-मतान्तर के द्वारा विभिन्न सम्प्रदायों में बदल दिया। वे विरोधी दलों में बँट जाते हैं। हर धर्म स्वयं को ही सच्चे धर्म का अनुयायी बतलाता है। तब एक नक्षत्र की-सुधारक की आवश्यकता होती है जो ज्ञान-सागर में डुबकी लगा कर सत्य की मुक्ता को बाहर निकाल लाता है। कुछ तो उसका अनुगमन करते हैं, दूसरे अपनी उलटी तान छेड़ते ही रहते हैं। नया द्रष्टा अपने अनुयायियों का दल प्राप्त करता है जो आदेशों का प्रचार करते हैं और ये नये धर्म की स्थापनाका है। यही लीला युगान्तरों से चलती आ रही है।

धर्मग्रन्थों के उपदेश के अतिरिक्त सभी धर्मों में उनके पैगम्बरों की शिक्षाएँ हैं। ये 'काृहावतों' का रूप धारण करती है। इन कहावतों में जो आध्यात्मिक है. उनका अर्थ गूढ़ है तथा धर्मग्रन्थ के वाक्यों के समान ही गम्भीर है। इससे भावी सन्तति उनका विपरित अर्थ लगा लेती है। स्वर्गिक संगीत की तान छेड़ने के विफल प्रयास में बहुत से कनिरर्थक राग भी अलापने लगते हैं।

तमिल साहित्य से ही कुछ उदाहरण देखे। एक सुन्दर कहावत है जब आप कुत्ते को देखते हैं तो पत्थर नहीं; जब पत्थर को देखते हैं तो कुत्ता नहीं।" यह कहावत अब बन सस्ती गयी है। लोग इसके शाब्दिक अर्थ को ही समझने लग गये हैं। कोई व्यक्ति ग्राम पथ से कहीं जा रहा है। बहुत से कुत्ते उसके निकट आ धमकते हैं। वह सोचता है- "दु:ख की बात है इतने कुत्ते हैं, परन्तु पत्थर नहीं हैं, नहीं तो इन कुत्तों को मजा चखाता " वहीं व्यक्ति तीर्थयात्रा को निकलता है। गंगा तट पर बहुत से पत्थरों को देखता है और विचारता है "यहाँ इतने पत्थर हैं, परन्तु कुत्ते नहीं जिनको इनसे मारा जाय। उस कहावत का ऐसा गलत अर्थ लगाया जाता है। कुछ विचारशील व्यक्ति इसकाअर्थ इस प्रकार लगाते हैं "जहाँ रुपयों की अधिक आवश्यकता है वहाँ रुपयों का अभाव है। जहाँ आवश्यकता नहीं वहाँ तो रुपयों की प्रचुरता है।" शायद ही कोई इस कहावत के गूढार्थ को समझ पाता है।

कहावत के गूढार्थ को समझने से पहले हम ईश्वर तथा जगत् के विषय में विचार करें। **"**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः**"** यह जगत् मिथ्या है, इसका अस्तित्व ही नहीं ऋषियों ने ऐसी घोषणा की है। हम इस जगत् को उसी प्रकार देखते हैं जिस प्रकार रस्सी में सर्प, मृगतृष्णा में जल, सीपी में रजत। अपने कार्यालय से थका-माँदा घर लौटता है और दरवाजे के भीतर घुसते ही उसे लगता है मानो पैरों तले कोई सर्प आ गया है। अन्धकार के कारण वह इस वस्तु की जाँच नहीं कर पाता। उस अवस्था में विचार-शक्ति काम नहीं करती। उसका शिर चकराने लगता है, वह भयभीत हो जाता है। वह चक्कर खा कर जमीन पर गिर जाता है। लोग तुरन्त ही हल्ला मचाने लगते हैं कि इस मनुष्य को सर्प ने डस लिया। लोगों की भीड़ उसकी चारपाई के चतुर्दिक् एकत्र हो जाती है। रोना, चिल्लाना, प्रार्थना, मन्त्रादि प्रारम्भ हो जाते हैं। इसी बीच एक बुद्धिमान् व्यक्ति आता है। वह कहता है, "मार्ग छोड़ो, मैं जरा रोगी को देखूँ।" वह शांति पूर्वक रोगी की जाँच करता है तथा अपनी लम्बी दादी को सहलाते हुए कहता है, "सर्प ने आपको कहाँ पर काटा?" वह व्यक्ति धीमे स्वर में कहता है. दरवाजे से चार गज की दूरी पर।" हाथ में बत्ती ले कर वह वृद्ध मनुष्य देखने निकल पड़ता है। सर्प तो स्थिर रहने वाला नहीं। वह वृद्ध उस स्थान पर तथाकथित सर्प को देखता है। परन्तु बत्ती की रोशनी ने उसे फलों की माला के रूप में बदल दिया। विजयी भाव से वह मनुष्य उस माला हाथ में लेकर मरणासन व्यक्ति के नजदीक आता है। यही तो वह सर्प है जो तुम्हें काटा था। इसमें जहर तो जरा भी नहीं। अतः उठ बैठो। अपनी कमीज बदल डालो। यह पसीने से भीग गयी है। वह व्यक्ति तुरन्त स्फूर्तिमान हो जाता है. दुःख तथा भय दूर हो जाते हैं। वह तुरन्त उठ जाता है. अपने रक्षक को गले लगाता तथा भीड को विदा करता है।

यही हिसाब है इस जगत् का भी। यह ब्रह्म के ऊपर अध्यास है। जैमा यह दिखायी पड़ता है वैसा यह है नहीं। जब तक आप अन्धकार में इसे देखेंगे, तब तक यह सर्पवत मालूम पड़ेगा। ज्ञान-दीप को जलाइए, यह जगत् अदृश्य हो जायेगा और आप सारतत्व का साक्षात्कार करेंगे। बहुत से तमिल संतों ने इस विचार को प्रेरणात्मक काव्यों में रखा है। जो ईश्वर को देखता है. वह पंचतत्वों से रचित जगत् को नहीं देखता है। जो तत्वों के खेल में निमग्न है. वह ईश्वर के दर्शन नहीं करता।

कहावत के वास्तविक अर्थ को जानने के लिए हमें उस प्रसंग को जानना चाहिए जिसमें इसकी उत्पत्ति हुई है। तभी हम तात्पर्य को जान पाते हैं।

एक शिल्पी किसी पुराने मन्दिर के चारों ओर भ्रमण करता है तथा उसकी चित्रकारी के सोन्दर्य में उसका मन विलीन हो रहा है। वह बिल्ली की पूँछ देखता है-" अहा कितनी सुन्दर है यह। यहाँ शेर का मुँह है और उसमें पत्थर का गोला है।" इस तरह एक मूर्ति से दूसरी मूर्ति की ओर देखता जाता है। वह मुड़ता है- "अहा, यह विशाल कुत्त। यदि इसने मुझ पर छलांग लगायी तो! इसके पैने दाँत तो देखो। और इसकी रक्त-पिपासित जिह्वा। यह तो सीधे मेरी ओर ही आ रहा है। हे प्रभु! अब मैं क्या करुँ? वह भय से आँखे मूंद लेता है। एक मिनट, दो मिनट, तीन मिनट गुजर गये। अभी भी वह कुत्ता शान्त है। "सम्भवतः कुत्ता बंधा हुआ है।" वह एक छोटा पत्थर कुत्ते की ओर फेकता है, फिर भी वह ज्यों-का-त्यों वहीं है, उसी ओर टकटकी लगाये हुए। " यह तो अपनी पूँछ भी नहीं हिलाता? यह तो अनोखा कुत्ता है।" वह और भी निकट जाता है तथा पूँछ छूता है। उसका सारा शरीर हँसी से स्पन्दित हो उठता है अपने ही इस मूर्खतापूर्ण व्यवहार पर। यह तो पत्थर का बना हुआ है। परन्तु ऐसी उसकी कारीगरी थी सचमुच में कुत्ता ही मालूम पड़ता था। यही उस कहावत का भी तात्पर्य है- "जब कुत्ता है तो पत्थर नहीं, जब पत्थर है तो कुत्ता नहीं।" कुत्ता देखते हैं, तो पत्थर का विचार नहीं उठता। पत्थर जान लेने पर कुत्ता विलीन हो जाता है। इस तरह इस कहावत में इन सारे विचारों का समन्वय है। अनेकता देखने से एकता नहीं रहती। एकता देखने से अनेकता नहीं रहती। ईश्वर-साक्षात्कार से जगत् नहीं रहता। जगत् में खो जाने से ईश्वर नहीं दिखायी पड़ता।

यह विचार तमिल साहित्य के बहुत से दोहों में बहुत ही कलात्मक रूप से व्यक्त किया गया है। एक कहता है- "हाथी ने जंगल पर परदा डाल दिया और जंगल में हाथी अदृश्य हो गया।" यह आश्चर्य मालूम पड़ता है। उदाहरण देखिए- एक बच्चे के हाथ में आम की लकड़ी का बना हुआ हाथी है जिसे उसने अपने माता-पिता से भेंट के रूप में प्राप्त किया है। बरामदे में एक बढ़ई काम कर रहा है। बच्चा उसके पास दौड़ कर जाता है और अपना हाथी दिखाता है- "देखो, इसके पैर कितने बड़े हैं, इसके कान सूप जैसे हैं, इसके दाँत तो तुम्हारी छाती को चीर देंगे।" बच्चा उसके साथ ऐसे खेलता है मानो वह सचमुच में हाथी ही हो। बढ़ई इस खिलौने को ले कर उसकी जाँच करता है। "ऐ बच्चे ! यह अच्छा नहीं है।" "क्यों मेरा हाथी है यह?" "हाँ, परन्तु यह आम की लकड़ी का बना है। यह शीघ्र ही बिगड़ जायेगा।" बढ़ई के लिए यह हाथी नहीं है; अपितु लकड़ी का एक टुकड़ा है। सांसारिक व्यक्ति तथा सन्त की दृष्टि में भी ऐसा ही अन्तर है। सांसारिक व्यक्ति जगत् को अनेकता से पूर्ण देखता है, वह सुख-दुःख का मिश्रण पाता है तथा इसे विषयों का भण्डार समझता है। साधु उस गुप्त सत्ता को देखता है जिससे जगत् व्याप्त है, यह जगत् उसके लिए सच्चिदानन्द ब्रह्म का आभास है।

(२)

दूसरी कहावत लीजिए। हिन्दी में उसका अनुवाद है, "जब 'ऊरु' बँट जाता है, तब नर्तकी के लिए सुविधा होती है।" ऊरु का अर्थ ग्राम लगाया जाता है। एक बार एक गाँव में एक बड़ा जमींदार रहता था जिसके अधीन सारा ग्राम था। एक नर्तकी दिन में उस जगह आती थी तथा नृत्य दिखा कर जमींदार से काफी भेंट प्राप्त करती थी। जमींदार मर गया तथा उसके दो पुत्रों ने उसकी सम्पत्ति प्राप्त की। उसके दो पुत्रों में ग्राम का बँटवारा हो गया। दोनों ने अलग-अलग घर बनवाये। वह नर्तकी पुनः आयी और जमींदार की सम्पत्ति को दो भाइयों में विभक्त देखा। वह एक भाई के पास गयी

तथा उसने अपनी कला का प्रदर्शन किया। उससे उसने काफी पारितोषिक प्राप्त किया। वह दूसरे भाई के पास गयी। उसने भी उसे काफी उपहार दिये। अभिमानवश दूसरे भाई ने पहले भाई से अधिक मूल्य की वस्तुएँ भेंट कीं। वह नर्तकी पहले एक ही जमींदार से भेंट पाती थी, अब उसे दो भाइयों से भेंट मिलने लगी। साथ ही उसे अधिक परिमाण में वस्तुएँ प्राप्त होने लगीं। इस कहावत का यही अर्थ साधारणतः लगाया जाता है।

इस कहावत से यही शिक्षा ली जाती है कि परिवार में विभाजन नहीं होना चाहिए, नहीं तो तीसरा व्यक्ति उन दोनों का सर्वनाश कर डालेगा; परन्तु यदि हम सच्चे अर्थ को जान लें, तो इन विपरीत अर्थों के प्रति हमें हँसी आयेगी।

ऊरु शब्द का गलत अर्थ ग्राम से लगाया जाता है। इस गलत अर्थ के कारण ही यह सारी कहानी गढ़ी गयी है। ऊरु शब्द संस्कृत से लिया गया है जिसका अर्थ है जंघा।

सम्भवतः आप उर्वशी के जन्म की कहानी जानते होंगे। भगवान् नारायण कई वर्षों से हिमालय में तपस्या कर रहे थे। इन्द्र ने नारायण की तपस्या में विघ्न डालना चाहा। भगवान् नारायण को मोहित करने के लिए बहुत-सी अप्सराएँ भेजी गयीं। वे सभी नारायण के पास पहुँच कर अपने सम्मोहन-जाल फैलाने लगीं। नारायण को पता लग गया। उन्होंने अपनी आँखें खोलीं और अप्सराओं को जी-जान से प्रयत्न करते देखा। उनकी मूर्खता पर वे मुस्कराये। उनकी ओर देखते हुए उन्होंने अपनी दाहिनी जंघा पर हाथ से ताली लगायी। तुरन्त ही अप्सराओं की लावण्यमयी सेना निकल आयी। इन अप्सराओं ने इन्द्र द्वारा प्रेषित देवताओं को मोहित कर लिया। वे सभी अपने कार्य भूल गये। इन्द्र ने बहुत प्रतीक्षा की। निराश हो कर उसने विलम्ब का कारण जानने के लिए कुछ दूत भेजे। ये दूत भी नारायण की सृष्टि से मोहित हो गये। इन्द्र को स्वयं आ कर वस्तुस्थिति का ज्ञान करना पड़ा। यदि महर्षि की कृपा न होती, तो स्वयं इन्द्र भी उन स्त्रियों की कामुक दृष्टि के शिकार बन जाते। अपनी कमजोरी जान कर इन्द्र नारायण के चरणों पर गिर गये तथा उन्होंने क्षमा-याचना की। इस भय से कि कहीं उनके अपने देवगण नारायण की सृष्टि के सामने नगण्य न हो जायें, इन्द्र ने भगवान् से प्रार्थना की कि वे अपनी सृष्टि को स्वयं में समेट लें। ऋषि ने सभी स्त्रियों को खींच लिया। एक उर्वशी शेष रही। इस उर्वशी को उन्होंने इन्द्र के साथ भेज दिया।

यही ऊरु का अर्थ है। कहावत का अर्थ इस प्रकार हुआ, "जंघे के अलग होने से नर्तकी को सुविधा मिली।"

एक बार पार्वती ने शिव के साथ नृत्य-प्रतिद्वन्द्विता की। भगवान् शिव बहुत देर तक नाचते रहे; परन्तु उनकी जीत न हो सकी। उनके मस्तिष्क में एक अनोखी सूझ घुसी। वे एक पैर ऊपर उठा कर नाचने लगे। कोई भी कुलीन स्त्री इस प्रकार नहीं कर सकती। अतः पार्वती ने पराजय स्वीकार कर ली। यह कहावत उस घटना की भी याद दिलाती है, "यदि जाँघे अलग न की जातीं तो नृत्य में विजय नहीं मिलती।”

(३)

एक और बात है।

एक कहावत है कि जिसका साधारण अर्थ है. "श्मशान घाट तभी जाना जा सकता यदि मनुष्य की मृत्यु पहले हो चुकी हो।" यह तो निरर्थक ही मालूम पड़ता है। श्मशान घाट को जानने के लिए पहले मृत्यु को प्राप्त करने की क्या आवश्यकता है? मरा हुआ व्यक्ति तो यह जानता नहीं कि उसे कहाँ ले जाया जा रहा है। अतः मृतक श्मशान घाट को जानना तो असम्भव ही है। व्यक्ति के लिए

परन्तु इस कहावत का अर्थ है। अब हम इसकी गहराई में प्रवेश करें। श्मशान घाट से तात्पर्य है विनाश या जो जलता है। हम सभी जानते हैं कि मनुष्य में जो पहली वस्तु उत्पन्न होती है, वह है 'अहंता'। उसके बाद दूसरी वस्तु है 'ममता'। ममता अपना जाल फैला कर 'अहं' को उसमें बद्ध बना लेती है। इस मिथ्या अभिमान को दूर किये बिना मनुष्य मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। तमिल सन्तों ने इसकी घोषणा की है, "हे मूर्ख, जब पहली वस्तु 'अहंता' मर जायेगी और उसके बाद मन, तब कहीं आप ज्ञान-घाट को जान सकेंगे जहाँ अज्ञान का विनाश होता है।" कितना उन्नत विचार है यह ! परन्तु विचारहीन व्यक्तियों के हाथ इसकी कितनी विकृति हो चुकी है।

आप सभी महान् कहावतों के तात्पर्य समझें तथा उनका अपने नित्य जीवन में पालन करें।

७. ध्यानयोग-साधना

ध्यानाभ्यास के लिए आवश्यक गुण

अपने मन को ब्रह्म-विचार से सन्तृप्त करने से पहले आपको दिव्य विचारों का पालन करना होगा। पहले पाचन और तब सन्तृप्ति, तब अविलम्ब ही साक्षात्कार की प्राप्ति होगी। अतः इस त्रिक् को याद रखिए: पाचन सन्तृप्ति साक्षात्कार।

अधिक आत्म-चिन्तन, वासना-क्षय, इन्द्रिय-दमन तथा आन्तरिक जीवन के द्वारा आपको अपना आत्म-बल मजबूत बनाना होगा। रविवार तथा छुट्टियों के दिन हर क्षण का सदुपयोग कीजिए।

यदि आपने बंगाल के रसगुल्ले का आस्वादन एक माह तक कर लिया है, तो रसगुल्ले के प्रति मानसिक आसक्ति हो जाती है। ठीक उसी तरह यदि आप संन्यासियों के साथ रहेंगे, यदि आप योग, वेदान्त आदि पुस्तकों का स्वाध्याय करेंगे, तो आपके मन में ईश्वर-साक्षात्कार के लिए मानसिक आसक्ति होगी। केवल मानसिक आसक्ति ही आपको लाभ नहीं दे सकती। ज्वलन्त वैराग्य, ज्वलन्त मुमुक्षुत्व, आध्यात्मिक साधन की क्षमता, उग्र तथा सतत संलग्नता और निदिध्यासन की आवश्यकता है, तभी आत्म-ज्ञान सम्भव है।

सदाचारमय जीवन-यापन करना ही ईश्वर-साक्षात्कार के लिए पर्याप्त नहीं है।

सतत ध्यान परमावश्यक है। सदाचारमय जीवन मन को धारणा तथा ध्यान के लिए अनुकूल बना देता है। धारणा तथा ध्यान ही अन्ततः आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाते हैं।

आप गीता में इन शब्दों को कई बार पायेंगे- "मन्मनः, मत्परः।" इनका अर्थ यह है कि आपको अपना सम्पूर्ण मन लगाना होगा- शत-प्रतिशत। तभी आप आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करेंगे। यदि मन की एक वृत्ति भी विषयों की ओर दौड़ती है, तो ईश्वर-चैतन्य प्राप्त करना असम्भव है।

मन वासनाओं तथा संकल्पों से मलिन बना हुआ है। अतः जिस तरह गन्दे पानी को फिटकरी डाल कर निर्मल बनाया जाता है, उसी तरह मलिन मन को भी ब्रह्म-चिन्तन से निर्मल बनाना होगा। तभी आप वास्तविक ज्ञान प्राप्त करेंगे।

फल-प्राप्ति के लिए अधीर नहीं होना चाहिए। एक युवती लड़की ने सन्तान प्राप्ति की कामना से एक पीपल के वृक्ष की एक सौ आठ बार परिक्रमा की तथा वह अपने पेट पर हाथ रख कर अनुमान करने लगी कि बच्चा है या नहीं। यह निरी

मूर्खता है। उसे कुछ महीनों तक प्रतीक्षा करनी चाहिए थी। उसी तरह यदि आप नित्य प्रति कुछ समय तक ध्यान करेंगे, तो आपका मन परिपक्व हो जायेगा तथा आप आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करेंगे। जल्दबाजी से हानि ही होती है।

उन्नत गृहस्थ साधकों को ध्यान में उन्नति कर लेने पर मुक्ति-प्राप्ति के लिए सारे सांसारिक कार्य-व्यापारों को बन्द करना पड़ेगा। यदि वे वास्तव में सच्चे हैं, तो उन्हें स्वतः ही कर्म-त्याग के लिए विवश होना पड़ेगा। उन्नत साधकों के लिए कर्म बाधा है। यही कारण है कि भगवान् कृष्ण गीता में कहते हैं- "योग-प्राप्ति के लिए कर्म को साधन कहते हैं, योगारूढ़ हो जाने पर शम को साधन कहते हैं।" तब कर्म तथा ध्यान अम्ल तथा क्षार के समान प्रतिकूल हो जाते हैं।

आपको नित्य-प्रति अपने वैराग्य, ध्यान तथा धैर्य, संलग्नता, करुणा, प्रेम, क्षमा, शुद्धता आदि गुणों की वृद्धि करनी चाहिए। वैराग्य तथा सद्गुण ध्यान में सहायक होते हैं और ध्यान से सात्त्विक गुणों की वृद्धि होती है।

सर्वव्यापी ब्रह्म-भावना रखिए। ससीम शरीर को आभास मात्र समझिए। सदा इस भावना को बनाये रखिए।

ध्यान करते समय आप आँखें क्यों बन्द करते हैं? आँखें खोलिए और ध्यान कीजिए। नगर के कोलाहल में भी अपने मन का सन्तुलन बनाये रखिए। तभी आप पूर्ण हैं। प्रारम्भ में मन के विक्षेप को दूर करने के लिए आप आँखें बन्द कर सकते हैं, क्योंकि आप बहुत दुर्बल हैं; परन्तु बाद में टहलते समय भी आप ध्यान कर सकते हैं। गम्भीर विचार कीजिए कि यह जगत् मिथ्या है। जगत् है ही नहीं, आत्मा ही है। आँखें खोल कर भी यदि आप आत्मा पर ध्यान कर सकेंगे, तो आप सबल हैं। तब आप जल्दी अशान्त न बनेंगे। आप तभी ध्यान कर सकेंगे, जब आपका मन सारी चिन्ताओं से मुक्त हो।

ध्यान तथा धारणा में आपको अपने मन को विविध रूप से अनुशासित करना होगा, तभी स्थूल मन सूक्ष्म बन जायेगा।

जप तथा ध्यान करते समय क्रोध, द्वेष, घृणा इत्यादि की सारी वृत्तियाँ सूक्ष्म रूप धारण करती हैं। वे तनु बन जाती हैं। समाधि के द्वारा उन्हें विनष्ट कर देना होगा। तभी आप सुरक्षित हैं। प्रसुप्त वृत्तियाँ प्रकट होने के लिए अवसर की ताक में रहती हैं। आपको सदा सावधान तथा सतर्क रहना चाहिए।

नियमित ध्यान के द्वारा रजस्-तमस् आदि विरोधी अधोगामी शक्तियों का दमन करना होगा। स्पष्ट तथा अनुशासित विचार के द्वारा मन के निरर्थक भ्रमण को बन्द कीजिए। मन की झूठी आवाज को न सुनिए। आन्तरिक दृष्टि को ईश्वरीय केन्द्र की ओर मोड़ दीजिए। अपनी यात्रा में आपको बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ेंगी, परन्तु उनसे भयभीत न होइए। वीर बनिए। वीरतापूर्वक अग्रसर होते जाइए। अन्ततः आप नित्य सुख के केन्द्र में विश्राम करेंगे।

बड़े नगर में आठ बजे रात्रि में बड़ा कोलाहल रहता है। नौ बजे उतना कोलाहल नहीं रहता। दश बजे कोलाहल और भी कम हो जाता है। ग्यारह बजे और भी कम हो जाता है। एक बजे सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य छा जाता है। उसी प्रकार योग-साधना के प्रारम्भ में मन में अनेकानेक वृत्तियाँ रहती हैं, मन में अधिक आवेग तथा विक्षेप रहते हैं। धीरे-धीरे वृत्तियाँ विलीन होने लगती हैं। अन्ततः सारी वृत्तियों का निरोध हो जाता है। योगी परम शान्ति का अनुभव करता है।

बडे नगर या बाजार से गुजरते समय आप छोटी-छोटी ध्वनियों को नहीं सुन सकेंगे। परन्तु प्रातःकाल में कुछ साथियों के साथ सामूहिक ध्यान के लिए बैठते समय आप उन्हें पहचान सकते हैं। ध्यान के लिए बैठते समय यदि बरे विचार घुसें, तो घबराइये नहीं। उग्र जप तथा ध्यान कीजिए। वे शीघ्र ही विलीन हो जायेंगे।

ध्यान करते समय इन्द्रियों के कारण उत्पन्न विचार तरंगों की अवहेलना कीजिए। सावधानीपूर्वक स्मरण, तुलनात्मक विचार आदि मन के कार्यों को दूर कीजिए। अपने मन की सारी शक्ति को ईश्वर अथवा आत्मा पर ही लगा दीजिए।

योग के साधक को अधिक धन नहीं रखना चाहिए; क्योंकि इससे वह संसार के प्रलोभनों की ओर खिंच जायेगा। शरीर की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए वह कुछ रुपये रख सकता है। आर्थिक स्वतन्त्रता होने से मन चिन्ता-मुक्त रहेगा तथा साधक अबाध-गति से साधना कर सकेगा।

ध्यानासनों की आवश्यकता

मनुष्य को बैठे-बैठे ध्यान करना चाहिए; क्योंकि लेट कर अथवा खड़े-खड़े ध्यान करना सम्भव नहीं है। मन की एक ही अवस्था को सतत बनाये रखना ध्यान है; अतः बैठ कर ही ध्यान करना सम्भव है। खड़े-खड़े, टहलते तथा दौड़ते समय मन की अवस्था एक-समान नहीं रह सकती। लेट कर ध्यान करने से मनुष्य शीघ्र ही गहरी नींद के वशीभूत हो जायेगा।

उपासना बैठ कर ही करनी चाहिए। विचार की तैलधारावत् अविच्छिन्न धारा ही उपासना है; अतः बैठ कर उपासना करना आवश्यक है।

उपासना में मनुष्य को अपने मन को एक ही वस्तु पर एकाग्र करना है। खड़े-खड़े अथवा लेट कर ऐसा नहीं कर सकते। खड़ा रहने पर मन शरीर का सन्तुलन सँभालने में लग जाता है; अतः सूक्ष्म चिन्तन सम्भव नहीं है। बैठ कर ध्यान करना आसान है।

उपासना का अर्थ भी वही है जो ध्यान का है। एकाग्र दृष्टि द्वारा मन को एक ही वस्तु पर लगाना उपासना है। यह बैठ कर ही सम्भव है।

कर्मांग उपासना में कर्म-विशेष के अनुसार बैठ कर या खड़े हो कर उपासना करनी पड़ती है। साक्षात्कार की अवस्था में उपासना अथवा ध्यान का प्रश्न ही नहीं उठता। कुछ लोग तर्क कर सकते हैं कि ध्यान तो मानसिक है, अतः शरीर की अवस्था से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है; परन्तु ऐसा तर्क ठीक नहीं है।

ब्रह्म का स्मरण तो सदा करना ही चाहिए। स्मरण के लिए आसन की आवश्यकता नहीं; परन्तु गम्भीर ध्यान के लिए तो आसन परमावश्यक है। केवल स्मरण से ध्यान बहुत ही ऊँचा है। इसमें शंका की कोई बात नहीं है। अतः ध्यान के लिए बैठने की आवश्यकता प्रमाणित हो गयी।

विचार के प्रवाह को दीर्घ काल तक बनाये रखना ही ध्यान है। आप उस व्यक्ति को विचारशील कहते हैं जिसका मन किसी एक वस्तु पर एकाग्र है तथा जिसके अंग हिलते नहीं। आप कह सकते हैं कि रामकृष्ण विचारशील हैं। विचारशीलता उन्हीं के लिए आसान है जो बैठते हैं। स्त्री बैठ कर सुदूर यात्रा में गये हुए पति का चिन्तन करती है। अतः आप इससे भी यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ध्यान के लिए बैठना आवश्यक है।

किसी एक विषय का सतत चिन्तन ही ध्यान है जिसमें चिन्तनीय विषय से असम्बन्धित विचारों का प्रवेश न हो। ऐसा ध्यान बैठने की अवस्था में ही सम्भव है, न कि लेटने या खड़े होने की अवस्था में; क्योंकि जब आप बैठ कर ध्यान करते हैं तो मन के विक्षेप में न्यूनता आती है। अतः प्रार्थना एवं ध्यान- इन दोनों के लिए बैठने की अवस्था का ही उपयोग करना चाहिए।

पृथ्वी को ध्यानस्थ कहा जाता है; क्योंकि यह स्थिर है। इससे भी यही निष्कर्ष निकलता है कि ध्यान तभी सम्भव है जब मनुष्य बैठा हो, न कि जब खड़ा अथवा चल रहा हो। ध्यान के साथ स्थिरता रहती है। शरीर तथा मन की स्थिरता बैठ कर ही सम्भव है।

उपर्युक्त कारणों से योगशास्त्र ध्यान के लिए पद्मासन, सिद्धासन, सुखासन आदि विभिन्न आसनों की शिक्षा देता है।

सगुण-ध्यान-साधना

किसी वस्तु या रूप पर ध्यान करना सगुण ध्यान है। भक्ति-प्रधान मनुष्य के लिए ध्यान का यह स्थूल रूप है। यह ईश्वर के गुणों के साथ ध्यान है। शिव, विष्णु, कृष्ण या राम-अपनी प्रवृत्ति अथवा रुचि के अनुसार किसी भी मूर्ति को चुन लीजिए। तीरन्दाज पहले स्थूल तथा बड़े पदार्थों की ओर निशाना लगाता है, तब वह कुछ छोटे पदार्थों की ओर निशाने का अभ्यास करता है। अन्त में वह सूक्ष्म तथा महीन वस्तुओं पर निशाने का अभ्यास करता है उसी प्रकार मनुष्य को पहले सगुण ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। जब मन नियन्त्रित तथा अनुशासित हो जाये, तो निराकार ध्यान की प्राप्ति स्वतः हो जायेगी।

पद्म, सिद्ध या सुखासन में बैठ जाइए। शिर, गरदन तथा रीढ़ को एक ही सीध में रखिए। अपने सामने इष्टदेव का चित्र रख दीजिए, उदाहरणार्थ भगवान् हरि का फोटो रखिए। कुछ समय तक टकटकी लगा कर देखिए। आँखें बन्द कर लीजिए तथा उस रूप का मानसिक चित्रण कीजिए। उसे दोनों भौहों के बीच या हृदय में या नासिकाग्र पर या इच्छानुसार किसी भी केन्द्र पर चित्रण कीजिए। मानसिक चित्रण करते समय मन को देवता के विभिन्न अंगो पर घुमाइए। पहले चरण को देखिए-तब निम्नांकित क्रम से उनके पाँव, रेशमी पीताम्बर, गले में मुक्ताजटित स्वर्णमाला, मुखारविन्द, शिर तथा मुकुट, ऊपरी दायें हाथ में चक्र, बायें ऊपरी हाथ में शंख, निचले दायें हाथ में गदा, बायें निचले हाथ में पद्म। उसी प्रक्रिया के अनुसार पुनः चरों में चले आइए। इस क्रिया को बारम्बार दुहराइए। अन्ततः चरणों में या चेहरे पर मन को एकाग्र कर दीजिए।

जब रूप विलीन होने लगे अथवा चलायमान हो, तो आँखें पुनः खोल दीजिए तथा स्थिरतापूर्वक पुनः चित्र को देखिए। इस क्रिया का अभ्यास तब तक कीजिए, जब तक आप बिना चित्र की सहायता के ही ध्यान न करने लगें। ध्यान करते समय भगवान् हरि के इष्टमन्त्र, 'ॐ नमो नारायणाय' का मानसिक जप कीजिए। सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता, शुद्धता, करुणा आदि भगवान् के विशेषणों पर विचार कीजिए। यदि आप हृदय में अनाहत चक्र पर ध्यान करते हैं, तो कल्पना कीजिए कि भगवान् हरि जाज्वल्यमान षोडश-दल पद्म पर बैठे अथवा खड़े हैं। सूर्य की भाँति उनका सारा रूप विभासित है। भान कीजिए कि उनके ईश्वरीय गुण आपकी ओर प्रवाहित हो रहे हैं, आप शुद्ध बन गये हैं तथा सारे मलों से मुक्त हैं। आप अब दिव्य गुणों के मूर्त रूप बन गये हैं। इस प्रक्रिया से आपकी शीघ्र उन्नति होगी।

इसी प्रकार आप भगवान् शिव अथवा राम अथवा कृष्ण के रूप पर ध्यान कर सकते हैं।

प्रातः सबेरे तीन से छह बजे तक ध्यान का अभ्यास कीजिए। ध्यानाभ्यास के लिए यह सर्वोत्तम समय है। आधी रात को भी आप ध्यान का अभ्यास कर सकते हैं। वातावरण बड़ा ही शान्त रहता है। उस समय किसी तरह की अशान्ति नहीं होती। मन स्वतः ही ध्यानावस्था को प्राप्त करता है। यह कोरे कागज की भाँति रहता है। सोने से पहले भी आप ध्यान के लिए दूसरी बैठक कर सकते हैं।

यदि आपके ध्यान का कमरा अलग हो, तो बड़ा ही अच्छा होगा। अपने कमरे को सदा साफ तथा शुद्ध रखिए। किसी को भी कमरे में प्रवेश न करने दीजिए। देवता के समीप घृत-प्रदीप अथवा मोमबत्ती जलाइए। इससे मन और भी

ध्यानस्थ बन सकेगा, आपको अच्छी धारणा लगेगी। सम्भव हो तो स्नान कर लीजिए अथवा कम-से-कम हाथ-पा धो लीजिए। तब ध्यान के लिए बैठिए। मन को सदा शुद्ध, शान्त तथा स्तब्ध बनाइए। पवित्र दिव्य विचारों को ही प्रश्रय दीजिए।

मन को सारे विषय-चिन्तनों से दूर रखिए। सारे संकल्प-विकल्प से दूर रहिए। अपने मन को लक्ष्य पर ही एकाग्र कर डालिए। मन की अन्य सारी प्रक्रियाओं को बन्द कर डालिए। अब सम्पूर्ण मन एक ही विचार से परिप्लावित हो जायेगा, निष्ठा की प्राति होगी। जिस प्रकार उसमें किसी विचार या कार्य की पुनरावृत्ति करते रहने से उसमें पूर्णता आती है, उसी प्रकार एक ही ध्यान की प्रक्रिया को दुहराते रहने से धारणा तथा अबाध ध्यान में पूर्णता मिलती है।

ध्यान करते समय आपके मन में बहुत प्रकार के विचार, सूक्ष्म संस्कार तथा भूतकाल के संस्मरण उठेंगे। उनसे आपके ध्यान में विघ्न पड़ेगा। स्थिर तथा संलग्न प्रयत्न से ही उनका दमन किया जा सकता है। बल प्रयोग कदापि न कीजिए। ऐसा करने से वे दुगनी शक्ति से उभरेंगे। ध्यान के लिए बैठते समय मन को पूर्णतः शिथिल बना दीजिए। पूर्णतः शान्त रहिए। बड़ी सावधानी से अपने विचारों का निरीक्षण कीजिए। सावधान रहिए। अपने विचारों तथा उनकी लीला के मूक साक्षी बने रहिए। तब शनैः शनैः मन की विक्षिप्त किरणों को समेट लीजिए तथा उन्हें लक्ष्य पर एकाग्र कीजिए। जब भी बुरे विचार उठें, तुरन्त ही अपने मन को ईश्वर के पवित्र गुणों की ओर मोड़ दीजिए तथा बुरे संस्कारों को पूर्णतः भूल जाइए।

यम-नियम के पालन के बिना ही ध्यान का अभ्यास करना तो कमजोर नींव पर इमारत खड़ी करने के समान है। अतः नैतिक आचरण के द्वारा मानसिक अनुशासन परमावश्यक है। यम तथा नियम में पूर्णतः संस्थित हो जाइए। सुसंयमित नैतिक जीवन का यापन कीजिए। वाणी की तपस्या का अभ्यास कीजिए। दिन में एक बार आहार कीजिए तथा रात्रि में केवल फल और दूध का ही सेवन कीजिए। उससे मन और भी अधिक स्थिर रहेगा। पूर्ण शम, दिव्य गुणों का अर्जन, दिव्य विचारों का चिन्तन, सात्त्विक आहार-इन सभी से आध्यात्मिक मार्ग में सफलता प्राप्त होगी।

निर्गुण-ध्यान-साधना

निर्गुण-ध्यान-साधना अथवा वेदान्तिक साधना में दो बातें आवश्यक हैं-संकल्प-बल तथा मनन। श्रवण के बाद मनन की बारी आती है, मनन के बाद निदिध्यासन उग्र ध्यान की। निदिध्यासन के द्वारा साक्षात्कार अथवा अपरोक्ष साक्षात्कार की प्राप्ति होती है। जिस तरह जल की एक बूँद गरम तवे पर पड़ कर तत्क्षण ही सूख जाती है. उसी तरह मन तथा आभास चैतन्य ब्रह्म में विलीन हो जाता है, चिन्मात्र चैतन्य ही शेष रह जाता है। अतः इस साधन चतुष्टय-श्रवण, मनन आदि के द्वारा आप निर्गुण-ध्यान-साधना के लिए अनुकूल बन सकते हैं।

निर्गुण ध्यान में मन की अपनी चेतना नहीं रहती। वह सर्वव्यापक, निराकार, नाम-रहित, विशेषण-रहित, अविच्छिन्न, अव्यक्त, असीम चैतन्य से एक बन जाता है। ध्याता तथा ध्येय, विचारकर्ता तथा विचार, अहम् तथा इदम् एक बन जाते हैं। निर्गुण-ध्यान-साधना का यह अन्तिम चरण है। ध्याता की दृष्टि से जगत् विलीन हो जाता है तथा वह शुद्ध निर्गुण ब्रह्म में निवास करता है।

ऐसा देखा जाता है कि मनुष्य जब तक सगुण ध्यान में प्रगति प्राप्त नहीं करता, तब तक निर्गुण-ध्यान-साधना में अधिक उन्नति नहीं कर सकता। जो यम, नियम तथा साधन-चतुष्टय में स्थित है, जो उग्र निष्काम सेवा के द्वारा कर्तापन तथा भोक्तापन का परित्याग कर सर्वव्यापक एकरस सत्ता का सर्वत्र दर्शन करता है, जिसने विवेक, वैराग्य तथा श्रवण-मनन के अभ्यास से मन का पूर्ण समाधान प्राप्त कर लिया है, वही इस निर्गुण-ध्यान-साधना को कर सकता है तथा अन्य साधनों की अपेक्षा अल्प समय में ही परब्रह्म को प्राप्त कर सकता है।

साधना का अभ्यास छह प्रकार से किया जाता है: (१) नेति नेति-विधि, (२) साक्षी-विधि, (३) अन्वय व्यक्तिरेक विधि, (४) भाग-त्याग-लक्षण-विधि, (५) लय-चिन्तन-विधि तथा (६) भावना के साथ ॐ पर ध्यान की विधि।

यहाँ मैं एक-एक कर इनका संक्षिप्त वर्णन दे रहा हूँ।

(१) नेति**-**नेति**-**विधि**-**नेति नेति का अर्थ है- यह नहीं, यह नहीं। यह निषेधात्मक विधि है। उपनिषदों की घोषणा है कि यह शरीर आत्मा या ब्रह्म नहीं है, यह प्राण आत्मा या ब्रह्म नहीं है, यह मन आत्मा नहीं है, यह बुद्धि आत्मा नहीं है, यह आनन्दमय कोश आत्मा नहीं है। इन मिथ्या, भ्रामक उपाधियों के निषेध के अनन्तर जो शेष रहता है वही शुद्ध, व्यापक सच्चिदानन्द आत्मा है। आप वास्तव में वही आत्मा हैं। यही निषेधात्मक विधि है।

(२) साक्षी**-**विधि**-** आपको अपनी वृत्तियों का अन्तर्निरीक्षण करना होगा। आप अपने को मन की वृत्तियों से अलग करें, उनके साथ तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित न करें। इन वृत्तियों से प्रभावित न हो कर साक्षी बने रहें। 'ॐ मैं साक्षी हूँ, ॐ साक्षी अहम्', इसका सदा मानसिक जप करें। सतत जप तथा भाव के द्वारा अन्तर में यह भावना जम जानी चाहिए। आप अन्ततः देह के ऊपर उठ जायेंगे। जीव-भावना पूर्णतः विलुप्त हो जायेगी। काम करते हुए भी सारे कार्यों के साक्षी बने रहिए। वास्तव में मन तथा इन्द्रिय ही कार्य करते हैं। आप तो साक्षी मात्र है। आप सदा इस भावना को बनाये रखें। गीता के पाँचवें अध्याय के आठवें श्लोक को सदा याद रखें "समत्व बुद्धि प्राप्त व्यक्ति, जिसने तत्त्व का ज्ञान कर लिया है, इस प्रकार सदा विचारशील रहता है। देखते हुए, सुनते हुए, छूते हुए, सूंघते हुए, खाते हुए, घूमते हुए, सोते हुए तथा श्वास लेते हुए मैं कुछ भी नहीं करता। इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषय में बर्तती हैं।"

(३) अन्वय**-**व्यतिरेक**-**विधि**-** हर वस्तु के पाँच भाग हैं: नाम, रूप, अस्ति, भाति तथा प्रिय। नाम तथा रूप मिथ्या हैं। वे माया के हैं। अस्ति, भाति तथा प्रिय ब्रह्म के स्वरूप हैं। वे सत्य हैं। अस्ति, भाति तथा प्रिय का अर्थ सच्चिदानन्द है। नाम तथा रूप भिन्न-भिन्न हैं; परन्तु अस्ति, भाति तथा प्रिय सभी में एक हैं। वे आत्मा के विशेषण हैं। नाम तथा रूप व्यतिरेक हैं। अस्ति, भाति तथा प्रिय अन्वय हैं। अन्वय-व्यतिरेक-विधि से आपको नाम-रूप का निषेध कर सभी विषयों में गुप्त अस्ति, भाति तथा प्रिय को निकाल लेना होगा। यही साधन है जिससे निर्गुण-ध्यान-साधना की चरम अवस्था को प्राप्त करते हैं जिसमें आप ब्रह्म के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। सतत विचार तथा ध्यान-शक्ति के द्वारा नाम तथा रूप विलीन हो जायेंगे। अस्ति, भाति तथा प्रिय ही सर्वत्र विभासित होंगे। सदा इसका अभ्यास कीजिए।

(४) भाग**-**त्याग**-**लक्षण**-**विधि - इसका तत्त्वमसि महावाक्य से सम्बन्ध है। तत् तथा त्वम् के दो प्रकार के अर्थ हैं। प्रथम है वाच्यार्थ - तत् का अर्थ है ईश्वर तथा द्वितीय है लक्ष्यार्थ। तत् का लक्षार्थ है ब्रह्म। त्वम् का वाच्यार्थ है जीव तथा लक्ष्यार्थ है कूटस्थ। आपको उपाधि, अविद्या, उसके धर्म तथा अविद्या में प्रतिबिम्बित चैतन्य को जीव से हटाना पड़ेगा तथा आभास चैतन्य को दूर करना होगा। जीव तथा ईश्वर के अधिष्ठान को ग्रहण कीजिए तथा उनकी तादात्म्यता का अनुभव कीजिए। यह भाग-त्याग-लक्षण है। इस विधि से आप जीव तथा ब्रह्म की एकता पर ध्यान कर सकते हैं।

(५) लय**-**चिन्तन**-**विधि**-**लय का अर्थ है कार्य का कारण में विलीन होना। तीन प्रकार के अभ्यास हैं। पहला है: विचार कीजिए मन बुद्धि में लीन होता है, बुद्धि अव्यक्त में और अव्यक्त ब्रह्म में लीन होते हैं। दूसरा है: विचार कीजिए पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश अव्यक्त में और अव्यक्त ब्रह्म में लीन होते हैं। तीसरा प्रकार है : विश्व विराट् में विलीन होता है। तेजस् हिरण्यगर्भ में तथा प्राज्ञ ईश्वर में। कूटस्थ ब्रह्म के साथ एक हो जाता है। अतः आप यहाँ देखते हैं कि सारे बाह्य पदार्थ अथवा उपाधि धीरे-धीरे एक ही मूल ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं। आप मूल तत्त्व ब्रह्म को प्राप्त करते हैं जो सारे मनों तथा पंचभूतों का उद्गम है। अन्ततः आप ब्रह्म में ही निवास करते हैं।

(६) ॐ पर ध्यान की विधि**-** ॐ के साथ शुद्धता, पूर्णता, शान्ति, असीमता आदि के भावों को संयोजित कीजिए। इसका वर्णन प्रणव-साधना में दिया जा चुका है।

मन के बहुत प्रकार हैं। अतः विभिन्न व्यक्तियों के लिए विभिन्न मार्गों का प्रदर्शन किया गया है।

कोई भी व्यक्ति किसी भी साधना को, जिस ओर उसकी रुचि हो, ग्रहण कर सकता है तथा उस साधना के द्वारा वह आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर सकता है।

८. जपयोग-साधना

भूमिका

मन को शुद्ध बनाना तथा उसे भगवान् पर स्थिर करना ही साधना है। साधना के बिना आप साध्य अमृतत्व एवं सुख के धाम ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सकते।

जप बहुत ही प्रभावशाली साधना है। प्रतिज्ञा कीजिए, "मैं नित्य-प्रति दश माला जप करूँगा।" उतनी संख्या पूर्ण किये बिना आसन से न उठिए। इससे आपका संकल्प-बल बढ़ेगा तथा आप सुगमतापूर्वक मन पर नियन्त्रण कर लेंगे।

दूसरी मुख्य बात यह है कि जब तक आपकी संख्या पूरी न हो जाये, आपकी साधना में व्यतिरेक नहीं होना चाहिए। सांसारिक विचारों का आना, योजना आदि बनाना ये व्यतिरेक हैं। यदि दो माला जप कर लेने के बाद कोई त्रुटि हो जाये, तो उस दो माला जप को अपनी संख्या में न गिनिए। आपको पुनः जप आरम्भ करना होगा तथा दश माला तक जप करना होगा। यदि चार माला जप के बाद कोई विघ्न पड़ जाये, तो उस चार माला जप को न गिनिए। पुनः दश माला जप कीजिए। यह अनुशासन कठोर तो जरूर है; परन्तु इस साधना का फल है आत्मा में नित्य सुख तथा अमृतत्व प्राप्त करना। यदि आपको परम लक्ष्य का साक्षात्कार करना है, तो इसका अभ्यास कीजिए।

यदि स्कूल में कोई लड़का गलती करता है, तो गुरु उसे कान से पकड़ कर दश बार बैठक लगाने को कहते हैं। यदि चार बैठक के बाद ही वह क्रम को तोड़ता है, तो उसे पुनः दश बार बैठक करने को कहते हैं। जप-साधना करते समय आपको भी अपने मन को इसी तरह अनुशासित करना होगा। अपने मन को ढीला न छोड़िए। ढीला छोड़ने से फिर उसे अपने वश में लाना कठिन हो जायेगा।

बन्द कमरे में आसन पर बैठते ही विचार कीजिए कि आप मानसिक संन्यासी है। आपको जगत् अथवा परिवार के सदस्यों से कुछ भी नहीं कहना है। सब-कुछ भूल जाइए। यदि कोई व्यक्ति आपका दरवाजा खटखटाये, तो अशान्त न बनिए। दरवाजा न खोलिए। अपने परिवार के लोगों से कह दीजिए कि साधना की समाप्ति से पहले वे आपको तंग न करें।

कमरे से बाहर निकल कर उसी सात्त्विक भाव को बनाये रखिए। मन्त्र अथवा भगवन्नाम का सदा जप कीजिए। यदि कोई बाधा उपस्थित हो तो पुनः जप शुरू कीजिए। शनैः-शनैः जप सहज बन जायेगा। आपका चित्त सदा नाम का जप करता रहेगा, मन भले ही भूल जाये।

व्यवहार-काल में यदि आप सावधान नहीं हैं, तो कमरे के अन्दर आपने जिन संस्कारों का निर्माण किया है, वे सब नष्ट हो जायेंगे। आपको सावधान रहना चाहिए कि आप कैसी संगति रख रहे हैं। सांसारिक चर्चा, खान-पान, वेश-भूषा तथा दृष्टिगत वस्तुओं एवं श्रवणागत शब्दों के प्रति सावधान रहिए।

आपको अश्लील शब्द नहीं बोलने चाहिए। आपको सात्त्विक भोजन-वस्त्र ग्रहण करने चाहिए। अपने मन को सदा ईश्वर के रूप में लगाये रखना चाहिए। क्लबों में न जाइए। अखबार तथा उपन्यास न पढ़िए। उपन्यास, अखबार तथा सिनेमा ये बुरे संग हैं। ये सांसारिक विचार उत्पन्न करते तथा मन की शान्ति को भंग करते हैं। आपको इनसे कोई लाभ नहीं होता।

इस जगत् में बहुत-सी बाधाएँ तथा कठिनाइयाँ हैं; परन्तु यदि आपको अमृतत्व प्राप्त करना है, तो आपको योग के नियमों का पालन करना होगा। यदि संकल्प है, तो मार्ग भी दिखायी पड़ेगा। यदि आपमें प्रबल मुमुक्षुत्व है, तो आपको अन्तर से बल मिलेगा। संसार में रहते हुए भी नियमों के पालन में आप समर्थ बन सकेंगे। पण्डित मदन मोहन मालवीय, गान्धी जी तथा अन्य बहुत से लोगों ने संसार में ही उन्नति पायी। व्यर्थ बहाना न कीजिए। यह जगत् आध्यात्मिक मार्ग में बाधा नहीं है। यह जगत् आपका गुरु है। यह जगत् प्रशिक्षण-पाठशाला है। यह जगत् विराट् अथवा ईश्वर है।

अपनी छुट्टियों को ऋषिकेश जैसे एकान्त स्थान में बिताइए तथा उग्र साधना कीजिए। इस समय अकेले आइए और संन्यासी का जीवन व्यतीत कीजिए।

आप सभी जन्म-मृत्यु के चक्र से विमुक्त बनें। आप सभी आन्तरिक आत्मा में रमण करें! वह आत्मा आनन्द-सागर, सुख-निर्झर, ज्ञान-गंगा तथा नित्य-तुति का अमर प्रवाह है।

जप-साधना-सम्बन्धी व्यावहारिक उपदेश

आपको जपयोग तथा नाम की महिमा के विषय में पूरा ज्ञान हो चुका है। आप इसी क्षण से वास्तविक साधना का समारम्भ कर सकते हैं। आपकी दैनिक साधना के लिए बहुत से उपदेश नीचे दिये जा रहे हैं। कृपया उनका सावधानीपूर्वक पालन कीजिए।

१. निश्चित समय- प्रातः सबरे ब्राह्ममुहूर्त तथा सूर्यास्त के समय जप के लिए बहुत ही लाभदायक हैं; क्योंकि इन समयों में सत्त्व का प्राधान्य रहता है। जप में नियमितता बहुत ही आवश्यक है।

२. निश्चित स्थान - एक ही स्थान में नियमित आसन लगा कर बैठना बहुत ही लाभकर है। अपने स्थान को बदलते न रहिए। जब आप वहाँ बैठेंगे, तो स्वभावतः ही आपको जप करने की प्रवृत्ति हो जायेगी। पुस्तकालय में प्रवेश करते ही आपकी मनोवृत्ति पुस्तक पढ़ने की और मन्दिर में प्रवेश करते ही प्रार्थना करने की हो जाती है, उसी प्रकार अपने आसन पर बैठते ही आपको जप करने की मनोवृत्ति प्राप्त होगी।

३. स्थिर आसन- सुखद आसन लगाने से मन भी स्थिर रहता है। यह रजस् को रोकता है तथा एकाग्रता लाता है। जिसका आसन स्थिर नहीं है, वह एकाग्रता नहीं प्राप्त कर सकता। अपनी रीढ़ को सदा सीधी रखिए। यदि जप के लिए बैठते समय आप वृद्ध मनुष्य की तरह झुक जायेंगे, तो आपका मन सदा घूमता और भटकता रहेगा। जप के पूरे समय तक स्थिर आसन में बैठे रहिए।

४. दिशा- उत्तर या पूर्व दिशा की ओर मुख रखिए। इससे सूक्ष्म प्रभाव पड़ता है तथा जप अधिक शक्तिशाली हो जाता है। जो उत्तर की ओर मुख करके जप करते हैं, उन्हें हिमालय के ऋषिगण सहायता देते हैं।

५. आसन- मृग-चर्म अथवा कुश की चटाई अथवा कम्बल को आसन के रूप में रख सकते हैं। गीता कहती है: "चैलाजिनकुशोत्तरम्।" कुश, चटाई, मृग-चर्म तथा सफेद वस्त्र क्रमशः एक के ऊपर दूसरा रखिए। उपयुक्त आसन रहने से शक्ति का क्षय नहीं होता।

६. प्रेरणात्मक प्रार्थना- स्तोत्रों अथवा प्रार्थना के द्वारा इष्टदेवता का आह्वान करते हैं। इससे सात्त्विक भाव आता है। सारी आध्यात्मिक साधना में ईश्वरीय साधना पूर्वापक्ष्य है। इसके बिना आध्यात्मिक उन्नति सम्भव नहीं तथा उच्छृंखल मन को वश में करना असम्भव हो जाता है।

७. स्पष्ट उच्चारण- जप करते समय मन्त्र का स्पष्ट, ठीक-ठीक उच्चारण कीजिए। यदि उच्चारण स्पष्ट है तो मन्त्र-शक्ति शीघ्र ही जाग्रत हो जायेगी, मन समुन्नत होगा तथा उसमें एकाग्रता आयेगी।

८. सावधानी - यह बहुत ही आवश्यक है। जप प्रारम्भ करते समय आपको सजग एवं सावधान रहना चाहिए। कुछ समय के बाद मन थक जाता है और आपके अनजाने ही घूमने लगता है तथा आप निद्रा के वशीभूत हो जाते हैं। इस अवस्था को दूर कीजिए। कुछ लोग जप तथा ध्यान करते समय सो जाते हैं तथा समाधि-सुख की कल्पना कर बैठते हैं।

९. जप-माला- माला रखने से सावधानी बनी रहती है तथा सतत जप करते रहने की प्रेरणा मिलती है। संकल्प कर लीजिए कि इतनी माला जप करके ही उठूँगा। बिना माला के जप करने पर मन आपको धोखा देगा- आप समझ लेंगे कि बहुत देर तक जप किया।

रुचि बनाये रखने, थकावट दूर करने तथा उदासी हटाने के लिए यह आवश्यक है। कुछ समय के लिए जोर से जप कीजिए, फिर गुनगुनाइए, तब फिर मानसिक जप कीजिए। जब आपको जप का स्वाद मालूम हो जायेगा, तब जप सुखद तथा स्वाभाविक हो जायेगा, तब जरा भी उदासी नहीं होगी। जप की विविधता तो प्रारम्भिक साधकों के लिए ही है। मानसिक जप सबसे अधिक शक्तिशाली है। यह मन की बुरी वृत्तियों को निष्क्रिय बनाता है तथा मन को शुद्ध बना देता है।

११. ध्यान- जप के साथ-साथ ऐसा ध्यान कीजिए कि भगवान् आपके समक्ष हैं तथा उनकी मनोहर मूर्ति का चित्रण कीजिए। इस अभ्यास से आपकी साधना को काफी शक्ति मिलेगी। मन ईश्वर के रूप में स्थिर हो जायेगा तथा इन्द्रिय विषयों की ओर दौड़ने के लिए उसे मौका ही नहीं मिलेगा। ईश्वरीय-सुख के समक्ष इन्द्रिय-सुख तो तृणवत् हैं।

१२. विसर्जन तथा विश्राम- यह आवश्यक है। जप समाप्त होने पर तुरन्त स्थान न छोड़िए तथा हर किसी से न मिलिए, न तो सांसारिक कार्यों में ही गर्क हो जाइए। दश मिनट तक शान्तिपूर्वक बैठिए। कुछ प्रार्थना गुनगुनाइए, ईश्वर का स्मरण कीजिए तथा उसके असीम प्रेम का चिन्तन कीजिए। तब भक्तिपूर्ण साष्टांग प्रणाम के अनन्तर स्थल छोड़ कर अपना कर्म प्रारम्भ कीजिए। आध्यात्मिक स्पन्दन बने रहेंगे। काम करते समय भी आप ईश्वर का भाव बनाये रखेंगे। अपनी दिनचर्या के साथ प्रार्थना को भी संयुक्त कीजिए तथा समय-समय पर स्मरण करते रहिए।

भगवन्नाम की महिमा

तर्क के द्वारा भगवन्नाम की महिमा स्थापित नहीं की जा सकती। श्रद्धा, भक्ति तथा सतत जप के द्वारा इसका अनुभव किया जा सकता है। नाम के लिए आदर तथा श्रद्धा रखिए। बहस न कीजिए। ईश्वर के हर नाम में अपरिमित शक्ति है। जिस तरह अग्नि का स्वभाव जलाना है, उसी तरह ईश्वर के नाम में भी पापों तथा कामनाओं को जलाने की शक्ति है। नाम की शक्ति अमिट है। इसकी महिमा अनिर्वचनीय है। ईश्वर-नाम की शक्ति अगाध है।

हे मानव ! नाम में आश्रय ग्रहण कीजिए। नामी तथा नाम एक ही है। सदा ईश्वर-नाम का जप कीजिए। हर श्वास-प्रश्वास के साथ ईश्वर के नाम का स्मरण कीजिए। इस कलियुग में नाम-स्मरण अथवा जप ही सबसे सुगम, सरल तथा निश्चित मार्ग है। ईश्वर की जय ! उसके नाम की जय !

राम-नाम की महिमा सुनिए। महात्मा गान्धी जी लिखते हैं: "आप पूछ सकते हैं कि मैं अन्य अवतारों की अपेक्षा राम-नाम को ही अधिक पसन्द क्यों करता हूँ। यह सत्य है कि ईश्वर के नाम वृक्ष के पत्तों से भी अधिक हैं और मैं उदाहरणतः 'गाड' शब्द का ही प्रयोग करने के लिए कहता। परन्तु उस शब्द का यहाँ आपके लिए क्या अर्थ तथा प्रसंग है? इसके लिए आपको अँगरेजी पढ़नी होगी। तभी आप 'गाड' के विषय में कुछ जान सकेंगे।

परन्तु राम-नाम-जप के द्वारा आप उस नाम का जप कर रहे हैं जिसे हमारे देश की जनता अनगिनत पीढ़ियों से जपती आ रही है, जो नाम सहस्रों वर्षों से पशु-पक्षी, वृक्ष तथा पाषाण तक को भी परिचित है। आप रामायण में पढ़ेंगे कि किस तरह राम के चरण के स्पर्श से पत्थर भी अहल्या के रूप में परिणत हो गया। राम के नाम को इतनी मधुरता तथा भक्ति से जपिए कि पक्षी भी मुग्ध हो कर सुनने लग जायें तथा वृक्ष के पत्ते भी उस संगीत के प्रभाव से आपकी ओर झुक जायें।"

सन्त कबीरदास ने अपने पुत्र कमाल को सन्त तुलसीदास जी के पास भेजा। तुलसीदास ने तुलसी-पत्र पर राम-नाम लिख कर उसके रस को पाँच सौ कुष्ठ रोगियों पर छिड़क दिया। सभी रोगी अच्छे हो गये। कमाल बड़ा ही आश्चर्यचकित हुआ। तब कबीर ने कमाल को अन्धे सूरदास के पास भेजा। सूरदास ने नदी में बहते हुए एक शव को लाने के लिए कहा। सूरदास ने शव के एक कान में केवल एक बार राम कहा और वह जीवित हो उठा। कमाल का हृदय आश्चर्यचकित हो गया। ईश्वर के नाम में ऐसी ही शक्ति है। कबीरदास जी कहते हैं "यदि कोई व्यक्ति स्वप्न में भी राम नाम कहता है, तो मैं उसके नित्य व्यवहार के लिए अपने शरीर की खाल से निर्मित जूते प्रदान कर अपने को धन्य मानूँगा।"

ईश्वर के पवित्र नाम की महिमा का कौन वर्णन कर सकता है? ईश्वर के नाम की महिमा कौन समझ सकता है? भगवान् शिव की पत्नी पार्वती भी ईश्वर के नाम की महिमा का समुचित वर्णन करने में विफल रहीं। जब कोई व्यक्ति उसके नाम का गान करता है अथवा उसके गान का श्रवण करता है तो अनजाने ही आध्यात्मिक ऊँचाइयों को प्राप्त कर लेता है। वह अपनी देह-चेतना को खो बैठता है। वह सुख में निमग्न हो जाता है। वह अमृत-सुधा का छक कर पान करता है। वह ईश्वरीय उन्माद प्राप्त करता है। ईश्वर के नाम के जप से भक्त अपने भीतर तथा सर्वत्र ईश्वरीय महिमा तथा सत्ता का अनुभव करने लगता है। हरि का नाम कितना मधुर है! ईश्वर का नाम कितना शक्तिशाली है! जो उसके नाम का जप करता है, उसको कितना आनन्द, बल तथा शान्ति प्राप्त होते हैं। वे लोग धन्य हैं जो ईश्वर के नाम का जप करते हैं; क्योंकि वे भव-चक्र से मुक्त हो कर अमृतत्व प्राप्त करेंगे।

आपको पता ही होगा कि गणिका (वेश्या) किस तरह तोते से राम-नाम सीख कर नाम की शक्ति द्वारा साध्वी स्त्री में परिणत हो गयी। उसने एक चोर से उस तोते को प्राप्त किया था। वह तोता 'श्री राम, श्री राम' बोलने में दक्ष था। पिंगला राम-नाम के बारे में कुछ नहीं जानती थी। तोते के मुख से उसने राम-नाम सुना। यह बड़ा ही मोहक तथा

आकर्षक था। पिंगला को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने राम-नाम पर अपना मन एकाग्र कर लिया तथा वह भाव-समाधि में चली गयी। राम नाम की शक्ति ऐसी ही है।

९. गायत्री-साधना

गायत्री-साधना का रहस्य

आत्मा में ही सारी शक्ति है। आत्मा का स्वरूप सर्वशक्तिमान् है। आत्मा में अनन्त शक्ति है। उस शक्ति से सर्वप्रथम नाद की उत्पत्ति होती है। तदनन्तर नाद से सारी सृष्टि की। सारी सृष्टि नाद से ही उत्पन्न है। वेद शब्द ब्रह्म है। वेदों के प्रत्येक मन्त्र में असीम शक्ति है। सच्चा साधक इसी मन्त्र-शक्ति पर अवलम्बित रहता है। यही उसकी शक्ति का रहस्य है। सभी मन्त्रों में यह गायत्री मन्त्र परम शक्तिशाली है।

जप के लिए सूची

संख्या	मन्त्र	स्वर	प्रति मीनट की गति	एक घंटा में किये गये जप की संख्या	एक पुरक्षरण की पूर्ति के लिये छह घण्टा प्रति दिन के हिसाब से समय				
					वर्ष	महिना	दिन	घण्टा	मीनट
१	ॐ	धीमा	१४०	८८००	..	..	..	११	५४
		मध्यम	२५०	१५०००	...	...	...	६	४०
		ऊँचा	४००	२४०००	...	...	...	४	१०
२	हरि ॐ या श्रीराम	धीमा	१२०	७२००	...	...	१	३	४७
		मध्यम	२००	१२०००	...	...	...	१६	४०
		ऊँचा	३००	१८०००	...	...	...	११	७
३	ॐ नम: शिवाय	धीमा	८०	४८००	...	..	१७	२	१०
		मध्यम	१२०	७२००	...	...	११	३	३०
		ऊँचा	१५०	९०००	...	...	९	१	३५
४		धीमा	६०	३६००	...	१	७	०	१५

		मध्यम	८०	४८००	…	…	९	१	३५
		ऊँचा	१२०	७२००	…	…	१८	३	१५
५	ॐ नमो भगवते वासुदेवाय	धीमा	४०	२४००	…	२	२३	२	०
		मध्यम	६०	३६००	…	१	२५	३	३०
		ऊँचा	९०	४५००	…	१	७	०	१५
६	गायत्री-मंत्र	धीमा	६	३६०	३	०	१६	०	४५
		मध्यम	८	४८०	२	५	१८	५	३०
		ऊँचा	१०	६००	१	७	१५	३	३५
७	महामंत्र या हरे राम मंत्र	धीमा	८	४८०	३	०	१६	०	४५
		मध्यम	१०	६००	२	५	८	५	३०
		ऊँचा	१५	९००	१	७	१७	३	३५

हर सच्चे हिन्द का यह जीवन तथा आधार ही है। यही नहीं, हर सच्चे साधक के लिए, चाहे वह किसी भी जाति, वर्ण अथवा मत का क्यों न हो, जिसमें इस मन्त्र की शक्ति तथा महिमा के प्रति विश्वास है, यह मन्त्र जीवनाधार है। मनुष्य की श्रद्धा तथा मन की शुद्धता ही वास्तव में लाभ देने वाली है। गायत्री बहुत ही शक्तिशाली कवच है, जो साधक को सुरक्षित रख कर उसे ईश्वरत्व में परिणत करती तथा परम आध्यात्मिक ज्ञान को प्रदान करती है। चाहे जो भी आपका इष्टदेवता हो, आप यदि नित्य-प्रति कुछ माला गायत्री-मन्त्र का जप कर लें, तो आपका इहलोक तथा परलोक में कल्याण होगा।

यह धारणा गलत है कि यह मन्त्र केवल ब्राह्मणों के लिए ही है। यह सार्वभौम है; क्योंकि प्रकाश की प्राप्ति के लिए यह प्रार्थना के रूप में है, सर्वशक्तिमान् से प्रार्थना की जाती है। यह सारी मानव जाति के लिए पथ-प्रदर्शिका ज्योति है।

गायत्री की आप किसी भी रूप में पूजा अथवा उपासना कर सकते हैं। साधारणतः भक्तजन गायत्री को देवी बतलाते हैं जो पाँच शिरों वाली है। यदि आप शाक्त हैं अथवा माता के उपासक हैं, तो इस प्रकार आप ध्यान कर सकते हैं।

परन्तु वास्तव में गायत्री में मातृ-पहलू का कोई संकेत नहीं है। गायत्री में एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो मातृ-पहलू के विषय से सम्बन्ध रखता हो। केवल गायत्री शब्द ही इसके देवता को स्त्री नहीं बना सकता। यह तो इस मन्त्र के छन्द का नाम है, देवता का नहीं। कुछ लोगों का कहना है कि गायत्री का अधिष्ठाता देव सूर्य है। वास्तव में इस विचार को भी परिष्कृत करने की आवश्यकता है। इसमें जिस सूर्य का वर्णन है, वह आँखों के सामने का भौतिक सूर्य नहीं; "तत् सवितुः" यह वह महान् सूर्य है, जो इस सूर्य अथवा चन्द्र से आलोकित नहीं होता तथा जो परब्रह्म है।

अतः यह सबसे महान् मन्त्र है तथा इसका अधिष्ठाता देव परब्रह्म ही है। यह सभी प्रकार के साधकों के लिए ग्राह्य है; चाहे वे देवी के उपासक हों या विष्णु के या सूर्य के अथवा निर्गुण ब्रह्म के।

ब्रह्मचारी का तेज गायत्री-जप पर ही निर्भर है। गृहस्थी का आधार तथा ऐश्वर्य गायत्री ही है। वानप्रस्थी का बल तथा आधार गायत्री ही है। अतः उपनयन से ले कर संन्यास-दीक्षा तक गायत्री मन्त्र ही उसका सतत पथ-प्रदर्शक, आधार तथा बल है। गायत्री मन्त्र जीवन का परम अर्थ है।

गायत्री-मन्त्र का इतना महत्त्व है कि हर हिन्दू के लिए इसका दैनिक जप अनिवार्य बतलाया गया है। हर हिन्दू के लिए गायत्री मन्त्र का दैनिक जप तथा अर्घ्य परमावश्यक है, चाहे उसका कुलदेवता अथवा इष्टदेवता कोई भी क्यों न हो। यदि आप इतर धर्म अथवा वर्ण के हैं, तो भी आप गायत्री जप कर सकते हैं, उसके लिए सच्चाई तथा श्रद्धा होनी चाहिए। आपका जीवन धन्य हो जायेगा। प्रिय साधक! इस महिमामय गायत्री की आश्चर्यजनक शक्ति का साक्षात्कार कीजिए। इस मन्त्र में कितनी बहुमूल्य पैत्रिक सम्पत्ति है. इसका साक्षात्कार कीजिए। पूर्व ऋषियों ने इस दिव्य शक्ति को आप लोगों के लिए रख छोड़ा है, उसकी अवहेलना मत कीजिए। यही एकमेव सच्ची शक्ति है जिसके समक्ष विद्युत्, रेडियो तरंग, न्यष्टि-शक्ति आदि नगण्य हैं। नित्य गायत्री जप का प्रारम्भ कीजिए तथा स्वयं ही इसकी अद्भुत शक्ति का अनुभव कीजिए। जप करने के लिए निश्चित समय रखिए और उसका पालन कीजिए। कम-से-कम एक माला का जप अखण्ड रूप से आप अवश्य करें। यह सभी आपत्तियों से आपकी रक्षा करेगा तथा आप असीम शक्ति से सम्पन्न हो कर सभी बाधाओं का अतिक्रमण कर सकेंगे। यह आपको शान्ति, सुख और शक्ति की पराकाष्ठा तक ले जायेगा।

गायत्री-साधना का अभ्यास

ब्रह्मा ने तीनों वेदों का दोहन कर उनमें से 'अ', 'उ' तथा 'म्' के सारतत्त्व को निकाला तथा उसके साथ ही तीन रहस्यमय शब्द बनाये- 'भूः', 'भुवः' तथा 'स्वः' या पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा स्वर्ग। सारे प्राणियों के परम पिता ने उन तीनों वेदों से तीन मात्राओं को निकाला जिनका प्रारम्भ 'तत्' से होता है तथा जिन्हें सावित्री या गायत्री कहते हैं (मनुस्मृति अध्याय ३)।

ॐ भूः भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्
भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात् ।

"हम ईश्वर तथा उसकी महिमा की उपासना करते हैं जिसने इस जगत् की सृष्टि की है, जो पूजनीय है, जो सारे पापों तथा अज्ञान को दूर करने वाला है। वह हमारी बुद्धि को आलोकित करे।"

वह आलोक क्या है? आपमें देहात्म बुद्धि है, वैसी बुद्धि जो आपको शरीर के साथ सम्बन्धित रखती है तथा शरीर को ही आत्मा समझने के लिए आपको मोहित करती है। आप वेदों की माँ गायत्री से प्रार्थना करते हैं कि वह आपको शुद्ध सात्त्विक बुद्धि प्रदान करे जिससे आप 'अहं ब्रह्मास्मि' का साक्षात्कार करने में समर्थ बन सकें। यह गायत्री का अद्वैतिक अर्थ है। योग के उन्नत साधक इस प्रकार अर्थ लगा सकते हैं- "मैं वह परम ज्योतियों की ज्योति हूँ जो बुद्धि को आलोकित करती है।

भगवान् वेदों में कहते हैं. **"समानो मन्त्रः "** - एक मन्त्र सभी के लिए समान हो।

वह मन्त्र गायत्री है। उपनिषदें चारों वेदों की सारांश है तथा तीन व्याहृतियों के साथ गायत्री उपनिषदों की सारांश है। वही सच्चा ब्राह्मण है जो इस प्रकार गायत्री मन्त्र को जानता तथा समझता है। जिसे गायत्री का ज्ञान नहीं, वह चारों वेदों में पारंगत हो कर भी शूद्र ही है।

गायत्री वेदों की माँ है तथा सारे पापों की विनाशक है। एकाक्षर 'ॐ' ब्रह्म का प्रतीक है। गायत्री से बढ़ कर इस जगत् में कुछ भी अधिक शुद्धिकारक नहीं है। गायत्री-जप से वही फल मिलता है जो चारों वेदों तथा उनके अंगों के पाठ से। यदि इस एक ही मन्त्र का जप भावपूर्वक शुद्ध अन्तःकरण से किया जाये, तो इससे परम कल्याण की प्राप्ति होगी।

गायत्री तीन प्रकार के तापों को विनष्ट करती है। गायत्री चार प्रकार के पुरुषार्थ प्रदान करती है-धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष। यह अविद्या, काम तथा कर्म की ग्रन्थियों को नष्ट करती है। यह हृदय को शुद्ध बनाती है। अन्ततः गायत्री मनुष्य को मोक्ष प्रदान करती है।

गायत्री के जप से गायत्री का दर्शन प्राप्त होता है तथा अन्ततोगत्वा अद्वैतिक ब्रह्म-साक्षात्कार प्राप्त होता है। जो साधक गायत्री माता से आलोक की प्रार्थना करता था, वही अब आनन्दोल्लास से गा उठता है- "मैं ही ज्योतियों की ज्योति हूँ जो बुद्धि को भी आलोकित करती है।"

१०. मन्त्रयोग-साधना

मन्त्रयोग-साधना का मनोविज्ञान

मन्त्रयोग वास्तविक विज्ञान है। "मननात् त्रायते इति मन्त्रः" - जिसके मनन के द्वारा जन्म-मृत्यु के चक्र से त्राण मिलता है, वही मन्त्र है।

हर मन्त्र के लिए एक ऋषि है जिसने उस मन्त्र को संसार को प्रदान किया, साथ ही मात्रा, देवता, बीज-जो मन्त्र को विशेष शक्ति प्रदान करता है, शक्ति तथा कीलक है।

मन्त्र ईश्वर है। मन्त्र तथा उसके अधिष्ठाता देव एक ही हैं। मन्त्र स्वयं देवता है। मन्त्र दैवी शक्ति है जो शब्द-शरीर से प्रकट होती है। श्रद्धा, भक्ति तथा शुद्धता के साथ सतत मन्त्र का जप करने से साधक की शक्ति बढ़ती है, मन्त्र-चैतन्य का जागरण होता है तथा साधक को मन्त्र-सिद्धि मिलती है। उसे ज्ञान, मुक्ति, शान्ति, नित्य-सुख तथा अमृतत्व की प्राप्ति होती है।

मन्त्र का सतत जप करने से साधक मन्त्र के अधिष्ठाता देवता के गुणों तथा शक्तियों को प्राप्त करता है। सूर्य-मन्त्र के जप से स्वास्थ्य, दीर्घायु, वीर्य, तेज की प्राप्ति होती है। यह शरीर तथा चक्ष के सारे रोगों को दूर करता है। शत्रु कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकते। प्रातःकाल आदित्यहृदय का पाठ करना बडा ही लाभकर है। अगस्त्य ऋषि द्वारा प्रदत्त आदित्यहृदय का पाठ कर राम ने रावण पर विजय प्राप्त की थी।

मन्त्रों में देवताओं की स्तुति अथवा करुणा या सहायता की याचना है। कुछ मन्त्र बुरी आत्माओं को रोकते या अनुशासित करते हैं। शब्दों के लयपूर्ण स्पन्दन से आकृतियों की उत्पत्ति होती है। मन्त्रों के उच्चारण से उनके देवता-विशेष की आकृतियाँ निर्मित होती हैं।

सरस्वती-मन्त्र- **'ॐ श्री सरस्वत्यै नमः'** के जप से आप ज्ञान तथा प्रखर बुद्धि प्राप्त करेंगे, आप प्रेरणा प्राप्त कर कविताएँ करने लगेंगे। 'ॐ श्री महालक्ष्म्यै नमः' के जप से आप सम्पत्ति प्राप्त करेंगे तथा निर्धनता का निवारण होगा। गणेश-मन्त्र

किसी भी कार्य के सम्पादन में बाधा का निवारण करेगा। महामृत्युंजय मन्त्र आकस्मिक घटना, असाध्य बीमारियों को दूर कर दीर्घायु तथा अमृतत्व प्रदान करेगा। यह मोक्ष-मन्त्र भी है।

सुब्रह्मण्य-मन्त्र- **'**ॐ शरवणभवाय नमः**'** के जप से किसी भी कार्य में

सफलता मिलेगी तथा आप यशस्वी बनेंगे। यह प्रेतात्माओं के बुरे प्रभावों को दूर भगायेगा। श्री हनुमान्-मन्त्र- **'**ॐ श्री हनुमते नमः**'** से विजय तथा बल की प्राप्ति होगी। पंचदशाक्षर तथा षोडशाक्षर (श्रीविद्या) के जप से धन, शक्ति, मुक्ति आदि की प्राप्ति होगी। आपकी सभी मनोकामनाओं को यह प्रदान करेगा। आपको गुरु द्वारा यह विद्या सीखनी होगी।

गायत्री या प्रणव **(**ॐ**)** या **'**ॐ नमः शिवाय**', '**ॐ नमो नारायणाय**', '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'** - इनमें से किसी भी मन्त्र का सवा लाख जप भाव, श्रद्धा तथा भक्ति के साथ करने से आप मन्त्र-सिद्धि प्राप्त करेंगे।

'ॐ**,** सोऽहम्**,** शिवोऽहम्**,** अहं ब्रह्मास्मि**'** - ये मोक्ष-मन्त्र है। ये आपको आत्म-साक्षात्कार में सहायता प्रदान करेंगे। 'ॐ श्री रामाय नमः', 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' ये सगुण मन्त्र हैं जो पहले सगुण साक्षात्कार प्रदान करेंगे, तब अन्त में निर्गुण साक्षात्कार।

बिच्छू तथा सर्प के दंश के निवारक मन्त्रों को ग्रहण के समय जपने से शीघ्र सिद्धि मिलेगी। जल में खड़े हो कर मन्त्र को जपिए। यह अधिक शक्तिशाली तथा प्रभावकारी है। मन्त्र-सिद्धि की प्राप्ति के लिए इन मन्त्रों का जप अन्य किसी भी दिन किया जा सकता है।

बिच्छू तथा सर्प आदि के दंश के निवारणार्थ मनुष्य चालीस दिनों में मन्त्र-सिद्धि प्राप्त कर सकता है। श्रद्धा तथा भक्ति के साथ मन्त्र का नियमित जप कीजिए। स्नान के उपरान्त प्रातः जप के लिए बैठिए। ब्रह्मचर्य का पालन कीजिए और चालीस दिनों तक दूध तथा फल का आहार अथवा संयमित आहार कीजिए।

मन्त्रों के द्वारा असाध्य बीमारियाँ भी दूर की जा सकती हैं। मन्त्र के जप से आध्यात्मिक तरंगों अथवा दिव्य स्पन्दनों का निर्माण होता है। वे रोगी के स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों में प्रवेश कर कष्टों के मूल का निवारण करते हैं। वे जीवकोशों को सत्त्व से परिपूरित कर देते हैं। वे रोग के कीटाणुओं को विनष्ट करते तथा जीवकोशों को शक्ति प्रदान करते हैं। वे सर्वोत्तम कीटाणुनाशक हैं। वे अल्ट्रा वायलेट किरणों से भी अधिक शक्तिशाली हैं।

मन्त्र-सिद्धि को दूसरों के विनाश-कार्य में दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। जो लोग मन्त्र-सिद्धि का दुरुपयोग करते हैं, अन्ततः वे स्वयं विनष्ट हो जाते हैं।

जो लोग सर्प-दंश, बिच्छू-दंश तथा असाध्य बीमारियों के उपचार के लिए मन्त्र-शक्ति का उपयोग करते हैं, उन्हें किसी भी प्रकार की भेंट या धन नहीं लेना चाहिए। उन्हें पूर्णतः निष्काम होना चाहिए। उन्हें फल तथा वस्त्र भी स्वीकार नहीं करने चाहिए। यदि स्वार्थ के लिए अपनी सिद्धि का उपयोग करेंगे, तो सिद्धि चली जायेगी। यदि वे पूर्णतः निःस्वार्थ हैं, यदि वे सर्वात्म भाव से मानवता की सेवा करते हैं, तो ईश्वर की कृपा से उनकी शक्ति बढ़ती जायेगी।

जिसे मन्त्र-सिद्धि प्राप्त है, वह सर्प दंश या बिच्छू-दंश या किसी भी असाध्य बीमारी को स्पर्शमात्र से दूर कर सकता है। यदि किसी व्यक्ति को सर्प ने काट लिया है, तो मन्त्र-सिद्ध के पास तार भेज देते हैं। वह मन्त्र-सिद्ध मन्त्र जपता है तथा सर्प-दंश से ग्रस्त व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है। कितना आश्चर्य है यह ! क्या इससे मन्त्र की असीम शक्ति सिद्ध नहीं होती ?

अपने गुरु से मन्त्र-दीक्षा प्राप्त कीजिए अथवा गुरु मिलने में कठिनाई हो, तो अपने इष्टदेवता की प्रार्थना कीजिए और किसी विशेष मन्त्र का जप आरम्भ कर दीजिए।

मन्त्र-पुरश्चरण की विधि

शीघ्र आध्यात्मिक उन्नति के लिए आध्यात्मिक संयमों तथा व्रतों का पालन करते हुए किसी मन्त्र का निश्चित संख्या में जप करना पुरश्चरण कहलाता है। भौतिक उन्नति के लिए भी उसे किया जा सकता है। साधक को कुछ नियम पालन करने होंगे तथा आहार में कठिन संयम रखना होगा, तभी मन्त्र-सिद्धि की प्राप्ति शीघ्र होगी।

पुरश्चरण-काल में केवल ताजी सब्जी, फल, दूध, मूल, बार्ली तथा हविष्यान्न (घी, चीनी तथा दूध में पकाया हुआ चावल) ग्रहण करना चाहिए। शुद्ध भिक्षा पर भी साधक रह सकता है। यदि पुरश्चरण-काल में आप दूध पर ही रहें, तो यह अति श्लाघनीय है। एक लाख जप कर लेने से भी आप मन्त्र-सिद्धि प्राप्त कर लेंगे।

गंगा-तट के किसी तीर्थस्थान, नदियों के संगम, मनोरम दृश्य वाले पर्वतीय भाग, मन्दिर, तुलसी-वाटिका, अश्वत्थ वृक्ष के नीचे - किसी भी पवित्र स्थान में पुरश्चरण का प्रारम्भ कीजिए। अपने गृह के किसी भाग को मन्दिर में बदल डालिए। ईश्वर का चित्र रखिए। अगरबत्ती-धूप जलाइए तथा अन्य सजावटों से शोभायमान रखिए। यहाँ भी आप साधना कर सकते हैं। पवित्र स्थानों में पुरश्चरण करने से गृह की अपेक्षा सौ गुना अधिक लाभ होता है।

आप किसी मन्त्र को भी पुरश्चरण के लिए चुन सकते हैं। आपका गुरु-मन्त्र या दृष्ट-मन्त्र ही सर्वोत्तम है। सन्ध्या-काल, सूर्योदय, सूर्यास्त तथा मध्याह्न-ये जप के अनुकूल हैं। मन्त्र में जितने अक्षर हैं, उतने ही लाख बार मन्त्र का जप कीजिए।

आप उसकी संख्या का आधा भी कर सकते हैं, परन्तु किसी भी हालत में जप की संख्या एक लाख से कम नहीं होनी चाहिए।

जप के समय पूर्व या उत्तर की ओर मुँह करके बैठिए। सिद्ध, पद्म, स्वस्तिक या वीरासन-किसी भी एक आसन में बैठ जाइए। पेट में भार रख कर कभी भी जप के लिए -न बैठिए। जप के लिए निश्चित समय निर्धारित रखिए। प्रारम्भ करने से पहले स्नान कर लीजिए अथवा कम-से-कम हाथ-पैर धो डालिए। आचमन (मन्त्र द्वारा पवित्र किये हुए जल का स्वल्प पान) कीजिए। जप करते समय मृगचर्म, वस्त्र, कम्बल, कुश-घास, व्याघ्रचर्म के आसनों का प्रयोग किया जा सकता है। जप की संख्या के लिए स्फटिक, तुलसी या रुद्राक्ष की माला का प्रयोग किया जा सकता है। एक सौ आठ, चौवन अथवा सत्ताईस दानों की माला लीजिए।

मन को सारे सांसारिक विषयों से उपरत कर, मन्त्र के अर्थ में लीन होते हुए ईश्वर-चिन्तन के साथ सम-गति से मन्त्र का जप करना चाहिए। मन्त्र के देवता तथा अर्थ के प्रति एकाग्रता रखने से शीघ्र मन्त्र-सिद्धि की प्राप्ति होती है। मन्त्र-सिद्धि की प्राप्ति तक पुरश्चरण जारी रखिए। एक पुरश्चरण के बाद ही बन्द न कीजिए। मन के दोषों के कारण आप एक ही बार में मन्त्र-सिद्धि नहीं पा सकते। सिद्धि-प्राप्ति के लिए मधुसूदन सरस्वती को अठारह बार गायत्री का पुरश्चरण करना पड़ा था।

कठोर बिछावन पर सोना (तकिये आदि का त्याग), ब्रह्मचर्य व्रत, दिन में तीन बार देवता की उपासना, दिन में तीन बार स्नान करना, तैल-स्नान, मांस, मत्स्य, प्याज, लहसुन, चाय, काफी, मिर्च तथा इमली का परित्याग, मौन-व्रत या न्यूनातिन्यून सम्भाषण, अहिंसा, सत्यवादिता- इनका पालन करते हुए पुरश्चरण करना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो

सके, पुरश्चरण के समय आलस्य, स्तब्धता, जप के समय थूकना, हाथ-पाँव को शिथिल करना, दिन में सोना, कुसंगति, स्त्रियों का सम्पर्क, उपहार ग्रहण करना, अश्लील चित्र देखना, झूठ बोलना, रागी व्यक्तियों का साथ, पान खाना, बीड़ी तथा शराब आदि का सेवन, अधिक बोलना, दूसरों की निन्दा करना, मन-वचन-कर्म से दूसरों को हानि पहुँचाना आदि से बचिए। जप के समय अनावश्यक ही शरीर को न हिलाइए, इधर-उधर न देखिए, हँसी-ठट्ठा में शक्ति न गँवाइए।

प्रतिदिन जप की एक ही गणना पूरी कीजिए। हर एक लाख के बाद अथवा पुरश्चरण की समाप्ति पर होम या हवन करना चाहिए।

पुरश्चरण पूरा हो जाने पर जप-संख्या का दशांश होम कीजिए, होम का दशांश तर्पण कीजिए, तर्पण का दशांश मार्जन कीजिए तथा मार्जन के दशांश ब्राह्मणों को भोजन दीजिए। यदि उपर्युक्त विधि का पालन न कर सकें, तो यथाशक्ति भोजन तथा दान दीजिए।

मन्त्र-पुरश्चरण के अनगिनत लाभ हैं। मन की प्रसन्नता, सन्तोष, सांसारिक सुखों की ओर वैराग्य, इष्टदेव का दर्शन, सभी कार्यों में सफलता, मन की शुद्धता -इन सभी की प्राप्ति मन्त्र-पुरश्चरण से होगी। पुरश्चरण के लिए पूरी सच्चाई बरतिए।

मन्त्र-पुरश्चरण के द्वारा आप मोक्ष प्राप्त करें!

लिखित जप के लाभ

(व्यस्त मनुष्यों के लिए सुगम मार्ग)

लिखित जप से ध्यान की प्राप्ति

जप की विविध विधियों में लिखित जप बड़ा ही प्रभावशाली है। यह साधकों को धारणा के अभ्यास में सहायता देता है तथा शनैः शनैः ध्यान की ओर ले जाता है।

लाभ

१. धारणा मन, जिह्वा, हाथ तथा आँख सभी मन्त्र में संलग्न रहते हैं; अतः विक्षेप का अभाव होता है। इससे धारणा-शक्ति बढती है तथा कार्य में दक्षता आती है।

२. नियन्त्रणमन्त्र-शक्ति से मन का नियन्त्रण होता है। यह मन आपके लिए अधिक सावधानीपूर्वक कार्य करेगा।

३. प्रगति बारम्बार मन्त्र-जप से चित्त में सूक्ष्म आध्यात्मिक संस्कार बनते हैं जो आत्मा की उन्नति में सहायक हैं।

४. शान्ति-चिन्ता के समय तथा दुःखद परिस्थितियों में मन शान्त रहेगा।

५. शक्ति-कालान्तर में जहाँ आप मन्त्र लिखते हैं, वहाँ के वातावरण में प्रबल आध्यात्मिक शक्ति का निर्माण होता है। इससे भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति में सहायता मिलती है।

६. उपसंहार- आज ही प्रारम्भ कीजिए। विलम्ब न कीजिए। सच्चाईपूर्वक प्रयत्न कीजिए। अपने मन के मालिक बनिए, गुलाम नहीं। नित्य-प्रति एक से तीन पृष्ठ तक लिखिए। यदि शीघ्र फल चाहते हैं, तो यथासम्भव नियमों का पालन कीजिए।

लिखित जप के लिए नियम

१. किसी मन्त्र या भगवन्नाम को चुन लीजिए। किसी नोट-बुक में नित्य-प्रति एक से तीन पृष्ठ तक स्याही से मन्त्र को लिखिए।

२. एक स्थान में नित्य एक ही समय में बैठिए। यदि सम्भव हो, तो उस स्थान को ताले से बन्द रखिए।

३. स्नान के बाद या हाथ, पैर तथा मुख धो कर लिखना शुरू कीजिए।

४. एक ही आसन में सारे समय तक बैठे रहिए। जब तक मन्त्र-लेखन पूरा न हो, हिलिए नहीं।

५. मौनव्रत पालन कीजिए। बातचीत, मिलना तथा निमन्त्रण आदि से बचिए।

६. पुस्तक पर आँखें स्थिर रखिए। जब तक लिखित जप पूरा न हो जाये हिलिए नहीं।

७. लिखते समय नाम अथवा मन्त्र का मानसिक जप कीजिए।

८. नाम अथवा मन्त्र लिखते समय मन को ईश्वर की मूर्ति अथवा उसके विशेषणों पर एकाग्र कीजिए।

९. एक ही प्रकार की लेखन-विधि का पालन कीजिए। ऊपर से नीचे या बायें से दायें लिखिए।

१०. एक बार में एक मन्त्र या पूरा नाम लिखिए, उसको विभाजित न कीजिए।

११. मन्त्र अथवा नाम को बदलिए नहीं। एक को चुन लीजिए और आजीवन उसका पालन कीजिए।

१२. सारी लेख-पुस्तकों को पूजा-स्थल में सुरक्षित रखिए।

११. संकीर्तन-साधना

भाव, प्रेम तथा श्रद्धा के साथ ईश्वर के नाम का गान करना ही संकीर्तन है। संकीर्तन में लोग एकत्र हो कर किसी सार्वजनिक स्थान में भगवान् के नाम का गायन करते हैं। संकीर्तन नवधा भक्ति में एक है। आप एकमेव कीर्तन के द्वारा ही ईश्वर-प्राप्ति कर सकते हैं। कलियुग में ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त करने का यह सबसे सुगम मार्ग है। "कली केशव कीर्तनात्।"

जब बहुत-से लोग एकत्र हो कर कीर्तन करते हैं, तो विशाल आध्यात्मिक शक्ति, महाशक्ति का निर्माण होता है। इससे साधकों का हृदय शुद्ध हो जाता है तथा वे भाव-समाधि की ऊँचाइयों को प्राप्त कर लेते हैं। शक्तिशाली स्पन्दन सुदूर

स्थानों को जाते हैं। वे सभी लोगों को मन की उन्नति, सान्त्वना तथा बल प्रदान करते हैं तथा शान्ति, समता एवं एकरसता के सन्देशवाहक हैं। वे विरोधी शक्तियों को नष्ट कर समस्त जगत् के लिए शीघ्र ही शान्ति तथा सुख की स्थापना करते हैं।

भगवान् हरि नारद से कहते हैं-

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनाम् हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।।

"मैं न तो वैकुण्ठ में वास करता है और न योगियों के हृदय में ही। मेरे भक्त जहाँ मेरे नाम का गायन करते हैं, वहीं मेरा निवास है।"

कीर्तन से पाप, वासना तथा संस्कारों का विनाश होता है और हृदय प्रेम एवं भक्ति से परिप्लावित हो जाता है। भक्त ईश्वर के दर्शन प्राप्त करता है।

अखण्ड कीर्तन बहुत ही शक्तिशाली है। यह हृदय को शुद्ध बनाता है।

महामन्त्र :

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।

महामन्त्र या 'ॐ नमः शिवाय' का कीर्तन तीन घण्टे तक या तीन दिन तक या एक सप्ताह तक अखण्ड किया जाता है। कई दल बारी-बारी से कीर्तन करते हैं। एक नेतृत्व करता है. दसरे उसका अनुगमन करते हैं। रविवार के दिन या छुट्टियों के दिन अखण्ड कीर्तन कीजिए। प्रातः गलियों में प्रभातफेरी-कीर्तन कीजिए। प्रातः कीर्तन रात्रि-कीर्तन से अधिक प्रभावशाली है।

रात्रि में अपने बच्चों तथा सारे परिवार एवं नौकरों के साथ भगवान् के चित्र के सामने बैठिए। एक या दो घण्टे तक कीर्तन कीजिए। अभ्यास में नियमित रहिए। आप असीम शान्ति तथा बल प्राप्त करेंगे।

अपने हृदय के अन्तस्तल से ईश्वर के नाम का गायन कीजिए। ईश्वर-साक्षात्कार में विलम्ब बड़ा ही दुःखद है। उसमें लीन हो जाइए। उसमें निवास कीजिए। उसी में स्थित हो जाइए।

आप सभी में शान्ति तथा समृद्धि का निवास हो !

"लोका समस्ता सुखिनो भवन्तु ।**"**

१२. तन्त्रयोग-साधना

तन्त्र-साधना प्रबल सिद्धियों को प्रदान करती है। इसे सिद्ध तान्त्रिक गुरु से सीखना चाहिए। तान्त्रिक साधक को शुद्धता, श्रद्धा, भक्ति, गुरु के प्रति आत्मार्पण, वैराग्य, नम्रता, साहस, विश्व-प्रेम, सत्य, अपरिग्रह तथा सन्तोष से सम्पन्न होना चाहिए। साधक में इन गुणों का अभाव होने से शक्ति-साधना का दुरुपयोग ही होगा।

हिन्दुओं की पुनर्जागृति में शक्तिवाद बहुत ही प्रभावकर रहा है। मूर्ख, अज्ञानी तथा अनधिकारी व्यक्तियों द्वारा शक्तिवाद का बहुत ही दुरुपयोग हुआ है। इसमें कोई शक नहीं कि जादू, अनैतिक अथवा सम्मोहक शक्तियाँ शक्तिवाद के ही विकृत रूप हैं। पंच मकारों का सिद्धान्त सत्य की विपरीत अभिव्यक्ति का द्योतक है। वे मकार है मद्य, मास मत्स्य, मुद्रा तथा मैथुन ।

शाक्त-मत के अनुसार शिव अव्यय नित्य चैतन्य है तथा शक्ति उसकी सक्रिय प्रकृति है। जगत् शक्ति है। जगत् देवी की महिमा का ही व्यक्तिकरण है। यही शक्ति-मत का सिद्धान्त है। शक्ति ईश्वर का बल है। शाक्त वह है जिसके पास शक्ति है।

साधक तीन प्रकार के हैं पशु, वीर तथा दिव्य। पशु साधक ही पंच मकारों का अभ्यास करते हैं। पंच मकारों का गूढार्थ है- "अहं को नष्ट कीजिए, मांसगत प्रवृत्ति का दमन कीजिए। ईश्वरीय उन्माद की सुरा पीजिए तथा भगवान् शिव के साथ एकता स्थापित कीजिए।" यह दिव्य साधकों की दिव्य साधना है। पशु वृत्ति का परित्याग कीजिए, दिव्य वृत्ति का अर्जन कीजिए।

जिस तरह बीज में फल, दूध में मक्खन, बालकपन में वीर्य छिपा रहता है, उसी प्रकार बहुत-सी शक्तियाँ मनुष्य में छिपी हुई हैं। यदि आप मन को शुद्ध बना कर धारणा तथा ध्यान का अभ्यास करें, तो ये सारी शक्तियाँ प्रकट होंगी।

ध्येय-वस्तु के साथ एकता अथवा अभेद-स्थिति प्राप्त करना ही उपासना का परम फल है। ध्याता तथा ध्येय एक बन जाते हैं। उग्र उपासना के द्वारा देवी का भक्त देवी से एक बन जाता है।

१३. शैव-साधना

साधकों का वर्गीकरण इस प्रकार से किया जाता है- सात्त्विक व्यक्ति आध्यात्मिक मनुष्य है। वह दिव्य गुणों से सम्पन्न है। उसका दिव्य भाव है। वह शान्त, शुद्ध, विरक्त, ज्ञानी, राग रहित, निरहंकार, कारुणिक, दयालु, धार्मिक तथा भक्त है। उसमें सत्त्व-गुण का आधिक्य है।

तमोगुण अधिक होने पर उसमें पशु-भाव रहता है। वह पशु अथवा जानवर है। वह अज्ञान, भ्रम, प्रमाद, आलस्य तथा मूढ़ता आदि से युक्त है।

रजोगुण अधिक होने पर मनुष्य वीर बनता है। उसमें वीर-भाव है।

दिव्य भाव सर्वोत्तम है। वीर को उसके बाद का स्थान प्राप्त है। पशु निकृष्ट है। पश् से मनुष्य इस जन्म में अथवा अन्य जन्म में वीर-भाव को प्राप्त करता है। वीर-भाव के द्वारा देवता-भाव या दिव्य भाव का जागरण होता है।

तन्त्र-साधना में शैव-साधना भी एक है। कुछ वीर-भाव-साधक श्मशान घाट में इसका अभ्यास करते हैं। निर्भय जन ही इस तरह की साधना कर सकते हैं।

मनुष्य की लाश छाती के बल जमीन पर रख दी जाती है। साधक मृत शरीर की पीठ पर बैठ जाता है। वह पीठ पर यन्त्र बनाता है तथा उसकी उपासना करता है।

यदि क्रिया सफल रही, तो लाश का शिर घूम कर साधक से वर माँगने के लिए कहता है-चाहे वह मुक्ति की कामना करे या सांसारिक सम्पत्ति की।

मृतक मनुष्य के मुँह से देवी बोलती है।

१४. क्रियायोग-साधना

छह क्रियाएँ हैं : धौति, वस्ति, नेति, न्योली, त्राटक तथा कपालभाति।

धौति

शौच दो प्रकार के हैं: आन्तरिक तथा बाह्य। आन्तरिक शौच कई तरीके से किया जा सकता है। यहाँ पर एक प्रधान क्रिया का वर्णन दिया जा रहा है।

तीन इंच चौड़ा तथा पन्दरह फीट लम्बा महीन कपड़े का एक टुकड़ा ले लीजिए। इसके किनारे अच्छी तरह से सिले होने चाहिए। किसी भी किनारे पर धागे खुले हुए नहीं होने चाहिए। इसे साबुन से धो कर सदा स्वच्छ रखिए। इसे गुनगुने पानी में डुबोइए। पानी को निचोड़ दीजिए। धीरे-धीरे एक छोर से उसे निगलिए। प्रथम दिन केवल एक फुट लम्बा वस्त्र निगलिए तथा धीरे-धीरे उसे बाहर निकाल दीजिए। धीरे-धीरे अभ्यास के अनन्तर आप एक छोर को पकड़ कर सारे वस्त्र को निगल सकते हैं। उसे कुछ मिनट तक पेट में रहने दीजिए, तब धीरे-धीरे उसे बाहर निकाल लीजिए। जल्दबाजी न कीजिए। बलपूर्वक वस्त्र को न निकालिए। क्रिया की समाप्ति होने पर एक प्याला दूध पी लीजिए। इससे गले को चिकनाहट मिलेगी। खाली पेट होने पर ही इसे कीजिए। प्रातः का समय अच्छा है। चार-पाँच दिनों में इस क्रिया को एक बार कर लेना पर्याप्त है। श्लेष्मा तथा कफ की प्रकृति वाले व्यक्ति के लिए यह बहुत ही लाभदायक है। इसके स्थिर तथा क्रमिक अभ्यास से गुल्म, मन्दाग्नि तथा पेट की अन्य बीमारियों का निराकरण होता है।

न्योली

आमाशय तथा आन्त्र प्रदेश को सशक्त बनाने के लिए न्योली बहुत ही प्रभावशाली क्रिया है। न्योली के अभ्यास के लिए आपको उडियान बन्ध का अच्छा अभ्यास होना चाहिए।

पैरों को एक फुट अलग रख कर खड़े हो जाइए। अपने हाथों को जाँघों पर रख दीजिए। थोड़ा आगे झुक्किए। मुख से बलपूर्वक श्वास बाहर निकालिए, फेफड़ों को पूर्णत खाली कर दीजिए। पेड़ की मांसपेशियों का आकुंचन कर पीछे पीठ की ओर खींचिए। यह उड्डियान बन्ध है। यह न्योली की प्रथम अवस्था है।

तब पेडू के मध्य भाग को ढीला छोड़िए। सारी मांसपेशियाँ पेट के बीच सीधी लकीर बनायेंगी। इसे मध्यम न्योली कहते हैं। जितनी देर तक बन सके, आरामपूर्वक इस स्थिति को बनाये रखिए। तब सभी मांसपेशियों को ढीला छोड़ते हुए साँस भीतर लीजिए। यह दक्षिण न्योली की द्वितीय अवस्था है।

कुछ अभ्यास के अनन्तर पेट के दाहिने भाग को सिकोड़िए तथा बायें भाग को ढीला छोड़िए। सारी मांसपेशियाँ बायें भाग में आ जायेंगी। इसे वाम न्योली कहते हैं। तब बायें भाग को सिकोड़िए तथा दाहिने भाग को ढीला छोड़िए, यह

दक्षिण न्योली है। शनैः-शनैः अभ्यास के द्वारा आप समझ जायेंगे कि किस तरह बीच, बायें तथा दाहिने भाग की मांसपेशियों को सिकोड़ते हैं। कुछ दिनों तक इस तरह अभ्यास कीजिए।

तब मांसपेशियों को केन्द्र में लाइए। धीरे-धीरे उन्हें वृत्ताकार रूप में बायीं ओर ले जाइए और तदनन्तर दाहिनी ओर। दाहिने से बायें और बायें से दाहिने इस क्रिया को कई बार कीजिए। वृत्ताकार-गति में आप मांसपेशियों को धीरे-धीरे घुमायें। अभ्यास होने पर इसे आप बहुत तीव्र गति से कर सकते हैं। यह न्योली की अन्तिम अवस्था है। यह मन्थन के समान प्रतीत होगी। उन्नत साधकों द्वारा इस क्रिया को देख कर आप आश्चर्य में पड़ जायेंगे। ऐसा मालूम होगा कि फैक्टरी में इंजन काम कर रहा है।

प्रारम्भ में साधकों को दक्षिण न्योली करते समय थोड़ा बायीं ओर मुड़ जाना सहायक सिद्ध होगा। वाम न्योली करते समय थोड़ा दाहिनी ओर झुकना होगा। मध्यम न्योली में सारी मांसपेशियों को बीच में बाहर की ओर फेंकिए तथा दाहिने एवं बायें भाग को सिकोड़े रखिए।

न्योली क्रिया से जीर्ण कोष्ठबद्धता, मन्दाग्नि तथा पेट एवं आँत की अन्य बीमारियाँ दर हो जाती हैं। यकृत तथा प्लीहा शक्ति प्राप्त करते हैं। पेट के सारे अंग सुचारुरूपेण कार्य करने लग जाते हैं।

त्राटक

किसी भी बिन्दु या वस्तु पर स्थिर निर्निमेष दृष्टि बनाये रखना ही त्राटक है। धारणा-शक्ति के विकास तथा मानसिक एकाग्रता के लिए ही इसका अभ्यास करते हैं। यह सभी के लिए लाभदायक है।

पद्मासन या सिद्धासन में बैठ जाइए। आप कुरसी पर भी सीधे बैठ सकते हैं। अपने इष्टदेवता या ॐ का चित्र या सफेद कागज के टुकड़े पर एक काले बिन्दु को सामने रख लें। आप चमकीले तारे अथवा घी-प्रदीप पर भी त्राटक कर सकते हैं। नासिकाग्र तथा दोनों भौंहों के बीच टकटकी लगा कर देखना ही त्राटक है। किसी भी बिन्दु या चित्र की ओर टकटकी लगा कर देखना त्राटक है। आँखें बन्द कर लीजिए तथा उस वस्तु का मानसिक चित्रण कीजिए। दो मिनट के लिए इसका अभ्यास कीजिए और सावधानीपूर्वक त्राटक का समय बढ़ाइए।

त्राटक से नेत्र की दृष्टि बढ़ती है; नेत्र रोग दूर होते हैं। बहुतों ने त्राटक का कुछ अभ्यास कर लेने पर अपने चश्मे फेंक दिये हैं। इससे धारणा-शक्ति का बहुत अंश में विकास होता है।

कपालभाति

कपाल को साफ करने के लिए यह एक क्रिया है। इससे कपाल चमकने लगता है।

पद्मासन या सिद्धासन में बैठ जाइए। आँखें बन्द कर लीजिए। जल्दी-जल्दी रेचक तथा पूरक कीजिए। इसका अभ्यास उग्रतापूर्वक करना चाहिए। आपको जोरों से पसीना आने लगेगा। इससे फेफड़ों का भी व्यायाम हो जाता है। कपालभाति में जो पूर्ण कुशल हैं, वे भस्त्रिका सुगमतापूर्वक कर सकेंगे। पेडू की मांसपेशियों को सिकोड़ते ही बलपूर्वक रेचक करना चाहिए। एक बार में बीस रेचक कीजिए तथा धीरे-धीरे इस संख्या को एक सौ बीस तक बढ़ा ले जाइए। कपालभाति में कुम्भक नहीं है। कपालभाति फेफड़ों तथा नासिका-द्वारों को साफ करती है, श्वास नली से कफ को दूर करती है। अतः इससे दमा रोग में आराम मिलता है तथा कालान्तर में इस रोग का निवारण भी हो जाता है। रुधिर के मल बाहर आ जाते हैं। रुधिर-प्रणाली तथा श्वास-प्रणाली को यथेष्ट मात्रा में बल प्राप्त होता है।

१५. संगीत-साधना

मनुष्य का जीवन विशुद्ध असीम सुख की प्राप्ति का सतत प्रयास है। धर्मग्रन्थों रे इसे प्रमाणित किया है। सुष्टि के आदि काल से ही साधु तथा सन्तजन इस बात की घोषणा करते चले आ रहे हैं कि परमानन्द की प्राप्ति मनुष्य अपनी आत्मा में ही कर सकता है। अतः आत्म-साक्षात्कार आत्मबोध अथवा अपरोक्षानुभूति ही जीवन का चरम लक्ष्य है। इससे ही हमारे सारे दुःखों तथा क्लेशों का अन्त होगा। परन्तु किस तरह हम उसे प्राप्त कर सकते हैं?

आत्म-चैतन्य समाधि अथवा अपरोक्ष ज्ञान की प्राप्ति तभी होगी, जब मन शुद्ध तथा सात्त्विक हो जायेगा। अहंकार के दमन से ही मन की शुद्धता मिल सकती है। अतः अहंता तथा ममता का परित्याग होना चाहिए। इन्द्रियों की शुद्धता तथा उनका नियन्त्रण भी इसमें सन्निहित है। जब तक मन सुसंस्कृत एवं नियन्त्रित नहीं होता, तब तक इन्द्रियों का दमन सम्भव नहीं है। अतः यह जटिल चक्र है। ऋषियों ने ठीक ही घोषणा की है कि 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः' - मन ही मनुष्य के बन्धन तथा मोक्ष का कारण है।

इस दिशा में अनुभवपूर्ण खोजों से यह पता चला है कि प्राण तथा मन परस्परापेक्षी हैं। जब तक उनमें से एक अनियन्त्रित रहेगा, तब तक दूसरा नियन्त्रित नहीं हो सकता है। एक को नियन्त्रित कर लेने पर दूसरा स्वतः नियन्त्रित हो जाता है। उन्हें केवल नियन्त्रण में रखना ही पर्याप्त नहीं है। वासनाओं को जब तक विनष्ट न कर दिया जाये, वे हमें नहीं छोड़ेंगी। वासनाओं के क्षय के बिना चित्त-नाश सम्भव नहीं है। चित्त-नाश से ही तो ज्ञान की प्राप्ति होगी।

अतः हमारे सामने दो मार्ग हैं। विभिन्न यौगिक साधनों के द्वारा प्राण को नियन्त्रण में ला कर मन को वशीभूत करना पहला मार्ग है। दूसरा मनोलय के द्वारा मन को नाश करना है। इसमें उस वस्तु को खोज निकालते हैं, जिसमें मन स्वभावतः ही प्रभावित होने लगता है तथा जिसमें वह विलीन हो जाता है। ऋषियों ने यह अनुभव किया कि मनोलय के द्वारा मनोनाश करना अधिक सुरक्षित मार्ग है।

ऋषियों ने यह खोज निकाला है कि शब्द में मन को आकृष्ट तथा विलीन करने की शक्ति है।

अतः नादयोग के द्वारा मनोलय एवं मनोनाश प्राप्त कर आत्मा-साक्षात्कार प्राप्त करना सरल एवं सुगम समझा गया है।

अनाहत चक्र से निसत नाद का श्रवण करना तथा उस पर नादानुसन्धान है। ध्यान करना ही

इस योग के लिए पूर्वपिक्ष्य वे ही हैं जो अन्य योगों के लिए हैं। नैतिक तथा सदाचार-सम्बन्धी योग्यता प्राथमिक आवश्यकता है। हठयोग तथा प्राणायाम भी आवश्यक है। इनसे धारणा तथा ध्यान के अभ्यास में सहायता मिलती है। अजपाजप अथवा श्वास के साथ सोऽहम-जप से आप सूक्ष्म नाद पर धारणा कर सकते हैं। इससे आप अनाहत नाद को प्राप्त कर सकते हैं।

इन नादों के दो रूप है स्थूल तथा सूक्ष्म। आपको स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना होगा। यदि मन स्थूल शब्द की ओर जाये, तो आप अशान्त न होइए। इसे पहले स्थूल शब्दों में ही अभ्यस्त हो जाने दीजिए। तभी आप इसे सूक्ष्म

नाद की ओर ले जा सकते हैं। सदा ध्यान रखिए कि मनोलय लक्ष्य नहीं है, लक्ष्य तो मनोनाश तथा आत्म-साक्षात्कार ही है।

याद रखिए कि किसी विशेष ध्वनि से आसक्त नहीं होना चाहिए। मन को एक ध्वनि से दूसरी ध्वनि को ले जाइए। इस भाँति दशवीं तक ले जाइए। नादयोग का एक दूसरा भी प्रकार है जिसके अनुयायी ध्वनि-श्रवण की तीन भिन्न अवस्थाओं को बतलाते हैं।

पहली अवस्था वह है जब प्राण तथा अपान ब्रह्मरन्ध्र के निकट मिलते हैं। दूसरी अवस्था में वे ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करते हैं। तीसरी अवस्था वह है जब वे पूर्णतः प्रतिष्ठित हो जाते हैं। पहली अवस्था में समुद्र का गर्जन, ढोल की ध्वनि आदि सुनायी पड़ते हैं। द्वितीय अवस्था में मृदंग, शंख आदि की ध्वनियाँ सुनायी पड़ती हैं। तीसरी अवस्था में किंकिणी, भ्रमर-गुंजार, बाँसुरी अथवा वीणा की ध्वनि सुनायी पड़ती है।

सातवीं ध्वनि (वंशी) के श्रवण करने पर मनुष्य गुप्त वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

नादोपासना के बहुत प्रकारों में संगीत बड़ा ही मनोरंजक तथा सुगम है। संगीत में ही श्रेय तथा प्रेय, जो अन्यत्र एक-दूसरे के विरोधी हैं, आ मिलते हैं। श्रेय वह है जो मनुष्य को आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाता है। प्रेय वह है जो वर्तमान में ही प्रिय है। साधारण रूप से यह ज्ञात है कि जो श्रेय है, वह प्रेय नहीं और जो प्रेय है, वह श्रेय नहीं है: परन्तु संगीत या संकीर्तन में श्रेय तथा प्रेय साथ ही मिलते हैं। संगीत कानों को प्रिय है। यह इन्दियों तथा मन के लिए बहुत ही सुखद है यहाँ तक कि इन्द्रिय तथा मन वशीभूत हो जाते है। संगीत आत्मा को उन्नत करता है तथा उसे प्रकट करता है। अतः संगीत को नादोपासना का सर्वोत्तम प्रकार माना गया है।

संगीतज्ञों में श्रेष्ठ, कवियों के सम्राट, सन्तों के आभूषण, भक्त शिरोमणि श्री त्यागराज जी ने संगीत की दिव्य महिमा को प्रकट किया है। श्री त्यागराज के प्रेरणात्मक संगीत सारे भारत में गाये जाते हैं। उन संगीतों से प्रेरणा तथा मन की प्रसन्नता प्राप्त होती है। श्री त्यागराज की कविताएँ भगवान् राम की महिमा तथा आध्यात्मिक तत्त्व से सम्बन्धित हैं। उन्होंने बारम्बार इस बात पर बल दिया है कि संगीत केवल इन्द्रियों के लिए नहीं है, वरन् आत्मा के लिए भी पोषक है।

त्यागराज अपनी कृति 'नादोपासना' में कहते हैं: 'शास्त्रकार त्रिमूर्तियों ने, धर्म के व्याख्याता महर्षियों ने तथा कला और विज्ञान के आचार्यों ने नादोपासना के द्वारा ही इतनी सफलता प्राप्त की। वे सभी नादोपासना- भाव, राग, ताल की कला में पारंगत थे।" इस सत्य को सदा याद रखिए कि हमारे सारे महान् धर्मग्रन्थ गीत तथा छन्दों में लिखे गये हैं। उनमें राग, ताल तथा स्वर हैं, विशेषकर सामवेद का संगीत तो अद्वितीय ही है। यही कारण है कि त्यागराज सारे ऋषियों तथा महर्षियों को नादोपासक मानते हैं।

त्यागराज 'संगीत शास्त्र ज्ञानमु' में कहते हैं "संगीत शास्त्र के ज्ञान से आप सारूप्य अवस्था प्राप्त कर सकते हैं।" क्यों? क्योंकि "सारे शब्द ॐ से ही निकले हैं। ओंकार सारे वेदों, आगमों, शास्त्रों तथा पुराणों का सारतत्त्व है। ओंकार आपके सारे दुःखों को दूर कर नित्य सुख प्रदान करेगा।" वे अपनी घोषणा के साथ-साथ इस अनुभूति को रखते हैं, "संगीत ने ही इस जगत् में राम का रूप धारण किया है।" यही कारण है कि दूसरी कृति में उन्होंने लिखा है कि जो संगीत से भगवान् की उपासना करता है, वह सारूप्य मुक्ति प्राप्त करेगा; क्योंकि संगीत ही भगवान् है तथा इस पर ध्यान करने से नादोपासक नादस्वरूप या ईश्वर ही बन जाता है।

संगीत केवल स्नायु-उत्तेजन ही नहीं है। यह तो योग है। श्री त्यागराज अपनी 'श्री पप्रिय' में लिखते हैं: "सप्त स्वरों का संगीत उन महान् तपस्वियों के लिए खजाना है जिन्होंने तापत्रय का शमन कर लिया है।"

वास्तव में त्यागराज तो ऐसा ही कहेंगे कि जो संगीत नहीं जानते, उनके लिए मोक्ष असम्भव है। 'मोक्षमुगलदा' में वे कहते हैं "क्या उन लोगों के लिए मोक्ष है जिन्हें भक्ति-संगीत का ज्ञान नहीं, जो इस सत्य को नहीं जानते कि सप्त स्वर प्रणव से निकले हैं, प्रणव, प्राण तथा अग्नि के सहयोग से उत्पन्न हैं, जिन्हें वीणा पसन्द तो है, परन्तु शिव-तत्त्व का ज्ञान नहीं?" यह ठीक है कि संगीत बड़ा ही प्रभावपूर्ण साधन है, परन्तु त्यागराज इस बात पर बल देते हैं कि केवल शब्दों के उच्चारण मात्र से ही संगीत गाने वाले को मोक्ष नहीं प्राप्त होगा। मनुष्य को संगीत के मूल तथा लक्ष्य को खोजना चाहिए।

इस सत्य का साक्षात्कार करने पर मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। त्यागराज अपने 'राग सुधारस में कहते हैं "राग की सुधा का पान कीजिए तथा ज्ञान प्राप्त कीजिए। नादोपासना के द्वारा आप उन सिद्धियों को प्राप्त कर लेंगे, जिनको योगयाग आदि से प्राप्त करते हैं। वे जीवन्मुक्त हैं जिन्हें इसका साक्षात्कार है कि संगीत आत्मा से उत्पन्न ओंकार ही है. जिनका शरीर नाद है सप्त स्वरों से विभूषित यह संगीत ही सदाशिव है।" अतः साधक को शिव-तत्त्व के साक्षात्कार के लिए प्रेरित किया जाता है।

श्री त्यागराज कहते हैं "हे प्रभु, तेरे ही दर्शन को लक्ष्य में रखते हुए तेरे नामों का मधुर गायन तथा आनन्द में नर्तन क्या यह पर्याप्त नहीं है- क्या यह वह स्थिति नहीं है जिसके लिए ऋषिगण कामना करते हैं?" त्यागराज कहते हैं कि नादोपासना स्वयं ही साधक को अद्वैत-साक्षात्कार प्रदान करती है। उसी संगीत में वे कहते हैं: "तुझमें मैं जगत् को देखता हूँ तथा अपनी स्वच्छ और आलोकित बुद्धि के साथ तुझमें ही मैं स्वयं को विलीन करता हूँ।"

१६. प्रार्थना के द्वारा साधना

ईश्वर से योग-प्राप्ति के लिए मनुष्य का प्रयास ही प्रार्थना है। प्रार्थना महती आध्यात्मिक शक्ति है। यह उतना ही ठोस सत्य है जितना कि गुरुत्वाकर्षण का बल।

प्रार्थना मन को उन्नत बनाती है। यह मन को शुद्धता से भर देती है। यह ईश्वर की स्तुति से सम्बन्धित है। यह मन को ईश्वर के साथ एकतान करती है। प्रार्थना उस धाम को पहुँचा सकती है जहाँ तर्क को जाने का साहस नहीं। प्रार्थना आपको आध्यात्मिक धाम को ले जाती है। यह भक्त को मृत्यु के भय से विमुक्त कर देती है। यह मनुष्य को ईश्वर के निकट लाती है तथा उसे अपने अमर सुखमय स्वरूप का साक्षात्कार कराती है।

प्रार्थना की शक्ति अवर्णनीय है। इसकी महिमा अमिट है। भक्तजन ही इसकी महिमा तथा उपयोगिता को समझ पाते हैं। आदर, श्रद्धा, निष्काम भाव तथा भक्ति के साथ प्रार्थना करनी चाहिए। प्रार्थना के विषय में तर्क न कीजिए। आप भ्रमित हो जायेंगे। आध्यात्मिक विषयों में तर्क की आवश्यकता नहीं। इस सीमित बुद्धि पर विश्वास न कीजिए। प्रार्थना की ज्योति से अपनी अविद्या-निशा को दूर कीजिए।

द्रौपदी ने हार्दिक प्रार्थना की। भगवान् कृष्ण उसकी विपत्ति को दूर करने के लिए द्वारका से दौड पडे। गजेन्द्र ने करुण प्रार्थना की। भगवान् हरि सुदर्शन चक्र ले कर उसकी रक्षा के लिए दौड पड़े। प्रह्लाद की प्रार्थना ने उबलते तेल को ठण्ढा बना डाला। मीरा की प्रार्थना ने काँटों की सेज को फूलों में बदल डाला, सर्प को पुष्प-माला में परिणत कार दिया।

प्रार्थना करते समय आप असीम के साथ सम्बद्ध हो जाते हैं। आप हिरण्यगर्भ मे शक्ति, बल तथा ज्योति प्राप्त करते हैं।

प्रार्थना के लिए अधिक विद्वत्ता तथा वक्तृत्व कला की आवश्यकता नहीं। ईश्वर तो आपके हृदय की माँग करता है। निरक्षर किन्तु शुद्ध हृदय के व्यक्ति के विनयपूर्ण टूटे-फूटे अल्प शब्द भी ईश्वर के लिए पर्याप्त हैं।

डाक्टरों द्वारा जिस रोग को असाध्य बतलाया जाता है, प्रार्थना उसे भी चमत्कारिक ढंग से दूर कर देती है। इस प्रकार की बहुत-सी घटनाएँ हुई हैं। प्रार्थना के द्वारा रोग का उपचार बड़ा ही आश्चर्यकर तथा रहस्यमय है।

जो नियमित प्रार्थना करता है, उसने परम शान्ति एवं सुख के पथ को ग्रहण कर लिया है। जो प्रार्थना नहीं करता, वह व्यर्थ ही जीता है।

प्रार्थना का महान् प्रभाव है। मुझे इसके बहुत से अनुभव हैं। यदि प्रार्थना आन्तरिक है, यदि वह आपके हृदय के अन्तस्तल से निसृत होती है, तो वह तत्क्षण ही ईश्वर के हृदय को द्रवित कर देती है।

सांसारिक उद्देश्यों अथवा विषयों के लिए प्रार्थना न कीजिए। उसकी करुणा के लिए प्रार्थना कीजिए। सदा प्रार्थना कीजिए- "हे प्रभु, मैं सदा आपकी याद बनाये रखूँ। मेरा मन आपके चरण-कमलों में लगा रहे। मेरी बुरी आदतों को दूर कीजिए।"

प्रार्थना शुद्ध आध्यात्मिक प्रवाहों का निर्माण करती है तथा मन की शान्ति लाती है। यदि आप नियमित प्रार्थना करें तो शनैः शनैः आपका जीवन परिवर्तित हो जायेगा। प्रार्थना स्वाभाविक बन जानी चाहिए। यदि प्रार्थना आपका स्वभाव बन जाये, तो आप उसके बिना जीवित नहीं रह सकते।

प्रार्थना पर्वतों को चलायमान कर सकती है। प्रार्थना चमत्कार कर सकती है। अपने हृदय के अन्तरतम से एक बार तो प्रार्थना कीजिए- "हे प्रभु, मैं तेरा हूँ। तेरा ही हो कर रहूँगा। मुझ पर करुणा कर। मैं तेरा सेवक हूँ। क्षमा कर। पथ-प्रदर्शन कर। रक्षा कर। प्रकाश दे। त्राहि माम्। प्रचोदयात्।" मन को सरल एवं भावपूर्ण बनाइए। अपने हृदय में भाव लाइए। प्रार्थना तुरन्त ही सुन ली जाती है। अपने दैनिक जीवन-संग्राम में प्रार्थना कीजिए तथा इसके प्रभाव का अनुभव कीजिए। आपमें प्रबल आस्तिक्य वृद्धि होनी चाहिए।

स्वार्थमयी कामनाओं को ले कर ईश्वर से प्रार्थना न कीजिए। कभी न कहिए "हे प्रभु, हम धनी बन जायें। हमें सन्तति, पशु तथा सम्पत्ति दे। मेरे शत्रु विनष्ट हो जायें। मैं बहत काल तक स्वर्ग-सुख का उपभोग करूँ। इस तरह कभी भी प्रार्थना न कीजिए। ईश्वर से व्यापार न कीजिए। ईश्वर आपकी आवश्यकताओं को जानता है। वह तो अन्तर्यामी है। वह समस्त संसार को भोजन-वस्त्र प्रदान करता है। क्या वह कभी भी आपको भूल सकता है?

ईश्वर से विविध उपहारों को प्राप्त करने के लिए ईसाई जन तरह-तरह की प्रार्थना करते हैं। मुसलमान तथा अन्य धर्मावलम्बी भी नित्य-प्रति सूर्योदय, दोपहर, सूर्यास्त, सोने से पूर्व तथा भोजन से पर्व प्रार्थना कर लिया करते हैं। प्रार्थना योग का प्रथम महत्त्वपूर्ण अंग है। प्रारम्भिक आध्यात्मिक साधना प्रार्थना ही है।

प्रार्थना के द्वारा मन तथा शरीर के ऊपर जो लाभकर प्रभाव होते हैं, उन्हें योगी अपने अन्तर्चक्षु से देख सकता है। निष्काम हो कर सच्चाई के साथ ईश्वर की प्रार्थना कीजिए। आप भक्ति, शुद्धता, ज्योति तथा दिव्य ज्ञान प्राप्त करेंगे।

प्रातः सबेरे उठ जाइए। कुछ प्रार्थना कर लीजिए। आप किसी भी तरह प्रार्थना कर सकते हैं। शिशुवत् सरल बनिए। अपने हृदय के प्रकोष्ठों को खोल दीजिए। धूर्तता तथा चालाकी से दूर रहिए। आप सब-कुछ प्राप्त कर सकते हैं। सच्चे भक्तों को भक्ति की महिमा मालूम है। नारद मुनि अब भी प्रार्थना करते हैं। नामदेव ने प्रार्थना की तथा विठ्ठल मूर्ति से निकल कर भोजन करने के लिए बैठ गये। एकनाथ ने प्रार्थना की तथा भगवान् हरि ने चतुर्भुज रूप में अपना दर्शन

दिया। मीरा ने प्रार्थना की, भगवान् कृष्ण ने दास के समान उनकी सेवा की। दामा जी ने प्रार्थना की, भगवान् कृष्ण उनके ऋण के भुगतान के लिए निम्न जाति के व्यक्ति बन गये। अब अधिक आप क्या चाहते हैं? आन्तरिक प्रार्थना कीजिए। इसी क्षण से हार्दिक प्रार्थना कीजिए।

हर प्रातःकालीन निष्काम तथा सच्ची प्रार्थना से आप सभी अमृतत्व प्राप्त करें! प्रार्थना आपके जीवन का अंग बन जाये! प्रार्थना के द्वारा आपके अन्तर्चक्षु उन्मुक्त हों!

१७. समन्वययोग की साधना

विद्वत्तापूर्ण तर्क तथा शब्द-जाल से आप आत्म-साक्षात्कार प्राप्त नहीं कर सकते। समन्वययोग की साधना द्वारा आपको हाथ, शिर तथा हृदय का सर्वांगीण विकास करना होगा। तभी आप पूर्णता प्राप्त कर सकेंगे।

'अहं ब्रह्मास्मि' अथवा 'शिवोऽहम' का जप करना आसान है; परन्तु उसका अनुभव बड़ा ही कठिन है। सभी प्राणियों से एकता स्थापित करना बड़ा ही कठिन है। अथक निष्काम-सेवा, जप, कीर्तन तथा उपासना के द्वारा जब तक मन के मल दूर न हो जायें, समाधि की सम्भावना नहीं है। जप तथा उपासना के द्वारा मन का विक्षेप दूर होगा। मन के विक्षिप्त रहने पर आप ब्रह्म-भावना कैसे कर सकते हैं?

दत्तात्रेय तथा याज्ञवल्क्य जैसे महापुरुष ही वास्तव में वेदान्त-साधना के अधिकारी हैं। वे लोग ही जो देह-चेतना से ऊपर उठ गये हैं, अधिकारपूर्वक ऐसा कह सकते हैं- "जगत् मिथ्या है। जगत् है ही नहीं। यह जगत् मृग मरीचिका है अथवा स्वप्न है।" आप सभी रोटी तथा दाल ही हैं। आप चौबीसों घण्टे अन्नमय कोश में ही रहते हैं। यदि चाय में चीनी कम हो अथवा न हो, दाल में नमक कम हो अथवा न हो, तो आप अशान्त हो जाते हैं। आप भोजन नहीं करते। फिर 'शिवोऽहम्' अथवा 'अहं ब्रह्मास्मि' अथवा 'सोऽहम्' का जप करना तो व्यर्थ ही है।

आप कल्पना करते हैं कि आप तुरीयावस्था को प्राप्त कर चुके हैं। आप समझते हैं कि आपने शरीर-चेतना का अतिक्रमण कर लिया है; परन्तु यदि व्यावहारिक जाँच की गयी, तो आप गहरी विफलता प्राप्त करेंगे। भगवान् बुद्ध की भी जाँच हुई थी। मार ने उनके समक्ष प्रकट हो कर उन्हें प्रलोभित किया था। अप्पर तथा अन्य सभी साधुओं की जाँच हुई थी। वे सभी जाँच में विजयी निकले।

यम-नियम के अभ्यास द्वारा पहले दृढ़ नींव का निर्माण कर लीजिए। अथक निष्काम सेवा तथा उपासना के द्वारा हृदय के शुद्ध हो जाने पर ही वेदान्त की इमारत खड़ी की जा सकती है। ईश्वर की कृपा द्वारा ही मन में अवस्थित सूक्ष्म वृत्तियों का विनाश सम्भव है। वैयक्तिक साधना द्वारा आप करोड़ों जन्मों में भी मन के मल को दूर नहीं कर सकते। जिस व्यक्ति को भगवान् अपने चरणों में लाना चाहता है, वह उसे पूर्ण तथा मुक्त बना डालता है। यह कठोपनिषद् की भी घोषणा है।

मनुष्य अद्वैत-दर्शन पर कई घण्टों तक भाषण दे सकता है। एक ही श्लोक की सैकड़ों प्रकार से व्याख्या कर सकता है। गीता के एक ही श्लोक पर वह एक सप्ताह भाषण दे सकता है। फिर भी उसमें रंचमात्र भी भक्ति तथा वेदान्त-साक्षात्कार नहीं हो सकता। यह सब शुष्क बौद्धिक व्यायाम के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। वेदान्त तो जीवन्त अनुभव है। वेदान्ती को इसका विज्ञापन करने की आवश्यकता नहीं कि वह अद्वैती है। बेदान्तिक एकता की मधुर सुरभि सदा उससे संचरित होती रहेगी। कोई भी व्यक्ति इसका अनुभव कर सकता है।

मन्दिर में किसी मुर्ति के समक्ष नमन करने से वेदान्ती लज्जा का अनुभव करता है। वह सोचता है कि साष्टांग प्रणाम करने से उसका वेदान्तिक अनुभव वाष्पवत् विलीन हो जायेगा। विख्यात तमिल साधु-अप्पर, सुन्दरार, सम्बन्धर आदि के जीवन-चरित्र को पढिए। उन्हें परम अद्वैत का साक्षात्कार प्राप्त था। वे सर्वत्र भगवान शिव के दर्शन करते थे। वे सभी शिव मन्दिरों में जा कर साष्टांग दण्डवत् करते थे। वे शिवजी की स्तुति करते थे। उन स्तुतियों का संग्रह पुस्तकों में अब भी प्राप्त है। तिरसठ नयनार सन्तों ने केवल चरियै तथा किरिये का अभ्यास किया तथा साक्षात्कार प्राप्त कर लिया। वे मन्दिर के फर्श को साफ करते, फूलों का संग्रह करते, प्रभु के लिए माला बनाते तथा मन्दिर में प्रदीप जलाते थे। वे निरक्षर थे; परन्तु उन्हें परम साक्षात्कार प्राप्त था। वे व्यावहारिक योगी थे। उनके हृदय भक्ति से सन्तृप्त थे। वे कर्मयोग के मूर्तिमान स्वरूप थे। उन सभी ने समन्वययोग का अभ्यास किया। मन्दिर की मूर्ति उनके लिए चैतन्य-स्वरूप थी। वह प्रस्तर-खण्ड मात्र न थी।

चाय की आदत को भी दूर करना कितना कठिन है। यह आदत तो कुछ ही वर्षों से पड़ी हुई है। यदि एक दिन भी आप चाय न लें, तो कब्ज तथा शिर-दर्द की शिकायत करने लगते हैं। आप काम करने में समर्थ नहीं होते। कितने दुर्बल आप बन गये हैं! फिर तो मन में गहरी गड़ी हुई बुरी वृत्तियों का उन्मूलन करना कितना कठिन होगा! उन वृत्तियों ने पुनरावृत्ति के द्वारा कितना बल प्राप्त कर लिया है।

वेदान्त का वक्ता बनना आसान है। यदि आप कुछ वर्षों तक पुस्तकालयों में बैठ कर अपने शब्दकोष तथा मुहावरों के ज्ञान को बढ़ा लें तथा कुछ सन्दर्भो को याद कर लें, तो आप सुन्दर भाषण दे सकेंगे। परन्तु किसी दुर्गुण को दूर करना उतना आसान नहीं है। सच्चा साधक ही इस कठिनाई को समझ सकता है।

आँखें बन्द कर लीजिए तथा विचारिए कि आपने अपने जीवन में कितने सत्कर्म किये हैं जिन्हें ईश्वर के लिए अर्पित किया जा सके और जो वास्तव में ईश्वर को प्रसन्न कर सकें। हो सकता है कि आपने कोई भी निष्काम कर्म न किये हों। कर्मयोग के अभ्यास के लिए अधिक धन की आवश्यकता नहीं है। मानव जाति की सेवा के लिए सहानुभूतिपूर्ण हृदय की आवश्यकता है। यदि आप सड़क के किनारे किसी गरीब को पीड़ित देखें, तो उसे अपनी पीठ पर बैठा कर अस्पताल में भर्ती करा दें; अपने पड़ोस के गरीब एवं बीमार व्यक्ति की सेवा-सुश्रूषा करें। अस्पताल जा कर प्रेमपूर्ण हृदय से रोगी व्यक्तियों की सेवा करें। उनके स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना करें। उनके सामने गीता का पाठ करें। इस प्रकार के कार्यों से आपका हृदय शुद्ध हो जायेगा तथा आप सभी प्राणियों में एकता का अनुभव करने लगेंगे। तब आप गुलाब के साथ मुस्करायेंगे; वृक्षों, सरिताओं तथा पर्वतों के साथ बातें करेंगे। यदि निष्काम भाव से एक भी शुभ काम कर लें, तो इससे आपका हृदय शुद्ध होगा तथा मन ईश्वर की ओर मुड़ेगा। आप ईश्वरीय ज्योति तथा कृपा की प्राप्ति के अधिकारी बन जायेंगे।

हृदय के मलों को दूर किये बिना बन्द गृह में आँख बन्द कर पद्मासन लगा कर ध्यान करने से आप समाधि नहीं प्राप्त कर सकते। आप हवाई किले (मनोराज्य) बनाने लगेंगे अथवा तन्द्रिल अथवा तूष्णीभूत अवस्था में रहेंगे। अज्ञ साधक इन अवस्थाओं को ही भ्रमवश समाधि मान बैठता है। यह भारी भूल है। यदि कोई व्यक्ति आधे घण्टे के लिए भी गम्भीरतापूर्वक ध्यान कर लें, तो वह महान् योगी हो जायेगा। वह हजारों में शक्ति, आनन्द तथा शान्ति का संचार करने लगेगा।

सच्चा वेदान्ती जो सभी के साथ एकता का भान करता है, अपने लिए एक प्याला दूध भी बचा कर नहीं रख सकता। जो कुछ भी उसके पास है, उसमें वह दूसरों को भी हिस्सा देगा। पहले वह इसका पता लगा लेगा कि किसी बीमार आदमी को दूध की जरूरत तो नहीं है। वह दौड़ता हुआ वहाँ जायेगा तथा तुरन्त उसे दूध देगा और ऐसी सेवा में सुख का अनुभव करेगा। आजकल रिटायर्ड (अवकाश-प्राप्त) लोग गंगा-तट पर निवास करते हैं, वे वेदान्त की कुछ पुस्तकें पढ़ लेते हैं तथा सोचते हैं कि अब जीवन्मुक्त अवस्था प्राप्त हो गयी है। वे अपने लिए सारा धन व्यय करते हैं और बाकी

को अपने पुत्रों के पास भेज देते हैं। उनके हृदय का विकास नहीं हुआ है। वे दूसरों के लिए सहानुभूति नहीं रखते। आध्यात्मिक मार्ग में उन्हें रंच मात्र भी उन्नति नहीं हुई है; क्योंकि उनमें हृदय की विशालता या उदार वृत्ति नहीं है। वे उसी अवस्था में रहते हैं जिस अवस्था में वे पन्दरह वर्ष पूर्व थे। यह खेद की बात है। उन्हें एक वर्ष तक भिक्षा पर ही रहना चाहिए और अपनी सारी पेंशन (अनुवृत्ति) से गरीबों की सेवा करनी चाहिए। वे एक वर्ष में ही आत्म-साक्षात्कार कर लेंगे। शीतकाल में दो मास तक उन्हें निर्धन की भाँति भ्रमण करना चाहिए। वे नम्र, कारुणिक तथा अधिक उदार बन जायेंगे। उनमें इच्छा-शक्ति तथा सहनशीलता का विकास होगा। अपने भ्रमण काल में वे ईश्वरीय कृपा के रहस्यों को समझ पायेंगे। ईश्वर में उनकी श्रद्धा दृढ़ हो जायेगी। वे भूख की ज्वाला तथा कँपकँपाती ठण्ड का अनुभव करेंगे। अब वे समझ सकेंगे कि गरीब लोगों को कितना दुःख होता है। वे गरीबों को कम्बल बाँटंगे तथा भूखों को अन्न देंगे: क्योंकि उन्हें उनके दुःखों का ज्ञान रहेगा।

आप अपना समय गंवा रहे है। आप अन्तनिरीक्षण का अभ्यास नहीं करते। आप प्रातः उठते. चाय पीते तथा अपने वस्त्रों को पहन कर कार्यालय को चले जाते हैं। आप सेक्लबों में जाते, सायंकाल को गप्पें लगाते, ताश खेलते, सिनेमा जाते और आठ बजे प्रातः तक खटि लगाते रहते हैं। इस प्रकार आपके जीवन का अपव्यय होता है। आप जप तथा ध्यान का अभ्यास नहीं कर रहे हैं। आप नहीं जानते कि कौन-सी वृत्ति आपको कष्ट दे रही है: कौन-सा गुण किसी विशेष समय में प्रधानता को प्राप्त करता है? आप मनोविज्ञान के विषय में कुछ भी नहीं जानते। आप ब्रह्म-विचार, आत्म-चिन्तन अथवा बानिष्ठा के विषय में कुछ भी नहीं जानते। आप महात्माओं का सत्संग नहीं करते। आपके जीवन का कुछ भी कार्यक्रम नहीं है। रिटायर्ड होने के बाद भी आप राज्य में नौकरी कर लेते हैं; क्योंकि आध्यात्मिक साधना में समय लगाने की कला आपको मालूम ही नहीं है। आपको मनन एवं विचार का ज्ञान ही नहीं है; क्योंकि अपनी युवावस्था में आपने आध्यात्मिक अनुशासनों का पालन किया नहीं। आपने व्यर्थ ही जीवन बिताया है, केवल जेब तथा पेट भरने के लिए।

वेदान्तियों के लिए भी संकीर्तन बड़ा सहायक है। मन के थक जाने पर कीर्तन उनमें नयी स्फूर्ति तथा प्रेरणा भरेगा। संकीर्तन मन को आराम पहुँचाता, उन्नत करता तथा ध्यान के लिए तैयार करता है। जब मन ध्यान करने से उचट जाये तो संकीर्तन उसे पुनः लक्ष्य पर लगा देगा। जो ध्यान का अभ्यास करते हैं, वही इसे समझ सकते हैं।

क्या आप चौबीसों घण्टे ध्यान कर सकते हैं? निश्चय ही नहीं। तब आप चौबीस घण्टे किस तरह बिताने जा रहे हैं। ध्यान के नाम पर तामसिक न बन जाइए। जब मन भटकने लगे, जब एकाग्रता का अभ्यास कठिन हो जाये, तो कमरे के बाहर निकल आइए तथा कुछ उपयोगी सेवा में निरत हो जाइए। सेवा करते समय भी ध्यान के प्रवाह को बनाये रखिए अथवा कुछ मानसिक जप कर लीजिए। ध्यान आपको प्रसन्न, अन्तर्मुखी, चिन्तनशील, बलवान्, शान्त, स्फूर्तिमान तथा प्रखर बनायेगा। यदि आपमें इन गुणों का अभाव है, तो निश्चय ही आपके ध्यान में कुछ कमी है। सम्भवतः आप सतत ध्यानयोग के अधिकारी नहीं हैं। आपको ध्यान के साथ-साथ कार्य का समन्वय करना होगा। तभी आपकी प्रगति होगी।

पक्षी दो पंखों के बिना उड़ नहीं सकता। दो पंख होने पर भी यदि पूँछ न हो, तो वह उड़ नहीं सकता। पूँछ पक्षी को सन्तुलित रखती तथा उसकी ठीक दिशा को निर्धारित करती है। यह उसे गिरने से बचाती है। कर्म, भक्ति तथा ज्ञान को सन्तुलित रखने वाली यह पूँछ भक्ति है। दो पंख कर्म तथा ज्ञान हैं। कर्म, भक्ति तथा ज्ञान परिपूर्णता की प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं। इनसे हृदय, शिर तथा हाथ का विकास होगा। आप लक्ष्य पर पहुँच सकेंगे।

क्या आपने शिव-परिवार का चित्र देखा है? केन्द्र में माँ पार्वती हैं। उनके अलग-बगल गणेश जी तथा सुब्रह्मण्य आसीन हैं। गणेश ज्ञान के ईश्वर हैं। सुब्रह्मण्य कर्म के ईश्वर हैं। वे देवताओं के सेनानायक हैं। माँ पार्वती भक्ति हैं। इस चित्र से

आपको आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। यह चित्र यही शिक्षा देता है कि समन्वययोग के अभ्यास से ही आप पूर्णता की प्राप्ति कर सकते हैं।

भगवान् कृष्ण समन्वययोग में पारंगत हैं। वे सारथि हैं। वे राजनीतिज्ञ हैं। वे संगीत-सम्राट् हैं। वे रासलीला के निपुण नर्तक हैं। वे महान् तीरन्दाज हैं। वे कहते हैं- "इन तीनों लोकों में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो प्राप्त न हो, फिर भी मैं कर्म में संलग्न रहता हूँ।" श्री शंकराचार्य, भगवान् जीसस, भगवान् बुद्ध-ये सभी समन्वययोग में निपुण थे। श्री अरविन्द, महात्मा गान्धी, साधु वासवानी इत्यादि सभी समन्वययोग का अभ्यास करते रहे थे।

ज्ञानयोग का मूल साधन-चतुष्टय में है। इसमें ब्रह्मज्ञान का फूल लगता है तथा मोक्ष या कैवल्य के फल की प्राप्ति होती है।

भक्ति का मूल श्रद्धा या आत्मार्पण में है। प्रेम का पुष्प खिलता है तथा ईश्वर-प्राप्ति या भाव-समाधि का फल लगता है।

राजयोग का मूल यम तथा नियम में है। एकाग्रता का फूल लगता है तथा असम्प्रज्ञात या निर्विकल्प समाधि का फल लगता है।

कर्मयोग का मूल है आत्म-त्याग; चित्तशुद्धि तथा चित्तविशालता हैं उसके फूल और उसमें ब्रह्मज्ञान का फल लगता है।

सत्य तथा ब्रह्मचर्य कुण्डलिनीयोग के मूल हैं। ईश्वरीय माता की कृपा फूल है तथा शिव-योग की प्राप्ति फल है।

आसन तथा प्राणायाम हठयोग के मूल हैं; विश्रान्ति फूल है; कायसम्पत्, दीर्घायु तथा कुण्डलिनी जागृति के फल लगते हैं।

अध्याय ९:साधना का महत्त्व

१. मानव-स्वभाव का अध्यात्मीकरण

यह क्षुद्र हठी अहंकार, जो मानवीय व्यक्तित्व का प्रेरक है, ध्यान तथा आत्म-साक्षात्कार के लिए महान् बाधा है। यह क्षुद्र अहंकार अपने सारे बाह्य विचारों का आधार है तथा इसके स्वाभाविक भावना, चरित्र तथा कार्यों का शासक है। राजसिक तथा तामसिक अहंकार ही उन्नत दिव्य स्वभाव को आच्छादित करते हैं। यह स्वयंप्रकाश, अमर आत्मा को आच्छादित करता है।

आपमें सत्य के लिए उत्कण्ठा हो सकती है, आपमें भक्ति भी हो सकती है, बाधाओं तथा विपरीत शक्तियों से लोहा लेने के लिए आपमें संकल्प-शक्ति भी हो सकती है; फिर भी यदि अहंकार बना हुआ है, यदि बाह्य व्यक्तित्व रूपान्तरण प्राप्त करना नहीं चाहता है, तो आप त्वरित उन्नति नहीं कर सकते।

अतः निम्न प्रकृति को पूर्णतः रूपान्तरित करना होगा। साधक की स्वाभाविक निम्न प्रकृति पूर्णतः बदल जानी चाहिए। यदि यह न हुआ, तो किसी प्रकार का आध्यात्मिक अनुभव या सिद्धि किसी काम की नहीं। यदि क्षुद्र अहंकार ने अपने संकीर्ण, स्वार्थमय, अशिष्ट, मिथ्या तथा मूर्खतापूर्ण मानव-चैतन्य को बनाये रखा, तो कितनी भी तपस्या या साधना निष्फल ही रह जायेगी। इसका अर्थ है कि आप वास्तव में ईश्वर-साक्षात्कार के लिए लालायित नहीं हैं। आलस्यपूर्ण कुतूहल के अतिरिक्त आपकी साधना और कुछ भी नहीं है। साधक गुरु से कहता है, "मैं योग का अभ्यास करना चाहता हूँ। मैं निर्विकल्प समाधि में प्रवेश करना चाहता हूँ। मैं आपके चरणों में बैठना चाहता हूँ।" परन्तु वह अपनी निम्न प्रकृति तथा पुरानी आदतों को बदलना नहीं चाहता। वह अपनी आदतों को बनाये रखना चाहता है।

यदि साधक अपनी निम्न प्रकृति को परिवर्तित करने से इनकार करे, यदि वह इसकी आवश्यकता ही न समझे तो वह कभी भी, अल्प मात्रा में भी, आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सकता। निम्न प्रकृति में रूपान्तरण के बिना किसी प्रकार का भी स्थायी आध्यात्मिक जागरण या अनुभव कुछ भी व्यावहारिक महत्त्व नहीं रखता।

निम्न प्रकृति का रूपान्तरण आसान नहीं है। आदत की शक्ति बहुत ही सबल तथा हठी है। इसके लिए प्रबल संकल्प-शक्ति की आवश्यकता है। पुरानी आदतों के सामने साधक कभी-कभी असहाय हो जाता है। उसे जप, कीर्तन, ध्यान, अथक निष्काम सेवा तथा सत्संग के द्वारा अपने सकल्प तथा सत्त्व को बहुत हद तक विकसित करना होगा। उसे अन्तर्निरीक्षण के द्वारा अपने दोषों का ज्ञान कर लेना होगा। अपने गुरु के पथ-प्रदर्शन में उसे रहना होगा। गुरु उसके दोषों को बतलाता है तथा उन्हें दूर करने के लिए उपयुक्त साधनों को निर्धारित करता है। यदि निम्न प्रकृति हठी है, यदि यह निम्न मन तथा संकल्प द्वारा परिपोषित है तो स्थिति चिन्ताजनक है। वह अनियन्त्रित, उद्धत, हठी तथा उपद्रवी बन जाता है। वह सारे नियमों तथा अनुशासनों को तोड़ बैठता है।

ऐसा साधक अपनी पुरानी प्रकृति से ही आसक्त बना रहता है। भगवान् या गुरु के प्रति उसने आत्मार्पण नहीं किया है। वह किसी व्यक्ति या तुच्छ वस्तुओं के प्रति संघर्ष करने के लिए सदा तैयार रहता है। वह कभी भी आज्ञा पालन नहीं करता। वह आध्यात्मिक उपदेश ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं है। वह स्वेच्छाचारी है। वह अपने दोषों एवं दुर्बलताओं को मान लेने के लिए राजी नहीं है। वह सोचता है कि मैं निष्कलंक सिद्ध पुरुष हूँ। वह मौज का जीवन बिताता है।

पुराना व्यक्तित्व पुराने स्वभाव के साथ पुनः प्रकट होता है। वह अपने पुराने अभिमानपूर्ण विचारों, कामनाओं, प्रवृत्तियों अथवा सुविधाओं का अनुगमन करने लगता है। वह अपनी आसुरी प्रकृति के ऊपर अपना अधिकार सिद्ध करता है। असत्य, अज्ञान, स्वार्थ, उद्धतपन तथा मन, वचन एव कर्म से अशुभ वासनाओं को व्यक्त करने लगता है। है

वह जोरों से बहस कर सकता है तथा विविध भाँति से अपनी बातों को सिद्ध करता । वह अपने प्राचीन विचार, वचन तथा भावना को ही बनाये रखता है।

वह कहता तो कुछ और है, और करता कुछ और ही है। वह दूसरों के ऊपर अपने गलत विचारों तथा धारणाओं को आरोपित करना चाहता है। यदि दूसरे लोग उसके बुरे विचारों को ग्रहण नहीं करते, तो वह उनसे युद्ध करने के लिए तैयार हो जाता है। वह तुरन्त उपद्रव खड़ा कर देता है। वह कहता है कि उसके विचार ही ठीक हैं तथा जो लोग उसके विचारों का विरोध करते हैं, उनके तर्क अशिक्षित, मूर्खतापूर्ण तथा गलत हैं। वह दूसरों को यह बतलाना चाहता है कि उसके विचार ही तर्कसंगत हैं तथा उसके ही कर्म ठीक हैं। उसके विचार एवं कर्म योग के अनुकूल हैं। ऐसे लोग अनोखे हैं। ऐसे अनोखे लोगों की इस जगत् में बड़ी आवश्यकता है।

यदि वह वास्तव में अपने प्रति सच्चा है तथा गुरु के प्रति सरल स्वभाव रखता है, तो वह अपने दोषों को स्वीकार करने लगेगा तथा उनके मूल को पहचानने के लिए प्रयत्न करेगा। वह शीघ्र ही सन्मार्ग पर आ जायेगा। परन्तु वह किसी-न-किसी प्रकार अपनी आसुरी प्रकृति को छिपाये रखना ही पसन्द करता है।

अहंकारी साधक अपने को समाज में प्रतिष्ठित देखना चाहता है। वह अपने को महान् सिद्ध योगी बतलाता है जिसे बहुत-सी सिद्धियाँ प्राप्त हैं। वह अपने को उन्नत साधक है अथवा उन्नत ज्ञानी बतलाता है। अभिमान, अहंकार तथा राजसिक प्रदर्शन की भावना अल्प अंश में अधिकांश मनुष्यों में बनी हुई है।

वह अपने गुरु के आदेशों का पालन करने में सहमत नहीं है। वह बड़ों का सम्मान नहीं करता। वह अनुशासन को तोड़ने के लिए सदैव तैयार रहता है। उसके अपने विचार तथा आवेग हैं। उसमें अवज्ञा तथा अनुशासन-भंग की आदतें गड़ी हुई हैं। कभी-कभी वह प्रतिज्ञा करता है कि वह गुरु तथा बड़ों का आज्ञाकारी रहेगा; परन्तु उसके कार्य इस प्रतिज्ञा के विपरीत होते हैं। अनुशासन की अवज्ञा साधना के लिए भारी विघ्न है। वह दूसरों के लिए बहुत ही बुरा उदाहरण प्रस्तुत करता है।

जो आज्ञाकारी नहीं है, जो अनुशासन को तोड़ता है, जो गुरु के प्रति निष्कपट स्वभाव नहीं रखता, जो अपने गुरु के प्रति अपने हृदय को उन्मुक्त नहीं करता, वह गुरु की सहायता से लाभ नहीं उठा सकता। वह अपने अहंकार से उत्पन्न दलदल में ही फँसा रह जाता है। कितनी दयनीय अवस्था है! उसका भाग्य खेदजनक है।

वह पाखण्ड का अभ्यास करता है। वह बहाने बनाता है। वह वस्तुओं की अत्युक्ति करता है। वह कल्पना का दुरुपयोग करता है। वह तथ्यों को विकृत बना देता है। वह अपने विचारों को छिपाता है। वह कुछ सत्य बातों को पूर्णतः इनकार कर बैठता है। वह भयंकर झूठ बोलता है। वह अपनी अवज्ञा तथा गलत कार्यों को छिपाने, अपनी स्थिति बनाये रखने तथा अपने पुराने विचारों तथा आदतों में गर्क बने रहने के लिए ऐसा करता है।

वह स्वयं नहीं जानता कि वह क्या कर रहा है; क्योंकि उसकी बुद्धि मलों से आच्छादित रहती है। वह नहीं जानता कि उसके कहने का अभिप्राय क्या है अथवा क्या नहीं है।

वह अपने दोषों को कभी भी स्वीकार नहीं करता। यदि कोई व्यक्ति उसे संकेत करता है, तो वह अत्यन्त रुष्ट हो जाता है। वह उसके विरुद्ध युद्ध छेड़ देता है। उसके अन्दर अधिक पशुता है।

उसके अन्दर आत्म-प्रशस्ति की भयंकर आदत है। वह सदा स्वयं को ठीक बतलाता है। अपने पद को बनाये रखने के लिए वह अपने विचारों से ही चिपका रहता है और उसके लिए वह मूर्खतापूर्ण, असंगत तर्कों, तरीकों तथा चालों का सहारा लेता है। अपने मूर्खतापूर्ण कार्यों की परिष्टि के लिए वह अपनी बुद्धि का दुरुपयोग करता है। ये दोष सभी में हैं, कुछ में अधिक तो कुछ में कम।

यदि वह अपनी वर्तमान दयनीय स्थिति के प्रति अल्प मात्र भी अनुभूति रखता है, यदि वह अल्प उन्नति लाता है, यदि उसमें अल्प मात्र भी ग्राहिका बुद्धि है, तो उसका सुधार किया जा सकता है। वह योग के मार्ग में उन्नति कर सकता है। यदि वह हठी है, यदि वह पूर्णतः स्वेच्छाचारी है, यदि वह स्वेच्छापूर्वक बारम्बार अपनी आँखों को सत्य एवं दिव्य ज्योति के प्रति बन्द रखता है तथा हृदय को पाषाणवत् कठोर बनाये रखता है, तो उसे कोई भी सहायता प्रदान नहीं कर सकता।

साधक को अपनी निम्न प्रकृति की परिणति के लिए सर्व भाव से प्रयास करना चाहिए। उसे गुरु अथवा ईश्वर के प्रति पूर्ण तथा अशेष आत्मार्पण करना चाहिए। उसका भाव सच्चा तथा दृष्टि स्थायी होनी चाहिए। तभी वास्तविक परिवर्तन सम्भव है। केवल शिर हिलाने, स्वीकृति देने आदि से काम नहीं चलेगा। इससे आप महापुरुष अथवा योगी नहीं बन सकते।

योग का अभ्यास वे ही कर सकते हैं जो सच्चे हैं तथा जो अपने क्षुद्र अहंकार तथा उसकी माँगों को विनष्ट करने के लिए तैयार हैं। आध्यात्मिक मार्ग में अधूरी नीति नहीं चल सकती। इन्द्रिय तथा मन का कठोर अनुशासन, उग्र तप तथा सतत ध्यान ईश्वर-साक्षात्कार के लिए आवश्यक हैं। यदि आप सावधान नहीं हैं, तो विरोधी शक्तियाँ आपको पददलित करने को सदा तैयार हैं। यदि आप अपनी पुरानी आदत अथवा प्रकृति से चिपके हुए हैं, तो योग का अभ्यास सम्भव नहीं है।

आप एक ही समय में द्विविध जीवन व्यतीत नहीं कर सकते। शुद्ध दिव्य जीवन, योगमय जीवन अज्ञान तथा कामुक जीवन के साथ-साथ नहीं चल सकते। दिव्य जीवन आपके निम्न पैमानों में ही नहीं उतर सकता। आपको क्षुद्र मानव-स्तर से ऊपर उठना होगा, आपको दिव्य चैतन्य के उन्नत स्तर की ओर अपने को उठाना होगा। यदि योगी बनना है, तो अपने क्षुद्र मन तथा अहंकार के लिए स्वतन्त्रता नहीं खोजनी चाहिए। आपको अपने विचारों, कामनाओं तथा प्रवृत्तियों को ही ठीक नहीं बतलाना चाहिए। दिव्य ज्योति के अवतरण के मार्ग में निम्न प्रकृति तथा उसकी सेना - उद्दण्डता, अज्ञान, उत्तेजना आदि बाधक हैं।

योग-मार्ग के सच्चे साधक बनिए। उन्नत प्रकृति के विकास द्वारा निम्न प्रकृति को नष्ट कीजिए। ऊपर उठिए। दिव्य ज्योति के अवतरण के लिए प्रस्तुत हो जाइए। शुद्ध बनिए तथा सक्रिय योगी बन जाइए।

२. जीवन का परम उद्देश्य

पृथ्वी पर का जीवन ज्ञान तथा आत्म-साक्षात्कार के लिए पाठशाला है। ईश्वर अदृष्ट गुरु है जो अपने महान् पुत्रों तथा प्रकृति के द्वारा मनुष्य को नित्य सुख की प्राप्ति के रहस्यों की शिक्षा देता है। जीवन शिक्षाओं से भरपूर है। जो उन्हें सुनता है, वह मुक्ति अथवा ज्योति की ओर अग्रसर होता है और जो उनकी अवहेलना करता है, वह अन्धकार में मग्न

रहता है। चतुर्दिक् दुःख तथा विपत्ति आपको यह स्पष्टतः बतलाते हैं कि आपने जान-बूझ कर जीवन के उपदेशों की अवहेलना की है। मूर्ख मानव ! शताब्दियों की नसीहतों की बारम्बार की गयी अवहेलना ने आपकी गर्वीली सभ्यता को घृणा तथा लोभकी चट्टान पर जा पटका है। अनेकानेक चेतावनियों को आपने हठपूर्वक इनकार कर इस भूतल पर आपत्तियों को आमन्त्रित किया है। सारा इतिहास इस बात की बारम्बार शिक्षा देता है कि शक्ति के दुरुपयोग से कष्ट मिलता है, हिंसा तथा घृणा का अन्त विनाश और विपत्ति में ही होता है।

हे अज्ञ मनुष्य ! स्वार्थान्ध हो कर आपने अभी भी लोभ का संवरण करना सीखा नहीं। अपनी कामनाओं का दमन, बन्धुओं से प्रेम, बल के साथ करुणा तथा शक्ति के साथ न्याय का प्रयोग करना आपने नहीं सीखा। भौतिक उन्नति ने आपको सहायता दी है कि आप दुर्बल तथा सरल व्यक्तियों पर अपना आधिपत्य जमा लें-उन व्यक्तियों पर जो इस पृथ्वी के आभूषण हैं। परन्तु आप स्वयं भौतिक बल के सम्मोहन में फँस गये हैं। आप शक्ति के गुलाम बन गये हैं। आपका मोह दयनीय है। विज्ञान के दरवाजे पर भिक्षुक बन कर उस शक्ति की याचना न कीजिए जो सृजन की अपेक्षा ध्वंस ही अधिक करती है। अपने अन्दर खोजिए। सारी शक्ति आपके अन्दर है। आपमें असीम नित्य शक्ति है। अपने मन में आप समझते हैं कि आपने विजय पायी है; परन्तु वास्तव में आपने हार खायी है। आपके अन्दर की पशुता ने ही विजय पायी है, और कैसी विजय ? आपके अन्दर की मानवता के ऊपर। आप कल्पना करते हैं कि आपको बड़ी अच्छी सफलता मिली है। आपकी पूर्णतः विफलता हुई है। मानवता ने घृणा से लोहा लेने के लिए अति घृणा का उपयोग किया है। जीवन का यह उपदेश सनातन रहा है- "घृणा के ऊपर घृणा से विजय नहीं होती, घृणा तो प्रेम से ही जीती जाती है।" महान् बुद्ध ने क्या अपना जीवन व्यर्थ ही बिताया ? आध्यात्मिक धन ही वास्तविक सम्पत्ति है। जगत् की सारी सम्पत्ति मिथ्या ही है। आज मनुष्य के हृदय पर शैतान ने अधिकार जमा लिया है। "सारे दृश्य झूठे हैं। परम सत्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील बनिए" - यह श्री शंकर का उद्घोष है। फिर भी आपने पार्थिव जगत् को ही ठोस सत्य बना लिया है। यह खतरनाक मृगतृष्णा मानवता को विनाश की ओर प्रेरित कर रही है।

आज मानवता अर्थनीति, राजनीति तथा समाजनीति के प्रतिकूल सिद्धान्तों का अनुसरण कर माया में गम्भीरतर निमग्न होती जा रही है। पुनर्निर्माण के विचार तथा योजनाओं के द्वारा युद्ध-शस्त्रों का निर्माण किया जा रहा है जिनसे अधिकाधिक ध्वंस अवश्यम्भावी है। इस पतन को रोकिए। समय रहते ही सावधान हो जाइए। पुनः उठिए। इस प्रतीयमान विजय को वास्तविक विजय में बदल डालिए। मार के प्रलोभनों के ऊपर विजय प्राप्त कीजिए। आप सुन्दर पलस्तर, रंगीन ईंटों, अनुकूल वातायनों, रंगीन द्वारों तथा खिड़कियों से युक्त सुन्दर अट्टालिका का निर्माण कर सकते हैं; परन्तु यदि उसकी नींव बालू की है, तो सारा भवन गिर कर ध्वस्त हो जायेगा। मनुष्य ने आधुनिक सभ्यता का निर्माण इसी बालू की नींव पर किया है। इस भवन में हर व्यक्ति ही ईंट है; परन्तु वह स्वयं आसुरी, अधर्मी, लोभी एवं स्वार्थी बन बैठा है। अतः सारी बाह्य चमक-दमक के रहते हुए भी विकृत भवन घृणा एवं काम की आँधी से ध्वस्त हो चला है।

मैं हर व्यक्ति से कहता हूँ- "अपना पुनरुद्धार कीजिए। आदर्श व्यक्ति बनने के लिए प्रयत्नशील बनिए। इस पृथ्वी पर शीघ्र ही नयी सभ्यता का निर्माण होगा। परमाणु शक्ति के नियन्त्रण से भस्मासुर न्याय वरदान प्राप्त हुआ है जिससे मनुष्य अपना ही सर्वनाश करने जा रहा है। जागो! ऐसा न होने दो। समय रहते ही दिव्य ज्योति की ओर मुड़ो। आप अभी भी सुधार कर सकते हैं तथा भलाई की ओर बढ़ सकते हैं। आप कितने ही निम्न तल में क्यों न जा गिरे हों, फिर भी आप उठ सकते हैं। भगवान् ने निकृष्ट मनुष्य के लिए भी महान् ऐश्वर्य को रख छोड़ा है। हाँ, उसे अपना सुधार करना होगा।

अन्धकार तथा पतन अपनी पराकाष्ठा को जा पहुँचे हैं। उठिए, पूर्णता की पराकाष्ठा की ओर अग्रसर होइए।

३. पूर्णता के लिए संग्राम

निश्चित उद्देश्य को रख कर जीवन बिताइए। निरुद्देश्य न भटकिए। निश्चित लक्ष्य रख कर चलिए। स्थिरतापूर्वक ज्ञान-गिरि के ऊपर चढ़िए तथा अमृतत्व के मधुर धाम की चोटी, ब्रह्म को प्राप्त कीजिए।

आध्यात्मिक मार्ग में बारम्बार विफलताएँ होती है। सतत प्रयास, अनवरत सावधानी तथा अडिग संलग्नता की आवश्यकता है।

जब हृदय की ग्रन्थियाँ धीरे-धीरे ढीली पड़ जाती हैं, जब वासना क्षीण पड़ जाती है. जब कर्म के बन्धन ढीले पड़ जाते हैं, जब अज्ञान का क्षय होता है, जब दुर्बलता दूर हो जाती है, तब आप अधिकाधिक शान्त, सबल तथा निर्मल बनते हैं। आप अन्दर से अधिकाधिक प्रकाश प्राप्त करेंगे। आप अधिकाधिक दिव्य बनते जायेंगे।

निम्न प्रकृति को शुद्ध बनाना कठिन है, धारणा तथा ध्यान का अभ्यास करना कठिन है; परन्तु सावधानी, संलग्नता, सतत अभ्यास तथा दृढ़ संकल्प से सारी कठिनाइयाँ दूर हो जायेंगी और मार्ग सरल, सुखद एवं आकर्षक हो जायेगा।

वीरतापूर्वक मन के साथ संग्राम कीजिए। आगे बढ़ते जाइए। हे आध्यात्मिक वीर ! अविचल हृदय से युद्ध करते जाइए। अभी संग्राम कीजिए। साहसी बनिए। अपने संग्राम के अन्त में आप नित्य सुख के असीम साम्राज्य को प्राप्त करेंगे।

अनवरत प्रयास कीजिए। निराश न बनिए। मार्ग पर ज्योति है। सभी की सेवा कीजिए। शान्त बनिए। सत्य से प्रेम कीजिए। नियमित ध्यान कीजिए। आप शीघ्र ही परम शान्ति एवं सुख को प्राप्त करेंगे।

सत्य की एक झलक भी प्राप्त कर लेने पर आपका सारा जीवन ही परिवर्तित हो जायेगा। आपका हृदय नया होगा। आपकी दृष्टि नयी होगी। आपके सारे व्यक्तित्व में आध्यात्मिक प्रवाह का संचार होगा। आपके ऊपर आध्यात्मिक तरंगें आलोकित होंगी। यह अवस्था अनिर्वचनीय है। इसका वर्णन करने के लिए कोई शब्द नहीं है। आन्तरिक अनुभव का वर्णन करने के लिए कोई भाषा नहीं है।

४. साधना की आवश्यकता

समय बहुत ही मूल्यवान् है। आप समय के मूल्य को नहीं समझते। मरणासन्न रोगी के समीप स्थित डाक्टर से आप कहेंगे, "डाक्टर साहब! इस रोगी के लिए कुछ तो कीजिए। कोई शक्तिशाली इंजेक्शन ही दे डालिए। कम-से-कम कुछ घण्टों तक तो श्वास को चलने दीजिए। मेरा भाई बम्बई से रोगी को देखने के लिए आ रहा है।" डाक्टर केवल यही उत्तर दे सकता है, "मेरे प्रिय मित्र ! मैं अब कुछ भी नहीं कर सकता। यह मामला अब काबू से बाहर है। यह रोगी अब पाँच मिनट के अन्दर ही मर जायेगा।" अब आप समय के मूल्य को पहचानेंगे, आप पछतायेंगे कि कितने दिन, महीने तथा वर्ष आपने व्यर्थ गप-शप तथा विषय-सुख में ही बिता डाले।

आप पगडी बाँधने में ही दो घण्टे समय का अपव्यय कर सकते हैं। आप बहुत-सा समय दाढी बनाने, बाल सँवारने में ही बिता सकते हैं; परन्तु यदि कोई भक्त आपको सत्संग में बुलाने के लिए आ जाये, तो आप कहेंगे "बाबा जी, मेरे पास तो समय है ही नहीं। मुझे तो डाक्टर के पास जा कर औषधि लेनी है, मुझे बाजार से सामग्रियाँ लानी हैं।" इस तरह आप सैकड़ों बहाने बना सकते हैं।

सिनेमा तथा ड्रामा के लिए आप जागरण रखते हैं; परन्तु वैकुण्ठ एकादशी या शिवरात्रि के दिन आप जागरण नहीं करते। कितनी दयनीय स्थिति है!

हर व्यक्ति ईश्वर को देखना चाहता है; परन्तु कोई भी साधना नहीं करना चाहता। यदि गुरु कहते हैं : "ध्यान, प्राणायाम तथा स्वाध्याय का अभ्यास करो।" तो शिष्य कहते हैं, "मेरे पास उन सबके लिए समय नहीं है।" गुरु कहते हैं, "ईश्वर के नाम का जप करो।" शिष्य उत्तर देता है, "मैं पहले से ही उन्हें जानता हूँ। यह तो बहुत लम्बा तथा मन्द मार्ग है। मुझे नाम में विश्वास भी नहीं है।"

यदि गुरु कहते हैं : "तो राजयोग का अभ्यास करो और धीरे-धीरे मन की वृत्तियों को वशीभूत करो। एक आसन में एक या दो घण्टे तक बैठो।" तो आप कहते हैं : ""मैं पन्दरह मिनट से अधिक नहीं बैठ सकता। यदि मैं अधिक देर तक बैठूँ, तो मेरे अंग में दर्द होने लगता है।" यदि आपको उपासना के लिए कहा जाये, तो आप कहेंगे, "उपासना में क्या रखा है। मूर्तिपूजा बेकार है। मैं चित्र पर मन को एकाग्र नहीं कर सकता। चित्र तो चित्रकार की कल्पना है। मैं तो सर्वव्यापक निराकार ब्रह्म पर ध्यान करना चाहता हूँ। चित्र पर ध्यान करना तो बच्चों का खेल है। यह मेरे लिए अनुकूल नहीं है।" तब गुरु कहते हैं- "तो दो घण्टे के लिए नित्य कीर्तन तथा जप ही कीजिए।" आप कहेंगे- "जप तथा कीर्तन में कुछ भी नहीं है। ये तो मन्द बुद्धि वाले व्यक्तियों के लिए ही उपयुक्त हैं। मैं विज्ञान अच्छी तरह जानता हूँ। मैं इन वस्तुओं को नहीं कर सकता; मैं जप तथा कीर्तन से परे हूँ। मैं तो पूर्ण आधुनिक व्यक्ति हूँ।" यदि पुरोहित शास्त्रीय विधि से हवन करता है, तो आप कहते हैं- "पुरोहित जी! ये सब क्या कर रहे हैं। शीघ्रता कीजिए। मुझे भूख लगी है। मुझे दश बजे आफिस जाना है।" यदि पुरोहित जल्दी करता है, तो आप कहते हैं, "इस पुरोहित ने कुछ घण्टे के लिए कुछ उच्चारण किया और कहता है कि हवन समाप्त हो गया है। यह सब समय, धन तथा शक्ति का अपव्यय ही है। मुझे हवन में श्रद्धा नहीं है। इसमें कोई भलाई नहीं है।"

यदि गुरु कहते हैं- "तो प्राणायाम कीजिए। शीर्षासन का अभ्यास कीजिए। शीघ्र ही कुण्डलिनी जग जायेगी।" आप कहेंगे, "मैंने छह महीने प्राणायाम का अभ्यास किया था। मेरा शरीर गरम हो गया। यह मेरे लिए अनुकूल नहीं है। मैंने अभ्यास छोड दिया। शीर्षासन करते समय मैं गिर पड़ा था। मैंने उसे भी छोड दिया।"

यही आपकी भूल है। आप बिना किसी साधना के ही किसी तरह आध्यात्मिक साक्षात्कार तथा आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं। आप पल मात्र में ही समाधि चाहते हैं।

आप मौज का जीवन बिताते हैं। आप ईश्वर-साक्षात्कार के लिए कठिन परिश्रम करना नहीं चाहते। यदि कोई काम करना हो, तो कहेंगे, "मैं इसे कल से करूँगा, मैं आज स्वस्थ नहीं हूँ। डाक्टर ने मुझे भली प्रकार से आराम करने के लिए कहा है।" परन्तु यदि मिठाई, हलवा या रसगुल्ला है तो कहेंगे, "मैं भूखा हूँ। अभी दे दीजिए। मेरा स्वास्थ्य बिलकुल ठीक है। मैं इसे आसानी से पचा सकता हूँ।"

हे नर! भगवान् बुद्ध ने उरुवेला जंगल में बड़ी उग्र तपस्या की। प्रभु जीसस ने भी अज्ञातवास में बड़ी कठोर साधना की। सारे साधु तथा योगियों ने कठिन तप तथा ध्यान किये हैं। बालक ध्रुव ने वायु, जल तथा पत्तों पर जीवन-निर्वाह करते हुए कठिन तपस्या की थी।

काम, मद, द्वेष आदि बुरी वृत्तियाँ गहरी गड़ी हुई हैं। अभिमान तथा राग-द्वेष साधुओं तथा संन्यासियों को भी नहीं छोड़ते। किसी महात्मा के पास जा कर कहिए, "आपका भाषण बड़ा ही सुन्दर तथा प्रेरणापूर्ण था। आपने सभी बातों का सम्यक् विवरण दिया है; परन्तु मैं आपकी एक-दो बातों से सहमत नहीं हूँ।" वह तुरन्त ही आप पर क्रोध करते हुए कहेगा, "तुम मूर्ख हो। तुम मेरी समालोचना करते हो। मैं महाविद्वान् तथा व्यावहारिक योगी हूँ।" माया बड़ी

शक्तिशाली है। आत्मार्पण के द्वारा आपको ईश्वर-कृपा प्राप्त करनी होगी। यही कारण है कि भगवान् कृष्ण कहते हैं: "गुणों से बनी हुई यह मेरी दैवी माया बड़ी ही दुस्तर है। वे लोग ही जो मेरी शरण में आते हैं, इस माया का सन्तरण कर पाते हैं।"

मोह अथवा राग ही अमृतत्व का भयानक शत्रु है। राग से मुक्त होना बड़ा ही कठिन है। भ्रमर काष्ठ में भी छेद कर सकता है; परन्तु मधु की आसक्ति के कारण नष्ट हो जाता है। वह फूलों पर बैठ कर मधु एकत्र करता है। सायंकाल को पद्म पर बैठता है तथा शनैः-शनैः मधु-पान करता है। सूर्यास्त होने पर पद्म-दल संकुचित हो जाते हैं, पद्म का मुख बन्द हो जाता है। भ्रमर आसक्तिवश बाहर निकलना नहीं चाहता। वह मूर्खतावश सोचता है कि कल सूर्योदय होने पर मैं फूल से निकल कर उड़ जाऊँगा। हाथी आता है और उस फूल को कुचल डालता है। यही दशा मनुष्य की भी है। वह बड़े आश्चर्यों को कर सकता है; परन्तु वह संसार के विविध पदार्थों से आसक्त हो कर नष्ट हो जाता है। काल-रूपी हाथी (स्त्री तथा धन-रूपी) पद्म को कुचल कर उसे भी नष्ट कर डालता है।

सर्प के मुख में मेढक है। मेढक का मुख बाहर ही है। यह कुछ ही मिनटों में मृत्यु का शिकार बन जायेगा। फिर भी इस स्थिति में वह अपनी जिह्वा को बाहर निकाल कर एक या दो कीडों को खाने का लोभ संवरण नहीं कर सकता। हे मुर्ख मनुष्य ! उसी प्रकार आप तो पहले से ही काल के मुख में पड़े हुए हैं। आप कुछ ही क्षण में काल-कवलित हो जायेंगे। फिर भी आपमें तृष्णा है तथा आप बारम्बार विषय-सुखों से आसक्त बना करते हैं। आप मोह के गुलाम बन बैठे हैं।

मृत्यु आपको निगल जाने के लिए प्रतीक्षा कर रही है। वैराग्य, संन्यास तथा विवेक के द्वारा पद्म का भेदन कीजिए। राग का परित्याग कीजिए। ईश्वर के नाम में श्रद्धा रखिए। जप तथा ध्यान कीजिए और अमृतत्व प्राप्त कीजिए।

समय रहते ही साधना कीजिए। जब आप युवा तथा स्वस्थ हैं, तभी साधना कीजिए। युवावस्था में जब आपके पास पर्याप्त शक्ति है, आपको धारणा तथा ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। वृद्धावस्था में आप कुछ भी साधना नहीं कर सकते।

५. इन्द्रियों की बहिर्मुखी वृत्तियाँ तथा आत्म-संयम की आवश्यकता

ब्रह्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया। आँखें सुन्दर वस्तुओं को देखना चाहती हैं। कान सुमधुर संगीत सुनना चाहते हैं। जिह्वा सुमधुर वस्तुओं का आस्वादन करना चाहती है। रजोगुण अथवा इन्द्रियों की बहिर्मुखी वृत्ति ही इनका कारण है। मनुष्य सोचता है कि वह बाह्य पदार्थों से सुख प्राप्त कर लेगा। "यदि मेरी जेब में कुछ पैसे हों, तो मैं सुबह को अच्छी काफी पी सकता हूँ। मैं सुस्वादु भोजन मँगा सकता हूँ। मैं पूर्ण स्वस्थ रह सकता हूँ। मैं धनी लोगों की भाँति बंगला रख सकता हूँ। मैं पर्वत-प्रदेश में गरमी के लिए अपना एक गृह बनवा सकता हूँ। मैं अपने कमरे का निर्माण अमुक ढंग से करा सकता हूँ।" इस तरह मन बाह्य पदार्थों की ओर दौड़ता है तथा अधिकाधिक धन एवं आराम के लिए योजनाएँ बनाया करता है। विषय-सुखों की प्राप्ति के लिए मनुष्य के प्रयत्नों का कोई अन्त नहीं, फिर भी इन्द्रियों की तृप्ति से मनुष्य शान्ति नहीं प्राप्त करता।

मन बड़ा ही दुष्ट प्रेत है। यह उपद्रव करता रहेगा। यह पूछेगा, "मैं सात्त्विक भोजन क्यों करूँ? मैं प्रातः चार बजे क्यों उठूँ?" अचानक बहुत-सी शंकाएँ उठ जायेंगी जो साधक को नीचे गिराना चाहेंगी। संसार में रहते हुए आपको संसार के प्रवाह में पड़ना आसान रहता है। आप धनोपार्जन आदि के पुराने संस्कारों में निमग्न हो जाते हैं। माया हर क्षण आपको भ्रमित करती है। आप फैशन, वस्त्रादि में अधिक ध्यान देने लगते हैं। यदि आपके पास चार वस्त्र है, तो आप छह वस्त्र

और चाहते है। आवश्यकताएँ बढ़ती रहती है। ये विचार ही आपके मन में बसे रहते हैं। अतः आपको मन के साथ सावधानी से काम लेना है। धनात्मक सदा ऋणात्मक पर विजय

पाता है, यही प्रकृति का नियम है। जब तक आपकी इन्द्रियाँ संयमित नहीं हैं, तब तक आपको दम या प्रत्याहार का अभ्यास करना होगा।

शान्त मन के साथ बैठ जाइए। शरीर तथा मन के ऊपर अपना अधिकार स्थापित कीजिए। हृदय के प्रकोष्ठों में गोता लगा कर मौन के अथाह सागर में निमग्न हो जाइए।

जब बिजली की बत्ती वस्त्र के कई आच्छादनों से आच्छादित रहती है, तो उसमें उजला प्रकाश नहीं होता; किन्तु जब एक-एक कर वस्त्र को हटा दिया जाता है, तो प्रकाश अधिकाधिक उज्ज्वल होता जाता है। इसी भाँति जब यह स्वयं-प्रकाश आत्मा, जो कि पंचकोशों से आच्छादित है, शुद्धात्मा पर ध्यान तथा 'नेति-नेति' सिद्धान्त के अभ्यास द्वारा निरावृत होता है, तो अपने को ध्याता पर प्रकट करता है।

पहले अपने हृदय को शुद्ध बना डालिए। पुनः स्थिरतापूर्वक साहस तथा अविचल उत्साह के साथ योग के सोपान पर आरूढ़ होइए, शीघ्रतापूर्वक ऊपर चढ़ते जाइए। ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त कर सीढ़ी की चोटी पर पहुँच जाइए, जहाँ धर्ममेघ समाधि से अमृत की वर्षा होती है।

६. साधना के लिए आवश्यक गुण

यदि आप ईश्वर की सेवा उसी उत्कण्ठा से करेंगे जिस तरह आप अपने स्त्री, बच्चे तथा सम्पत्ति की करते हैं, तो शीघ्र ही ईश्वर का साक्षात्कार आपको प्राप्त होगा। ज्वलन्त विरह के साथ एक मिनट के लिए भी उग्र प्रेम होने पर आप ईश्वर के दर्शन कर लेंगे।

अनासक्त हो कर कर्मों को करना चाहिए। यह भी भावना नहीं रखनी चाहिए कि इससे शुद्धता की प्राप्ति होगी। केवल ईश्वर के लिए ही कर्म कीजिए। ऐसी आसक्ति भी न रखिए कि ईश्वर प्रसन्न हों। कितना भी दिलचस्प कार्य क्यों न हो, आपको उसके त्याग के लिए तैयार रहना चाहिए। किसी भी कर्म में आसक्ति होने पर आप बन्धन में पड़ जायेंगे। कर्मयोग के इन रहस्यों को अच्छी तरह समझ कर आप आगे बढ़िए।

मन की कल्पना से ही माया उत्पन्न होती है। स्त्री सुन्दर नहीं, अपितु कल्पना ही सुन्दर है। चीनी मीठी नहीं, अपितु कल्पना ही मीठी है। भोजन सुस्वादु नहीं, अपितु कल्पना ही सुस्वाद है। मनुष्य दर्बल नहीं, अपित् कल्पना ही दर्बल है। माया तथा मन के स्वभाव को समझिए और बुद्धिमान् बनिए। विचार के द्वारा मन की कल्पना को रोकिए तथा ब्रह्म में निवास कीजिए।

आप अपने सेवकों, लघु जनों के प्रति ही क्रोध दिखाते हैं, बड़ों के प्रति नहीं; क्योंकि आप भय के कारण कुछ हद तक आत्म-संयम का अभ्यास करते हैं। फिर क्या आप अपने नौकरों के प्रति भी आत्म-संयम का अभ्यास नहीं कर सकते। यदि आप नौकरों में भी ईश्वर को देखने का प्रयत्न करेंगे, तो आपको उनके प्रति क्रोध नहीं होगा।

धैर्य, सहनशीलता, करुणा तथा प्रेम का विकास कीजिए। 'मैं कौन हूँ' का विचार कीजिए। आत्म-भाव के साथ दूसरों की सेवा कीजिए। अपने भीतर विचार कीजिए, "क्रोध करने से मुझे क्या लाभ ? क्रोध करने से मेरी सारी शक्ति नष्ट हो

जायेगी। सभी में एक ही आत्मा है। दूसरों को हानि पहुँचाने से मेरी ही हानि होगी। मेरी आत्मा के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है। आत्मा में क्रोध नहीं है। वह तो शान्ति-स्वरूप है।" यह बुरी वृत्ति स्वतः ही नष्ट हो जायेगी।

कुछ लोगों में आध्यात्मिक मार्ग के प्रति कुतूहल रहता है। उनमें सच्चा मुमुक्षुत्व नहीं है। वे सिद्धियों की कामना ले कर योगाभ्यास करते हैं। जब उन्हें सिद्धियाँ नहीं मिलीं, तो वे योग तथा योगियों की हँसी उड़ाते हैं और आध्यात्मिक मार्ग का परित्याग कर देते हैं। केवल कुतूहल रखने से आप आत्म-साक्षात्कार नहीं कर सकते। अन्तर्निरीक्षण कीजिए। सत्संग, स्वाध्याय, प्रार्थना, जप, ध्यान के द्वारा कुतूहल बुद्धि को सच्चे मुमुक्षुत्व में परिणत कर दीजिए।

बुरे विचार के घुसते ही कभी-कभी आपका मन कम्पित होने लगता है। यह आध्यात्मिक उन्नति का लक्षण है। आपकी उन्नति हो रही है। आप अपने भूत के दुष्कर्मों के विचार मात्र से ही बहुत सन्तप्त हो जायेंगे। यह आध्यात्मिक क्रान्ति का लक्षण है। यदि स्वभाववश बुरे संस्कार पुनः किसी पाप कृत्य की ओर आपको प्रेरित करेंगे, तो आपका मन काँपने लगेगा तथा आपका शरीर प्रकम्पित होगा। पूर्ण शक्ति तथा सच्चाई के साथ ध्यान का अभ्यास जारी रखिए। आप पूर्ण शुद्धता में संस्थित होंगे।

आपमें काम छिपा हुआ है। आप इसका कारण पूछ सकते हैं। आप बारम्बार क्रोधित हो जाते हैं। क्रोध तो काम का ही विकार है। काम-तृप्ति न होने पर वह क्रोध का रूप धारण कर लेता है। अभी राग-द्वेष का पूर्ण उन्मूलन नहीं हुआ है। वे केवल सूक्ष्म हो गये हैं। इन्द्रियाँ अभी भी उपद्रवी हैं। वे पूर्णतः वशीभूत नहीं हुई हैं। वासना तथा तृष्णा अभी भी छिपी हुई हैं। आप प्रत्याहार में स्थित नहीं हैं। वृत्तियाँ अभी भी बलवती है। आपमें प्रबल विवेक तथा वैराग्य नहीं है। मुमुक्षुत्व तीव्र नहीं है। रजस् और तमस् अभी भी ऊधम मचा रहे हैं। सत्त्व में अभी स्वल्प ही वृद्धि हुई है। यही कारण है कि आपको पूर्ण एकाग्रता की प्राप्ति नहीं हुई है। पहले मन को शुद्ध बनाइए, एकाग्रता तो स्वतः ही आयेगी।

सगुण उपासक पहले आँखें खोल कर भगवान् की मूर्ति अथवा चित्र पर त्राटक करे, तब आँखें बन्द कर मानसिक चित्रण करे। चित्र मन के लिए बड़ा ही आकर्षक होना चाहिए। उसकी पृष्ठभूमि मनोहर होनी चाहिए। ध्यान के लिए एक ही चित्र रखिए। उसी पर बारम्बार त्राटक तथा ध्यान का अभ्यास कीजिए। आदत के बल से आप सुगमतया उस चित्र को चित्रित कर सकेंगे। जब थक जायें, तो कभी-कभी आप मन्त्रों को बदल सकते हैं, क्योंकि मन विविधता माँगता है; परन्तु मानसिक चित्र अथवा भाव को न बदलिए।

वातावरण बुरा नहीं है; अपितु आपका मन ही बुरा है। आपने मन को पूर्णतः अनुशासित नहीं किया है। इस भयंकर मन के साथ संग्राम छेड़िए। अपने मन को पहले शिक्षित कीजिए। प्रतिकूल वातावरण में भी यदि आप धारणा का अभ्यास करेंगे, तो आपकी इच्छा-शक्ति बढ़ेगी तथा आप शक्तिशाली व्यक्ति बन जायेंगे। हर वस्तु में अच्छाई ही देखिए। बुराई को अच्छाई में ही परिणत कर डालिए। यही वास्तविक योग है। यही योगी का चमत्कार है।

७. साधना- जीवन का मुख्य उद्देश्य

१. कोई भी आध्यात्मिक अभ्यास जिससे ईश्वर की प्राप्ति हो साधना कहलाता है। यह मानव-जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति का साधन है। मन को स्थिर बना कर उसे ईश्वर में लगाने को साधना कहते हैं।

२. मुक्ति की प्राप्ति के लिए हर व्यक्ति को किसी-न-किसी प्रकार की साधना अवश्य करनी चाहिए।

३. साधना वास्तविक धन है। यही एकमेव सत्य तथा शाश्वत वस्तु है। दूध में मक्खन है; परन्तु उसे मथने के अनन्तर ही प्राप्त कर सकते हैं। उसी तरह निरन्तर साधना तथा उपासना के द्वारा ही ईश्वर-साक्षात्कार सम्भव है।

४. जप, ध्यान, आसन या प्राणायाम, जो भी साधना आप करें, उसे आपको नियमित तथा क्रमिक रूप से करना चाहिए। आप अमृतत्व प्राप्त करेंगे।

५. यदि आप संलग्नता तथा उग्रतापूर्वक साधना कर रहे हैं. यदि आप नियमित, क्रमिक तथा दृढ़व्रती हैं, तो आपको सफलता की प्राप्ति होगी।

६. दैववश जो-कुछ भी आपको प्राप्त हो जाये, उसी से सन्तुष्ट रहिए। विरक्त मन से साधना में लगे रहिए।

७. साधना में नियमित रहना बड़ा ही आवश्यक है। नियमित ध्यान से समाधि की प्राप्ति होगी। जो मनुष्य अनियमित है, वह अपने प्रयासों का फल नहीं पाता।

८. जप, धारणा, ध्यान, स्वाध्याय, सत्संग तथा परोपकार में अपने मन को सदा लगाये रखिए।

९. सदाचार के छोटे-छोटे कर्म भी आपको साधना में सहायता देंगे। वृत्तियों तथा मलिनताओं को दूर करना ही प्रमुख साधना है। एक स्थान, एक गुरु तथा एक ही प्रगतिशील साधना में संलग्न रह कर मन के विक्षेप को दूर किया जा सकता है।

१०. जिस साधक ने शम तथा दम के अभ्यास से मन को अन्तर्मुखी कर लिया है तथा जिसमें प्रबल मुमुक्षुत्व है, वह सतत ध्यान के द्वारा अपने भीतर ही आत्मा का दर्शन करता है।

११. आप अपनी आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा समस्त जगत् को चलायमान कर सकते हैं।

१२. आध्यात्मिक दैनन्दिनी (डायरी) मन को आध्यात्मिक मार्ग पर प्रेरित करने के लिए कोड़े का काम करती है।

१३. स्वार्थ से आध्यात्मिक उन्नति रुकती है। स्वार्थ को दूर करने पर आधी साधना पूरी हो जाती है।

१४. प्रातः चार बजे उठ कर ध्यान का अभ्यास कीजिए। प्रारम्भ में स्थूल ध्यान कीजिए। उस रूप में ईश्वर की सत्ता का अनुभव कीजिए। शुद्धता, पूर्णता, सर्वव्यापकता, ज्ञान, आनन्द, सर्वशक्तिमत्ता आदि पर विचार कीजिए। मन के भागने पर पुनः उसे लक्ष्य पर स्थिर कीजिए। रात्रि में ध्यानार्थ दूसरी बार भी बैठिए। अभ्यास में नियमित बनिए।

१५. अपनी नोट-बुक में नित्य एक घण्टे तक इष्टमन्त्र लिखिए। इन्द्रियों को वशीभूत कीजिए। मौन-व्रत का पालन कीजिए। सद्विचार, सद्भावना, सत्कार्य तथा सद्वाणी का विकास कीजिए। काम, क्रोध, लोभ, घृणा, अहंकार आदि का उन्मूलन कीजिए। जो व्यक्ति उपर्युक्त उपदेशों का पालन करता है, वह इसी जन्म में, नहीं-नहीं इसी क्षण में सफलता प्राप्त करेगा।

८. ब्राह्ममुहूर्त-साधना के लिए सर्वोत्तम समय

ब्राह्ममुहूर्त में उठ कर ध्यान का अभ्यास कीजिए। किसी हालत में भी इसको न त्यागिए। प्रातः साढ़े तीन बजे से साढ़े पाँच बजे तक का समय ब्राह्ममुहूर्त है। यह ध्यान के लिए बड़ा ही अनुकूल है। नींद के बाद मन ताजा रहता है। यह शान्त तथा मौन रहता है। इस समय मन में सत्त्व की प्रधानता रहती है। वातावरण में भी सत्त्व की प्रधानता रहती है।

इस समय मन सापेक्षतः कोरे कागज की भाँति स्वच्छ रहता है। सांसारिक संस्कार नहीं रहते। राग-द्वेष की धाराएँ मन में गहरी घुसी नहीं होतीं। इस समय आप अपनी इच्छा के अनुसार अपने मन को जैसा चाहें बड़ी सुगमतापूर्वक वैसा बना सकते हैं। इस समय मन को किसी भी ढाँचे में ढाला जा सकता है। आप सुगमतापूर्वक मन को दिव्य विचारों से पूर्ण कर सकते हैं।

सारे योगी, परमहंस संन्यासी, साधक तथा हिमालय के ऋषिगण इस समय अपना ध्यान प्रारम्भ करते हैं और समस्त जगत् में अपने स्पन्दन भेजते हैं। आप आध्यात्मिक प्रवाहों से बहुत ही लाभान्वित होंगे। आपको अनायास ही ध्यान लगने लगेगा। यदि आप इस समय को ध्यान में नहीं लगाते, तो आप बहुत ही क्षति में हैं। कुम्भकर्ण न बनिए। ज्ञानदेव की भाँति योगी बनिए।

जाड़े के दिनों में ठण्ढे जल से स्नान करना आवश्यक नहीं है। मानसिक स्नान ही पर्याप्त है। कल्पना कीजिए तथा भावना कीजिए, "मैं पवित्र त्रिवेणी में स्नान कर रहा हूँ, या बनारस के मणिकर्णिका घाट पर स्नान कर रहा हूँ।" शुद्ध आत्मा का स्मरण कीजिए। इस मन्त्र का जप कीजिए- "मैं सदा शुद्ध आत्मा हूँ।" यह सर्वोत्तम स्नान है। यह ज्ञान-गंगा का स्नान है। यह मलों का निवारक है। यह सारे पापों को भस्म कर देता है। शीघ्रतापूर्वक शौच से निवृत्त हो लीजिए तथा दाँतों को साफ कर लीजिए। दाँतों को साफ करने तथा स्नान करने में अधिक समय नष्ट न कीजिए। जल्दी कीजिए। शीघ्र तैयार हो जाइए। यह ब्राह्ममुहूर्त चला जायेगा। इस बहुमूल्य समय को जप तथा ध्यान में लगाइए।

मुँह, हाथ तथा पाँव को शीघ्र ही धो डालिए। मुख तथा शिर पर ठण्ढे जल के छींटे दीजिए। इससे आपके मस्तिष्क तथा आँखों में शीतलता आयेगी। सिद्ध, पद्म अथवा सुखासन में बैठ जाइए। ब्रह्म की परम चोटी को, जो महिमा तथा ज्योति की पराकाष्ठा है, प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील बनिए।

यदि आपको प्रातः उठने की आदत नहीं है, तो एलार्म घडी रखिए। आदत पड़ जाने पर कोई कठिनाई नहीं होगी। आपका चित्त आज्ञाकारी सेवक की भाँति आपको उचित समय पर उठा दिया करेगा।

यदि आपको पुराना कब्ज है, तो प्रातः उठ कर मुँह धो लेने के बाद एक गिलास ठण्ढा या गुनगुना पानी पीजिए। हठयोग शास्त्र में इसे उषः पान कहते हैं। इससे आपका शौच खुल कर आयेगा। आप त्रिफला-जल भी पी सकते हैं। दो हरड़, दो आँवले तथा दो बहेड़े एक लोटा ठण्ढे जल में भिगो कर रखिए। प्रातः दाँत साफ कर उस जल को पी लीजिए। आप इन औषधियों का तैयार चूर्ण भी रख सकते हैं। एक या दो चम्मच चूर्ण जल में डाल दिया करें।

प्रातः शय्या त्याग करते समय शौच जाने की आदत डालिए। यदि आप अपने पुराने पापों के कारण कब्ज की असाध्य बीमारी से पीड़ित हैं, तो उठते ही ध्यान को आरम्भ कर दीजिए। ध्यान समाप्त कर लेने पर आप एक प्याला गरम दूध की सहायता से शौच के लिए जा सकते हैं।

बिछावन से उठते ही जप तथा ध्यान का अभ्यास कीजिए। यह आवश्यक है। जप तथा ध्यान समाप्त कर लेने पर आप आसन, प्राणायाम, गीता तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय कर सकते हैं।

प्रत्येक सन्ध्या भी ध्यान के लिए अनुकूल है। ब्राह्ममुहूर्त तथा सायंकाल में सुषुम्ना नाड़ी शीघ्र ही चलने लगती है। सुषुम्ना नाड़ी के चलने पर बिना कठिन प्रयास के ही आप गम्भीर ध्यान तथा समाधि में प्रवेश कर सकेंगे। यही कारण है कि ऋषि, योगी तथा सद्ग्रन्थ इस समय की बड़ी प्रशंसा करते हैं। जब श्वास दोनों नासिकाओं से चले, तो समझ जाइए कि सुषुम्ना काम कर रही है। सुषुम्ना के समय ध्यान के लिए बैठ जाइए तथा आत्मा की आन्तरिक शान्ति का सुख प्राप्त कीजिए।

कुछ दिव्य स्तोत्रों या श्लोकों या गुरु-स्तोत्रों का कीर्तन या ॐ का बारह बार जप कीजिए या पाँच मिनट तक कीर्तन कीजिए। इससे आपका मन समुन्नत हो जायेगा।

९. साधना-सम्बन्धी उपदेश

संसार में साधक का जीवन भयंकर सर्प के साथ संग्राम करने जैसा है। सांसारिक जीवन ही भयंकर सर्प है। आपको सदा सावधान और सतर्क रहना चाहिए, अन्यथा संसार-सर्प आपके अनजाने ही आप पर हमला कर देगा। विवेक तथा तीव्र विचार के उभय नेत्र सदा खोले रखिए। व्यवहार में लगे रहने से मनुष्य कभी-कभी विषाक्त हो जाता है। उसे समय-समय पर सांसारिक वातावरण से अलग जा कर सत्संग, साधना, एकान्त तथा मौन ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। यही आध्यात्मिक संजीवनी है जो आपमें पुनर्जीवन का संचार करेगी तथा निर्भय हो कर आप पुनः दैनिक आध्यात्मिक जीवन को बिता सकते हैं। सत्संग तथा एकान्त-ये दो जादू की बूटी हैं जिनसे संसार का सारा विष उतर जाता है। इनकी सहायता से स्वस्थ बनिए। हे विवेकमति, भय न कीजिए।

अखिल सृष्टि का परमेश्वर जीव को यह शरीर इसलिए प्रदान करता है कि वह जीवन की सभी सुन्दर वस्तुओं का अर्जन कर सके। निम्न प्रकृति से प्रेरित हो कर जीव इस शरीर को अनेक दुर्गुणों का शिकार बना लेता है। उनके वशीभूत हो कर जीव असहाय बन जाता है। ये दुर्गुण उस पर इतना अधिकार जमा लेते हैं कि बाद में जब वह सद्गुणों को प्राप्त करना तथा यम-नियम का विकास करना चाहता है, तो वे खुलेआम संग्राम छेड़ देते हैं। प्राचीन बुरे संस्कार तथा वृत्तियाँ सद्गुणों को फटकने नहीं देते; वे उपद्रव कर उन्हें बाहर निकाल देते हैं। परन्तु इस असहाय अवस्था में जब साधक सच्चाई के साथ बल के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता है, तो ईश्वर की कृपा उसे आन्तरिक शक्ति प्रदान करती है जिससे वह पुरानी बुराइयों को दूर करने तथा साधना के फल को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है।

आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में कामना बहुत बड़ी बाधा है। मन के निग्रह का अर्थ है कामनाओं का परित्याग। यदि मनुष्य मन को नियन्त्रित करना चाहता है, तो उसे अशेषतः सारी कामनाओं का, सांसारिक वस्तुओं के लिए सारी तृष्णाओं का तथा मन की सारी कल्पनाओं का परित्याग करना होगा। बन्दर के समान मन सदा अशान्त रहेगा। जिस तरह मछली जल से बाहर निकल जाने पर पुनः जल में किसी-न-किसी तरह प्रवेश करना चाहती है, उसी तरह मन भी बुरे विचारों के बिना चैन नहीं लेगा। सारी कामनाओं को मार कर, मन को वशीभूत कर, बुलबुलाती वृत्तियों तथा उफनते आवेगों से मुक्त मन ही एकाग्रता प्राप्त कर सकता है। ऐसा मन निर्वात स्थान में रखे हुए प्रदीप की भाँति ही स्थिर रहेगा। इस अवस्था को प्राप्त मनुष्य बहुत काल तक ध्यान कर सकता है। ध्यान स्वतः ही लगने लगेगा।

यदि मनुष्य अपने मन को सांसारिक वस्तुओं में स्वेच्छापूर्वक भटकने देगा तथा अपवित्र विचारों एवं कामनाओं को प्रश्रय देगा, तो अन्त में उसे विनाश की प्राति ही होगी।

अतः कामनाओं का परित्याग कर दीजिए। सदा परम धाम सुख, शान्ति, आनन्द तथा अमृतत्व के धाम को प्राप्त करने के लिए एक ही विचार को बनाये रखिए। साधना का अभ्यास कीजिए। अपनी योग-साधना में नियमित रहिए। उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील बनिए। आप सदा आनन्दित रहेंगे।

अध्याय १०:निम्न प्रकृति पर विजय-प्राप्ति के लिए साधना

१. मन पर विजय प्राप्त करने के लिए साधना

आप शरीर की बड़ी सेवा करते हैं। आप उसे स्वच्छ, स्वस्थ, सुन्दर तथा सबल बनाये रखना चाहते हैं। आप अच्छे साबुन तथा गरम जल से स्नान करते हैं। आप उसे नियमित पौष्टिक आहार देते हैं। यदि स्वल्प दर्द या रोग हुआ तो औषधि देते हैं, चिकित्सक की राय लेते हैं। परन्तु आप शरीर से भी अधिक महत्त्वपूर्ण मन की जरा भी परवाह नहीं करते। शरीर तो बाह्य प्रक्षेप मात्र है। यह तो मन का ही प्रक्षेप है। मन सूक्ष्म तथा स्थूल इन्द्रिय से काम करता है। यदि मन स्वस्थ है, तो शरीर भी स्वस्थ रहेगा। यदि मन रुग्ण है, तो शरीर भी बीमार हो जाता है। मन ही सब-कुछ है। यह आपके सम्पूर्ण जीवन पर शासन करता है। इसी पर आपके सुख-दुःख एवं सफलता विफलता आश्रित हैं। उपनिषद् कहती है- "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।" पुनः "येन मनोजितं जगत् जितं तेन।" यह महान् सत्य है। आप जैसा विचारते हैं, वैसा ही आप बन जाते हैं। क्या आपको मन के अनुशासन तथा निग्रह का महत्त्व समझ में आ गया? अब तक आपने मन की परवाह नहीं की। अब से तो इस महत्त्वपूर्ण विषय पर ध्यान दीजिए। मन पर अधिकार प्राप्त करने का अर्थ है जीवन के सभी क्षेत्रों में सफलता पाना। इस प्रभुत्व को प्राप्त करने के लिए आपको मन का अध्ययन करना होगा। आप इसके स्वभाव, आदत, चाल को समझ लें तथा इसको वशीभूत करने के लिए प्रभावपूर्ण साधनों का ज्ञान प्राप्त कर लें।

मन कामनाओं, विचारों, भावनाओं तथा आवेगों का गट्ठर है। यह संस्कारों, इन्द्रियों का विभिन्न विषयों से स्पर्शजन्य कामनाओं, सांसारिक झमेलों से उत्पन्न भावनाओं तथा विभिन्न वस्तुओं से प्राप्त विचारों के संग्रह के सिवा और कुछ भी नहीं है। ये कामना, भावना तथा विचार स्थिर नहीं हैं। ये सदा परिवर्तनशील हैं। समुद्र की तरंगों की भाँति इनमें से अचानक कुछ का विलय तथा कुछ का उदय होता रहता है। इनमें से कुछ प्राचीन विचार आदि मन रूपी भण्डार-गृह को छोड़ कर चले जाते हैं तथा कुछ नये उनका स्थान तुरन्त ग्रहण कर लेते हैं। मन आदतों का भी गट्ठर है। पुरानी आदतें यद्यपि गुप्त रहती हैं, फिर भी अवसर पा कर वे बाहर आना चाहती हैं।

वेदान्त-दर्शन के अनुसार मन का आकार शरीर के समान ही है। न्याय-दर्शन के अनुसार यह अणु के समान है। राजयोग के अनुसार यह विभु या सर्वव्यापक है। बहुत से पाश्चात्य चिकित्सक जो कि अभी अन्धकार में भटक रहे हैं, भ्रान्तिपूर्वक यह मानते हैं कि मन मस्तिष्क का वैसा ही स्राव है जिस तरह यकृत से पित्त का स्राव होता है।

भगवान् कृष्ण कहते हैं- "मनः षष्ठानीन्द्रियाणि" (गीता : १५/७)। श्रोत्र, नेत्र,

नासिका, जिह्वा तथा त्वक् ये पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं तथा मन छठी इन्द्रिय है। मन प्रधान ज्ञानेन्द्रिय है तथा पंचेन्द्रिय का समुच्चय भी है। मन में सभी पंचेन्द्रिय सन्निहित हैं। अतः इन्द्रियों के बिना भी मन देख, सुन, सूँघ, चख तथा छू सकता है।

जिस वस्तु का यह विचार करता है, तत्क्षण ही यह उसके आकार को धारण कर लेता है। यदि यह आम का विचार करता है, तो यह आम के आकार को धारण कर लेता है। तब इसे आम के साथ आसक्ति हो जाती है। अब उसे चखने के लिए मन में कामना उठती है। तब मन उसे खाने तथा अपने को तृप्त बनाने के लिए दृढ़ संकल्प कर लेता है। एक वृत्ति के अनन्तर दूसरी वृत्ति आती है। आम की वृत्ति तुरन्त ही आम बेचने वाले, आम के वृक्ष आदि के विचार को आकृष्ट

करती है। यह सारा जगत् संकल्पों के विकास के सिवा और कुछ नहीं है। विभिन्न विषयों की ओर मन के संकल्पों का विकास ही बन्धन कहा जाता है। वर्तमान काल में लोगों में यथार्थ समझ नहीं है। उनमें सत्यासत्य वस्तु का विवेक नहीं है। वे माया से पूर्णतः भ्रमित हो रहे हैं। माया-मकर के चंगुल में वे फँसे हुए हैं। वे सांसारिक कामनाओं तथा भोगों का शिकार बन बैठे हैं। वे अपने दिव्य जन्माधिकार को भूल कर बन्धन से ग्रस्त हो रहे हैं। जन्म-मृत्यु की महान् व्याधि से मुक्ति तथा अमृतत्व-धाम की प्राप्ति ही दिव्य जन्माधिकार है।

मन बन्दर के समान है जो एक स्थान से दूसरे स्थान को उछलता रहता है। यह वायु के समान है जो सदा चंचल है। शुभ्र रजतवत् यह अपनी आभा को विभिन्न वस्तुओं पर बिखेरता रहता है। यह मदान्ध हाथी के समान प्रबल है। जल से पृथक् मछली की भाँति यह सदा बुरी आदतों तथा बुरे विचारों के लिए तड़पता रहता है। इसे 'महान् पक्षी' भी कहते हैं; क्योंकि यह पक्षी की भाँति ही एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर फुदकता रहता है।

मृत्यु-काल का अन्तिम विचार ही पुनर्जन्म का निर्णायक होता है। "जो भी किसी वस्तु का विचार रख कर शरीर का परित्याग करता है, वह उसी वस्तु को प्राप्त होता है। है कौन्तेय, सतत चिन्तन के कारण ही वह उसे प्राप्त कर लेता है" (गीता : ८/६)। अपने जीवन पर्यन्त आप जिन विचारों तथा कामनाओं को प्रश्रय देते चले आ रहे हैं, उन्हीं के अनुसार आपका मृत्युकालीन विचार भी होगा।

प्रत्येक व्यक्ति का जीवन के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण है। मनःशक्ति के कारण उसमें विशेष विचार, तृष्णा, कामना तथा आशा एवं निश्चित चरित्र, प्रवृत्ति, रुचि तथा भाव होते हैं। मन को शान्त करने के लिए इन कामनाओं, तृष्णाओं आदि का बारम्बार पुनरावर्तन किया जाता है तथा इन कर्मों से चित्त में विशेष संस्कार पड़ जाते हैं। ये संस्कार चित्त में अमिट छाप के रूप में रहते हैं।

मृत्यु के समय सारा चित्त, जो विभिन्न विचारों, भावनाओं, इच्छाओं आदि का भण्डार है, मथा जाता है तथा सबसे बलवती तथा प्रियतम कामना चित्त के ऊपरी तल पर अथवा सचेतन मन में आती है। यह मन्थन से प्राप्त यह मक्खन अथवा 'प्रियतम कामना' परिपूर्ति के लिए उसके ध्यान को आकृष्ट करती है। मृत्यु के समय भी आप इस कामना को रखेंगे। यदि आप अपने कुत्ते से अधिक आसक्त हैं, तो मृत्यु-काल में कुत्ते का विचार ही आपके मन में प्रवेश करेगा तथा आप दूसरे जन्म में कुत्ते की ही योनि प्राप्त करेंगे। यदि आप सदा शरीर का ही चिन्तन करते हैं तथा इस नश्वर शरीर से ही आसक्त बने रहते हैं, तो आपको पुनः जन्म लेना पड़ेगा। यदि आप आजीवन अमर आत्मा का ही चिन्तन करते हैं, तो मृत्यु के समय भी आप आत्मा का ही विचार रखेंगे तथा आप निश्चित ही जन्म-मृत्यु से मुक्त हो कर अमृतत्व तथा शाश्वत सुख को प्राप्त कर लेंगे। इसके लिए आपका मन पूर्णतः नियन्त्रित अनुशासित, सुसंस्कृत, शुद्ध तथा ईश्वर-परायण होना चाहिए। ध्यान रखिए, साधना का कितना महत्त्व है? साधना का मुख्य उद्देश्य मन का निग्रह ही है।

मन दर्पण के सदृश है। जब दर्पण गन्दा तथा धूमिल है, तो आप अपने चेहरे को उसमें साफ नहीं देख सकते। उसी तरह जब मन मलिन है, कामनाओं के जाल में आबद्ध है तो आप आत्मा के दर्शन नहीं कर सकते। जिस तरह खुजली से पीड़ित अंग सदा खुजलाता रहता है, उसी तरह काम-वृत्ति के कारण मन भी सदा खुजलाता रहता है। अथक, अदम्य तथा नियमित साधना- ध्यान, भक्ति, निष्काम कर्म, ज्ञान, विचार, अल्प सात्विक आहार, जप, गीता-स्वाध्याय, सत्संग, आसनादि के द्वारा इस खुजलाने वाले मन को शुद्ध बना कर नियन्त्रित कीजिए।

अधिकांश लोगों ने मन को ढीला छोड़ दिया है। यह उस बिगड़े हुए बच्चे के समान हैं जिसे उसके माता-पिता ने अधिक लाड़-प्यार से बिगाड़ दिया है, अथवा यह उस पालतू जानवर के सदृश है जिसे गलत ढंग से पाला गया है। हममें से बहुतों का मन जंगली जानवर के समान है। हर व्यक्ति का मन अपने ही स्वभावानुसार प्रवृत्त होता रहता है। वायु में

हलके पंख के समान तथा तूफ़ान में जलपोत के समान यह मन भी सदा राग-द्वेष से आन्दोलित होता रहता है। नगर की गलियों में फिरने वाले कुत्ते की तरह यह भी विषय-वस्तुओं की ताक में दूर-दूर के चक्कर काटा करता है।

यह मन उस नर-कंकाल की ओर मँडराता रहता है जो कि थोड़े से मांस से आच्छादित तथा रेशमी वस्त्र से सुसज्जित है। यह धन से मदान्ध हो जाता है। यह वायु से भी अधिक वेग से एक ही पल में कलकत्ता से न्यूयार्क पहुँच सकता है। एक ही क्षण में पेरिस पहुँच कर अप टू डेट (दिनाप्त) फैशन का विचार करने लगता है। संक्षेप में इतना ही कहेंगे कि यह मन सदा चंचल है। यह उत्तेजित हो कर भ्रमित बना रहता है। यह सदा विषयों पर विचरण किया करता है तथा कभी भी तृप्त नहीं होता। यह व्यर्थ ही खुशियाँ मनाता है, पश्चात्ताप से रोता है। एक क्षण में ही इसका अभिमान चूर्ण हो जाता है। यह तुरन्त ही अभिमान से फूल जाता है।

कल्पना-शक्ति के द्वारा मन बड़ा उपद्रव कर बैठता है। विभिन्न प्रकार के काल्पनिक भय, अत्युक्ति, गढ़ी हुई बातें, मन का अभिनय, मनोराज्य- ये सभी कल्पना-शक्ति से ही होते हैं। पूर्णतः स्वस्थ मनुष्य भी कल्पना-शक्ति के द्वारा काल्पनिक रोगों का शिकार बना रहता है। काल्पनिक भय के कारण काफी शक्ति का अपव्यय हो जाता है।

मन जालसाजी करता है तथा चालें चलता है। वह सदा कुछ-न-कुछ करते रहना चाहता है। विषयों से आसक्त हो कर यह उनकी कामना करता तथा उनसे आनन्द मनाता है। उदाहरणतः ताश में कुछ भी नहीं है; परन्तु आसक्ति तथा मनोयोग के द्वारा सुख की अनुभूति होती है। मनुष्य नहीं विचारता कि ये क्षणिक सुख वास्तव में दुःखदायक हैं। लोग विषयों का सुखोपभोग करते हैं तथा बारम्बार उसी क्रिया को करते हैं। ये दुष्कर्म समय पा कर बुरी आदतों में बदल जाते हैं। तब मन को बुरी आदतों से हटाना बहुत ही कठिन हो जाता है।

हरताल को शुद्ध भस्म बनाने में कितना अधिक समय लगता है? हरताल को सात दिन तक गोमूत्र में भिगो कर रखना होगा, दश दिन तक चूना-जल में तथा सात दिन तक दूध में रखना होता है। तब उसे एक सौ आठ बार जलाया जाता है। तभी उसकी भस्म बनती है। ठीक उसी तरह से मन को शुद्ध करने में काफी समय लगता है; परन्तु इस प्रयास में सफलता निश्चित ही है।

हार्दिक कामना कीजिए। सावधान रहिए। बहुत सावधानीपूर्वक अपने मन का निरीक्षण कीजिए। उफनते हुए आवेगों तथा बुलबुलाते विचारों को रोकिए। चिड़चिड़ापन, देष, क्रोध, काम तथा घृणा की वृत्ति को मन के तल पर उत्पन्न न होने दीजिए। बरे विचार, बब्रे भाव तथा पापपूर्ण वृत्ति को मन में प्रवेश न करने दीजिए।

मन साधारणतया चमकीली वस्तु, सौन्दर्य, विद्वत्ता, विविध रंग तथा सुखद ध्वनि से आकृष्ट होता है। इन क्षुद्र वस्तुओं से आकृष्ट न बनिए। विचार कीजिए, "इन सभी वस्तुओं का अधिष्ठान क्या है? इन सभी वस्तुओं की पृष्ठभूमि क्या है?" तब आप पायेंगे कि इन सभी नाम-रूपों के पीछे एक ही वास्तविक सत्ता है। वह सत्ता परिपूर्ण, सर्वव्यापक, सर्वभूतान्तरात्मा आत्मा ही है। उसी आत्मा से तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित कीजिए। आप परब्रह्म को प्राप्त करेंगे।

धनात्मक सदा ऋणात्मक पर विजय पाता है। यह प्रकृति का नियम है। सूर्य के उदय होते ही कोहरे का अवसान हो जाता है- यह नित्य-प्रति की घटना है। प्रकाश के आते ही अन्धकार दूर हो जाता है। यदि आप दिव्य गुणों को प्रश्रय देंगे, तो बुरे गुण स्वयमेव दूर हो जायेंगे। यदि आप नये दिव्य विचारों को मन में लायेंगे, तो पुराने आसुरी विचार स्वयमेव भाग जायेंगे। साहस भय पर विजय पाता है। धैर्य क्रोध तथा चिड़चिड़ेपन को दूर करता है। प्रेम घृणा पर विजय पाता है। शुद्धता काम को परास्त करती है। इस प्रतिपक्ष-भावना का अभ्यास कीजिए। प्रातः ब्राह्ममुहूर्त के समय किसी सद्गुण का ध्यान कीजिए। उस सद्गुण के विभिन्न लाभ, उससे सम्बन्धित कुछ नैतिक कहानियों तथा विशेषताओं का चिन्तन कीजिए। दिनानुदिन यह भावना कीजिए कि आप उस सद्गुण में वृद्धि ला रहे हैं। शनैः शनैः

उस सद्गुण का विकास होगा। पाप विनष्ट हो जायेगा। बुरे गुण एक-एक करके नष्ट हो जायेंगे। आपको दुर्गुणों को भगाने की शक्ति प्राप्त होगी। वे सारे दुर्गुण जिन्हें आप अनादि काल से प्रश्रय देते चले आ रहे हैं, सब-के-सब दूर हो जायेंगे। आपमें महान् परिवर्तन हो जायेगा। आपका मन एकाग्र हो जायेगा।

अपने अन्तर्वासी प्रभु का चिन्तन कीजिए। उसकी लीला का हर क्षण स्मरण कीजिए। असत्य तथा सत्य के बीच विवेक कीजिए। ब्रह्म-चिन्तन करने का संकल्प कीजिए। जिस तरह पानी को नमक या चीनी से सन्तृप्त बनाया जाता है, उसी तरह मन को भी ईश्वर अथवा ब्रह्म के चिन्तन से सन्तृप्त बनाइए। तभी एकाग्र मन सदा दिव्य चैतन्य में संस्थित रहेगा।

अन्तर्निरीक्षण के द्वारा इन्द्रियों का दमन करना, इन्द्रियों को नियन्त्रित करने के लिए वैराग्य को विकसित करना तथा किसी विशेष इन्द्रिय की प्रिय वस्तु का परित्याग करना, विषय तथा विषय-भोगों की तृष्णा को विनष्ट करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना और शनैः शनै: अपने मन को इष्टदेवता पर एकाग्र करना यह परम कल्याण का मार्ग है। यही आपके जीवन का लक्ष्य होना चाहिए।

वासनात्मक नृत्य तथा बरे संगीत का परित्याग करना, सिनेमा को त्यागना, कामुक दृष्टि से स्त्रियों की ओर न देखना, इत्र का इस्तेमाल न करना, प्रत्येक स्थिति में सत्य बोलना, सरस सात्त्विक आहार करना, एकादशी के दिन उपवास करना, मित भाषण करना तथा मौन पालन करना- ये सब परम कल्याण के साधन हैं। यही आपकी दैनिक साधना होनी चाहिए।

२. दशों इन्द्रियों के दमन के लिए साधना

दबाव से इन्द्रियाँ उपद्रवी तथा प्रतिक्रियात्मक बन जाती हैं। इन्द्रियों के दबाव की आवश्यकता नहीं, उनके रूपान्तरण की आवश्यकता है। उनके सदुपयोग के द्वारा ही यह रूपान्तरण सम्भव है। प्राणायाम के अभ्यास के द्वारा पहले इन्द्रियों को कमजोर बना डालना चाहिए। वैराग्य, त्याग, ध्यान, आवश्यकताओं की कमी, कामनाओं का निग्रह-इन सभी से इन्द्रिय दमन में सहायता मिलती है।

इन्द्रियाँ बहुत ही सबल तथा प्रबल हैं। उन्हें विचार तथा विवेक के साथ बुद्धिमानीपूर्वक शनैः शनैः वशीभूत करना चाहिए। उग्र तामसिक तप से उनके निग्रह में अधिक सहायता नहीं मिलेगी। यह एक दिन या एक महीने का कार्य नहीं है। यह तो धैर्ययुक्त सतत संग्राम है। धैर्य तथा संलग्नतापूर्वक आगे बढ़ते जाइए। सत्संग से बल मिलता है तथा उनके दमन में सहायता मिलती है। इन सबके अतिरिक्त ईश्वर की कृपा अनिवार्य है। आत्मार्पण, श्रद्धा तथा भक्ति के द्वारा ईश्वर-कृपा प्राप्त कीजिए।

ज्ञानेन्द्रिय

१. ईश्वर की महिमा, लीला तथा उसके कीर्तन के श्रवण तथा योनि मुद्रा के अभ्यास से अनाहत ध्वनि-श्रवण के द्वारा श्रोत्रों को नियन्त्रित कीजिए।

२. ब्रह्मचर्य-पालन, खुरदरी चटाई पर शयन, मोटे एवं खुरदरे वस्त्र, कम्बल तथा कमीज को धारण कर त्वगेन्द्रिय का दमन कीजिए।

३. नित्य-प्रति त्राटक का अभ्यास कर भ्रमणशील आँखों का दमन कीजिए अनुभव कीजिए कि हर मूर्ति ईश्वर का ही रूप है। हर रूप में ईश्वर के दर्शन कीजिए। इष्टदेव पर त्राटक कीजिए तथा आँखें बन्द कर चित्र का मानसिक दर्शन कीजिए।

४. उन वस्तुओं को एक सप्ताह या एक महीने के लिए त्याग दीजिए जिन्हें मन अधिक पसन्द करता है। रविवार के दिन नमक का त्याग कीजिए। चीनी रहित दूध पीजिए। चटनी का त्याग कीजिए। दाल के लिए अतिरिक्त नमक और चाय अथवा दूध के लिए अतिरिक्त चीनी की माँग न कीजिए। तीन वस्तुएँ ही आहार के लिए रखिए। एकादशी, अमावास्या, पूर्णिमा, जन्माष्टमी, शिवरात्रि, वैकुण्ठ एकादशी तथा दशहरे को उपवास कीजिए।

५. इत्र का इस्तेमाल न कीजिए।

कर्मेन्द्रिय

१. नित्य दो घण्टे तथा रविवार को चौबीस घण्टे का मौन रखिए। परिमित शब्द बोलिए। मधुर बोलिए। सत्य बोलिए। आप वाक्-इन्द्रिय का दमन कर सकेंगे।

२. गरीब तथा बीमारों की सेवा कीजिए। अपने माता-पिता की सेवा कीजिए। साधुओं की सेवा कीजिए। मन, वचन तथा कर्म से अहिंसा का अभ्यास कीजिए। अर्चना कीजिए या ईश्वर को फूल चढ़ाइए। मन्दिर में दीप जलाइए। मन्दिर के फर्श को बुहारिए। अभिषेक के लिए जल लाइए। मन्दिर में अन्य प्रकार की सेवा कीजिए। दान दीजिए। आप अपने हाथ पर वश पा लेंगे।

३. मन्दिर में जाइए। तीर्थस्थानों के दर्शन कीजिए। मन्दिर की परिक्रमा कीजिए। एक ही आसन पर दो घण्टे तक बैठिए। आप पाँव का दमन कर लेंगे।

४. ब्रह्मचर्य का पालन कीजिए। आप उपस्थ इन्द्रिय का दमन कर लेंगे।

५. मिताहार कीजिए। उपवास कीजिए। आप गुदा-इन्द्रिय का दमन करेंगे।

३. वैराग्य-विकास के लिए साधना (१)

१. विषय-सुख क्षणिक, भ्रामक, मोहक तथा काल्पनिक हैं।

२. एक राई-भर सुख पर्वत-भर दुःखों से मिश्रित है।

३. भोग के द्वारा इच्छा की तृप्ति नहीं हो सकती, प्रत्युत् तृष्णा के द्वारा यह मन को अधिक अशान्त बना देता है।

४. विषय-सुख ब्रह्मज्ञान का शत्रु है।

५. विषय-सुख जन्म तथा मृत्यु का कारण है।

६. यह शरीर मांस, मज्जा तथा सभी प्रकार के मलों से पूर्ण है।

७. अपने मन के समक्ष आत्मिक जीवन, अमृतत्व, नित्य शान्ति, परम सुख, असीम ज्ञान आदि आत्म-साक्षात्कार के फलों को रखिए। यदि आप इन सात बातों की याद सदा बनाये रखेंगे, तो मन विषय-सुखों की तृष्णा से उपरत हो जायेगा तथा विवेक, वैराग्य एवं मुमुक्षुत्व का उद्भव होगा। आपको इन्द्रिय जीवन के दोषों पर विचार रखना चाहिए (दोष-दृष्टि) तथा सांसारिक जीवन के मिथ्या स्वभाव पर भी चिन्तन करना चाहिए (मिथ्या-दृष्टि)।

बिछावन से उठते ही नित्य-प्रति एक बार इसका अध्ययन कर लीजिए।

४. वैराग्य-विकास के लिए साधना (२)

सन्देह के इन समयों में ही सत्संग विशेष रूप से लाभकर होता है। महात्माओं की सतत संगति से आपको वैराग्य-विकास में सहायता मिलती है। भर्तृहरि की पुस्तकों को बारम्बार पढ़िए। वैराग्य में विभिन्न कारणों से कमी भी आ सकती है; अतः जब कभी आपका मन भ्रमित हो, तो आपको अपने को अधिक सबल बनाना होगा। आत्मसाक्षात्कार-प्राप्त महात्माओं से धार्मिक विषय पर चर्चा कीजिए तथा वैराग्य-शिक्षा को बनाये रखिए। आपमें परा-वैराग्य होना चाहिए। विवेक को भी सभी परिस्थितियों में बढ़ाना होगा। जब आपका शरीर व्याधिमुक्त हो जाता है अथवा परिस्थितियाँ अनुकूल हो जाती हैं, तो आप भगवान् या आत्मा को बिलकुल ही भुला देते हैं। माया अथवा अविद्या के प्रभाव से आप विश्वास करते हैं कि इस संसार से परे अन्य कुछ भी नहीं है तथा आपकी सम्पत्ति और सन्तति ही आपको सभी आकांक्षित सुख प्रदान कर सकते हैं। आप यह भी विश्वास करते हैं कि आपका सुख भौतिक पदार्थों में ही निहित है। अतः महात्माओं के सत्संग द्वारा माया की भ्रान्ति से ऊपर उठिए। महात्माओं की सेवा कर उनकी कृपा प्राप्त करने का प्रयास कीजिए।

जो महात्माओं के सन्निकट नहीं रह सकते, उन्हें ऐसे महात्माओं द्वारा रचित पुस्तकें बहुत ही सहायक होंगी जो आत्मसाक्षात्कार प्राप्त हों, जो स्वयं इस मार्ग पर चले हों, जिन्होंने उग्र तपस्या की हो तथा जो वेदान्त का ज्ञान रखते हों। इस प्रकार के महात्माओं की महान् कृतियों के अनुशीलन से ऐसे साधक, जिसे साक्षात्कार प्राप्त गुरु का पथ-प्रदर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य नहीं उपलब्ध हो सका, में ऐसे उत्तम संस्कारों का सृजन होता है जिनसे वह अन्ततः ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है और आत्मकाम बन जाता है। वहाँ वह कैवल्य के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करता है और लोक-संग्रहार्थ इस भूलोक में ऋषि के रूप में पुनः अवतरित होता है। यदि कोई आवरण अवशिष्ट भी रहा हो, तो वह उसे दूर करने में समर्थ होता है और परमात्मा के साथ ऐक्य का अनुभव करता है।

५. अहंकार को दूर करने के लिए साधना

(१)

अहंकार मन की एक वृत्ति है। पतंजलि महर्षि उसे अस्मिता कहते हैं। मनुष्य जब आत्माभिमान करने लगता है, तो वही मन अहंकार में बदल जाता है। सर्वप्रथम अहंकार उत्पन्न होता है और तब ममता आती है।

यह अहंकार कर्म, कामना तथा दुःखों का जनक है। यह सभी बुराइयों का मूल है। यह मिथ्या है। यह लोगों को भ्रम में डाल देता है। यद्यपि यह कुछ भी नहीं है, फिर भी सांसारिक व्यक्तियों के लिए यह सब कुछ है। यह ममता से सम्बन्ध रखता है। यह अविद्या से उत्पन्न है। मिथ्या अभिमान से इसका जन्म होता है। मद इसे प्रदीप्त करता है। यह शान्ति का सबसे बड़ा शत्रु है। यदि इस दुष्ट अहंकार का परित्याग कर दिया जाये, तो मनुष्य सदा सुखी रहेगा। अहंकार का संन्यास ही संन्यास का रहस्य है।

अहंकार का वास-स्थल मन में है। मनुष्य अहंकार के वशीभूत हो कर पाप तथा दुष्कर्म करता है। यह गहरा गड़ा हुआ है। अहंकार से चिन्ता तथा क्लेश की उत्पत्ति होती है। यह भयानक व्याधि है। अभिमान, काम, द्वेष, राग तथा घृणा अहंकार के ही सेवक हैं। अहंकार सद्गुण तथा मन की शान्ति को नष्ट कर डालता है। यह ममता के जाल को फैला कर मनुष्य को उसमें फैसा लेता है। जो अहंकार से मुक्त है, वह सदा सुखी और शान्त है। अहंकार के कारण ही कामनाएँ बढ़ती तथा विकसित होती हैं। मनुष्य के महान् वैरी अहंकार ने उसके लिए पुत्र, स्त्री, मित्र तथा सम्बन्धियों का मोह-पाश तैयार किया है जिसको तोड़ना बड़ा ही कठिन है। अहंकार से बढ़ कर और कोई वैरी नहीं है।

जो न तो किसी वस्तु से राग रखता है और न द्वेष, जो सदा अपने मन की शान्ति बनाये रखता है, वह अहंकार की भावना से प्रभावित नहीं होता।

अहंकार तीन प्रकार के हैं। उनमें दो लाभदायक तथा महान् हैं; परन्तु तीसरा निम्न तथा त्याज्य है। प्रथम है वह परम तथा अविभक्त अहं जो समस्त जगत् में व्याप्त है। यह परमात्मा है, जिसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। इस महावाक्य पर ध्यान कीजिए- "अहं ब्रह्मास्मि" मैं ब्रह्म हूँ। ब्रह्म के साथ एकता स्थापित कीजिए। यह सात्विक अहंकार है। जिस ज्ञान के द्वारा हम अपनी आत्मा को धान के अग्रभाग से भी सूक्ष्मतर अथवा केश के शतांश से भी सूक्ष्मतर रूप में देखते हैं, वह दिव्य प्रकार का अहंकार है। ये दो प्रकार के अहंकार जीवन्मुक्तों में पाये जाते हैं। इनसे मनुष्य को मुक्ति मिलती है। इनसे बन्धन नहीं होता। अतः ये लाभदायक तथा श्रेष्ठ हैं।

तीसरे प्रकार का अहंकार वह ज्ञान है जिसमें मनुष्य पंचतत्त्वों से निर्मित शरीर के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित कर उसे ही आत्मा समझने लगता है। यह निकृष्ट अहंकार है। यह सभी सांसारिक मनुष्यों में पाया जाता है। यह पुनर्जन्म के विष-वृक्ष की वृद्धि का कारण है। जिनमें इस प्रकार का अहंकार है, वे कभी भी सद्बुद्धि प्राप्त नहीं करते। इस अहंकार से अनेकानेक व्यक्ति भ्रम में पड़े हुए हैं। वे अपनी बुद्धि तथा विचार-शक्ति को खो बैठते हैं। इस प्रकार के अहंकार से विनाशकारी परिणाम प्राप्त होते हैं। लोग जीवन की सभी बुराइयों के शिकार बन जाते हैं। इस अहंकार से पीड़ित व्यक्ति अनेकानेक कामनाओं को रखता है, जिनके वशीभूत हो वह पाप कर्म करने के लिए बाध्य होता है। इससे मनुष्य पशु की अवस्था तक उतर जाता है। इस अहंकार को पहले के दो प्रकार के अहंकार से विनष्ट करना चाहिए। जितना ही अधिक आप इस अहंकार को क्षीण बनायेंगे, उतना ही अधिक आप ब्रह्मज्ञान प्राप्त करेंगे।

पुनः अहंकार के तीन गौण रूप हैं सात्त्विक अहंकार, राजसिक अहंकार तथा तामसिक अहंकार। सात्त्विक अहंकार से मनुष्य संसार में नहीं बँधता। इससे साधक मुक्ति प्राप्त करने में सहायता पाता है। यदि आप इस तरह निश्चय करें, "मैं भगवान् का सेवक हूँ, वह मुझमें प्रकट है तथा सभी की सेवा के लिए मुझे यह जन्म मिला है।" जीवन्मुक्त में भी सात्त्विक अहंकार का अल्प अंश पाया जाता है। वह सात्त्विक अहंकार से ही कर्मों को करता है। "मैं राजा हूँ। मैं सब-कुछ जानता हूँ। मैं बहुत बुद्धिमान् हूँ।" ये राजसिक अहंकार के रूप हैं। "मैं मूर्ख हूँ। मैं कुछ नहीं जानता"- इस प्रकार का भाव रख कर जो व्यक्ति उद्धत तथा हठी है, तो उसे तामसिक अहंकार कहते हैं।

अहं पद का वाच्यार्थ अहंवृत्ति है जो मन से उत्पन्न हो कर शरीर के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित करती है। अहं पद का लक्ष्यार्थ है ब्रह्म या असीम 'मैं'। माया ही अहंकार का कारण है। विषय-ज्ञान ही अहंकार का कारण है। शरीर, वृक्ष,

नदी, पर्वत, जानवर जैसी भ्रामक वस्तुओं से ज्ञान मिलता है। यदि विषय-पदार्थ नहीं रहते, तो हम न तो विचार करते और न कुछ जानते ही। तब मन का बीज अहंकार विलीन हो जायेगा।

अहंकार की भावना वह नीड़ है जिसमें सभी दुर्बलताओं का आवास है। यह मन-रूपी वृक्ष का बीज है। अहंकार-रूपी बीज से बुद्धि अंकुरित होती है। इस अंकुर से संकल्प रूपी वासनाएँ फैलती हैं। मन, चित्त और बुद्धि एक अहंकार के ही विभिन्न नाम हैं। वासनाओं की शाखाएँ अनेकानेक कर्मों की फसल उत्पन्न करेंगी। परन्तु यदि ज्ञान-खड्ग के द्वारा आप उन्हें अपने हृदय के अन्तर में ही काट डालेंगे, तो उनका विनाश हो जायेगा। मन-रूपी वृक्ष की शाखाओं को काट डालिए तथा अन्ततः इसके मूल को ही विनष्ट कर डालिए। शाखाओं को काटना तो गौण है। मूल को काटना ही प्रधान है। यदि आप सत्कर्मों द्वारा अहंकार को नष्ट कर देंगे, जो मन की जड़ है, तो फिर मन उत्पन्न नहीं हो सकेगा। आत्मज्ञान वह अग्नि है जो अहंकार के बीज को ही विनष्ट कर डालती है।

अहंकार का दूसरा विभाजन भी है- स्थूल तथा सूक्ष्म अहंकार। स्थूल शरीर से सम्बन्ध स्थापित करने पर स्थूल अहंकार रहता है। मन तथा कारण शरीर से सम्बन्ध स्थापित करने पर सूक्ष्म अहंकार रहता है। यदि आप मद, स्वार्थ, कामना तथा देहाध्यास नष्ट कर दें, तो स्थूल अहंकार नहीं रहेगा, सूक्ष्म अहंकार ही बचा रहेगा। आपको सूक्ष्म अहंकार को विनष्ट करना चाहिए। सूक्ष्म अहंकार का उन्मूलन भी आवश्यक है। सूक्ष्म अहंकार अधिक हानिकारक है तथा अधिक कठिनाई से दूर होने वाला है। "मैं धनी हूँ, मैं राजा हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ" यही स्थूल अहंकार है। "मैं योगी हूँ, मैं ज्ञानी हूँ, मैं अच्छा कर्मयोगी हूँ, मैं सदाचारी व्यक्ति हूँ, मैं अच्छा साधक अथवा साधु हूँ" - यही सूक्ष्म अहंकार है। अहंकार का दूसरा विभाजन भी है-सामान्य अहंकार तथा विशेष अहंकार। सामान्य अहंकार पशुओं में है, विशेष अहंकार मनुष्यों में है।

आप कहते हैं, "यह शरीर मेरा है।" गृद्ध, शृगाल तथा मछली भी कहते हैं, "यह शरीर मेरा है।" प्याज के छिलके को एक-एक करके हटा देने से कुछ नहीं बचता, उसी प्रकार 'मैं' भी है। यह शरीर, मन, प्राण, इन्द्रिय आदि पंच तन्मात्राओं के मेल से ही बने हैं। ये सभी प्रकृति के विकास मात्र हैं। फिर 'मैं' कहाँ है? मन-रूपी जादूगर का जादू ही मैं है। जो वस्तु कारण से उत्पन्न नहीं, उसका अस्तित्व ही नहीं माना जा सकता। यह शरीर कर्मों से उत्पन्न है, स्वयं कारण नहीं। इस शरीर का ज्ञान भी मिथ्या ही है। अतः ज्ञान-सम्मोह से उत्पन्न अहंकारादि भी असत्य हैं। वास्तविक 'मैं' तो सत्-चित्-आनन्द ही है।

जिस तरह ट्रेन अथवा नौका की गति को वृक्ष आदि पर आरोपित करते हैं, उसी प्रकार मन के जादू द्वारा अहं को शरीर, मन, प्राण तथा इन्द्रियों पर आरोपित करते हैं। जब आप कहते हैं, "मैं मोटा हूँ, मैं पतला हूँ" तो 'मैं' का स्थानान्तरण इन्द्रियों में होता है। जब आप कहते हैं, "मैं भूखा हूँ, मैं प्यासा हूँ" तो 'मैं' प्राणों में अध्यस्त है। जब आप कहते हैं, "मैं क्रोधी हूँ, मैं कामी हूँ" तो 'मैं' का अध्यास मन से होता है। यदि आप परमात्मा से तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित करेंगे, तो सारे मिथ्यारोप विनष्ट हो जायेंगे।

यदि आप सेनापति को मार डालें, तो सैनिकों का दमन करना सुगम हो जायेगा। उसी प्रकार आध्यात्मिक संग्राम में यदि आप सेनापति अहंकार को विनष्ट कर दें, तो आप सुगमतापूर्वक काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, दम्भ आदि सैनिकों को जो अहंकार के लिए ही युद्ध करते हैं, पराजित कर सकते हैं।

प्रथम दो प्रकार के उच्च अहंकारों द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील बनिए। अक्षय परम-धाम की संस्थिति में ये दो अहंकार भी एक-एक कर परित्यक्त हो जाते हैं। मैं को स्थूल शरीर से अध्यस्त न कीजिए। परब्रह्म से तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित कीजिए।

भले ही आपने अपने अहंकार को बहुत ही तनु अथवा क्षीण बना दिया हो; परन्तु यदि आप अभी भी मानापमान से प्रभावित होते हैं, तो जान लीजिए कि आपमें अभी भी सूक्ष्म अभिमान बना हुआ है।

भक्ति-मार्ग का साधक आत्म-निवेदन अथवा ईश्वर के प्रति आत्मार्पण के द्वारा अहंकार को विनष्ट करता है। वह कहता है कि 'मैं तेरा हूँ, सब-कुछ तेरा ही है, तेरा चाहा ही होगा, हे प्रभु!' वह अपने को ईश्वर के हाथ का यन्त्र समझता है। वह अपने सारे कर्म और उनके फल को ईश्वर पर अर्पित कर डालता है। वह अनुभव करता है कि ईश्वर के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है। सभी वस्तुएँ ईश्वर द्वारा ही सम्पादित हैं तथा एक परमाणु भी उसकी अनुमति के बिना गतिशील नहीं हो सकता। सारे प्राणी उसी में जीवित रहते, गतिशील होते तथा अपने अस्तित्व को रखते हैं।

कर्मयोगी अपने अहंकार को आत्म-त्याग के द्वारा विनष्ट करता है। ज्ञानयोगी विचार तथा नेति-नेति के अभ्यास द्वारा अहं को विनष्ट करता है। "मैं शरीर नहीं हूँ, मैं प्राण नहीं हूँ, मैं मन अथवा इन्द्रिय नहीं हूँ। मैं सर्वव्यापक ब्रह्म हूँ।" इस तरह ध्यान के द्वारा वह अहंकार को विनष्ट करता है।

(२)

अहंकार लौह-भित्ति के समान है जो मनुष्य को अमर आत्मा से पृथक् करता है। यह दुर्गन्धित पदार्थ है जिसने मनुष्य को ईश्वरत्व के परम पद से पतित कर उसे पाशवी वृत्तियों का शिकार बना दिया है। यह मायावी रासायनिक वस्तु है जिसे माया ने स्वयं प्रयोगशाला में निर्मित किया है। इसके कारण मनुष्य अपने स्वाभाविक वास्तविक दिव्य स्वरूप का विस्मरण कर भौतिक नश्वर पदार्थों की ओर अलकोहल, शराब आदि पदार्थों की ओर दौड़ता है। यह रहस्यमय गैस है जो विचारशील के लिए वाष्पीकृत हो कर उड़ जाती है; परन्तु अविवेकी तथा सांसारिक व्यक्ति के लिए इस्पात की चट्टान के समान प्रबल बनी रहती है. जिसे शक्तिशाली तोप तथा बम के द्वारा भी ध्वस्त करना सम्भव नहीं है।

यह बड़ा ही शक्तिशाली है। इसका स्वभाव अनोखा है। इसका कार्य-व्यापार बुद्धि की समझ से परे है। यह बड़ी ही निर्ममतापूर्वक आक्रमण कर बैठता है। यह उच्च पद प्राप्त योगी को पल मात्र में ही निम्न स्तर में घसीट लाता है। इसके विविध रूप हैं तथा यह विभिन्न प्रकार से मनुष्यों को भ्रमित करता है।

यह सारा संसार ही अहंकार का खेल है। अहंकार, लिंग तथा जगत् अविभाज्य हैं। यदि आप अहंकार का स्वभाव जानते हैं तो आपने सारी सृष्टि के रहस्य को समझ लिया है। अतः आत्म-विश्लेषण कीजिए। अहंकार का अध्ययन परमावश्यक है। इसके द्वारा आप परम सुख की प्राप्ति कर सकते हैं।

अहंकार प्रकृति अथवा माया का विकार है। यह अहंकार तत्त्व है। यह अविद्या से उत्पन्न है। इसके तीन रूप हैं सात्विक अहंकार, राजसिक अहंकार तथा तामसिक अहंकार। सात्त्विक अहंकार मोक्ष की ओर ले जाता है। राजसिक तथा तामसिक अहंकार आपको जन्म-मृत्यु के चक्र में बद्ध बनाते हैं।

अहंकार इन स्थानों को पसन्द करता है- धनी मनुष्य का मन, शुष्क पण्डित, उच्च पदाधिकारी, मन्त्री, वैज्ञानिक, चिकित्सक, नास्तिक, बुद्धिवादी, अज्ञेयवादी, साम्यवादी तथा उन व्यक्तियों के मन जो धर्म एवं सत्य की खोज से पराङ्मुख हैं।

आप अनुभव करते हैं, "अहमस्मि - मैं हूँ।" यह सात्त्विक अहंकार है। विभीषण तथा तुलसीदास ने कहा- "मैं अपने शिर को भगवान् राम के अतिरिक्त किसी अन्य देवता के समक्ष नहीं झुकाऊँगा।" यह सात्त्विक अहंकार है। अपनी आत्मा को

जानने, मोक्ष-प्राप्ति तथा धार्मिक जीवन यापन करने की कामना सात्त्विक अहंकार से उत्पन्न है। आलस्य, प्रमाद, असावधानी, हठ आदि तामसिक अहंकार से उत्पन्न हैं।

अहंकार मन की वृत्ति है। सर्वप्रथम अहंवृत्ति प्रकट होती है और तब अन्य वृत्तियाँ इस अहंवृत्ति से चिपट जाती हैं- अहंकार से मन की उत्पत्ति होती है। अहंकार से सम्बन्धित चैतन्य का प्रतिबिम्ब ही जीव है। इसके कारण जीव भौतिक शरीर से तादात्म्य-सम्बन्ध कर बैठता है। तब शरीर में 'मैं' की वृत्ति उत्पन्न होती है। यही मानवी क्लेशों तथा सन्तापों का कारण है।

धन, सौन्दर्य, शारीरिक बल, सद्गुणों की प्राप्ति, पाण्डित्य, राजसिक आहार ये अहंकार को स्थूल बनाते हैं। सत्संग, जप, ध्यान, धार्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय, सात्त्विक आहार तथा कीर्तन-ये अहंकार को तनु बनाते हैं।

यदि अहंकार को ब्रह्म-चिन्तन अथवा 'मैं कौन हैं के विचार से नष्ट कर दिया जाये. तो इसके सारे विकार स्वतः ही नष्ट हो जायेंगे। उनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। काम, क्रोध आदि के विनाश से अहंकार क्षीण हो जाता है।

राजसिक कार्यों की पुनरावृत्ति करते रहने से काम, क्रोध तथा अभिमान अधिकाधिक प्रबल होते जाते हैं। इन बुरी वृत्तियों के उन्मूलनार्थ आपको बहुत धैर्य तथा अडिग उत्साह से कार्य करना होगा।

अभिमान अहंकार का चिर संगी है। संन्यासी तथा योगी जन भी इससे नहीं बचते। यदि उन्हें समुचित सम्मान न दिया जाये, तो वे रुष्ट हो जाते हैं। हाँ, हो सकता है कि वे अपना क्रोध प्रकट न करें। इसका कारण क्या है? अभिमान पर आघात पहुँचा है। अभी भी अहंकार है। वह अपनी तृप्ति के लिए आदर तथा सम्मान चाहता है।

यदि आप उच्च पद को प्राप्त करके भी सेवा-भाव रखते हैं, तो अभिमान आपको प्रभावित नहीं करेगा। आप सदा ऐसा विचार बनाये रखें कि वह पद किसी भी क्षण आपके हाथ से जा सकता है।

यदि संन्यासी, योगी या किसी महापुरुष को उनके भक्तजन बहुधा सम्मान देते हैं, माला पहनाते तथा नमस्कार करते हैं और यदि वे ऊँचे स्थान पर बैठे होते हैं, तो वे अपने भक्तों के नमस्कार का प्रत्युत्तर देने में भी कठिनाई का अनुभव करते हैं। वे अपने शरीर को मोड़ते भी नहीं अथवा जमीन पर नहीं बैठते। कालान्तर में उनके मन में अहंकार प्रवेश कर लेता है तथा वे मान अथवा प्रतिष्ठा के गुलाम बन जाते हैं।

राजसिक व्यक्ति कभी-कभी कहता है, "चाहे मेरी मौत ही क्यों न हो जाये, मैं अपने कथन को कदापि लौटा नहीं सकता। मैं कभी अपनी हार नहीं मान सकता। मैं उनको पहले नमस्कार कदापि नहीं करूँगा। मैं कदापि क्षमा-याचना नहीं करूँगा। मुझे तो प्रथम सीट मिलनी ही चाहिए।" ये अभिमानी व्यक्ति के कथन हैं। यदि उसके अभिमान पर चोट पहुँचायी जाये, तो वह यथाशक्ति उन पर आक्रमण करने तथा उनकी हत्या करने के लिए आतुर रहेगा। यदि मनुष्य अपनी प्रकृति में थोड़ा सुधार लाये, वह थोड़ी नम्रता तथा यथा-व्यवस्था का गुण लाये, यदि वह थोडा झुकना जाने और मधुर शब्द बोले, तो वह सभी के हृदयों को जीत सकता है तथा समस्त जगत् का वास्तविक सम्राट बन सकता है। अभिमान पर चोट लगने के कारण मनुष्य बड़ा ही क्लेश भोगता है। एक स्थान में अथवा एक गुरु के अधीन वह टिक नहीं सकता। वह झगडे, संग्राम आदि रचता है, उसको सुविधाएँ नहीं मिल पार्टी तथा वह निरुद्देश्य इधर-उधर भटकता रहता है। यह सब अभिमान के कारण ही है।

माया बड़ी ही शक्तिशाली है। वह उसे मोहित कर देती है। अन्तर्निरीक्षण के द्वारा उसे अपने दोषों को जानने का समय नहीं रहता। यदि उसके शुभेच्छुक उसके दोषों को बतलाते हैं, तो वह रुष्ट हो जाता है। उसमें उन दोषों को दूर करने की

सामर्थ्य नहीं है। ये दोष जन्म-जन्मान्तर तक बने रहते हैं। वह बारम्बार एक ही प्रकार की गलतियों को करता है तथा दुःखमय जीवन बिताता है। एम. ए., पी-एच. डी. बनना आसान है, ओजस्वी भाषण देना आसान है; परन्तु अभिमान को दूर करना, जो मानव-क्लेशों का मूल है, बड़ा ही कठिन है।

योगी तथा वेदान्ती भी अहंकार से नहीं बच पाते। स्त्री को शारीरिक सौन्दर्य का अभिमान है, राजा को अपने राज्य का, वेदान्ती को अपने पाण्डित्य का, योगी को अपनी समाधि एवं सिद्धियों का तथा ब्रह्मचारी को अपनी शुद्धता का अभिमान है। सच्चा भक्त ही ईश्वर की कृपा से इस महान् शत्रु से मुक्त है।

हे मनुष्य ! स्पष्टतः जान लीजिए कि यह अहंकार है क्या? बड़ी सावधानी से इसका अध्ययन कीजिए। कुछ क्षण के लिए नित्य-प्रति आँखें बन्द कर शान्त बैठ जाइए। अन्तर्निरीक्षण के द्वारा अपने दोषों का पता लगा लीजिए। अपने ध्यान में नियमित बनिए। सदा सत्संग कीजिए। अभिमान त्यागिए। इस अहंकार को विनष्ट कर अपने वास्तविक स्वरूप सच्चिदानन्द में विश्राम कीजिए।

(३)

अहंकार के कार्य बहुत ही रहस्यमय हैं। इसके विभिन्न कार्य-व्यापारों को पहचानना बड़ा ही कठिन है। इसके लिए सूक्ष्म तथा तीक्ष्ण बुद्धि की आवश्यकता है। यदि आप नित्य-प्रति आत्म-विश्लेषण तथा विवेक का अभ्यास करेंगे, तो आप इसके रहस्य को समझ सकते हैं।

जहाँ-कहीं भी अहंकार है, वहाँ राग-द्वेष, अभिमान, दर्प, हठ, वासना, तृष्णा, वृत्ति, संकल्प, पाखण्ड, आसक्ति तथा कर्तापन का अभिमान आदि भी है। यदि आप अहंकार को नष्ट करना चाहते हैं तो आपको इसका स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। धैर्यपूर्वक संलग्न प्रयास से ही आपको सफलता मिलेगी।

यह अहंकार अपना जन्म-स्थान, अपना प्रान्त, अपने प्रान्तीय जन, अपनी मातृभाषा, अपने सगे-सम्बन्धी तथा भोजन-वस्त्रादि के अपने तरीके को ही पसन्द करता है।

यह अहंकार दूसरों के ऊपर प्रभाव जमाना चाहता है। वह पद, सम्मान, राज्य, आदर, सम्पत्ति, घर, स्त्री तथा बच्चे चाहता है। वह आत्म-प्रशंसा चाहता है। वह दूसरों पर शासन करना चाहता है। यदि कोई व्यक्ति उसकी दुर्बलताओं की ओर संकेत करता है, तो उसके अभिमान को चोट पहुँचती है। यदि कोई उसकी प्रशंसा करता है, तो वह फूल उठता है। वह इस प्रकार अहंकार करता है- "मैं सब-कुछ जानता हूँ। वह तो कुछ भी नहीं जानता। जो मैं करता हूँ, वह बिलकुल ठीक है। वह जो कहता है, बिलकुल गलत है। वह मुझसे निचले स्तर में है। मैं उससे बड़ा हूँ।" वह दूसरों को अपने मत एवं विचार पर चलने के लिए बाध्य करता है। ये अहंकार के सामान्य विकार हैं।

आत्म-विश्लेषण तथा अन्तर्निरीक्षण का प्रारम्भ करने पर यह अहंकार चोर की भाँति जा छिपेगा। यह आपकी समझ से बाहर रहेगा। आपको बड़ा ही सावधान तथा सतर्क रहना चाहिए। यदि आप जप, कीर्तन, प्रार्थना तथा भक्ति के द्वारा ईश्वर की कृपा प्राप्त कर लें, तो आप सुगमता से अहंकार को नष्ट कर सकते हैं। ईश्वर की कृपा से ही आपका आत्मार्पण पूर्ण हो सकता है। जब यह अहंकार विश्वात्मा अहंकार में विलीन हो जायेगा, तो आप आत्म-साक्षात्कार के द्वारा परमात्मा से एक बन जायेंगे।

इस अहंकार के रहस्य को समझने का प्रयास कीजिए। यह आत्म-प्रशंसा, आत्मोन्नति, अधिकार, विषय तथा भोग की प्राप्ति के पीछे लालायित रहता है। इस अहंकार को नष्ट कीजिए। उदासीन रहिए। सद्गुणों में अपनी श्रद्धा ग्रथित

कीजिए। सेवा तथा त्याग की भावना को जीवन का आदर्श बनाइए। शीघ्र ही आप सम्पन्न आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करेंगे।

तितिक्षा को प्रदीप्त कीजिए। मानव-सेवा तथा शुद्ध प्रेम के आदर्श को बनाये रखिए। वासनाओं की निम्नगामी शक्तियों को रोकने के लिए सात्त्विक शक्ति का निर्माण कीजिए। बुरे विचारों को भले विचारों द्वारा नष्ट कीजिए। मलिनता, अशक्तता तथा हृदय-दौर्बल्य से ऊपर उठिए। बीर बनिए। सदा प्रसन्न रहिए। करुणा, शान्ति, क्षमा, सहनशीलता आदि दैवी सम्पत् का विकास कीजिए। आप निश्चय ही परम सुख तथा नित्य ज्ञान प्राप्त करेंगे।

वीर साधक! अपनी अमर आत्मा में ही शरण लीजिए। अपने संकल्प के पक्के बनिए। सत्य तथा धर्म के मार्ग का अनुगमन कीजिए। सावधानीपूर्वक अपने मन का निरीक्षण कीजिए। सावधान तथा संलग्न बनिए। उवद्रवी इन्द्रियों को अनुशासित कीजिए। जिह्वा तथा मलिन कामनाओं को रोकिए। आप संसार सागर को पार कर अमृतत्व, शाश्वत शान्ति तथा आनन्द प्राप्त करेंगे।

६. ईर्ष्या को दूर करने के लिए छह साधन

ईर्ष्या को दूर करने के छह तरीके हैं : (१) राजयौगिक साधना, (२) वेदान्तिक साधना, (३) भक्तियोग की साधना, (४) कर्मयोग की साधना, (५) विवेकियों की विचार-साधना और (६) थियोसाफी की साधना ।

१. राजयौगिक साधना : 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' के अनुसार राजयोगी वृत्ति को ही विनष्ट करता है। वह ईर्ष्या के सभी संकल्पों को अन्तर्निरीक्षण तथा ध्यान के द्वारा नष्ट कर डालता है। वह प्रतिपक्ष-भावना की विधि को प्रयोग में लाता है। प्रतिपक्ष गुण 'उदारता' के अभ्यास से 'ईर्ष्या' स्वतः दूर हो जायेगी। 'संकीर्ण बुद्धि' के कारण ही ईर्ष्या की उत्पत्ति होती है। यदि उदारता का अभ्यास किया गया, तो ईर्ष्या स्वतः ही नष्ट हो जायेगी।

ध्यान-गृह रखिए। प्रातःकाल पद्म, सिद्ध या सुखासन पर आधा घण्टा बैठिए। 'उदारता' गुण पर ध्यान कीजिए। इस सद्गुण के लाभों पर विचार कीजिए तथा साथ ही ईर्ष्या की हानियों पर भी विचार कीजिए। उन महापुरुषों का चिन्तन कीजिए जो इस सद्गुण से सम्पन्न हैं। समाज में मिलते-जुलते समय कल्पना कीजिए कि आपको यह सद्गुण प्राप्त है। सदा 'ॐ उदारता' का मानसिक जप कीजिए। ऐसा आत्म-संकेत कीजिए- "मैं दिन-प्रति-दिन उन्नति कर रहा हूँ।" निःसन्देह ही आप कुछ दिनों में इस सद्गुण का विकास कर लेंगे। यदि आपको विफलता भी हो, तो आप इससे हतोत्साह न हों। उपर्युक्त साधना को नियमित रूप से करते जाइए। अन्ततः यह सद्गुण आपके स्वभाव का एक अंग बन जायेगा। ईर्ष्या विलुप्त हो जायेगी।

२. वेदान्तिक साधना : वेदान्ती इस मन्त्र का जप करते हैं, "मैं सबमें हूँ", "मैं सभी में हूँ", "सब आत्मा ही है।" "इस सारे जगत् में मेरी आत्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं।" "मैं सर्वत्र अपनी आत्मा को ही देखता हूँ। कौन किससे ईर्ष्या करे!" वह शत्रु के साथ, मेहतर के साथ, चोर, पतित, शराबी, खूनी, सर्प, प्रस्तर, व्याघ्र तथा बिच्छू से अपना तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करता है। वेदान्त की इस साधना से ईर्ष्या दूर हो जाती है।

३. भक्तियोग की साधना : भक्त सर्वत्र नारायण, कृष्ण को ही देखता है। वह कहता है", "सर्वं विष्णुमयं जगत्"- सब-कुछ भगवान् विष्णु ही है। इस साधना से ईर्ष्या विनष्ट हो जाती है।

४. कर्मयोग की साधना : कर्मयोगी अपनी आवश्यकताओं को कम करता है तथा इन्द्रियों का दमन करता है। वह शुद्ध विश्वात्म-प्रेम तथा सबको ईश्वर का ही रूप मान कर शान्त भाव से उनकी सेवा करता है। सतत सेवा के द्वारा कालान्तर में ईर्ष्या दूर हो जाती है।

५. विवेकियों की विचार-साधना यदि आपका भाई उन्नत स्थान पर है, तो आपमें ईर्ष्या नहीं होती। यदि आपका गहरा मित्र बहुत सम्पत्तिशाली है, तो आप ईर्ष्या नहीं करते। उसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति के प्रति ईर्ष्या-वृत्ति उत्पन्न हो, तो उस मनुष्य के साथ मित्रवत् तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित कीजिए। तत्क्षण ही ईर्ष्या-वृत्ति विनष्ट हो जायेगी। सतत अभ्यास के द्वारा आप शनैः शनैः ईर्ष्या का निवारण कर सकते हैं।

६. थियोसाफी की साधना : यह विश्व बन्धुत्व के ऊपर आधारित है। सभी समान हैं। सभी ईश्वर की सन्तान हैं। बन्धुत्व-भावना के सतत स्मरण से आप ईर्ष्या से मुक्त हो जायेंगे।

मात्सर्य तथा असूया ईर्ष्या के पर्यायवाची शब्द हैं। उनमें सूक्ष्म अन्तर है। ईर्ष्या राजसिक मन में उत्पन्न होने वाली एक विशेष वृत्ति है। मनुष्य दूसरों की सम्पत्ति, सफलता तथा सद्गुणों के प्रति ईर्ष्या करता है। अपने से अधिक सम्पन्न व्यक्ति को देखते ही उसका हृदय जलने लगता है। द्वेष तथा क्रोध ईर्ष्या के ही रूपान्तर हैं। ईर्ष्यालु व्यक्ति उन व्यक्तियों से द्वेष करने लगता है जो उससे ऊँची अवस्था में हैं। वह दूसरों की सफलता देख कर शोकाकुल हो जाता है। वह उस व्यक्ति को नीचे गिराने के लिए निन्दा, चुगली जैसे विभिन्न पापपूर्ण उपायों का सहारा लेता है। वह उस पर आघात पहुँचाना चाहता है। वह उसे नष्ट करने का प्रयास करता है। वह उसके मित्रों के मध्य में झगड़ा, दलबन्दी आदि का निर्माण करता है। ईर्ष्यालु व्यक्ति के ये बाह्य भौतिक लक्षण हैं।

ईर्ष्यालु व्यक्ति सोचता है कि वह स्वयं किसी प्रकार का शोक अथवा दुःख न प्राप्त करे, परन्तु वह जिससे ईर्ष्या करता है, वह व्यक्ति कष्ट सहे तथा पीड़ित रहे। ईर्ष्या से बढ़ कर मनुष्य की अन्य कोई पाप प्रकृति नहीं हो सकती। यह निन्द्य, निकृष्ट तथा पाशविक है। अज्ञ मोहित जीव, जिनका मन बहुत ही संकीर्ण है, इस महाव्याधि के शिकार बने रहते हैं। किसी दूसरे व्यक्ति को अपनी सम्पत्ति का उपभोग करते देख चित्त में उद्वेग का होना असूया है। मात्सर्य स्वभाव वाला व्यक्ति अपने से अधिक सम्पन्न तथा शुभ गुणों वाले व्यक्ति को नहीं देख सकता। ईर्ष्या, असूया तथा मात्सर्य में यही सूक्ष्म अन्तर है।

ईर्ष्या सारी बुराइयों की जड़ है। यह सभी साधकों के मार्ग की। महान् बाधा है। यह साधुओं में भी बहुत प्रचलित है। यही उनके पतन का मुख्य कारण है। बहुत से विद्वान तथा पण्डित जन भी इसका शिकार बने रहते हैं। उनके संकीर्ण मन तथा अशुद्ध हृदय ही इसके कारण है। यदि किसी व्यक्ति का मन ईर्ष्या से भरा हुआ है तो वह सच्चे सुख का लेशमात्र भी अनुभव नहीं कर सकता। जब हृदय ईर्ष्या से विदग्ध हो रहा हो, तब मन में शान्ति भला कैसे मिल सकती है? इससे तो मन और भी अशान्त होता जायेगा।

हर साधक को सदा सावधान रहना चाहिए। उन्हें नाम तथा यश अथवा शारीरिक आराम अथवा जिह्वा का शिकार नहीं बनना चाहिए। यदि ईर्ष्या है, तो मनुष्य ईश्वर से बहुत दूर है। दूसरों के सुख में मनुष्य को सुखी होना चाहिए। दूसरों के हित के लिए पूर्णात्मार्पण के द्वारा उसे पहले हृदय को शुद्ध बनाना चाहिए। ईर्ष्या से मुक्त होने के लिए वास्तविक संन्यास ही सर्वोत्तम साधन है। विवेक तथा वैराग्य ही ईर्ष्या को दूर करने के लिए सुनिश्चित साधन हैं। आपको अपने जीवन में प्रति क्षण बुराई तथा भलाई, सत्य एवं असत्य के बीच विवेक रखना चाहिए, तभी आप इस भयंकर अभिशाप से मुक्त हो सकेंगे। इसे भली-भाँति याद रखिए कि सभी एक ही ईश्वर की सन्तान हैं तथा अपने-अपने कर्मों के अनुसार भला या बुरा फल उपभोग कर रहे हैं। यदि आप भी प्रयत्न करेंगे, तो उन्नति प्राप्त कर सकते हैं।

सारी कामनाएँ तथा योग्यताएँ आपमें प्रसुप्त हैं। आपमें सब-कुछ है। प्रयास तथा संलग्नता के द्वारा ही आप अपनी क्षमताओं को प्रकट कर सकते हैं। दूसरों से ईर्ष्या करना दुर्बल, कायर तथा डरपोक व्यक्ति का निकृष्टतम स्वभाव है।

अन्तर्निरीक्षण, मन पर सतर्क दृष्टि, विवेक तथा ध्यान के द्वारा आपको ईर्ष्या के सभी रूपों को विनष्ट करना चाहिए। आपको उदारता के अभ्यास से ईर्ष्या को विनष्ट करना चाहिए। ईर्ष्या संकीर्ण बुद्धि की परिचायक है। उदारता के द्वारा वह विनष्ट हो जायेगी।

७. दर्प को दूर करने की साधना

अपने को उचित से अधिक महत्त्वपूर्ण समझ बैठना दर्प है। अभिमानपूर्वक तथा अनुचित रूप से अपना महत्त्व जताना दर्प है। यह राजसिक और तामसिक अहंकार हठ, धूर्तता, रुक्षता तथा धृष्टता का सम्मिश्रण है। यह अहंकार का ही विकार है। यह स्वतः अहंकार है। यह अज्ञान से उत्पन्न है। भ्रमित जीवों के दर्प के द्वारा ही माया अपनी लीला रचा करती है।

मनुष्य अपने से बड़े व्यक्ति के सात धृष्टतापूर्ण व्यवहार करता है, उससे घृणापूर्वक पेश आता है, उसे धिक्कारता है तथा अपमानपूर्ण शब्द बोलता है। यही दर्प है।

दूसरा व्यक्ति क्रोध में किसी व्यक्ति के सामने किताब पटकता है तथा बुरे शब्द बोलता है। यह दर्प है।

दूसरा व्यक्ति क्रोध में किसी व्यक्ति से इस तरह कहता है, "क्या जानता नहीं कि मैं कौन हूँ? मैं तेरा मुँह बिगाड़ दूँगा। मैं तेरे दाँत तोड़ डालूँगा। मैं तेरा खून पी जाऊँगा।" यही दर्प है।

दूसरा व्यक्ति कहता है- "मैं किसी के शासन में नहीं रहने का। मैं अपने इच्छानुसार ही चलूँगा। कोई भी इसके विषय में मेरे से न पूछे। मैं उसके सामने नहीं नाचता। मैं उसके पास क्यों जाऊँ? क्या वह मुझसे अधिक शिक्षित है? आखिर वह है क्या? तुम कौन हो मेरे ऊपर आज्ञा चलाने वाले?" यह दर्प है।

साधारणतः विचारहीन व्यक्ति जो आत्म-विश्लेषण नहीं करता है, वह कहता है- "मुझमें दर्प जरा भी नहीं है। मैं नम्र, विनीत तथा दयालु हूँ।" परन्तु जब जाँच का समय आता है, तो वह सैकड़ों बार बुरी तरह विफलता प्राप्त करता है।

साधक बहुत अच्छा है। वह बड़ा बुद्धिमान् भी है। वह विद्वान् भी है। वह भाषण भी देता है। वह एकान्त कमरे में घण्टों तक ध्यान भी करता है। फिर भी वह दर्प से मुक्त नहीं है। जब कोई व्यक्ति उसकी इच्छा के प्रतिकूल काम करता है, जब कोई व्यक्ति उसकी निन्दा करता है अथवा उसकी समालोचना करता है, जब उसका आदर नहीं किया जाता है, तो वह दर्पयुक्त बन जाता है तथा रुक्षतापूर्ण व्यवहार करता है।

दर्प के विविध रूप हैं। मनुष्य अपने भौतिक बल के कारण दर्प रख सकता है। वह कह सकता है, "मैं अभी धक्के दे कर तुझे निकाल सकता हूँ। जा, भाग जा यहाँ से।" दूसरा व्यक्ति अपने धन, पद तथा अधिकार के कारण दर्पवान् हो सकता है। अन्य व्यक्ति सिद्धि, नैतिक गुण, आध्यात्मिक उन्नति, संन्यास, महन्ती आदि का दर्प रख सकता है।

मनुष्य अपने बच्चे, स्त्री, धन, सम्पत्ति तथा पद का संन्यास कर सकता है। वह संसार का संन्यास कर हिमालय की गुहा में कई वर्षों तक योगाभ्यास कर सकता है; फिर भी उसे दर्प को त्यागने में बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती है। आवेश में

आने पर वह दर्प से भर जाता है। वह नहीं जानता है कि वास्तव में वह क्या कर रहा है। वह बाद में पश्चात्ताप करता है। किसी भी व्यक्ति को दर्पीला बनाने में आवेश बहुत काम करता है।

अपने विचारों, शब्दों तथा कार्यों का सावधानीपूर्वक निरीक्षण कीजिए। शब्दों की शक्ति को समझिए तथा सावधानीपूर्वक उनका प्रयोग कीजिए। सभी का आदर कीजिए। मधुर तथा परिमित शब्द बोलिए। दयालु बनिए। धैर्य, प्रेम तथा नम्रता का अर्जन कीजिए। विचार कीजिए। मौन-व्रत रखिए। बारम्बार विचारिए - "यह जगत् मिथ्या है। दर्प रखने से मुझे क्या लाभ होगा?" इसके विपरीत नम्रता के महान् लाभों का चिन्तन कीजिए।

आप सैकड़ों बार विफल हो सकते हैं; परन्तु पुनः उठ जाइए तथा अपने संकल्पों को मजबूत बना लीजिए-"कल मुझे विफलता मिली। आज मैं नम्र, दयालु तथा धैर्यवान् बनूँगा।" शनैः-शनैः आपकी इच्छा-शक्ति बढ़ेगी और आप अपने शान्ति, भक्ति तथा ज्ञान के शत्रु दर्प पर विजय प्राप्त कर लेंगे।

बहुत सावधान तथा सतर्क रहने पर भी दर्प अपना फन उठा कर फुफ्कार करेगा। विवेक का दण्ड उठाइए, नम्रता का खड्ग धारण कीजिए तथा इसके शिर को काट डालिए। दर्प अनेक शिरों वाला राक्षस है। वह रक्तबीज के समान असुर है जिसने देवी के साथ संग्राम किया था। उसके पुनः बहुत शिर निकल आयेंगे। अधिकाधिक बल, शक्ति, तथा प्रयत्न के द्वारा संग्राम को जारी रखिए। प्रार्थना, ध्यान, अभ्यास, विचार, आत्म-संयम, जप, कीर्तन, प्राणायाम इन सभी का संयुक्त अभ्यास कीजिए। समन्वययोग का अध्ययन कीजिए। वह पूर्णतः भस्मीभूत हो जायेगा।

यदि दर्पी व्यक्ति गुहा में अथवा अपने कमरे में रहे, तो उसे इस वृत्ति के उन्मूलन के लिए क्षेत्र ही नहीं है। यह उसके मन में पड़ी रहेगी तथा उसे सन्तप्त करेगी। साधक को विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों से मिल कर अपने विचारों का निरीक्षण करना चाहिए। कोई आपके साथ दुर्व्यवहार करे, आपका अनादर तथा अपमान करे, उस समय अपने विचारों का निरीक्षण कीजिए। यदि जाँच की विषम परिस्थितियों में भी आप शान्त, नम्र तथा समत्व बुद्धि रखते हैं, तो आपने इस भयंकर शत्रु पर विजय पा ली है।

जितनी अधिक विद्वत्ता होगी, उतना ही अधिक दर्प भी होगा। जितना उच्च पद प्राप्त होगा, उतना ही अधिक दर्प भी होगा। जितना अधिक धन होगा, उतना ही अधिक दर्प भी होगा।

आप सभी इस दुर्गुण से मुक्त बनें! आप सभी नम्रता, धैर्य, दया तथा प्रेम के द्वारा इस राक्षस को मार कर नित्य सुख तथा अमृतत्व को प्राप्त करें!

८. द्वेष के दमन के लिए साधना

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ।।

"ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त व्यक्ति अथवा भागवत को किसी के प्रति द्वेष नहीं रहता। वह मित्रवत् तथा कारुणिक होता है। उसमें ममता तथा अहंकार नहीं होते। वह दुःख-सुख में सम रहता है तथा क्षमाशील होता है" (गीता : १२/१३)।

मित्रता, करुणा, क्षमा, निरभिमानता तथा ममता के त्याग के अभ्यास से द्वेष को दूर किया जा सकता है।

अहंकारी व्यक्ति छोटी-छोटी बातों से ही आसानी से अशान्त बन जाता है। उसका हृदय अहंकार से भरा हुआ है, अतः थोड़ा-सा अनादर, कटु शब्द तथा अपमान ही उसे आवेश में डाल देते हैं। अभिमान में धक्का लगने के कारण वह दूसरों से घृणा करने लगता है। अतः अभिमान तथा अहंकार को दूर करने से ही द्वेष का उन्मूलन हो सकेगा।

यदि आप किसी वस्तु से आसक्त हैं, तो आप उस व्यक्ति से द्वेष करने लगेंगे जो उस वस्तु को आपसे ले लेना चाहता है। यदि आप अधिकार तथा ममता की भावना को दूर कर निर्ममता की अवस्था प्राप्त कर लें, तो द्वेष दूर हो जायेगा।

यदि आपमें क्षमा है, तो उस मनुष्य के प्रति आप द्वेष-भाव नहीं रखेंगे जो आपको क्षति पहुँचाने का प्रयास करता हो। करुणा, प्रेम, क्षमा आदि के अर्जन से द्वेष का क्षय होगा। ईश्वर-साक्षात्कार ही द्वेष को विनष्ट कर सकता है।

९. क्रोध के दमन के लिए साधना

क्रोध सारे आध्यात्मिक पुण्यों को एक ही क्षण में विनष्ट कर डालता है। यह सर्वभक्षी तथा विनाशकारी है। यह शान्ति का महान् शत्रु तथा नरक का राजपथ है। यदि साधक आध्यात्मिक मार्ग में उन्नति कर सुख प्राप्त करना चाहता है, तो उसे इस क्रोध पर विजय पानी चाहिए। जिसने क्रोध पर विजय पायी है, वह निश्चय ही योगी है। भगवान् कृष्ण भी गीता में कहते हैं, "जो इस लोक में रहते हुए भी शरीर-त्याग से पहले काम तथा क्रोध से उत्पन्न आवेगों को सहन करने में समर्थ है, वही योगी है। वही सुखी मनुष्य है (गीता : ५/२३)।

धैर्य का पर्याप्त विकास कीजिए। अधीर होने से ही लोग क्रोध के वशीभूत हो जाते हैं। मन को सदा क्रोध के विपरीत सद्गुण धैर्य के चिन्तन में लगाये रखिए। यह राजयोगियों की प्रतिपक्ष-भावना है।

सर्वप्रथम चित्त में उठने वाली चिड़चिड़ेपन की लघु ऊर्मियों को वशीभूत करने का प्रयास कीजिए। उसे प्रारम्भ में ही कुचल डालिए। उसे बड़ी तरंग में न परिवर्तित होने दीजिए। यदि आप क्रोध को वश में करने में समर्थ न हों, तो तुरन्त उस जगह को छोड़ दीजिए तथा ॐ का जप करते हुए टहलने के लिए निकल जाइए। कुछ ठण्ढा जल पीजिए। एक, दो, तीन, चार से बीस तक गिनिए। 'ॐ शान्ति, ॐ शान्ति, ॐ शान्ति' का जप कीजिए। अधिक बहस न कीजिए। मधुर बोलिए। नपे-तुले शब्दों का व्यवहार कीजिए। यदि कोई गाली देता है अथवा अपमानित करता है तो शान्त बने रहिए। आत्मा से एक बनिए। सबमें एक आत्मा है। आत्मा को न तो हानि पहुँच सकती है और न उसे कोई अपमानित ही कर सकता है। क्रोध न कीजिए। जप, ध्यान तथा कीर्तन में नियमित रहिए। उससे आपको अत्यधिक आन्तरिक शक्ति, आध्यात्मिक शक्ति मिलेगी।

भोजन का स्वभाव पर अधिक प्रभाव पड़ता है। दूध, दही, मट्ठा, फल, पालक, गेहूँ, पिस्ता आदि सात्त्विक आहार लीजिए। प्याज, लहसुन, मांस, शराब आदि अन्य उत्तेजक पदार्थों का त्याग कीजिए।

नित्य दो घण्टे मौन का पालन कीजिए तथा रविवार को छह घण्टे के लिए मौन-व्रत कीजिए। समय-समय पर सारे दिन के लिए मौन व्रत कीजिए। इससे आपकी वाणी का संयम होगा। उत्तेजना में मनुष्य बिना नियन्त्रण के कुछ भी बोल जाता है। जीभ पर शासन नहीं रहता। अतः उत्तेजक आवेगों को वशीभूत करने के लिए मौन बड़ा ही आवश्यक है।

प्राण मन को लता के समान आवेष्ठित किये रहता है। प्राण मन का ओवर कोट है। प्राण को वशीभूत करने से मन वश में हो जाता है। प्राणायाम का अभ्यास करने से वाणी पर नियन्त्रण हो जायेगा। इससे क्रोध पर नियन्त्रण करने के लिए आपको पर्याप्त शक्ति प्राप्त होगी।

वेदान्ती शरीर तथा मन को मिथ्या कोश समझते हुए उनका निषेध करता है। वह विचार करता है, "मैं कौन हूँ?" और नेति-नेति का अभ्यास करता है। "मैं शरीर नहीं हूँ, न तो मन ही हूँ; चिदानन्दरूपः शिवोऽहम् - मैं सुखमय शिव अथवा आत्मा हूँ।" वह ब्रह्म अथवा आत्मा से एकता स्थापित करता है। उसके लिए जगत् मिथ्या है। वह ॐ का कीर्तन करता है, ॐ का जप करता है, ॐ का गायन करता है, ॐ पर ध्यान करता है तथा ॐ के शाश्वत उद्गम स्थल से आत्म-बल प्राप्त करता है। यदि आप सदा

मिथ्या-दृष्टि अथवा दोष-दृष्टि को प्रश्रय देंगे, यदि आप क्रोध के दोष तथा धैर्य के लाभपर विचार करेंगे, तो आप कभी भी क्रोधी नहीं बन सकते।

इन विधियों के सम्मिलित अभ्यास से आप क्रोध का दमन कर सकेंगे तथा आध्यात्मिक बल, शान्ति एवं सुख प्राप्त करेंगे।

१०. भय पर विजय पाने के लिए साधना

साधना-पथ में भय बहुत बड़ी बाधा है। कायर साधक आध्यात्मिक मार्ग के लिए पूर्णतः अनधिकारी है। यदि अमृतत्व को प्राप्त करना है, तो अपने जीवन की भी तिलांजलि देनी होगी। आत्म-संयम तथा आत्म-त्याग के बिना आध्यात्मिक सम्पत्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

भय तो काल्पनिक असत् वस्तु है। यह हर व्यक्ति की नैसर्गिक वृत्ति है। यहाँ तक की प्रकृति के तत्त्व, प्राणी, कीड़े तथा पृथ्वी के सभी भूत भय के वशीभूत हैं। यदि आप भौतिक अथवा आध्यात्मिक मार्ग में उन्नति करना चाहते हैं, तो मन की इस व्याधि को अवश्य दूर भगाना होगा। भय पर विजय पा लेने पर मनुष्य सफलता के प्रशस्त मार्ग को प्राप्त करता है। भय की वस्तुओं से मुक्त होने पर ही भय से मुक्ति मिल सकती है। मन को अनुशासित करना, अन्तरात्मा की शक्ति को व्यक्त करना, व्यावहारिक मामलों को हाथ में लेना, अपने ज्ञान को व्यवहार में लाने का प्रयत्न करना- ये सभी भय पर विजय प्राप्ति के साधन हैं। ऐसा अनुभव करना चाहिए कि इस जगत् में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जिससे मनुष्य भय करे। आपको वीर, साहसी तथा शौर्य-सम्पन्न होना चाहिए।

साधारणतः भय ही दुःख, क्षति तथा अशान्ति का कारण है। भय की वृत्ति माता-पिता तथा कुल पर ही निर्भर है। यही इसकी व्यापकता का कारण है। वातावरण तथा शिक्षा का भी इसमें महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है। अपने से अतिरिक्त किसी महती शक्ति का विचार ही भय का मुख्य कारण है। भयभीत होने पर मन का दृष्टिकोण ही सापेक्षतः बदल जाता है, मनुष्य की बुद्धि मारी जाती है, मन असन्तुलित हो जाता है, विचार तथा कार्यों में विषमता आ जाती है। हिस्टीरिया तथा स्नायुदौर्बल्य-जनित रोग भय से ही होते हैं। भयावह परिस्थिति से भागने की प्रवृत्ति तथा कामना भय के सद्यः परिणाम हैं।

परन्तु भय पर विजय पायी कैसे जाये? जब कभी बच्चा भयभीत होता है तो आप कहते हैं, "कुछ भी डरने की वस्तु नहीं है।" इस तरह आप भय की वस्तु का ही निषेध करते हैं। इस विधि में भी निषेध पहला कदम है। तदनन्तर आप बच्चे को सत्य बात बतला देते हैं। इस तरह आप उसे समझा देते हैं कि उसकी कल्पना ने ही भय की भावना उत्पन्न की थी।

आपको सत्य का निश्चय करना चाहिए। आपको इस ज्ञान का सतत विकास करना चाहिए कि इस संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो भय उत्पन्न करे। असाधारण दृश्य अथवा विचित्र वाणी को सुनते ही मन अचम्भित हो उठता है। अतः इस तरह की धारणा जमानी चाहिए कि ये सब वस्तुएँ मिथ्या ही हैं तथा इनके परे के तत्त्व को जानना चाहिए। भय के पूर्णतः हट जाने पर कुछ भी आपको क्षति नहीं पहुँचा सकता।

केवल मन को शिक्षित करने से साहस नहीं बढ़ेगा। हर अवसर पर व्यवहार में आने पर ही साहस की वृद्धि होगी। अभ्यास से युक्त सुविकसित ज्ञान ही मनुष्य को भय से मुक्त कर सकता है।

भय के निषेध से मनुष्य भय की वस्तु पर ही विजय पा लेता है। आपको अपने मन में ही द्वैत को नहीं रखना चाहिए। आपको सदा विश्व-प्रेम तथा विश्व-बन्धुत्व का विकास करना चाहिए। शक्ति की गुरुता अथवा लघुता कहीं नहीं है। सुख-दुःख कहीं नहीं है। कहीं भी भय नहीं है। यह प्रारम्भिक अवस्था है। सभी ब्रह्म के ही रूप हैं। सभी ब्रह्म में ही विलीन हो जाते हैं। इस नश्वर शरीर के साथ सारी आसक्ति का त्याग कर तथा अन्तर्वासी परमात्मा के साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कर आप इस भावना का विकास कर सकते हैं। यह प्रक्रिया भय को पूर्णतः विदूरित कर देती है तथा नित्य शान्ति को देने वाली है। अपनी आत्मा से भय की उत्पत्ति नहीं होती। आत्मज्ञान ही पूर्णतः भय को विनष्ट करता है।

भक्ति-प्रधान साधक को ईश्वर में पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिए। उसे ईश्वर की शरण में सर्व भाव से जाना चाहिए। पूर्ण विश्वास रहे कि ईश्वर ही एकमेव आश्रय तथा अवलम्ब है। आपको बहुत ही व्यावहारिक बनना चाहिए। जिनसे आप भयभीत हैं, वीरतापूर्वक पहले उनका सामना कीजिए।

आपको ग्रन्थों में वर्णित सत्य के ऊपर की गयी विभिन्न व्याख्याओं पर ध्यान करना चाहिए; तभी आपका ज्ञान-नेत्र उन्मीलित होगा, आपको सन्मति प्राप्त होगी तथा आप सत्य को जान सकेंगे। यही ईश्वर की पूजा है। यही ईश्वर की उपासना है। यही आपको सभी बुराइयों से मुक्त करता है।

मन से चिन्तन करते हुए, शरीर से अभ्यास करते हुए, सदा आध्यात्मिक विचारों पर मनन करते हुए तथा मन के उच्च स्तर में निवास करते हुए आप भय को तो दूर भगायेंगे ही, साथ ही ब्रह्म को भी प्राप्त कर लेंगे।

अध्याय ११ :विभिन्न सिद्धियों के लिए साधना

१. ईश्वर-साक्षात्कार के लिए चार साधनाएँ

अपने हृदय में सतत प्रेम-तरंगों को उठाइए। ईश्वरीय प्रेम की उष्मा का अनुभव कीजिए। दिव्य प्रेम की विभा में स्नान कीजिए। कठिनाइयों, बाधाओं, विपत्तियों तथा शोकों का सामना करते हुए विकल न बनिए। मन की शान्ति बनाये रखिए। अपनी इच्छा-शक्ति को अनुशासित कीजिए। आप प्रबल आन्तरिक शक्ति प्राप्त करेंगे। आप शीघ्र ही आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करेंगे।'

उग्र कार्य में संलग्न जीवन बिताइए। मन को सदा शान्त रखिए। मन-ही-मन मन्त्र का जप कीजिए। सभी से मिलिए। इस भावना से सभी की सेवा कीजिए कि सभी ईश्वर के ही रूप है। सभी में ईश्वर को देखिए।

दूसरों के विचारों से प्रभावित न होइए। सत्य के मार्ग पर अपने अन्तःकरण की सम्मति से, आत्मा की मधुर एवं धीमी वाणी को सुनते हुए ही वीरता एवं प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़ते जाइए। सात्त्विक व्यक्तियों का साथ कीजिए।

ईश्वर का चिन्तन करते समय शुद्धता, असीमता तथा अमृतत्व के विचारों को संयोजित कीजिए। मानसिक पूजा भी कीजिए। यदि आपका ईश्वरार्पण अशेष तथा पूर्ण है, तो ईश्वरीय कृपा अबाध रूप से प्रवाहित होगी। अपने विचारों तथा कामनाओं को वशीभूत कीजिए। अपने विचारों पर सावधानीपूर्वक नजर रखिए। मानसिक कारखाने में किसी भी बुरे विचार को न घुसने दीजिए। ईश्वर साक्षात्कार के लिए महान् प्रेम रखिए। आप जीवन-लक्ष्य को प्राप्त करेंगे।

२. आत्म-बल के लिए साधना

अवधान, तितिक्षा, राग-द्वेष पर जय, तप (जैसे एक पाँव पर खड़े रहना, तपती धूप में बैठना, पंचाग्नि तप, तीव्र शीतकाल में ठण्डे जल में खड़े होना, हाथों को ऊपर उठा कर एक घण्टे तक एक ही स्थिति में रखना), उपवास, धैर्य, क्रोध पर नियन्त्रण, सहनशीलता, नम्रता, मनोनिग्रह, सत्याग्रह, दैनन्दिनी का नित्य पालन-इन सभी से आत्म-बल का विकास होता है। दसरों की बात को शुष्क होने पर भी धैर्यपूर्वक सुनिए। बकबक न कीजिए। धैर्यपूर्वक सुनने से आत्म-बल बढ़ता है तथा दसरे के हृदय पर विजय की प्राप्ति होती है। ऐसे कार्यों को करना चाहिए जो मन को पसन्द न हों। इससे भी इच्छा-शक्ति विकसित होगी। जो अरुचिकर कार्य हैं, वे कुछ समय के पश्चात् रुचिकर हो जायेंगे।

बुरी परिस्थितियों के विरुद्ध शिकायतें न कीजिए। जहाँ भी आप हो तथा जहाँ भी आप जायें, अपना मानसिक जगत् तैयार रखिए। जहाँ भी आप जायेंगे, वहाँ कुछ-न-कुछ कठिनाइयाँ तथा अस्विधाएँ आपको मिलेंगी ही। यदि हर क्षण तथा हर कदम पर आपका मन आपको मोहित करता है, तो उपयुक्त साधनों से बाधाओं को जीतने की कोशिश कीजिए। बुरे प्रतिकूल वातावरण से भागने की कोशिश न कीजिए। ईश्वर ने आपको वहाँ इसलिए रखा है कि आप शीघ्र उन्नति करें।

यदि आपको सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हों, तो आप सबल नहीं बनेंगे। नये स्थान पर जाने से आपका मन भ्रमित हो जायेगा; क्योंकि आपको वे सभी सुविधाएँ वहाँ प्राप्त नहीं हो सकीं। सभी स्थानों से अधिकाधिक लाभ उठाइए, परिस्थितियों तथा वातावरण के विरुद्ध शिकायत न कीजिए। अपने मानसिक जगत् में रहिए। आपके मन को कुछ भी अशान्त नहीं बना सकता। आप गंगोत्तरी के निकट राग-द्वेष पायेंगे। आप इस जगत् के किसी भी स्थान में आदर्श स्थान तथा आदर्श वातावरण नहीं पा सकते हैं। कश्मीर बहुत ठण्ढा है, दृश्य भी बहुत मनोरम हैं; परन्तु रात्रि में मच्छरों का उत्पात रहता है। आप सो नहीं सकते। वाराणसी संस्कृत विद्या का केन्द्र है; परन्तु गरमियों में यहाँ लू चलती है। हिमालय का उत्तरकाशी बहुत ही सुन्दर है; परन्तु आप वहाँ फल या सब्जी नहीं प्राप्त कर सकते, जाड़े में क़डाके की सर्दी पड़ती है। यह जगत् अच्छाई और बुराई का सापेक्ष लोक है। इस बात को सदा याद रखिए। किसी भी स्थान में किसी भी अवस्था में सुखपूर्वक रहिए। आप सबल बनेंगे तथा आध्यात्मिक धाम के साम्राज्य को प्राप्त करेंगे। आप किसी भी कार्य में आशातीत सफलता प्राप्त करेंगे। आप किसी भी कठिनाई को जीत सकेंगे।

संकल्प-शक्ति के विकास के लिए धारणा का अभ्यास बड़ा ही सहायक है। आपको मन की आदतों का पूरा ज्ञान होना चाहिए। आपको मन के विक्षेप को दूर करने के लिए उपयुक्त साधनों का ज्ञान होना चाहिए। विचार, स्मृति तथा धारणा के विकास एवं संयम एक ही विषय के अन्तर्गत हैं। आप यह नहीं बतला सकते कि कहाँ धारणा अथवा स्मृति का अभ्यास बन्द होता है तथा संकल्प-शक्ति का प्रारम्भ होता है। कोई कठिन नियम लागू नहीं है। धारणा सम्बन्धी रहस्यों के विशेष ज्ञान के लिए कृपया मेरी पुस्तक 'ध्यानयोग रहस्य' पढ़िए।

श्री ग्लैडस्टन तथा श्री बेलफर शय्या पर जाते ही संकल्प मात्र से गम्भीर निद्रा में चले जाते हैं। महात्मा गान्धी को भी इसका अभ्यास था। वे जब चाहते, प्रातः उठ जाते थे। चित्त उनका आज्ञाकारी सेवक था। आपमें से हर व्यक्ति को गान्धी तथा ग्लैडस्टन की तरह संकल्प के द्वारा इस आदत का विकास करना चाहिए। अधिकांश लोग शय्या पर घण्टों करवटें बदलते रहते हैं, परन्तु आधे घण्टे के लिए भी गम्भीर निद्रा का सुख नहीं ले पाते। निद्रा की गहनता ही मनुष्य में ताजगी लाती है, निद्रा का परिमाण नहीं। एक घण्टे की गहन सुषुप्ति शरीर तथा मन को स्फूर्ति प्रदान करने के लिए पर्याप्त है। जैसे ही सोने जायें, मन को ढीला छोड़ दें तथा संकेत दें, "मुझे अच्छी नींद आयेगी।" कुछ भी न सोचिए। नेपोलियन को यह आदत थी। जिस समय रणभेरी बजती थी तथा संग्राम का श्रीगणेश होता था, उस समय भी वह खर्राटे ले लेता था। जिस क्षण वह चाहता, उसी क्षण उसका चित्त उसे उठा देता था। शान्त मन नेपोलियन संग्राम में शेर की तरह प्रतीत होता था। चलती कार, ट्रेन या वायुयान में बैठे-बैठे ही सो लेने की आदत डालिए। डाक्टर, वकील तथा व्यापारियों के लिए यह बहुत ही लाभदायक है। आजकल जीवन बड़ा जटिल बन गया है। व्यस्त लोग सोने के लिए पर्याप्त समय भी नहीं निकाल पाते। जब कभी उन्हें अवकाश मिले, आँखें बन्द कर किसी भी स्थान में थोड़ा सो लेना चाहिए। इससे बहुत विश्राम मिलेगा। वे भावी कार्यों को अच्छी तरह कर सकेंगे। व्यस्त लोगों के लिए यह आदत वरदान-स्वरूप ही है। उनकी स्नायु में बहुत तनाव तथा दबाव रहता है। यदा-कदा शिथिल हो कर सो लेने से वे आगे के कार्यों के लिए सदा शक्तिमान् रहेंगे। डा. एनीबेसेन्ट गाड़ी में यात्रा करते समय भी सम्पादकीय लेख लिख लिया करती थीं। हावड़ा तथा बम्बई के स्टेशन पर भी, जहाँ सदा ट्रेनें चला करती हैं, मनुष्य को सो लेने की आदत रहनी चाहिए। कुछ व्यस्त डाक्टर शौचालय में ही अखबार पढ़ लिया करते हैं। वे अपने मन को सदा व्यस्त रखते हैं। मन को सदा व्यस्त रखना ही शारीरिक तथा मानसिक ब्रह्मचर्य के लिए सर्वोत्तम साधन है। जो लोग प्रखर व्यक्तित्व को प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें हर क्षण का अधिकाधिक उपयोग करना चाहिए तथा मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति करनी चाहिए। गप-शप का पूर्णतः त्याग कर देना चाहिए। हममें से हर व्यक्ति को समय के मूल्य का ज्ञान होना चाहिए। यदि आप अपना समय उपयोगी कार्यों में बिताते हैं, तो निश्चय ही आपका आत्म-बल बढ़ेगा। संलग्नता तथा स्थिरता, दिलचस्पी तथा अवधान, धैर्य तथा अध्यवसाय, श्रद्धा तथा आत्म-निर्भरता-इनसे मनुष्य विश्व-विख्यात व्यक्ति बन सकता है।

३. इन्द्रिय-दमन के लिए साधना (१)

सारी इन्द्रियों में त्वगिन्द्रिय (स्पर्श इन्द्रिय) का दमन करना बड़ा ही कठिन है। आप सदा कोमल वस्तुओं को पसन्द करते हैं। आप रूखे बिछावन को नहीं चाहते। आप कोमल बिछावन, गलीचा, रेशमी तकिया, कोमल चादर पसन्द करते हैं। आप गरम तथा बहत ठण्टी वस्तुओं को छूना नहीं चाहते। आप नंगे पाँव चलना नहीं चाहते। पत्थर तथा काँटों से बचने के लिए आपको जूता चाहिए। आप खुरदरी खादी पहनना पसन्द न कर '१९०१ ग्लासगो मलमल' या ढाका का मसलिन पहनना पसन्द करते हैं। आप सिमेन्ट के चिकने फर्श पर गहे के ऊपर बैठना पसन्द करते हैं। आप पीठ के लिए भी तोशक चाहते हैं। आप भूमि पर अथवा वृक्ष के नीचे बैठ कर अपना

काम जारी नहीं रख सकते। आप कडी रोटी या अधपके आलू नहीं खा सकते। आप इडली, डोसा तथा मालपूआ पसन्द करते हैं।

आप शीतकाल में पर्वतीय स्थान में नहीं जाना चाहते। ग्रीष्म ऋतु में आप मैदानी भाग में नहीं रहना चाहते। जाड़ों में आप गरम जल में स्नान करते हैं तथा गरमियों में ठण्ढे जल से। आप जाड़े में ठण्ढे जल से स्नान नहीं करते और न तो गरमियों में गरम जल से।

आप कठोर शब्द सुनना पसन्द नहीं करते। आप मधुर संगीत सुनना चाहते हैं। आप अस्त-व्यस्तता पसन्द नहीं करते। आप चाहते हैं कि सभी वस्तुएँ सुव्यवस्थित हों।

स्पर्श से ही सुख का अनुभव होता है। हर प्रकार के सुख के लिए स्पर्श की आवश्यकता है। स्पर्श ही सभी इन्द्रियों की कुंजी है। यदि आप स्पर्श-इन्द्रिय को पूर्णतः नियन्त्रित कर लें, तो आप जितेन्द्रिय बन जायेंगे। स्पर्श ही सभी इन्द्रियों का सार है। यह सभी इन्द्रियों में प्रधान है। अतः स्पर्श इन्द्रिय तथा इसके सारे विभिन्न विकारों को नियन्त्रित कीजिए।

वायु स्पर्श-इन्द्रिय का अधिष्ठाता देव है। वायुदेव तथा उनके पुत्र हनुमान् जी की आराधना कीजिए। आप सुगमतापूर्वक त्वगिन्द्रिय को वशीभूत कर लेंगे। यह मन से निकट सम्बन्ध रखता है। यह वायु के समान चंचल भी है।

४. इन्द्रिय-दमन के लिए साधना (२)

किसी भी एक इन्द्रिय की अशान्ति के कारण बहुत से साधक समाधि में प्रवेश नहीं कर पाते। आध्यात्मिक साधना के लिए इन्द्रिय-दमन अत्यावश्यक है।

वैराग्य का विकास कीजिए। वैराग्य और इन्द्रिय दमन के बिना ध्यान तथा समाधि सम्भव नहीं है। वैराग्य की कमी होने पर शक्ति बह निकलेगी। विषय-पदार्थों से अनासक्ति ही वैराग्य है। यह मानसिक अवस्था है।

इन्द्रियों का दमन कीजिए। अन्तर्निरीक्षण द्वारा पता लगा लीजिए कि कौन-सी इन्द्रिय आपको तंग कर रही है। उन विषयों का परित्याग कीजिए जिन्हें वह इन्द्रिय पसन्द करती है। विषय-भोग की तृष्णा को ही नष्ट कर डालिए। तभी आप परम शान्ति या समाधि में स्थित होंगे।

इन्द्रियों को अनुशासित कीजिए। सत्य बोलिए। नित्य-प्रति दो घण्टे मौन रहिए। मधुर बोलिए। कटु शब्द न बोलिए। किसी को गाली न दीजिए। यही जिह्वा का संयम है।

सिनेमा न जाइए। गली से गुजरते समय अपने पैर के अँगूठों की ओर देखिए। कामुक दृष्टि से महिलाओं की ओर न देखिए। इधर-उधर न देखिए। यही नेत्र का संयम है।

नृत्य-मण्डली में न जाइए तथा अश्लील संगीत न सुनिए। विषय-संगीत का त्याग कीजिए। सांसारिक वार्ता न सुनिए। यही कान का संयम है।

सुगन्धित इत्र आदि का प्रयोग न कीजिए। यही घ्राणेन्द्रिय का संयम है।

खटाई, चटनी, इमली, चाय, काफी, प्याज, मिष्टान्न आदि का त्याग कीजिए। एक हफ्ते तक नमक और चीनी का परित्याग कीजिए। सात्त्विक आहार पर जीवन व्यतीत कीजिए। एकादशी के दिन उपवास कीजिए या दूध पर रहिए। यही जिह्वा का संयम है।

ब्रह्मचर्य का पालन कीजिए। यह जननेन्द्रिय का संयम है।

कठोर चटाई पर सोइए। नंगे पैर चलिए। छाते का प्रयोग न कीजिए। यही स्पर्श इन्द्रिय का संयम है।

मन को इष्टदेवता पर स्थिर कीजिए। इसके भटकने पर इसे बारम्बार मूर्ति पर ही लौटा लाइए। मन के विक्षेप को दूर करने तथा एकाग्रता के विकास के लिए यही साधना है। नियमित तथा सतत अभ्यास के द्वारा आप मन को स्थिरतापूर्वक ईश्वर पर लगा सकते हैं।

आप ऐसा सोच सकते हैं अथवा कल्पना कर सकते हैं कि इन्द्रियाँ आपके वशीभूत हो गयी हैं। अचानक ही आप उनका शिकार बन जायेंगे। आपका एक ही इन्द्रिय पर नियन्त्रण नहीं, वरन् सभी इन्द्रियों पर नियन्त्रण होना चाहिए। इन्द्रियाँ किसी भी समय उपद्रवी बन सकती हैं। प्रतिक्रिया हो सकती है। सावधान रहिए।

५. राग-द्वेष पर विजय प्राप्ति के लिए साधना (१)

आकर्षण अथवा आसक्ति को ही राग कहते हैं। विकर्षण अथवा घृणा को देख कहते हैं। राग तथा देष मन की दो वृत्तियाँ हैं। ये दोनों ही अविद्या से उत्पन्न हैं। यह रहस्यमय संसार राग-द्वेष से ही चालित है। राग-द्वेष माया के दो प्रबल अस्त्र हैं। जीव इस राग-द्वेष के सबल पाश से ही बंधा हुआ है।

राग-द्वेष की चार अवस्थाएँ है- उदारावस्था, विच्छिन्नावस्था, तनु अवस्था तथा दग्ध अवस्था। सांसारिक व्यक्तियों में उदार तथा विच्छिन्न (सुप्त) अवस्था पायी जाती हैं। यह बहुत ही हानि पहुँचाती है। उदारावस्था में यह मनुष्य को पूर्णतः वशीभूत कर डालता है। मनुष्य राग-द्वेष का शिकार बन जाता है। उसे राग-द्वेष के ऊपर अल्पमात्र भी नियन्त्रण नहीं रहता। विच्छिन्न अवस्था में राग-द्वेष छिपा रहता है। जब आप अपनी स्त्री से झगड़ते हैं, तो राग कुछ समय के लिए छिपा रहता है। वह मुस्कराती तथा हँसती है, तब राग पुनः प्रकट हो जाता है। साधक साधना करते हैं। वे शनैः शनैः वैराग्य तथा विश्व-प्रेम का विकास करते हैं। उनमें राग-द्वेष क्षीण हो जाते हैं। वे अधिक उपद्रव नहीं करते। हाँ, सुखद वस्तुओं के सम्पर्क में वे धीरे-धीरे शिर उठा सकते हैं, परन्तु विवेक तथा विचार के द्वारा उन्हें नष्ट कर दिया जाता है। वह जीवन्मुक्त में ज्ञान अथवा समाधि के द्वारा राग-द्वेष पूर्णतः विनष्ट हो जाते हैं।

चाहे कहीं भी जाइए, आप राग-द्वेष पायेंगे। यहाँ तक कि चिरन्तन हिम-प्रदेश में भी, माउण्ड ऐवरेस्ट तथा गंगोत्री में भी आप राग-द्वेष पायेंगे। मनुष्य जहाँ भी जाता है, अपने साथ वासना भी लिये जाता है। मानवी प्रकृति सर्वत्र समान ही है। यदि आप आध्यात्मिक मार्ग में उन्नति करना चाहते हैं, तो आपको इनकी उपेक्षा करनी होगी तथा अपने चतुर्दिक् अपना वातावरण तैयार करना होगा।

राग-द्वेष, वासना तथा गुण में पारस्परिक सम्बन्ध है। राग-द्वेष स्वतः ही मलिन वासना है जो रजोगुण एवं तमोगुण के संस्कार से उत्पन्न है। वासना, संस्कार, गुण तथा राग-द्वेष माया के जादू हैं। एक ही वस्तु कई रूपों को धारण कर लेती है। एक ही वस्तु गिरगिट की तरह रंग बदलती रहती है। एक ही वस्तु भूत की तरह अपना आकार बदलती रहती है। राग वासना बन जायेगा, वासना संस्कार बन जायेगी और संस्कार गुण बन जायेगा। यह खेल बड़ा ही रहस्यमय है। माया के कार्यों को समझना बड़ा कठिन है। भगवान् ही माया की चालों को समझते हैं; क्योंकि माया उन्हीं की अनिर्वचनीया शक्ति है। यदि आप अज्ञान को नष्ट कर दें, तो अविद्या की श्रृंखला नष्ट हो जायेगी।

सांसारिक मनुष्य इन्द्रिय विषयों का चिन्तन करता है तथा उनके साथ राग रखता है। राग से काम की उत्पत्ति होती है, काम से क्रोध, क्रोध से सम्मोह, सम्मोह से स्मृति-भ्रम, स्मृति-भ्रम से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से मनुष्य विनाश को ही प्राप्त कर लेता है; परन्तु संयतात्मा ज्ञानी इन्द्रियों को राग-द्वेष से मुक्त कर विषयों में रमते हुए भी, आत्म-प्रभुत्व के कारण शाश्वत शान्ति को प्राप्त करता है।

जहाँ-कहीं भी द्वेष है, वहाँ क्रोध भी है। क्रोध द्वेष का ही चिर-साथी है। भय भी राग का दूसरा मित्र है। जहाँ-कहीं राग है, वहाँ भय है। मनुष्य अपनी वस्तुओं के खोने का भय रखता है। जहाँ सुख है, वहाँ राग है। जहाँ दुःख है, वहाँ द्वेष है। आप अपनी स्त्री से प्रेम करते हैं; क्योंकि उससे आपको सुख मिलता है; यही कारण है कि उसके साथ अन्ध आसक्ति है। आप मिठाई अथवा आम से राग रखते हैं; क्योंकि उनसे आपको सुख मिलता है। बिच्छू से द्वेष रखते हैं; क्योंकि वह आपको दुःख देता है।

आप तत्त्वों, पौधों तथा ग्रहों में भी राग-द्वेष को पायेंगे। सूर्य तथा शनि, यूरेनस (वारुणी ग्रह) में द्वेष है। सूर्य तथा मंगल में काफी राग है। शनि तथा शुक्र में घनी आसक्ति है। शनि तथा शुक्र अपने स्वामी सूर्य के शत्रु हैं।

समान वस्तु समान को आकृष्ट करती है। गायक दूसरे गायकों से जा मिलता है। कवि दूसरे कवियों से जा मिलता है। चिकित्सक दूसरे चिकित्सक से, दुष्ट दूसरे दुष्ट से तथा साधु दूसरे साधु से जा मिलता है। राग-द्वेष ही वास्तविक कर्म है। वृक्ष, नदी तथा अन्य वस्तुओं को संसार नहीं कहते। राग-द्वेष ही सच्चा संसार है। राग-द्वेष-रहित ज्ञानी के लिए संसार नहीं है। राग-द्वेष के द्वारा मन चित्त की एक ही प्रणाली से काम करता है। बिछावन से उठते ही राग-द्वेष का काम प्रारम्भ हो जाता है। आप चाय पीते, वस्त्र पहनते तथा एक ही प्रकार के कार्यों को बारम्बार करते हैं। आप राग-द्वेष के हाथ के खिलौने मात्र हैं; परन्तु जो लोग आत्म-विश्लेषण, अन्तर्निरीक्षण तथा ध्यान करते हैं, वे राग-द्वेष से ऊपर उठ जाते हैं तथा नित्य सुख एवं अमृतत्व को प्राप्त करते हैं। राग के कारण आप किसी पुरुष या स्त्री से प्रेम करते हैं, आप किसी का पक्ष करते हैं। द्वेष के कारण आप किसी पुरुष या स्त्री से घृणा करते हैं तथा दूसरों को नुकसान पहुँचाते हैं। अब संसार प्रारम्भहो जाता है। राग-द्वेष के द्वारा आप पुण्य एवं पाप-कर्म करते हैं। आप शुभ कर्मों द्वारा सुख की फसल काटते हैं तथा अशुभ कर्मों के द्वारा दुःख की। आप जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़े हैं। वह चक्र छह आरों का है- राग-द्वेष, पुण्य-पाप, धर्म-अधर्म। योगी, ज्ञानी यां भागवत ही इस चक्र को रोकता है।

राग-द्वेष के वृक्ष की जड़ें गहरी गड़ी हुई हैं। इसकी शाखाएँ सभी ओर फैली हुई हैं। मन विषयों से हठपूर्वक आसक्त बन जाता है। देखिए, बन्दरी अपने शिशु से कितनी आसक्त है। वह अपने मृत बच्चे को भी एक महीने तक अपने शरीर से चिपटाये रखती है। यदि आप बन्दर के बच्चे के निकट जायें, तो सभी बन्दर आप पर हमला कर बैठेंगे। काँ की

पुनरावृत्ति से राग-द्वेष घनीभूत हो जाते हैं: यदि आपको किसी व्यक्ति से राग है, तो आपका सारा परिवार ही उस व्यक्ति को पसन्द करने लगेगा। यदि किसी कारणवश उससे द्वेष करते हैं, तो आपका सारा परिवार भी उससे द्वेष करने लगेगा। परिवार में, जाति में, राष्ट्र में, विभिन्न दर्शन के अनुयायियों में द्वेष रहता है। आप किसी पुरुष या स्त्री से, किसी बिल्ली या कुत्ते से, छड़ी या वस्त्र से, घर या शहर से आसक्त हो सकते हैं।

राग-द्वेष इन्द्रियों में वास करता है। इन दोनों के वशीभूत न बनिए। राजयोगियों की प्रतिपक्ष-भावना के द्वारा उन्हें चूर्ण कर डालिए। वैराग्य तथा विश्व-प्रेम का अर्जन कीजिए। वैराग्य राग को तथा विश्व-प्रेम द्वेष को नष्ट कर डालेगा। ब्रह्मज्ञान के द्वारा आप उनका उन्मूलन ही कर डालेंगे।

अहंकार सेनापति है। राग-द्वेष, अभिमान, क्रोध, पाखण्ड-ये सैनिक तथा अधिकारी हैं। यदि अहंकार को मार डालें, तो सैनिक भी पूर्ण आत्मार्पण कर देंगे।

अविद्या से अविवेक उत्पन्न हुआ है। अविवेक से अहंकार, अहंकार से राग-द्वेष, -राग-द्वेष से कर्म, कर्म से शरीर तथा शरीर से दुःख तथा मृत्यु। यदि आप आत्मज्ञान द्वारा अविद्या को नष्ट कर दें, तो अहंकार तथा राग-द्वेष स्वतः ही विनष्ट हो जायेंगे। अहंकार के क्षीण होने से राग-द्वेष भी क्षय को प्राप्त करेंगे।

आप सभी राग-द्वेष के फन्दों से मुक्त बनें। ये आपके वास्तविक शत्रु हैं। ये शान्ति, भक्ति तथा ज्ञान के शत्रु हैं। आप ज्ञान-खड्ग से इन सभी को विनष्ट करें। आप सभी जीवन्मुक्त के रूप में विभासित हों !

६. राग-द्वेष पर विजय प्राप्ति के लिए साधना (२)

राग-द्वेष ही संसार है। ब्रह्मज्ञान से ही इसका पूर्णतः उन्मूलन हो सकता है।

राग-द्वेष वासना है, इसकी चार अवस्थाएँ हैं। राग-द्वेष, वासना, संस्कार तथा गुण एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। इनका सह-अस्तित्व है। मन तथा इन्द्रियाँ ही राग-द्वेष के वास-स्थान हैं। किसी भी एक के विनाश से दूसरा भी विनष्ट हो जायेगा; परन्तु ब्रह्मज्ञान के द्वारा ही संसार-बीज का विनाश होगा।

मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा जैसे सद्गुणों के अर्जन से राग-द्वेष क्षीण हो जायेगा। यह राजयोगियों की प्रतिपक्ष-भावना है।

अविद्या के विनाश से राग-द्वेष का भी विनाश हो जायेगा। राग-द्वेष अविद्या के ही विकार हैं।

भक्ति की अग्नि राग-द्वेष को पूर्णतः जला डालती है। निष्काम कर्म के अभ्यास से ही राग-द्वेष बहुत हद तक क्षीण हो सकता है।

वैराग्य के खड्ग से राग-द्वेष को मार डालिए तथा विश्व-प्रेम के द्वारा द्वेष को नष्ट कर डालिए।

राग-द्वेष के बहुत से रूप हैं। आप विशेष प्रकार का आहार पसन्द करते हैं, कुछ आहार को पसन्द नहीं करते। आप विशेष वस्त्र से राग रखते हैं तथा कुछ विशेष वस्त्र से द्वेष। कुछ ध्वनि आपके लिए आकर्षक है, कुछ अन्य ध्वनि आपके लिए अरुचिकर है। इस तरह आपका मन सदा अशान्त रहता है। राग-द्वेष की तरंगें मन को सदा अशान्त रखती हैं। राग-द्वेष की एक तरंग उठती है और कुछ समय में शान्त हो जाती है। पुनः दूसरी तरंग उठती है और कुछ समय में

शान्त हो जाती है। पुनः तरंग उठती है और इसी भाँति यह काम जारी रहता है। मन में समत्व नहीं रहता। जिसने राग-द्वेष को विनष्ट किया है, वह सदा सुखी, शान्त, सानन्द, सबल तथा स्वस्थ रहेगा। जो राग-द्वेष से मुक्त है, वही चिरायु प्राप्त करेगा। राग-द्वेष ही सभी बीमारियों का वास्तविक कारण है।

जहाँ सुख है, वहाँ राग है। जहाँ दुःख है, वहाँ द्वेष है। मनुष्य उन वस्तुओं से निकट सम्पर्क रखना चाहता है जो उसे सुख पहुँचाती हैं; परन्तु वह उन वस्तुओं से दूर रहना चाहता है जो उसके लिए दुःखद हैं।

यद्यपि सुखद वस्तुएँ आपसे दूर हैं, फिर भी उनकी स्मृति-मात्र से आपको कष्ट पहुँचता है। द्वेष को दूर करने पर ही आप सुख प्राप्त करते हैं। द्वेष-वृत्ति ही दुःख पहुँचाती है, विषय-पदार्थ दुःख नहीं पहुँचाते; अतः विश्व-प्रेम, ब्रह्म-भावना अथवा सभी वस्तुओं में ईश्वर-भाव के द्वारा द्वेष-वृत्ति को नष्ट करने के लिए प्रयत्नशील बनिए। तब यह सारा जगत् आपको ईश्वर-सा प्रतीत होगा। जगत् तथा जगत् के पदार्थ न तो भले हैं और न बुरे। आपका निम्न मन ही उन्हें भला या बुरा बना डालता है। सदा इस बात का ध्यान रखिए। जगत् तथा इसकी वस्तुओं में दोष न ढूंढ़िए। अपने मन में दोष का अन्वेषण कीजिए।

राग-द्वेष के विनाश का अर्थ है-अज्ञान अथवा मन तथा जगत्-भावना का विनाश।

राग-द्वेष को विनष्ट किये बिना, जो शान्ति, ज्ञान तथा भक्ति के शत्रु हैं, आप ध्यान, समाधि अथवा शान्ति नहीं प्राप्त कर सकते हैं। जो ऐसा कहता है, "मैं गम्भीर समाधि में प्रवेश करता हूँ। मैंने आत्म-साक्षात्कार तथा समाधि प्राप्त की है। मैं आपको भी समाधि दिला सकता हूँ।" वह पक्का पाखण्डी है। यदि आप उसमें राग-द्वेष, आसक्ति, घृणा, मन की संकीर्णता, असहिष्णुता, क्रोध आदि पायें, तो समझ लीजिए कि वह मिथ्याचारी है। उसके संग का परित्याग कीजिए। उससे दूर रहिए, अन्यथा आप भी उसी संक्रामक रोग के शिकार बन जायेंगे। सावधान ! सावधान ! मित्रो, खबरदार !

७. दुर्घटनाओं से मुक्ति के लिए साधना

महामृत्युंजय-मन्त्र

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ।।

अर्थ

हम उस त्रिनेत्र (भगवान् शिव) की पूजा करते हैं जो सुगन्धिपूर्ण हैं तथा जो सभी भूतों को पुष्टि प्रदान करते हैं। वे अमृतत्व के लिए हमें मृत्यु से उसी प्रकार मुक्त करें जिस प्रकार उर्वारुक (ककड़ी के समान फल) अपने बन्धन (लता-जाल) से मुक्त हो जाता है।

लाभ

१. महामृत्युंजय मन्त्र संजीवन मन्त्र है। साम्प्रतिक काल में जब कि जीवन बड़ा ही जटिल हो चला है तथा दुर्घटनाएँ नित्य-प्रति की बात हो चली हैं, इस मन्त्र के जप से मनुष्य सर्प-दंश, विद्युत्, मोटर दुर्घटना, साइकिल-दुर्घटना, जल-दुर्घटना, वायु-दुर्घटना तथा सभी प्रकार की दुर्घटनाओं से मुक्त हो सकता है। इसके अतिरिक्त इस मन्त्र में रोग-निवारण

का महान् गुण है। जिन रोगों को डाक्टरों ने असाध्य बतला दिया है, इस मन्त्र के श्रद्धा एवं भक्तिपूर्ण जप करने से वे भी दूर हो जाते हैं। यह सारे रोगों के लिए राम-बाण है। यह मृत्यु पर विजय-प्राप्ति के लिए मन्त्र है।

२. यह मोक्ष-मन्त्र भी है। यह भगवान् शिव का मन्त्र है। यह दीर्घायु, शान्ति, ऐश्वर्य, पुष्टि, तुष्टि तथा मोक्ष प्रदान करता है।

३. अपने जन्म-दिवस पर इस मन्त्र का कम-से-कम पचास हजार जप कीजिए, हवन कीजिए तथा गरीबों को भोजन खिलाइए। इससे आपको दीर्घाय, शान्ति तथा सम्पत्ति की प्राप्ति होगी।

८. सफलता, सम्पत्ति तथा ज्ञान के लिए साधना

सफलता के लिए मन्त्र

कृष्ण कृष्ण महोयोगिन् भक्तानामभयंकर।
गोविन्द परमानन्द सर्वं मे वशमानय।।

हे कृष्ण, हे कृष्ण, आप महायोगी हैं। आप भक्तों को अभय प्रदान करते हैं, हे गोविन्द ! आप परमानन्द प्रदान करने वाले हैं। सब-कुछ मेरे अनुकूल बनाइए।

सम्पत्ति के लिए मन्त्र

आयुर्देहि धनं देहि विद्यां देहि महेश्वरि।
समस्तमखिलां देहि देहि मे परमेश्वरि ।।

हे शिवप्रिया महेश्वरि ! मुझे दीर्घायु दीजिए, मुझे सम्पत्ति दीजिए तथा मुझे ज्ञान दीजिए। हे परमेश्वरि ! मुझे अन्य सभी वांछित पदार्थ दीजिए।

ज्ञान के लिए मन्त्र

ॐ भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्।
भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ।

हम ईश्वर तथा उसकी महिमा का ध्यान करते हैं, जिसने इस जगत् की सृष्टि की है, जो पूजनीय है, जो सारे पाप तथा अज्ञान को दूर करने वाला है। वह हमारी बुद्धि को प्रकाशित करे !

९. शान्ति के लिए उन्नीस बातें

शान्ति के सहायक हैं- (१) एकान्त स्थान, (२) अकेले रहिए, मिलिए कम, (३) चार वस्त्र रखिए, एक कम्बल तथा एक लोटा, (४) दो या तीन वस्तुएँ आहार के लिए रखिए-दाल-रोटी या दाल-भात तथा सब्जी, (५) मौन-व्रत का पालन,

(६) आसन, प्राणायाम, (७) जप तथा ध्यान, (८) योगवासिष्ठ, गीता, उपनिषद् तथा विवेकचूड़ामणि का स्वाध्याय, (९) सत्संग (१०) सन्तोष, (११) योजना न बनाइए, (१२) आशा न रखिए, (१३) कामनाओं को नष्ट कीजिए-निष्काम अवस्था, (१४) कोध को नष्ट कीजिए-अक्रोध अवस्था, (१५) वैर को नष्ट कीजिए-निर्वैर अवस्था, (१६) समता या समदृष्टि, (१७) सतत विचार, (१८) प्रबल धैर्य, तथा (१९) क्षमा, तितिक्षा, दया, करुणा, उदारता एवं विश्व-प्रेम का विकास।

मौन, एकान्तवास तथा दूसरों से न मिलना-ये शान्ति-प्राप्ति के लिए बड़े सहायक हैं। दया, प्रेम तथा करुणा के विकास से हृदय का कठोर स्वभाव दूर हो जाता है। प्राणायाम, ध्यान तथा विचार से चंचल प्रकृति पर नियन्त्रण होता है तथा आवेग एवं रोग नष्ट होते हैं। इससे आप शान्ति में निवास करेंगे। स्थिर अभ्यास की आवश्यकता है। आपको जल्दबादी नहीं करनी चाहिए। शान्ति धीरे-धीरे क्रमशः प्राप्त होती है। धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा कीजिए।

"वह मनुष्य शान्ति को प्राप्त करता है जो सारी कामनाओं का परित्याग कर निस्पृह विचरण करता है, जिसमें ममता तथा अहंकार नहीं है" (गीता : २/७१)।

"जो श्रद्धावान् है, जो ईश्वरपरायण है, जिसने इन्द्रियों को संयमित कर लिया है, वहीं ज्ञान प्राप्त करता है तथा ज्ञान प्राप्त कर शीघ्र ही परम शान्ति को प्राप्त करता है" (गीता : ४/३९)।

"योगी सदा आत्मा के साथ युक्त हो कर मन को वशीभूत कर मुझमें निवास करने वाली शान्ति को, परमानन्द को प्राप्त करता है" (गीताः ६/१५)।

सन्तोष वास्तविक धन है। सन्तोष स्वाभाविक धन है; क्योंकि यह मन को शान्ति प्रदान करता है। सन्तोष मोक्ष के राज्य का द्वारपाल है। यदि आपके पास सन्तोष है, तो आप अन्य द्वारपाल सत्संग, आत्म-विचार तथा शान्ति को भी प्राप्त करेंगे। तब आप बड़ी आसानी से मोक्ष-धाम में प्रवेश कर लेंगे।

यदि आपको प्रतिमास सौ रुपये वेतन मिलता है, तो आप उस मनुष्य से अपनी तुलना न कीजिए जिसे पाँच सौ रुपये मासिक वेतन मिलता है। आपमें असन्तोष उत्पन्न होगा। इससे मन अशान्त हो जायेगा। उस व्यक्ति से अपनी तुलना कीजिए जो प्रतिमाह पच्चीस रुपये ही पाता है। अपनी इस वर्तमान स्थिति के लिए ईश्वर को धन्यवाद दीजिए। कामनाओं का अन्त नहीं है। सन्तोष ही आपके चंचल मन को शान्त कर सकता है। सन्तोष से बढ़ कर अन्य कोई धन नहीं है। सांसारिक कामनाएँ व्यर्थ हैं। लक्ष्य ऊँचा रखिए। ब्रह्म-प्राप्ति का लक्ष्य रखिए। सांसारिक उद्देश्य आपको दुःख, शोक तथा निराशा के गर्त में डाल देंगे।

यदि आप पसीना बहा कर रुपये कमायें, तो आप कभी धनी नहीं हो सकते। पाप के बिना धन नहीं कमाया जा सकता। मृत्यु के बाद आपको धन से कुछ भी लाभ नहीं होगा। अर्थ तो अनर्थ ही है। रुपये कमाना दुःखद है। रुपये की कमी होना भी दुःखद है। रुपये की रक्षा करना भी दुःखद है। उसे खो बैठना भी दुःखद ही है। धन तो सारे अनर्थों का मूल है।

ईश्वर के साथ अपने जीवन को सुरक्षित रखिए। यह पक्का सम्बन्ध है। इसके लिए केवल ईश्वर से प्रेम करना होगा, आपको हृदय प्रदान करना होगा।

यह शरीर आता है, रहता है और चला जाता है। यह पंचतत्त्वों का संयोग है। यह जड़ है। इसका आदि तथा अन्त है। यह शुद्ध आत्मा न तो कहीं आता है और न कहीं जाता ही है। फिर आप शोक क्यों करते हैं? मेरे तात ! आप शुद्ध चैतन्य ही हैं।

आत्मा के वास्तविक स्वरूप को समझिए। वह कर्म, क्लेश, दुःख तथा पाप से मुक्त है। वह एक, नित्य, शरीर रहित, सर्वव्यापक, स्वतन्त्र, अपरिवर्तनशील, स्वयं-प्रकाश तथा परिपूर्ण है।

आत्मा का कर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा कार्य नहीं है। आत्मा कोई विषय-पदार्थ नहीं है जिसे प्राप्त किया जाये। वह न तो कर्ता है और न भोक्ता। वह सदा मूक साक्षी है।

आत्म-साक्षात्कार से अविद्या दूर हो जायेगी। अविद्या ही सारे क्लेशों की जननी है।

कर्तापन, ममता तथा मैं, तू, वह के भेद का परित्याग कीजिए। आप शीघ्र ही ज्ञान प्राप्त कर लेंगे। अविवेक से ही कामना उत्पन्न होती है। विवेक के उदय होते ही कामनाओं का विनाश हो जायेगा। सत्य तथा असत्य के बीच विवेक करना सीखिए। आप नित्य-सुख के धाम की ओर शीघ्र ही यात्रा करें!

सत्य की चट्टान पर अविचल डटे रहिए। अपने स्वरूप - अमर आत्मा को पकड़े रहिए। इस जगत् को अपना ही स्वरूप देखिए। ज्ञान के द्वारा ही आप पुनर्जन्म से मुक्त हो कर परमात्मा से एक बन सकते हैं। साधन-चतुष्टय से सम्पन्न बन जाइए। श्रुतियों का श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन कर साक्षात्कार प्राप्त कीजिए। आप ज्ञानी बनें।

आपके अन्दर शक्ति का विशाल स्रोत है। आपके अन्दर आनन्द का निर्झर है। आन्तरिक पुरुष तो अमर आत्मा ही है। आप परमात्मा से एक हैं। इसका साक्षात्कार कर मुक्त बन जाइए। मूल से शक्ति पाइए। अन्दर ही गोता लगाइए तथा आत्म-मुक्ता को निकाल लाइए। वीर बनिए। प्रसन्न रहिए।

कर्मकाण्ड द्वारा अविद्या दर नहीं होगी: अपितु निष्काम भाव से काम करने पर आपका हृदय शुद्ध होगा। आत्मज्ञान ही अज्ञान को नष्ट करने का एकमेव साधन है।

गुरु-कृपा से ही आत्मज्ञान प्राप्त हो सकता है। गुरु-शिष्य परम्परा के द्वारा ज्ञान एक से दूसरे को प्राप्त होता है।

ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है। वह जीवित अवस्था में ही जन्म-मृत्यु-चक्र से मुक्त हो जाता है। ब्रह्मज्ञान मोक्ष का साघन है।

वासना-क्षय से मन का क्षय होता है। मन के विनष्ट होने से सारे संस्कार भी विनष्ट हो जाते हैं। तब मनुष्य जीवन्मुक्ति अथवा कैवल्य को प्राप्त करता है।

प्राचीन काल के महर्षि उद्दालक आदि ने गम्भीर निदिध्यासन के द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त किया। अतः बहुत-सी पुस्तकों के पढ़ने तथा तर्क करने से आत्म-साक्षात्कार नहीं मिलता। शान्त हो कर बैठ जाइए तथा अन्तर्निरीक्षण कीजिए। आप आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करेंगे।

भक्ति का अन्त ज्ञान में होता है। परा भक्ति तथा ज्ञान एक ही हैं। भक्ति दो से प्रारम्भहोती है तथा एक में परिसमाप्त होती है। अधिकांश जनता के लिए भक्तियोग ही अनुकूल है। जप, कीर्तन, सत्संग तथा भक्तों की सेवा द्वारा इस भक्ति का विकास कीजिए। राम-नाम से बढ़ कर कोई नाम नहीं है। इस नाम की शरण में जाइए, राम की कृपा पाइए तथा नित्य-सुख प्राप्त कीजिए।

जन्म-मृत्यु से मुक्ति ही मोक्ष है। यह नित्य-सुख की प्राप्ति है। इसमें न तो देश है और न काल। इसमें अन्तर्बाह्य भेद भी नहीं है। आपको मोक्ष प्राप्त करना ही है। मोक्ष ही आपका लक्ष्य है। 'मैं कौन हूँ?' के विचार से इस छोटे 'मैं' को मार डालिए। आप मोक्ष प्राप्त कर सम्राटों के सम्राट् बन जायेंगे।

१०. छह महीने में समाधि-प्राप्ति के लिए साधना

ईश्वर अथवा ब्रह्म के साथ योग प्राप्त करना समाधि कहलाता है। यदि आप साधन-चतुष्टय से सम्पन्न हैं और आपमें तीव्र वैराग्य तथा मुमुक्षुत्व है और यदि आपको सहायता देने के लिए श्री शंकर अथवा भगवान् कृष्ण जैसे ब्रह्मश्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ गुरु हैं, तो निमिष मात्र में ही आप आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लेंगे। एक फूल तोड़ने में जितना समय लगता है, उतने ही समय में आप आत्म-साक्षात्कार कर सकते हैं। चने के एक दाने को किसी बरतन की बाहरी सतह पर से फिसलने में जितना समय लगता है, उतने ही समय में आप अन्तर्दर्शन प्राप्त कर सकते हैं। इसमें कोई भी कठिनाई नहीं है। साधक को श्री शंकर के हस्तामलक या पद्मपाद अथवा भगवान् कृष्ण के अर्जुन के समान बनना चाहिए। गुरु के प्रति आपकी उग्र भक्ति होनी चाहिए। ज्ञानयोग के मार्ग में श्रद्धा एक महान् गुण है। यहाँ पर विवेकपूर्ण श्रद्धा की आवश्यकता है। यदि अन्तःकरण का क्षेत्र तैयार नहीं है. यदि चित्त की शुद्धि नहीं है, तो ईश्वर अथवा सहस्रों शंकर या कृष्ण भी इस मामले में कुछ नहीं कर सकते। यह निश्चय जानिए। अष्टावक्र के द्वारा राजा जनक ने क्षण मात्र में ही साक्षात्कार प्राप्त किया। डेढ घण्टे के अन्दर ही अर्जन ने संग्राम-क्षेत्र के अन्दर साक्षात्कार किया।

महाराष्ट्र के मुकुन्द राय ने घोड़े पर बैठे हुए एक बादशाह को क्षण मात्र में ही समाधि दिला दी। इसके अनेक उदाहरण हैं।

इस कलियुग में प्राचीन काल की भाँति आपको अधिक तपस्या करने की आवश्यकता नहीं है। पहले युग में लोग एक ही पैर पर कई वर्षों तक खड़े रह जाते थे। वे कई प्रकार की तपस्या किया करते थे। इसका वर्णन आपको महाभारत तथा अन्यान्य पुस्तकों में मिलेगा। इस युग के मानव की दुर्बलता तथा अल्पायुता के कारण भगवान् ने विशेष करुणा दिखायी है। इस युग में कोई भी मनुष्य यदि सीधा एवं सच्चा है, तो शीघ्र ही साक्षात्कार कर लेगा। आप रात को सुबह के नाश्ते के लिए मिठाई आदि बनाते हैं, आप घड़ी में तीन बजे प्रातः का अलर्म लगाते हैं। इसी तरह आप बहुत कुछ करते हैं। यदि इसका दशांश समय भी सतर्कता एवं सच्चाई के साथ आध्यात्मिक मार्ग में लगायें, तो आप छह महीने के अन्दर ही समाधि को पा सकते हैं। इसको प्राप्त करने में पृथ्वी अथवा स्वर्ग का कोई भी प्राणी आपको बाधा नहीं पहुँचा सकता।

११. कुण्डलिनी-जागरण के लिए साधना

कुण्डलिनी वह सर्पाकार शक्ति अथवा आध्यात्मिक अग्नि है जो मूलाधार चक्र में प्रसुप्त रहती है। यह आध्यात्मिक विद्युत् अथवा गतिमान् शक्ति है जो सभी जड़-चेतन जगत् की पोषिका है। चक्र आध्यात्मिक शक्ति के केन्द्र हैं जो सूक्ष्म शरीर में स्थित है। स्थूल शरीर में भी उन चक्रों के अनुरूप केन्द्र हैं जैसे बुद्धि। यह सूक्ष्म शरीर में है और स्थूल शरीर में मस्तिष्क इसका स्थान है।

राजयोगियों की धारणा तथा वृत्ति-निरोध के द्वारा, भक्तों की गुरु-कृपा तथा भक्ति के द्वारा, ज्ञानयोगियों की सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा तथा मन्त्रयोगियों की मन्त्र-शक्ति द्वारा कुण्डलिनी को जगाया जा सकता है।

जागते ही कुण्डलिनी मूलाधार चक्र का भेदन करती है। इसे विभिन्न चक्रों से सहस्रार में ले जाना चाहिए। कुण्डलिनी के जागते ही योगी स्वर्णिम ज्योति के विशाल पिण्ड को देखता है, जो उसके शरीर को आच्छादित कर लेता है. मानो उसे जला डालेगा। उसे भय नहीं करना चाहिए। योगी विभिन्न चक्रों पर क्रमिक आनन्द का अनुभव करता है। परम अभय, सूक्ष्म दर्शन, मानसिक दर्शन, विज्ञान-दर्शन, सिद्धियाँ तथा आध्यात्मिक आनन्द कुण्डलिनी जागरण के लक्षण हैं। कुण्डलिनीयोग की साधना सावधानीपूर्वक करनी चाहिए। विस्तृत वर्णन के लिए मेरी पुस्तक 'कुण्डलिनीयोग' पढ़िए।

१२. एकता-साक्षात्कार के लिए साधना

व्यक्त तथा अव्यक्त सभी अवस्थाओं में एकता का साक्षात्कार करना ही मानव-जीवन का लक्ष्य है। यह एकता पहले से ही है। हम अज्ञानवश इसे भूल गये हैं। अविद्या के इस आवरण को इस धारणा को कि हम शरीर तथा मन में आबद्ध हैं, दूर करना ही हमारी साधना का मुख्य प्रयास है। एकता के साक्षात्कार के लिए हमें अनेकता का त्याग करना होगा। हमें सदा यह भाव बनाये रखना चाहिए कि हम सर्वव्यापक तथा सर्वशक्तिमान् हैं। कामना के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं, क्योंकि एकता में कोई आवेगात्मक आकर्षण नहीं, प्रत्युत् स्थिर, अनवरत, शान्त, नित्य आनन्द है। मुक्ति का अर्थ है असीम अवस्था की प्राप्ति। यह पहले से ही है। यह तो हमारा स्वरूप है। जो अपना ही स्वरूप है, उसके लिए कामना क्यों?

धन, सन्तति, इहलौकिक तथा पारलौकिक सुख तथा अन्ततः मोक्ष की कामना को भी पूर्णतः विनष्ट कर देना चाहिए। सारे कर्म शुद्ध अनासक्त संकल्प से लक्ष्य की ओर परिचालित होने चाहिए।

यह साधना-सतत प्रयास कि आप सब हैं- उग्र कर्म में संलग्न रहते हुए भी की जा सकती है। यही गीता की केन्द्रीय शिक्षा है। यह बुद्धिसंगत भी है। ईश्वर सगुण तथा निर्गुण-दोनों ही है। मन तथा शरीर को कार्य करने दीजिए। अनुभव कीजिए कि आप उनसे परे हैं तथा उनके अनुशासक एवं साक्षी हैं। काम करने में लगे रहने पर भी शरीर तथा मन से तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित न कीजिए। प्रारम्भ में ध्यान का अभ्यास करना होगा। असाधारण संकल्प-शक्ति वाला मनुष्य ही ध्यान की आवश्यकता नहीं रखता। साधारण मनुष्यों के लिए यह अनिवार्य है। ध्यान में मन स्थिर रहता है: अतः एकता का अनुभव करना सरलतर है। कार्यों में संलग्न रह कर ऐसा प्रयास कठिन है। कर्मयोग शुद्ध ज्ञानयोग से भी अधिक कठिन है। हमें सदा इसका अभ्यास बनाये रखना चाहिए। यह परमावश्यक है, अन्यथा उन्नति मन्द गति से होती है; क्योंकि कुछ समय तक इस तरह घ्यान कि 'मैं सब-कुछ हूँ' तथा दिन में अधिक समय तक शरीर तथा मन के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध बनाये रखने से शीघ्र उन्नति नहीं होती।

भावना के साथ-साथ किसी प्रतीक जैसे 'ॐ' को संयुक्त करना अच्छा है। अनादि काल से इस प्रतीक को एकतावाची माना गया है। अतः ॐ का अर्थ एवं भाव के साथ जप करना सर्वोत्तम विधि है। हमें कुछ घण्टे ध्यान के लिए प्रातः सायं छोड़े रखने चाहिए।

अध्याय १२:साधना में बाधाएँ

१. साधक का मन-मनोवैज्ञानिक अध्ययन

जो मनुष्य सच्चाईपूर्वक आध्यात्मिक मार्ग का अवलम्बन करता है, वह कुछ ऐसी कठिनाइयों एवं अनोखे अनुभवों को प्राप्त करता है, जो उसमें प्रथमतः साहसहीनता तथा निरुत्साह लाते हैं। ये समस्याएँ तथा बाधाएँ सर्वसाधारण साधकों को प्राप्त होती हैं; अतः इनके विषय में जानना आवश्यक है।

प्रथम यह है। साधक साधना, गुरु-उपदेश इत्यादि के प्रति अपनी व्यक्तिगत धारणा रख कर साधना के लिए अग्रसर होता है। ये धारणाएँ उसमें गहरी जम जाती हैं। परन्तु वास्तविक आध्यात्मिक जीवन व्यक्ति की कल्पना से भिन्न है। वह बहुत-सी चीजें कल्पना के विरुद्ध पाने लग जाता है। उसकी भावनाओं को आघात पहुँचता है। बहुधा नये साधक इन अप्रत्याशित घटनाओं से अपने कदमों को पीछे मोड़ पुनः विषय-जीवन में रत हो जाते हैं। यह सबसे बड़ी भूल है। हाथ में आयी हुई अमूल्य मुक्ता को वे फेंक डालते हैं। सुअवसर चला जाता है। मन पुनः उन्हीं विषयों के पीछे पड़ेगा। इसका कारण यह है कि साधक अपनी भ्रान्त धारणाओं को त्यागने की इच्छा नहीं करता। उसका अहंकार उन धारणाओं से आसक्त रहता है। उसे साधना के प्रति कुछ धारणा रहती है। वह कल्पना कर लेता है कि जिसे वह गुरु बनायेगा, वह उसे अमुक साधना की दीक्षा देगा। यदि नहीं, तो उसे असन्तोष हो जाता है। वह ऐसा विचार रखता है कि गुरु का आचरण अमुक प्रकार का होगा। यदि गुरु वैसा आचरण नहीं करता, तो उसकी गुरु-भक्ति कम हो जाती है। गुरु के चरणों में आत्मार्पण कर देने के पश्चात् उसके आचरण पर शंका करना शिष्य की सबसे बड़ी भूल है। इस तरह वह आध्यात्मिक जीवन तथा साधना की जड़ में ही कुल्हाड़ी मार बैठता है। पुनः साधक अपनी उन्नति के विषय में भी अपना हिसाब रखता है; परन्तु वास्तव में ईश्वर ही जानता है कि उसका स्थान कहाँ है। फिर भी वह अपनी पहली धारणा के अनुसार ही कार्य करेगा; परन्तु बाद मैं घटनाएँ जब उसकी भूल को उसकी नजरों के सामने लाती हैं, तब वह निराश हो कर सारा उत्साह खो बैठता है। यह सब बहुत ही हानिकारक है। आध्यात्मिक जीवन के प्रारम्भ में ही निराशाओं एवं भूलों का शिकार बन जाना बहुत बड़ी बाधा है। साधना का पोषण उत्साह एवं आनन्द से होना चाहिए।

साधना-जीवन के लिए मन को उदार बनाइए। अहंकार-निर्मित धारणाओं से मुक्त बनिए। सीखने की प्रवृत्ति रख कर सभी आध्यात्मिक वस्तुओं की ओर जाइए। उसके अनुकूल बनिए, न कि उन्हें अपने अनुकूल बनने दीजिए, अन्यथा साधना के प्रारम्भ में ही आपको विषमता का अनुभव होगा। आप ऐसी निराशा में गिरेंगे कि उठना कठिन हो जायेगा। इससे आगे की साधना विकृत हो जायेगी तथा आपके बहुमूल्य वर्ष यों ही गुजर जायेंगे। आज के बहुसंख्यक साधकों का यही अनुभव है। यदि आप मार्ग पर निर्बाध चलना चाहते हैं, तो आपको अपनी धारणाओं को त्यागना आवश्यक है। तब आप स्वयं ही आवश्यक तत्त्वों को समझने लग जायेंगे। वे एक-एक कर स्पष्ट होते जायेंगे।

दूसरी वस्तु जो साधक को परेशान करती है, वह है कर्तव्य के विषय में विविध विचार। जब आप साधना नहीं करते थे, उस समय आपको अपने पारिवारिक जनों के प्रति अपने कर्तव्य की सूझ नहीं थी। परन्तु जब साधना का प्रश्न आता है, तो आप कहते हैं कि परिवार के प्रति मेरा कर्तव्य है। पहले तो आप अपने माता-पिता, भाई-बहन आदि के प्रति अपने कर्तव्य पालन में विफल रहे। ये सारी बातें अब आपके मन में आने लगी हैं। आपके मन में स्थिरता नहीं रहती। इसके साथ ही आपके मित्र तथा स्वजन आपको आध्यात्मिक मार्ग से हटाने का भरपूर प्रयास करेंगे। "यह सब क्या है जप, ध्यान तथा माला आदि। इन सबका अपना समय है। जब समय आयेगा, तब इन्हें आरम्भ करना। पहले अपने सामने के

कर्तव्य को तो करो।" इस तरह वे कहेंगे। इससे आपकी आध्यात्मिक इच्छा ही नष्ट हो जायेगी। यह मन का धोखा है। मन माया है। यह मनुष्य को सत्य-साक्षात्कार से रोकना चाहता है। आपको सावधान रहना चाहिए तथा पग-पग पर मन की चालों को रोकना चाहिए। ज्यों ही आप मार्ग में प्रवेश करना चाहेंगे कि मन कर्तव्य, उत्तरदायित्व आदि के विचारों को जन्म देगा जिनके विषय में आपको पहले कोई ज्ञान न था। समय के अनुसार तरह-तरह के कर्तव्य करने पड़ते हैं; परन्तु आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करना ही आपके सारे जीवन में हर समय सबसे महान् कर्तव्य है। आपको एक क्षण भी इस कर्तव्य में विलम्ब नहीं करना चाहिए। इस विचार को अपने मन में गहरा जम जाने दें। स्थिर रहिए। जिस समय इन पंक्तियों को पढ़ें, उसी समय से नियमित तथा क्रमिक साधना को प्रारम्भ कर डालिए। इस पुस्तक के इस पृष्ठ को चिह्न लगा दीजिए। पुस्तक को बन्द कर मौन बैठ जाइए। आँखें बन्द कर लीजिए। जीवन के चरम उद्देश्य के विषय में सोचिए। विचार कीजिए कि जीवन का मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक साधना ही है। भगवन्नाम का जप दश मिनट तक कीजिए। अब आपने अपनी सारी साधना का सुन्दर श्रीगणेश किया है। मार्ग में प्रवेश कीजिए। वीरतापूर्वक आगे बढ़ते जाइए। संकल्प एवं शौर्य के साथ अग्रसर होइए। मन को लक्ष्य पर स्थिर कीजिए। आप इसी जीवन में लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे।

साधना प्रारम्भ करने पर आप सम्भवतः ऐसी कठिन समस्याओं एवं कठिनाइयों का सामना करेंगे जिनसे आप पहले से परिचित नहीं हैं। आप ऐसा विचारने लगेंगे कि साधना शुरू करने से ही ये कठिनाइयाँ मुझे प्राप्त हुई हैं। परन्तु धोखे में न पड़िए। इसके लिए कारण है। साधना का अर्थ है अपने ऊपर कुछ संयम रखना। अब तक आप इन्द्रियों के मार्ग का अनुगमन करते रहे हैं। पहले आपको इन्द्रियों से लड़ाई नहीं लड़नी पड़ी; परन्तु आप अब उस मार्ग पर हैं जिसमें आपको अन्तर्बाह्य संयम करना है। अतः आपको अनियन्त्रित इन्द्रिय-वासनाओं से युद्ध करना ही होगा। विरोध करने पर आप उनकी शक्ति का अनुभव करने लगते हैं। जब आप पर्वत की तराई में साइकिल चला रहे हों, तब आपको बड़ा ही आसान एवं सुखद मालूम पड़ता है; परन्तु जब आप पर्वत की ओर चलाते हैं, तो आपको मालूम पड़ता है कि यह कितना कठिन है। सच्ची साधना में भी यही बात है। साधना पर्वत के ऊपर चढ़ने के समान ही कठिन है। युगों से पड़े हुए संस्कारों के साथ नियमित संग्राम छेड़ते रहना ही साधना है। आपने सांसारिकता में निमग्न हो कर अपनी ऊँचाई खो दी है। उस ऊँचाई को पुनः प्राप्त करने के लिए ही साधना है। नया साधक प्रारम्भ में इस तरह के युद्ध-संग्राम अथवा चेष्टा से अनभिज्ञ रहता है। यह स्वाभाविक ही है। अशान्त न होइए। धैर्य के साथ सहन कीजिए। ये प्रारम्भिक कठिनाइयाँ शीघ्र ही विलुप्त हो जायेंगी। आप दिनानुदिन शक्ति प्राप्त करेंगे। सांसारिक व्यवहार में भी साधारण लाभ के लिए आपको कितनी परेशानी उठानी पड़ती है, फिर इस आध्यात्मिक शाश्वत लाभ के लिए प्रबल कठिनाइयों को सहन करना स्वाभाविक ही है। आध्यात्मिक मार्ग में थोड़ा दुःख भी असीम लाभ को देने वाला है। अल्प त्याग करने वाले के लिए भी सफलता निश्चित है। अब तक साधक संकीर्ण दायरे में था। उसका त्याग था केवल क्षुद्र वस्तुओं के लिए ही। साधना-मार्ग में प्रवेश कर लेने पर वह क्षण-भंगुर ससीम वस्तुओं का त्याग कर असीम ब्रह्म की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील बनता है।

अब तो संकीर्णताओं को त्याग कर खुले मन से साधना-मार्ग में प्रवेश कीजिए। आध्यात्मिक साधना के महत्त्व को समझते हुए सारी प्रारम्भिक कठिनाइयों का धैर्य एवं शान्तिपूर्वक सामना कीजिए। आप असीम सुख, नित्य जीवन, शान्ति तथा आनन्द प्राप्त करेंगे।

२. साधना तथा साधक

साधक साधना के प्रारम्भ में बहुत उत्साह दिखलाता है। वह सिद्धियों की कामना करता है। जब उसे वैसी सिद्धियाँ नहीं मिलीं, तो वह हतोत्साह हो जाता है। वह अभ्यास में उतनी दिलचस्पी नहीं रखता तथा उसके प्रयास मन्द पड़ जाते हैं। वह अपनी साधना छोड़ बैठता है। वह साधना में श्रद्धा खो देता है। कभी-कभी साधना के एक ही प्रकार से

मन थक जाता है। वह किसी नये प्रकार की साधना चाहता है, जिस तरह मन भोजन तथा अन्य वस्तुओं में विविधता चाहता है, उसी तरह साधना में भी। एक ही प्रकार के अभ्यास से वह उपद्रव खड़ा कर देता है। ऐसे समय पर साधक को जानना चाहिए कि मन को कैसे फटकारा जाये तथा थोड़ा-सा आराम दे कर मन से किस तरह काम लिया जाये। साधना को बन्द कर देना तो भारी भूल है। किसी भी परिस्थिति में आध्यात्मिक साधना का परित्याग नहीं करना चाहिए। मन के कारखाने में बुरे विचार प्रवेश करने के लिए सदा ताक लगाये बैठे रहते हैं। यदि साधक साधना बन्द कर दे, तो उसका मन शैतान का कार्यालय बन जाता है। कुछ भी आशा न रखिए। अपने दैनिक ध्यान तथा जप में नियमित रहिए। साधना स्वतः ही सिद्धि को प्राप्त होगी।

अपना काम करते रहिए। फल तो स्वतः प्राप्त होगा। भगवान् कृष्ण की वाणी को याद रखिए, "तुम्हारा कर्म में ही अधिकार है, फल में नहीं।" अतः कर्मों का फल तुम्हारा आशय न बने और न तुम अकर्म से ही आसक्त बन जाओ। ईश्वर आपके प्रयासों को सफल करेगा। मन को शुद्ध करने तथा एकाग्रता का विकास करने में काफी समय लगता है। शान्त तथा धीर बने रहिए। नियमित साधना करते जाइए।

अपने साथियों के चुनाव में सावधान बनिए। अपने गुरु तथा साधना में पूर्ण श्रद्धा रखिए। अपनी धारणाओं को कभी भी हिलने न दीजिए। उत्साह के साथ साधना करते जाइए। आप शीघ्र आध्यात्मिक उन्नति करेंगे तथा क्रमशः लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे।

३. साधना में प्रलोभन

साधना में अधिक उन्नत साधक भी प्रलोभनों के शिकार बन जाते हैं। ध्यान के समय प्रलोभनों के आने पर आपके इष्टदेवता आपके चर्दिक संरक्षक-व्यूह का निर्माण करेंगे। अतः भय न कीजिए। वीर बनिए तथा वीरतापूर्वक आगे बढ़ते जाइए। यदि आप धीर, संलग्न तथा प्रयत्नशील हैं, तो आप ध्यान में शून्य तथा तम के विशाल क्षेत्र को पार कर ईश्वर की कृपा से ज्योतिर्मय धाम को प्राप्त करेंगे।

चित्त-स्थित बरे विचार आप पर अन्दर से आक्रमण करेंगे। वे विविध भयावह रूप धारण करेंगे। वे आपको भय दिखायेंगे। निम्न सूक्ष्म आत्माएँ आपको भय दिखायेंगी; परन्तु ईश्वर की कृपा से वे सभी विलीन हो जायेंगी। आपकी जाँच की जायेगी कि आप काम, भय तथा वासना से मुक्त है अथवा नहीं। उच्च स्वर्गिक शक्तियाँ भी आपको प्रलोभन देगी। उनका गुलाम न बनिए। सुन्दर अप्सराएँ प्रकट होंगी। वे संगीत तथा नृत्य करेंगी, वे मुस्करायेंगी। वे आपको प्रलोभित करने की कोशिश करेंगी। सावधान !

४. साधना में कठिनाई

माया के कार्य इतने सूक्ष्म हैं तथा मानवी प्रकृति इतनी स्थूल है कि सच्ची आध्यात्मिक उन्नति बहुत ही कठिन है। ईश्वरीय कृपा ही साधक को तम से ज्योति की ओर ले जा सकती है। मनुष्य का अहंकार इतना हठी तथा उपद्रवी है कि वह साधुता तथा धर्म की ओर परिवर्तित होता ही नहीं है। केवल संन्यास ले लेने से ही आध्यात्मिक उन्नति हो जायेगी-ऐसा सोचना तो भारी भूल है। यदि संन्यास लेने से यह भावना जगती है कि आप अन्य सभी मनुष्यों से बड़े हो गये हैं, तो संन्यास-भावना पर ही आपने कुल्हाड़ी मार दी।

प्रारम्भ से ही स्पष्टतः समझ लीजिए कि सच्ची नम्रता में तथा दुर्गुणों को दूर करने की सच्ची कामना में ही आपकी आध्यात्मिक उन्नति सम्भव है। इस आधार के बिना सारी साधनाएँ निरर्थक ही हैं। साधक और भी अभिमानी तथा अहंकारी बन जाता है। ऐसा होने से सारे अच्छे उपदेश उसके हृदय में नहीं पहुँच पाते। अच्छे आध्यात्मिक प्रभाव भी उस पर काम नहीं करते; क्योंकि साधक उनको हठपूर्वक ग्रहण नहीं करता।

इस भयंकर अवस्था से बचने के लिए नित्य सावधानी की आवश्यकता है। सदा अनुभव कीजिए कि आप नये साधक ही हैं तथा श्रमपूर्वक दया, दानशीलता, धैर्य, क्षमा आदि सद्गुणों का अर्जन कीजिए। वीरता तथा आत्म-निर्भरता के साथ-साथ नम्रता, मधुरभाषिता, सदाचार तथा आत्म-संयम का भी समन्वय कीजिए। अपनी प्रकृति से कुठोरता तथा रुक्षता को दूर कीजिए। निन्दा तथा अपमान को सहन कीजिए। नम्रता तथा शिष्टता आपके स्वभाव के अंग बन जायें; तभी कठोर हृदय कोमल बनता है तथा उसमें अच्छे भाव उठते हैं।

उस व्यक्ति के लिए धारणा, ध्यान तथा समाधि बहुत दूर है जो दर्गणों से मुक्त नहीं हुआ है। मनुष्य के लिए पाप इतना स्वाभाविक हो गया है कि वह दिन-रात उसी में निमन रहने पर भी उसका अनुभव नहीं करता। सबसे बडी हानि तो तब तक पहुँचती है, जब साधक इसी अवस्था में ही अपने को उन्नत समझने की भूल कर बैठता है। वह समझता है कि मैंने निर्लिप्त अवस्था प्राप्त कर ली है जिसमें कोई भी कार्य मुझे लिप्त नहीं कर सकता। यह आत्म-वंचना उसकी उन्नति को रोक डालती है। इस भ्रम में पड़ कर वह दमरों के उपदेशों तथा सम्मतियों की परवाह न कर अपने ही रास्ते पर चलता रहता है। आध्यात्मिक उन्नति की गलत धारणा रख कर साधक साधारण शिष्टता भी खो बैठता है।

हे साधक! अपने आध्यात्मिक जीवन की इन बाधाओं से सावधान! सदा सतर्क रहिए। कभी भी यम-नियम तथा साधन-चतुष्टय की साधना को कम न समझिए। वे ही सब-कुछ हैं। साथ-साथ जप, कीर्तन तथा स्वाध्याय भी करना चाहिए। बिना यम-नियम के साधना पेंदीहीन बरतन में जल भरने के समान ही है।

जहाँ दया, नम्रता तथा शुद्धता हैं, वहाँ साधुता निवास करती है, ईश्वरत्व का अवतरण होता है तथा पूर्णता की प्राप्ति होती है।

५. साधना के मुख्य व्यवधान

१. आध्यात्मिक मार्ग कण्टकाकीर्ण, विषम तथा दुर्गम है; परन्तु जिसके पास सद्गुण है तथा जो ब्रह्मनिष्ठ गुरु का पथ-प्रदर्शन प्राप्त करता है, उसके लिए यह कुछ भी नहीं है।

२. निःसन्देह आध्यात्मिक मार्ग में विविध कठिनाइयाँ हैं। यह छुरे की धार के समान है। आप कई बार गिरेंगे। परन्तु आपको शीघ्र उठना होगा तथा अधिकाधिक उत्साह, वीरता तथा प्रसन्नता के साथ आगे बढ़ना होगा। हर बाधा आपकी सफलता की सीढ़ी बन जायेगी।

३. आध्यात्मिक मार्ग में हर साधक को विविध कठिनाइयों का सामना करना होगा। आपको हतोत्साह नहीं होना चाहिए। अपनी सारी शक्ति लगा कर पुनः नये उत्साह तथा द्विगुणित शक्ति के साथ मार्ग पर चलिए।

४. यदि आप व्यर्थ गपशप, दूसरों की बातों को जानने का कुतूहल तथा दूसरों के मामले में पड़ने की प्रवृत्ति का परित्याग कर देंगे, तो आप सभी प्रकार की बाधाओं से मुक्त रहेंगे।

५. यदि सांसारिक विचार मन में प्रवेश पाना चाहें, तो उनका निषेध कीजिए। आध्यात्मिक मार्ग में ही स्थिर निष्ठा बनाये रखिए।

६. सभी वस्तुओं को ठीक-ठीक समझ लीजिए। आवेग को लोग भक्ति समझ बैठते हैं। संकीर्तन करते समय जोरों से उछलने को लोग ईश्वरीय भाव-समाधि समझ लेते हैं। अधिकाधिक उछलने से थक कर भूमि पर गिर जाने को भाव-समाधि मान बैठते हैं। राजसिक अशान्ति तथा प्रकृति को दिव्य कर्म समझा जाता है। तामसिक मनुष्य को सात्त्विक मनुष्य समझ बैठते हैं। वात-व्याधि के समय वायु की गति को कुण्डलिनी समझ बैठते हैं। तन्द्रा या निदा को समाधि मानते हैं। मनोराज्य को ध्यान समझते हैं। शारीरिक नंगेपन को जीवन्मुक्त मानने की भूल करते हैं। ये सब आध्यात्मिक मार्ग की बाधाएँ हैं। साधक को उनका पूर्णतः परित्याग कर आगे बढ़ना चाहिए।

७. उदासी, शंका तथा भय-ये सभी उन्नत साधकों की कुछ मुख्य बाधाएँ हैं। सद्विचार तथा सत्संगति से उन्हें दूर भगाना चाहिए।

८. कभी-कभी उदासी आपको तंग करेगी। मन उपद्रव खड़ा करेगा। इन्द्रियाँ आपके पैरों को खींचेगी। सुप्त वासनाएँ मन की सतह पर आ कर आपको पीड़ित करेंगी। विषय-विचार आपके मन को उद्वेलित करेगा। वीर बनिए। अविचल रहिए। इन गतिशील बाधाओं का सामना कीजिए। इन बाधाओं से तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित कीजिए। जप का समय बढ़ाते जाइए। ये सारी बाधाएँ गुजर जायेंगी।

९. शंका अथवा सन्देह आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में बड़ी बाधा है। सत्संग, स्वाध्याय, सद्विचार, सद्बुद्धि के द्वारा इन्हें दूर करना चाहिए।

१०. वासना बहुत ही शक्तिशाली है। इन्द्रिय तथा मन बहुत ही उपद्रवी तथा हठी हैं। बारम्बार युद्ध छेड़ कर विजय प्राप्त करनी होगी। यही कारण है कि आध्यात्मिक मार्ग को छुरे की धार के समान बतलाते हैं; परन्तु दृढ़ संकल्प वाले व्यक्ति के लिए कोई कठिनाई नहीं है।

११. आपमें काम छिपा हुआ है। यह आध्यात्मिक साधक के लिए सबसे भयंकर शत्रु है। काम से क्रोध तथा अन्य दुर्गुण उत्पन्न होते हैं जो आध्यात्मिक धन का अपहरण कर बैठते हैं।

१२. शक्ति का अपव्यय, सुप्त आन्तर वासनाएँ, इन्द्रिय-दमन में कमी, साधना में ढिलाई, वैराग्य में न्यूनता, तीव्र मुमुक्षुत्व का अभाव, साधना में अनियमितता ये आत्म-साक्षात्कार के मार्ग की बाधाएँ हैं।

१३. अति-भोजन, अति-कर्म जिससे थकावट उत्पन्न हो, अति-वार्तालाप, राधि में गरिष्ठ भोजन, लोगों के साथ अति-मेलजोल- ये सब आध्यात्मिक साधक के व्यवधान हैं।

१४. बहस त्यागिए। मौन बनिए। मन को आराम देने के लिए सस्ती बातें तबा मनोराज्य में न पड़िए। गम्भीर बनिए। ईश्वर के विषय में विचारिए तथा वार्तालाप कीजिए।

१५. शक्ति, नाम और यश अहंकार को ठोस बनाते हैं। वे व्यक्तित्व भावना को मजबूत करते हैं। यदि आप आध्यात्मिक मार्ग में सफलता प्राप्त करना चाहते हैं, तो उनका परित्याग कीजिए।

१६. शक्ति की कामना हवा के झोंके का काम करती है, जो आपके अन्दर सुरक्षित जलती हुई आध्यात्मिक मुमुक्षुत्व की ज्योति को बुझा देती है। इतने श्रम के अनन्तर जिस ज्योति को साधक ने हृदय में जलाया है, उसे वह अपनी

असावधानी के कारण खो बैठता है तथा अज्ञान की घनी तमिस्रा में निमग्न हो जाता है। असावधान साधक को गिराने के लिए प्रलोभन सदा प्रतीक्षा कर रहे हैं। सूक्ष्म, मानस तथा गन्धर्व जगत् के प्रलोभन सांसारिक प्रलोभनों से अधिक शक्तिशाली हैं।

१७. जिस योगी ने इन्द्रिय, प्राण तथा मन को वश में कर लिया है, उसके पास बहुत-सी सिद्धियाँ आ जाती हैं; परन्तु ये सब साक्षात्कार के मार्ग में बाधाएँ हैं। ये व्यवधान हैं।

१८. वृत्तियों को रोकिए। मन को शान्त बनाइए। संस्कारों के स्तर से जो वृत्तियाँ उठें, उनका दमन कीजिए। वीरतापूर्वक सारी बाधाओं का सामना कीजिए। आत्म-साक्षात्कार को प्राप्त कीजिए।

अध्याय १३:कर्मयोग-साधना

१. सेवा आवश्यक है

सेवा-कार्य में अपने को पूर्णतः निरत तथा संलग्न रखिए। बन्द कमरे में या गंगाजी के तट पर घण्टों तक ध्यान करने से कोई लाभ नहीं। कितने घण्टे आप ध्यान कर सकते हैं? अपने से पुछिए। आधा घण्टा अथवा एक घण्टा, यही न? उसके बाद आपका मन भटकने लगता है. अनेकानेक विचार आने लगते हैं। आप मनोराज्य में विचरण करने लगते हैं। आप अपने विचारों को नियन्त्रित करने तथा लक्ष्य पर मन को एकाग्र करने में सफल नहीं होते। इसका कारण क्या है? बरे संस्कार ही इसके कारण हैं। आपमें शम नहीं है। आपका मन सांसारिक विचारों से सदा अशान्त बना रहता है। आपने निष्काम सेवा के द्वारा अपने हृदय को शुद्ध नहीं बनाया है। उग्र निष्काम सेवा द्वारा ही आप अपने बुरे संस्कारों का प्रक्षालन कर सकते हैं। तब आपको शान्ति तथा शम की प्राप्ति होगी तथा पूर्ण एवं गम्भीर ध्यान लग सकेगा।

बहुत से साधक ऐसी शिकायत करते हैं कि सदा सेवा में संलग्न रहने के कारण उन्हें जप, ध्यान आदि का समय नहीं मिलता। हाँ, मैं उनसे कहूँगा कि वे किसी एकान्त स्थान में या कमरे में एक या दो दिन बन्द रह कर देखें कि कब तक ध्यान लगता है। नये साधक के लिए प्रतिदिन चौबीस घण्टे ध्यान करना असम्भव है। मन किसी-न-किसी वस्तु में अपने को लगाये रखना चाहता है। क्या आपने किसी व्यक्ति को गंगा-तट पर ध्यान करते देखा है? आप निरीक्षण कीजिए। वह अधिक-से-अधिक एक घण्टा ध्यान करेगा और तब वह कंकड़ों को फेंकेगा या ऐसा ही कुछ व्यर्थ काम करने लग जायेगा; क्योंकि मन को विविधता चाहिए। दूसरों के उपकार के लिए आपको अपने मन को सदा लगाये रखना चाहिए। सेवा ही आपको सब-कुछ प्रदान करेगी। सेवा के ही द्वारा आप आत्म-साक्षात्कार कर सकते हैं। इसके साथ-साथ आपको जप, ध्यान तथा अन्य साधनाएँ करते रहनी चाहिए। समन्वययोग से ही आप पूर्णता प्राप्त कर सकते हैं।

वास्तव में कर्मयोग ही सभी साधकों के लिए सर्वोत्तम क्षेत्र है; क्योंकि यहाँ आपको सभी साधनाओं का सुन्दर समन्वय मिल जाता है जो कि मन के लिए बहुत आकर्षक तथा आधुनिक व्यक्तियों के लिए भी अनुकूल है। आप कह सकते हैं कि उन्नत साधकों के लिए निष्काम सेवा की आवश्यकता नहीं है; परन्तु ऐसे साधक कितने हैं? वे बहुत ही कम हैं। बहुत उन्नत महात्मा ही अहर्निश ध्यान में निमग्न रह सकते हैं। परन्तु साधारण वर्ग के लिए क्या हो? उनके लिए यह समन्वययोग ही सर्वोत्तम है।

बहुत से लोग अपने घर-परिवार को त्याग कर शान्ति एवं शान्त वातावरण की खोज में निकल पड़ते हैं, बहुत कम लोग ही शीघ्र आध्यात्मिक उन्नति के लिए त्याग करते हैं। वे ऋषिकेश या उत्तरकाशी जैसे स्थानों में जाते हैं; परन्तु उन्हें मिलता क्या है? जहाँ भी वे जायें, एक ही किस्म की दुनिया है। क्यों? क्योंकि वे अपने मन को सर्वत्र ले जाते हैं। मन सभी प्रकार की मलिनताओं में सन्तृप्त है। यह समाज तथा अन्य रोचक वस्तुओं को चाहता है। बिना काम के वह एकान्त में कभी भी नहीं रहता। अतः ऐसे साधकों के लिए कर्मयोग सर्वोत्तम है।

मनुष्य को चाहिए कि वह सभी प्रकार की परिस्थितियों के अनुसार अपने को बना सके। कल्पना कीजिए कि आप गम्भीर ध्यान कर सकते हैं। आप शान्तिप्रिय, एकान्तपसन्द साधक हैं तथा आप आलस्य दूर करना चाहते हैं, तब आप उत्तरकाशी अथवा अन्य ऐसे स्थानों में जा सकते हैं। परन्तु पाँच वर्ष के बाद जब आप जनता में आयेंगे, तो आपका मन बड़ा अशान्त रहेगा, आप परिस्थितियों को बर्दास्त नहीं कर सकेंगे। आप शोरगुल के बीच ध्यान नहीं कर सकेंगे तथा बाह्य प्रभाव से आप बहुत जल्दी ही प्रभावित हो जायेंगे। आप जल से विलग मछली की भाँति रहेंगे। आपको साधना

के लिए गुहा या एकान्त स्थान चाहिए। क्या यही आपके पाँच वर्षों की साधना का फल है? तो फिर आपके उग्र ध्यान का उपयोग ही क्या है? आपको मन के ऊपर नियन्त्रण नहीं; आप कटु शब्दों को सहन नहीं कर सकते, आप अपमान, नुकसान आदि से अशान्त हो जाते हैं। इतने दिनों के एकान्तवास से क्या लाभ, जब आप छोटे-छोटे प्रलोभनों के भी शिकार बन जाते हैं तथा सांसारिक वातावरण को सह ही नहीं सकते? आपको उग्रतापूर्वक अपने मन को अनुशासित करना चाहिए जिससे कि वह विक्षेप तथा कोलाहल में भी अविचल रह सके। आप दूसरों के साथ अनुकूल बन सकें। आपको सहनशील, मिलनसार तथा सेवापरायण होना चाहिए। आपको सभी प्रकार के मनुष्यों के साथ मिलनसार होना चाहिए तथा स्वयं को दूसरों के लिए हितकर बना देना चाहिए। आपको गरीब, बीमार तथा पीड़ित व्यक्तियों में उसी भगवान् की पूजा करनी चाहिए जिसकी आप अपने हृदय-निकेतन में करते हैं, तभी आपकी साधना में सफलता है।

यदि आप पाँच वर्ष तक मौन रहें, तो आपकी बोली तोतली हो जायेगी। आप दूसरों से ठीक-ठीक बातें नहीं कर सकेंगे? क्या यही आपको अपनी साधना से पाना है? बुद्धिमान् बनिए। विवेकी बनिए। अपने विचारों का विश्लेषण कीजिए। वीरतापूर्वक घोषणा कीजिए, "मैं अपना सम्पूर्ण जीवन दूसरों की सेवा में बिताऊँगा, चाहे मुझे मुक्ति मिले या न मिले।" हर साधक की ऐसी ही वीरतापूर्ण घोषणा होनी चाहिए। आप जिस किसी के सम्पर्क में आयें, उसे भी इस बात की शिक्षा दें।

यदि आप सच्चे साधक हैं, तो एक बार तत्त्वमसि कह लेने पर ही आप समाधि में प्रवेश कर जायेंगे। राजा जनक इसी तरह के साधक थे। नौ बार तत्त्वमसि कहने पर श्वेतकेतु को आत्मज्ञान हो गया। परन्तु आप क्यों नहीं साक्षात्कार करते हैं? जिस क्षण आप तत्त्वमसि सुनें, आपका हृदय पिघल जाना चाहिए। आपकी भावना गम्भीर होनी चाहिए, अन्यथा आप 'सोऽहम्', शिवोऽहम्', 'अहं ब्रह्मास्मि' का पाँच-पाँच सहस्र बार क्यों न जप कर लें, उससे कोई लाभ नहीं होगा; क्योंकि आप उसके महान् अर्थ का अनुभव नहीं करते। आप केवल समय का अपव्यय कर रहे हैं।

रात्रि में सत्संग के समय मैंने कुछ लोगों को माला घुमाते देखा है। इस वृन्दावन-विधि से कोई लाभ नहीं है। जब सत्संग चल रहा है, तब वह जप के ऊपर पूर्णतः एकाग्रता नहीं रख सकता तथा सत्संग में क्या बताया जा रहा है, इसका भी ज्ञान नहीं कर सकता। इस प्रकार उसे किसी तरह का भी लाभ नहीं होता। बहुत ही लाभदायक बातें बतायी जा रही हैं। यदि वह उनका अनुगमन करे, तो उसे कितने अच्छे विचार प्राप्त हों। वह बहुत ही लाभ उठायेगा। परन्तु वह समझता है कि बिना एकाग्रता के ही माला जपने से उसे अधिक लाभ मिल जायेगा। सच्चा बनिए। आध्यात्मिक जीवन हँसी नहीं है। गम्भीर सेवा के द्वारा हृदय के मल को धो डालिए तथा अशेष आत्मार्पण के द्वारा हृदय को रंग डालिए। उसमें विवेक तथा विचार की पालिश कीजिए। तभी आप सर्वशक्तिमान् ईश्वर को उसकी पूर्ण महिमा में अपने हृदय के अन्दर प्राप्त करेंगे।

मैं आपको सुन्दर विधि बतला रहा हूँ जिससे काम करते हुए भी आप समन्वय-साधना का अभ्यास कर सकेंगे। एक या दो घण्टे तक खूब काम कीजिए। अब आपका मन पूर्णतः काम से सन्तृप्त है। आप बाह्य जगत् की चेतना नहीं रखते। आप पूर्णतः डूबे हुए हैं। अब सब काम बन्द कर डालिए। थोड़ी देर के लिए विश्राम कीजिए। आँखें बन्द कर लीजिए तथा धीरे-धीरे मन को समेट लीजिए। काम के बारे में भूल जाइए। धीरे-धीरे अपने विचारों को समेट कर इष्टदेवता पर एकाग्र कीजिए। शान्त बन जाइए। पूर्णतः शिथिल हो जाइए। आपका मन स्वभावतः लक्ष्य पर स्थिर होना चाहिए। पूर्णतः शिथिल हो जाइए। दश मिनट के बाद पुनः अपनी पहली अवस्था में आ कर काम करना प्रारम्भ कीजिए। आपको नयी शक्ति प्राप्त होगी, आपमें स्फूर्ति आयेगी तथा आप आश्चर्यजनक रूप से काम कर सकेंगे।

दूसरी विधि-यदि आप विघ्नों के कारण ध्यान करने में असमर्थ हैं, तो मन्त्र-पुस्तिका ले कर उसमें दश मिनट तक मन्त्र लिखिए। अपने विचारों को लिखित जप पर एकाग्र कीजिए। यदि यह भी रुचिकर न हो, तो कोई सद्ग्रन्थ पढ़िए तथा

उसके विचारों पर मनन कीजिए अथवा गीता के कुछ श्लोकों को दुहराइए अथवा मानसिक जप प्रारम्भकर दीजिए। इस तरह आप पाँच या दश मिनट का सदुपयोग कर सकते हैं। पुनः अगले दो घण्टे तक काम कीजिए तथा इसी विधि को दुहराते जाइए। मन को विविधता प्राप्त होगी और आप अधिक दक्षतापूर्वक काम कर सकेंगे, साथ-ही-साथ आप अपनी साधना भी करते रहेंगे।

उसी तरह आप ध्यान का अभ्यास कर सकते हैं। आप आधे घण्टे तक गम्भीर ध्यान कर सकते हैं। इसके बाद मन भटकने लगेगा। आप बहुत से व्यर्थ विचारों तथा बुरी बातों को ही सोचने लगेंगे। क्या आपने सावधानीपूर्वक इसका विचार किया है? कितने विविध विचार ध्यान करते समय मन में प्रकट होते हैं? आपका ध्यान लक्ष्य से हट जाता है तथा आप उस क्षण उसकी चेतना नहीं रखते। अब आप बहुत से विचित्र विचार, विषय तथा घटनाओं को सोचने लगते हैं। आपका विचार उन पर एकाग्र हो जाता है। आपको बार-बार मन की बिखरी किरणों को समेट कर लक्ष्य पर लगाना होगा। यदि ऐसा करने में कठिनाई हो, तो आपको ध्यान करना बन्द कर कीर्तन प्रारम्भ करना चाहिए अथवा कुछ समय के लिए कुछ श्लोकों का पाठ करना चाहिए। आप कोई पुस्तक पढ़ सकते हैं अथवा इष्टमन्त्र लिख सकते हैं अथवा अपने कमरे के बाहर टहल सकते हैं। इससे आपका मन स्फूर्ति प्राप्त कर लेगा तथा आप पुनः गम्भीरतापूर्वक ध्यान कर सकेंगे। जब कभी ध्यान श्रमदायक, कठिन तथा शुष्क होने लगे, तो आपको इस विधि को दुहराना चाहिए।

मैं आपको दूसरी विधि बतलाऊँगा। यदि आपको लगातार काम करने से थकावट अथवा अवसाद हो, तो एक या दो दिन की छुट्टी ले लीजिए। किसी निकट के स्थान में जा कर पूर्ण शिथिल हो कर आराम कीजिए। काफी विश्राम कीजिए। अपने काम की चिन्ता न कीजिए। एकान्त स्थान में लम्बा भ्रमण कीजिए अथवा जंगल में इधर-उधर घूमिए। आप स्फूर्ति प्राप्त करेंगे। अब आप ताजगी के साथ अपना काम प्रारम्भ कर सकते हैं। इस तरह आप अधिकाधिक काम कर सकेंगे। अपनी सहज बुद्धि का प्रयोग कीजिए। विवेक कीजिए तथा साधना में संलग्न रहिए।

आप देखेंगे कि शिक्षित जन भी हँसी-ठट्ठा तथा अन्य व्यर्थ के खिलवाड़ों में लग जाते हैं। वे समझते हैं कि उन्होंने अपने आनन्द को सुन्दर रूप से व्यक्त किया है; परन्तु यह अशिष्ट तथा मूर्खतापूर्ण है। एक मधुर मुस्कान से ही आनन्द को अच्छी तरह से व्यक्त कर सकते हैं। इससे दूसरों को प्रेरणा, सान्त्वना तथा शान्ति मिलेगी। यह शिष्ट तथा भद्रतापूर्ण है। साधक को अट्टहास नहीं करना चाहिए। उसे नम्र, सुशील, शान्त तथा शिष्ट बनना चाहिए। अपरोक्षानुभूति के वास्तविक आनन्द को जोरों की हँसी से व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह तो सांसारिक जन ही करते हैं। साधक को तो माधुर्य, नम्रता तथा आचार का मूर्त स्वरूप ही होना चाहिए।

२. कर्म को योग में परिणत किया जा सकता है

अपने सामने सदा आत्म-साक्षात्कार का लक्ष्य बनाये रखिए। निःसन्देह आप नित्य हैं तथा आपके सामने अमरत्व है। आप अमर हैं। आप काल से परे हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि आप इसी जन्म में साक्षात्कार प्राप्त करने के साधनों को ढीला छोड़ दें। आपको नहीं मालूम कि यह मानव-जन्म आपको पुनः कब मिलेगा। आप पशु या देव-योनि में ईश्वर-साक्षात्कार नहीं कर सकते। इन दोनों प्रकार की योनियों में जीव अपने कर्मानुसार या तो कष्ट भोगता है या सुख। कर्म-भोग समाप्त हो जाने पर उसे पुनः मानव-जन्म को प्राप्त करना पड़ता है जिससे कि उसे आत्म-साक्षात्कार का दूसरा सुयोग प्राप्त हो सके। इससे ही आप समझ लें कि इसी जन्म में आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करना कितना आवश्यक है, अन्तर्निरीक्षण के द्वारा आपको प्रतिदिन यह पता लगा लेना चाहिए कि आप उन्नति कर रहे हैं अथवा नहीं। यह बहुत ही आवश्यक है, अन्यथा आप मार्ग को मूल सकते हैं। अन्तर्निरीक्षण कीजिए। पता लगाइए। माया आपको मोहित तथा पथ-भ्रष्ट करने के लिए सदा तैयार है। सावधान रहिए। उसके बहुत रूप हैं। सेवा तथा अभिमान, पद का दर्प, सफलता का अहंकार, लाभ से आसक्ति, आराम की कामना, अधिकार का लोभ, अधिकार-प्राप्ति में बाधक जनों के प्रति द्वेष तथा

गौरव की भावना से दूसरों पर शासन करने, उन पर अत्याचार करने, उन्हें दबाने की भावना-ये कुछ स्वर्गिक अप्सराएँ हैं जो आपके चर्दिक आपको प्रलोभित करने की लिए बाट देखती रहती है। सावधान!

आप अपने प्रत्येक कर्म को उस स्रोत के निर्माण की ईंट का रूप दे डालें जिससे भगवदविचार की धारा अनवच्छिन्न रूप से सतत प्रवाहित होती रहे। 'कर्म भगवान की पूजा हैं' इस भाव को बनाये रखिए। यह माया के प्रलोभनों को निष्क्रिय बनायेगा। यह भी जान लीजिए कि स्वरूपतः आप अकर्ता तथा अभोक्ता है। ईश्वर आपसे हो कर ही अपने अनिर्वचनीय उद्देश्यों को पूर्ण करता है. फिर आपको पुण्यापुण्य की भावना रखने से लाभ ही क्या? वह एक आत्मा जो आपमें है अपितु जो आप है वही सर्वत्र है। इस अखिल जगत् में अन्य कुछ भी नहीं है। सब-कुछ आपकी आत्मा ही है अतः वस्तुएँ आपको प्रिय हैं। कौन आपका मित्र है और कौन आपका शत्रु है? कौन आपसे बड़ा है और कौन आपसे छोटा ? कौन आपको ठग सकता है और आप किसको ठग सकते हैं? प्रेम कीजिए! प्रेम कीजिए! सब-कुछ आपकी आत्मा ही है। क्या आप जान-बूझ कर अपना गला काट सकते हैं। जब आप मन, वचन अथवा कर्म से दूसरों को हानि पहुँचाते हैं, तो आप यही करते हैं। पुनः कल्पना कीजिए कि यदि आपकी उँगली आपको चोट पहुँचा दे, तो क्या आप उसे काट फेंकेंगे? इस तरह जब आपका भाई गलती से आपको चोट पहुँचा दे, तो आप उसका बदला न लें। जो कुछ भी प्राप्त हो-स्तुति अथवा निन्दा, मान अथवा अपमान, राग अथवा द्वेष, लाभ अथवा हानि-सब-कुछ ईश्वर का आशीर्वाद समझ कर ग्रहण कीजिए। जो भी आपके सम्पर्क में आये, उसे ईश्वर की प्रतिमूर्ति समझिए। सभी को नमस्कार कीजिए। गधों को भी साष्टांग प्रणाम कीजिए। 'घास से भी अधिक नम्र होना'- यही आपका आदर्श हो। जब आप सब कुछ ईश्वर ही देखेंगे, तो आलोचना को आप सहन ही नहीं करेंगे, बल्कि उसे पसन्द भी करेंगे। कोई व्यक्ति यदि आपकी आलोचना करता है, तो समझिए कि वह ठीक ही कर रहा है; क्योंकि वह ईश्वर है। आलोचना के ऊपर विचार कीजिए तथा ठीक निर्णय पर पहुँचिए। इस प्रकार आप प्रतिकार करने की भावना से बच जायेंगे। आप धैर्य तथा सन्मति का विकास करेंगे और हर व्यक्ति की शुभेच्छा को प्राप्त करेंगे। मौन तथा एकान्त में आपको अन्तर्निरीक्षण करना चाहिए तथा समालोचना सम्बन्धी बातों पर विचार करना चाहिए। एकान्त में आपके आवेग शान्त हो जायेंगे तथा आप ठीक निष्कर्ष पर पहुँच सकेंगे। इन उपदेशों का पालन कर आप सभी कार्यों को, चाहे वे धार्मिक हों अथवा लौकिक यहाँ तक कि परिवार की सेवा को भी पूजा-कार्य में बदल सकते हैं जिससे आप आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लेंगे। आप सभी पूर्ण कर्मयोगी बनें!

३. कर्मयोग-साधना के फल

कर्मयोग का अभ्यास ही अद्वैत साक्षात्कार को प्राप्त कराता है। इसके बिना आत्मिक एकता के साक्षात्कार की कोई आशा नहीं है। "जनक ने कर्म के द्वारा ही पूर्णता प्राप्त की" (गीता : ३/२०)।

संसार के साधारण व्यक्ति बहुत ही संकीर्ण हृदय के होते हैं। उनमें स्वार्थ, द्वेष, संकीर्णता, घृणा तथा अभिमान भरा हुआ है। स्वार्थ, द्वेष आदि उनके मन में मल छोड़ जाते हैं। उस मल के आवरण के कारण यह स्वयं को दूसरों से अलग करता है।

कर्मयोग का अभ्यास इस आवरण को दूर करता, मल की चट्टान को तोड़ता तथा हृदय को विकसित बनाता है। कर्मयोगी दूसरों के लिए सहानुभूति रखता है तथा विविध रूप से उनकी सेवा करता है। वह अपनी वस्तु में दूसरों को हिस्सा बाँटता है। वह वृद्ध यात्रियों के लिए नदी से जल लाता है, रुग्णों के लिए औषधि लाता है, जलावन देता है, बाजार से सब्जी खरीद लाता है। इन छोटे-छोटे सदय कार्यों से अपने हृदय को कोमल बनाता है तथा उसमें करुणा का संचार होता है। वह सहनशीलता, धैर्य, नम्रता जैसे गुणों का विकास करता है जो ज्ञान के लिए आवश्यक हैं। शनैः शनैः उसमें प्रेम-प्रवाह दृढ़ हो चलता है। वह दूसरों का प्रिय बन जाता है। जो लोग उसकी सेवा प्राप्त करते हैं, वे उसे आशीर्वाद देते हैं तथा उनके संकल्प एवं आशीर्वाद से वह दीर्घायु तथा सफलता प्राप्त करता है।

कर्मयोग वेदान्त अथवा भक्तियोग से भी अधिक कठिन है। कर्मयोग मशीनवत् कार्य नहीं है। कर्म अथवा सेवा के समय भी वेदान्त-भावना अथवा भक्ति-भावना को बनाये रखना चाहिए।

कर्मयोग के अभ्यासी शीघ्र विराट् दर्शन प्राप्त करता है; क्योंकि वह विराट् की सेवा में सतत संलग्न रहता है।

कर्मयोगी को किसी वस्तु का अभाव नहीं रहता। अज्ञात स्थान में जाने पर भी लोग उसकी सारी शारीरिक आवश्यकताओं को पूर्ण कर देते हैं। लोग भोजन के लिए उसे आमन्त्रित करते हैं। कर्मयोगी से मधुर आभा निकलती है जो सभी को उसकी सेवा के लिए आकृष्ट करती है। सारे दिव्य ऐश्वर्य उसके अपने हो जाते हैं।

हृदय की शुद्धता के कारण तथा ईश्वर-कृपा से उपनिषदों के सत्य उस पर प्रकट हो जाते हैं। बिना मनन तथा निदिध्यासन के ही उसमें आत्मज्ञान का प्रादुर्भाव होता है, क्योंकि वह ईश्वरीय कृपा के लिए भगवान का प्रिय भक्त बन जाता है।

ही प्राप्त होती है। जिसे यह आत्मा चुन लेती है. उसी के द्वारा आत्मा की प्राप्ति होती है। "यह आत्मा न तो वेदों के अध्ययन से, न बुद्धिमत्ता से और न अधिक श्रवण से उसी के प्रति आत्मा का वास्तविक स्वरूप प्रकट होता है" कठोनिषद १/२/२३)।

"मुर्ख जन ही सांख्य तथा योग को पृथक् पृथक बतलाते हैं, ज्ञानी जन ऐसा नहीं कहते। जो व्यक्ति एक में प्रतिष्ठित है, वह दोनों का फल प्राप्त कर लेता है" (गीता : ५/४)।

"जो लक्ष्य सांख्ययोगियों द्वारा प्राप्त किया जाता है, वही कर्मयोगियों के द्वारा भी। वही ठीक देखता है जो सांख्य तथा योग को एक समझता है" (गीता : ५/५)।

उस शुष्क वेदान्तिक छात्र के लिए करोड़ों वर्षों में भी मोक्ष की आशा नहीं है जिसने दीर्घकालीन कर्मयोग के द्वारा चित्त को शुद्ध नहीं किया है। वह मेढक के समान है जो वर्षा ऋतु में बहुत शोर मचाता है। मेढक तो वर्षा में ही लोगों की शान्ति में विघ्न पहुँचाता है; परन्तु शुष्क वेदान्ती हृदय-शुद्धि के बिना किताबी कीड़ा बन कर वर्ष-भर अपने अनावश्यक विवादों, बहसों तथा शास्त्रार्थों के द्वारा जनता की शान्ति को भंग किया करता है। सच्चा वेदान्ती तो जगत् के लिए वरदान ही है। वह मौन की भाषा अथवा हृदय की भाषा द्वारा शिक्षा देता है। वह सदा आत्म-भाव से सेवा करता है।

आप सभी कर्मयोग से प्राप्त हृदय की शुद्धि के द्वारा नित्य वस्तु का साक्षात्कार करें!

अध्याय १४: भक्तियोग-साधना

१. भक्तियोग-साधना की रूपरेखा

१. भक्ति क्या है**?**

ईश्वर के प्रति परम प्रेम को भक्ति कहते हैं।

२. भक्ति दो प्रकार की है **:**

काम्य तथा निष्काम।

३. निष्काम भक्ति दो प्रकार की होती है **:**

(१) वैधी, बाह्य पूजा, जप आदि।

(२) रागात्मिका अथवा प्रेम (आन्तरिक) ईश्वर के प्रति असीम प्रेम।

४. चार प्रकार के भक्त **:** (गीता : ७/१६)

आर्त : द्रौपदी तथा गजेन्द्र जैसे पीड़ित भक्त। जिज्ञासु : जैसे उद्धव। अर्थार्थी : जो किसी वस्तु की कामना से भक्ति करता है जैसे ध्रुव। ज्ञानी: शुकदेव जैसे ज्ञानी।

५. पाँच प्रकार की मुक्ति **:**

सालोक्य : भगवान् के ही लोक में वास। सामीप्य : भगवान् के समीप वास। सारूप्य : भगवान् के सदृश रूप। सायुज्य : भगवान् के साथ पूर्ण तादात्म्य। सार्टि : ईश्वरीय शक्तियों का उपभोग।

६. नवधा भक्ति **(**भागवत **:** ७/५-२३**)**

श्रवण : भगवान् की लीला तथा कथा का श्रवण। कीर्तन : उसके नाम, लीला तथा कथा का कीर्तन। स्मरण भगवान् का स्मरण। पादसेवन उसके चरणों की सेवा तथा गुरु, माता-पिता, देश एवं मानव जाति की सेवा। अर्चन : पुष्प-पत्र आदि चढ़ाना। वन्दन : ईश्वर की वन्दना करना तथा प्रत्येक व्यक्ति अथवा वस्तु को मानसिक नमस्कार करना। दास्य : दास एवं स्वामी भाव। सख्य: अर्जुन जैसा मित्र-भाव। आत्म-निवेदन : स्वयं को ही अर्पित कर देना।

७. पाँच प्रकार के भाव **:**

शान्त भीष्म जैसा संयमित तथा शान्त। दास्य सेवक-स्वामी भाव जैसे हनुमान्। सख्य अर्जन जैसा मित्र-भाव। वात्सल्य कौशल्या, यशोदा जैसा वात्सल्य भाव। माधुर्य : पति-पत्नी भाव, प्रेमी-प्रेमिका भाव जैसे गोपी, गौरांग।

८. भक्ति के विकास के छह साधन :

(१) भागवत, साधु तथा संन्यासी की सेवा। (२) भगवान के नाम का जप, स्मरण

आदि। (३) सत्संग। (४) हरि-कीर्तन (भगवान् के नाम का जोरों से जप)। (५) गीता, रामायण, भागवत आदि का स्वाध्याय। (६) तीर्थ-यात्रा तथा वृन्दावन, अयोध्या, पण्ढरपुर, चित्रकूट इत्यादि पवित्र स्थलों में निवास।

९. भक्ति के आठ लक्षण :

(१) अश्रुपात, (२) पुलक, (३) कम्पन, (४) रुदन, (५) हास्य, (६) स्वेद, (७) मूर्च्छा, तथा (८) स्वरभंग।

(१०) भक्त के चार गुण :

(१) तृण के समान नम्र। (२) वृक्ष के समान सहिष्णु। (३) स्वयं मान अथवा आदर की कामना न रख कर दूसरों को आदर देना। (४) सदा भगवान् के नाम का जप।

११. भक्ति-मार्ग के पाँच कण्टक :

इनका अभिमान : (१) जाति, (२) विद्वत्ता, (४) पद, (३) सौन्दर्य तथा (५) यौवन।

१२. साधना-मार्ग के दो आन्तरिक शत्रु :

(१) काम तथा (२) क्रोध।

१३. काम के अनुगामी दश पाप :

(१) आखेट-प्रियता, (२) द्यूत-क्रीड़ा, (३) दिवा स्वप्न, (४) गाली देना, (५) कुटिला स्त्रियों का साहचर्य, (६) मद्यपान, (७) रागात्मक संगीतों का गायन, (८) नृत्य, (९) अश्लील संगीत तथा (१०) निरुद्देश्य भ्रमण।

१४. क्रोध के अनुगामी आठ पाप :

(१) अन्याय (२) रुक्षता, (३) अत्याचार, (४) ईर्ष्या, (५) दोष-दर्शन, (६) वंचकता, (७) कटु शब्द तथा (८) निर्दयता।

१५. तीन एषणाएँ :

(१) वित्तैषणा, (२) पुत्रैषणा और

(३) लोकैषणा।

१६. भक्ति के तीन आपत्तिजनक :

इनका साथ : (१) स्त्री, (२) धन तथा (३) नास्तिक व्यक्ति।

१७. भक्ति के पूर्वापेक्ष्य :

(१) निष्काम्य (फल की कामना न रखना। (२) अनन्य (ईश्वर के प्रति पूर्ण प्रेम)। (३) अखण्ड (तैलधारावत् प्रेम)। (४) सदाचार सहित (शुभ गुण तथा चरित्र के साथ)। (५) अव्यभिचारिणी (इष्टदेवता के प्रति गम्भीर प्रेम)। (६) हार्दिक सच्चाई।

१८. प्रेम के सात रूप :

(१) स्नेह (प्रेम से हृदय द्रवित होना)। (२) मान (प्रेमी-प्रेमिका का वह भाव जो उसके निकट रहते हुए उनके बीच व्यवधान डालता है)। (३) प्रणय (प्रेमिका का प्रेम जिससे वह अपने को प्रिय से एक मान बैठता है)। (४) राग-स्नेह (जब व्यक्ति अपने प्रियतम के लिए कष्ट सहन करने में सुख का अनुभव करता है)। (५) अनुराग (जब राग प्रेमिका में सदा नवीन माधुर्य प्राप्त करने लगता है)। (६) भाव (जिस तरह किरणों के पश्चात् सूर्य उदय हो जाता है, उसी तरह भाव-रश्मियाँ भी प्रेम को उदित करती हैं। श्रीकृष्ण-प्राप्ति की अक्षय पिपासा से यह हृदय को द्रवित कर देता है)। (७) महाभाव (यह भाव की परिसमाप्ति है)।

१९. चौबीस अवतार :

(१) मत्स्य अवतार ने वेदों का प्रलय के जल से उद्धार किया। (२) कूर्म अवतार समुद्र के मन्थन के समय मन्दराचल के आधार बन गये। (३) वाराह अवतार ने हिरण्याक्ष को मार कर पृथ्वी को जल से उबारा। (४) नृसिंह अवतार ने खम्भे से प्रकट हो कर हिरण्यकशिपु का संहार किया तथा प्रह्लाद को अपना दर्शन दिया। (५) वामन अवतार ने राजा बलि के मद का अपहरण किया। (६) परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों का विनाश कर इस भूमि को ब्राह्मणों को प्रदान किया। (७) राम ने रावण का संहार किया। (८) कृष्ण ने कंस को नष्ट किया तथा अर्जुन एवं उद्धव को ब्रह्मविद्या की शिक्षा दी। (९) बुद्ध, उन्होंने असुरों को अहिंसा की शिक्षा दी। (१०) कल्कि, कलियुग के अन्त में इनका अवतार होगा। (११) यज्ञ, रुचि तथा अकति से उत्पन्न। सुयाम देव यज्ञ से उत्पन्न थे। उन्होंने त्रिलोकी के भय को दर किया। (१२) कपिल, कर्दम तथा देवहति से उत्पन्न तथा सांख्य दर्शन के संस्थापक। उन्होंने अपनी माता को ब्रह्मविद्या सिखायी। (१३) दत्तात्रेय - अत्रिमुनि तथा अनसूया देवी से उत्पन्न त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव) के अवतार। (१४) चार कुमार सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार। ये ब्रह्मा के मानस-पुत्र है। इनकी सदा छह वर्ष की अवस्था है। ये ब्रह्मविद्या के गुरु हैं। (१५) नर-नारायण-धर्म तथा मूर्ति से उत्पन्न। उन्होंने बद्रिकाश्रम में तपस्या की। (१६) श्रीहरि ने ध्रुव को दर्शन दिये। (१७) पृथु उन्होंने पृथ्वी से धन तथा खाद्य पदार्थों को बाहर निकाला। (१८) ऋषभ (परमहंस) नाभि तथा सुदेवी से उत्पन्न महान् ब्रह्मवरिष्ठ। (१९) हयग्रीव-वैदिक यज्ञ से उत्पन्न हुए तथा वेदों को प्रकाशित किया। (२०) हरि-गजराज को ग्राह से छुड़ाया। (२१) हंस-नारद मुनि को भक्ति, योग, ज्ञान तथा भागवत की शिक्षा देने के लिए। (२२) मनु-हर मन्वन्तर का अधिष्ठाता देव। (२३) धन्वन्तरि आयुर्वेद के प्रचारक। (२४) व्यास- चारों वेदों तथा अट्ठारह पुराणों के सम्पादक।

२०. विष्णु के पाँच रूप :

(१) नारायण, (२) वासुदेव

(३) संकर्षण,

(४) प्रद्युम्न तथा

(५) अनिरुद्ध।

२१. दो प्रकार की पूजा :

(१) बाह्य तथा (२) मानसिक।

२२. पूजा में चार प्रकार के भाव :

(१) ब्रह्म-भाव (जीवात्मा तथा परमात्मा एक है)। (२) ध्यान-भाव (योगाभ्यास के साथ सतत अध्ययन)। (३) स्तुति-भाव (जप तथा पूजा स्तोत्र) । (४) बाह्य भाव (बाह्य पूजा)।

२३. पूजा के सोलह् अंग :

(१) आसन (इष्टदेव की मूर्ति के लिए आसन देना)। (२) स्वागत (इष्टदेवता का स्वागत करना)। (३) पाद्य (चरण धोने के लिए जल)। (४) अर्घ्य (कलश में जल का अर्पण)। (५) आचमन। (६) मधुपर्क (मधु, घी, दूध तथा दही)। (७) स्नान (स्नान के लिए जल)। (८) वस्त्र। (९) भूषण। (१०) गन्ध। (११) पुष्प। (१२) धूप। (१३) दीप। (१४) नैवेद्य। (१५) ताम्बूल। (१६) वन्दन अथवा नमस्कार।

२४. चार प्रकार की ध्वनि :

(१) परा-प्राण में अभिव्यक्त। (२) पश्यन्ती - मन में अभिव्यक्त। (३) मध्यमा इन्द्रियों में अभिव्यक्त। (४) वैखरी-व्यक्त वाणी। प्रथम तीन गम्भीर तथा सागर के समान अगाध हैं।

२५. तीन प्रकार के जप:

(१) वैखरी: जिह्वा से कर्णगोचर।

(२) उपांशु जिह्वा से ध्वनि रहित। (३)

मानसिक मन ही मन ।

२६. तीन प्रकार के कीर्तन :

(१) एकान्त (अकेले)। (२) संकीर्तन (बहत व्यक्तियों के साथ) ।

(३) अखण्ड

कीर्तन (लगातार कीर्तन)।

२७. ईश्वरीय नाम के प्रति दश अपराध:

(१) साधुओं तथा भक्तों की निन्दा। (२) ईश्वरीय नामों में भिन्नता देखना। (३) गुरु के प्रति अनादर। (४) सदग्रन्थों की हँसी उड़ाना समझना। (६) नाम के बहाने पाप करना। (७) नाम को अन्य धर्मों के समान तथा बिना। (५) नाम-महिमा को अतिशयोक्ति नाम के ही उपवास, दान, यज्ञ आदि करना। (८) नास्तिकों तथा अनधिकारियों को नाम का उपदेश करना। (९) महिमा सुन लेने पर भी नाम के प्रति प्रेम की कमी। (१०) भोग वस्तुओं के प्रति राग तथा अहंता एवं ममता।

२८**.** ईश्वर के पाँच कार्य **:**

(१) सृष्टि,

(२) पालन,

(३) विनाश,

(४) आवरण तथा

(५) कृपा-दृष्टि।

२९**.** भगवान् के छह गुण **:**

(१) ऐश्वर्य (सम्पूर्ण दिव्य शक्ति)। (२) धर्म (सम्पूर्ण धर्म)। (३) श्री (सम्पूर्ण धन)। (४) यश (सम्पूर्ण सम्मान, स्तुति)। (५) ज्ञान तथा (६) वैराग्य।

३०**.** तीन प्रकार के कर्म **:**

(१) संचित (अनेकानेक पूर्व-जन्मों में किये गये संचित कर्म)। (२) प्रारब्ध (संचित कर्म का वह भाग जिसको इस जन्म में भोगते हैं)। (३) क्रियमाण अथवा आगामी (इस जन्म में होने वाले कर्म जिनका फल इस जन्म में अथवा अगले जन्म में प्राप्त होगा)।

३१**.** पाँच प्रकार के क्रियमाण या आगामी कर्म **:**

(१) नित्य। (२) नैमित्तिक (विशेष समय पर)। (३) काम्य (धन, स्त्री, पुत्र, रोग-निवारण आदि की कामना से)। (४) निषिद्ध (चोरी, असत्य, मांस-भक्षण, सुरापान आदि)। (५) प्रायश्चित्त (पाप आदि को दूर करने के लिए)।

३२**.** भक्ति की नौ भूमिकाएँ**:**

(१) सत्संग, स्वाध्याय। (२) स्तुति (भगवान् की)। (३) श्रद्धा (ईश्वर में)। (४)

भक्ति (साधना, भक्ति या जप, कीर्तन, स्मरण आदि)। (५) निष्ठा। (६) रुचि (भगवान् के नाम तथा महिमा के श्रवण तथा जप में)। (७) रति (अत्यधिक आसक्ति)। (८) स्थायी-भाव (भक्ति-रस में स्थिरता का भाव)। (९) महाभाव (भक्त जगत् तथा उसके आकर्षण से मुक्त हो जाता है)।

३३. चार प्रकार के पुरुषार्थ

(१) धर्म,

(२) अर्थ,

(३) काम तथा

(४) मोक्ष।

२. भक्तियोग-साधना के कुछ पहलू

१. भक्ति प्रेम का वह रेशमी सूक्ष्म सूत्र है जो भक्त के हृदय को ईश्वर के पाद-पद्मों में बाँध देता है। भक्ति ईश्वर से परम अनुरक्ति है। यह ईश्वर के प्रति प्रेम का सहज प्रवाह है। यह शुद्ध, निःस्वार्थ दिव्य प्रेम है। भक्ति हृदय की वह पवित्र भावना है जो भक्त का भगवान् से सम्बन्ध कराती है। यह भक्तों द्वारा अनुभव का ही विषय है।

२. मानवी प्रेम उथला है। यह पाशवी आकर्षण मात्र ही है। यह काम है। यह मांसगत है। यह स्वार्थमय है। यह परिवर्तनशील है। यह दम्भ एवं पाखण्ड मात्र है। जब पति नौकरी से च्युत हो जाता है, तो उसकी पत्नी उसकी परवाह नहीं करती। वह उसे आँखें दिखाती है। जब पत्नी किसी असाध्य बीमारी के कारण अपना सौन्दर्य खो बैठती है, तो पति भी उसमें अपनी रुचि नहीं रखता। आप ईश्वर में ही वास्तविक स्थायी प्रेम पा सकते हैं। उसके प्रेम में कोई परिवर्तन नहीं होता।

३. भक्ति सारे धार्मिक जीवन का आधार है। भक्ति वासनाओं तथा स्वाभिमान को विनष्ट करती है। भक्ति, श्रद्धा तथा प्रेम के बिना जीवन निस्सार ही है। भक्ति हृदय को कोमल बनाती तथा ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, अभिमान तथा धृष्टता को दूर करती है। यह आनन्द, दिव्य भाव, सुख, शान्ति तथा ज्ञान का संचार करती है। भक्ति से सब प्रकार के रके शोक, चिन्ता, दुःख, भय, मानसिक व्याधि तथा क्लेश पूर्णतः विलुप्त हो जाते हैं। भक्त जन्म-मृत्यु के चक्र से विमुक्त हो जाता है। वह सुख, शान्ति तथा ज्ञान के शाश्वत धाम को प्राप्त कर लेता है।

४. सकाम भक्ति वह है जिसमें भक्त धन, पुत्र अथवा रोग निवारण की कामना से कुछ समय तक ईश्वर से प्रेम करता है और फिर कुछ समय तक अपने परिवार, स्त्री, पुत्र, सम्पत्ति से प्रेम करता है। ईश्वर से ही सदा प्रेम रखना अव्यभिचारिणी भक्ति है। प्रकाद मे उन्नतावस्था में भगवान् हरि पर अपनी आत्मा के रूप में ध्यान किया। यह अभेद भक्ति है।

५. भक्त उस लोक में रहता है जिस लोक में भगवान् विष्णु रहते हैं। वह उसी लोक का निवासी बन जाता है, यह सालोक्य मुक्ति है। सामीप्य मुक्ति में भक्त भगवान् के मन्निकट रहता है जिस तरह सेवक राजा के निकट रहता है। सारूप्य मुक्ति में वह भगवान् के समान ही अपना रूप प्राप्त करता है जिस तरह राजा का भाई। सायुज्य मुक्ति में वह लवण एवं जल के समान ईश्वर से एक बन जाता है। सार्टि मक्ति में भक्त भगवान के सभी अधिकारों को (ईश्वर के पाँच कामों को छोड़ कर) उपभोग करता है। इस प्रकार भक्तों के लिए पाँच प्रकार की मुक्ति है।

६. प्रेम के वशीभूत हो निराकार ब्रह्म अपने भक्तों को प्रसन्न करने के लिए भगवान् हरि का रूप धारण करता है। ईश्वर करुणा की प्रतिमूर्ति है। भगवान् अपने हाथों में अन्न-जल ले कर जंगलों में भक्तों के पीछे फिरते हैं। वे अपने भक्तों के गुलाम बन जाते हैं। विष्णु भगवान् प्रह्लाद से कहते हैं, "हे तात! तुम्हारी उम्र बहुत ही कम है तथा तुम्हारा शरीर बड़ा ही कोमल है। अपने कठोर हृदय पिता के अत्याचारों को सहन करने की इसमें क्षमता नहीं है। इस तरह के अत्याचार पहले मैंने कभी नहीं देखे। अतः यदि आने में विलम्ब हुआ हो, तो कृपया क्षमा कर देना।" भगवान् कृष्ण भी कहते हैं, "मैं स्वयं अपने वश में नहीं हूँ। मैं तो पूर्णतः भक्तों के वश में हूँ। भक्तों ने मेरे हृदय पर पूर्ण रूप से अधिकार कर लिया है। फिर मैं उन्हें कैसे छोड़ सकता हूँ? जो सबमें मुझे देखता है तथा मुझमें ही सबको देखता है, उसके लिए मैं कभी नष्ट नहीं होता और न वह मेरे लिए नष्ट होता है।"

७. इन सभी प्रकारों से आप भक्ति का विकास कर सकते हैं श्रवण (ईश्वर की लीला को सुनना), कीर्तन (उसकी स्तुति का गान करना), स्मरण (उसके नाम का स्मरण), पादसेवन (चरणों की सेवा), अर्चन (पुष्पादि चढ़ाना), वन्दन (नमस्कार), दास्य (सेवा), सख्य (मित्रता) तथा आत्म-निवेदन (पूर्ण आत्मार्पण)। गीता, रामायण और भागवत का अध्ययन कीजिए। तीर्थयात्रा कीजिए। जप कीजिए। ध्यान कीजिए। उसके नाम का गायन कीजिए। आप भक्ति का विकास कर उसके दर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

८. क्या आप सचमुच ईश्वर को चाहते हैं? क्या आप सचमुच उसके लिए तड़पते हैं? क्या आपमें आध्यात्मिक भूख है? आप भक्ति के ऊपर प्रेरणाप्रद भाषण दे सकते हैं, आप भक्ति के ऊपर बड़े-बड़े ग्रन्थ लिख सकते हैं, फिर भी आपमें भक्ति का एक कण भी नहीं हो सकता। जिसमें ईश्वर-दर्शन के लिए तड़प है, वही भक्ति का विकास कर सकता है। यदि ईश्वर के लिए सच्ची माँग है, तो उसकी पूर्ति होगी ही। नियमित स्थिर साधना के द्वारा आप सुख, शान्ति, ज्ञान, पूर्णता तथा ईश्वर-साक्षात्कार को प्राप्त कर सकेंगे।

९. ईश्वर का नाम जाने या अनजाने, सावधानीपूर्वक अथवा असावधानीपूर्वक कैसे भी क्यों न जपा जाये, इसका फल अवश्य मिलता है। ईश्वर-नाम की महिमा तर्क अथवा बुद्धि से नहीं सिद्ध की जा सकती। भक्ति, श्रद्धा तथा सतत नाम-स्मरण से निश्चय ही इसका अनुभव किया जा सकता है। हर नाम में अनगिनत शक्ति है। नाम की शक्तिः अमिट है। इसकी महिमा अनिर्वचनीय है। ईश्वर के नाम की शक्ति अथाह है।

१०. जिस प्रकार अग्नि में ईंधन को जलाने का स्वाभाविक गुण है, उसी तरह ईश्वर के नाम में भी पापों, संस्कारों तथा वासनाओं को जला कर शाश्वत शान्ति प्रदान करने की शक्ति है। जिस तरह जलाने का गुण अग्नि के लिए सहज है, उसी तरह ईश्वर के नाम में पापों को मूलतः जलाने तथा ईश्वर की भाव-समाधि देने का स्वाभाविक गुण है।

११. हे नर! नाम की शरण ग्रहण करो। नामी तथा नाम एक ही हैं। सदा अनवरत नाम का गायन करो। हर श्वास-प्रश्वास के साथ भगवान् के नाम का स्मरण करो। इस कलियुग में जप तथा नाम-स्मरण सबसे सुगम, शीघ्र तथा सरल मार्ग है जिससे मनुष्य ईश्वर तक पहुँच कर अमरत्व तथा शाश्वत सुख को प्राप्त कर सकता है। ईश्वर की जय हो! हरि ॐ, श्री राम, राधेश्याम का कीर्तन कीजिए।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।।

३. श्रद्धा, मुमुक्षुत्व तथा आत्मार्पण

श्रद्धा इस विश्व की सबसे बड़ी वस्तु है। सर्वोत्तम तर्क की पृष्ठभूमि में भी श्रद्धा ही है। उस वस्तु के प्रति मनुष्य तर्क नहीं करता जिसके प्रति उसे श्रद्धा नहीं। सबसे महान् दार्शनिक भी श्रद्धा को ही अपना सम्बल बनाये रखता है। श्रद्धा पर आश्रित न हो, तो कितनी भी विद्वत्ता व्यर्थ रह जायेगी। सारा जगत् श्रद्धा पर ही आश्रित है तथा श्रद्धा द्वारा ही इसका पथ-प्रदर्शन होता है। श्रद्धा धर्म की जड़ है। मनुष्य ईश्वर को प्रमाणित नहीं कर सकता यदि उसमें ईश्वर के प्रति श्रद्धा नहीं। ईश्वर तो श्रद्धा का ही विषय है। यह श्रद्धा पूर्व-संस्कारों से उत्पन्न है। कुछ लोग जन्म से ही दार्शनिक होते हैं तथा कुछ लोग ७० वर्ष की आयु में भी दर्शन को नहीं समझ पाते। यह सब पूर्व-संस्कारों का ही फल है। श्रद्धा कर्मों के संस्कारों पर ही निर्भर है। आध्यात्मिक उन्नति जितनी होगी, उतनी ही श्रद्धा भी रहेगी।

अन्ध श्रद्धा को विवेकयुक्त श्रद्धा में बदलना होगा। बिना समझे श्रद्धा रखना ही अन्ध श्रद्धा है। भक्ति श्रद्धा का ही विकास है। ज्ञान भक्ति का ही विकास है। श्रद्धा से परम अनुभव की प्राप्ति होती है। जिसमें भी मनुष्य का प्रबल विश्वास होता है, वह उसका अनुभव करता है तथा वही वह बन जाता है। यदि आपको जगत में श्रद्धा नहीं, तो जगत् का अस्तित्व भी नहीं। यदि आपको विषय-पदार्थों में श्रद्धा नहीं, तो वे आपको सुख नहीं दे सकते। यदि आपको ईश्वर में श्रद्धा नहीं है, तो आप कदापि पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकते। गलत श्रद्धा सत् को भी असत् बना डालती है। "जो ब्रह्म को असत् समझता है. वह स्वयं असत् हो जाता है (तैत्तिरीय उपनिषद)। श्रद्धा आध्यात्मिक साधना का आधार है।

मुमुक्षुत्व श्रद्धा का ही विकास है। यह श्रद्धा से एक कदम आगे है। श्रद्धा की ज्योति ही मोक्ष के लिए मुमुक्षुत्व-रूप ज्वाला में बदल जाती है। साधक ईश्वरीय अनुभव के लिए तड़पने लगता है। यह एक श्रद्धा ही नहीं, वरन् अनुभव है जिसे बाह्य घटनाओं से विचलित नहीं किया जा सकता। भक्त भगवान् से योग-प्राप्ति के लिए सतृष्ण रहता है। उसे नींद नहीं, आराम नहीं। वह सदा इसका ध्यान करता है कि कैसे प्रेम-प्रभु को प्राप्त किया जाये। वह प्रार्थना करता है, कीर्तन करता है तथा अपने प्रभु के लिए पागल हो जाता है। दिव्य उन्माद भर जाता है तथा भक्त अपनी व्यक्तित्व-चेतना को खो बैठता है। इसे आत्मार्पण कहते हैं।

आत्मार्पण भक्तियोग का लक्ष्य है। भक्त ईश्वर-चैतन्य में खो जाता है। वह आनन्द-सागर में निमग्न हो गया है। उसने अमृत सागर में स्नान किया है। उसने अमृत-पान किया है। वह आप्तकाम बन गया है। उसने ईश्वर को प्राप्त कर लिया है।

४. भक्ति-साधना के नौ प्रकार

सन्त तुलसीदास के अनुसार भक्ति के नौ प्रकार हैं:

साक्षात्कार प्राप्त सन्तों की संगति प्रथम है। ईश्वर की महिमा तथा स्तुति में प्रेम दूसरा है। ईश्वर के चरण कमल की सेवा तीसरा है। ईश्वरीय गुण-गान चौथा प्रकार है। दृढ़ विश्वास के साथ वेदानुकूल मन्त्र का जप पाँचवाँ है। दम, शील, कर्मों से विरति ये छठा है। ये सज्जनों के शाश्वत धर्म हैं। सातवें प्रकार में भक्त जगत् को ईश्वर में देखता है तथा सन्तों को ईश्वर से अधिक मानता है। यथालाभ सन्तोष आठवाँ है। भक्त स्वप्न में भी पर-दोष नहीं देखता। सभी से छलहीन हो कर सरलतापूर्वक व्यवहार करना, ईश्वर पर ही निर्भर रहना तथा हृदय में हर्ष-विषाद न रखना नौवाँ है।

जो भी इनमें से किसी का भी अभ्यास करता है चाहे वह नर हो या नारी, चर हो या अचर, वह ईश्वर को अतिशय प्रिय है।

५. भक्तियोग-साधना के लिए आवश्यक

मन के विभिन्न प्रकार हैं। लोगों की रुचि, प्रवृत्ति तथा क्षमता भिन्न-भिन्न है। अतः यद्यपि लक्ष्य एक ही है, फिर भी बहुत से मार्गों की आवश्यकता है। भक्तियोग का मार्ग सभी के लिए खुला हुआ है तथा इस कलियुग में यह सबसे सुगम मार्ग है। कोई भी भक्त बन सकता है। भक्ति के साम्राज्य में जाति, वर्ण अथवा लिंग का कोई विभेद नहीं है। भक्ति के लिए आयु, जाति, पद अथवा प्रतिष्ठा की कोई आवश्यकता नहीं है। मुक्ति की कामना ही मनुष्य को भक्ति का अधिकारी बना डालती है। पूर्व-जन्म के सत्कर्मों के कारण मनुष्य के हृदय में भक्ति की उत्पत्ति होती है। ईश्वर-भक्त को मुक्ति की प्राप्ति होती है।

भक्ति ईश्वर के प्रति परम आसक्ति है। ईश्वर के अस्तित्व में श्रद्धा होना भक्ति का आधार है। भागवत, साधु-संन्यासी की सेवा, ईश्वर के नाम का जप, सत्संग, हरि-कीर्तन, भागवत तथा रामायण का स्वाध्याय; वृन्दावन, पण्ढरपुर, चित्रकूट या अयोध्या में वास ये भक्ति के विकास के लिए छह साधन हैं। सभी साधकों को नवधा भक्ति का विकास करना चाहिए। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्म-निवेदन ही नवधा भक्ति है।

भक्ति निष्काम होनी चाहिए। यह अव्यभिचारिणी होनी चाहिए। यह तैलधारावत् सतत होनी चाहिए। साधक को सदाचार का पालन करना चाहिए। उसे भक्ति-साधना में अधिकाधिक सच्चा और गम्भीर होना चाहिए। ये भक्ति-मार्ग के अनिवार्य पूर्वापेक्ष्य हैं। तभी ईश्वर साक्षात्कार की प्राप्ति शीघ्र हो सकेगी।

जाति, विद्वत्ता, पद, सौन्दर्य तथा युवावस्था- ये भक्ति-मार्ग के पंच-कण्टक हैं। दो आन्तर शत्रु काम तथा क्रोध हैं। इनसे सावधान रहिए। ये भक्ति के विकास में व्यवधान हैं। यह जान लीजिए कि काम के साथ दश प्रकार के पाप तथा क्रोध के साथ आठ प्रकार के पाप लगे रहते हैं। भगवन्नाम के उच्चारण में लज्जा अनुभव करना भी नये साधकों के लिए बाधा है। विषय-सुख की तृष्णा भक्ति के लिए हानिकर है।

ईश्वर, उसकी कृपा तथा उसके नाम की शक्ति में सच्ची, पूर्ण, जीवन्त, अविचल श्रद्धा रखिए। श्रद्धा चमत्कार कर सकती है। श्रद्धा पहाड़ों को चलायमान कर सकती है। श्रद्धा आपको ईश्वर के अन्तरतम प्रकोष्ठ में ले जा सकती है। श्रद्धा आपको दिव्य बना सकती है। श्रद्धा आपको शान्ति, आन्तरिक आध्यात्मिक बल, सुख, मुक्ति, अमृतत्व तथा आनन्द प्रदान करेगी। अतः ईश्वर के अस्तित्व, सद्ग्रन्थ, गुरु की वाणी तथा अपनी आत्मा में सच्ची श्रद्धा रखिए।

ईश्वर प्रारम्भ में अपने भक्तों की तरह-तरह से जाँच करता है। वह उनके सामने कठिन से कठिन परीक्षा रखता है। अन्ततः ईश्वर भक्त का गुलाम बन जाता है। भगवान् कृष्ण कहते हैं "मैं अपने नियन्त्रण में नहीं हैं। मैं अपने भक्तों के वशीभूत हैं। भक्तों ने मेरे हृदय पर पूर्णतः अधिकार कर लिया है। मैं उन्हें कैसे त्याग सकता है, जब उन्होंने मेरे लिए सर्वस्व का त्याग कर दिया है?" ईश्वर कृपा, करुणा तथा प्रेम से पूर्ण है। वह कृपा-सागर है। गंगा तथा यमुना के प्रवाह के समान ही उसकी कृपा प्रवाहित होती है। अपने भक्तों के दुःख-निवारण के लिए वह जान-बूझ कर अनन्त कष्ट सहता है। गजेन्द्र की प्रार्थना सुन कर वे चक्र ले कर दौड़ पड़े तथा ग्राहरूपधारी राक्षस को मार कर गजेन्द्र का उद्धार किया। अयोध्या के रूपकला जी भगवान् की पूजा में इतना निमग्न थे कि वे अपने निरीक्षण-कार्य को एकदम भूल गये। भगवान् ने स्वयं निरीक्षक बन कर रजिस्टर में हस्ताक्षर किये। पंजाब में एक सिपाही भक्त संकीर्तन में इतना मस्त हो चला कि उसे अपनी ड्यूटी पर जाने का ध्यान ही न रहा। भगवान् राम स्वयं सिपाही बन कर उसकी ड्यूटी पर काम करते रहे।

प्रिय मित्रो ! उठिए! जीवन अल्प है। समय गतिशील है। समय बहुत मूल्यवान् है। अपने लक्ष्य तथा उद्देश्य का स्मरण कीजिए जिसके लिए ही आपने मानव-शरीर धारण किया है। कठिन संग्राम कीजिए। उग्र साधना कीजिए। अहंकार, स्वार्थ, मद तथा घृणा को विनष्ट कीजिए। भक्ति के लिए कठिन प्रयास कीजिए; तभी आप जन्म-मृत्यु के चक्र से छूट कर परम ज्ञान, असीम सुख, परम शान्ति तथा अमृतत्व प्राप्त करेंगे। आप सभी भक्ति-मार्ग का अनुगमन करें तथा दिव्य भाव-समाधि, विशुद्ध आनन्द एवं सुख में निवास करें!

६. भक्ति-साधना में श्रद्धा का महत्त्व

ईश्वर में श्रद्धा के द्वारा अपने को सुरक्षित कीजिए। व्यर्थ विवाद तो अज्ञान का लक्षण है। श्रद्धा से शान्ति एवं समता की प्राप्ति होती है। विवाद अशान्ति प्रदान करता है। कितना भी विवाद आप क्यों न करें, आप ईश्वर के स्वरूप को नहीं समझ सकते, जिस तरह आप अपनी आँखों को ही दर्पण के बिना नहीं देख सकते। श्रद्धा ही दर्पण है। श्रद्धा ही ईश्वर को प्रतिबिम्बित करती है। बुद्धि ईश्वर पर आवरण डालती है। ईश्वर वह हाथ है जो बुद्धि रूपी टार्च को पकड़े हुए है, फिर बुद्धि ईश्वर को कैसे देख सकती है। श्रद्धा की आवश्यकता है। ईश्वर के अस्तित्व और सन्तों के सदुपदेश में श्रद्धा के द्वारा ही आप आन्तरिक सुख तथा शान्ति प्राप्त करेंगे तथा उस शान्ति में आप ईश्वर को प्राप्त कर लेंगे। आप शान्ति, प्रेम तथा एकता के स्वरूप बन जायेंगे। आपसे विचार, वाणी तथा कर्म के स्रोत निकलेंगे और समस्त जगत् को शान्ति, सम्पत्ति तथा सुख से परिप्लावित कर देंगे। आप सभी सन्त, ऋषि, योगी तथा जीवन्मुक्त के रूप में विभासित बनें! जगत् में शान्ति हो तथा मनुष्य के हृदय में प्रेम ! उसकी दिव्य शक्ति सदा के लिए इस जगत् में विजयी बने। आप सभी स्वास्थ्य, दीर्घायु, शान्ति, सम्पत्ति तथा नित्य सुख प्राप्त करें!

७. सच्चे आत्मार्पण का स्वरूप

यदि आप बिना किसी आन्तरिक भाव के ही कहें, "मैं तेरा हूँ, हे प्रभु!" तो इसे पूर्ण आत्मार्पण नहीं कहते। आपके हृदय के अन्तरतम से आवाज आनी चाहिए। आपको आमूल परिवर्तन के लिए तैयार रहना चाहिए। आपको अपनी पुरानी आदतों तथा प्रवृत्तियों से आसक्त नहीं रहना चाहिए। आपको ऐसी आशा नहीं रखनी चाहिए कि आपके इच्छानुसार ही सब-कुछ हो। ईश्वरीय उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही आपको जीवित रहना चाहिए। ईश्वरीय कृपा अथवा शक्ति को स्वार्थ साधना में लगाने का विचार न कीजिए। अहंकार तरह-तरह के रूप धारण करेगा तथा पुरानी आदतों और प्रवृत्तियों का त्याग न कर ईश्वर से सब-कुछ प्राप्त करना चाहेगा। यही कारण है कि साधक आध्यात्मिक मार्ग में कई वर्ष की साधना के बाद भी ठोस उन्नति नहीं कर पाते।

आत्मार्पण में कोई क्षति नहीं है। आप ईश्वर से सब-कुछ प्राप्त कर लेंगे। आप ईश्वर के सभी ऐश्वर्यों का भोग करेंगे। ईश्वर की सारी सम्पत्ति आपकी हो जायेगी। सिद्धियाँ तथा ऋद्धियाँ आपके चरणों में लोटने लगेंगी। आप ईश्वर से एक बन जायेंगे। आप सभी कामनाओं, इच्छाओं तथा तृष्णाओं से मुक्त बन जायेंगे। सच्चा साधक अपने शरीर, जीवन, मन तथा आत्मा को ईश्वर के पाद-पद्मों पर चढ़ा देने के लिए सदा तैयार रहता है।

हठी अहंकार बड़ा ही कठोर है। वह इस्पात अथवा वज्र से भी अधिक कठोर है। उसे द्रवित बनाना सुगम नहीं है। इस दुष्ट शत्रु का सहार कर सकने के लिए सतत सतर्कता तथा अनवरत प्रयास की आवश्यकता है। धारणा तथा विवेक की ज्योति से अपने हृदय के प्रकोष्ठ में निहित सूक्ष्म कामनाओं को खोज निकालिए तथा नियमित मौन-ध्यान द्वारा उन्हें विनष्ट कर डालिए।

८. भक्तियोग के लिए प्रमुख साधना

ईश्वर के प्रति अपने को पूर्णतः अर्पित कर देना आत्मार्पण है। आत्मार्पण के द्वारा भक्त ईश्वरीय कृपा की सत्यता का अनुभव करता है तथा सहायता के लिए ईश्वर की नित्य तत्परता की भी। ईश्वर-प्रवाह उसमें संचरित होने लगता है जो उसे ईश्वरीय साक्षात्कार तथा दिव्य निमित्त के उपयुक्त बनाता है।

आत्मार्पण तथा कृपा एक-दूसरे पर अवलम्बित है। आत्मार्पण के द्वारा कृपा मिलती है और कृपा आत्मार्पण को पूर्ण बनाती है। आत्मार्पण से हृदय की शुद्धि का प्रारम्भ होता है। कृपा उसे पूर्ण कर डालती है। कृपा के बिना पूर्ण एकता सम्भव नहीं है। कृपा आपको दिव्य बनाती है जिससे आप ईश्वरीय प्रेरणा को सतत प्राप्त कर सकें। ईश्वरीय कृपा के द्वारा ही व्यक्तित्व पूर्ण रूपान्तरण को प्राप्त करता है।

आत्मार्पण वह वस्तु नहीं है जिसे एक सप्ताह या एक माह में प्राप्त कर लिया जाये। आप साधना के प्रारम्भ से ही पूर्ण आत्मार्पण नहीं कर सकते।

क्षुद्र अहंकार बारम्बार हठ दिखाता है। यह पुरानी आदतों, तृष्णाओं तथा कामनाओं से जोंक की भाँति चिपका रहता है। यह छिप कर लडाई छेड़ता है। यह गुप्त तप्ति के लिए कुछ विषयों की माँग करता है। आत्मार्पण सम्पूर्ण होना चाहिए। यही कारण है कि भगवान् कृष्ण कहते हैं : "तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत-हे अर्जुन ! सर्वभाव से उसकी शरण में जा।" चित्त, बुद्धि, अहंकार, मन तथा आत्मा को उसके चरणों में अर्पित कर देना चाहिए। मीरा ने ऐसा किया; अतः वह कृष्ण की कृपा को प्राप्त कर कृष्ण से एक बन गयी।

अपने शरीर की रक्षा की चिन्ता न कीजिए। ईश्वर स्वयं इसकी रक्षा करेगा यदि वह इससे आगे कोई काम लेना चाहता है तो। इसे ईश्वर पर अर्पित कर शान्ति प्राप्त कीजिए। ईश्वर इसकी देखभाल करेगा। सच्चा भक्त कहता है, "हे प्रभु, मैं लाखों जन्म धारण करूँ, इसकी कोई चिन्ता नहीं; परन्तु मैं भगवान् हरि के चरणों में सदा अनुराग बनाये रखूँ। मुझमें ईश्वर के प्रति सहज भक्ति हो। मुझमें शुद्धता, आध्यात्मिक बल, निष्काम सेवा-भाव तथा दिव्य गुणों का आवास हो।"

ईश्वर अथवा गुरु के प्रति आत्मार्पण करने का संकल्प आत्मार्पण की प्रथम अवस्था है। जिस साधक ने अपने गुरु की सेवा अथवा मानव-जाति की सेवा के लिए अथवा आत्म-साक्षात्कार के लिए अपने जीवन को अर्पित किया है, वह अपने कर्मों से बन्धन को प्राप्त नहीं करता। ईश्वर-साक्षात्कार के उपरान्त ही आत्मार्पण पूर्ण होता है।

पारिवारिक जीवन का संन्यास आत्मार्पण का प्रारम्भ है। जो ज्वलन्त वैराग्य तथा विवेक से सम्पन्न है तथा जो आध्यात्मिक उन्नति के लिए सतृष्ण है, वह संसार में रहते ह भी आत्मार्पण कर सकता है। जगत् में रहते हुए भी वह पूर्ण आत्मार्पण के द्वारा ईश्वर-साक्षात्कार कर लेता है। परन्तु बहुत कम लोग ही ऐसा करने में सक्षम हैं; क्योंकि सांसारिक जीवन अनेकानेक प्रलोभनों से भरा हुआ है तथा साधक के लिए जगत् में रहते हुए पूर्ण वैराग्य प्राप्त करना बहुत कठिन हो जाता है। अतः पारिवारिक जीवन का संन्यास उसके मार्ग को सरलतर बना देता है। बीज का वपन होता है, तब वह साधक अपने गुरु के पास जा कर उसके चरणों में आत्मार्पण करता है। बीज से अंकुर निकलता है। वह गुरु-सेवा का समारम्भ करता है। उसका आत्मार्पण अधिकाधिक पूर्ण होता जाता है। उसका हृदय अधिकाधिक शुद्ध होता जाता है तथा शनैः शनैः ज्ञान की ज्योति का प्रादुर्भाव होता है और वह परमात्मा का साक्षात्कार करता है जो सर्वव्यापक तथा सर्वत्र है।

संन्यास के उपरान्त किये गये कर्म साधक को बाँधते नहीं; क्योंकि वह अपने सारे कर्मों को अपने गुरु अथवा ईश्वर पर अर्पित कर डालता है। वह ऐसा कोई कर्म नहीं करता जिसे स्वार्थपूर्ण कहा जाये। इस प्रकार अपने गुरु की सेवा से उसका हृदय शुद्ध हो जाता है तथा अन्ततोगत्वा ईश्वर ही उसका गुरु बन जाता है। अब उसने पूर्णतः ईश्वरार्पण कर दिया है। वह परम अनुभूति प्राप्त करता है।

प्रारम्भ में व्यक्तिगत प्रयास-पुरुषार्थ बहुत ही आवश्यक है। आत्मार्पण के पूर्ण हो जाने पर उसको ईश्वरीय कृपा प्राप्त होती है तथा ईश्वरीय शक्ति स्वतः साधक के लिए साधना करती है। ईश्वरीय कृपा तथा ईश्वरीय शक्ति उसके मन, शरीर तथा जीवन पर पूर्ण अधिकार कर लेती है। अब साधना तीव्र गति से चलती है।

आत्मार्पण के द्वारा भक्त सगुण ब्रह्म के साथ वैसे ही एक बन जाता है जैसे कि ज्ञान-मार्ग में वेदान्तिक साधक निराकार ब्रह्म से एक हो जाता है। ईश्वरीय कृपा अविद्या को विनष्ट कर डालती है।

साधक ऐसा कर्म कदापि न करे जिसे वह साधारण जनता के सामने कहते हुए लज्जा का अनुभव करे। यदि वह ऐसा कार्य करता है, तो उसकी आध्यात्मिक उन्नति में बाधा पहुँचेगी। यह शरीर तथा मन ईश्वर-सेवा के लिए समर्पित किया जाता है। अन्ततः उसका मन अन्तरात्मा में विलीन हो जाता है। साधक जीवन्मुक्त बन जाता है।

हे वीर साधक! जब आप ईश्वर से विमुख रहते हैं, उस दशा में भी वह आपसे प्रेम करता है। यदि आप श्रद्धा तथा भक्ति के साथ ईश्वर की ओर मडेंगे, तो वह कितना अधिक प्रेम आपसे करेगा। उसका प्रेम बड़ा विशाल है, महान् पर्वतों से भी अधिक विशाल। उसकी सहानुभूति बडी गहरी है, अथाह सागर से भी गम्भीर।

९. भक्तियोग-साधना का सारांश

अपने गुरु के उपदेशानुसार शिव, कृष्ण, राम, विष्णु, दत्तात्रेय, गायत्री अथवा शक्ति में से किसी एक को अपना इष्टदेव चुन लीजिए। अपनी अभिरुचि अथवा किसी अच्छे ज्योतिषी की सम्मति से भी आप किसी इष्टदेव को चुन सकते हैं। इष्टमन्त्र लीजिए-ॐ नमः शिवाय, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, ॐ श्री राम जय राम जय जय राम या ॐ नमो नारायणाय। ध्यान-गृह में अपने समक्ष इष्टदेव का चित्र भी रखिए। छह महीने तक चित्र पर त्राटक का अभ्यास कीजिए। सावधानीपूर्वक बिना पलक गिराये टकटकी लगा कर त्राटक कीजिए- ऐसा तब तक कीजिए, जब तक कि आँसू प्रवाहित न होने लगें।

भागवत, रामायण, नारदभक्तिसूत्र तथा शाण्डिल्यसूत्र का अध्ययन कीजिए। अयोध्या, मथुरा, पण्ढरपुर, नदिया में एक वर्ष तक निवास कीजिए। नवधा-भक्ति का क्रमशः अभ्यास कीजिए। गुरु-मन्त्र का सतत जप चौबीसों घण्टे कीजिए, तीन घण्टे सोइए। माधुर्य, सख्य, दास्य या वात्सल्य में से किसी एक भाव को चुन लीजिए। पूर्ण अशेष आत्मार्पण कीजिए। अपने हृदय के अन्तरतम से प्रार्थना कीजिए। प्रार्थना पर्वतों को चलायमान कर सकती है। प्रार्थना उस धाम में प्रवेश पा सकती है जहाँ प्रवेश करने की क्षमता बुद्धि में भी नहीं है।

एक निष्ठा-एक ही आदर्श के प्रति भक्ति रखिए। भक्ति अनन्य, अव्यभिचारिणी (विक्षेप रहित, एकाग्र) होनी चाहिए। शनैः शनैः अनुराग, प्रेम, प्रीति, विरह, भाव तथा महाभाव का विकास कीजिए। महाभाव में भक्त को शरीर तथा जगत् की चेतना नहीं रहती। वह ईश्वर में पूर्णतः लीन हो जाता है। अपरा भक्ति से भक्त परा या अभेद भक्ति में प्रवेश करता है। भक्त क्रम मुक्ति प्राप्त करता है। वह सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य मुक्ति को क्रमशः प्राप्त करता है।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते। (गीता १०/१०)

"मैं उसे बुद्धियोग प्रदान करता हूँ जिससे वह मुझे प्राप्त कर लेता है।"

निम्न मुक्ति का उपयोग कर लेने के बाद भक्त कैवल्य मोक्ष अथवा ज्ञानी की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि सच्चा साधक जो उत्साह से भरा है, वह दो या तीन वर्षों में ही ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है। सच्चा प्रयास कीजिए तथा परिणाम को देखिए।

गीता में वर्णित भगवान् कृष्ण के उपदेश- **"मच्चित्त", "युक्त"** तया **"मत्परः"** का अभ्यास कीजिए।

अध्याय १५: योग-साधना

१. योग-साधना : भूमिका

प्राचीन ऋषियों ने इस जगत् को माया का कार्य बताया है जो परमात्मा की अनिर्वचनीय शक्ति है। इस आवरण-शक्ति के चमत्कार द्वारा अखण्ड परमात्मा अनेकविध नाम-रूपों में प्रतिबिम्बित होने लगा है। जैसा कि गीता के चतुर्थ अध्याय के छठे श्लोक में वर्णित है. माया ही इस दैत एवं नानात्व से पूर्ण इस दृश्य सत्ता का निर्माण करती है। चैतन्य के हर केन्द्र को जो असीम से ही प्रसूत है, माया का अतिक्रमण कर परब्रह्म से एकता स्थापित करनी होगी।

माया सारी ऋणात्मक शक्तियों का योग है। यह नित्य सत्य वस्तु से विपरीत नित्य असत्य है। अविद्या, विक्षेप, मोह, राग, अहंकार, वैषम्य और विषय-परायणता ये माया के ही कुछ प्रधान रूप हैं जो मानवी जगत में व्यक्त होते हैं। योग का उद्देश्य उपर्युक्त वस्तुओं पर विजय प्राप्त करना है। नित्यानित्य वस्तु का सतत विवेक, परमात्मा के साथ अभेद भाव, सांसारिक वस्तुओं के साथ अनासक्ति, पूर्ण आत्म-निषेध तथा सक्रिय निःस्वार्थता-ये ही माया पर विजय प्राप्त करने के प्रधान साधन हैं। इनमें से किसी एक या एक से अधिक साधनों की दिशा में प्रगति प्राप्त करना ही ज्ञानयोग, भक्तियोग, राजयोग तथा निष्काम कर्मयोग का लक्ष्य है।

योग की प्रक्रिया पूर्णता को प्राप्त कराने वाली है, जो मनुष्य की मौलिक अवस्था है। आच्छादक मलों को दूर करना, निम्न कोशों के विषम स्पन्दनों को शान्त करना तथा पूर्ण समत्व की अवस्था स्थापित करना- ये सब योग-प्रणाली में सन्निहित हैं।

इन सारे उपर्युक्त घटकों को हम विस्तृत पैमाने पर सारी मानव-जाति के लिए लागू देख सकते हैं। आधुनिक युग अज्ञान से आच्छन्न है- अशान्ति, मोहासक्ति, स्वार्थ, विषय-सुख की तृष्णा, संघर्ष आदि का साम्राज्य है।

आधुनिक युग मशीन का युग है; अतः यह भौतिक शक्ति-प्रधान है। मनुष्य शक्ति-उत्पादन के लिए नये-नये यन्त्रों का निर्माण कर रहा है; परन्तु वह स्वयं अपने मन तथा इन्द्रियों को वश में नहीं रख सकता। यही कारण है कि विज्ञान के अनुसन्धानों का दुरुपयोग होने लगा है। योग-मार्ग ही इस संकटापन्न स्थिति के लिए एकमेव औषधि है। योगाभ्यास के द्वारा मनुष्य उन असाधारण शक्तियों को प्राप्त कर लेता है जिन्हें कोई भी यन्त्र पैदा नहीं कर सकता। साथ ही यम-नियम के कारण उन शक्तियों का दुरुपयोग भी असम्भव है।

योग की सारी विधियों के लिए यम तथा नियम आधार हैं। दगुणों का निषेध तथा कुछ सद्गुणों का विकास योग की पहली सीढ़ी है। राजयोग में इसे यम-नियम कहते हैं। ज्ञानयोग के लिए साधन-चतुष्टय की आवश्यकता है तथा श्रद्धा, सदाचार, आत्मार्पण, निष्कामता तथा त्याग-ये भक्तियोगी तथा कर्मयोगी दोनों के लिए आवश्यक हैं। अतः योग की प्रारम्भिक अवस्थाओं के अभ्यास से भी प्रेम, सहयोग, बन्धुत्व से स्पन्दित नव-जगत् का निर्माण हो सकता है।

मन की चंचलता योग-साधना में सबसे बड़ी बाधा है। मन स्वभावतः ही बहिर्मुखी है। यह सदा अस्थिर है। दृढ़तापूर्वक सांसारिक आसक्तियों से विमुख होना, अहंकार को निश्चयपूर्वक नष्ट करना, मन की विषय-वृत्तियों को सावधानीपूर्वक रोकना तथा मन को सदा एक विचार पर लगाये रखना- इन सभी साधनों के लिए मन पर दृढ़ नियन्त्रण तथा इसकी शक्तियों को लक्ष्य की ओर केन्द्रित करने की आवश्यकता है।

मानसिक वृत्तियों का सबसे बाह्य रूप भौतिक कर्म है। कर्म की पुनरावृत्ति से आदत का निर्माण होता है। कालान्तर में आदत ही मनुष्य के व्यक्तित्व का स्वभाव बन जाती है। मन पर आधिपत्य जमाने के लिए योग का विज्ञान क्रमिक साधनाओं का प्रतिपादन करता है। सर्वप्रथम स्थूल तथा सूक्ष्म तत्त्वों पर नियन्त्रण स्थापित करना होगा। यम सभी पापों को दूर कर सद्‌गुणों को विकसित करता है। नियम मनुष्य की आदतों पर नियन्त्रण लाता है तथा इससे साधक अपने आचरण पर अपना अधिकार जमा लेता है। साधक अपनी आदतों का गुलाम न हो कर, अपने आचरण पर नियन्त्रण ला कर संकल्प-शक्ति द्वारा नयी आदतों का निर्माण करता है। आसन के द्वारा विक्षेप - निरुद्देश्य गतियों पर नियन्त्रण होता है। प्राणायाम के द्वारा मन के विक्षेपों का दमन किया जाता है। विचारों का दमन कर लेने के बाद भी कामनाओं तथा तृष्णाओं के द्वारा मन अशान्ति लाया करता है। तब प्रत्याहार के द्वारा इन्द्रियों को विषयों से हटा लेते हैं। प्रत्याहार से धारणा को प्रशस्ति मिलती है। अन्तर्मुख मन को किसी एक विचार या मूर्ति पर एकाग्र करते हैं, जिसे लक्ष्य कहा जाता है। धारणा ही गम्भीर तथा अधिक देर तक रहने से ध्यान बन जाती है। ध्यान ही गम्भीर तथा अबाध हो जाने से समाधि को प्राप्त करता है। परमात्मा के साथ सुखमय योग को प्राप्त करते ही जन्म-मृत्यु के बन्धन टूट जाते हैं। योगी से ईश्वरीय शक्ति अबाध प्रवाहित होने लगती है। वह सर्वभूत हिते रताः" कार्य करता है तथा ईश्वरीय योजना की पूर्ति हेतु जीवन-यापन करता है।

२. योग-साधना के आठ अंग

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि - राजयोग के अष्टांग आठ सीढ़ी के समान हैं। इनका क्रमिक अभ्यास करना चाहिए। इनके अभ्यास से मन के मल विनष्ट हो जाते हैं तथा ज्ञान की ज्योति साधक के जीवन को आलोकित करती है। तब वह कैवल्य को प्राप्त कर लेता है।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह (लोभ न करना) ये यम हैं।

सारे यम का मूल अहिंसा है। अहिंसा के अभ्यास से अन्ततः जीवात्मा की एकता का साक्षात्कार, विश्व-प्रेम तथा अद्वैत-चैतन्य की प्राप्ति होती है। सत्य साधक के लिए सबसे महत्त्व का है। सत्य ईश्वर का प्रतीक है तथा अविचल सत्यानुराग के द्वारा ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। अस्तेय का अर्थ है चोरी करने की वृत्ति का पूर्ण विनाश। ईमानदारी से जो कुछ भी मिल जाये, उसी से साधक को सन्तुष्ट रहना चाहिए। वह दूसरों के धन पर नीति-विरुद्ध अधिकार तथा जीवन-यापन के अवैध साधनों का पूर्णतः त्याग करे। मन, वचन तथा कर्म में शुद्धता को लाना ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य के परिपालन के बिना योग या आध्यात्मिक उन्नति जरा भी सम्भव नहीं है। अपरिग्रह का अर्थ है लोभ से मुक्ति। साधक अपनी स्वल्प आवश्यकता से अधिक दूसरों का उपहार अथवा भेंट न ले। दूसरों पर बिना निर्भर हुए वह स्वतन्त्र रूप से रहे।

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान नियम हैं।

शौच दो प्रकार का है आन्तर तथा बाह्य। जिस तरह साबुन आदि से शरीर की सफाई करते हैं, उसी तरह जप, कीर्तन, प्रार्थना तथा ध्यान से मन की सफाई करते हैं। शरीर को सदा शुद्ध तथा स्वच्छ रखिए। उसे बुरे विचार, कामना तथा तृष्णा से मुक्त रखिए। सन्तोष से सुख, शान्ति तथा पूर्णता की प्राप्ति होती है। यदि सन्तोष नहीं है, तो मन सदा अशान्त रहेगा और साधना असम्भव हो जायेगी। तप शरीर तथा मन की तपस्या है। सर्दी-गरमी, अपमान, नुकसान, अत्याचार आदि को सहन करना तप है। अपने मन तथा इन्द्रियों को सदा शुद्ध तथा नियन्त्रण में रखिए। स्वाध्याय - सद्ग्रन्थों का अध्ययन मन को प्रेरित करता है तथा उसे उन्नत बनाता है। जो कुछ भी आप पढ़ें, उसे व्यवहार में लायें; तभी आप

स्थायी लाभ उठा सकते हैं। ईश्वर-प्रणिधान का अर्थ है ईश्वर की पूजा तथा अन्ततः आत्मार्पण। शुद्ध हृदय तथा निष्कलंक मन से उसकी उपासना कीजिए, अपने अहंकार को उसके चरणों में अर्पित कर डालिए। कर्तापन के अभिमान को नष्ट कीजिए। आप अद्वैत एकता का साक्षात्कार करेंगे।

आसन राजयोग का तीसरा अंग है। रोग-रहित स्वस्थ शरीर योग साधना के लिए आवश्यक है। सुन्दर स्वास्थ्य के बिना आप उपद्रवी इन्द्रियों तथा उत्पाती मन के साथ युद्ध नहीं कर सकते। आसनों के नियमित अभ्यास से शरीर स्वस्थ तथा मन शान्त रहता है और इससे आप प्रचुर शक्ति, बल-वीर्य प्राप्त करते हैं। आप बिना किसी शारीरिक थकावट के ही उग्र साधना कर सकेंगे।

पद्मासन, सिद्धासन तथा सुखासन-ये ध्यान के लिए उपयुक्त हैं। शीर्षासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, पश्चिमोत्तानासन, अर्द्धमत्स्येन्द्रासन, भुजंग, धनुर तथा शलभ आसन, त्रिकोणासन, पादहस्तासन, हलासन, मयूरासन-ये मुख्य हठयौगिक आसन हैं जिनसे अन्तर्बाह्य सर्वांगीण विकास होता है। बन्ध तथा मुद्रा आसन के सहायक हैं।

चौथा अंग है प्राणायाम। आप इसके द्वारा प्राण के रहस्य का ज्ञान करते हैं। इसके द्वारा मन साधारण अनुभव के स्तर का अतिक्रमण कर एकाग्रता की अवस्था से परे अतिचैतन्यावस्था को प्राप्त कर लेता है। योगी उन तत्त्वों का साक्षात्कार करता है जिन्हें साधारण चेतना नहीं ग्रहण करती। जब मन को अतिचैतन्यावस्था की ओर उठाया जाता है, तब वह उन्नत तथ्यों तथा ज्ञान को प्राप्त करने लगता है। प्राण-स्पन्दन पर नियन्त्रण के द्वारा इसी लक्ष्य को प्राप्त करते हैं।

भौतिक शरीर की नाड़ियों से हो कर जो संचरित होता है, वह स्थूल प्राण है। जो सूक्ष्म योग-नाड़ियों से हो कर संचरित होता है, वह सूक्ष्म प्राण है। श्वास स्थूल प्राण का ही बाह्य रूप है। बाह्य शरीर के नियन्त्रण से शरीर तथा मन के स्थूल एवं सूक्ष्म प्राण पर नियन्त्रण हो जाता है; अतः प्राणायाम का अभ्यास करते हैं। प्राण तथा मन को वशीभूत कर लेने पर चित्त की सारी वृत्तियाँ नियन्त्रित हो जाती हैं। तब आप अपने शरीर एवं मन के मालिक बन जाते हैं। तब आप आत्मा की अपरोक्षानुभूति कर अपने स्वरूप में स्थित हो जाते हैं।

सुखपूर्वक, भस्त्रिका, उज्जाई, शीतली, कपालभाति, प्लाविनी, भ्रामरी, मूर्च्छा तथा सूर्यभेद मुख्य प्राणायाम हैं।

अब पाँचवें अंग की बारी है। इन्द्रियों को विषयों से समेट लेना प्रत्याहार है। यम, नियम, आसन तथा प्राणायाम के अभ्यास से मन शुद्ध बन जाता है। इन्द्रियाँ शुद्ध मन में विलीन हो जाती है। मन अधिकाधिक शान्त बन जाता है। विषयों से सम्पर्क बनाये रखना तो इन्द्रियों का स्वभाव ही है। जब दृष्टि बहिर्मुखी रहती है, तो मन बाह्य गतिमान घटनाओं में ही लिप्त रहता है। प्रत्याहार के द्वारा बहिर्मुखी वृत्ति के रुक जाने पर मन किसी भी विषय-वृत्ति को धारण नहीं करता। यह अन्ततः अन्तरात्मा में ही विलीन हो जाता है।

प्रत्याहार को योग भी कहते हैं. क्योंकि यह योग-साधना का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। प्रथम चार अंगों से शरीर, मन तथा नाडियों की शुद्धि होती है। प्रत्याहार के साथ ही वास्तविक योग प्रारम्भ होता है। इसके बाद धारणा, ध्यान तथा समाधि की प्राप्ति होती है।

बाह्य या आन्तर किसी भी वस्तु पर मन को एकाग्र करना ही धारणा है। प्राणायाम के द्वारा प्राण को वश में कर, प्रत्याहार द्वारा इन्दियों को अधीन कर अब अपने मन को आत्मा पर स्थिर करना चाहिए। नये साधक पहले किसी बाह्य वस्तु पर या इष्टदेवता के रूप पर धारणा का अभ्यास करें। मन के अनुशासित हो जाने पर अपनी दृष्टि को अन्तर्मुखी कर शनैः शनैः आत्मा में विलीन कर डालिए।

नासिकाग्र, आज्ञाचक्र, सहस्रार (विशेषकर यह ज्ञान-योगियों के लिए). अनाहतचक्र (भक्ति-योगियों के लिए) या किसी भी चक्र पर धारणा का अभ्यास किया जा सकता है। ईश्वर की किसी मति या चित्र पर धारणा का अभ्यास किया जाता है। किसी बिन्दु या चिह्न पर धारणा कर सकते हैं।

अधिक देर तक रहने से धारणा ध्यान बन जाती है। यह ईश्वरीय विचार का तैलधारावत् प्रवाह है। ध्यान दो प्रकार का है- सगुण तथा निर्गुण। सगुण ध्यान में साधक ईश्वर के रूप पर ध्यान करता है। निर्गुण ध्यान में साधक अपनी आत्मा पर ही ध्यान करता है। सगुण ध्यान के बाद निर्गुण ध्यान लगने लगता है।

वही ध्यान जब लक्ष्य के साथ ही विलीन हो जाता है, तब समाधि कहलाता है। ध्याता तथा ध्येय एक बन जाते हैं। मन दिव्य रूप बन जाता है। ध्याता, ध्येय तथा ध्यान के विभेद विनष्ट हो जाते हैं। समाधि की अवस्था में साधक किसी बाह्य या आन्तर वस्तु की चेतना नहीं रखता। इसका सुख अनिर्वचनीय है। आपको स्वयं ही इसका अनुभव करना होगा। समाधि के विभिन्न क्रम हैं, जो अन्त में निर्विकल्प समाधि में परिसमाप्त होते हैं। यहीं सारी साधनाएँ समाप्त होती हैं। योगी परमात्मा से एक बन जाता है।

३. मानसिक शुद्धता : अनिवार्य

उपनिषदों में आत्मा को मन तथा वाणी से परे बताया गया है। अन्यत्र आप पायेंगे कि शुद्ध मन या बुद्धि के द्वारा आत्मा को पाया जा सकता है। मन दो प्रकार के हैं : शुद्ध मन तथा अशुद्ध मन। हम लोगों का मन साधारणतया अशुद्ध है। हमें तप, योग, प्राणायाम तथा साधन-चतुष्टय के द्वारा सभी मलों का निवारण करना होगा। तब गुरु के निकट जा कर उपनिषद पढ़ते है: श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन का अभ्यास करते है। आत्मा अशुद्ध मन की पहुँच से परे है, परन्तु इसे प्राप्त किया जा सकता है। जिसने तपश्चर्या की है, जो वैराग्य तथा षट्-सम्पद् से सम्पन्न है, जिसने धारणा तथा ध्यान का अभ्यास किया है, ऐसा विवेकी व्यक्ति इसे प्राप्त कर सकता है। अतः उपनिषदों के उपदेशों में कोई विरोधाभास नहीं है।

४. मन को रिक्त बनाने की राजयौगिक विधि

वृत्तियों को उठने ही न दीजिए। उन्हें तुरन्त ही भगा दीजिए। कुछ भी न सोचिए। जब कोई वृत्ति नहीं हो, तो इच्छा भी नहीं रहती। विषयों के संस्पर्श से ही कामना उत्पन्न होती है। वृत्तियाँ जब विषयों का साथ देती हैं, तब कामना उत्पन्न होती है। वृत्तियों के निरुद्ध होने पर कामनाएँ भी समाप्त हो जायेंगी। वृत्तियाँ तथा कामनाएँ सहभागी हैं। सतत उग्र साधना के द्वारा आप वृत्तियों के निरोध में सफल होंगे। सारी वृत्तियों को एक वृत्ति में बदल डालिए। यही सविकल्प समाधि है। यदि आप इस वृत्ति का भी परित्याग कर देंगे, तो आप निर्विकल्प समाधि में प्रवेश करेंगे। यह परम ज्ञान तथा सुख की अवस्था है।

"तस्यापि निरोधे सर्व निरोधान्निर्बीज समाधिः" (पातंजल योगसूत्र १/५१)।

यदि आपमें उत्साह है, यदि आप सच्चाईपूर्वक सतत प्रयास करते हैं, तो आप दो या तीन वर्ष के अन्दर निश्चय ही राजयोगी बन जायेंगे। मैं निश्चयपूर्वक यह वचन देता हूँ।

५. योग-साधना की आवश्यकता

आप अनावश्यक ही बन्धन को अधिक काल तक क्यों बनाये रखेंगे? आप इस समय ही अपने जन्माधिकार को क्यों नहीं प्राप्त करते? आप अपने बन्धन का इसी समय क्यों नहीं उच्छेदन करते? विलम्ब का अर्थ है अपने कष्टों को दीर्घ बनाना। आप किसी भी क्षण बन्धन को तोड़ सकते हैं। यह आपके वश की बात है। इसे अभी कीजिए। खड़े हो जाइए। कटिबद्ध बनिए। उग्रता तथा प्रसन्नतापूर्वक साधना कीजिए। अमर सुख प्राप्त कीजिए।

अनुशासन, तप, आत्म-संयम तथा ध्यान के द्वारा निम्न प्रकृति को उच्च प्रकृति का गुलाम बना डालिए। यही आपकी मुक्ति का समारम्भ है।

आपके अन्दर का ईश्वरत्व आपके चर्दिक की सभी वस्तुओं से अधिक शक्तिशाली है। अतः किसी भी वस्तु से भय न रखिए। अपनी अन्तरात्मा, अपने आन्तरिक दिव्य स्वरूप पर ही निर्भर रहिए। अन्तर्निरीक्षण के द्वारा मूल से शक्ति ग्रहण कीजिए।

संन्यास के बिना आप कदापि सुखी नहीं हो सकते। संन्यास के बिना आप मोक्ष प्राभि नहीं कर सकते। संन्यास के बिना आप आराम नहीं कर सकते। अतः सर्वस्व का संन्यास कर दीजिए। नित्य-सुख प्राप्त कीजिए। संन्यास को ही सर्वाधिक प्रधानता दीजिए।

अपना सुधार कीजिए। अपने चरित्र का निर्माण कीजिए। अपने हृदय को शुद्ध बनाइए। दिव्य सदगुणों का विकास कीजिए। दर्गुणों का दमन कीजिए। आपके अन्दर जितनी निम्न चीजें हैं, उन पर विजय प्राप्त कीजिए। उन सभी को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील बनिए जो शिष्ट तथा दिव्य हैं।

जब हृदय शुद्ध हो जायेगा, मन शान्त हो जायेगा, विचार तथा आवेग स्तब्ध हो जायेंगे, बहिर्मुखी इन्द्रियाँ नियन्त्रित हो जायेंगी, वासनाओं का क्षय हो जायेगा, तभी आप गम्भीर ध्यान के द्वारा आत्मा के दर्शन कर सकते हैं।

पूर्ण मुक्ति को प्राप्त करने के पाँच साधन हैं। इनमें ही परम सुख है। वे हैं: सत्संग, नित्यानित्य वस्तु का विवेक, वैराग्य, 'मैं कौन हूँ?' का विचार तथा ध्यान। ये ही स्वर्ग हैं। ये ही धर्म हैं। ये ही सर्वोच्च सुख हैं।

भद्र बनिए। इन्द्रियों का निग्रह कीजिए। उच्च मन के द्वारा निम्न मन का दमन कीजिए। तब दिव्य ज्योति का अवतरण होगा। तभी यह शरीर दिव्य ज्योति को ग्रहण करने में समर्थ होगा।

शान्तिपूर्वक बारम्बार ध्यान का अभ्यास कीजिए। आप शीघ्र ही निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त करेंगे।

आध्यात्मिक जीवन श्रमपूर्ण है। इसके लिए नित्य सावधानी तथा दीर्घ प्रयत्न की आवश्यकता है।

आपने अज्ञानवश स्वयमेव बन्दीगृह की दीवालों का निर्माण किया है। विवेक तथा 'मैं कौन हूँ?' के विचार से आप इन दीवालों को ध्वस्त कर सकते हैं।

दुःख आत्मा को शुद्ध बनाते हैं। वे स्थूल तत्त्वों, पापों तथा मलों को जला डालते हैं। ईश्वरत्व अधिकाधिक प्रकट होने लगता है। वे आन्तरिक बल प्रदान करते तथा संकल्प-शक्ति एवं तितिक्षा का विकास करते हैं। अतः कष्ट वास्तव में आशीर्वाद ही हैं।

ध्यान में प्राप्त प्रकाश की एक किरण भी आपके मार्ग को आलोकित करेगी। इससे आप प्रोत्साहन तथा आन्तरिक शक्ति प्राप्त करेंगे। आप अधिकाधिक साधन करने के लिए प्रेरित होंगे। ध्यान के अधिक गम्भीर होने पर तथा शरीर-चेतना से ऊपर उठने पर आप इस ज्योति-किरण का अनुभव करेंगे।

अपनी क्षमताओं को विकसित करने के लिए ध्यान तथा उपासना साधन हैं। इनसे आप चैतन्य के उन्नत स्तरों को प्राप्त करेंगे।

प्रसुप्त शक्तियों का जागरण ही जीवन है। दिव्य जीवन-यापन कीजिए। ध्यान, जप, कीर्तन तथा सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय के द्वारा उन्नत दिव्य विचारों को उत्पन्न कीजिए।

नित्य-जीवन की सरिता में स्नान कीजिए। उसी में डुबकी लगाइए। उसमें तैरिए। उसी में उतराइए। आनन्द उठाइए।

शरीर को सूर्य के प्रकाश में स्नान कराइए। आत्मा को ब्रह्म की ज्योति से परिस्नात कीजिए। आप सुन्दर स्वास्थ्य तथा नित्य-जीवन प्राप्त करेंगे।

आत्म-पुष्प की कली का प्रस्फुटन ही उपासना है। उपासना से नित्य-जीवन की प्राप्ति होती है।

आप संग्राम में लाखों व्यक्तियों को जीत सकते हैं; पर आप वास्तविक विजेता तो तभी होंगे, जब अपने मन पर विजय प्राप्त करेंगे।

जब तक आपकी इन्द्रियाँ संयमित नहीं होतीं, तब तक आपको तप, दम तथा प्रत्याहार का अभ्यास करना चाहिए।

विद्युत् लैम्प वस्त्रों से ढक जाने पर प्रकाश नहीं देता। ज्यों-ज्यों एक-एक कर वस्त्र को हटाते हैं, त्यों-त्यों अधिकाधिक प्रकाश बढ़ता जाता है। उसी प्रकार स्वयं-प्रकाश आत्मा भी पंचकोशों से आच्छादित है। शुद्धात्मा पर ध्यान के द्वारा ज्यों-ज्यों उन आवरणों को एक-एक कर हटाते जाते हैं, त्यों-त्यों स्वयं-प्रकाश आत्मा प्रकट होती जाती है।

शान्त मन से बैठ जाइए। शरीर तथा मन के ऊपर अपना प्रभुत्व स्थापित कीजिए। अपने हृदय के प्रकोष्ठ में गहरा गोता लगाइए। मौन के अगाध सागर में प्रवेश कीजिए। अशब्द आत्म-ध्वनि का श्रवण कीजिए।

सर्वप्रथम अपने हृदय को शुद्ध बनाइए। पुनः योग-निश्रयिणी पर स्थिरतापूर्वक साहस तथा निर्भीक उत्साह के साथ आगे बढ़ते जाइए। शीघ्रतापूर्वक बढ़िए। ऋतंभरा प्रज्ञा प्राप्त कीजिए। सीढ़ी की चोटी पर पहुँच जाइए जो ज्ञान का मन्दिर है से जहाँ धर्म अथवा अमृत की झीनी फुहारें पड़ती हैं। और धर्ममेघ समाधि

ईश्वरीय कृपा तथा चरित्र-बल की चट्टान के ऊपर आध्यात्मिक जीवन का निर्माण कीजिए। ईश्वर तथा उसके सनातन नियम की शरण में जाइए। इस पृथ्वी तथा स्वर्ग में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो आपकी प्रगति को रोक सके। आत्म-साक्षात्कार में सफलता निश्चित है। आपके लिए विफलता नहीं है। आपके मार्ग पर ज्योति है। सब-कुछ प्रकाशमय है।

६. योग-साधना का सारांश

पतंजलि महर्षि के योग-दर्शन का सावधानीपूर्वक अध्ययन कीजिए। यहाँ साधना का सूत्र-रूप में सारांश दिया गया है। पहले यम-नियम का अभ्यास कीजिए। शारीरिक तथा मानसिक ब्रह्मचर्य का पालन कीजिए। हर हालात में सत्य बोलिए। किसी को भी मन, वचन तथा कर्म से हानि न पहुँचाइए। लोभ तथा घृणा का परित्याग कीजिए। यही यम का अभ्यास है। सन्तुष्ट रहिए। शरीर तथा मन की शुद्धता रखिए। गीता के १७ वें अध्याय के १४ वें, १५ वें तथा १६ वें श्लोकों में वर्णित शरीर, मन तथा वाणी की तपस्या का अभ्यास कीजिए। समय-समय पर उपवास कीजिए। एकादशी के दिन उपवास कीजिए। अपने कर्मों के फल को ईश्वर पर अर्पित कर दीजिए। यही नियम का अभ्यास है। प्रातः चार बजे से सात बजे तक पद्म, सिद्ध, स्वस्तिक या सुखासन में से किसी भी एक आसन में बैठने का अभ्यास कीजिए। पूर्व या उत्तर की ओर मुख रखिए। शिर, गरदन तथा रीढ़ को एक-सीध में रखिए। अपने लिए अलग ध्यान-गृह रखिए। उसमें दूसरों को प्रवेश न करने दीजिए। अपनी आवश्यकताओं को कम कीजिए। सरल भोजन का आहार कीजिए। सादे वस्त्र पहनिए। दान दीजिए। साधु-संन्यासियों की सेवा कीजिए। सत्संग कीजिए। गरीब रोगी व्यक्तियों की सेवा कीजिए। दो वर्ष तक सरल प्राणायाम का अभ्यास कीजिए (जिसका वर्णन मेरी पुस्तक 'प्राणायाम-साधना' में दिया गया है)। इससे नाड़ी-शुद्धि होगी। इन्द्रियों को वश में कीजिए। व्यर्थ कामनाओं तथा कल्पनाओं को विनष्ट कीजिए। जब कामनाएँ उत्पन्न हों, तो उन्हें पूर्ण करने की कोशिश न कीजिए। यह महान् रहस्य है।

सारे विचार, कामना, कल्पना, तरंग, प्रवृत्ति, निम्न अशुभ संस्कार, अन्ध-विश्वास आदि को नष्ट कर डालिए। श्रीकृष्ण, भगवान् शिव या अन्य किसी देव को जो योगेश्वर हो, अपना इष्टदेव बनाइए। तीन वर्ष तक किसी योगी गुरु के पथ-प्रदर्शन में रहिए। चौबीसों घण्टे मन तथा इसकी वृत्तियों का निरीक्षण कीजिए। आसन पर बैठिए। श्री गणेश जी की प्रार्थना कीजिए तथा पुस्तक के इसी अध्याय में अन्यत्र वर्णित 'मन को रिक्त बनाने की राजयौगिक विधि' के अनुसार मन को निर्विचार बनाने का अभ्यास कीजिए।

७. योग-साधना की रूपरेखा

योग में सफलता के लिए यम अनिवार्य है। जीवन में सदाचार का पालन करना ही यम-नियम है। यम तथा नियम भगवान् जीसस के दश आदेश तथा भगवान् बुद्ध के अष्टांग-मार्ग के समान ही हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह-ये यम के घटक हैं। अन्तर्बाह्य शौच, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान ये नियम हैं। यम तथा नियम का अभ्यास मन के सभी मलों को दूर करेगा। वास्तव में यम-नियम योग-दर्शन का अधिष्ठान हैं।

अहिंसा सर्वोत्तम धर्म है। मन, वचन तथा कर्म से अहिंसा का पालन करना चाहिए। अहिंसा को ही सबसे प्रथम रखा गया है; क्योंकि यह अन्य नौ का मूल है। विश्व-बन्धुत्व का अभ्यास अहिंसा का अभ्यास ही है। जो अहिंसा का अभ्यास करता है, वह योग में शीघ्र सफलता को प्राप्त करेगा। साधक को परुष वाणी तथा क्रूर दृष्टि का भी प्रयोग नहीं करना चाहिए। उसे सबके प्रति शुभेच्छा रखनी चाहिए। उसे जीवन का आदर करना चाहिए। उसे सदा याद रखना चाहिए कि सभी भूतों में एक ही आत्मा का निवास है।

सत्य का स्थान दूसरा है। विचार शब्द के अनुकूल हो तथा शब्द कर्म के, यही सत्य है। निःस्वार्थ व्यक्ति ही इन सद्गुणों को प्राप्त कर सकता है। यदि सभी कार्यों की पृष्ठभूमि में शुद्ध भाव न हों, तो सत्य का उदय नहीं हो सकता। योगी की वाणी दूसरों के लिए वरदान-स्वरूप होनी चाहिए।

तब अस्तेय की बारी आती है। सच्चाईपूर्ण साधनों से जो भी आपको प्राप्त हो, उसी से आपको सन्तुष्ट होना चाहिए। कर्म का नियम अमोघ है। अपने प्रत्येक दुष्कर्म के लिए आपको कष्ट भोगना ही होगा। कर्म तथा उसकी प्रतिक्रिया समान

तथा प्रतिकूल होते हैं। धन-संग्रह करना भी वास्तव में चोरी ही है। समस्त जगत् का धन ईश्वर का ही है। आप इस धन के संरक्षक मात्र हैं। आपको अपने धन में सबको हिस्सा देना चाहिए तथा उसे दान में लगाना चाहिए।

चौथा है ब्रह्मचर्य का अभ्यास । आत्मिक जीवन व्यतीत करने के लिए ब्रह्मचर्य ही मूल है। काम, क्रोध, मद, लोभ, दम्भ, कृपणता आदि आन्तरिक शत्रुओं से युद्ध छेड़ने के लिए यह महान शस्त्र है। यह शाश्वत सुख तथा अबाध अक्षय आनन्द प्रदान करता है। यह प्रबल शक्ति, निर्मल मस्तिष्क, अचूक इच्छा-शक्ति, धारणा शक्ति, गम्भीर विचार-शक्ति प्रदान करता है। बुद्धि तथा

गम्भीर आन्तरिक जीवन की आवश्यकता है। उफनते हुए विचारों को शान्त कर दें। मन को शान्त तथा गम्भीर रखें। उन्नत आध्यात्मिक चैतन्य के प्रति स्वयं को अर्पित करें। ईश्वरीय सत्ता तथा ईश्वरीय पथ-प्रदर्शन का अनुभव करें। अपने मन को भगवान् के चरण-कमलों में लगा दें। शिश्वत् बनें। ईश्वर से खुल कर बातें करें। स्पष्ट बनें। अपने विचारों को न छिपायें। वह आपका अन्तर्यामी है। उससे अपने विचारों को कैसे छिपा सकते हैं। वह आपके सभी विचारों का निरीक्षण करता है। करुणा, ज्योति, शुद्धता, शक्ति, शान्ति तथा ज्ञान के लिए प्रार्थना करें। आप निश्चय ही

उन्हें प्राप्त करेंगे। योगी साधक को लालच नहीं करना चाहिए। वह किसी भी व्यक्ति से विलासपूर्ण उपहार न ग्रहण करे। उपहार ग्रहणकर्ता के मन पर प्रभाव डालते हैं। मन, वचन तथा कर्म से इन पाँच यमों का अभ्यास करना चाहिए। इनके अभ्यास से चरित्र-निर्माण होता है तथा आन्तरिक शुद्धता एवं शक्ति की वृद्धि होती है।

मनोनिग्रह में सफलता पाने के लिए दो वस्तुएँ आवश्यक हैं: अभ्यास तथा वैराग्य। आपको देखी हुई अथवा न देखी हुई वस्तुओं की कामना से मन को यथाशक्ति मुक्त रखना चाहिए। विषय-पदार्थों में दोष-दर्शन के द्वारा ही इस वैराग्य की प्राप्ति हो सकती है। राग का त्याग ही वैराग्य है। इहलौकिक तथा पारलौकिक विषय-सुख में विराग ही वैराग्य है। वैराग्य भी दो प्रकार का है : अपर-वैराग्य तथा पर-वैराग्य। विज्ञान भिक्षु इन वैराग्यों में इस प्रकार भेद दिखाते हैं: "जीवन की सभी सुखद वस्तुओं- चाहे वे इस लोक की हॉ अथवा परलोक की-के प्रति इस कारण वैराग्य होना कि उनके प्राप्त करने में कठिनाई है, उनके रक्षण में कष्ट है, उनके खो जाने में दुःख है तथा उनकी खोज अहंकार-भावना से खाली नहीं है, यह अपर-वैराग्य है। चैतन्य तथा विषय-पदार्थों के बीच स्पष्ट विवेक के आधार पर पर-वैराग्य की प्राप्ति होती है।"

वैराग्य में कई अवस्थाएँ हैं। सभी प्रकार के विषय-भोगों से उपरत होने का संकल्प प्रथम अवस्था है। द्वितीय अवस्था में कुछ विषय तो अपना आकर्षण खो बैठते हैं तथा साधक अन्य विषयों के आकर्षण को नष्ट करने का प्रयास करता है। तृतीय अवस्था में इन्द्रियाँ वश में आ जाती हैं; परन्तु विषय-सुख की धुँधली कामना मन में रह जाती है। चतुर्थ अवस्था में साधक बाह्य पदार्थों में अपनी सारी दिलचस्पी खो बैठता है। अन्तिम अवस्था में परम निष्कामता की प्राप्ति होती है। यही वैराग्य योगी को कैवल्य प्रदान करता है। इस अवस्था में योगी सर्वज्ञता आदि सभी सिद्धियों को भी त्याग देता है।

अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा ही मन की बहिर्मुखी गति को रोका जा सकता है। उदासीनता मात्र से उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती, अभ्यास की भी आवश्यकता है। सदा ईशा को याद करना भी अभ्यास है। मन को वश में करने के प्रसंग में भगवान् कृष्ण कहते है "इसलिए मनुष्य को चाहिए कि संकल्प से उत्पन्न होने वाली सारी कामनाओं को निःशेषता से त्याग कर और मन के द्वारा इन्दियों के समुदाय को सब ओर से ही अच्छी प्रकार वश में करके क्रमपूर्वक अभ्यास करता हआ उपरामता को प्राप्त हो तथा धैर्य-यरु बुद्धि द्वारा मन को परमात्मा में स्थित करके और कुछ भी चिन्तन न करे। चंचल मन जिन-जिन कारणों से सांसारिक पदार्थों में विचरता है. उनसे उसे रोक कर बारम्बार परमात्मा में ही निरोध करे" (गीता ६/२४, २५ और २६)।

कामना के बल से मन बाह्य पदार्थों की ओर आकृष्ट होता है। विषय-पदार्थों के दोष-दर्शन से उनके प्रति वैराग्य को उत्पन्न कर, मन को वश में ला कर उसे आत्मा में ही स्थिर कर देना चाहिए। इस योगाभ्यास से योगी का मन आत्मा में ही शान्ति प्राप्त करता है। एक ही तत्त्व के विषय में बारम्बार विचार को दुहराते रहना अभ्यास कहलाता है। सतत मनन तथा इच्छा-शक्ति के द्वारा चित्त को यह संकेत देना चाहिए कि वह बाह्य परिवर्तनशील वस्तुओं में सुख की खोज न करे। सुयोग की प्राप्ति के लिए आपको सावधानी बरतनी होगी। मन जब विषयों की ओर भागे, तो उसे उन विषयों के प्रति नयी दृष्टि रखना सिखाइए तथा अन्त में मन को वश में ले आइए।

जाग्रत अवस्था में मन का प्रधान स्वभाव विषयों का चिन्तन करना ही है। यह कभी भी खाली नहीं रह सकता। यह एक बार में एक ही विषय पर ध्यान देता है। यह सदा अपने विषयों को बदला करता है और यही कारण है कि यह सदा अशान्त रहता है। यह प्रबल तथा दुर्दम्य है। इस पर वश पाना वायु के समान ही दुष्कर है। यही कारण है कि पतंजलि महर्षि कहते हैं- "अभ्यास स्थिर, निरन्तर तथा दीर्घ काल तक पूर्ण निष्ठा के साथ करना चाहिए।" किसी भी अवस्था में आपको साधना में ढिलाई नहीं करनी चाहिए।

एक दिन में ही निग्रह नहीं होता। साहस तथा उत्साह के साथ निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है। योग में उन्नति क्रमशः होती है। बहुत से लोग कुछ समय बाद अभ्यास छोड़ देते हैं; क्योंकि उन्हें सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती। वे अधीर हो जाते हैं। वे थोड़ा करते तथा अधिक की आशा करते हैं। यह बुरा है। किसी प्रकार के अभ्यास को यदा-कदा अनियमित रूप से करते रहने से अभीष्ट फल की प्राप्ति नहीं होती। अपरोक्षानुभूति ही जीवन का लक्ष्य है। यद्यपि प्रारम्भ में अभ्यास कष्टकर होता है; परन्तु अन्त में उससे परम सुख की प्राप्ति होती है। भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं: "उस योगी को परम सुख की प्राप्ति होती है। जिसका मन शान्त है, जिसका रागात्मक स्वभाव वश में हो चुका है, जो निष्पाप है तथा जो ब्रह्म से एकीभाव को प्राप्त है" (गीता : ६/२७)।

"मन ही मनुष्य के बन्धन अथवा मुक्ति का कारण है। विषय-भोगों से लिप्त हो कर यह बन्धन का कारण बनता है तथा विषय से मुक्त हो कर यह मोक्ष को ले जाता है। अतः साधक को मन के विषयों को मिटा देना चाहिए। जब मन सभी विषय पदार्थों से विरत हो कर, हृदय की ज्योति में सीमित हो कर समाधि प्राप्त करता है, तब यही उसकी परम स्थिति है। मन के कार्यों को रोकना चाहिए, जब तक कि हृदय में इसका लय न हो जाये। यही ज्ञान है. अन्य सभी तो अज्ञान ही है।"

वस्तुओं के प्रति तृष्णा को कामना कहते हैं जो मन पर इस तरह अधिकार जमा लेती है कि मन आगे-पीछे कुछ भी नहीं देखता। मनुष्य जिस वस्तु के साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करता है, वह शीघ्र ही वही बन जाता है। प्रबल राग के कारण वह अन्य सभी वस्तुओं को भूल जाता है। कामना के वशीभूत हो मनुष्य सभी विषय-पदार्थों को सत्य समझ लेता है। जिस तरह नशे में मनुष्य ठीक-ठीक नहीं देखता, उसी तरह कामना के मद में चूर मनुष्य भ्रमित होता रहता है।

अविद्या से काम की उत्पत्ति होती है। राग, तृष्णा तथा चाह कामना के ही घटक हैं। अपनी कामनाओं को पूर्ण करने के लिए प्रयत्नशील न बनिए। अपनी कामनाओं को यथाशक्ति कम कीजिए। काम-तृप्ति के जलावन को हटा दीजिए, तब कामाग्नि स्वतः ही बुझ जायेगी। जिस भाँति घी को निकाल लेने पर घृतहीन प्रदीप बुझ जाता है, उसी भाँति तृप्ति के ईंधन को हटा लेने से कामना की अग्नि बुझ जाती है। यदि आसक्ति को नष्ट कर दिया गया, तो तृष्णा तथा कामना स्वतः ही विनष्ट हो जायेंगी।

अपने काम्य-पदार्थों को प्राप्त करने में मनुष्य बहुत से पापों को करता है तथा दूसरों को आघात भी पहुँचाता है। उसे अपने कर्मों के फल का भोग करना होता है; अतः उसे बारम्बार इस जन्म-मृत्यु के चक्र में भ्रमित होना पड़ता है। यदि आप अपनी आवश्यकताओं में एक वस्तु की वृद्धि कर देंगे, तो कामना दशगुनी बढ़ जाती है। जितना ही अधिक आप विषय-पदार्थों को रखेंगे, उतना ही अधिक ईश्वर से दूर रहेंगे। आपका मन सदा यही योजना बनाता रहेगा कि कैसे उस वस्तु को प्राप्त किया जाये, कैसे उसकी रक्षा की जाये। यदि प्राप्त वस्तु खो जाये। तो आपका मन अशान्त हो जाता है। विषयों के साथ चिन्ता, व्याकुलता आदि मानसिक संताप भी बढ़ते हैं।

मन के अत्याचार से स्वयं को मुक्त कीजिए। इसने चिरकाल से आपको निर्ममतापूर्वक पीड़ित किया है। आपने इसे इन्द्रिय-सुख में गर्क रखा है। अब इसके नियन्त्रण की बारी है। वीर तथा उत्साही बनिए। वृत्ति-निरोध का नित्य अभ्यास कीजिय प्रारम्भ में यह साधना कठिन रहेगी; परन्तु इसका फल महान् है। आप परम सुख प्रा करेंगे। अतः सच्चाई के साथ श्रमपूर्वक इसका अभ्यास कीजिए। सावधान रहिए। यदि आपकी कामना सच्ची है तथा आपका संकल्प दृढ़ है, तो कुछ भी आपके लिए असम्म नहीं है। आपके मार्ग में कुछ भी टिक नहीं सकता।

अपने मन की अवस्था तथा अपने भाव एवं आचार के द्वारा अपने पूर्व जन्म के कर्मों के स्वभाव को भली प्रकार समझ सकते हैं तथा आप शुभ कर्म, तप, अनुशासन एवं ध्यान के द्वारा उनके दष्परिणामों को निष्क्रिय बना सकते हैं। अनासक्तिमय जीवन बिताइए। सावधानीपूर्वक मन को अनुशासित कीजिए। रोग, क्लेश, दुःख एवं कठिनाइयों से कोई भी मुक्त नहीं है। आपको अपने दिव्य स्वभाव में प्रतिष्ठित होना होगा तभी आप जीवन की कठिनाइयों का सामना कर सकेंगे; तभी आप विषम स्पन्दनों से प्रभावित २ होंगे। प्रातःकाल में नियमित ध्यान के द्वारा आप सुख एवं शक्ति प्राप्त करेंगे। ध्यान का अभ्यास कीजिए। इस सुख तथा आनन्द का अनुभव कीजिए। शनैः-शनैः आप आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करेंगे। आप आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करेंगे।

८. योग-साधना का अभ्यास

अपने आदर्श पर नित्य-प्रति ध्यान कीजिए। उसी में जीवन यापन करने के लिए प्रयत्नशील बनिए।

दुर्गुणों को उखाड़ फेंकिए। अपने चरित्र का विश्लेषण कीजिए। अपनी क्षमताओं को विकसित कीजिए।

इन्द्रियों के दरवाजे को बन्द कर डालिए। अपने को शान्त कर, उफनते आवेगों का दमन कर तथा सारी कामनाओं एवं तृष्णाओं को कुचल कर मन को स्थिर एवं गम्भीर बना डालिए। ध्यान कीजिए। अब आप परमात्मा की महिमा तथा गरिमा का दर्शन करेंगे।

उनको क्षमा कर दीजिए जो आपकी आलोचना करते तथा आपकी निन्दा करते हैं। उनको हानि न पहुँचाइए जो आपको हानि पहुँचाते हैं। यदि कोई घृणावश आपकी हँसी उड़ाये, तो उसकी बात की परवाह न करते हुए प्रसन्नतापूर्वक उसको नमस्कार कीजिए।

निम्न प्रकृति की प्रवृत्तियों को स्थिरतापूर्वक वश में लाइए। शनैः-शनैः आप बल प्राप्त करेंगे। यदि आप विफल भी हों, तो यह आपकी विजय की ओर एक कदम आगे ही होगा। आप संकल्प-शक्ति का विकास करेंगे। संकल्प-शक्ति आपके चित्त में प्रवेश करेगी तथा सारी बुरी आदतों को विनष्ट कर डालेगी।

साधना के प्रारम्भ में आपको बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। आप प्रारम्भ में अपनी उन्नति का ज्ञान नहीं रखते, आप केवल अपनी विफलताओं का ही ज्ञान रखते हैं।

यदि वीरतापूर्वक साधना में लगे रहे. तो निश्चय ही आपको सफलता प्राप्त होगी। आप अनायास ही ध्यान लगाने लगेंगे। ध्यान स्वाभाविक हो जायेगा। सारे विघ्न दर हो जायेंगे। आप प्रबल संकल्प-शक्ति का विकास करेंगे। आपको हर कदम पर विजय मिलेगी। विफलता तथा निराशा आपके लिए अज्ञात रहेगी। साधना में बडी प्रगति होगी।

दिव्य विचारों को प्रश्रय देने से बुरे विचार विनष्ट हो जायेंगे। पोषण के अभाव से बग्रे विचार तथा वासनाएँ स्वतः ही नष्ट हो जायेंगे।

कामना-पूर्ति न करने से कामना भूखों मर जायेगी।

यदि आप काम्य वस्तुओं का उपभोग न करें, तो कामना विलीन हो जायेगी।

समाधि तथा कुण्डलिनी-जागरण की बातचीत न कीजिए। आप बड़ी-बड़ी चीजें बाद में करेंगे। पहले छोटी-छोटी वस्तु तो करिए। पहले यम-नियम का अभ्यास कीजिए। भला बनिए। भले कर्म कीजिए। प्रथम नैतिक पूर्णता प्राप्त कर लीजिए। दुर्गुणों का उन्मूलन कर पहले दिव्य गुणों का विकास कीजिए। इन्द्रियों का दमन कर हृदय को शुद्ध बनाइए। यदि आपने प्रथम सोपान का ही अभ्यास नहीं किया, तो समाधि आदि बड़ी-बड़ी बातों से क्या लाभ ?

हर वस्तु में संयमी बनिए। भय, क्रोध, काम तथा गलत निर्णय से बचिए। हर हालत में अपने जीवन की बाजी लगा कर भी अपने संकल्पों के पक्के बनिए।

अपने आध्यात्मिक संकल्पों के पालन से आप सच्चा सुख प्राप्त करेंगे। शुद्ध हृदय के साथ आवेगों को अपने वश में रख कर भी अपने संकल्पों का पालन कीजिए।

यदि आपको आम बहुत पसन्द हैं, यदि आपको आम खाने की बड़ी तृष्णा है, यदि आम आपके समक्ष ही हैं और आप उसे खाने के लिए बिलकुल तैयार हैं, तो उसे आप न खाइए। विवेक के द्वारा कामना को वश में लाइए। जिन-जिन वस्तुओं को आप बहुत चाहते हैं, उनके साथ ऐसा ही अभ्यास कीजिए। शनैः शनैः आप अपनी जिह्वा पर नियन्त्रण स्थापित कर सकेंगे।

विफलताओं से भय न खाइए। उत्साह तथा द्विगुण शक्ति से वीरतापूर्वक अग्रसर हर विफलता आपकी भावी सफलता के बीज बोती है। खडे हो जाइए। अपनी होते जाइए यदि आप किसी बुरे कर्म को अपनी इच्छा के विरुद्ध भी कर डालते हैं, तो इसका अर्थ है कि आपकी दर्बल इच्छा-शक्ति भूत की प्रबल आदत के वशीभूत हो जाती है। नित्य-प्रति अधिक सत्कर्म कीजिए। आप प्रबल इच्छा-शक्ति प्राप्त करेंगे। तब आप बो कर्मों की पुनरावृत्ति न करेंगे।

कामना, चिड़चिड़ापन, क्रोध, मलिनता, बरे आवेग आदि को वश में करने के लिए तथा शम, मन की दक्षता एवं मानापमान, लाभालाभ में समबुद्धि के विकास के लिए प्रबल इच्छा-शक्ति की आवश्यकता है।

९. व्यावहारिक यौगिक उपदेश

सद्गुण में ही योग का मूल है। योग में सफलता के लिए नैतिक अनुशासन बहुत ही आवश्यक है। जीवन में सदाचार का अभ्यास ही नैतिक अनुशासन है।

हे मूर्ख मनुष्यो ! आप क्यों व्यर्थ ही संसार के बाह्य विषयों में सुख खोज रहे हैं। आपको मन की शान्ति नहीं है। आपकी कामनाएँ कभी भी पूर्णतः तृप्त नहीं होतीं। आप असीम धन प्राप्त कर सकते हैं; सुन्दर बच्चे उत्पन्न कर सकते हैं; पद, सम्मान, यश, शक्ति, प्रचारादि से सम्पन्न हो सकते हैं- फिर भी आपका मन अशान्त ही रहता है। आपको ऐसा भान होता है कि अभी भी आपको कुछ चाहिए। आपको पूर्णता का अनुभव नहीं है। इस समय से यह कभी मत भूलिए कि पूर्णता का भाव तथा नित्यतृप्ति ईश्वर में ही-संयम, शुद्धता, धारणा, ध्यान तथा योगाभ्यास के द्वारा ईश्वर के साक्षात्कार से ही सम्भव है।

सर्वत्र अशान्ति है। स्वार्थ, लोभ, ईर्ष्या तथा काम हर हृदय में उपद्रव मचा रहे हैं। बिगुल बजता है तथा सैनिक युद्ध-क्षेत्र में संग्राम के लिए उतर पड़ते हैं। इन खतरनाक युद्धों के साथ-साथ शान्ति का आन्दोलन भी चल रहा है जिसका उद्देश्य है अविद्या का उन्मूलन कर ज्ञान को प्रशस्त करना।

आज जगत् की सबसे बड़ी आवश्यकता है प्रेम का सन्देश। पहले अपने हृदय में प्रेम की ज्योति जलाइए। सभी से प्रेम कीजिए। अपने प्रेम में सभी को सन्निहित कीजिए। शुद्ध प्रेम के द्वारा ही राष्ट्रों का संगठन हो सकता है। शुद्ध प्रेम के द्वारा ही विश्व-युद्धों का अन्त किया जा सकता है। राष्ट्रसंघ से हम अधिक अपेक्षा नहीं कर सकते। प्रेम ही वह रहस्यमय सूत्र है जो सभी हृदयों को संयोजित करता है। हर कर्म को शुद्ध प्रेम से परिप्लावित कीजिए। धूर्तता, लोभ, संकीर्णता तथा स्वार्थ को नष्ट कीजिए। विषैली गैस के द्वारा दूसरों के जीवन का हरण करना अत्यन्त ही नृशंस कर्म है। यह महान् अपराध है जो वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशालाओं में ऐसी गैसों का निर्माण करते हैं, वे अपने निष्ठर कर्मों के दष्परिणाम से नहीं बच सकते। न्याय के दिन को न भूलिए। हे नश्वर मानव! आप शक्ति, राज्य तथा धन के पीछे पागल हो रहे हैं। ईश्वर से आप क्या कहेंगे? शुद्ध अन्तःकरण तथा शुद्ध प्रेम का विकास कीजिए। आप निश्चय ही ईश्वर के राज्य में प्रवेश करेंगे।

कामना ही शान्ति की वास्तविक शत्रु है। कामनाओं से अशान्ति उसी तरह परिपुष्ट होती है जिस तरह तेल से अग्नि। योगवासिष्ठ में वसिष्ठ जी अपने शिष्य राजकुमार भगवान् गम से कहते हैं, "हे विद्वानों में श्रेष्ठ राम जी ! वासना-क्षय, ज्ञान तथा मनोनाश इन तीनों का अभ्यास यदि एक ही साथ पर्याप्त समय तक किया जाये, तो अभीष्ट फल की प्राप्ति होगी।" भगवान् कृष्ण भी अपने शिष्य अर्जुन से कहते हैं, "हे अर्जुन ! रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है। यह ही महाभक्षी तथा महापापी है। इस विषय में इसको ही तू वैरी जान ! जैसे धुएँ से अग्नि तथा मैल से दर्पण ढक जाता है तथा जेर जैसे गर्भ से ढका हुआ है, वैसे ही काम के द्वारा यह ज्ञान ढका है और हे अर्जुन ! इस अग्नि-सदृश, न पूर्ण होने वाले काम-रूप ज्ञानियों के नित्य वैरी से ज्ञान ढका हुआ है। इसलिए हे अर्जुन ! तू पहले इन्द्रियों को वश में करके ज्ञान और विज्ञान के नाश करने वाले इस पापी काम को निश्चयपूर्वक मार" (गीता : ३/३७ से ४१)।

'पंचदशी' तथा 'जीवन्मुक्ति विवेक' के प्रख्यात लेखक स्वामी विद्यारण्य सरस्वती कहते हैं : "जब तक उन तीनों (वासना-क्षय, ज्ञान तथा मनोनाश) का बारम्बार अभ्यास न किया जाये, तब तक सैकड़ों वर्षों के अनन्तर भी जीवन्मुक्ति की अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती।" जब मन विलीन हो जाता है, तब बाह्य संवेदन नहीं रहते, तब सुप्त कामना विलीन हो जाती है। सुप्त कामना के विलीन होने पर मन के कार्य के लिए कोई कारण नहीं रह जाता; काम, क्रोध आदि वृत्तियाँ नहीं उठीं। तब मन भी विलीन हो जाता है। मन के विनष्ट होने पर ज्ञान का उदय होता है।

हिन्दू-शास्त्र कहते हैं कि मनुष्य के लिए मन ही बन्धन तथा मुक्ति का कारण है। जैसा आप सोचते हैं. वैसा ही आप बन जाते हैं। सोचिए, आप हाईकोर्ट के जज हैं और आप जज बन जायेंगे। सोचिए, आप जगत् के सम्राट् हैं और आप सम्राट्

बन जायेंगे। सोचिए, आप शिक्षक हैं और आप शिक्षक बन जायेंगे। सोचिए, आप दुर्बल तथा गरीब हैं और आप दबेल तथा गरीब बन जायेंगे। सोचिए, आप योगी हैं और आप योगी बन जायेंगे। सोचिए, आप एक सच्चरित्र सन्त हैं, तो आप सन्त बन जायेंगे। सोचिए, आप ईश्वर, आत्मा या ब्रह्म हैं, तो आप वही बन जायेंगे। यह समस्त जगत् इस महान् नियम मे संचालित है।

सदा ठीक-ठीक विचारिए तथा ठीक-ठीक कर्म कीजिए। कभी भी दूसरों के अधिकार को हस्तगत करने का प्रयास न कीजिए। कभी भी अपने पडोसी से ईर्ष्यां कीजिए। उन्नत विचार रखिए। "जो कुछ मैं करता हूँ, उसमें सफलता प्राप्त होगी ही." ऐसा संकल्प कर लीजिए। आप सब अपने सभी प्रयासों में अवश्य सफल बनेंगे। सफलता आपकी ही है। आपको विफलता नहीं होगी। यही महान् रहस्य है। इस रहस्य पर नित्य-प्रति ध्यान कीजिए और आनन्द का आत्मानन्द भोगिए।

विष्णुपुराण में आप पायेंगे, "यदि मूढ़ मनुष्य शरीर से प्रेम करता है, वह वास्तव में मांस, रुधिर, पीव, मल, मूत्र, मज्जा, हाड़ आदि से अथवा नरक से ही प्रेम कर रहा है। जो व्यक्ति अपने शरीर की दर्गन्ध से विरक्त नहीं हुआ तो उसे वैराग्य के लिए अन्य तकों से क्या लाभ?"

यह सुविज्ञात तथ्य है कि भोग से कामना की तृप्ति नहीं होती, प्रत्युत् यह कामना को प्रदीप्त कर मनुष्य को अधिकाधिक अशान्त बनाता है। सांसारिक भोगों की तृष्णा ही सारे मानवी कष्टों तथा विपत्तियों की मूल है। जितना ही अधिक आप इन विषय-भोगों के पीछे पड़ेंगे, उतना ही दुःखी आप बनेंगे। कामनाएँ बढ़ती जायेंगी। जब तक विषयों के लिए तृष्णा है, तब तक आप कभी भी सुखी नहीं हो सकते।

पूर्ण निष्काम बनना बड़ा कठिन है। जीवन्मुक्त अथवा पूर्ण योगी ही कामना के कलंक से पूर्णतः मुक्त हो सकता है; क्योंकि उसने अपने मन को पूर्णतः विनष्ट कर दिया है तथा वह अपनी अन्तरात्मा में परम सुख का उपभोग कर रहा है। जो दिव्य आनन्द-सागर में निमग्न है, उसमें भला कामना क्योंकर उत्पन्न हो सकती है?

आध्यात्मिक मार्ग के साधक को शुभ कामनाएँ रखनी चाहिए। उसे सत्कर्म करने चाहिए। उसे मुमुक्षुत्व की प्रबल कामना का विकास करना चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वह नियमित एवं क्रमिक रूप से धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय करे। वह ज्ञानियों की सत्संगति करे। वह सदाचार, सद्विचार तथा सत्कर्म का अभ्यास करे। वह नियमित ध्यान का अभ्यास करे। शनैः-शनैः सारी बुरी कामनाएँ तथा विषय-सम्बन्धी प्राचीन तृष्णाएँ विलीन हो जायेंगी। हे सौम्य ! पूर्ण सन्तोषमय जीवन बिताइए। सन्तोष की शीतल धारा शीघ्र ही कामाग्नि को शान्त कर देगी। सन्तोष प्रधान प्रहरी है जो शान्ति तथा ईश्वर के साम्राज्य के ऊपर पहरा देता है।

पुरानी दबी कामनाएँ बारम्बार हठपूर्वक आया करती हैं। कामना अपना अधिकार बताती है- "हे कृतघ्न नर ! तुमने अब तक अपने मन में मुझे आश्रय दिया। तुमने मेरे सहारे ही संसार के बहुत से विषयों का उपभोग किया। यदि भोजन-पान के लिए कामना न हो, तो तुम किस तरह उनसे आनन्द उठा सकते हो ? अब तुम मेरे प्रति इतना निष्ठर क्यों हो गये। अपने मन के इस धाम में निवास करने का मुझे भी अधिकार है। करो, जो कुछ तुम्हें करना हो।" परन्तु आपको इन धमकियों से जरा भी हतोत्साह नहीं होना चाहिए। सभी कामनाएँ ध्यान तथा योग से क्षीण हो जायेंगी। अन्ततः वे सभी विनष्ट हो जायेंगी।

सबल मन दुर्बल मन को प्रभावित करता है। मन स्थूल शरीर पर प्रभाव डालता है। मन पदार्थों के ऊपर प्रभाव डालता है। मन बन्धन लाता है। मन मुक्ति प्रदान करता है। मन ही शैतान है। मन ही सर्वोत्तम मित्र है। मन ही आपका गुरु है।

आपको अपने मन को पालतू बनाना चाहिए। आपको अपने मन को अनुशासित करना चाहिए। आपको अपने मन को वशीभूत करना चाहिए। यही तो आपको करना है।

अपनी भावनाओं तथा भावुकताओं का अध्ययन कीजिए। उनका विश्लेषण कीजिए। इन भावनाओं से तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित न कीजिए। मूक साक्षी बने रहिए। इन भावनाओं तथा आवेगों से सम्बन्ध स्थापित करना ही बन्धन एवं दुःख का कारण है।

मन में काम का ही विकार क्रोध है। आत्मा में कोई विकार नहीं है। सांसारिक व्यक्ति क्रोध से तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कर दयनीय बन जाता है। यही अज्ञान है। उन्नति के लिए शरीर तथा मन आपके यन्त्र हैं। शरीर तथा मन का सदुपयोग कर असीम 'मैं' के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित कीजिए। आप इस शरीर तथा मन-रूपी इंजन के चालक हैं। हे सौम्य ! अपने जन्माधिकार को प्राप्त कर मुक्त हो जाइए। इस दुष्ट मन की चाल को समझिए। इसने आपके साथ बहुत खेल खेला है। इसके ऊपर पूर्ण अधिकार प्राप्त कीजिए। आप योगाभ्यास के द्वारा सुगमतया ऐसा कर सकते हैं।

ज्यों-ही मन में वृत्तियाँ उठें, त्यों-ही उनका दमन कीजिए। यदि ऐसा करना कठिन जान पड़े तो उदासीन बन जाइए। उनकी परवाह न कीजिए। उनको स्वेच्छानुसार चलने दीजिए। वे स्वतः विनष्ट हो जायेंगी। अथवा कभी-कभी विचारों का दमन करते जाइए। जब आप ऐसा करने से थक जायें, तो उदासीन बन जाइए। यह विधि और भी अधिक आसान है। यदि किसी बन्दर को खम्भे से बाँध दिया जाये, तो वह और भी अधिक उपद्रवी बन जाता है और यदि उसे भटकने दिया जाये, तो वह उतना अधिक उपद्रवी नहीं रहता। ठीक उसी तरह यदि आप मन को किसी बिन्दु पर एकाग्र करना चाहेंगे, तो वह अधिक उपद्रवी बन जायेगा। यदि एक बिन्दु पर मन को स्थिर करना कठिन मालूम पड़े, तो उसे ढीला छोड़ दीजिए; मन से युद्ध न कीजिए। वह शीघ्र ही थक जायेगा और आपके आदेश पर चलने के लिए तैयार हो जायेगा। अब आप उसको आसानी से वश में कर सकते हैं।

मन पर विजय प्राप्त करने के प्रयास में यदि आपको विफलता मिले, तो हतोत्साह न होइए। हरक्यूल्स तथा दैत्य के बीच युद्ध को याद कीजिए। यात्रा करते समय हरक्यूल्स को रास्ते में एक दैत्य मिला जिसे प्रकृति की ऐसी देन थी कि जब भी वह पृथ्वी का स्पर्श करता था, वह अपने से दशगुना शक्तिशाली बन जाता था। इस घटना को याद रखने से आप आन्तरिक शक्ति तथा साहस प्राप्त करेंगे। आपको निश्चय ही सफलता प्राप्त होगी।

इसका साक्षात्कार कीजिए कि आप न तो शरीर हैं और न मन ही; आपका कभी जन्म नहीं हुआ और न कभी आप मरने वाले ही हैं। इस जगत् में कोई भी वस्तु आपको नुकसान नहीं पहुँचा सकती। आप सूर्य हैं जिसके चारों ओर सारा जगत् परिभ्रमित होता है। सारा ज्ञान हृदय-प्रकोष्ठ में निहित है। कुंजी खोज निकालिए तथा ज्ञान के द्वार खोलिए। योग ही कुंजी है। आप अबाध शान्ति, परम आत्म-संयम तथा प्रबल संकल्प-शक्ति प्राप्त करेंगे।

खाने-पीने, मौज उड़ाने की नीति का परित्याग कीजिए। सदा ऊपर तथा आगे की ओर दृष्टि बनाये रखिए। उसके अनुसार जीवन-यापन कीजिए। आप किसी भी व्यक्ति के समान महान् बन सकते हैं। लघुता की भावना का परित्याग कीजिए। गुरुता की भावना का भी परित्याग कीजिए। लघुता की भावना से आपको चिन्ता होगी। गुरुता की भावना से आपमें अभिमान बढ़ेगा। अपने हृदय के अन्तरतम प्रकोष्ठ में नित्य-ज्योति को जलाइए। दिव्य ज्योति को स्थिर जलने दीजिए। तन-मन से आध्यात्मिक साधना में संलग्न हो जाइए। एक मिनट का भी अपव्यय न कीजिए। अपनी साधना में नियमित तथा क्रमिक बनिए। जिस तरह सेनापति अपनी सेना को संगठित करता है, उसी तरह अपनी समस्त शक्ति को संग्राम-क्षेत्र में उतारिए। सारी विपत्ति शीघ्र ही घुल जायेगी। आप सर्वत्र एकता का भान करेंगे।

नित्य-प्रति प्रातः समय अन्तर्निरीक्षण कीजिए तथा अपने हृदय के कोने-कोने को छान डालिए। मन बड़ा ही कूटनीतिज्ञ तथा धूर्त है। अहंकार बहुत-सी कामनाओं को गुप्त रूप से तृप्त करने के लिए छिपाये रखेगा। आपके मन में बहुत-सी कामनाएँ छिपी रहेंगी। उनका पता लगाना बड़ा कठिन है। जो साधक विद्वत्ता अथवा सिद्धियों के कारण घमण्ड से फूले हुए हैं, वे उनका पता नहीं लगा सकते। वे स्वयं के महान् योगी होने का स्वाँग रचते, जगत् के विभिन्न भागों में भाषण देते तथा महिला शिष्य बनाते हैं। साथ ही यह भी जान लेना चाहिए कि उनके भाषण श्रोताओं के मन पर गहरा प्रभाव नहीं डालते। गुप्त कामनाएँ अवसर पा कर आक्रमण कर बैठती है तथा साधक के सभी सद्गुणा तथा दिव्य विचारों को नष्ट कर डालती है। जिनकी बुद्धि सूक्ष्म है, जो सदा ईश्वर का स्मरण करते हैं, जिनमें मुमुक्षुत्व है, जो नित्य आत्म-निरीक्षण, मनन तथा ध्यान का अभ्यास करते हैं, वे ही इन सूक्ष्म कामनाओ को पहचान सकते हैं। जो सभी कामनाओं से मुक्त है, वह शाश्वत शान्ति प्राप्त करता है। जितनी ही कम कामनाएँ होंगीं, उतना ही अधिक आपको सुख प्राप्त होगा। वह निष्काम व्यक्ति जो एक कौपीन तथा एक कम्बल ले कर विचरण करता है, निश्चय ही तीनों लोकों में सबसे अधिक सुखी है।

स्वार्थ निम्न मन का स्वभाव है। यह राग-युक्त मन की वृत्ति है। यह अविवेक से उत्पन्न है। यह योगाभ्यास की सबसे बड़ी बाधा है। यह जीवन का अभिशाप है। यह हृदय को संकीर्ण बनाता तथा भेद-भाव की वृद्धि करता है। स्वार्थ के साथ-साथ अभिमान, दम्भ, मद, कृपणता, धूर्तता, मिथ्याचार तथा मात्सर्य आदि दुर्गुण भी रहते हैं।

स्वार्थ को कैसे निर्मूल किया जाये? इसका उत्तर सरल है। किसी-न-किसी प्रकार की निष्काम सेवा, उदारता, निष्कामता, पूर्णता, दानशीलता, करुणा, विश्व-प्रेम आदि का अर्जन-इनके अभ्यास से स्वार्थ को दूर किया जा सकता है।

प्रिय अमर आत्मन् ! मौन-व्रत का पालन कीजिए। मन को सदा लगाये रखिए। किसी प्रिय आसन पर बैठ कर नियमित ध्यान कीजिए। ईश्वर-नाम का गायन कीजिए। माला फेरिए। स्वाध्याय कीजिए। ब्रह्मचर्य का पालन कीजिए अथवा अधिकाधिक संयमी बनिए। प्रतिदिन प्रातःकाल बादाम तथा मिश्री का सेवन कीजिए। चिकित्सकों की राय न लीजिए। रोग की चिन्ता न कीजिए। मन को रोग से अलग रखिए। प्रसन्न रहिए। मुस्कराइए, हँसिए, भाव के साथ नृत्य कीजिए। यही जीवन का लक्ष्य है। उत्साह एवं धैर्य के साथ अनवरत दीर्घकालीन अभ्यास के द्वारा आपने इसे प्राप्त किया है। आप जीवन्मुक्त बन गये हैं। हे सौम्य ! आपकी जय हो! आपकी अनेकानेक बार जय हो !

१०. आन्तर यौगिक अनुशासन

(१)

मन, इन्द्रिय तथा भौतिक शरीर का अनुशासन ही योग है। योग भीतर की सूक्ष्म शक्तियों का संघटन एवं नियन्त्रण में सहायता प्रदान करता है। योग पूर्णता, शान्ति तथा अमर सुख प्रदान करता है। योग आपके व्यापार तथा दैनिक जीवन में सहायता दे सकता है। योगाभ्यास से आपके मन में सदा शान्ति रहेगी। आपकी नींद शान्तिपूर्ण होगी। आपका स्वास्थ्य सुन्दर रहेगा। आपकी शक्ति बढ़ेगी। अल्प काल में ही आप बहुत अधिक कार्य कर सकेंगे। आपको जीवन के हर क्षेत्र में सफलता मिलेगी। योग आपमे नव-शक्ति, नव-उत्साह, विश्वास एवं आत्म-बल भरेगा। योग के द्वारा आप मन, वासना, आवेग, जिह्वा इत्यादि पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त कर सकते हैं। मन तथा शरीर आपके अधीन रहेंगे।

ईश्वर को प्राप्त करना ही योगानुशासन की पराकाष्ठा है। अहंकार के विनष्ट होने के पश्चात् मनुष्य में पूर्ण स्वतन्त्रता आ जाती है तथा वह सारे दैवी सद्गुणों से सम्पन्न हो जाता है। वह अमर आत्मा का उपभोग करता है।

योगी, ज्ञानी तथा भक्त सभी को तितिक्षा का उपार्जन करना चाहिए। योग के सफल अभ्यास के लिए साधक को बहुत-सी विघ्न-बाधाओं का सामना करना पड़ेगा। तितिक्षा से इच्छा-शक्ति बढ़ती है। यही कारण है कि भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "है कुन्ती-पुत्र ! सर्दी-गरमी और सुख-दुःख को देने वाले इन्द्रिय और विषयों के संयोग क्षणभंगुर और अनित्य हैं। इसलिए, हे भरतवंशी अर्जुन ! उसको तू सहन कर, क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ, दुःख-सुख को समान समझने वाले जिस धीर पुरुष को यह इन्द्रियों के विषय व्याकुल नहीं कर सकते, वह मोक्ष का अधिकारी होता है" (गीता : २/१४, १५)।

यम एवं नियम में परिपूर्णता की प्राप्ति ही योगी का अन्तिम लक्ष्य नहीं है। यह तो लक्ष्य की प्राप्ति की साधना मात्र है। फिर भी बौद्धिक ख्याति प्राप्त करना आसान है, परन्तु यम-नियम में संस्थित होना बहुत ही कठिन है। सत्य का साक्षात्कार तो वही करेगा जिसका हृदय शुद्ध तथा निर्मल है।

आर्जव, सच्चाई, करुणा, नम्रता, अहिंसा, निःस्वार्थता, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, निरभिमानता तथा विश्व-प्रेम-ये नैतिक जीवन के सारांश हैं।

योग के साधक को अधिक सम्पत्ति नहीं रखनी चाहिए; क्योंकि वह प्रलोभनों में जा फँसेगा। शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए वह कुछ रुपये रख सकता है। आर्थिक स्वतन्त्रता उसके मन को चिन्ताओं से मुक्त रखेगी और उसे अबाध रूप से साधना करने में समर्थ बनायेगी।

योगाभ्यासी को मिताहारी होना चाहिए। सुस्ती, आराम, आलस्य तथा अधिक नींद को दूर रखना चाहिए। उसे मौन तथा समय-समय पर उपवास का व्रत रखना चाहिए जिससे स्वास्थ्य अच्छा रहे। उसे अच्छी आदतों का अभ्यास करना चाहिए। उसे विचार, विवेक तथा चिन्तन के द्वारा सांसारिक इच्छाओं का दमन करना चाहिए। अपने मन को उसे इस तरह फटकारना चाहिए, "हे मन! मैं तुम्हारी चालों को जानता हूँ। मुझमें अब विवेक और वैराग्य है। अब अपनी चाले न चलो। मैंने बहुत-सी सीख ली है। अज्ञान के कारण ही मनुष्य शाश्वत सुख को छोड़ क्षणिक लाभों के पीछे परेशान रहता है। मैं इन विषय-सुखों को नहीं चाहता। मेरे लिए तो ये वमन किये हुए पदार्थ की तरह है। मैं योग के अमर फल को प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध है। शाश्वत शान्ति, असीम सुख तथा परमानन्द ही योग के अमर फल है।

अबाध ध्यान करने के लिए योग विषय-सुखों से पूर्ण अनासक्ति की शिक्षा देता है। हृदय के बाहर की ज्योति अथवा जो भी वस्तु आपके लिए सुखद हो, उस पर आप ध्यान कर सकते है। योग के सतत अभ्यास के लिए मनुष्य को दैनिक कार्य-व्यापारों से उपरत होना चाहिए। आप सुनियमित जीवन के द्वारा घर पर योग का अभ्यास कर सकते हैं।

मनुष्य अपने इन्द्रियों एवं रागों के दमन के द्वारा तथा संयम (धारणा, ध्यान तथा समाधि के संयुक्त अभ्यास) के द्वारा तरह-तरह की अलौकिक सिद्धियों को प्राप्त करता है। योग-सूत्र के लेखक पतंजलि महर्षि साधकों को आगाह करते हैं कि वे इन सिद्धियों के प्रलोभन में न फँसें। असावधान योगी को देवगण प्रलोभन देते हैं। स्पष्ट चेतावनी दे देने के बाद भी साधक सत्य की खोज में प्रयत्नशील न हो कर सिद्धियों में पड़े रहते हैं।

शक्ति की कामना वायु के झोंके का काम करती है जो योग-प्रदीप को बुझा डालती है। असावधानी तथा स्वार्थ के कारण प्रदीप का पोषण नहीं हो पाता तथा इतने संघर्ष के बाद योगी ने योग-प्रदीप का जो अर्जन किया था, वह विलुप्त हो जाता है। पहली हालत को पुनः प्राप्त करना उसके लिए असम्भव-सा हो जाता है। असावधान साधकों को निगलने के लिए प्रलोभन बाट जोहते रहते हैं। सूक्ष्म, मानसिक तथा गन्धर्व लोकों के = प्रलोभन सांसारिक प्रलोभनों से भी अधिक शक्तिशाली हैं। योग में सफलता तभी सम्भव है, जब साधक सतत तथा गम्भीर ध्यान का अभ्यास करे।

उसे सदा आत्म-निग्रह का अभ्यास करना चाहिए; क्योंकि इन्द्रियाँ अचानक उग्र रूप धारण कर सकती है। यही कारण है कि भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं- "हे कुन्ती-पुत्र ! यह उग्र स्वभाव वाली इन्द्रियाँ यत्नशील बुद्धिमान् पुरुष के मन को बलात्कार से हर लेती हैं। जल में वायु जैसे नाव को हर लेता है, वैसे ही विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के बीच में जिस इन्द्रिय के साथ मन रहता है वह इस पुरुष की बुद्धि को हरण कर लेती है" (गीता : २/६०,६७)।

योगी के मार्ग में बहुत-सी बाधाएँ आया करती हैं। निराशा, उदासी, रुग्णता, अवसाद, शंका, अनिश्चय, शारीरिक तथा मानसिक शक्ति की कमी, आलस्य, अस्थिरता, विषय-सुखों की तृष्णा, गलती - ये सब बाधाएँ हैं। उसे हतोत्साह नहीं होना चाहिए। इन बाधाओं पर विजय प्राप्त करने के लिए पतंजलि महर्षि के अनुसार 'एक तत्त्वाभ्यास' अर्थात् एक वस्तु पर मन को एकाग्र करने का अभ्यास करना चाहिए। इससे उसमें स्थिरता तथा शक्ति आयेगी। पतंजलि महर्षि बतलाते हैं कि समान लोगों के साथ मित्रता, छोटों के प्रति करुणा, बड़ों के प्रति मुदिता तथा दुष्टा के प्रति उपेक्षा का अभ्यास करना चाहिए। इन सद्गुणों के अभ्यास से मनुष्य में नव-जीवन का संचार होता है। अध्यवसाय की आवश्यकता है। यही योग की कुजी है। मन के पूर्ण नियन्त्रण के बाद योगी परम लाभ को प्राप्त करता है। वह असम्प्रज्ञात समाधि के परमानन्द का उपभोग करता है।

(२)

मन का सन्तुलन सदा बनाये रखिए। यह बहुत ही आवश्यक है। यद्यपि यह कठिन है, फिर भी अनिवार्य है। तभी आप सुखी हो सकते हैं। सुख-दुःख, गरमी-सदर्दी, लाभ-हानि, सफलता-विफलता, मानापमान, आदर-अनादर- इन सभी में जो सम रहता है, वह ज्ञानी है। यह अभ्यास यद्यपि कष्टकर है, फिर भी इससे आन्तरिक आध्यात्मिक शक्ति की प्राप्ति होती है। जो सदा मन का सन्तुलन बनाये रखने में समर्थ है, वह इस विश्व का महान् पुरुष है। उसकी पूजा करनी चाहिए। यद्यपि वह चिथड़ों से ढका हुआ है, यद्यपि उसके पास भोजन के लिए कुछ भी नहीं है, फिर भी वह महान् सम्पत्तिवान् है। यद्यपि उसके पास उसका भौतिक शरीर कमजोर है, फिर भी वह सबसे अधिक शक्तिशाली है। सांसारिक जन छोटी-छोटी बातों में ही मन का सन्तुलन खो बैठते हैं। वे बहुत जल्द चिड़चिड़ा पड़ते हैं। क्रोधित होने पर शक्ति का अपव्यय होता है। चिड़चिड़ा मनुष्य बहुत ही कमजोर होता है; यद्यपि उसके पास शारीरिक शक्ति रहती है तथा उसका शरीर सुपुष्ट रहता है। जो लोग मन के समत्व का अभ्यास करते हैं उन्हें विवेक, ब्रह्मचर्य तथा ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। जिन लोगों ने अपने वीर्य का अपव्यय किया है, वे शीघ्र ही चिड़चिड़ा पड़ते हैं।

चिड़चिड़ापन ही समय पा कर क्रोध के रूप में प्रकट होता है। आपको बहुत ही सावधान रहना चाहिए। चिड़चिड़ेपन को प्रारम्भ में ही आपको विनष्ट कर देना चाहिए। जब कभी आप किसी आवेग के अधीन होते हैं, तब उसके दूसरे आक्रमण को रोकने के लिए अधिक कठिनाई उठानी पड़ेगी; परन्तु इसके विपरीत यदि आप उसका दमन करने में सफल होंगे, तो उसके दूसरे आक्रमण को रोकने में और अधिक आसानी होगी। यह प्रकृति का अविचल नियम है।

क्रोध का आवेग तो विलीन हो जाता है; परन्तु उसका एक निश्चित चिह्न सूक्ष्म शरीर में जा पड़ता है। मनुष्य चिड़चिड़ेपन के आक्रमणों का अधिकाधिक शिकार बनता जाता है। सूक्ष्म शरीर क्रोध के आवेगों को और भी अधिक प्रबल बनाता है। मनुष्य आत्म-नियन्त्रण खो बैठता है। उस क्षण वह कैसा भी दुष्कर्म कर सकता है। वह खून अथवा किसी प्रकार का भी निर्मम कार्य कर सकता है। साथ ही वह विचार-जगत् को कलुषित करता है तथा अपने बुरे स्पन्दनों से अपने चतुर्दिक के लोगों को हानि पहुँचाता है। अतः उचित यह है कि प्रत्येक मनुष्य को क्रोध के आवेग पर पूर्ण नियन्त्रण लाना चाहिए। किसी व्यक्ति के साथ बोलने तथा चलने के समय उसे बहुत सावधान रहना चाहिए।

इन्द्रियाँ आपकी शत्रु है। वे आपको बहिर्मुखी बना देती हैं और आपकी मानसिक शान्ति का अपहरण कर लेती है। उनका साथ न दीजिए। उनका निग्रह कीजिए। उनका दमन कीजिए। जिस प्रकार उपद्रवी घोड़े को वशीभूत किया

जाता है, उसी प्रकार उन्हें भी वशीभूत कीजिए। इन्द्रियों के दमन से मानसिक शान्ति तथा आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है। यह एक दिन का काम नहीं है। बहुत दीर्घ काल के सतत अभ्यास से ही यह सम्भव है। इन्द्रियों का दमन ही वास्तव में मन का दमन है। दशों इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनी होगी। निराहार रख कर उन्हें मार डालिए। उनके इच्छानुसार उन्हें विषय प्रदान न कीजिए। तब वे शनैः-शनैः क्षीण पड़ जायेंगी। वे आपकी आज्ञाओं का अक्षरशः पालन करेंगी। सांसारिक जन तो इन्द्रियों के पूर्ण गुलाम हैं। यद्यपि वे शिक्षित हैं तथा उनके पास बहुत-सी शक्तियाँ हैं, फिर भी वे गुलाम हैं। यदि आप मांसाहार के गुलाम हैं, तो छह मास तक मांस खाना बन्द कर देने से आप जिह्वा पर विजय प्राप्त करने लगेंगे। आप इसका अनुभव करने लगेंगे कि मैंने जीभ पर थोड़ी विजय प्राप्त कर ली है।

सतर्क, सावधान तथा सचेतन रहिए। अपने मन तथा वृत्तियों पर निरीक्षण रखिए। भगवान् जीसस कहते हैं, "निरीक्षण रखो और प्रार्थना करो।" लाखों में कोई विरला ही इस आत्मोद्बोधक साधना को करता है। लोग सांसारिकता में निमग्न हैं। वे काम तथा कंचन के पीछे ही दौड़ते हैं। उन्हें तो समय ही नहीं मिलता कि वे आत्मा अथवा ऊँची आध्यात्मिक वस्तुओं का विचार करें। सूर्य उदय होता है और मन पुनः प्राचीन खाने, पीने, मौज उड़ाने तथा सोने की वैषयिक प्रणालियों में दौड़ने लगता है। सारा दिन बीत जाता है। इसी प्रकार सारा जीवन ही व्यतीत हो जाता है, न तो नैतिक विकास होता है और न होती है आध्यात्मिक प्रगति ही। तथाकथित शिक्षित तथा सभ्य जन भी अन्तर्निरीक्षण करना नहीं जानते। वे केवल बुद्धि का विकास करते हैं, कुछ रुपये कमाते हैं, कुछ पद-पदवी प्राप्त करते हैं और आत्मज्ञान को प्राप्त किये बिना ही इस संसार से चल बसते हैं। क्या यह दुःखद नहीं है? जो नित्य-प्रति अन्तर्निरीक्षण करता है, वह अपने दोषों को जान सकता है तथा उपयुक्त तरीकों से उन्हें दूर कर सकता है। उसे पूर्ण मनोजय की प्राप्ति होगी। काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा मद उसके पास नहीं फटकेंगे। करुणा, क्षमा, सत्य, साहस आदि दैवी गुणों का वह अर्जन कर सकेगा।

दैनिक आत्म-विश्लेषण तथा आत्म-निरीक्षण अनिवार्य है। तभी योग का साधक अपने दोषों को दूर कर आध्यात्मिक उन्नति कर सकेगा। माली किस प्रकार काम करता है? वह नये पौधों की निगरानी करता है। वह नित्य-प्रति मोथों को निकाल फेंकता है। वह उनके चारों ओर नया घेरा डालता है। एक निश्चित समय पर वह उनमें पानी डालता है। तभी वे शीघ्रतापूर्वक बढ़ते और फल देते हैं। ठीक उसी प्रकार साधक को भी चाहिए कि वह नित्य-प्रति आत्म-निरीक्षण कर अपने दोषों को जान ले और उचित साधनों द्वारा उन्हें दूर करे। यदि एक तरीके से सफलता नहीं मिलती, तो सयुक्त तरीके को इस्तेमाल में लाये। यदि प्रार्थना से सफलता नहीं मिलती तो उसे सत्सग, प्राणायाम, ध्यान, आहार-संयम, विचारादि का प्रयोग करना चाहिए। उसे केवल घमण्ड, पाखण्ड, काम, क्रोध आदि वृत्तियों का ही दमन नहीं करना चाहिए, वरन् चित्त में निहित इनके सूक्ष्म संस्कारों का भी दमन करना चाहिए। तभी वह पूर्णतः सुरक्षित रह सकता है। ये सूक्ष्म संस्कार बहुत ही भयंकर हैं। ये चोरों की भाँति बाट जोहते रहते हैं और साधक जब थोड़ा भी असावधान हो जाता है तो उस पर आक्रमण कर देते हैं। जब अत्यन्त कठिनाइयों की अवस्था में तथा नियमित आत्म-परीक्षण के बिना भी इन विकारों की अभिव्यक्ति न हो, तो समझ लेना चाहिए कि इनके सूक्ष्म चिह्न भी मिट गये हैं। आत्म-विश्लेषण के लिए धैर्य, अध्यवसाय, दृढ़ इच्छा शक्ति, नियमितता, दृढ़ संकल्प, सूक्ष्म-बुद्धि, साहस आदि की आवश्यकता है। इससे आप अमूल्य फल प्राप्त करेंगे। परम शान्ति और परमानन्द ही वह फल है; परन्तु इसके लिए आपको काफी मूल्य चुकाना होगा। अतः दैनिक साधना में आनाकानी न कीजिए। हृदय, मन, बुद्धि तथा आत्मा सभी को लगा डालिए। तभी उन्नति शीघ्र हो सकेगी।

योग के प्रत्येक साधक को मन का समाधान होना आवश्यक है। अशान्त चित्त का साधक योग में अल्प मात्र भी उन्नति नहीं कर सकता। अतः मन का समाधान अथवा चित्त की स्थिरता सबसे पहले होनी चाहिए। प्रातःकाल मूक ध्यान, कामनाओं का परित्याग, सात्विक आहार, इन्द्रियों का निग्रह, प्रतिदिन एक घण्टा मौन का पालन इत्यादि साधनों से चित्त की स्थिरता होगी। सारे व्यर्थ विचार, भावनाएँ, चिन्ताएँ, दुःख, अशान्ति तथा काल्पनिक भयों को नष्ट करना चाहिए। तभी आपका मन शान्त हो सकेगा। जब मन में पूर्णतः स्थिरता आ जायेगी, तभी योग की नींव यथार्थतः डाली

जा सकती है। शान्त मन ही ईश्वरीय ज्योति को प्राप्त कर सकता है। शान्त मन ही आध्यात्मिक प्रकाश का उपयुक्त पात्र है। शान्त मन होने से आध्यात्मिक अनुभव चिरस्थायी रहेंगे, अन्यथा वे आते और जाते रहेंगे।

प्रातः उठते ही चार से छह बजे तक प्रार्थना, जप तथा ध्यान कीजिए। तब दृढ़-सकल्प कीजिए, में आज ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा। मैं आज सत्य बोलूँगा। मैं आज क्रोध नहीं करूंगा।" मन का निरीक्षण कीजिए। प्रबल इच्छा-शक्ति रखिए। दृढ-प्रतिज्ञ बनिए। आपको उस दिन अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी। अब आप उसी संकल्प को एक सप्ताह तक चला सकते हैं। आपको शनैः शनैः शक्ति प्राप्त होगी। आपकी इच्छा-शक्ति बढ़ेगी। अब एक महीने के लिए संकल्प कीजिए। यदि प्रारम्भ में थोड़ी भूल हो भी जाये, तो उससे आपको अनावश्यक परेशानी नहीं होनी चाहिए। भूलें तो आपकी सर्वोत्तम गुरु हैं। आप पुनः उन्हीं भूलों को नहीं करेंगे। यदि आप सच्चे और ईमानदार हैं, तो ईश्वरीय कृपा आप पर प्रवाहित होगी। ईश्वर आपको शक्ति देगा, जिससे आप कष्टों एवं बाधाओं का सामना कर सकेंगे।

जिसने मन को वशीभूत किया है, वही वास्तव में सुखी तथा स्वतन्त्र है। शारीरिक स्वतन्त्रता तो कोई स्वतन्त्रता नहीं है। यदि मनुष्य आवेगों, तृष्णाओं, रागों एवं परिस्थितियों का शिकार है, तो फिर वह सुखी कैसे रह सकता है? वह पाल रहित नौका के सदृश है। जिस तरह नदी में तृण डाँवाडोल होता रहता है, उसी तरह उसका भी जीवन है। वह पाँच मिनट के लिए हँसता है और पाँच घण्टे तक रोता है। अपने मन के आवेगों से चलायमान होने पर आपकी स्त्री, आपके पुत्र, रुपये, यश, पद, शक्ति इत्यादि कर ही क्या सकते हैं? वास्तविक वीर तो वही है जिसने मन को वशीभूत किया है। कहावत भी है, "मन जीता तो जग जीता।" मन पर विजय ही वास्तविक विजय है; तभी मनुष्य वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्त करता है। नियमित साधना तथा संयम के द्वारा आपको कामनाओं, तृष्णाओं तथा अपने विचारों का दमन करन पड़ेगा, तभी आप मन के पाश से अपने को मुक्त कर सकते हैं। आपको अपने मन को ढीला नहीं छोड़ना चाहिए। मन तो दुष्ट शैतान है। आपको निर्मम तरीकों से उसका दमन करना होगा। तभी आप पूर्ण योगी बनेंगे। धन आपको स्वतन्त्रता नहीं देगा। स्वतन्त्रता बाजार में खरीदने की वस्तु नहीं है। यह पाँच फणों वाले सर्प से रक्षित एक अनुपम भण्डार है। सर्प को मारे बिना आप इस भण्डार को प्राप्त नहीं कर सकते। यह भण्डार आध्यात्मिक सम्पत्ति है। मन ही वह सर्प है। उसके पाँच फण पाँच इन्द्रियाँ हैं, जिनसे वह फुफकार मारता है।

राजसिक मन सदा नयी वस्तुओं को चाहता है। वह विविधता को पसन्द करता है। एक ही वस्तु से वह ऊब उठता है। वह स्थान में परिवर्तन, भोजन में परिवर्तन तथा संक्षेपतः सभी वस्तुओं में परिवर्तन चाहता है। परन्तु योग के साधक को तो मन को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि वह एक वस्तु पर एकाग्र हो सके। उसे अभिन्नता से घबराना नहीं चाहिए। उसमें दृढ़ धैर्य, प्रबल इच्छा-शक्ति तथा अथक अध्यवसाय होना चाहिए; तभी वह योग में सफल हो सकेगा। जो मनुष्य सदा नयी वस्तु को चाहता है, वह योग के लिए अयोग्य है। उसे एक स्थान, एक शिक्षक, एक साधना तथा योग की एक ही प्रणाली को पकड़े रखना चाहिए; तभी शीघ्र उन्नति सम्भव है। आपमें ईश्वर-साक्षात्कार की वास्तविक पिपासा होनी चाहिए, तब सभी बाधाएँ दूर हो जायेंगी। तभी आप योग-मार्ग में दृढ़ हो सकेंगे। सिद्धि-प्राप्ति के कुतूहल के कारण अल्पकालिक आवेग से कोई ठोस लाभन हो सकेगा।

जब आप ध्यान में कुछ उन्नति कर लेंगे, तो आप आवेगों से चलायमान न हो सकेंगे। समय-समय पर अशान्ति तथा अनावश्यक वस्तुओं की तृष्णा प्रकट होगी; परन्तु आप उनसे पराजित नहीं होंगे। ज्ञानाग्नि के द्वारा ये तृष्णाएँ भी शनैः-शनैः विदग्ध हो जायेंगी।

यदि आप असावधान हैं, यदि आप यौगिक साधना में अनियमित हैं, यदि आपका मन दुर्बल है, यदि आप आलस्य के कारण कुछ दिनों के लिए साधना को स्थगित कर देते हैं, तो ऐसी दशा में बुरी शक्तियाँ आपको वास्तविक पथ से दूर ले जायेंगी। आप भटक जायेंगे। आपके लिए पूर्व-स्थिति को पुनः प्राप्त करना भी कठिन हो जायेगा। अतः अपनी साधना में बहुत ही नियमित बनिए।

अपनी आवश्यकताओं को कम कर तथा अपनी इच्छाओं को क्षीण कर अशान्त मन को शान्त बनाना चाहिए। आपमें प्रबल मुमुक्षुत्व होना चाहिए, तभी आप उन्नत आध्यात्मिक प्रभावों की प्राप्ति के लिए अपने को उन्मुक्त कर सकते हैं। दिव्य ज्योति शनैः-शनैः उतरती है। आप आन्तरिक परिवर्तन तथा आध्यात्मिक प्रगति का भान करेंगे। वैयक्तिक चेतना शनैः शनैः सर्वात्म-चैतन्य में विलीन हो जायेगी। वैयक्तिक इच्छा ईश्वरीय इच्छा में विलीन हो जायेगी। यही समाधि की अवस्था है। मनुष्य तब ईश्वर ही हो जाता है। अनेक युगों के पश्चात् उसने अपने धाम- अमरानन्द तथा अमरत्व को प्राप्त कर लिया है।

आपको अपने मन से सारे रजस् को निकाल फेंकना होगा। राग ही रजस् है। सारी सांसारिक इच्छाएँ रजस् से ही उत्पन्न होती हैं। इच्छा मन को अशान्त बना डालती है। यदि इच्छा की पूर्ति नहीं हुई, तो मन उदासीनता तथा दुःखों से भर जाता है। आकांक्षाओं से पूर्ण मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती। वह इसी की चिन्ता करता रहता है, "क्या मैं इस प्रयास में सफल हो सकूँगा ? यदि सफल भी हो गया, तो क्या मैं अमुक व्यक्ति पर अपना प्रभाव जमाने में समर्थ हो सकूँगा अथवा नहीं?" आकांक्षा योग के लिए महान् बाधा है। सर्वप्रथम आपको मानसिक शान्ति का अर्जन करना चाहिए। तभी योग की इमारत शीघ्र तैयार की जा सकती है। शान्त मन में ही ईश्वरीय ज्योति का आविर्भाव होता है। यदि आपका मन शान्त है, तो आप दिव्य-दर्शनों को प्राप्त करेंगे।

उदास मनुष्य अपने चतुर्दिक दुःखद एवं उदासी-भरे स्पन्दनों को विकीर्ण करता है। उदासी से बढ़ कर और कुछ भी संक्रामक नहीं है। यदि आप उदास हैं, तो अपने कटीर से कभी बाहर न निकले: क्योंकि इस संक्रामक व्याधि को आप अपने मित्रों तथा पडोसियों में फैला डालेंगे। अवसाद आपके अन्तरतम को प्रभावित कर डालता है। यह विनाशकारी कीटाणु के सदृश है। यह तो संघातक प्लेग है। निराशा, विफलता, मन्दाग्नि, अधिक बहस, भ्रामक विचार तथा भावनाएँ इसके कारण हो सकते हैं। इस ऋणात्मक भावना से अपने को अलग कीजिए तथा परम पुरुष के साथ तादात्म्य स्थापित कीजिए। आन्तरिक जीवन व्यतीत कीजिए। कोई बाहरी प्रभाव आप पर आघात न पहुँचा सकेगा। आप अवसाद अथवा अन्य किसी विरोधी शक्ति से अप्रभावित रहेंगे। विचार, कीर्तन, प्रार्थना, ओंकार का जप, प्राणायाम, खुली हवा में भ्रमण, विपरीत भावना- आनन्द की भावना पर विचार के द्वारा अवसाद को दूर भगाइए। सभी अवस्थाओं में सुखी रहने का प्रयास कीजिए और अपने चतुर्दिक् सुख को विकीर्ण कीजिए।

यह संसार ईश्वर के विचारों का ही भौतिक रूप है। विज्ञान में उष्णता तथा प्रकाश की तरंगों का वर्णन है। ठीक उसी तरह योग में विचार-तरंगें हैं। विचार में महती-शक्ति है। हर व्यक्ति विचार-शक्ति का अनजाने में कुछ हद तक प्रयोग करता है। यदि आपको विचार-स्पन्दनों के कार्यों का पूरा ज्ञान है, यदि आप विचारों को नियन्त्रित करने का तरीका जानते हैं, यदि आप शुभ विचारों को दूसरों तक पहुँचाने की प्रक्रिया से अवगत हैं, तो आप इस विचार-शक्ति से बहुत ही अधिक सक्रिय लाभ उठा सकते हैं। विचार गतिशील हैं। विचार चमत्कारों को कर डालता है। विचार व्याधि दूर करता है। विचार में माप, आकार तथा रंग है। गलत विचार बन्धन में डालता है। उचित विचार मुक्त करता है। अतः ठीक तरीके से विचार कीजिए और मुक्ति प्राप्त कीजिए।

किसी वस्तु के विषय में भली-भाँति विचार कर सकते हैं; परन्तु समय आने पर प्रलोभनों केवल विचार ही मनुष्य के कर्म का कारण नहीं है। ऐसे भी बुद्धिमान् जन हैं जो में जा फँसते हैं, गलत कार्यों को कर बैठते हैं और फिर पश्चात्ताप करते हैं। अतः भावना ही मनुष्य को कर्मों में प्रयुक्त करती है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि कल्पना ही मनुष्य को कर्मों में प्रयुक्त करती है। इसके लिए वे निम्नांकित उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कल्पना कीजिए कि एक लम्बा लकड़ी का टुकड़ा जो एक फुट चौडा है, बीस फीट ऊँची

दो दीवालों पर रखा हुआ है। आप इस तख्ते पर चलना प्रारम्भ करते ही ऐसी कल्पना करते हैं कि कहीं आप गिर न जायें और फलतः आप गिर पडते हैं, जब कि वही तख्ता जब भूमि पर रखा रहता है, तब आप उस पर आसानी से चल सकते हैं। पुनः कल्पना कीजिए कि एक सँकरे मार्ग में आप साइकिल चला रहे हैं। मार्ग में एक बड़ी चट्टान है। आप कल्पना करते हैं कि साइकिल उस चट्टान से टकरा जायेगी और होता भी वैसा ही है। कुछ दूसरे वैज्ञानिक कहते हैं कि इच्छा-शक्ति से ही कर्म सम्भव है तथा इच्छा-शक्ति ही सब-कुछ कर सकती है। वे इच्छा-शक्ति को आत्मिक शक्ति मानते हैं। वेदान्ती की भी यही सम्मति है।

मनुष्य एक विविध सामाजिक प्राणी है। प्राणी होने के नाते उसमें निश्चित ही रक्त-संचालन, पाचन, श्वसन, मल-विसर्जन की क्रियाएँ होती रहती हैं। साथ ही उसमें विचार, अनुभूति, स्मरण, कल्पना आदि मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ भी होती रहती हैं। वह देखता है, विचारता है, स्वाद लेता है, गन्ध लेता है तथा अनुभव करता है। दार्शनिक दृष्टिकोण से तो वह ईश्वर की प्रतिमूर्ति है। वह स्वतः ब्रह्म ही है। उसने अविद्या के कारण अपनी ईश्वरीय महिमा को विस्मृत कर दिया है। मानसिक अनुशासन तथा योगाभ्यास के द्वारा वह अपनी पहली अवस्था को प्राप्त कर सकता है।

हे मेरे शिशु ! आप रोते क्यों हैं? अपनी आँखों से पट्टी को उतार फेंकिए और देखिए। माया के आवरण को उठाइए। आप सत्य से ही आवेष्ठित हैं। आँखें खोलिए और स्पष्टतः देखिए। जहाँ-कहीं भी आप देखते हैं, वहाँ पूर्ण ज्योति तथा आनन्द ही है। अविद्या रूपी व्याधि ने आपकी दृष्टि विकृत कर दी है। इस नेत्र-व्याधि को तुरन्त दूर कीजिए। दैनिक ध्यान के द्वारा ज्ञान के अन्तर्चक्षु का विकास कर अपने नेत्रों में नूतन चश्मा लगाइए।

११. योग-साधना-प्रश्नोत्तरी

प्रश्न **:** ऐसा कहा गया है कि प्राणायाम, धारणा तथा ध्यान के समय बन्ध-त्रय का अभ्यास किया जा सकता है; परन्तु क्या बन्ध-त्रय मन को लक्ष्य से च्युत नहीं करेगा।

उत्तर **:** बन्ध-त्रय का अभ्यास करते समय मन को ध्यान में लगाना चाहिए। इससे प्राणायाम, धारणा तथा ध्यान के समय दीर्घ कुम्भक करने में सहायता मिलेगी। यदि मन को भटकने दिया जाये, तो कुम्भक अल्प समय तक ही लग सकेगा। केवल कुम्भक में सहायता पाने के लिए प्रारम्भिक अवस्था में बन्ध-त्रय का अभ्यास किया जा सकता है। उन्नत अवस्था में इसका अभ्यास आवश्यक नहीं है।

प्रश्न **:** प्राणायाम रहित बन्ध-त्रय करते समय क्या श्वास खींच कर कुम्भक करना चाहिए? ब्रह्मचर्य के लिए यह क्रिया कितनी बार करनी चाहिए?

उत्तर**:** बन्ध-त्रय (विशेषकर जालन्धर बन्ध) कुम्भक के लिए ही आवश्यक है, जिसे श्वास खींच लेने के उपरान्त करना चाहिए। ऐसा करने से श्वास छोडने की सहज प्रकृति पर नियन्त्रण होता है। प्रातः-सायं प्राणायाम का अभ्यास करते समय दश बार भी बन्ध-त्रय के अभ्यास से ब्रह्मचर्य-पालन में सफलता मिलेगी: फिर भी अधिक तो आपके आहार तथा आध्यात्मिक दृष्टि पर निर्भर करता है।

प्रश्न **:** मैंने एक पुस्तक में पढ़ा है कि किसी एक योगी ने एक बार किसी रोगी को चुम्बकीय जल दिया, जब लड़के को चुम्बकीय जल पीने के लिए दिया गया, तब योगी ने गिलास को अपनी उँगली से स्पर्श कर दिया तथा जल उबलने लगा। ऐसा क्यों?

उत्तर **:** मैंने बहुत से योगियों को खाली पात्र में जल बनाते, उसे उबालते तथा उसमें चावल पकाते देखा है। यह योग से सम्बन्ध नहीं रखता। यह तो जादू है। शुद्धता तथा धारणा-शक्ति के द्वारा आध्यात्मिक बल से ही रोग निवारण-क्रिया में वृद्धि लायी जा सकती है। योग इस सिद्धि को प्रदान करता है; परन्तु इसके लिए जरा भी प्रदर्शन आवश्यक नहीं है। सत्य, ब्रह्मचर्य तथा सद्गुणों से सम्पन्न व्यक्ति के संकल्प-मात्र से चमत्कार किया जा सकता है। सत्य, ब्रह्मचर्य तथा अहिंसा का समुचित अभ्यास भी, चाहे आपका भूतकाल कैसा भी क्यों न रहा हो, आपको चमत्कारिक शक्ति प्रदान कर सकता है।

प्रश्न **:** किसी ने लिखा है कि योनि मुद्रा पर अधिकार कर लेने से कूटस्थ को देखा जा सकता है। इस प्रकार परम चैतन्य को कैसे देखा जा सकता है?

उत्तर **:** योनि मुद्रा से धारणा में सहायता मिलेगी। कूटस्थ तो स्थूल नेत्र का विषय नहीं है। उसके लिए आन्तरिक दिव्य-चक्षु की आवश्यकता है।

प्रश्न **:** क्या किसी विशेष योग से ही कुण्डलिनी को जाग्रत किया जा सकता है-जैसे राजयोग का अष्टांग मार्ग? क्या सिद्धि-प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है?

उत्तर **:** राजयोगी संयम के द्वारा, हठयोगी विविध यौगिक क्रियाओं के द्वारा, ज्ञानयोगी संकल्प के द्वारा तथा भक्तियोगी विशुद्ध भक्ति के द्वारा कुण्डलिनी को जाग्रत करते हैं। किसी भी विधि से कुण्डलिनी को जाग्रत करने पर सिद्धियाँ प्राप्त होंगी। विभिन्न चक्रों से गुजरते समय कुण्डलिनी विभिन्न सिद्धियों को प्रदान करती है। बुद्धिमान योगी सिद्धियों का कदापि प्रदर्शन नहीं करते; क्योंकि इससे पतन का भय रहता है। चरम लक्ष्य तो आत्म-साक्षात्कार है जिसके लिए सिद्धियाँ बेकार ही हैं। सिद्धियों के दुरुपयोग से उनका प्रभाव नष्ट हो जाता है तथा अकथनीय क्लेश उठाना पड़ता है।

१२. योग-साधना में मुख्य बाधाएँ

सच्चे साधकों को पूर्णतः ईमानदार होना चाहिए। ईमानदारी उनके लिए नीति नहीं होनी चाहिए। यह उनके आचरण का कठोर नियम हो।

स्तेय अथवा अल्प चोरी करने की आदत बहुत ही खतरनाक है। अनुकूल अवसर पर यह महान् अपराध का रूप धारण कर सकती है। अल्प चोरी करने वाले भी मानसिक शान्ति तथा नैतिक बल नहीं रख सकते। यदि साधक अस्तेय में पूर्णतः स्थित नहीं है, तो आध्यात्मिक मार्ग में वह लेशमात्र भी उन्नति नहीं कर सकता। वह पाँच घण्टों तक श्वास बन्द (कुम्भक) कर सकता है, वह दोपहर को सूर्य पर त्राटक कर सकता है, वह बहुत से कठिन तमाशे दिखा सकता है; परन्तु इनसे कुछ भी लाभ नहीं यदि उसका स्वभाव अल्प चौर्य का है।

एक कहानी सुनिए। एक विद्वान् पण्डित किसी प्रख्यात व्यक्ति के यहाँ अतिथि था। पण्डित को वेद तथा उपनिषद् कण्ठस्थ थे तथा उसकी तपश्चर्या उग्र थी। वह बहुत ही संयमित तथा परिमित आहार करता था। वह एक मिनट भी व्यर्थ नहीं गँवाता था। वह सदा स्वाध्याय, पूजा, जप तथा ध्यान में ही लगा रहता था। उसका यजमान उसका बड़ा आदर करता था। एक दिन इस पण्डित ने यजमान के घर से कुछ वस्तुएँ चुरा लीं। वे वस्तुएँ बहुत साधारण ही थीं। पूछने पर प्रारम्भ में तो उसने चोरी से एकदम इनकार ही कर दिया; किन्तु बाद में उसने स्वीकार कर लिया तथा क्षमा-याचना की। क्या कोई भी इतने बड़े महान् तपस्वी को चोर मान सकता है? पण्डित के मन में चोरी करने की

सूक्ष्म वृत्ति छिपी हुई थी। आत्म-विश्लेषण तथा चित्तशुद्धिप्रद साधना द्वारा पण्डित ने उसे नष्ट नहीं किया था। उसमें भद्रता तथा शिष्टता के गुण का विकास नहीं था। जिह्वा पर थोड़ा संयम तथा सद्गुन्थों को रटना, यही उसकी सिद्धि थी।

इस स्तेय के साथ-साथ झूठ बोलने की भी आदत रहती है। हम गृहस्थों को क्षमा कर सकते हैं; पर साधकों को नहीं। गुरु शिष्य से पूछता है- "हे राम ! क्या प्रातः तुमने कुनैन मिक्सचर पिया है?" वह उत्तर देता है- "हाँ, मैंने पी लिया है।" राम इस छोटी-सी बात के लिए झूठ बोलता है तथा बाद में झूठ प्रमाणित होता है।

बहुत से साधक थोडा 'विचारसागर' तथा 'पंचदशी' को पढ़ कर ही अपने को वेदान्ती बताते हैं। बहुत से कुछ आसन तथा मुद्रा का अभ्यास कर ही योगी का स्वाँग रचते हैं। यह भी बड़ी बाधा है।

धार्मिक दम्भ सांसारिक व्यक्तियों के दम्भ से भी अधिक हानिकारक है। यह रजस् तथा तमस् के मिश्रण से उत्पन्न दर्गुण है। दिव्य ज्योति तथा ज्ञान के अवतरण में दम्भ बहुत बड़ी बाधा है। साधक अपने को जीवन्मुक्त बतलाता है, जब कि वह ऐसा है नहीं। यह शुद्ध धार्मिक दम्भ है। धार्मिक दम्भी शीघ्र ही पहचान में आ जायेगा। वह लक्ष्य को कदापि प्राप्त नहीं कर सकता।

अलंबुद्धि भी रजस् तथा तमस से उत्पन्न है। साधक अपने अल्प ज्ञान तथा अनुभव से ही सन्तुष्ट हो जाता है। वह साधना बन्द कर देता है और आगे बढ़ना नहीं चाहता। वह भूमा की प्राप्ति के लिए अग्रसर नहीं होता। वह नहीं जानता कि इस अवस्था से परे ज्ञान का असीम साम्राज्य है। वह कूप-मण्डूक की भाँति रहता है।

वह मूर्खतापूर्वक ऐसी कल्पना करता है- "मैं सब-कुछ जानता हूँ। अब और अधिक जानने के लिए कुछ भी नहीं रहा।" माया उसके मन में मोटा आवरण डाल देती है। ऐसा मनुष्य अशान्त मन तथा भ्रमित बुद्धि रखता है।

माया हर कदम पर साधक की जाँच करती है। उसकी चालों को जानना बड़ा ही कठिन है। परन्तु जिसे माता की कृपा प्राप्त है, वह अपने मार्ग में जरा भी बाधा का अनुभव = नहीं करता। माता स्वतः साधक को अपने हाथों से लक्ष्य की ओर ले जाती है। वह उसे भगवान् शिव के निकट ला कर निर्विकल्प समाधि प्रदान करती है।

साधक सदा ऐसा सोचे कि "जो मैं जानता हूँ, वह बहुत ही अल्प है और जो जानना अभी बाकी है, वह सागर के समान है।" तभी ज्ञान के लिए उसमें प्रबल पिपासा जगेगी।

आत्म-प्रतिपादन बहुत ही भयंकर आदत है। यह रजस् से उत्पन्न निन्द्य गुण है। साधक बुरे कार्यों को करता है तथा उन्हें बनाये रखने के लिए प्रयत्न करता है। वह अपने पक्ष को ठीक प्रमाणित करने के लिए सद्गुन्थों का गलत अर्थ लगाता है। वह अपने दोषों को कदापि स्वीकार नहीं करता। वह अपना आत्म-सम्मान बनाये रखना चाहता है। उसका मन मलिन बन जाता है। वह वस्तुओं को यथावत् देख नहीं सकता। ऐसे मनुष्य को कोई भी सहायता नहीं दे सकता। वह योग-पथ में जरा भी उन्नति नहीं कर सकता; क्योंकि वह बड़ों की बातों को सुनता ही नहीं। अलंबुद्धि, दर्प, अभिमान, आत्म-श्लाघा, स्वार्थपरता ये सब आत्म-प्रतिपादन के स्थायी मित्र हैं। आत्म-प्रतिपादन के साथ इनका सहयोग होने से मनुष्य उस बन्दर के समान उच्छ्रखल हो जाता है जिसने शराब पी ली हो और उसके साथ ही बिच्छू ने जिसे डस लिया हो। वह ईश्वरीय ज्योति से पूर्णतः विलग हो जाता है। आत्म-प्रतिपादन माया का सूक्ष्म रूप है।

आत्म-श्लाघा आध्यात्मिक मार्ग की बहुत बड़ी बाधा है। यह रजस से उत्पन्न एक दुर्गुण है। इसके साथ अभिमान तथा दर्प लगे रहते हैं। इस स्वभाव वाला साधक अपनी प्रतिष्ठा चाहता है। वह बहुत-सी सिद्धियों से युक्त महान् योगी होने

का स्वांग रचता है। वह कहता है, "मैं बहुत ही उन्नत योगी हूँ। मैं बहुतों को प्रभावित कर सकता हूँ।" वह दूसरों से यह आशा करता है कि वे उसे आदर दें और उसे साष्टांग प्रणाम करें। यदि लोग उसकी प्रतिष्ठा नहीं करते, तो वह शीघ्र ही क्रोधित हो जाता है। वह अपनी मान-प्रतिष्ठा बनाये रखना चाहता है। आत्म-श्लाघा से युक्त साधक गुरु के उपदेशों पर ध्यान नहीं देता। वह मनमानी चलता है। वह गुरु के आज्ञाकारी होने का स्वांग रचता है। हर कदम पर उसका छोटा 'अहं' बल दिखाता है। वह आज्ञा पालन नहीं करता तथा अनुशासन तोड़ता है। वह दलबन्दी, उपद्रव तथा अशान्ति पैदा करता है। वह महात्माओं, संन्यासियों, योगियों तथा भक्तों की निन्दा करता है। उसे सद्ग्रन्थों तथा महात्माओं की वाणी में जरा भी विश्वास नहीं है। वह अपने गुरु का भी अपमान करता है। वह सत्य को छिपाता है तथा दुष्कर्मों को ढकने और अपनी प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिए जान-बूझ कर झूठ बोलता है। वह सत्य को तोड़-मरोड़ कर कहता है।

हठ तमोगुण से उत्पन्न है। हठी व्यक्ति अपने ही मूर्खतापूर्ण विचारों से चिपका रहता है। मैंने एक नये साधक को इस तरह उपदेश दिया था, "दोनों हाथों में थाली लिये, पैरों में जूता पहने पहाड़ी पर न चढ़िए; अन्यथा गिर कर आप अपनी हड्डी तोड़ बैठेंगे।" मैंने उसे एक यूरोपीय महिला का उदाहरण भी दिया था जो बदरी की पहाड़ियों से गिर कर मर गयी थी। मैंने बहुत से दूसरे उदाहरण भी दिये। उस युवक साधक ने मेरी बातों पर ध्यान नहीं दिया। वह बड़ा हठी था। मेरे स्पष्ट आदेशों के उपरान्त भी वह टिहरी की पहाड़ियों पर पैरों में जूता पहने, दोनों हाथों में थाली लिये हुए चल पड़ा। यही हठ का उदाहरण है। हठी साधक आध्यात्मिक मार्ग में जरा भी उन्नति नहीं कर सकते। आपको इस विकार का उन्मूलन करना चाहिए। आपको सदा उपदेश का आदर करना चाहिए, चाहे वह किसी प्रकार से आपको क्यों न प्राप्त हो।

मनुष्य इसी जगत् का नहीं, वरन् बहुत से जगतों का नागरिक है। उसे इसी जगत् में नहीं, वरन् दूसरे जगतों में भी खतरे तथा प्रलोभनों का सामना करना है। गन्धर्वलोक प्रलोभनों से भरा हुआ है। यही कारण है कि योगशास्त्र में कहा गया है कि साधक को पहले स्वयं को शुद्ध बनाना होगा। कुण्डलिनी जागरण से पहले वह यम-नियम में स्थित हो ले। यदि शुद्धता-प्राप्ति के पहले ही आसन, बन्ध, मुद्रा तथा प्राणायाम के द्वारा कुण्डलिनी जगा दी गयी, तो योगी को दूसरे लोकों के प्रलोभनों का शिकार बनना होगा। उसमें पर्याप्त संकल्प-शक्ति नहीं हो सकती; अतः उसका पतन सुनिश्चित है। पुनः उसी ऊँचाई पर चढ़ना उसके लिए असम्भव-सा हो जायेगा: अतः सर्वप्रथम शुद्धता लानी चाहिए। यदि जप, कीर्तन अथवा सतत निष्काम सेवा के द्वारा पूर्ण शुद्धता की प्राप्ति हो गयी. तो कुण्डलिनी स्वयं जाग्रत हो जायेगी तथा सहस्रार में ज्ञान, आनन्द एवं शान्ति के आगार भगवान् शिव से मिल जायेगी।

बहुत से साधक योग की सीढ़ी पर कुछ ऊँचाई प्राप्त करते हैं। वे स्वर्ग तथा गन्धर्वलोक आदि के प्रलोभनों में फँस जाते हैं। वे विवेक-शक्ति को खो बैठते हैं तथा स्वर्गिक भोगों में डूब जाते हैं। उन्नत लोक के निवासी साधक को विविध प्रकार से प्रलोभन देते हैं, "हे योगी! आपके इस तप से हम बहुत ही प्रसन्न हैं। यह लोक आपके पुण्य का फल है। हम सभी आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार हैं। यह विमान आपके लिए है। आप जहाँ भी चाहें, इस पर घूम सकते हैं। ये स्वर्गिक अप्सराएँ आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं। ये स्वर्गिक संगीत के द्वारा आपको प्रसन्न करेंगी। यहाँ स्वर्गिक सोमरस इस स्वर्ण-पात्र में है जो आपको अमर बना देगा। यहाँ परमानन्द का सरोवर है। आप इस सरोवर में मुक्त रूप से विहार कर सकते हैं।" असावधान योगी आसानी से ही इन पुष्पित वाणियों तथा आमन्त्रणों में आ जाता है। उसे मिथ्या-तुष्टि मिलती है। वह समझ लेता है कि यही परम लक्ष्य है। वह प्रलोभनों का शिकार बन जाता है तथा उसकी शक्ति विभिन्न दिशाओं में बिखर जाती है। पुण्य के नष्ट होते ही वह इसी जगत् में आ गिरता है। उसे पुनः आध्यात्मिक सीढ़ी पर चढ़ना प्रारम्भ करना होगा। परन्तु विरक्त योगी, जिनका विवेक प्रबल है, देवों के इन आमन्त्रणों की अवहेलना कर देते हैं तथा वीरतापूर्वक आध्यात्मिक मार्ग में अग्रसर होते हुए निर्विकल्प समाधि की पराकाष्ठा को प्राप्त कर लेते हैं। वह अच्छी तरह जानते हैं कि स्वर्ग के भोग भी इस लोक की तरह ही क्षणभंगुर हैं। स्वर्ग के सुख बहुत ही सूक्ष्म, बहुत ही सघन तथा अत्यन्त ही मादक हैं। इस भौतिक लोक में भी, पश्चिम में तथा अमेरिका में जहाँ धन की प्रचुरता है, लोग

सूक्ष्म विषय-सुखों का उपभोग करते हैं। प्रतिदिन वैज्ञानिक नये आविष्कार करते हैं जिनसे उपद्रवी इन्द्रियों को तृप्ति मिल सके। भारत में रहने वाला एक संयमी व्यक्ति भी अमेरिका में जा कर परिवर्तित हो जाता है। वह प्रलोभनों का शिकार बन जाता है। माया की शक्ति ऐसी ही है। प्रलोभनों का प्रभाव ऐसा ही है। उपद्रवी इन्द्रियों का बल ऐसा ही है। जिस मनुष्य में प्रबल विवेक, स्थिर वैराग्य, अच्छी विचार-शक्ति, ज्वलन्त मुमुक्षुत्व है, वही जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है, वही प्रलोभनों का संवरण कर वास्तव में सुखी बन सकता है।

अध्याय १६:वेदान्तिक साधना

१. परिचय

जिसका भी आदि तथा अन्त है, वह मिथ्या है। वही सत्य है जो भूत, वर्तमान तथा भविष्य में रहने वाला है। ब्रह्म ही तीनों कालों में वर्तमान रहता है; अतः ब्रह्म ही सत्य है। सत्य वस्तु ही शाश्वत, अपरिवर्तनीय, अनादि, अनन्त हो सकती है। जिस वस्तु का प्रारम्भ तथा अन्त में अस्तित्व नहीं है, वह मध्य में भी अस्तित्व नहीं रखती।

सारे नाम-रूपों से परे सत्य-पुराण पुरुष जिससे सब-कुछ उत्पन्न होता है- ब्रह्म है। ब्रह्म ही आनन्द तथा सुख का परम मूल है।

ब्रह्म ही आन्तर सत्य अथवा सार है। पंचकोश तो छिलके के समान हैं। शरीर, इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि केवल बाह्य आच्छादन हैं जो आन्तर शाश्वत सत्य को ढके रहते हैं। ये कोश ब्रह्म के ही व्यक्तीकरण हैं। वे ब्रह्म में ही स्थित हैं।

ब्रह्म इस जगत् का अतिक्रमण करता है। उत्पत्ति तथा विनाश-ये दृश्य ही हैं। ये मन अथवा माया के जादू हैं। वास्तव में किसी वस्तु का सृजन अथवा विनाश नहीं होता।

ब्रह्म अनन्त है। ब्रह्म नित्य है। ब्रह्म अमृतत्व है। असीम एक ही है। दो असीम नहीं हो सकते। जो अपरिवर्तनशील, अद्वैत, अनादि, अनन्त, काल रहित, देश रहित, कारण रहित है, वही असीम है। यदि ब्रह्म में अवयव हो, तो नानात्व हो सकता है। ब्रह्म में भेद नहीं है। ब्रह्म स्वयं-प्रकाश तथा परिपूर्ण है। ब्रह्म अजन्मा तथा अमर है। वह शरीर रहित, काल रहित असीम है। सुषुप्तिवत् अभावमात्र नहीं है। वह तो शुद्ध चैतन्य तथा ज्ञान-स्वरूप है। ब्रह्म में आपको पूर्ण बोध रहता है। ब्रह्म सत्य का भी सत्य है। यह सभी आत्माओं की आत्मा है।

जाग्रत की वस्तुएँ उसी प्रकार मिथ्या हैं, जिस प्रकार स्वप्न की वस्तुएँ। सारी वस्तुएँ असत्य हैं। साक्षी ही सत्य तथा नित्य है। जीवन जाग्रत-स्वप्न है। जो वस्तु परिवर्तनशील है, वह नित्य तथा सत्य कैसे हो सकती है।

जीवात्मा तथा जगत् सभी असत्य है। ब्रह्म के सिवाय कुछ भी नित्य नहीं है।

मानसिक जगत् उतना ही असत्य है जितना कि भौतिक जगत्। ब्रह्म अथवा आत्मा ही एकमेव सत्य है। जगत् सुषुप्ति में विलुप्त हो जाता है। स्वप्न के पदार्थ भी जागते ही विलुप्त हो जाते हैं। अतः जाग्रत तथा स्वप्न दोनों जगत् असत्य ही हैं। आत्मा तीनों अवस्थाओं से परे है। यह ब्रह्म तीनों अवस्थाओं का आधार है। यह मूक साक्षी है। ब्रह्म ही तुरीय है।

नित्य जीवन ही मोक्ष है। आत्मा की एकता का साक्षात्कार करना ही पूर्णता की पराकाष्ठा है। श्रुतियों के श्रवण, मनन तथा सतत निदिध्यासन द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार कर मुक्ति तथा परम लक्ष्य को प्राप्त कीजिए।

ब्रह्म का साक्षात्कार सारे ज्ञानों में सर्वोच्च है। साधन चतुष्टय सम्पन्न धीर व्यक्ति ही आत्म-साक्षात्कार कर सकता है। जो वास्तव में ब्रह्म के साथ एकता का साक्षात्कार करता है, वह अमृतत्व प्राप्त करता है।

इन्द्रियों को समेट लीजिए। अन्दर देखिए तथा हृदय में खोज कीजिए। अपने हृदय के अन्तरतम में गहरा गोता लगाइए। आप निःसन्देह ब्रह्म के साथ अपनी तादात्म्यता का साक्षात्कार करेंगे। आप असीम आनन्द तथा सुख को प्राप्त करेंगे।

२. ज्ञान-साधना के पहलू

साधक को श्रवण तथा मनन करना चाहिए। श्रुतियों को सुनना श्रवण है, चिन्तन करना मनन है। सतत गम्भीर ध्यान करना निदिध्यासन है। तब आत्म-साक्षात्कार की बारी आती है।

इसे ब्रह्मानुभव कहते हैं। तब सारे मोह एवं शंकाएँ दूर हो जाती हैं। हृदय-ग्रन्थि का भेदन होता है। सारे कर्म विनष्ट हो जाते हैं। ज्ञानी सच्चिदानन्द अवस्था को प्राप्त कर लेता है। वह संसार-चक्र से मुक्त हो जाता है।

ज्ञानयोग का साधक ॐ या सोहऽम्**,** शिवोऽहम्**,** अहं ब्रह्मास्मि या ॐ तत्सत् का जप करता है तथा उसके साथ शुद्धता, पूर्णता, असीमता, नित्यता, अमरत्व, सच्चिदानन्द की भावना करता है।

निदिध्यासन के लिए निश्चय

मैं सूर्यो का सूर्य हैं, ज्योतियों की ज्योति हूँ ॐॐॐ

मैं पूर्ण शुद्ध हूँ ॐॐॐ

मैं पूर्ण आनन्द हूँ ॐॐॐ

मैं सर्वव्यापक चैतन्य हूँ ॐॐॐ

सच्चिदानन्दस्वरूपोऽहम् ॐॐॐ

अखण्ड एकरस चिन्मात्रोऽहम् ॐॐॐ

भूमानन्दस्वरूपोऽहम् ॐॐॐ

अहं साक्षी ॐॐॐ

निर्विशेष चिन्मात्रोऽहम् ॐॐॐ

असंगोऽहम् ॐॐॐ

ॐ में निवास कीजिए

अन्तर्मुखी बनिए। आत्मा में निवास कीजिए। आत्मा पर ध्यान कीजिए। ॐ का मानसिक जप कीजिए। ॐ का कीर्तन कीजिए। ॐ का गान कीजिए। ॐ का अनुभव कीजिए। ॐ का पान कीजिए। ॐ का आहार कीजिए। ॐ में टहलिए। ॐ की श्वास लीजिए। ॐ में सोइए। ॐ को ही मित्र बनाइए।

'मैं ब्रह्म हूँ' का सतत निदिध्यासन अविद्याजात विक्षेप को दूर करता है। यह सारे रोगों को दूर करने वाला रसायन है।

एकान्त स्थान में आसन लगा कर, सारे रागों से रहित हो कर, इन्द्रियों का दमन कर साधक उस एक असीम आत्मा का चिन्तन करे; अन्य किसी वस्तु का चिन्तन न करे।

अपनी बुद्धि के द्वारा ज्ञानी मनुष्य सारे दृश्य को आत्मा में विलीन करे तथा उस एक आत्मा पर ही ध्यान करे जो आकाश के समान शुद्ध और असीम है।

३. सप्त-ज्ञान-भूमिका

ज्ञानशास्त्रों के अध्ययन के द्वारा ज्ञान का विकास कीजिए तथा ज्ञानियों का सत्संग कीजिए। यही शुभेच्छा है। यह ज्ञान की प्रथम भूमिका है।

सत्संग तथा सभी प्रकार के निष्काम धार्मिक कार्यों के द्वारा शुभेच्छा की प्राप्ति होती है। यह मन का विवेक-वारि से सिंचन करती तथा उसकी रक्षा करती है। वैराग्य के द्वारा इस अवस्था की वृद्धि होती है। यह अन्य सभी भूमिकाओं की आधार है। इस अवस्था से ही आगे की दो अवस्थाओं की प्राप्ति होती है।

अनवरत आत्म-विचार द्वितीय अवस्था है।

विशेष असंग के द्वारा तीसरी अवस्था की प्राप्ति होती है। तनुमानसी या असंग-भावना ही तीसरी अवस्था है। इस अवस्था में पहुँचने पर मनुष्य सारे संकल्पों से रहित हो जाता है।

चौथी भूमिका में सत्त्वापत्ति सभी वासनाओं को निर्मूल कर देती है। चौथी भूमिका का ज्ञानी सभी के प्रति समदृष्टि रखेगा तथा सबको स्वप्नवत् समझेगा। इस भूमिका में जगत् स्वप्न की भाँति दिखायी देता है। प्रथम तीन भूमिकाओं को हम जाग्रत की श्रेणी में रख सकते हैं। चतुर्थ भूमिका स्वप्न की श्रेणी के अन्तर्गत है।

मिथ्यात्व रहित, शुद्ध ज्ञान से परिपूर्ण आनन्द-स्वरूप ही पंचम भूमिका असंसक्ति है। इस अवस्था में जाग्रत तथा स्वप्न की उपाधि नहीं रहती है। यह जीवन्मुक्त अवस्था है। यह एकरस आनन्द से परिपूर्ण है तथा सुषुप्ति की श्रेणी में है। ज्ञानी अद्वैत-निष्ठा में पूर्णतः स्थित रहता है। गुणों के सारे भेद विलुप्त हो जाते हैं। बाह्य कार्यों में रत रहते हुए भी वह सदा शान्त रहता है।

आत्म-निश्चय में पूर्णतः स्थित, कामनाओं से मुक्त, सभी के प्रति समदृष्टि, 'मैं' अथवा की सभी विविधताओं को निर्मूल कर ज्ञानी तुरीयावस्था को प्राप्त करता है।

जो आनन्द तथा ज्ञान-स्वरूप है, वह छठी भूमिका तुरीय है। ज्ञानी सारी वासनाओं से पूर्णतः मुक्त हो जाता है। वह 'भेद' एवं 'अभेद', 'अहं' और 'नाहं' तथा 'असत्' एवं 'असत्' के सारे विचारों से मुक्त हो जाता है।

छठी भूमिका को पदार्थाभावना भी कहते हैं। यह सुषुप्ति की भाँति आनन्द से परिपूर्ण है जहाँ चैतन्य के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।

सप्तम भूमिका मोक्ष है जो अविभक्त, सभी में समान, शुद्ध, शान्त तथा विशुद्ध तुरीय है। सारे विषयों से मुक्त, आनन्द से पूर्ण सप्तम भूमिका को कुछ लोग तुरीयातीत मानते हैं जो मोक्ष का धाम है तथा जो चित् ही है।

सातवीं भूमिका मन की पहुँच से परे, स्वयं-प्रकाश तथा सत्स्वरूप है। सातवीं भूमिका में विदेहमुक्ति की प्राप्ति होती है। यह रकरस है। यह अनिर्वचनीय, वाणी से परे है।

४. वेदान्तिक साधना की विधि

श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन वेदान्तिक साधना की तीन अवस्थाएँ हैं। सत्य को सुनना श्रवण है। ब्रह्मनिष्ठ गुरु से अभेद बोध-वाक्य का श्रवण करना चाहिए, तब वेदान्तिक ग्रन्थ अथवा प्रक्रियाओं को सावधानीपूर्वक पढ़ना चाहिए जिससे कि महावाक्यों का अर्थ अच्छी तरह समझ में आ जाये।

वेदान्तिक ग्रन्थ दो प्रकार के हैं प्रमाण-ग्रन्थ तथा प्रमेय-ग्रन्थ। वेदान्त के ग्रन्थों का सतत अनुशीलन करना चाहिए। अध्ययन सावधानीपूर्वक करना चाहिए, तभी वेदान्त का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होगा। अद्वैत-सिद्धि, चित्सुखी, खण्डनखण्डखाद्य, ब्रह्मसूत्र इत्यादि प्रमाण-ग्रन्थ हैं; क्योंकि अन्य सिद्धान्तों का खण्डन कर तर्क के द्वारा अद्वैत-तत्त्व का प्रतिपादन करते हैं। उपनिषद्, भगवद्गीता तथा योगवासिष्ठ जैसे प्रमेय-ग्रन्थ हैं; क्योंकि वे परम सत्य का प्रतिपादन करते हैं, तर्क के द्वारा न तो किसी का खण्डन करते हैं और न मण्डन ही करते हैं। वे अपरोक्षानुभव के ग्रन्थ हैं, जब कि प्रमाण-ग्रन्थ बौद्धिक हैं।

वेदान्तिक साधना प्रारम्भ करने से पूर्व मन शुद्ध तथा शान्त होना चाहिए। मन में वासना बनाये रखना उसी प्रकार है जिस प्रकार सर्प को दूध दे कर पालते रहना। आपका जीवन सदा खतरे में रहेगा। विचार, वैराग्य तथा आत्मा पर ध्यान के द्वारा इन वासनाओं को मार डालिए।

सृष्टि-विषयक श्रुतियाँ जैसे "आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि की उत्पत्ति हुई हैं" आदि वेदान्त के नये साधकों के लिए ही हैं; क्योंकि वे एकाएक अजातिवाद के सिद्धान्त को ग्रहण नहीं कर सकते। सृष्टि-विषयक सन्दर्भों को पढ़ते समय सदा ध्यान रखिए कि यह सब अध्यारोप ही है। इसे कभी न भूलिए। एक क्षण के लिए कदापि ऐसा न सोचिए कि जगत् सत्य है। अपवाद-युक्ति के द्वारा ही आप केवल अद्वैत-सिद्धान्त को सिद्ध कर सकते हैं। यदि जगत् सत्य है, यदि द्वैत सत्य है तो आप अद्वैत-साक्षात्कार का अनुभव नहीं कर सकते।

यदि अहंकार-मल को नष्ट कर दिया जाये. तो काम-मल तथा कर्म-मल स्वतः ही नष्ट हो जायेंगे: फिर जीवन्मुक्त के लिए प्रारब्ध कहाँ है? वह परब्रह्म से एक है।

५. वेदान्त-साधना की बाधाएँ

अहंकार आत्म-साक्षात्कार की सबसे बड़ी बाधा है। "मैं सब-कुछ जानता है। मेरा विचार अथवा मत ठीक है। जो कुछ मैं करता हूँ, वह ठीक ही है। वह मनुष्य कुछ भी नहीं जानता। हर व्यक्ति को मेरा कहना मानना चाहिए। मैं सब प्रकार

के दोषों से मुक्त है। मुझमें अच्छे-अच्छे गुण हैं। मैं बहत ही बुद्धिमान हैं। वह आदमी तो मूर्ख है। उस मनुष्य में बहुत-से दोष हैं। मैं ज्ञानी हूँ। मैं सुन्दर हैं।" इस तरह अहंकारी व्यक्ति कहता है। यह राजसिक अहंकार का स्वभाव है। वह अपने अपराधों को छिपाता है। वह अपनी योग्यता तथा अपने गुणों की अत्युक्ति करता है जो उसमें हैं ही नहीं। वह दूसरों में भलाई न देख कर बुराई को ही देखता है। वह अपने में अनेक शुभ गुणों को स्थापित करता है जो वास्तव में उसके पास नहीं हैं। ऐसा मनुष्य वेदान्त-साधना का अभ्यास नहीं कर सकता। वह ज्ञान-मार्ग के लिए अयोग्य है।

राग तथा द्वेष जीव के लिए महान् संसार हैं। परब्रह्म के ज्ञान से उनको विनष्ट कर देना चाहिए। उचित बोध तथा विवेक द्वारा अथवा प्रतिपक्ष-भावना द्वारा इन प्रवाहों को विनष्ट करना चाहिए। सरलता, सावधानी, शुद्धता, आवेगों के नियन्त्रण तथा सन्तों एवं ज्ञानियों के चरण-चिह्नों के अनुगमन के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति की जा सकती है।

वेदान्तिक साधना द्वारा ब्रह्माकार-वृत्ति उत्पन्न होती है। बाँस के पारस्परिक संघर्ष से अग्नि उत्पन्न होती है। सारा जंगल ही भस्मीभूत हो जाता है। दावानल भभक उठता है। तब सब-कुछ जला कर अग्नि स्वयं बुझ जाती है। उसी प्रकार सात्त्विक मन में ब्रह्म अथवा 'तत्त्वमसि' के लक्ष्यार्थ पर ध्यान के द्वारा ब्रह्माकार-वृत्ति की उत्पत्ति होती है जो अविद्या तथा उसके कार्यों को भस्मीभूत कर ब्रह्मज्ञान प्राप्त कराती है और अन्ततः ब्रह्म-साक्षात्कार के अनन्तर स्वतः ही बुझ जाती है।

निर्मली बीज को पीस कर जल में डालने से सारे मल को ले कर वह नीचे बैठ जाता है। उसी प्रकार ब्रह्माकार-वृति सारी विषय-वृत्तियों को विनष्ट कर ब्रह्मज्ञान के अनन्तर स्वतः ही विनष्ट हो जाती है।

ज्ञानी का स्वभाव

ज्ञानयोगी न तो प्रत्याहार का अभ्यास करता है और न चित्तवृत्ति-निरोध का, जैसा कि राजयोगी करते हैं। वह सभी नाम-रूपों में एक अखण्ड सत्ता सच्चिदानन्द को देखने का प्रयास करता है। वह सभी वृत्तियों का साक्षी बना रहता है। सारी वृत्तियाँ स्वतः ही शनैः शनैः विलीन हो जाती हैं। ज्ञानी की विधि धनात्मक (सम्यग्दर्शन) है, जब कि राजयोगी की विधि ऋणात्मक (निरोध) है।

ज्ञानी की दृष्टि में कोई भी व्यक्ति नहीं है; फिर ज्ञानी के लिए प्रारब्ध कहाँ? ज्ञानी ब्रह्म के साथ एक है; अतः उसमें परिवर्तन कहाँ ? वह शान्त, शिवं तथा अद्वैतम् है। वह जीवन्मुक्त है। वह इसी जीवन में मुक्त है। उसका शरीर दग्ध वस्त्र के समान अथवा पारस-मणि के छू जाने पर स्वर्ण में परिणत तलवार के समान है। परम ज्ञान की अग्नि में उसका अहंकार विदग्ध हो चुका है।

६. वेदान्तिक साधना के विषय में कुछ संकेत

सत्य अथवा ब्रह्म का स्वरूप

१. सत्य सरल है। यह विक्षिप्त बुद्धि के द्वारा जटिल-सा प्रतीत होता है। उन्नत वस्तुएँ सदा सरलतम होती हैं।

२. सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं।

३. सत्य को असत्य से कभी पराजित नहीं किया जा सकता। सत्य सदा असत्य पर विजय प्राप्त करेगा। सत्य के मार्ग पर चलने से मनुष्य सब-कुछ स्वतः ही प्राप्त कर लेता है। जड़ में पानी देने से शाखाएँ स्वतः ही सिंचित हो जाती हैं।

४. सत्य का मार्ग खड़ा है। यह ढालुआँ तथा दुर्गम है। आध्यात्मिक मनुष्यों में धीर जन ही इसका अनुगमन कर पूर्णता की नगरी को प्राप्त करते हैं।

५. ब्रह्म ही सत्य है। सत्य ब्रह्म है। आप वही हैं। यही आध्यात्मिक शिक्षा का सारांश है।

६. सत्य पूर्णतः जनसाधारण की वस्तु है। उसे छिपाना चाहें, तो वह छिप नहीं सकता। सत्य ही है, असत्य की चरम सीमा में भी सत्य बना रहता है। सत्य की चरम सीमा ब्रह्म ही है। असत्य सत्य की ही छाया है। यह जगत् असत्य है तथा ब्रह्म सत्य है। यह जगत् लिंग तथा अहंकार ही है। ब्रह्म ज्ञान-स्वरूप है।

७. जो सत्य के विपरीत काम करता है तथा असत्य का अभ्यास करता है, उसका शिर फूट जायेगा। सत्य अस्तित्व है। असत्य अनस्तित्व है।

८. 'सच्चिदानन्द' के द्वारा भी सत्य का वर्णन नहीं होता। यह सत्य का निकटतम वाचक है; परन्तु सत्य तो इससे भी अधिक महान, गरिमावान् तथा शक्तिमान है।

९. जिसका हृदय सत्य की ओर उन्मुख है, उसके लिए सब-कुछ हितकर ही है। उसे शारीरिक या मानसिक व्याधि सता नहीं सकती।

१०. सत्य की ओर चलने वाला वीर है। वह दीर्घायु प्राप्त करता है। वह सब-कुछ जानता है तथा सदा प्रसन्न रहता है क्योंकि वह सच्चिदानन्द के निकट जा रहा है।

११. सत्य के विषय में बातें करने तथा उसके विषय में विचार करने मात्र से मनुष्य परम तृप्ति को प्राप्त करता है। उसके साक्षात्कार के अनुभव का तो कहना ही क्या?

१२. सत्य है, असत्य नहीं है। अतः यह कहना भी गलत है कि सत्य एक है; क्योंकि सत्य तो अस्तित्व ही है जो न एक है और न अनेक। सत्य परम वस्तु है।

१३. ब्रह्म विद्वान् पण्डितों के मन को भी भ्रमित कर बैठता है। प्रबल बुद्धि भी उसे ग्रहण नहीं कर सकती। बुद्धि के मर जाने पर ही शुद्ध चैतन्य के रूप में इसका अनुभव होता है। जहाँ सब-कुछ खो जाता है, वहीं सब-कुछ की प्राप्ति होती है।

१४. जहाँ शून्य है, वहीं दौड़ पड़ती है। जहाँ अहंकार नहीं है, वहीं ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

१५. ब्रह्म प्रकट होने के लिए समय पर निर्भर नहीं करता। पलमात्र में ही यह जगत् विद्युत् दाम की तरह शुद्ध चैतन्य में विलीन हो जायेगा।

१६. कब परमानुभव की प्राप्ति होगी, यह नहीं कहा जा सकता। साक्षात्कार अभी हो सकता है अथवा लाखों जन्मों के बाद। अतः मनुष्य सदा उसके स्वागत के लिए उत्सुक रहे। यह कभी भी अनजाने में आ जायेगा।

१७. सत्य महान् है। सत्य का वर्णन नहीं किया जा सकता। सत्य तो अनुभव की ही वस्तु है।

१८. सत्य नित्य है। सत्य महान् है। सत्य अव्यय है। जो भी परिवर्तनशील है, वह असत्य है। सत्य असीम है। सत्य ही टिकता है, अन्य वस्तुएँ विलीन हो जाती हैं। हर जीव ब्रह्म से ले कर तृण तक सत्य की ओर चल रहा है। कुछ तो सचेतन हो कर और कुछ अचेतन अवस्था में ही सत्य की ओर गमन कर रहे हैं। चैतन्य के विभिन्न अंश के अनुसार उनमें भिन्नता है। हर पत्ता जो हवा में उड़ता है, हर श्वास जो हमसे हो कर बाहर आती है- विश्व-जीवन का हर कार्य सत्य की ओर एक कदम आगे बढ़ना है; क्योंकि सत्य ही सभी भूतों का नित्य-निवास है। सत्य में सभी प्रवेश करते तथा स्थायी तृप्ति एवं शान्ति प्राप्त करते हैं। अहंकार ही हमें असीम जीवन से पृथक् करता है। जीव-चैतन्य का परम सच्चिदानन्द में विलीन होना ही सत्य का साक्षात्कार है।

१९. ब्रह्म पूर्णतः वैज्ञानिक तर्कसंगत, समरस तथा बोध-स्वरूप है। यह विषम नहीं है। यह अतिप्राकृतिक रहस्य नहीं है; अपितु जीवन का स्वाभाविक तथ्य है। अस्तित्व का असीम तथा अखण्ड स्वभाव आश्चर्य की वस्तु नहीं है। यह अस्तिव का स्वभाव ही है जिस तरह प्रकाश अग्नि का, तरलता जल का तथा भारीपन राँगे का स्वभाव ही है। यह नित्य अमर जीवन है।

२०. सच्चिदानन्द ही परम सत्य है, जहाँ कर्म का लेशमात्र भी नहीं है। यही कारण है कि जो इसके निकट जाते हैं, वे निष्क्रिय बन जाते हैं।

२१. अस्तित्व, ज्ञान, शक्ति तथा आनन्द का परिपूर्ण स्वरूप ही सत्य है। ये चारों एक ही वस्तु के पहलू है। इन चारों को उसी प्रकार अलग-अलग नहीं कर सकते जिस प्रकार सूर्य की रश्मि और आलोक को।

२२. सत्य नित्य, असीम, परम, चैतन्य, ज्ञान, सौन्दर्य, प्रेम तथा आनन्द है। ब्रह्म के सौन्दर्य तथा आनन्द की छाया माधुर्य-भाव तथा श्रृंगार-रस है। कलात्मक सुख ब्रह्मानन्द की ही छाया है।

२३. असीम, नित्य, अमृतत्व तथा परम- ये सच्चिदानन्द के स्वभाव हैं।

२४. यह सारा विकसित जगत् वास्तव में एक समरस सत्ता का रूप है। जिस तरह सूर्य की धवल ज्योति ही भ्रामक मृगतृष्णा के रूप में दिखायी पड़ती है, उसी तरह चैतन्य की ज्योति ही नानात्व जगत् में प्रकट होती है। ये पर्वत, ये नदियाँ, यह पृथ्वी, यह विशाल आकाश-ये सब एकमेव शुद्ध ब्रह्म ही हैं। जिस तरह विषय-दर्पण में मनुष्य का चेहरा विकृत दिखायी देता है, उसी तरह गलत कल्पना के द्वारा यह नित्य वस्तु जगत् के रूप में दिखायी पड़ती है। एक चिदाकाश ही स्थूल नानात्व में प्रतीत होता है। सब-कुछ एक अखण्ड, अनादि, अनन्त, परब्रह्म ही है। उत्पत्ति, वृद्धि, भोग तथा जगत् का लय पूर्णतः मिथ्या ही है। जगत्-जाल ब्रह्म ही है। दश दिशाएँ ब्रह्म ही हैं। काल, आकाश, वस्तुएँ, कार्य, कारण, कर्ता, जन्म, मृत्यु, अस्तित्व-ये सब ब्रह्म ही हैं। ये सब ब्रह्म की शक्ति से प्रतीत हो रहे हैं। जगत् चैतन्य का ही चकाचौंध है। जो कुछ भी ऊपर-नीचे, यहाँ-वहाँ दृष्टिगत होता है; जो-कुछ भी अनेकानेक जीवों में, उद्भिजों में निवास करता है, वह ब्रह्म ही है। उसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं।

२५. एकता ही परम सत्य है। वियोग तो भक्ति के लिए है। अनेकता सत्य नहीं है। एक ही असीम, नित्य, नाम रहित, आकार रहित सत्ता है, वही सच्चिदानन्द है, वहीं मैं हूँ।

२६. अस्तित्व का सारांश सौन्दर्य, प्रेम तथा आनन्द है।

ज्ञानयोग क्या है ?

२७. विषय-वस्तुओं के चिन्तन का नाश, जीवत्व-भाव का क्षय तथा सबसे एकता की प्राप्ति ही ज्ञानयोग है।

२८. विचार का परम चैतन्य में लय होना ही योग है जहाँ चिन्तन रहित ज्ञान है, जहाँ ससीम असीम में ही जा मिलता है।

२९. विचार, भावना, संकल्प, बुद्धि, निश्चय तथा अहंकार का असीम चैतन्य में परिणत होना ही योग है।

३०. परम चैतन्य के सत्त्व से एकता स्थापित करना योग है।

३१. पारमार्थिक सत्ता का आत्यन्तिक निश्चय अथवा उस पर गम्भीर निदिध्यासन ही योग है।

३२. योग चार प्रकार के हैं (१) सेवा तथा आत्म-त्याग, (२) भक्ति तथा आत्मार्पण, (३) धारणा तथा ध्यान, और (४) विवेक तथा ज्ञान।

वेदान्तिक साधक का मार्ग

३३. जीवन्मुक्तों का अनुकरण न कीजिए। आप सभी साधक हैं। वसिष्ठ के स्त्री थी; परन्तु वे जन्मजात सिद्ध थे। जनक ने उग्र तपस्या तथा साक्षात्कार के अनन्तर राज्य-शासन का भार लिया। कृष्ण ने राजकीय जीवन बिताया; परन्तु वे ब्रह्म के साथ एक थे। आपको उनके समान आचरण नहीं करना चाहिए। कमी हुने

३४. ऐसा न सोचिए कि आप बड़े ज्ञानी हैं तथा आपने सब-कुछ समझ लिया है। हे मित्र ! आप कुछ भी नहीं जानते। आप धोखे में हैं। अभी भी ज्ञान का सागर लहरा रहा है जिसकी एक बूँद का भी आपने पूर्णतया आस्वादन नहीं किया है।

३५. आपकी हर श्वास असत्य की ओर बहती है; आप मिथ्या के दलदल में ही निवास करते हैं तथा कहते हैं- "सत्य की ही विजय होती है।" क्या आप सत्य को धोखा दे सकते हैं? अतः अपने प्रति सच्चे बनिए। काकी पोट।

३६. हे संकीर्ण-हृदय ! आप सोचते कुछ हैं, बोलते कुछ हैं तथा करते कुछ हैं। क्या आप ईश्वर को चाहते हैं? कितनी वीरता है आपमें कि आप आनन्द-धाम पर अपना अधिकार बताते हैं? आत्म-प्रवंचना न कीजिए। सरल बनिए।

३७. इस जगत् के तथाकथित कर्मशील व्यक्ति जो भौतिक लाभ तथा विषय-सुख के लिए ही कर्म करते हैं, सबसे अधिक भ्रम में पड़े हैं। वे अपनी आत्मा को भूल बैठे हैं। जानी जन इन लोगों के प्रति दया दशति हैं, क्योंकि ये जीवन की बाह्य क्रीडा में ही निमग्न हैं।

३८. जो ऐसा सोचते हैं कि आत्म-साक्षात्कार के द्वारा वे जगत् के प्रति अन्याय कर रहे हैं, वे अभी बाल-बुद्धि से ऊपर नहीं उठे हैं; क्योंकि वे नहीं जानते कि आत्मा में समस्त जगत् निहित है तथा साथ ही वह जगत् से अतीत है।

३९. जगत् को वे ही बचा सकते हैं जिन्होंने स्वयं को बचा लिया है। एक कैदी दूसरे कैदियों को मुक्त नहीं कर सकता। अतः स्वयं को पूर्ण बनाइए। स्वयं को मुक्त कीजिए।

४०. यदि वह ईश्वर अपने असीम हाथों से आपको देने लगे, तो आप अपने दो हाथों से कितना ग्रहण कर पायेंगे? यदि वह अपने असीम हाथों से लेना शुरू करे, तो आप अपने दो हाथों से कितना छिपा सकेंगे।

४१. यदि साधक परमात्मा की ओर एक कदम आगे रखे, तो परमात्मा उसकी ओर छलाँगें मारता हुआ दौड़ पड़ता है। परमात्मा का ऐसा ही स्वभाव है। परमात्मा के लिए जो-कुछ भी किया जाता है, उसका लाख गुना कर्ता को प्राप्त होता है। भगवान् कृष्ण ने अपने जीवन में अपने भक्तों के हितार्थ इस सत्य को चरितार्थ किया।

४२. लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ही साधना की जाती है। ब्रह्म ही परम लक्ष्य है। ब्रह्म के सिवा इस जीवन में अथवा अन्य जीवन में कुछ भी प्राप्य नहीं है। ब्रह्म को प्राप्त कर लेने पर सब-कुछ प्राप्त कर लिया जाता है। वह परब्रह्म सत्य, ईश्वर, असीम तथा सर्वस्व है।

४३. उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सचेतन प्रयास ही साधना है। परम सत्य के साक्षात्कार तथा अनुभव के लिए सचेतन मानसिक प्रयास ही आध्यात्मिक साधना है। इस प्रयास को योग कहते हैं। क

४४. राजा को आमन्त्रित करते समय आप अपने घर को कितना साफ-सुथरा रखते हैं! कितना अधिक निर्मल और पवित्र आपका हृदय होना चाहिए, यदि आप अमर परमेश्वर को बुलाना चाहते हैं!

४५. यह आवश्यक नहीं कि आध्यात्मिक वीर माँसल शरीर रखे। सबसे महान् ज्ञानी भी क्षय से पीड़ित हो सकता है। इसमें किसी तरह का विरोधाभास नहीं है।

४६. सोना अग्नि में पिघलाये जाने के बाद ही चमक धारण करता है। साधक भी अथक दुःखों से गुजर कर ही परम वस्तु को प्राप्त करता है।

४७. गाय के मधुर दूध को पीने से पहले मनुष्य को गाय के शरीर को धोना तया उसका गोबर उठाना पड़ता है। आत्म-सुख को प्राप्त करने के लिए भी साधक को महान् कष्टों का भोग करना पड़ता है।

४८. भय का अस्तित्व नहीं है। आध्यात्मिक साधक सैनिक से भी अधिक साहसी होता है। समस्त संसार उसके संग्राम में उसे सहायता देता है; क्योंकि वह उसकी खोज कर रहा है जो सभी के लिए सत्य है। मनुष्य किसी वस्तु से घृणा कर सकता है; परन्तु सत्य से कोई भी व्यक्ति घृणा नहीं कर सकता।

४९. आध्यात्मिक साधक कदापि असहाय नहीं होता। वह सिंह से भी अधिक वीर है। वह साहस तथा बल का मूल स्रोत है।

५०. यदि चौदहों लोक साधक से संग्राम करने आ जायें, तो वह उन्हें तृणमात्र ही समझेगा; क्योंकि वह अमरात्मा है, समस्त जगत् का शासक है।

५१. परमानन्द का मार्ग कण्टकाकीर्ण है। यह पथ विजन जंगलों से गुजरता है जहाँ भयानक व्याघ्र भरे हुए हैं। यह अभेद्य दुर्गों से सुरक्षित तथा भयंकर सर्पों द्वारा संरक्षित है। इस पर चलना कठिन है, आनन्द प्राप्त करना कठिन है। सच्चा साधक वही है जो सभी भयों तथा क्लेशों से अविचलित तथा अप्रभावित रहता है। उसके ऊपर प्रक्षिप्त कोई शत्र सफल नहीं होता, उसके विरुद्ध सोचा गया कोई भी विचार सफल नहीं होता।

५२. गुरु के विरोधाभासपूर्ण कथन तथा अपमानजनक शब्द शिष्य के लिए जाँच हैं। गुरु यह देखता है कि शिष्य इससे विचलित होता है या नहीं। बुद्धिमान् साधक को यह जानना चाहिए कि वह कैसे व्यवहार करे।

५३. कटु सत्य को मधुर झूठ के द्वारा कदापि छिपाने का प्रयत्न न कीजिए। यदि तलवार भी आपके हृदय से निकल जाये, तो भी स्पष्टवादी बने रहिए। सत्य पर ही टिके रहिए। यदि आप तथ्य को छिपा कर अपनी निम्नात्मा को बचाना चाहेंगे, तो परमात्मा की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। यदि आपका गला भी कट जाने वाला हो, तो भी याद रखिए कि यह जगत् मिथ्या है, ब्रह्म ही सत्य है। लोग

५४. माया आपके मस्तक तथा बुद्धि में ही निवास करती है। उसके प्रलोभनों से सावधान रहिए। अपने अहंकार को बचाने का प्रयत्न न कीजिए। सत्य के लिए इस शरीर का त्याग करने से भी न हिचकिए। इस जगत् में आपके लिए एक ही लक्ष्य है-असीम सत् में निमग्न हो जाना। आपको ईश्वर में ही अन्तर्लीन हो जाना चाहिए। आप खो कर ही पाते हैं, मर कर ही जीते हैं।

५५. आत्म-साक्षात्कार की मुक्ता को खरीदने के लिए ये सारे चौदहा भुवन, उनके निवासी, धन, सौन्दर्य, सुख तथा ऐश्वर्य भी पर्याप्त नहीं हैं।

५६. ब्रह्म में प्रवेश करने के लिए साधक को कोशों का परित्याग करना होगा, भावरणों को विदीर्ण करना होगा तथा माया का भेदन करना होगा। ब्रह्म-साक्षात्कार कँटीले वृक्ष के ऊपरी भाग में लगे हुए सुमधुर फल के समान है।

५७. एक बार भी आध्यात्मिक ध्यान के सुख का आस्वादन कर लेने पर मनुष्य स्वर्ग एवं पृथ्वी के समस्त सुखों के लिए भी उसे त्याग नहीं सकता।

५८. हे तृष्णा से पूर्ण नर ! आप किसी एक वस्तु की कामना क्यों करते हैं? सभी वस्तुओं की कामना कीजिए। अपने प्रेम से किसी को बहिष्कृत न कीजिए। सभी आपके हो जायें। यह सब आपका ही है।

५९. किसी जटिल समस्या को पकड़ कर मन हर कदम पर अपने को स्थिर करता नहीं हुआ आगे बढ़ता है। पहले तो थोड़ी-सी सफलता मिलती है; परन्तु बाद में अचानक ही समस्या का समाधान हो जाता है। मन अपनी विजय का साक्षात्कार करता है। योगाभ्यास में आध्यात्मिक अनुभव के सम्बन्ध में भी यही बात है।

६०. सदियों के अन्धकार को पलमात्र में प्रकाश दूर कर देता है। उसी तरह परम ज्ञान की एक झलक भी अज्ञान को मिटा सकती है।

६१. स्वामी जी ! क्या आप ध्यान में दूसरों के मन का अध्ययन करते हैं? आपके कहने का तात्पर्य क्या है? जब हम जीवन तथा अस्तित्व के मूल में ही प्रवेश कर लेते हैं, तो दूसरों के मन के अध्ययन करने का प्रश्न ही कहाँ? गम्भीर ध्यान में आप परम स्वरूप ही रहते हैं। क्या यह मूर्ख मन वहाँ भी रहेगा? आप मानसिक अवस्था से परे जा कर = महान् सत्य में ही निवास करते हैं।

दर्शन

६२. शक्ति का किसी विशेष दशा में स्पन्दन ही विषय-पदार्थ है। सार्वभौमिक शक्ति के स्पन्दन में विभिन्नता के कारण ही एक वस्तु दूसरे से भिन्न है। मनुष्य वृक्ष से भिन्न है; क्योंकि ये नित्य शक्ति की दो भिन्न-भिन्न गतियाँ हैं। यह शक्ति

अविनाशी तथा नित्य है। जब दो शक्तियों में स्पन्दन की कुछ समानता होती है, तो वे मित्र बन जाते हैं; यदि उनके स्पन्दन में एकता होती है. तो वे एक वस्तु ही बन जाती हैं। यह सारा जगत् एक ही शक्ति के विभिन्न स्पन्दन है। जब शक्ति के स्पन्दन पूर्णतः समान बन जाते हैं, तो सारा जगत् ही नित्य सत्ता में विलय हो जाता है।

६३. यह सारा जगत् आत्म-साक्षात्कार की क्रमिक तथा प्रगतिशील प्रणाली है। यह एक मत है। यह सारा जगत् अखण्ड एकरस सत्ता का ही भ्रामक रूप है। यह दूसरा मत है। पहला मत तो बौद्धिक है; परन्तु दूसरा अपरोक्षानुभव पर आधारित है। प्रथम मत ज्ञान का प्रारम्भ है तथा दूसरा ज्ञान की चरमावस्था।

६४. "सारा जगत् ही परब्रह्म है"- यही अद्वैत-दर्शन का सारांश है। यह जगत् स्वतः मिथ्या नहीं है, क्योंकि यह ब्रह्म है; परन्तु जगत् के प्रति विभिन्न धारणाएँ मिथ्या हैं, क्योंकि नानात्व परम सत्य नहीं है।

६५. यह जगत् सत्य की ही अभिव्यक्ति है। यह जगत् सत्य का ही विवर्त है।

६६. अज्ञान अस्तित्व को अनस्तित्व, चैतन्य को जड़ तथा आनन्द को दुःख के रूप में प्रतीत कराता है। यह भ्रान्ति को ही सत्य, मूर्खता को ही ज्ञान तथा दुःख को ही सुख बना डालता है।

६७. तथ्यों में सैद्धान्तिक निश्चय की अपेक्षा वैज्ञानिक व्याख्या में रुचि रखना अच्छा है। वैज्ञानिक व्याख्या दैनिक आहार के द्वारा मनुष्य को सबल बनाने के समान है; परन्तु सिद्धान्त तो एक ही बार में अपरिमित आहार खिला देने के समान है। उदाहरण-स्वरूप "सब-कुछ ब्रह्म ही है" यह सिद्धान्त है जो साधारण व्यक्ति के लिए खतरनाक ही है; परन्तु इसकी वैज्ञानिक व्याख्या के द्वारा मानवता तथा जगत् को ईश्वरीय बनाने में सहायता मिलेगी।

६८. आदर्शवाद तीन प्रकार के हैं- काल्पनिक, वास्तविक तथा पारमार्थिक। पहले के अनुसार यह सारा जगत् व्यक्ति के मन की कल्पना है। दूसरा कहता है कि जगत् हिरण्यगर्भ या ईश्वर की कल्पना है। तीसरा कहता है कि जगत् ब्रह्म का ही विवर्त है जो काल्पनिक तथा वास्तविक दोनों सिद्धान्तों को ग्रहण करते हुए उनका अतिक्रमण करता है। प्रथम सिद्धान्त के अनुसार पुरुषार्थ की आवश्यकता है; दूसरे के अनुसार ईश्वरीय कृपा की तथा तीसरे के अनुसार ज्ञान की जो न तो पुरुषार्थ है और न ईश्वरीय कृपा ही। कर्मयोगी प्रथम सिद्धान्त को, भक्तियोगी द्वितीय सिद्धान्त को तथा ज्ञानयोगी तृतीय सिद्धान्त को पसन्द करेंगे।

६९. यह जगत् विचारों से शासित है। विचार ही व्यवहार का प्रारम्भ है। विचार से ही कर्म उत्पन्न होते हैं।

७०. जगत् की वस्तुएँ ब्रह्म-साक्षात्कार के लिए सीढ़ी का काम करती है।

७१. अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा मन का नियन्त्रण ही स्वतन्त्रता-प्राप्ति का एकमेव साधन है। वास्तविक स्वतन्त्रता अहकार द्वारा प्राप्त नहीं होती। मनुष्य जिस स्वतन्त्रता को चाहता है, वह तो स्वतन्त्रता की गलत धारणा है। वह जानता है कि उसे मुक्त होना चाहिए; परन्तु यह नहीं जानता कि सुख कहाँ है। वह शाश्वत जीवन जीना चाहता है; परन्तु यह नहीं जानता कि इसे कैसे प्राप्त किया जाये। वह सब-कुछ जानता है; परन्तु यह नहीं जानता कि ज्ञान की प्राप्ति कैसे हो। मनुष्य स्वरूपतः सच्चिदानन्द है। वह इसे जाने बिना ही इसके लिए संघर्ष करता रहता है। मनुष्य की वर्तमान स्थिति उस सच्चिदानन्द की महान् अवस्था से बहुत बड़ा पतन है। हम सभी यहाँ तक कि अचेतन भी जानते हुए अथवा अनजाने सच्चिदानन्द की अवस्था के लिए प्रयत्नशील हैं। एक सूखी पत्ती भी उड़ती हुई असीम की ओर जाती है। हर श्वास, हर विचार, हर शब्द, हर कर्म हमें स्वरूप की ओर ही ले जाते हैं। आध्यात्मिक साधना के द्वारा - जगत् के प्रवाह के विरुद्ध गमन के द्वारा मनुष्य स्वरूप का साक्षात्कार कर सकता है।

७२. क्या आप मृत्यु को बुरी समझते हैं? मृत्यु तो चैतन्य का परिवर्तन मात्र है। यह न तो बुरी है और न भली। अमृतत्व की ओर अग्रसर होने के लिए यह आवश्यक है।

७३. निम्न मार्गों की आवश्यकताओं को पूर्ण किये बिना कोई भी उन्नत मार्ग का अवलम्बन नहीं कर सकता। ब्रह्म-साक्षात्कार से पहले स्थूल अभिव्यक्तियों की माँगों को पूर्ण करना होगा।

७४. सत्य का हर उन्नत अंश निम्न अंश से अधिक ठोस तथा व्यापक होता है; अतः परमानन्द अवश्य ही सर्वग्राही है।

७५. शिर तथा हृदय ज्ञान तथा आनन्द के ही प्रतीक हैं। ज्ञान में शक्ति निहित है। जहाँ ज्ञान है, वहाँ शक्ति अवश्य होगी।

७६. पुरुष, आत्मा, ब्रह्म, शिव- ज्ञान के प्रतीक हैं। नारी, प्रकृति, मन, माया, देवी-शक्ति के प्रतीक है। जब ज्ञान तथा शक्ति एक में विलीन हो जाते हैं, तो आनन्द की अभिव्यक्ति होती है। जब तक ये दोनों अलग-अलग रहते हैं, तब तक अपूर्णता तथा दुःख रहते हैं।

७७. शक्ति सापेक्ष है। यह परम नहीं है। यही कारण है कि ब्रह्म को सच्चिदानन्द ही कहा है।

अहंकार का विनाश

७८. अहंकार का निषेध कीजिए। अपनी पृथकता को नष्ट कीजिए। आत्म-दमन कीजिए। कष्ट सहिए तथा सुखों का उत्सर्ग कीजिए।

७९. अपने अहं की वासनाओं को पूर्ण न कीजिए। यह तो विषाक्त ज्वालाओं की ही माँग करता है। यह पतंगे के समान अग्नि को सुखद समझ कर उसमें जल मरता है। यह बालक के समान कुएँ में गिरने के लिए दौड़ता है।

८०. यदि आप जीना चाहते हैं, तो नम्र बनिए। आत्म-दमन कीजिए।

८१. शुष्क बुद्धि वाले व्यक्ति को धिक्कार है। वह संकीर्णता तथा धूर्तता का परित्याग नहीं कर सकता। वह अपनी आत्मा को ही धोखा देता है। वह चिरन्तन दुःख का स्वामी है। वह सत्य से बहुत दूर है। उसने पाप से ही सम्बन्ध जोड़ा है।

८२. हे मद की पिटारी ! अपनी विद्वत्ता को फेंक डालिए। जो कुछ भी प्रिय है, उसका परित्याग कर अन्तर्ज्योति का दर्शन कीजिए।

८३. अहंकार असीम के रूप में फूट पड़ता है अथवा शून्य में ही निमग्न हो जाता है। ये ही दो मार्ग हैं जिनके द्वारा अहंकार विनष्ट होता है।

८४. परमात्मा का साक्षात्कार तभी हो सकता है, जब मनुष्य साधना में सच्चा हो। अहंकार से जितना ही कम सम्बन्ध होगा तथा विषय-जगत् से जितना अधिक विलगाव होगा, उतना ही शीघ्र ब्रह्म-साक्षात्कार की प्राप्ति होगी।

८५. जितना ही अधिक हम अहंकार को पद-दलित करते हैं, उतना ही अधिक हम ब्रह्म के निकट होते हैं। अहंकार का विनाश ही ब्रह्म का स्थान ग्रहण कर लेता है।

आन्तरिक साधना

८६. जितना ही अधिक आप जगत् का परित्याग करेंगे, उतना ही अधिक आप पूर्ण बनेंगे और पूर्ण मुक्ति के निकटतर होते जायेंगे।

८७. आत्मा ही एकमेव प्रिय है। यदि आत्मा से अन्य कोई वस्तु प्रिय है, तो वह शीघ्र ही विनष्ट हो जायेगी; इसमें सन्देह नहीं।

८८. यदि आप सब-कुछ देखना चाहते हैं, तो बुद्धि की आँखों को निकाल लीजिए। यदि आप सर्वत्र विचरण करना चाहते हैं, तो बुद्धि के पैर तोड डालिए। यदि आप सब-कुछ बनना चाहते हैं, तो ज्ञान-खड्ग से बुद्धि को मार डालिए। जब आप सम्पूर्ण को सेही प्राप्त करते हैं, तो हिस्से से आसक्ति कहाँ?

८९. असीम वस्तू से ही आसक्त होइए, आपको किसी वस्तु का अभाव न रहेगा, आप परिपूर्ण हो जायेंगे।

९०. इन्द्रियों के सभी द्वारों को बन्द कर डालिए। हृदय-गुहा में निवास कीजिए। महान् सत्य पर ध्यान कीजिए। सत्य के सागर में स्वयं को निमग्न कर डालिए।

९१. सत्य के जितना ही निकट हम जायेंगे, उतना ही अधिक सुखी बनेंगे; क्योंकि सत्य का स्वरूप परम आनन्द है।

९२. वस्तु-विशेष के प्रति प्रेम का परित्याग कर असीम पूर्ण वस्तु के साथ आसक्ति रखने से मनुष्य बुद्धि खो बैठता है; परन्तु असीम के प्रति प्रेम के द्वारा हम अमर सुधा का पान करते हैं। तदनन्तर न तो शोक रहता है और न मोह।

९३. शिशु जब तक माता के स्तन से दूध नहीं पीता, तब तक वह रोना-सिसकना बन्द नहीं करता, उसी प्रकार है आत्मानन्द ! जब तक मैं अमृत-मधु का पान न कर लूँ, इस दहकती बालुका भूमि में रुदन करना बन्द न करूँगा।

९४. शक्ति अथवा बल के द्वारा विजय नहीं पायी जाती; सत्य, करुणा, दया तथा धर्म के द्वारा ही विजय मिलती है।

९५. सत्त्व ज्योति तथा शुद्धता है, रजस् क्रिया तथा राग है और तमस् अन्धकार तथा जड़ता है।

९६. अपनी योग्यताओं के प्रदर्शन से विषय-सम्पर्क द्वारा भौतिक विलास के साधनों की प्राप्ति होती है, अहंकार स्थूल बनता है तथा जीव-भाव सबल बनता है। ये आराम के साधन आत्मा की उन्नत आकांक्षा के मार्ग में बाधक हैं। अतः मनुष्य अपने ज्ञान को आन्तरिक ध्यान तथा आध्यात्मिक प्राप्ति में लगाये, उसे जगत् के बाह्य पदार्थों में कदापि न खोये। उस ज्ञान को धिक्कार है जो अहंकार के भोगों का साधक है। वहीं सच्चा ज्ञान है जो अमर जीवन के द्वार को खोलता है।

नित्य ब्रह्म के धाम में फैलें। इस पार्थिव जगत में उनके प्रसार से क्या लाभ ? देवलोक में ९७. हमारी क्षमता, हमारी महत्ता, हमारे नाम तथा यश, हमारी विविध कामनाएँ भी उनसे कोई तात्पर्य नहीं। ऐसे प्रलोभनों का संवरण कर, उन्हें उस शक्ति के रूप में परिणत करना चाहिए जिससे जीवन के अन्तरतम सत्त्व का प्रकाशन हो सके।

९८. उन लोगों पर दया आती है जो आत्मा की गहराई में प्रवेश किये बिना ही ऐसा सोचने लगते हैं कि उनका जन्म विश्व के कल्याणार्थ हुआ है। वे ऐसा सोचते हैं कि चैतन्य को उन्नत किये बिना ही वे इस पृथ्वी पर स्वर्ग ला देंगे।

९९. निष्काम सेवा मनुष्य को ब्रह्म के निकट लाती है। सबसे महान् सेवा सदा निष्काम होगी।

१००. एक शरीर दूसरे शरीर की सेवा कर सकता है, एक मन दूसरे मन की सेवा कर सकता है; परन्तु एक आत्मा दूसरे आत्मा की सेवा नहीं कर सकती। यदि सभी में एक आत्मा का साक्षात्कार हो गया, तो यही सबसे बड़ी सेवा है। यदि आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाये, तो यही जगत् की सबसे बड़ी सेवा है। सेवा, प्रार्थना, पूजा तथा जो-कुछ भी शुभ है, वह आत्म-साक्षात्कार ही है।

१०१. जीवन-संग्राम से गुजरते हुए मनुष्य को ज्ञान का कवच धारण करना होगा, विवेक की ढाल से उसे अपनी रक्षा करनी होगी तथा अनुशासन के खड्ग से अज्ञान को विनष्ट करना होगा।

१०२. ब्रह्म-साक्षात्कार के लिए शिर तथा हृदय का एक होना आवश्यक है। सम्पूर्ण व्यक्तित्व को रूपान्तरित होना होगा, उसके एक पहलू को ही नहीं।

१०३. सबसे अधिक अपमान को प्राप्त करना पूर्णता का प्रारम्भ है। सबसे अधिक दुःख तथा शोक साधुता का प्रारम्भ है।

१०४. मनुष्य को अधिकाधिक अपमान प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए। यदि लोग उसे भला मनुष्य समझें, तो वह स्वयं को उनके समक्ष दुष्ट सिद्ध करे। वह उनके प्रेम से छुटकारा पा जायेगा। सारा जगत् उसका विरोध करेगा, तभी वह प्रगति करेगा। सारा जगत् उसे त्याग देगा तथा अपमानित करेगा। सांसारिक सुख से साक्षात्कार नहीं मिल सकता। सभी उससे घृणा करें, तभी उसकी आत्मा अनुशासित होगी। इस पार्थिव जगत् से उसे सहायता नहीं मिलनी चाहिए।

१०५. लोग आपको कितना भी धिक्कारें, आप अपने आदर्श पर अटल रहें। मनुष्य को वेदान्त के परम आदर्श पर टिके रहना चाहिए- विनाश भी क्यों न हो जाये, वह डिगे नहीं।

१०६. किसी भी अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए कितना समय लगेगा, यह ब्रह्म के साथ एकता की भावना की गम्भीरता पर निर्भर करता है। जो व्यक्ति विश्व के तीन-चतुर्थांश को अपनी आत्मा समझता है, वह किसी वस्तु को उस व्यक्ति से अधिक शीघ्र प्राप्त कर लेगा जो आधे विश्व को ही अपनी आत्मा मानता है। जो लोग ऐसा अनुभव करते हैं कि उनका शरीर ही उनकी आत्मा है तथा विश्व की सभी वस्तुएँ उनसे अलग हैं, वे कदापि सुखी जीवन नहीं बिता सकते। वही सबसे अधिक सुखी व्यक्ति है जिसने समस्त जगत को आत्मा मान कर अपने व्यक्तित्व भाव को विलीन कर दिया है। वह अमर, शक्तिशाली, सुखी तथा सत्य एवं ज्ञान का सागर है।

१०७. ब्रह्मानुभव की प्राप्ति के लिए वैयक्तिक प्रयास ही ब्रह्म-भावना है। ब्रह्मानुभव में आत्मा नित्य, शुद्ध, पूर्ण, सर्वज्ञ, मुक्त, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, शान्त, शिव, अद्वैत तथा सच्चिदानन्द में विलीन हो जाती है।

१०८. हे मन, अपनी योजनाओं को बन्द करो। शरीर तथा बुद्धि के लिए तृष्णाओं की हद हो चुकी है। हर क्षण का उपयोग करो। काल वह चूहा है जो शनैः-शनैः जीवन-सूत्र को काटता जाता है। जीवन किसी भी क्षण समाप्त हो सकता है। ऐसा विश्वास न करो कि तुम विषयों के उपभोग के लिए जीवित रहोगे। मृत्यु कभी भी इस शरीर को अपना शिकार बना सकती है। इस जगत् की वस्तुओं की तृष्णा न कीजिए। जीवन में गौरव की कामना न कीजिए। अपने नाम को जगत् में अमर बनाने की योजना न बनाइए, अन्यथा आप शून्य में ही अमर बनेंगे। लोगों से बातें न कीजिए,

अन्यथा आप आकाश से ही बातें करेंगे। आकाश को ढोल समझ कर न पीटिए। कल्पना करना बन्द कीजिए। योजना बनाना बन्द कीजिए।

१०९. असीम सुख तथा असीम तृप्ति- ये दोनों एक-साथ नहीं चल सकते। जहाँ एक है, वहाँ दूसरा नहीं। अमर तथा नश्वर-ये दोनों विरोधी हैं।

११०. "मैं असीम हूँ"- ऐसा कहना अभिमान नहीं है। "मैं नित्य हूँ" - ऐसा अनुभव करना अहंकार नहीं है। ऐसा अभिमान अथवा अहंकार परम साक्षात्कार है।

१११. श्रीमान् ! क्या आप बतला सकते हैं कि पूर्ण शान्ति कैसे पायी जा सकती है? सारी खिड़कियों और दरवाजों को बन्द कर अन्तरतम प्रकोष्ठ में सो जाइए।

ही सत्य के स्वरूप को समझ सकता है। ध्यान के लिए बैठते ही ऐसे व्यक्ति का मन ११२. सच्चे दार्शनिक का मन चमकते हुए स्फटिक के समान होता है। वह तत्क्षण अन्तरतम वस्तु की ओर विचरण करने लगेगा। वह जरा भी विक्षेप का अनुभव न करेगा; क्योंकि दार्शनिक विचार की अग्नि में उसका मन शुद्ध हो गया है।

११३. आध्यात्मिक सत्यों को ग्रहण करने के लिए या तो कुशाग्र बुद्धि होनी चाहिए अथवा एक सत्य के लिए गम्भीर श्रद्धा तथा भक्ति होनी चाहिए। यदि ये दोनों गुण किसी व्यक्ति में नहीं हैं, तो वह आध्यात्मिक मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकता।

११४. ज्ञान-साधना में 'किसी लक्ष्य पर ध्यान' जैसी कोई वस्तु नहीं है। केवल बौद्धिक विश्लेषण, अन्तर्निरीक्षण तथा बोध ही ज्ञान-साधना है जिससे अहंकार का विनाश हो जाता है तथा बुद्धि भी विलीन हो जाती है। बुद्धि से इसका प्रारम्भ होता है तथा बुद्धि के विनाश में ही इसकी परिसमाप्ति हो जाती है। बुद्धि के नष्ट होने पर अपरोक्षानुभव की प्राप्ति होती है जो विषय-विषयी सम्बन्ध से अतीत है।

११५. ॐ का उच्चारण सभी शब्दों तथा नादों को सम्मिलित करना है; अतः यह शब्द ध्वनि की सबसे महान् अभिव्यक्ति है। यह सभी वाणियों तथा वेदों का आधार है। सारे शब्द तथा सारी भाषाएँ इस नित्य ॐ से निकले हैं।

११६. परम स्वतन्त्रता के लिए सबसे अधिक बलिदान की आवश्यकता है। पूर्ण अनुभव के लिए सबसे अधिक मूल्य चुकाना पड़ेगा। आत्मा के आनन्द के लिए इस जगत् की प्रियतम तथा मधुरतम वस्तु का भी परित्याग करना पड़ेगा।

११७. नित्यता तथा अमरता की प्राप्ति के लिए हमें अपनी सबसे अधिक प्रियतम वस्तु को मूल्य के रूप में देना होगा। अमर आत्मा के आनन्द की प्राप्ति के लिए हमें अपने पृथक् अस्तित्व से, अपने स्व से अलग होना होगा।

११८. किसी सीमित वस्तु की ओर निर्दिष्ट करने पर प्रेम मलिन हो जाता है। अपने से ही प्रेम कीजिए।

११९. आत्म-साक्षात्कार के लिए ज्वलन्त मुमुक्षुत्व हो, भूमा के लिए प्रेम की प्रज्जलित अग्नि धधके; तभी आप मुक्त होंगे।

मार्ग में बाधाएँ

१२०. सांसारिकता का अल्प लेश भी मनुष्य को ब्रह्म-साक्षात्कार के लिए अनधिकारी बना देता है। ठीक है, यह जगत् तो ब्रह्म ही है; परन्तु हमारा दृष्टिकोण तो ब्रह्म जैसा नहीं है।

१२१. नाम, शक्ति, धन तथा लिगये आत्म-पतन तथा बन्धन के चार दरवाजे हैं। सावधानीपूर्वक इन चारों का परित्याग करना चाहिए।
वेदान्तिक साधना

१२२. आत्म-रक्षण अथवा आत्म-वृद्धि के द्वारा बाह्य विकास प्राप्त करने के लिए काम मनुष्य की नैसर्गिक वृत्ति है। यह नानात्व उत्पन्न करने वाली शक्ति ब्रह्म-साक्षात्कार के विरुद्ध है।

१२३. शारीरिक चेतना अचानक ही ब्रह्म-प्राप्ति के सभी साधनों के विरुद्ध उपद्रव कर बैठती है। यह उपद्रव इतना अदम्य होता है कि साक्षात्कार तो दर्बल साधक के लिए असम्भव-सा ही प्रतीत होता है। है जो

१२४. अपने मन की स्थूलता तथा मलिनता के कारण लोग ध्यान में विघ्न तथा विफलता का अनुभव करते हैं। आत्मा पर ध्यान करने से पहले जीवन के स्वाभाविक नियमों तथा सत्यों का स्पष्ट और सम्यक ज्ञान अत्यावश्यक है। आवश्यक साधन के अभाव में मनुष्य अज्ञान में निमग्न हो सकता है।

ज्ञान तथा साक्षात्कार

१२५. एकमात्र अतल, असीम, तट रहित, अखण्ड, प्रज्ञान-आनन्द-घन का महासागर लहरा रहा है। भास्वर, प्रज्वलित ज्योति तथा अमृत-माधुर्य से उसकी तरंगें उल्लसित हो रही हैं। अनवरत ओंकार-नाद से वह महासागर घहरा रहा है। उस ब्रह्म-सत्ता में शान्ति तथा आनन्द की पर्वताकार तरंगें आपस में टकरा रही हैं। उसके सिवा कुछ है ही नहीं। यही ध्यान है।

१२६. परम अनुभव आत्म-विलय की अवस्था है, आत्म-अभिव्यक्ति की नहीं; क्योंकि आत्म-अभिव्यक्ति के लिए परिवर्तन तथा कर्म अनिवार्य हैं जिनसे आत्म-बन्धन की उत्पत्ति होती है।

१२७. परम साक्षात्कार से कोई भी बहिष्कृत नहीं है। एक आज साक्षात्कार करता है, तो दूसरा कल; परन्तु सभी को एक-न-एक दिन उसका साक्षात्कार करना ही है। मुक्ति के लिए चुनाव नहीं। सभी नित्य ब्रह्म ही हैं।

१२८. पण्डित बहुत हैं; परन्तु ज्ञानी तो बिरले ही हैं। वही ज्ञानी है जो जीवन-सत्त्व की सुधा पी कर सदा अर्धनिद्रा की अवस्था में उन्मत्त रहता है। उसकी जय हो ! हम सभी उसके दास हैं।

ज्ञान के उस भाग को प्रकट करता है जो किसी वस्तु के बाह्य स्पर्श से उद्दीप्त हो। १२९. ज्ञानी मनुष्य अपने सारे ज्ञान को एक ही समय व्यक्त नहीं कर सकता। वह

१३०. बहुत बार जीवन्मुक्त कुत्सित रूप धारण करते हैं तथा पागल के समान कार्य करते हैं। कभी-कभी उनका व्यवहार बहुत ही अप्रिय होता है जिससे मनुष्य बहत शीघ्र ही रुष्ट हो सकता है। वे मूर्खों की भाँति रहते हैं जिससे कि यह जगत् उनसे राग न करे। वे अपने स्वभाव को छिपा कर उन्मत्त शराबी की भाँति घूमते हैं। ये ही इस पृथ्वी के महान् पुरुष हैं, वे नहीं जो सामाजिक शिष्टाचार में कुशल हैं तथा राजा-महाराजाओं की भाँति रहते हैं। जिसने सत्य को प्राप्त कर लिया है, वह अज्ञान जगत के अनुकूल व्यवहार नहीं कर सकता। ऐसे महान् पुरुष इस पृथ्वी पर बहुत हैं;

परन्तु मोह के कारण यह जगत् उनको नहीं जानता तथा केवल उन्हीं लोगों को महान् समझता है जो जादू तथा चमत्कार दिखाया करते हैं। सत्य सदा गुप्त तथा अदृश्य रहता है। असत्य ही दृष्टिगोचर होता है। हम असत्य द्वारा ही ठग लिये जाते हैं।

१३१. आप ज्ञानी को उसके शब्दों तथा कर्मों से नहीं जान सकते। वह बाह्यतः पागल के समान हो सकता है; परन्तु अन्तर में वह जड़भरत तथा शुक महर्षि हो सकता है।

१३२. ज्ञानी के लिए सब-कुछ खेल है; परन्तु वह अपने हृदय में कुछ भी अनुभव नहीं करता। 'सब-कुछ एक है' - केवल इसी का अनुभव करता है।

१३३. परम चैतन्य-प्राप्त व्यक्ति अनजाने में ही उस स्थल को आकृष्ट कर लेता है जहाँ उसकी कामना की वस्तु रहती है। विद्युत् दामिनी की तरह उसकी आवश्यक वस्तुएँ उसी प्रकार दौड़ कर आती हैं जिस प्रकार नदियाँ समुद्र की ओर; क्योंकि वे उनकी आत्मा ही है। ज्ञानी मनुष्य बिना कार्य किये ही कर्म करता है, बिना इच्छा के ही उपभोग करता है। उसे किसी व्यक्ति को आदेश देने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि वह तो उस व्यक्ति की आत्मा ही है जिसे वह आदेश देना चाहता है। वह उन सभी वस्तुओं अथवा व्यक्तियों का स्वरूप ही है जिनके साथ वह व्यवहार करना चाहता है। अतः देवतागण भी उसके मार्ग में बाधा नहीं डाल सकते; क्योंकि वह देवताओं की भी अन्तरात्मा है। यदि उसकी ऐसी कामना हुई, तो पर्वत भी चलायमान हो जायेंगे तथा पृथ्वी भी ध्वस्त हो जायेगी। यदि वह आँख बन्द कर ले, तो सूर्य तमसाच्छन्न हो जायेगा। यदि वह श्वास लेता है, तो सभी प्राणी जीवित रहते हैं। यदि ऐसी उसकी कामना हुई, तो समस्त जगत् अनस्तित्व को प्राप्त करेगा। यदि उसका सत्संकल्प हुआ, तो नदियाँ प्रवाहित होंगी, अग्नि जलायेगी, वृक्ष फल-फूल से पूर्ण हो जायेंगे। उसकी कामना होने पर समस्त जगत् नित्य तथा अमृत अवस्था का अनुभव करेगा। ज्ञान-स्वरूप मुक्त-पुरुष की ऐसी ही महिमा है।

१३४. विचार-शक्ति तथा भावना-शक्ति पूर्ण अनुभव में विलीन हो जाते हैं। जिस क्षण सीमित वस्तु की मृत्यु होती है, उसी क्षण असीम का जन्म होता है। रात्रि का अवसान होते ही दिवस का विहान हो जाता है।

१३५. सबसे महान् व्यक्ति वे हैं जो आत्म-चैतन्य में निमग्न हैं। ये लोग ईश्वर के इतने निकट हैं कि कोई कर्म नहीं कर सकते। अतः वे संसार के लिए अज्ञात हैं।

१३६. अपने स्वरूप का बोध ही ईश्वर-दर्शन है। ईश्वर शैतान का भी स्वरूप है। निकृष्ट बुराई का भी मूल है। वह अन्तर्बाह्य सबको पूर्ण करता है तथा ऐसा कुछ भी नहीं है जो ईश्वर नहीं है।

१३७. ब्रह्म का उपासक ईश्वर-चैतन्य में निमग्न हो जाता है। वह आनन्द-सागर में डूब जाता है। वह आनन्द-सुधा में स्नान करता है। वह अमृत-रस का पान करता है। वह मूल को प्राप्त करता है जो जगत् का उद्गम है।

१३८. हे मेरे हृदय के प्रियतम ! अमरानन्द तुम कहाँ हो? मैं तुम्हारे बिना कैसे रह सकता है? तुमसे विलग हुए बहुत काल व्यतीत हो गया। आओ, आओ! मैं तुम्हारे बिना बहुत अशान्त हूँ।

१३९. "मैं सब हूँ" यही सत्य से अनुभव का प्रारम्भ है। मौन अस्तित्व ही इसकी परम उड़ान है।

१४०. कोई ऐसा पात्र नहीं जिस पर सत्य के स्वरूप को अंकित न किया जाये। कोई लेखनी ऐसी नहीं जो उसे लिखने का साहस न करे। ऐसा कोई जीवित व्यक्ति नहीं जो उसे व्यक्त करे। वह एकमात्र 'हैं'। जो कुछ भी है, वही है— बस

यहीं मामला समाप्त हो जाता है। उसके स्वरूप को व्यक्त करने का प्रयास उसकी महानता को नष्ट करना ही है। मैं महान् वस्तु हूँ। मैं यहाँ हूँ। मेरी महिमा की कोई सीमा नहीं है। मैं धन्य हूँ, अमर तथा महान् हूँ।

७. वेदान्त-सूत्र

अन्तरात्मा का स्वभाव

१. आत्म-चैतन्य अस्तित्व की चरम सीमा है।

२. परम सत्य मन का मन, नेत्र का नेत्र तथ श्रोत्र का श्रोत्र है।

३. आत्मा अवर्णनीय तथा अनिर्वचनीय है।

४. ब्रह्म जीवन का मूल तथा सभी वस्तुओं का अवसान है।

५. ब्रह्म अथवा आत्मा ही परम सत्य है। यह जगत् एकमात्र दृश्य ही है।

६. अन्तरात्मा सभी बाह्य अस्तित्वों पर शासन करती है।

७. ब्रह्म ही एकमेव सत्य है। सब कुछ उसी का विकार है।

८. ईश्वर सभी वस्तुओं का सूक्ष्म सार है।

९. ईश्वर जीवन का लक्षण है।

१०. कामना तथा प्रेम की सबसे बड़ी वस्तु ईश्वर ही है।

११. "द्वितीय" से ही भय की उत्पत्ति होती है।

१२. ब्रह्म तथा असीम "मैं" एक ही हैं।

१३. ईश्वर सत्यों का सत्य है।

१४. आत्मा के लिए ही सब-कुछ प्रिय है।

१५. आत्मा को प्राप्त कीजिए। आप सब-कुछ प्राप्त कर लेंगे; क्योंकि सब-कुछ आत्मा में ही है।

१६. सभी वस्तुएँ परमात्मा से चिनगारियों की तरह उन्नत होती हैं।

१७. आत्मा परम द्रष्टा, श्रोता तथा मन्ता है।

१८. निराकार, निर्गुण, निर्विशेष, निष्क्रिय- ये सभी ब्रह्म के निषेधात्मक गुण हैं।

१९. द्रष्टा देखता है और फिर देखता भी नहीं।

२०. आत्मा शरीर-रथ का सारथि है।

२१. मनुष्य के अंग-प्रत्यंग ईश्वर में उसी प्रकार केन्द्रित हैं जिस प्रकार आरे पहिये की नाभि में।

२२. ईश्वर काल का काल है। वह यम का भी शासक है। वह मृत्यु की भी

मृत्यु है।

२३. यह शरीर आत्मा की केंचुल है।

२४. आत्मा ज्ञात तथा अज्ञात से अतीत है।

२५. पदार्थ, जीवन, मन, बुद्धि, आनन्द - ये सभी ब्रह्म के रूप हैं।

२६. ब्रह्म खाने वाले को भी खा जाता है।

२७. ब्रह्म अन्तर्व्याप्त तथा अतीत है। 18815

२८. आत्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर तथा महान् से भी महत्तर है।

२९. बैठे हुए भी आत्मा चलता है।

३०. आत्मा दूर है तथा निकट भी। वह सांसारिक व्यक्तियों से दर है तथा विवेक-वैराग्य-सम्पन्न व्यक्तियों के निकट है।

३१. हिरण्यगर्भ ईश्वर से प्रथम उत्पन्न हुए।

३२. आत्मा सदा ज्ञान को जानने वाली है। यह कदापि विषय नहीं है।

३३. परमात्मा प्रकृति से अलग है; परन्तु जीवात्मा प्रकृति के माया जाल में बंधा हुआ है।

३४. ईश्वर मायावी है। प्रकृति उसकी माया-शक्ति है।

आत्म-साक्षात्कार के पूर्वापेक्ष्य

३४. जीवन को हानि न पहुँचाना, झूठ न बोलना, दूसरों की सम्पत्ति का दुरुपयोग न करना, शुद्धता, वैयक्तिक आवश्यकताओं में कमी लाना, उपासना तथा दान-ये ईश्वर-साक्षात्कार के लिए सहायक हैं।

३६. आहार तथा शरीर की शुद्धता, एकाग्रता, ईश्वर की उपस्थिति का अभ्यास तथा निष्काम सेवा-ये सभी ईश्वर-साक्षात्कार की ओर ले जाते हैं।

३७. सत्य, व्यक्तित्व की पूर्णता, दया, उदारता तथा शिष्टता-ये पाँच सद्‌गुण ईश्वर की ओर ले जाते हैं।

३८. शुद्धता, अहिंसा, सत्य, साहस, नम्रता, क्षमा, शम तथा सरलता- ये सभी चरित्र के घटक हैं।

३९. दुर्बलता तथा भूल-भरे जीवन के द्वारा आत्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती।

४०. पाप से विरत होना तथा अन्तर्मुख होना-ये आत्म-साक्षात्कार के लिए आवश्यक है।

४१. वैराग्य तथा नम्रता आत्म-साक्षात्कार के लिए आवश्यक है।

४२. सत्य, तप, अन्तर्दृष्टि, मुमुक्षुत्व तथा संन्यास-ये आत्म-साक्षात्कार के लिए अनिवार्य हैं।

४३. कामना रहित व्यक्ति ब्रह्म को प्राप्त कर अमर हो जाता है।

होगी। ४४. आत्म-साक्षात्कार के लिए आपको धन, सन्तान तथा यश से घृणा करनी

४५. मृत्यु-सम्बन्धी ज्ञान के बिना ज्ञान अधूरा ही रहता है।

४६. मन की शुद्धता आहार की शुद्धता पर अवलम्बित है।
साधना

आत्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया

४७. ॐ पर ध्यान करने से पाप का आवरण दूर होता है।

४८. ॐ चैतन्य की विविध अवस्थाओं का प्रतीक है।

४९. शरीर तथा प्रणव-इन दो अरणियों के मन्थन से आध्यात्मिक अग्नि निकलती है।

५०. प्रणव धनुष है, आत्मा शर है और ब्रह्म लक्ष्य है।

५१. आत्मा को अमृतत्व समझ कर उस पर ध्यान कीजिए।

५२. गीता का सन्देश है त्याग, महाभारत का सन्देश है धर्म, और उपनिषदों का सन्देश है जीवात्मा तथा परमात्मा के बीच तादात्म्य।

५३. यदि आपमें ज्ञान की कमी हो, तो सच्चाईपूर्वक ईश्वर से माँगिए। वह आपको प्रदान करेगा। सीधे ज्ञान के पास जाइए।

५४. मौन तथा आत्म-विकास में ही आपका बल निहित है।

५५. ईश्वरीय ज्योति की ओर मुड़ें। सत्वर शान्ति का यह मार्ग है।

५६. भारतीय दर्शन के अनुसार संस्कृति की चरम परिभाषा तत्त्वमसि है।

५७. आत्म-संयम का अर्थ है निम्न मन को उन्नत मन से नियन्त्रित करना जिससे आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ति हो।

५८. मुमुक्षु योगी नित्य-दिवस तथा नित्य-प्रकाश का अनुभव करता है।

५९. ज्योतिर्मय के रूप में ब्रह्म पर ध्यान कीजिए।

६०. आधार, महानता, आनन्द, ज्ञान तथा अस्तित्व के रूप में ब्रह्म पर ध्यान कीजिए।

६१. यदि देवता का उपासक अपने को देवता से अलग समझे, तो वह देवों का पशु बन जाता है।

६२. ज्ञाता को जानना सम्भव नहीं है; परन्तु आप समाधि अथवा अपरोक्षानुभूति

के द्वारा ज्ञाता का साक्षात्कार कर सकते हैं।

६३. शिशुवत् सरल जीवन ही आध्यात्मिक जीवन है।

६४. जीवात्मा का परमात्मा से मिलन ही अमृतत्व है ।

६५. जब आप अत्यन्त प्यास से पीडित हैं, तो आप प्यास अथवा जल के विषय में पुस्तके नहीं पढ़ते, आप भाषण सुनने नहीं जाते। आप वहाँ जाते हैं, जहाँ जल है और अपनी प्यास बुझाते हैं। उसी तरह आध्यात्मिक पिपास् को भी सभी वाद-विवादों को बन्द कर ध्यान के द्वारा ईश्वर-साक्षात्कार करना चाहिए।

६६. दिन-प्रति-दिन आध्यात्मिक अग्नि को सुलगाना चाहिए।

भले तथा बुरे से अतीत

६७. आत्मा अच्छे कर्मों से महान् तथा बुरे कर्मों से तुच्छ नहीं होती।

६८. ज्ञानी जन अच्छे कर्मों से महान नहीं होते तथा बरे कर्मों से अपनी महानता नहीं खोते।

६९. ज्ञानी को पाप नहीं छूता।

७०. सन्त अभेद्य चट्टान हैं। गा

माया-जाल

७१. माया दो प्रकार की है- अविद्या माया तथा विद्या माया। अविद्या माया बन्धन में ले जाती है तथा काम, क्रोध, मद, लोभ, घृणा आदि के द्वारा व्यक्त होती है।

७२. विद्या माया मुक्ति-पथ को ले जाती है तथा विवेक, वैराग्य एवं भक्ति के द्वारा व्यक्त होती है।

७३. प्रकृति लाल, श्वेत तथा काले रंगों से बनी है।

७४. माया दृश्य है। यह भ्रान्ति मात्र है। यह ईश्वर की भ्रामिका-शक्ति है।

७५. मनुष्य कामना, संकल्प तथा कर्म का समन्वय है।

७६. तत्त्व जीवात्मा का स्वागत करते हैं तथा उसे विषय-सुखों के अनुभवों को दे कर उसकी पूर्णता-प्राप्ति के अनन्तर उससे विदा ले लेते हैं।

सुषुप्ति का दर्शन

७७. जब मन श्वास पर टिक जाता है, तब निद्रा आ जाती है।

७८. सुषुप्ति में जीव सत्य अथवा परमात्मा से जा मिलता है।

श्रद्धा तथा बुद्धि

७९. बुद्धि योजनाओं से भरी हुई है। हृदय को प्रेम, सहानुभूति, दया तथा शान्ति से भर सकते हैं।

करेंगे। ८०. ईश्वर के प्रेम तथा करुणा में श्रद्धा रखने से आप सान्त्वना तथा शान्ति प्राप्त

आत्म-साक्षात्कार के फल

८१. आत्म-साक्षात्कार के अनन्तर भय विलुप्त हो जाता है।

८२. अभय ब्रह्म में निवास करने से मनुष्य निर्भयता प्राप्त करता है।

८३. आत्म-साक्षात्कार-प्राप्त मनुष्य को मोह अथवा शोक नहीं होता है।

८४. आत्मा के लिए एक दहन-बिन्दु है जिसको प्राप्त कर मनुष्य दिव्य बन जाता है। उसे दिव्य जीवन की प्राप्ति होती है। वह आध्यात्मिक जागरण प्राप्त करता है।

८. वेदान्त-साधना का सारांश

वेदान्त-साधना को निर्गुण ध्यान, प्रणव-उपासना अथवा ब्रह्म-उपासना भी कहते हैं। एक वर्ष तक निष्काम कर्म के द्वारा चित्त को शुद्ध बना लीजिए। विवेक तथा वैराग्य की प्राप्ति ही चित्त-शुद्धि का फल है। साधन चतुष्टय - विवेक, वैराग्य, षड्-सम्पत् तथा मुमुक्षुत्व को प्राप्त कीजिए, तब सद्गुरुदेव के पास जाइए। श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन कीजिए। बारह उपनिषदों तथा योगवासिष्ठ का सावधानीपूर्वक सतत अध्ययन कीजिए। महावाक्य - "तत्त्वमसि" के लक्ष्यार्थ को स्पष्टतः समझ लीजिए। चौबीसों घण्टे इस लक्ष्यार्थ का चिन्तन कीजिए। वही ब्रह्म-चिन्तन या ब्रह्म-विचार

है। अपने मन में सांसारिक विचारों को न घुसने दीजिए। वेदान्त-साक्षात्कार तर्क के द्वारा नहीं, सतत निदिध्यासन के द्वारा भ्रमर-कीट-न्याय से प्राप्त होता है। आप तदाकारता, तद्रूपता, तन्मयता अथवा तल्लीनता प्राप्त करते हैं।

वेदान्त-साधना के लिए आसन की आवश्यकता नहीं है। आप बातें करते हुए, बैठे हुए, कुरसी पर आराम करते हुए, टहलते हुए, खाते हुए हर समय ध्यान कर सकते हैं।

महावाक्यों के वास्तविक अर्थ के चिन्तन के द्वारा अपने सात्त्विक अन्तःकरण में ब्रह्माकार-वृत्ति को उत्पन्न कीजिए। जब आप यह भावना करेंगे कि आप असीम हैं, तो ब्रह्माकार-वृत्ति की उत्पत्ति होगी। यह वृत्ति अविद्या को दर करती, ब्रह्मज्ञान उत्पन्न करती तथा अनन्तः स्वतः नष्ट हो जाती है। यह निर्मली के बीज के सदृश है, जो पानी के मल को दर कर उस मल से साथ-साथ स्वयं भी नीचे बैठ जाता है।

ॐ पर ध्यान कीजिए

ध्यान के कमरे में चले जाइए। पद्म, सिद्ध, स्वस्तिक या सुखासन पर बैठ जाइए। मांसपेशियों को ढीला छोडिए। आँखों को बन्द कर लीजिए। दोनों भौंहों के बीच के स्थान त्रिकूटी पर धारणा कीजिए। ब्रह्म-भावना के साथ ॐ का जप कीजिए। यह भावना अनिवार्य है। चेतन मन को शान्त बना लीजिए।

मानसिक जप कीजिए

सदा अनुभव कीजिए :

मैं हूँ सर्वव्यापक ज्योति का सागर ॐॐॐ

मैं हूँ असीम ॐॐॐ

मैं हूँ असीम ज्योति ॐॐॐ

मैं हूँ व्यापक परिपूर्ण ॐॐॐ

मैं हूँ ज्योतिर्मय ब्रह्म ॐॐॐ

मैं हूँ सर्वशक्तिमान् ॐॐॐ

मैं हूँ सर्वज्ञ ॐॐॐ

मैं हूँ परमानन्द ॐॐॐ

मैं हूँ सच्चिदानन्द ॐॐॐ

मैं हूँ पूर्ण शुद्ध ॐॐॐ

मैं हूँ पूर्ण यश ॐॐॐ

सारी उपाधियों का निषेध हो जायेगा। सारी ग्रन्थियों का भेदन हो जायेगा। सूक्ष्म आवरण का भी छेदन हो जायेगा। पंचकोश का अध्यास दूर हो जायेगा। आप निस्सन्देह जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करेंगे। **"ब्रह्मविद ब्रह्म", "**ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति**"**. सच्चिदानन्द अवस्था में निवास करेंगे। आप परम ज्ञान, परमानन्द, परम साक्षात्कार तथा आप शुद्ध सच्चिदानन्द व्यापक परिपूर्ण ब्रह्म हो जायेंगे। "नास्ति अत्र संशयः" इसमें संशय नहीं।

आत्म-दर्शन में कोई कठिनाई नहीं है। आप राजा जनक के समान पल मात्र में ही आत्म-साक्षात्कार कर सकते हैं। फूल को मसलने में अथवा दाने को बरतन के ऊपर से लुढ़कने में जितना समय लगता है, उतने ही समय में आप आत्म-साक्षात्कार कर सकते हैं। आपको सच्चा, सतत तथा गम्भीर अध्ययन करना चाहिए। आप दो-तीन वर्षों में अवश्य सफलता प्राप्त करेंगे।

आजकल ब्रह्म के विषय में बहुत से व्याख्याता हैं; परन्तु पुष्पित शब्दों अथवा भाषणों से मनुष्य ब्रह्म नहीं बन सकता। सतत गम्भीर साधना ही मनुष्य को अपरोक्षानुभव प्रदान कर सकती है। जिस तरह आप अपने समक्ष ठोस दीवार देखते हैं, उसी तरह ज्ञानी भी ब्रह्म का ठोस दर्शन करता है।

नोट **:** गौडपाद कारिका के साथ माण्डूक्य उपनिषद् का सावधानीपूर्वक अध्ययन कीजिए।

अध्याय १७:विभिन्न योगों में साधना के फल

१. योग की परिभाषा

'योग' शब्द संस्कृत धातु युज् से बना है जिसका अर्थ है 'मिलना'। आध्यात्मिक अर्थ में यह वह प्रक्रिया है जिससे जीवात्मा तथा परमात्मा की एकता का साक्षात्कार होता है। मनुष्य की आत्मा ईश्वर का साक्षात्कार करती है। जो विज्ञान इस साक्षात्कार की प्राप्ति का मार्ग बतलाता है, उसे योग-शास्त्र कहते हैं।

योग आध्यात्मिक विज्ञान है जो जीवात्मा का परमात्मा के साथ योग के मार्ग को बतलाता है। योग ईश्वरीय विज्ञान है जो जीव को दृश्य जगत् से छुड़ा कर ब्रह्म के साथ छोड देता है। इससे अनन्त सुख, परम शान्ति, असीम ज्ञान, अबाध आनन्द तथा नित्य जीवन की प्राप्ति होती है।

साधारण अर्थ में हम योग से कर्मयोग भक्तियोग, राजयोग, ज्ञानयोग, हठयोग, मन्त्रयोग, लययोग, कुण्डलिनीयोग अर्थ रखते हैं; परन्तु विशेष अर्थ में पतंजलि महर्षि का राजयोग या अष्टांगयोग ही योग कहा जाता है।

२. चार योग

जिस तरह एक ही कोट जान, दास अथवा राम के अनुकूल नहीं है, उसी तरह एक ही मार्ग सभी के लिए अनुकूल नहीं होता। चार भिन्न प्रकृति वाले मनुष्यों के लिए चार योग हैं। वे सभी एक ही लक्ष्य तक ले जाते हैं। मार्ग भिन्न हो सकते हैं, परन्तु लक्ष्य एक ही है। कर्मशील, भक्तिपरायण, रहस्यवादी तथा दार्शनिक व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों के अनुसार इस परम सत्य की प्राप्ति के चार मार्गों के नाम क्रमशः कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग तथा ज्ञानयोग हैं।

ये चार मार्ग एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं, इसके विपरीत ये एक-दूसरे के पूरक हैं। दे केवल यही बतलाते हैं कि हिन्दू-धर्म के विभिन्न साधन एक-दूसरे से समरसता रखते है। धर्म के द्वारा मनुष्य का सम्पूर्ण विकास होना चाहिए। हृदय, बुद्धि (शिर) तथा हाथ-इन सभी का विकास होना चाहिए। तभी मनुष्य पूर्णता को प्राप्त कर सकता है।

एकांगी विकास प्रशंसनीय नहीं है। कर्मयोग मल को दूर कर मन को शुद्ध बनाता तथा हाथों का विकास करता है। भक्तियोग विक्षेप को दर करता तथा हृदय को विकसित बनाता है। राजयोग मन को स्थिर बना कर उसे एकाग्र करता है। ज्ञानयोग अज्ञान के आवरण को दूर कर संकल्प तथा विचार-शक्ति को विकसित करता तथा आत्मज्ञान प्रदान करता है। अतः मनुष्य को चारों योगों का अभ्यास करना चाहिए। आपको ज्ञानयोग का आधार रखना चाहिए और अन्य योगों को सहायक बनाना चाहिए जिससे सत्वर उन्नति हो सके।

३. सम्पूर्ण विकास की आवश्यकता

कर्म, भावना तथा बुद्धि-ये तीन घोड़े इस शरीर रथ में जुते हुए हैं। उनमें एकता होनी चाहिए, तभी यह रथ निर्बाध गति से चल सकेगा। विकास सर्वांगीण होना चाहिए। आपके शंकर का शिर, बुद्ध का हृदय तथा जनक का हाथ होना चाहिए। भक्ति के बिना वेदान्त शुष्क है। ज्ञान के बिना भक्ति अधूरी है। जिसने जगत् को अपनी आत्मा के रूप में जान लिया है, वह उसकी सेवा किये बिना कैसे रह सकता है? भक्ति ज्ञान से बहिष्कृत नहीं है; अपितु पूर्ण ज्ञान-प्राप्ति में सहायक है।

४. विवादास्पद विषय का समाधान

यह विवादास्पद विषय है कि भक्ति का आधार ज्ञान है या नहीं। कुछ लोग कहते हैं कि भक्ति की प्राप्ति के लिए ज्ञान साधन है। वे कहते हैं कि ईश्वर का स्पष्ट ज्ञान हुए बिना कोई भक्ति कैसे कर सकता है? कुछ प्रख्यात भक्त कहते हैं कि ज्ञान तथा भक्ति स्वतन्त्र मार्ग हैं। वे घोषणा करते हैं कि भक्ति स्वतः ही फल है, उसके लिए ज्ञान की आवश्यकता नहीं रहती है। विद्युत्-विज्ञान को जानने मात्र से क्या जंगल में भटकने पर मनुष्य उससे लाभ उठा सकेगा? क्या आहार के ज्ञान मात्र से मनुष्य अपनी क्षुधा मिटा सकेगा?

यह कहना गलत है कि भक्ति तथा ज्ञान एक-दूसरे के विरोधी हैं। पूर्ण ज्ञान ही प्रेम है। पूर्ण प्रेम ही ज्ञान है। पराभक्ति तथा ज्ञान एक ही हैं। भगवान् कृष्ण कहते हैं :

"जो सतत युक्त हो कर प्रीतिपूर्वक मेरा भजन करते हैं. उन्हें मैं बुद्धियोग प्रदान करता हूँ जिससे वे मुझे प्राप्त कर लेते हैं"

(गीता १०/१०/

पुनः आप गीता में पायेंगे

"श्रद्धावान् पुरुष ज्ञान को प्राप्त करता है" (गीता : ४/३९)।

५. राजयोग

अष्टांगयोग

राजयोग के आठ अंग है यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह यम हैं। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान नियम हैं। यम-नियम के अभ्यास से योग का साधक अपने मन को शुद्ध बनाता है। मैत्री, करुणा, मुदिता के विकास से वह द्वेष, ईर्ष्या तथा हृदय की शुष्कता को नष्ट कर मन की शान्ति प्राप्त करता है। आसनों के अभ्यास से वह शरीर की स्थिरता तथा दृढ़ता प्राप्त करता है। प्राणायाम के अभ्यास से वह मन के विक्षेप को दूर करता तथा रजस् का निवारण करता है। उसका शरीर हलका हो जाता है। प्रत्याहार के अभ्यास से वह शक्ति तथा मन की शान्ति प्राप्त करता है। मन को किसी वस्तु, केन्द्र या विचार में स्थिर करना धारणा है। ध्यान एक ही वृत्ति का प्रवाह है। समाधि अति-चैतन्यावस्था है। धारणा, ध्यान तथा समाधि की संयुक्त साधना को संयम कहते हैं। बाह्य वस्तुओं पर संयम करने से वह विभिन्न सिद्धियों को तथा

तन्मात्राओं के गुप्त ज्ञान को प्राप्त करता है। इन्द्रिय, अहंकार तथा मन पर धारणा करने से वह बहुत-सी सिद्धियों तथा अनुभूतियों को प्राप्त करता है।

अष्ट-सिद्धियाँ

ये आठ मुख्य सिद्धियाँ हैं: (१) अणिमा- अपने को परमाणु के समान बना देने की सिद्धि, (२) महिमा-पर्वत-तुल्य विशाल बन जाने की सिद्धि, (३) लघिमा रुई के समान हलका बनना, (४) गरिमा लौह पर्वत के समान भारी बनना, (५) प्राप्ति-चन्द्रमा को उँगली के अग्रभाग से छू लेने की शक्ति, (६) प्राकाम्य-सभी कामनाओं की तृप्ति, (७) ईशित्व सृष्टि करने की सिद्धि, तथा (८) वशित्व-सभी पर शासन करना तथा तत्त्वों पर नियन्त्रण करने की सिद्धि।

समाधि के भेद

योगी क्रमशः योग के सोपान पर ऊपर चढ़ता है तथा विभिन्न प्रकार के अनुभव, ज्ञान तथा शक्तियों को प्राप्त करता है। वह सर्वप्रथम सवितर्क तथा निर्वितर्क समाधि प्राप्त करता है. तब वह सविचार तथा निर्विचार समाधि को प्राप्त करता है, तब वह सानन्द तथा सस्मिता समाधि का अनुभव करता है। इन निम्न समाधियों में आलम्बन, संस्कार तथा त्रिपुटी रहते हैं। जो असम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिए ये समाधियों भी बाधा ही हैं। असम्प्रज्ञात समाधि में जन्म-मृत्यु देने वाले सभी संस्कार विदग्ध हो जाते हैं।

चार प्रकार के राजयोगी

योगियों की चार श्रेणियाँ हैं :

(१) प्रथम कल्पित **-** नया साधक जिसको ध्यान में ज्योति मिल रही है। उसे अभी कोई सिद्धि प्राप्त नहीं है। वह अभी सवितर्क समाधि का अभ्यास कर रहा है।

(२) मधु भूमिका**-** जिसने निर्वितर्क समाधि में प्रवेश किया है तथा ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त की है। इसे मधु भूमिका कहते हैं; क्योंकि यह अवस्था मधु के समान ही तृप्ति प्रदान करती है।

(३) प्रज्ञा ज्योति**-** जिस योगी ने तत्त्वों तथा इन्द्रियों पर प्रभुत्व प्राप्त कर लिया है। यह योगी स्वर्ग के देवताओं के प्रलोभनों से भी विचलित नहीं होता। उसने मधु प्रतीक की अवस्था प्राप्त कर ली है।

(४) अतिक्रान्त माननीय**-** योगी ने विशोक तथा संस्कार शेष की भूमिका प्राप्त कर ली है। उसने कैवल्य प्राप्त कर लिया है।

राजयोगी संयम के बिना ही प्रतिभा (शुद्धता के द्वारा प्राप्त सहज प्रकाश) के द्वारा

सभी सिद्धियों को प्राप्त करता है। विवेक ख्याति - पुरुष प्रकृति के बीच विवेक के द्वारा प्रसंख्यान, सर्वोच्च प्रकाश की प्राप्ति होती है।

अब धर्ममेघ समाधि की प्राप्ति होती है। उसे परा वैराग्य, परम निष्कामता अथवा परम अनासक्ति की प्राप्ति होती है। वह सभी सिद्धियों को, सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता इत्यादि का परित्याग कर देता है। ये परम समाधि में बाधक हैं। तब असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है जिससे सारे संस्कार विदग्ध हो जाते हैं।

योगी बिना आँखों के देखता, बिना जिह्वा के चखता, बिना घ्राण के सूँघता तथा बिना चर्म के ही स्पर्श करता है। उसके संकल्प से अनेक चमत्कार हो सकते हैं। वह केवल संकल्प करता है तथा सब-कुछ सम्भव हो जाता है। तैत्तिरीय आरण्यक में इस अवस्था का वर्णन है।

"अन्धे व्यक्ति ने मुक्ता में छेद किया, उँगली रहित मनुष्य ने उसमें धागा पिरोया, ग्रीवा रहित व्यक्ति ने उसे पहन लिया तथा जिह्वा रहित व्यक्ति ने उसकी प्रशंसा की" (तैत्तिरीय आरण्यक : १-२-३)।

कैवल्य

अन्ततः पुरुष अपने दिव्य स्वरूप परम कैवल्य का साक्षात्कार कर लेता है। वह प्रकृति तथा उसके कार्यों से पूर्णतः अलग हो गया है। वह परम स्वतन्त्रता का अनुगमन करता है। कैवल्य ही राजयोगी का सर्वोच्च लक्ष्य है। सारे क्लेश-कर्म नष्ट हो जाते हैं। भोग तथा अपवर्ग के उद्देश्य को पूर्ण कर लेने के पश्चात् गुण अपना कार्य करना बन्द कर देते हैं। वह अबाध ज्ञान प्राप्त करता है। भूत तथा भविष्य वर्तमान में ही विलीन हो जाते हैं। सब-कुछ "अभी" है। सब-कुछ "यहीं" है। उसने देश-काल का अतिक्रमण कर लिया है। तीनों लोकों का ज्ञान कुछ भी नहीं है। योगी के असीम ज्ञान के सामने यह तृणवत् है। ऐसे महान् योगियों की जय ! हम सब उनका आशीर्वाद प्राप्त करें!

६. हठयोग

हठयोगी आसन, बन्ध, मुद्रा तथा प्राणायाम पर अधिक बल देता है। वह मूलाधार चक्र में प्रसुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जगा कर उसे विभिन्न चक्रों से हो कर सहस्रार-ब्रह्मरन्ध्र (मस्तक) में सहस्रदल पद्म में ले जाने को उत्सुक रहता है। कुण्डलिनी वहाँ शिव से मिलती है। योगी निर्विकल्प समाधि में प्रवेश कर मुक्ति और भुक्ति-दोनों प्राप्त करता है। प्राणायाम का अभ्यास करते समय वह आरम्भ अवस्था, घट अवस्था, परिचय अवस्था तथा निष्पत्ति अवस्था- इन चार अवस्थाओं का अनुभव प्राप्त करता है।

७. भक्तियोग

भक्त नवधा भक्ति-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्म-निवेदन का विकास करता है। वह अपनी क्षमता तथा रुचि के अनुसार शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य में से किसी एक भाव का अभ्यास करता है और सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है।

उसे क्रम मुक्ति मिलती है। यह ब्रह्मलोक में जा कर महाप्रलय तक रहता है। ईश्वर के साथ-साथ वह भी निगण ब्रह्म में विलीन हो जाता है। ब्रह्मा के साथ रहता है । ईश्वर के साथ-साथ वह भी निर्गुण ब्रह्म में विलीन हो जाता है ।

८. ज्ञानयोग

ज्ञानयोग में साधक साधन-चतुष्टय का विकास करता है- विवेक, वैराग्य, षट् सम्पत्ति (शम, दम, तितिक्षा, उपरति श्रद्धा तथा समाधान) तथा मुमुक्षुत्व। तब वह श्रुतियों को सुनता है (श्रवण), तब मनन तथा निदिध्यासन करता है। वह ॐ तथा तत्त्वमसि महावाक्य के लक्ष्यार्थ पर ध्यान करता है। यही उसकी अन्तरंग साधना है। तब वह आत्म-साक्षात्कार या ब्रह्मानुभव प्राप्त करता है। लय हु

वह प्रारम्भ में शब्दानुविद् तथा दृश्यानुविद् सविकल्प समाधि को प्राप्त करता है। तब वह अद्वैत भावानुरूप (वृत्ति-सहित) समाधि में प्रवेश करता है। तदनन्तर वह अद्वैत अवस्थानुरूप (वृत्ति-रहित) समाधि प्राप्त करता है। ज्ञानयोग में सात भूमिकाएँ हैं। वह एक-एक कर ऊपर उठता है। वे सात भूमिकाएँ शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसी, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थाभावना तथा तुरीय हैं।

ज्ञानी सद्योमुक्ति अथवा आत्यन्तिक प्रलय (तत्क्षण मोक्ष) प्राप्त करता है। वह किसी लोक को नहीं जाता। उसके प्राणों का उत्क्रमण नहीं होता। शरीरपात के साथ ही वह ब्रह्म से एक हो जाता है।

९. जीवन्मुक्ति तथा विदेह-मुक्ति में भेद

ज्ञानी के जीवित रहते हुए ही विदेह-मुक्ति की प्राप्ति होती है। चतुर्थ अवस्था में ज्ञानी जीवन्मुक्त हो जाता है। जब लेशमात्र भी शरीर-चैतन्य नहीं रहता, तब वह विदेह-मुक्त हो जाता है। जब वह तुरीयावस्था में रहता है, तब उसे जीवन्मुक्त कहते हैं। जब वह तुरीयातीत अवस्था को प्राप्त करता है, तब इसे जीवन्मुक्ति कहते हैं। जब जाग्रत स्वप्न के सदृश दिखायी देता है, तो इसे जीवन्मुक्ति कहते हैं। जब जाग्रत सुषुप्ति जैसा प्रतीत होता है, तो उसे विदेह-मुक्ति कहते हैं। जब मन का स्वरूप-नाश होता है, तो उसे जीवन्मुक्ति कहते हैं। विदेह-मुक्त जगत् में काम नहीं कर सकता। शंकर जीवन्मुक्त थे। दत्तात्रेय तथा जड़भरत विदेह-मुक्त थे।

१०. भक्त तथा ज्ञानी

ज्ञानयोग नदी को तैर कर पार करने के समान तथा भक्तियोग नदी को नौका से पार करने के समान है। ज्ञानी पुरुषार्थ तथा निश्चय द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है। भक्त आत्मार्पण द्वारा दर्शन पाता है। ज्ञानी निश्चय करता है तथा विकसित होता है। भक्त आत्मार्पण करता अपने को ईश्वर के प्रति समर्पित कर संकुचित होता है।

है, भक्त मिश्री का स्वाद लेना चाहता है। ज्ञानी मिश्री बन जाना चाहता है। भक्त क्रम-मुक्ति पाता है। ज्ञानी सद्योमुक्ति पाता है। भक्त बिल्ली के समान सहायता के लिए चिल्लाता है। ज्ञानी बन्दर के बच्चे के समान स्वयं ही माता के साथ चिपका रहता है।

११. ज्ञानी तथा राजयोगी

ज्ञानी चलते हए, खाते हए तथा बोलते हए भी अपनी साधना का अभ्यास कर सकता है। उसके लिए आसन या कमरे की आवश्यकता नहीं है, जब कि राजयोगी के लिए साधना हेतु आसन तथा कमरा चाहिए। ज्ञानी सदा समाधि

(सहजावस्था) में रहता है। वह माया से प्रभावित नहीं होता: क्योंकि उसमें मिथ्यादृष्टि नहीं है। ज्ञानी के लिए समाधि में या समाधि से उठने जैसी कोई बात नहीं है, जब कि योगी समाधि से नीचे आने पर माया से प्रभावित होता है। राजयोगी अपने मन को उसी तरह बन्द कर लेता है जिस तरह बोतल को कार्क से बन्द कर देते हैं। इस प्रकार वह सभी वृत्तियों को बन्द कर डालता है। वह अपने मन को शून्य बना देता है, जब कि ज्ञानी अपनी वृत्तियों को रोकता नहीं, वह उनका साक्षी बना रहता है। वह अपने सात्विक अन्तःकरण से ब्रह्माकार-वृत्ति को जाग्रत करता है। ज्ञानी अपने सत्संकल्प से तथा योगी संयम द्वारा अपनी सिद्धियों का प्रदर्शन करते हैं। राजयोगी की साधना मन से प्रारम्भ होती है। ज्ञानी बुद्धि तथा संकल्प से अपनी साधना को प्रारम्भ करता है।नाए

१२. हठयोगी तथा राजयोगी

हठयोग का स्थूल शरीर तथा प्राण-निरोध से सम्बन्ध है। राजयोग का सम्बन्ध मन से है। राजयोग तथा हठयोग एक-दूसरे पर आश्रित हैं। दोनों योगों के अभ्यास का ज्ञान हुए बिना कोई भी पूर्ण योगी नहीं हो सकता। राजयोग प्रारम्भ होता है जब हठयोग का अन्त होता है।

हठयोगी शरीर तथा प्राण से साधना प्रारम्भ करता है। राजयोगी मन से साधना प्रारम्भ करता है। ज्ञानयोगी बुद्धि तथा संकल्प से साधना प्रारम्भ करता है।

हठयोगी प्राण तथा अपान को मिला कर, उस संयुक्त प्राण-अपान को विभिन्न चक्रों में ले जा कर सिदियों को प्राप्त करता है। राजयोगी संयम (धारणा, ध्यान तथा समाधि) के एक समय में अभ्यास के द्वारा सिद्धियों को प्राप्त करता है। ज्ञानयोगी सत्संकल्प के द्वारा सिद्धियों का प्रदर्शन करता है तथा भक्त आत्मार्पण और उसके परिणाम स्वरूप ईश्वर-कृपा के द्वारा सभी दिव्य ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है।

१३. आन्तरिक मार्ग के लिए अनुशासन

ॐॐॐ

आत्मस्वरूप !

योग आत्म-अनुशासन का पूर्ण व्यावहारिक विज्ञान है। योग वास्तविक विज्ञान है। यह शरीर, मन तथा आत्मा के सन्तुलित विकास का लक्ष्य रखता है। विषय-जगत् से इन्द्रियों को मोड़ लेना तथा मन को एकाग्र करना ही योग है। योग का लक्ष्य मन तथा उसकी वृत्तियों का निरोध है। योग का मार्ग आन्तरिक मार्ग है जिसका द्वार आपका हृदय है।

मन, इन्द्रियों तथा शरीर का अनुशासन योग है। शरीर के अन्तर्गत सूक्ष्म शक्तियों के संगठन तथा संयम में योग सहायता देता है। योग पूर्णता, शान्ति तथा शाश्वत सुख प्रदान करता है। योग आपके व्यापार तथा दैनिक जीवन में सहायता पहुँचा सकता है। आप सुखपूर्वक सो सकते हैं। आपको शक्ति, वीर्य, दीर्घायु तथा सुन्दर स्वास्थ्य की प्राप्ति होगी। योगी पाशवी प्रकृति को दैवी प्रकृति में परिणत करता है तथा आपको दिव्य महिमा तथा ज्योति के शिखर पर पहुँचाता है।

योगाभ्यास से आप आवेगों तथा काम पर विजय पा सकेंगे। आप प्रलोभनों का संवरण कर मन से अशान्त करने वाले तत्त्वों को हटा सकते हैं। मन को सन्तुलित बनाये रखने में तथा थकावट दूर करने में यह आपकी सदा सहायता करेगा।

यह शान्ति तथा आश्चर्यजनक धारणा-शक्ति प्रदान करेगा। आप ईश्वर के साथ मिल कर जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे।

यदि आप योग में सफलता पाना चाहते हैं, तो आपको सारे सांसारिक भोगों का परित्याग कर तप तथा ब्रह्मचर्य का अभ्यास करना चाहिए। आपको कुशलतापूर्वक मन को वश में लाना चाहिए। आपको विवेकपूर्ण साधनों से इसका दमन करना होगा। यदि आप बलपूर्वक इसका दमन करेंगे, तो यह और भी अधिक उपद्रवी बन जायेगा। यह पाशवी शक्ति द्वारा नियन्त्रित नहीं किया जा सकता। यह अधिकाधिक छलाँगें लगाया करेगा। जो लोग मन को बलपूर्वक वश में करना चाहते हैं, वे हाथी को रेशमी धागे से बाँधने का हास्यास्पद प्रयास कर रहे हैं।

योगाभ्यास के लिए गुरु अनिवार्य है। साधक को नम्र, सरल, सुशील, सस्कृत, सहनशील, कारुणिक तथा दयालु होना चाहिए। यदि आपको सिद्धि-प्राप्ति का कुतूहल है, तो आप योग में सफल नहीं हो सकते। छह घण्टे तक आसन में बैठे रहना अथवा नाड़ी या हृदय-गति को बन्द कर देना या एक सप्ताह या एक महीने तक जमीन में गड़े रहना योग नहीं है।

अलं-भावना, हठ, अभिमान, विलासप्रियता, नाम, यश, आत्म-प्रशंसा, बड़प्पन की भावना, विषय-कामना, कुसंग, आलस्य, अति-भोजन, अति-कार्य, लोगों से अधिक मिलना-जुलना, अति-वार्तालाप ये सब योग की कुछ बाधाएँ हैं। अपने दोषों को खुल कर स्वीकार कीजिए। जब आप सभी दुर्गुणों से मुक्त हैं, तो आपको स्वतः समाधि प्राप्त हो जायेगी।

अष्टांगयोग के अभ्यास से आप भास्वर योगी बनें! आप नित्यानन्द का उपभोग करें !

अध्याय १८:व्यावहारिक साधना का पाठ्यक्रम

१. सगुण ध्यान-साधना के बारह पहलू

बारह मन्त्र

१. ईश्वर एक है।

२. ईश्वर है।

३. ईश्वर प्रेम है। वह करुणा-स्वरूप है।

४. वह सर्वज्ञ है।

५. वह सर्वशक्तिमान् है।

६. वह सर्वव्यापक है।

७. वह सर्वान्तिर्यामी है।

८. वह सभी का अधिष्ठान है।

९. वह अनन्त है।

१०. वह अविनाशी है।

११. वह अखण्ड है।

१२. वह ज्योति-स्वरूप है।

वह सूर्य, चन्द्र, तारे, अग्नि, विद्युत्, बुद्धि, इत्यादि को ज्योति देता है।

अपने-अपने इष्टदेव की मूर्ति पर अपने मन को एकाग्र कीजिए। अपने नेत्र बन्द कर मूर्ति को अपने हृदय अथवा दोनों भौंहों के बीच (त्रिकुटी) में रखिए अथवा आँखों के सामने रखिए। उपर्युक्त मन्त्रों का ध्यान कीजिए। ॐ का मानसिक जप कीजिए अथवा इष्टमन्त्र या अन्य किसी मन्त्र का जप कीजिए। यदि मन भागे, तो उसे मूर्ति पर पुनः वापस लौटा लाइए तथा मन को एक मन्त्र से दूसरे मन्त्र पर ले जाते रहिए। अन्त में किसी एक ही मन्त्र पर लगा दीजिए। अपने इष्ट की मूर्ति भी अपने मन के सामने रखिए। कुछ अभ्यास के अनन्तर मन एकाग्र हो जायेगा। ध्यान तथा समाधि की प्राप्ति होगी। आप नित्य, असीम शान्ति, सुख एव अमृतत्व को प्राप्त करेंगे।

२. साधना का कार्यक्रम

अपने जीवन का एक निश्चित कार्यक्रम रखिए। किसी साधारण व्यक्ति से पूछिए- "आपके जीवन का कार्यक्रम क्या है?" वह कहेगा- “मैं राज्य के दीवान के रूप में रिटायर होना चाहता हूँ।" दूसरा इंजीनियर की कामना रखेगा। इससे अधिक वे सोच नहीं सकते। क्यों? क्योंकि मन अनुशासित नहीं है। वे नहीं जानते कि समय कैसे बिताया जाये। वे चार बजे प्रातः उठने के लाभ नहीं जानते। वे ताश-शतरंज में ही समय गँवा देंगे। उनके पास शिक्षा है; परन्तु समय के सदुपयोग का ज्ञान नहीं। साधना-मार्ग में समय के सदुपयोग की आवश्यकता है। यदि आपने संसार में रहते हुए भी मन एवं इन्द्रियों को अनुशासित कर लिया है, तो आप उन्नत आदर्शों के लिए जीवन को लगा सकते हैं।

बाधाओं को दूर करने के लिए प्राणायाम, अन्तर्निरीक्षण, जप, स्वाध्याय आदि की आवश्यकता है। अधिकांश साधकों के लिए समन्वय साधना ही अधिक अनुकूल सिद्ध होती है।

जो जगत् के हित की कामना रखता है, जिसके पास समदृष्टि है, जिसने इन्द्रियों का दमन कर लिया है, वही व्यक्ति अर्हत बन सकता है। उसके द्वारा ही आत्मिक ज्योति विभासित होगी। ऐसा व्यक्ति ही सच्ची सेवा कर सकता है; क्योंकि वही इसका साक्षात्कार कर सकता है कि "सभी ईश्वर के रूप हैं।"

रोगियों की सेवा करते समय उनके कष्टों का अनुभव कीजिए। अनुभव कीजिए कि पीड़ित शरीर आपका ही शरीर है। भूखों को भोजन दीजिए। ये सारे साधन इसलिए हैं कि आप विश्व के साथ अपनी एकता का अनुभव करें। राजसिक व्यक्ति स्वयं को अभिमानवश सभी से अलग समझेगा। तामसिक व्यक्ति दूसरों से कदापि सहानुभूति नहीं रखेगा। साधकों का कर्तव्य है कि वे जहाँ-कहीं भी हों, यथासम्भव दूसरों के कष्टों का निवारण करें। एक पैसे का ही दान क्यों न हो, आप अपनी शक्ति के अनुसार अवश्य कीजिए। आप अस्पताल में जा कर रोगियों को सान्त्वना दे सकते हैं। तभी आप समस्त विश्व के साथ एकता का अनुभव करेंगे। यदि आपमें करुणा नहीं है, तो आप आत्म-साक्षात्कार कैसे करेंगे? लोग करुणा-रहित हैं, यही कारण है कि वे आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर पाते। आपको मैत्री, करुणा, मुदिता आदि सद्गुणों का उपार्जन करना चाहिए।

आज जगत् आपकी सेवा चाहता है। आज नचिकेता जैसे मनुष्यों की आवश्यकता है जिसने यम से आत्मज्ञान की याचना की थी।

आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए निश्चित कार्यक्रम रखिए। चार बजे प्रातः उठिए। अष्टांगयोग में ध्यान सातवाँ अंग है; किन्तु ध्यान में संस्थित होने के लिए प्राथमिक साधनाओं को हमें अवश्य करना चाहिए। चार बजे प्रातः उठना अत्यन्त आवश्यक है। आपके मन में यह आदत गहरी गड़ जानी चाहिए। कुछ श्लोकों द्वारा प्रार्थना कीजिए। गुरुस्तोत्र का पाठ कीजिए। चिदानन्द-चिदानन्द का गान कीजिए। देवतागण प्रसन्न होंगे। आप अनुप्राणित होंगे। अपने मन में चित्रण कीजिए, "मुझे आज क्या करना है?" प्रारम्भमें पन्दरह मिनट के लिए ध्यान में बैठिए। धीरे-धीरे आधा घण्टे तक ध्यान के समय को बढ़ा ले जाइए। विक्षेपों द्वारा ध्यान में विघ्न न होने दीजिए। दाँत की सफाई आदि में अधिक समय न गँवा दीजिए। बूढ़े लोग आरामकुरसी पर ध्यान कर सकते हैं। स्थिर एवं सुखद आसन की आवश्यकता है। मन की विक्षिप्त किरणों को एकाग्र कीजिए। मन भटकना शुरू कर देगा; परन्तु यदि आप सगुण ध्यान-साधना करते हैं, तो उसे बारम्बार ईश्वर के चित्र के ऊपर लौटा लाइए। अपने संकल्पों का पालन कीजिए। इससे आत्म-बल बढ़ेगा। आप दिनानुदिन अधिकाधिक बल प्राप्त करेंगे। अपने वेतन का दशवाँ भाग दान के लिए रख छोड़िए। आध्यात्मिक दैनन्दिनी रखिए तथा उसमें अंकित कीजिए कि आप कितनी बार क्रोधित हुए। अतिरिक्त जप तथा उपवास के द्वारा आप अपने दुर्गुणों को दूर कर सकते हैं। सदा रुपये के पीछे न दौड़िए। यह स्वतः आपको प्राप्त होगा। आवेश में न आइए। यदि कोई

गाली दे, तो धैर्य रख कर उससे बातें कीजिए। आप भले ही ठीक हों, फिर भी कहिए, "कृपया क्षमा कीजिए।" सदाचार का पालन कीजिए। सुविचार के द्वारा उन्नति कीजिए। सभी सुखी बनें!

३. व्यावहारिक साधना (१)

दिव्य जीवन क्या है? योग तथा वेदान्त ही दिव्य जीवन का आधार है। व्यावहारिक वेदान्त अथवा योग की साधना में हमें कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है, हमें ऐसी परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है जिनसे पार पाने के लिए उचित ज्ञान आवश्यक है।

अतः दिव्य जीवन-सम्बन्धी आन्तरिक सूक्ष्मताओं तथा रहस्यों का समुचित ज्ञान अनिवार्य है।

योग को कहाँ खोजें ?

हमे क्या समझना है? हमे योग तथा वेदान्त के विषय में जानना चाहिए। क्या वे पुस्तकों में है अथवा हिमालय के विशेष स्थानों में अथवा काशी, मक्का या अन्य किसी स्थान में ?

कुछ हद तक वे किताबों में है तथा तीर्थस्थानों में भी। तीर्थस्थानों में ऋषियों तथा योगियों ने आध्यात्मिक स्पन्दन का निर्माण किया है। वहाँ निवास करने से आपमें स्वतः योग-वेदान्त-साधना की चेतना जाग्रत हो जाती है; परन्तु योग-वेदान्त का सबसे प्रमुख घाम तो आपका मन तथा हृदय है। यदि आप उसे वहाँ न पा सके, तो अन्यत्र कहीं नहीं पा सकेंगे।

स्वयं को समझना

आप अपने ज्ञान, भक्ति, सेवा तथा योग का प्रदर्शन कैसे करेंगे? आपको अपने विचार, वाणी तथा कर्म के द्वारा ही उन्हें व्यक्त करना होगा। आप कीर्तन, प्रार्थना, ध्यान तथा साधुओं की सेवा द्वारा ही भक्ति प्राप्त कर सकते हैं। आपके हृदय में ही भक्ति की अभिव्यक्ति होती है। सारे ग्रन्थ व्यर्थ ही रह जायेंगे यदि आपने अपने हृदय से साधना को प्रारम्भ न किया। सर्वप्रथम आपको इस रहस्यमय धर्मक्षेत्र (मन) का ज्ञान करना चाहिए।

आप स्वयं से भाग नहीं सकते। यदि आप समझते हैं कि पारिवारिक बन्धन निवृत्ति-परायण जीवन के लिए बाधा है, तो आप परिवार का त्याग कर सकते हैं। आप सब-कुछ से भाग सकते हैं; परन्तु आपको अपने साथ यह शरीर, इन्द्रिय, मन, आदत आदि को तो रखना ही पड़ेगा। आपको राग-द्वेष, अहंकार, निराशा, स्वभाव आदि को अपने साथ रखना ही होगा।

मन का अनुशासन

एक बार दो महाविरक्त अवधूत थे। जाड़े के दिनों में वे घास के बिछावन पर ही सोते थे। उत्तरकाशी में सूर्य का प्रकाश मिलना कठिन है। जब कभी धूप निकलती, वे घास के बिछावन को सुखाने के लिए बाहर रखते थे। एक दिन एक अवधूत क्षेत्र से लौटते हुए दूसरे अवधूत के बिछावन पर पैर रखते हुए आ निकले। बस, दोनों झगड़ पड़े। दोनों एक-दूसरे को गाली देने लगे। यह उत्तरकाशी की सत्य घटना है।

हिन्दू-धर्म कहता है: "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" सब-कुछ ब्रह्म ही है। यहाँ कोई पृथक् शैतान नहीं है; परन्तु अन्य सभी धर्मों में ईश्वर के साथ-साथ शैतान भी है। ईसाई धर्म में शैतान, पारसी-धर्म में अहमान है; परन्तु हिन्दू धर्म में सब-कुछ ब्रह्म ही है। तो फिर यह शैतान है कहाँ ? यह मन ही शैतान है। अतः जहाँ भी आप रहेंगे, आपको अपने साथ मन तथा इन्द्रियों को रखना है ही। जब तक आप यह नहीं जानते कि उनके साथ कैसे व्यवहार करना चाहिए, तब तक वे आपके साथ दुर्व्यवहार करते रहेंगे। आपका वैराग्य धीरे-धीरे लुप्त हो जायेगा। जब तक मनुष्य अपने भीतर प्रवेश कर अन्तर्निरीक्षण नहीं करता, तब तक सफलतापूर्वक साधना नहीं कर सकता। जहाँ भी आप जायें, आन्तरिक कारखाना आपके साथ जायेगा ही।

मन ईश्वर का वरदान है; क्योंकि मन के अभाव में आप ईश्वर-विषयक चिन्तन नहीं कर सकते। बिना मन के आप धारणा तथा ध्यान का अभ्यास नहीं कर सकते। मन के बिना, विचार तथा भावना के बिना आपमें भाव-भक्ति सम्भव नहीं है। अतः मन आवश्यक है। परन्तु यदि इसे अच्छी तरह समझा नहीं गया, इसका संचालन नहीं किया गया, तो यह स्वयं के लिए ही घातक बन जाता है। अतः मलिन मन को शुद्ध मन में परिणत करना चाहिए।

मन क्या है ?

अधिकांश लोग समझते हैं कि मन केवल विचार है अथवा यह कोई ऐसी वस्तु है जिसके द्वारा हम सोचते हैं। किन्तु यह बात उतनी साधारण नहीं। यदि आप न सोचना चाहें, तो भी मन सोचता रहेगा। यह पदार्थों के विषय में सोचता है। मन प्रतिक्षण अपने ही विचारों को सोचता है। जब तक मन विचारों का सृजन करता रहेगा, तब तक यह केन्द्रित नहीं हो सकता। आप इसे सुगमतया ईश्वरोन्मुख नहीं कर सकते। आपको इसे ईश्वर की ओर मोड़ना ही होगा। परन्तु कैसे ? मन क्यों भटकता रहता है? साधक को इन सबको समझना होगा। कर्मयोगी, ज्ञानयोगी, भक्तियोगी सभी को इसे जानना होगा।

आप चाहे लोगों के बीच में हों या एकान्त में, आपको अपने मन को समझना होगा। जब आप अकेले होते हैं, तो मन को अपनी मनमानी क्रीड़ा करने का अवसर प्राप्त होता है। यह रहस्यमय पदार्थ क्या है जो कि साधकों के लिए ऐसी समस्या बना हुआ है और फिर भी साधक जिसके बिना साधना नहीं कर सकता तथा यदि इसे अच्छी तरह से सँभाला न गया, तो वह उसे नीचे धकेल देता है? मन क्योंकर कार्य करता है? यदि हमें इसके स्वभाव का मौलिक ज्ञान हो, तो हम उस पर अधिकार प्राप्त करने के लिए कोई उपाय खोज निकालेंगे।

संस्कार-भूमि

मन विविध प्रकार से काम करता है। यहाँ दो उदाहरण लीजिए। आप ग्रामोफोन प्लेट को देखते हैं। इसमें बहुत ही सूक्ष्म लकीरें पड़ी हुई हैं जो ध्वनि के मूक चिह्न हैं। प्लेट के चलने पर पुनः उसी ध्वनि की उत्पत्ति होती है।

बीज लीजिए। एक छोटे-से बीज में भी महान् वृक्ष छिपा हुआ है। यह बीज महान् वट-वृक्ष को उत्पन्न कर सकता है। इतना ही नहीं, उस वृक्ष से अनेक बीज भी उत्पन्न होंगे।

उसी तरह मनुष्य का मन भी ग्रामोफोन प्लेट की लकीर अथवा बीज के समान है। मन पहले के अनुभवों से उत्पन्न है। अनुभव संवेदन के रूप में हो सकता है। संवेदन से आपके मन में संस्कार बन जाते हैं।

मन की क्रिया

क्या संस्कार जमीन में खींची गयी प्रणालियों अथवा ग्रामोफोन की लकीरों के समान है? नहीं, ये संस्कार सक्रिय भी हैं। संस्कारों से वासना की उत्पत्ति होती है। वासनाओं के कारण मन सदा उद्विग्न रहता है। मन-रूपी झील में वृत्तियाँ उठती रहती हैं।

साधारण मन में बहुत-सी वृत्तियाँ उठती गिरती रहती हैं। वृत्तियों के उठने पर मनुष्य कल्पनाओं का प्रारम्भ करता है। यदि कल्पना न हो, तो वृत्ति मनुष्य को कष्ट न दे। जब वृत्ति कल्पना द्वारा पोषित होती है, तो वह इच्छा बन जाती है। यह इच्छा उस संवेदन के अनुरूप ही है जिसने कि मन में संस्कार उत्पन्न किये, जिससे कि वासना तथा वासना से वृत्ति उत्पन्न हुई। इस इच्छा की अवस्था में भी अधिक हानि नहीं है। परन्तु, जब हममें से प्रत्येक का अहंकार उसके साथ तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, तब सारी कठिनाइयों का श्रीगणेश हो जाता है। इच्छा के बदले "मैं इच्छा करता हूँ" का बोल-बाला होता है। अब व्यक्ति अपने मन के चंगुल में आ जाता है।

आन्तरिक संग्राम

आप जहाँ भी रहें, गुहा में अथवा नगर में, "मैं" तथा कल्पना के मिलने से ही आप कहते हैं, "मैं सिगरेट चाहता है इत्यादि। आप ध्यान कर रहे होंगे; परन्तु जब आपमे इच्छा होती है, तो ध्यान गौण बन जाता है। इच्छा के आने पर मन विचार करता है-"इस इच्छा को पूर्ण कर दूँ या अपने ध्यान में लगा रहूँ? क्या इडली खाने जाऊँ और समय नष्ट करूँ?" यदि शुद्ध मन का प्राधान्य है, तो वह कहेगा, "नहीं। वह इच्छा को भगा कर ध्यान में मग्न हो जाता है। परन्तु यदि अशुद्ध मन हो, तो इच्छा प्रधान बन जाती है। तब इच्छा, तृष्णा बलवती बन जाती है। मनुष्य उसकी पूर्ति में प्रयत्नशील हो कर योग को छोड़ बैठता है।

योग केवल निर्विकल्प समाधि में ही नहीं है। उसे हर क्षण में लाना चाहिए। यदि कोई मलिन विचार मन में आये और यदि आप उसके दमन में समर्थ न हों, तो आप योग में विफल रहेंगे। हर विचार तथा कर्म में आपको अपनी वृत्तियों के ऊपर अपना आधिपत्य स्थापित करना होगा। तभी योग की पूर्ति हुई और दिव्य जीवन पथ पर स्थिर रहे। इस साधना के लिए कितना समय आवश्यक है? पलमात्र में ही निश्चय हो गया, तो संस्कार की लम्बी श्रृंखला नष्ट हो जायेगी तथा उन्नत मन निम्न मन पर विजय पा लेगा।

विषय-अनुभव से आप संस्कार प्राप्त करते हैं। संस्कार से वासना और वासना से वृत्ति की प्राप्ति होती है। कल्पना वृत्ति को कामना में बदल डालती है। अहंकार कामना अथवा इच्छा से युक्त हो जाता है; तब इच्छा तृष्णा बन जाती है, तब आप इच्छा-पूर्ति के लिए चेष्टा करते हैं। मन का यह चक्र चलता रहता है।

पूर्व वासना तथा संस्कार आपके मन में पड़े हुए हैं। वे आपके वश के बाहर हैं, परन्तु आप एक काम कर सकते हैं। आप नये संस्कारों के उत्पादन को रोक सकते हैं तथा नये शुभ संस्कारों के द्वारा पूर्व-संस्कारों को नष्ट कर सकते हैं।

अपने अहं को विवेक द्वारा जाग्रत रखिए। यदि अहं अविवेक-ग्रस्त है, तो इन्द्रिय-संवेदनों से तुरन्त इच्छा की उत्पत्ति हो जायेगी। यदि अहं विवेक-युक्त है, तो वह किसी इन्द्रिय-संवेदन के साथ संयोग करेगा ही नहीं। तब उस विषय संवेदन से कोई फल न होगा।

मुमुक्षुत्व की अग्नि

सारी कामनाओं को जलाने के लिए एक ही अग्नि है- मुमुक्षुत्व। यदि यह अनि आपके हृदय में है, तो आपको यह चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है कि आप क्या कर रहे हैं, किस स्थान में रह रहे हैं; क्योंकि आप अवश्य ही दिव्य जीवन

बितायेंगे। परन्तु आपको सदा यह ज्ञान रखना चाहिए कि किसी भी समय विषय-संवेदन को अन्दर प्रवेश करने से पूर्व मुमुक्षुत्व के द्वारा कैसे जला दिया जाये।

प्रत्याहार तथा उदासीनता

इसके लिए दो विधियाँ हैं। मन को सदा अन्तर्मुख रखिए। मन को कभी भी पूर्णतः बहिर्मुख न रखिए। विषय-पदार्थों के साथ रहते हुए भी इन्द्रियाँ बहिर्मुखी नहीं रहेंगी। प्रत्याहार बड़ा कठिन है; परन्तु इसका अभ्यास करना चाहिए।

दूसरी विधि है उदासीनता। हमें अपने अन्दर सतत स्वाध्याय, विचार तथा निदिध्यासन के द्वारा यह भावना बना लेनी चाहिए कि विषय-जगत् नश्वर तथा भ्रामक है। तब ये सारी वस्तुएँ आपके लिए आकर्षक न रहेंगी। इन वस्तुओं के समक्ष आने पर भी अन्तर से उनके प्रति कोई इच्छा न रहेगी। इसी अवस्था को उदासीनता कहते हैं।

विषयों के बीच रहने पर साधक को उदासीन भाव बनाये रखना चाहिए। आप इन दो विधियों से विषयों के साथ अपने सम्पर्क को तोड़ सकते हैं; परन्तु इनके होते हुए भी यदि विषय-संवेदन आपके हृदय में घुस जाये, तो मुमुक्षुत्व द्वारा उसे जला दीजिए।

ईश्वर-स्मरण

सदा ईश्वर का मानसिक स्मरण कीजिए। यह शक्तिशाली साधन है। ईश्वर के नाम का सतत जप कर सकते हैं। वेदान्ती सतत ब्रह्म-चिन्तन करते हैं। भक्त सभी में कृष्ण अथवा राम को देखने का अभ्यास करते हैं। महावाक्य अथवा नाम जप में मन को लगाये रखना चाहिए। इससे मन की बहिर्मुखी वृत्ति कम हो जायेगी।

इच्छाओं का दमन

जो व्यक्ति योग-वेदान्त-मय जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, उनके लिए कुछ सहज साधन हैं। हमने पहले ही कह दिया है कि हम इन्द्रियों तथा मन से भाग नहीं सकते; अतः हमें मन के कार्य को समझना चाहिए। जब कोई वृत्ति उठे, तो उसके विषय में चिन्तन न कीजिए। अपने ध्यान को हटा दीजिए। उसे लौट जाने दीजिए। अपनी कल्पना की उड़ान न कीजिए। कल्पना ही वृत्ति को मजबूत बनाती है। यदि कामना मजबूत हो, तो हठी बनिए। उसके सामने झकिए नहीं। कामना को वृत्ति की अवस्था में ही यथाशक्ति नष्ट करने की कोशिश कीजिए: परन्तु यदि सावधानी की कमी के कारण यह आवेग का रूप धारण कर ले. तो देखिए कि उसकी पूर्ति न होने पाये। बाह्य चेष्टा न कीजिए। यदि ऐसी इच्छा है- "मैं जाऊँ और गपशप करूँ, " तो कहिए- "नहीं, मैं अपने शरीर को हिलने नहीं दूँगा।" यदि शरीर नहीं हिलता, तो मन अपनी कामना पूर्ण नहीं कर सकता; अतः विपरीत क्रिया होने लगेगी। वह कामना मन में ही विलीन हो जायेगी और आप शान्ति प्राप्त करेंगे।

साधना के प्रारम्भ में भौतिक स्तर पर कामनाओं का अधिकाधिक दमन करना होगा। परन्तु हम ज्यों-ज्यों अपने ऊपर अधिकार स्थापित करते जाते हैं, त्यों-त्यों वृत्ति के आते ही वह विचार तथा विवेक के द्वारा विलीन कर दी जाती है। यह साधक के लिए महान् लाभदायक है। ज्यों-ही वृत्ति आती है, त्यों-ही उसे लौटा दिया जाता है। अन्ततः सभी वृत्तियों को नाम-जप, सत्संग, स्वाध्याय, ध्यान, प्रार्थना, पुरश्चरण आदि साधनों से पूर्णतः विनष्ट करना होगा। वृत्तियों तथा संस्कारों के दमन के लिए ये सक्रिय एवं शक्तिशाली साधन हैं। वृत्ति तथा संस्कार अनेक हैं। उनकी जड़ गहरी जमी हुई है, फिर भी उनका विनाश होता है।

जितना अधिक हम मन के कार्य-व्यापार को समझेंगे, उतना ही अधिक हम उसको वश में ला सकते हैं। साधक को साधना के लिए आदर्श परिस्थिति मिल सकती है; परन्तु यदि वह मन के रहस्यों को समझने का प्रयास नहीं करता, यदि वह वासनाओं को कम कर संकल्प-शक्ति का विकास नहीं करता, तो वह उस आदर्श परिस्थिति से कोई लाभनहीं उठा सकता। वह अपने गुरु से भी कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकता। परन्तु एक बार मन को समझ लेने पर साधक ईश्वर-प्रदत्त सभी वस्तुओं से लाभ उठा सकता है। सद्ग्रन्थों का एक वाक्य भी उसके अन्दर आध्यात्मिक चैतन्य का प्रवाह बहा सकता है। परन्तु जब तक मन को समझा नहीं गया, तब तक तो योग व्यर्थ ही है।

अतः मन को समझिए, मन का अध्ययन कीजिए तथा इस मन को अच्छी तरह जान लीजिए। यह योग का आवश्यक अंग है। यह वेदान्त तथा साधना अथवा दिव्य जीवन का आवश्यक अंग है। यदि किसी ने इन सभी का अभ्यास किया है, तो उसके लिए ईश्वर-साक्षात्कार सरल है। ज्ञानीजन कहते हैं कि ईश्वर-साक्षात्कार इतना सरल है कि फूल तोड़ने में जितना समय लगता है, उतना ही समय पर्याप्त है। परन्तु आपको सभी मलों से मुक्त होना चाहिए। इसके लिए धैर्यपूर्वक आपको प्रयास करते रहना चाहिए। हम जितना अधिक नम्रता एवं सच्चाई के साथ स्वयं को तथा मन को समझने का प्रयास करेंगे, उतना ही हमें योग-वेदान्त के मार्ग में सफलता मिलेगी।

४. व्यावहारिक साधना (२)

हम देख चुके हैं कि सारा दिव्य जीवन, योग तथा वेदान्त की प्रक्रिया मुख्यतः मन के अन्दर ही निहित है। इन आन्तरिक क्रियाओं के बाह्य रूप भी हैं। वे मनुष्य व्यवहार आदि के रूप में व्यक्त होते हैं। के आचरण,

निम्न मन उच्च मन के साथ, निम्न नैसर्गिक वत्तियों से भरा हुआ मन तथा उच्च आध्यात्मिक इच्छाओं से पूर्ण मन के साथ, वह मन जो इन्द्रियों को बाहर ढकेलता है, जो रजस् तथा तमस् से पूर्ण है तथा सात्त्विक मन जो विवेक, बुद्धि तथा विचार-युक्त है, जिसमें विवेक तथा विचार का उद्भव होने लगता है-उन दोनों मन के साथ सतत संग्राम जारी है। विवेक-बुद्धि यह चुनाव करने लगती है कि क्या उचित है तथा क्या अनुचित है, क्या करना चाहिए तथा क्या नहीं करना चाहिए और क्या उन्नति में सहायक है तथा क्या प्रगति में बाधक है।

विवेक-बुद्धि से काम लेने पर मनुष्य वस्तुओं के कारण के विषय में विचार करने लगता है। सत्संग अथवा जीवन की दुःखद घटनाओं आदि द्वारा इस विवेक-बुद्धि की उत्पत्ति होती है। निम्न मन जो विषय-वासनाओं से पूर्ण है, मनुष्य को नीचे गिराना चाहता है, जब कि उन्नत मन उसे ऊपर उठाता है। अन्ततः मनुष्य का आध्यात्मिक अंग ही उसके नैसर्गिक विषय-परायण अंग पर विजय पाता है तथा पूर्ण आत्म-चैतन्य को प्राप्त कर लेता है।

पूर्ति करने पर आत्मा सबल बनती है

हम पहले कह चुके हैं कि संस्कार, वासना, कल्पना, अहंकार, इच्छा, कामना, चेष्टा तथा अनुभव का जटिल वृत्त है। आप चेष्टा करते हैं और आपको अनुभव (विषय-संवेदन) की आवृत्ति करनी पड़ती है। इससे संस्कार बनता है, वासना की उत्पत्ति होती है, वासना वृत्ति बन जाती है जो कल्पना की सहायता से इच्छा बन जाती है। इच्छा अहंकार की सहायता पा कर कामना बन जाती है। कामना घनीभूत हो कर तृष्णा बन जाती है तथा विषय-भोग पुनः संस्कार को दृढ़ बनाता है। बारम्बार इस सारी प्रक्रिया की पुनरावृत्ति होती रहती है।

जिससे उस कामना की उत्पत्ति हई थी. अधिक दृढ़ हो जाता है। इसका अभिप्राय यह है अतः किसी कामना के आने पर यदि आपने उसे पूर्ण कर दिया, तो वह संस्कार कि कामना की पति से कामना कदापि समाप्त नहीं होती। जिस तरह

क्षुधार्त ज्वालाएँ कितना ही घी खा कर परितृप्त नहीं होतीं, उसी तरह पूर्ति द्वारा कामना तृप्त नहीं होती, वरन् वह सबल ही बनती है।

मन से असहयोग कीजिए। कामनाओं की पूर्ति न कीजिए। कामना करना तो मन का स्वभाव ही है। मन तथा कामना पर्यायवाची ही हैं। अनेक कल्पनाएँ उठ सकती हैं, परन्तु मौन रहिए। ऐसा न कहिए, "आओ, हम तुम्हें तृप्त करेंगे।" जब आप अपने को मन समझने- "मैं मन हूँ", “मैं कामना करता हूँ" - की भूल करते हैं, तभी भारी गलती हो जाती है।

मन पर विजय

मन के शुद्ध होने पर ही यह आपका पथ-प्रदर्शक बन जाता है। तब तक उसके साथ असहयोग कीजिए। तब मन मनुष्य का चालक न होगा और मनुष्य ही मन का चालक बन जायेगा। तब आप मनोजीत या इन्द्रियजीत बन जायेंगे। साधक को यही बनना है। यही नियम है कि पूर्ति करने से कामनाएँ कदापि विनष्ट नहीं होतीं।

मन के धरातल पर आने वाली कामनाओं की जड़ें चित्त में गहरी गड़ी हुई हैं। आपको नित्य-प्रति मन को खोदना होगा तथा कामनाओं की जड़ तक पहुँचना होगा। एक समय निश्चित कर लीजिए, जब कोई भी बाह्य विक्षेप न हो, एकान्त स्थान में बैठ जाइए तथा अनुभव कीजिए कि आप मन के साक्षी हैं। मन को थोड़ी देर भटकने दीजिए तथा देखिए कि इसका व्यवहार कैसा है, फिर भीतर घुसने की कोशिश कीजिए।

हम मन को बाहर की ओर खींचने में ही सारा समय लगा देते हैं। अब मन को अन्तर्मुख बनाइए तथा अपने अन्दर देखिए कि क्या हो रहा है। नियमित अभ्यास की आवश्यकता है, अन्यथा आप समझेंगे कि आप मन का अध्ययन कर रहे हैं, परन्तु वास्तव में आप मन के साथ भ्रमण कर रहे होंगे। अन्तर्मुख बन कर अन्तर्निरीक्षण कीजिए। आपको द्विविध साधना करनी होगी-मन की वृत्तियों को अन्तर्मुखी करना तथा उसे मन के किसी भाग पर एकाग्र कर उसका विश्लेषण करना।

मन का अध्ययन

अन्धकार में रखी हुई वस्तु को देखने के लिए आप टार्च की रोशनी फेंकते हैं, उसी तरह मन की वृत्तियों को अन्तर्मुख करके मन का अध्ययन कीजिए। किसी सूक्ष्म वस्तु को देखना है, तो आप अणुवीक्षण यन्त्र का प्रयोग करते हैं, उसी तरह मन के सूक्ष्म भाग को देखने के लिए आपको सावधानीपूर्वक कार्य करना होगा। तब आप अपने मन के विषय में अधिक बातों का ज्ञान कर सकेंगे-आप जान सकेंगे कि सात्त्विक, राजसिक या तामसिक वृत्तियों में से कौन-सी वृत्ति प्रधान है।

आपको बुद्धिमानीपूर्वक विश्लेषण करना होगा। इसके लिए विवेक की आवश्यकता है। हमें दो वस्तुओं से सावधान रहना है। पहली है कि हमें पक्षपात सहित अन्तर्मुख नहीं होना चाहिए। मन के अध्ययन में निष्पक्ष रहिए। यदि मन के अध्ययन के अनन्तर आप आन्तरिक वस्तुओं से सन्तुष्ट हैं, तो भी कोई लाभ नहीं है। जिस तरह आप दूसरों के दोष देखते हैं, उसी तरह आपको अपने मन की समालोचना करनी होगी; अन्यथा अन्तर्निरीक्षण तथा आत्म-विश्लेषण से कोई लाभ न हो सकेगा।

दोषों का निराकरण

यदि अन्तर्निरीक्षण के द्वारा आप अपने मन में कुछ वस्तु पाते हैं जो अनुचित है, तो उसे दूर करने का उपाय कीजिए। अन्तर्निरीक्षण का अर्थ आत्म-प्रशस्ति नहीं है। दोषों को जान लेने पर व्यावहारिक बनिए। उन दोषों को दूर करने के लिए कुछ सक्रिय साधनों का प्रयोग कीजिए।

आत्म-निरीक्षण तथा साधना के द्वारा आपने जो कुछ भी पता लगाया है, उससे अधिकाधिक लाभ उठाइए। यही व्यावहारिक क्रियायोग है। यदि विस्तृत निष्पक्ष विश्लेषण किया जाये तथा उसके साथ-साथ दोषों को दूर करने के व्यावहारिक साधन अपनाये जायें, तभी पूर्ण शुद्धता की प्राप्ति हो सकती है। नित्य-प्रति निरीक्षण करना होगा। नित्य-प्रति आपको अपने मन से कुछ मल बाहर निकालना होगा। यही शुद्धता की विधि है।

सूक्ष्म अध्ययन की महत्ता

दो और मुख्य साधन हैं जिन्हें हर साधक को अपनाना है। हर साधक यह ध्यान रखे कि दिव्य जीवन को छोटे-छोटे व्यवहारों में भी उतारना है। यदि आप छोटे-छोटे कार्यों में दिव्य हैं, तो महान् कार्यों में भी दिव्य रहेंगे। यदि आप छोटे-छोटे कार्यों में असुर हैं, तो फिर आप मूलतः दिव्य कैसे बन सकेंगे ? यदि छोटी-छोटी वस्तुओं में आप व्यावहारिक हैं, तो आपको महत् की प्राप्ति स्वतः ही होगी।

कुछ साधक सोचते हैं कि विस्तार से क्या लाभ ? वे सोचते हैं कि यदि समय-समय पर वे कटु वचन बोलें, तो इसमें कोई हानि नहीं। "मैं तो भीतर से पूर्णतः शान्त हैं। ईश्वर तो केवल हृदय ही चाहता है। परन्तु शान्त हृदय कैसे होगा, जब तक कि आपका प्रत्येक शब्द प्रेम और करुणा से पूर्ण न हो। छोटे-छोटे कार्य तथा शब्दों से ही हृदय निर्मित है। यह सम्भव नहीं है कि आपका हृदय बहुत ही सुन्दर हो और आप बाह्यतः सभी प्रकार के कर्मों को करें।

आत्म-संयम

सत्य, अहिंसा, दया और ब्रह्मचर्य- ये प्रशस्त सिद्धान्त हैं जिनको छोटे-छोटे कार्यों में आपको उतारना होगा। प्रारम्भ में आपका जीवन आत्म-संयम से पूर्ण होना चाहिए। आपको जिह्वा को वश में करना होगा। क्या आप समझते हैं कि आप जो-कुछ भी चाहें खा लें, कैसा भी चाहें बोल लें और तदनन्तर आपको अच्छा ध्यान लग जायेगा? यदि आप ऐसा समझते हैं, तो आप स्वयं को ही धोखा दे रहे हैं। योग खिलौना नहीं है जिसके साथ आप आसानी से खेलने लगें। यह तो लौहदुर्ग है जिसके अन्दर शस्त्र-सज्जित सैनिक हैं।

हर कार्य को करने से पूर्व जाँच कीजिए। जो अन्न ग्रहण करते हैं उसका गुण, उसका परिमाण, भोजन लेने का समय यह सब महत्त्वपूर्ण है। प्रतिकूल भोजन या अनुचित समय में किया हुआ भोजन आपके स्वास्थ्य को बिगाड़ कर आपके ध्यान में विघ्न बन सकता है। उसी तरह आपके विचार तथा कर्म भी ध्यान के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। सारे शरीर तथा मन को नियन्त्रित करना चाहिए।

जब मैं यह गाना गाता हूँ- "थोड़ा खाओ, थोड़ा पीओ", तो इसके अर्थ को अच्छी तरह समझ लीजिए। कहने का अभिप्राय यह है कि सभी वस्तुओं से युक्त बनिए, अति से बचिए। गीत का दूसरा भाग - "थोड़ा जप करो, थोड़ा आसन करो" से अभिप्राय यह है कि आपके दैनिक कार्य में जप, कीर्तन, आसन आदि को अवश्य स्थान मिलना चाहिए।

उपसंहार

शरीर-सम्बन्धी सभी स्थूल वस्तुओं को कम-से-कम तथा साधना को अधिकाधिक स्थान अपने दैनिक जीवन में दीजिए। यही दिव्य जीवन की प्रशस्त रूपरेखा है। मन को नियन्त्रित कीजिए। कामनाओं को पूर्ण न कीजिए। वृत्ति को प्रारम्भ में ही नष्ट कर डालिए। नित्य आत्म-विश्लेषण तथा आत्म-निरीक्षण का अभ्यास कीजिए। ऐसा करते समय निष्पक्ष बनिए। अपने दोषों को ठीक बताने की भूल न कीजिए। उनको दूर करने के लिए साधना में जुट जाइए। आत्म-संयम-मय जीवन बिताइए; साथ ही आसन, प्राणायाम, ध्यान तथा जप का अभ्यास कीजिए।

मन के विक्षेप पर विजय पाने के लिए वैराग्य ही गुप्त रहस्य है। विक्षेप की जड़ में राग ही है। आप कल्पना करते हैं कि संसार के विषय आपको सुख देंगे। यही अविचार है। आपको विचार करना चाहिए। सांसारिक सुखों में आपको दोष-दर्शन कर वैराग्य की वृद्धि करनी चाहिए। इसके साथ-साथ यदि आपने उपर्युक्त साधनों का भी अभ्यास किया, तो आप अवश्य ही योग-वेदान्त के पथ पर अग्रसर होंगे।

५. दश दिन के लिए साधना

आप बडे दिन की छुट्टी, पूजा की छुट्टी अथवा गरमियों में इसका अभ्यास कर सकते हैं। किसी हवादार कमरे के अन्दर अपने को बन्द करके रखिए। किसी भी व्यक्ति से न बोलिए। किसी से न मिलिए। कुछ भी न सुनिए। चार बजे प्रातः उठिए। अपने इष्टदेव का मन्त्र अथवा गुरु-मन्त्र जपिए। सूर्यास्त को जप बन्द कीजिए। तब कुछ दूध, फल अथवा खीर का सेवन कीजिए। एक या दो घण्टे आराम कीजिए, परन्तु जप करते रहिए। पुनः गम्भीरतापूर्वक जप को प्रारम्भ कीजिए। ग्यारह बजे रात्रि में सोने के लिए जाइए। आप जप के साथ-साथ ध्यान भी कर सकते हैं। स्नान, भोजन इत्यादि के लिए सारा प्रबन्ध कमरे के अन्दर ही रखिए। यदि सम्भव हो, तो दो कमरे रखिए-एक स्नान के लिए तथा दूसरा ध्यान के लिए। ऐसा वर्ष में चार बार कीजिए। यह अभ्यास चालीस दिनों तक भी किया जा सकता है। आपको इससे आश्चर्यजनक लाभ होगा तथा आपको अनेक अनुभव प्राप्त होंगे। मैं आपको निश्चय दिलाता हूँ।

६. चालीस दिन के लिए साधना

आपको निम्नांकित विधि से राम-मन्त्र का एक लाख जप तीन हजार प्रतिदिन के हिसाब से चालीस दिन तक करना होगा। अन्तिम पाँच दिनों तक चार हजार प्रतिदिन जप कीजिए। चार बजे प्रातः उठिए। पतले कागज पर राम-राम तीन हजार बार लिखिए। तब उस कागज को बारीक टुकड़ों में काट लीजिए; हर टुकड़े में एक राम-नाम रहे। तब हर टुकड़े को आटे में गूँथ कर एक-एक गोली बना लीजिए। लिखने में आपको दो-तीन घण्टे लग जायेंगे। यह आपकी शक्ति पर निर्भर करता है। तब आपको एक-एक टुकड़े को अलग-अलग करना होगा। आपको यह सारी क्रिया एक ही आसन में बैठ कर करनी होगी। एक ही आसन में आपको कठिनाई मालूम हो, तो आसन बदल दीजिए; परन्तु अपने स्थान से उठिए नहीं। कुछ लोग केसर, कस्तूरी, कर्पूर आदि से निर्मित विशेष प्रकार की स्याही का प्रयोग करते हैं। वे तुलसी के बने कलम से लिखते हैं। यदि आपको उपर्युक्त४२६

स्याही अथवा कलम न मिले तो साधारण स्याही और कलम का ही व्यवहार कर सकते हैं। आप गंगा, यमुना, गोदावरी, कावेरी अथवा नर्मदा के किनारे, ऋषिकेश, वाराणसी, हरिद्वार या प्रयाग में अनुष्ठान कर सकते हैं। यदि इन स्थानों में जाने में अड़चन हो, तो अपने स्थान पर भी आप इसे कर सकते हैं। इन दिनों में दूध अथवा फलाहार का

सेवन कीजिए। इन गोलियों को गंगा या किसी नदी में मछलियों के लिए डालिए। आपको अपूर्व धैर्य की प्राप्ति होगी। आप ईश्वरीय कृपा प्राप्त करेंगे।

शुद्धता एवं एकाग्रता के साथ रामायण के १०८ पाठ कीजिए। यदि नित्य-प्रति तीन घण्टे लगायें, तो आप तीन वर्षों में ऐसा कर सकते हैं। आप महीने में तीन बार रामायण पढ़ सकते हैं। आपको सिद्धियाँ प्राप्त होंगी। आप भगवान् राम के दर्शन करेंगे।

७. शाश्वत साधना कैलेण्डर

(प्रति-मास के लिए दैनिक आध्यात्मिक साधना)

१. बुधवार-चार बजे प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में उठिए तथा कीर्तन कीजिए। "ॐ नमः शिवाय", "ॐ नमो नारायणाय", "श्रीराम" आदि का जप, ध्यान, ब्रह्म-विचार कीजिए।

२. गुरुवार-२५, ५०, १०० या २०० माला जप कीजिए या एक से छह या आठ घण्टे तक लगातार जप कीजिए।

३. शुक्रवार सर्वांगासन, शीर्षासन, पश्चिमोत्तानासन, भुजंगासन, शलभासन, धनुरासन, सुखपूर्वक, शीतली एवं भस्त्रिका प्राणायाम का अभ्यास कीजिए।

४. शनिवार- एकादशी को उपवास कीजिए। एक बूँद जल भी न पीजिए। अन्य दिन एक बार भोजन कीजिए। रात्रि के समय दूध तथा फल लीजिए।

५. रविवार-प्याज, लहसुन, गाजर, मूली, गोभी, मसूर की दाल, काले चने, तम्बाखू, शराब, धूम्रपान, गांजा, चाय, काफी, मांस, मछली, अण्डे आदि का त्याग कीजिए। रविवार को नमक न खाइए।

६. सोमवार- हर हालत में सत्य बोलिए। शारीरिक एवं मानसिक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कीजिए। मन, वचन तथा कर्म से अहिंसा का अभ्यास कीजिए।

७. मंगलवार गीता, रामायण, उपनिषद्, विवेकचूड़ामणि, योगवासिष्ठ, कुरान, बाइबिल, ज़ेन्दअवस्ता का अध्ययन कीजिए।

८. बुधवार - एक या दो घण्टे प्रतिदिन मौन रखिए। रविवार को चौबीस घण्टे मौन रहिए।

९. गुरुवार अपने गुरु के प्रति प्रगाढ़ भक्ति रखिए।

१०. शुक्रवार जो कुछ भी मन पसन्द करे, उसे एक सप्ताह या एक मास के लिए त्याग दीजिए।

११. शनिवार दैनिक आध्यात्मिक डायरी रखिए। अपने संकल्पों तथा दैनिक कार्यक्रम में अडिग रहिए। आधा या एक घण्टा नित्य मन्त्र लिखिए।

१२. रविवार-क्रोध का दमन कीजिए। दसरों को गाली देने, अश्लील शब्द बोलने, असत्य बोलने तथा संकल्प से च्युत होने पर आत्म-दण्ड दीजिए। रात्रि का आहार त्याग दीजिए। एक दरजन नीम की पत्तियों को चबाइए। पचास माला

और जप कीजिए। बिना तकिये के जमीन पर सोइए। जिस मनुष्य को आपने रुष्ट किया है, उसे साष्टांग नमस्कार कीजिए। अपने संकल्प की हर त्रुटि पर चार पैसे दान कीजिए।

१३. सोमवार नंगे पैर टहलिए। शनिवार को जमीन पर सोइए। धैर्य बढ़ाइए। अपमान, नुकसान तथा गाली सहिए।

१४. मंगलवार-हर पन्दरहवें दिन अपनी डायरी में अपनी उन्नति का अध्ययन कीजिए। देखिए, कब आपका संकल्प पूरा न हुआ, आपमें कौन-कौन-सी दुर्बलताएँ हैं तथा अपनी उन्नति के लिए नये साधनों का प्रयोग कीजिए।

१५. बुधवार तीन प्रकार के ही भोजन कीजिए। दो वस्त्र, तो तौलिये तथा दो कमीजें रखिए। अपनी आवश्यकता को कम कीजिए।

१६. गुरुवार अपनी आय का दशांश अथवा रुपये में एक आना दान दीजिए। यदि इस महीने आप दान न दे सकें, तो दूसरे महीने में कुछ और अधिक दान दीजिए।

१७. शुक्रवार-चुगली खाना, निन्दा करना, बदला लेना इत्यादि का परित्याग कीजिए। यथासम्भव अकेले रहिए तथा मन का निरीक्षण कीजिए।

१८. शनिवार-गरीबों तथा बीमारों की सेवा कीजिए। अपनी मातृभूमि की सेवा कीजिए। राष्ट्रभक्त बनिए।

१९. रविवार रविवार को सोलह घण्टे तप तथा ध्यान कीजिए। पूर्णतः उपवास रखिए। अपने कमरे से बाहर न आइए।

२०. सोमवार-पूर्ण, अशेष आत्मार्पण कीजिए और भगवत्कृपा तथा दर्शन प्राप्त कीजिए। सोमवार को शिव-नाम का कीर्तन, मंगलवार को दुर्गा का, बुधवार को राम का, गुरुवार को दत्तात्रेय का, शुक्र को लक्ष्मी का, शनिवार को हनुमान् का तथा रविवार को सूर्य का कीर्तन कीजिए।

२१. मंगलवार-काम करते समय मन को प्रभु के प्रति अर्पित कर दीजिए। कर्तापन, फल की कामना तथा राग का त्याग कीजिए। सन्तुलित मन रखिए।

२२. बुधवार-विचार की पृष्ठभूमि बनाये रखिए। भगवान् का रूप अथवा ॐ का चित्र मन में रखिए अथवा सच्चिदानन्द, नित्य, असीम, अमृत आदि विचारों को बनाये रखिए।

२३. गुरुवार जगत् मिथ्या है। ब्रह्म ही सत्य है। आप ब्रह्म हैं। तत्त्वमसि तुम वही हो। सदा याद रखिए।

२४. शुक्रवार-ॐ का कीर्तन कीजिए। ॐ गाइए। ॐ का जप कीजिए। ॐ का ध्यान कीजिए।

२५. शनिवार- उन साधुओं तथा ऋषियों का स्मरण कीजिए जिन्होंने साधना द्वारा ईश्वर को प्राप्त किया। उनसे प्रेरणा ग्रहण कीजिए। उनका अनुगमन कीजिए। आप ईश्वर-दर्शन प्राप्त करेंगे।

२६. रविवार-विचार कीजिए: "मैं कौन हूँ?" शरीर, मन, प्राण तथा इन्द्रियों का निषेध कीजिए। सर्वव्यापक आत्मा के साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कीजिए।

२७. सोमवार-श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन कीजिए।

२८. मंगलवार अमावास्या तथा पूर्णिमा के दिन उपवास कीजिए। दशहरा, रामनवमी, गुरुपूर्णिमा, कृष्ण जन्माष्टमी, शिवरात्रि, वैकुण्ठ एकादशी के दिन दूध-फल का आहार कीजिए।

२९. बुधवार-शिवरात्रि, वैकुण्ठ एकादशी, क्रिसमस तथा गोकुलाष्टमी को रात्रि में जागरण कीजिए।

३०. गुरुवार-वर्ष में एक बार इष्ट-मन्त्र अथवा गुरु-मन्त्र का पुरश्चरण कीजिए।

३१. शुक्रवार ऋषिकेश, वृन्दावन, अयोध्या या वाराणसी में एक सप्ताह या एक मास रहिए। वर्ष में तीन या चार बार इन स्थानों में निवास कीजिए।

८. शाश्वत आध्यात्मिक कैलेण्डर

(हर दिन के लिए सद्‌गुण का अर्जन**)**

१. बुधवार सहनशीलता, क्षमा, विश्व-प्रेम, सन्मति तथा सेवा के द्वारा धैर्य का अर्जन कीजिए।

२. गुरुवार स्पष्टवादी तथा सच्चा बन कर सत्य का अभ्यास कीजिए। चापलूसी, दम्भ, अत्युक्ति तथा शब्द-चार्य का त्याग कीजिए। झूठ कदापि न बोलिए। सत्यवादी बनिए।

३. शुक्रवार-शुद्धता का अर्जन कर काम-वासना को नष्ट कीजिए।

४. शनिवार-करुणा, दया तथा प्रेम के अर्जन से अहिंसा का अभ्यास कीजिए।

५. रविवार नम्रता का विकास कर घमण्ड एवं मान को नष्ट कीजिए। सभी का सम्मान कीजिए, परन्तु सम्मान प्राप्ति की कामना न कीजिए।

६. सोमवार-उदारता तथा भद्रता का अर्जन कीजिए। संकीर्ण बुद्धि तथा ईर्ष्या को विनष्ट कीजिए।

७. मंगलवार-उदारता का अर्जन कर लोभ को नष्ट कीजिए। प्रसन्नतापूर्वक अपनी वस्तुओं को दूसरों में बाँटिए तथा सहज दानशील बनिए।

८. बुधवार - साहस का अर्जन कर कायरता को विनष्ट कीजिए।

९. गुरुवार - स्थिरता का अभ्यास कर चंचलता को विनष्ट कीजिए।

१०. शुक्रवार-जीवन को सरल एवं शुद्ध बनाये रखिए। विक्षेप को दूर कीजिए।

११. शनिवार-दानशील बनिए तथा पाप और कृपणता को नष्ट कीजिए।

१२. रविवार-उदारता तथा अथक निष्काम सेवा द्वारा वेदान्तिक एकता की चेतना एवं विशाल हृदय को प्राप्त कीजिए।

१३. सोमवार- आत्म-संयम का अभ्यास कर मन एवं इन्द्रियों के विक्षेप को दूर कीजिए।

१४. मंगलवार - निष्कामता का विकास कर स्वार्थ, अहंकार और ममता को दूर कीजिए।

१५. बुधवार- आर्जवता अथवा सरलता का अर्जन कर संकीर्ण बुद्धि एवं धूर्तता को नष्ट कीजिए।

१६. गुरुवार संन्यास का विकास कर सांसारिकता को विनष्ट कीजिए।

१७. शुक्रवार-विषय-परायण जीवन के दोषों का निरीक्षण कर तथा जगत् की असत्यता को जान कर वैराग्य को विकसित कीजिए।

१८. शनिवार-निष्कामता का विकास कर शान्ति प्राप्त कीजिए।

१९. रविवार-करुणा का विकास कर कटुता, रुक्षता तथा हिंसा को दूर कीजिए।

२०. सोमवार-मृदुता का विकास कर कटुता तथा हिंसा को विनष्ट कीजिए।

२१. मंगलवार-शील का विकास कर पाण्डित्याभिमान तथा आत्म-स्तुति का परित्याग कीजिए।

२२. बुधवार क्षमा का अर्जन कर क्रोध को दूर कीजिए।

२३. गुरुवार- धैर्य तथा प्रत्युत्पन्नमतित्व का विकास कीजिए। विपत्तियों तथा कठिनाइयों को मुस्कराते हुए भगाइए।

२४. शुक्रवार सरल तथा स्वाभाविक बनिए। दम्भ एवं पाखण्ड को विनष्ट कीजिए।

२५. शनिवार-आत्म-भाव का अर्जन कर द्वेष तथा ईर्ष्या को विनष्ट कीजिए।

२६. रविवार- अपरिग्रह का विकास कर परिग्रह तथा लोभ को नष्ट कीजिए।

२७. सोमवार सन्तोष को विकसित कर लोभ को नष्ट कीजिए।

२८. मंगलवार सत्संग के द्वारा कुसंग को दूर कीजिए।

२९. बुधवार-शान्ति के अर्जन से अशान्ति को नष्ट कीजिए।

३०. गुरुवार कहिए, "हे प्रभु! मैं तेरा हूँ, सब-कुछ तेरा है, तेरा ही चाहा होगा।" और, अहंकार एवं ममता को दूर कीजिए।

३१. शुक्रवार अमरात्मा पर नियमित ध्यान के द्वारा सभी सद्गुणों का विकास कीजिए।

९. दैनिक कार्य-तालिका

(क) विद्यार्थियों के लिए ध्यान

आसन और प्राणायाम	४-०० से ४-२५ तक प्रातः
त्राटक, जप तथा ध्यान	४-२५ से ५-०० तक प्रातः
विद्यालय के पाठों का अध्ययन	५-०० से ६-३० तक प्रातः
शारीरिक व्यायाम तथा नाश्ता	६-३० से ७-०० तक प्रातः
मन्त्र-लेखन	७-०० से ७-१५ तक प्रातः
गीता-पाठ	७-१५ से ७-३० तक प्रातः
पाठों की तैयारी	७-३० से ९-०० तक प्रातः
स्नान-भोजन	९-०० से १०-०० तक प्रातः
विद्यालय में	१०-०० से ५-०० तक सायं
खेल, टहलना तथा निष्काम कर्म	५-०० से ५-४५ तक सायं
जप तथा ध्यान	५-४५ से ६-४५ तक सायं
स्कूल के पाठों का अध्ययन	६-४५ से ८-१५ तक सायं
भोजन	८-१५ से ८-३० तक सायं
स्वाध्याय, धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन	८-३० से ९-०० तक सायं
कीर्तन-प्रार्थना	९-०० से ९-१५ तक सायं
आत्म-विश्लेषण, अन्तर्निरीक्षण, आध्यात्मिक दैनन्दिनी	९-१५ से ९-३० तक सायं
निद्रा	९-३० से ४-०० तक प्रातः

नोट : अवकाश के समय गरीब विद्यार्थियों को मुफ्त में पढ़ाना अथवा रोगी की सेवा करना निष्काम कर्म है।

(ख) कामकाजी लोगों के लिए

आसन और प्राणायाम	४-०० से ४-३० तक प्रातः
त्राटक, जप तथा ध्यान	४-३० से ६-०० तक प्रातः
व्यायाम तथा नाश्ता	६-०० से ६-४५ तक प्रातः
मन्त्र-लेखन	६-४५ से ७-०० तक प्रातः
गीता-स्वाध्याय	७-०० से ७-१५ तक प्रातः
आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन	७-१५ से ८-०० तक प्रातः
निष्काम कर्म तथा घरेलू कार्य	८-०० से ९-०० तक प्रातः
स्नान, भोजन और आफिस जाना	९-०० से १०-०० तक प्रातः
आफिस	१०-०० से ५-०० तक सायं
सायं भ्रमण और निष्काम कर्म	५-०० से ६-३० तक सायं
जप तथा ध्यान	६-३० से ७-४५ तक सायं
भोजन	७-४५ से ८-१५ तक सायं
कीर्तन, भजन और प्रार्थना	८-१५ से ८-३० तक सायं
आध्यात्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय	८-३० से ९-१५ तक सायं
आत्म-विचार, आत्म-विश्लेषण, अन्तर्निरीक्षण तथा आध्यात्मिक डायरी	९-१५ से १०-०० तक रात्रि
निद्रा	१०-०० से ४-०० तक प्रातः

(ग) रिटायर्ड लोगों के लिए

त्राटक, जप तथा ध्यान	३-४५ से ४-४५ तक प्रातः
आसन तथा प्राणायाम	४-४५ से ६-३० तक प्रातः
भ्रमण, विश्राम तथा नाश्ता	६-३० से ७-३० तक प्रातः
मन्त्र-लेखन	७-३० से ७-४५ तक प्रातः

गीता, भागवत तथा रामायण का स्वाध्याय	७-४५ से ९-०० तक प्रातः
निष्काम कर्म	९-०० से १०-०० तक प्रातः
जप तथा उपासना	१०-०० से ११-०० तक प्रातः
भोजन तथा विश्राम	११-०० से १-३० तक सायं
आध्यात्मिक पुस्तकों का अध्ययन तथा लेखन	१-३० से ३-३० तक सायं
सत्संग श्रवण	३-३० से ५-०० सायं
सायं भ्रमण तथा व्यायाम	५-०० से ६-०० तक सायं
भोजन तथा विश्राम	७-३० से ८-१५ तक सायं
भजन-कीर्तन	८-१५ से ८-४५ तक सायं
आत्म-विचार, आत्म-विश्लेषण, अन्तर्निरीक्षण तथाआध्यात्मिक डायरी	८-४५ से ९-३० तक सायं
निद्रा	१०-०० से ३-३० तक प्रातः

(घ) पूर्णकालिक साधकों के लिए

जप तथा ध्यान	३-३० से ६-३० तक प्रातः
आसन तथा प्राणायाम	६-३० से ७-४५ तक प्रातः
स्वाध्याय	७-४५ से ८-४५ तक प्रातः
निष्काम कर्म	८-४५ से १०-३० तक प्रातः
जप तथा पूजा	१०-४५ से ११-४५ तक प्रातः
भोजन तथा विश्राम	११-४५ से १-३० तक सायं
मन्त्र-लेखन	२-०० से ३-०० तक सायं
स्वाध्याय	३-०० से ४-०० तक सायं

निष्काम कर्म	४-०० से ५-०० तक सायं
शारीरिक व्यायाम अथवा टहलना	५-०० से ६-०० तक सायं
जप तथा ध्यान	६-०० से ८-०० तक सायं
भजन-कीर्तन	८-३० से ९-०० तक प्रातः
अन्तर्निरीक्षण, आत्म-विश्लेषण, आत्म-विचार तथा आध्यात्मिक डायरी	९-०० से ९-३० तक प्रातः
निद्रा	१०-०० से ३-३० तक सायं

नोट **:** (१) सभी आध्यात्मिक साधकों को, चाहे किसी भी अवस्था, जाति अथवा आश्रम के क्यों न हों, आध्यात्मिक डायरी अवश्य रखनी चाहिए।

(२) प्रत्येक व्यक्ति को प्रातः सात बजे से शाम के सात बजे के अन्दर एक घण्टा मौन-व्रत अवश्य रखना चाहिए।

(३) छुट्टियों में जप, ध्यान, धारणा, निष्काम कर्मयोग, मौन इत्यादि के लिए अधिक समय देना चाहिए।

(४) यदि आप आध्यात्मिक डायरी भर कर दिव्य जीवन संघ, ऋषिकेश को भेजेंगे, तो भविष्य के लिए आपको उपदेश दिये जायेंगे।

(ङ) रात्रि में कार्य करने वालों के लिए

कीर्तन, प्रार्थना तथा एक माला जप	३० मिनट (ड्यूटी के बाद)
निद्रा	६ से ७-१/२ घण्टे
मौन-जप	३० मिनट (सो कर उठने पर)
आसन तथा प्राणायाम	२० मिनट
आराम, स्नान तथा भोजन	१-१/२ घण्टा
गीता-स्वाध्याय तथा मन्त्र-लेखन	३० मिनट
त्राटक, जप तथा कार्य	१-१/२ घण्टा
गृहस्थी के कार्य	१-१/४ घण्टा
स्वाध्याय (धर्मग्रन्थ)	३० मिनट

आत्म-विश्लेषण, अन्तर्निरीक्षण, आत्म-विचार तथा आध्यात्मिक डायरी ३० मिनट

भोजन, वस्त्र, आफिस जाना ४५ मिनट

आफिस ड्यूटी ८ घण्टे

नोट: आफिस में यदि अवकाश मिले, तो मौन-जप कीजिए अथवा आध्यात्मिक पुस्तकों को पढ़िए।

(च) आश्रम के दर्शनार्थियों के लिए

साधना	काल (घं. मि.)	कब से	कब तक
जप तथा साधना	१-००	५-००	६-००
प्रातः भ्रमण	०-३०	६-००	६-३०
आसन तथा प्राणायाम	०-३०	६-३०	७-००
विश्राम	०-१५	७-००	७-१५
मौन	०-१५	७-१५	७-३०
स्नान तथा नाश्ता	०-३०	७-३०	८-००
मन्त्र-लेखन	०-१५	८-००	८-१५
गीता-स्वाध्याय	०-४५	८-१५	९-००
विश्राम	०-१५	९-००	९-१५
स्वाध्याय, उपासना, पूजा तथा कीर्तन	३-००	९-१५	१२-१५
भोजन तथा विश्राम	१-१५	१२-१५	१-३०
निष्काम सेवा	३-००	१-३०	४-३०
प्राणायाम	०-१०	४-३०	४-४०
शारीरिक व्यायाम	०-२०	४-४०	५-००
विश्राम	०-१५	५-००	५-१५
सायं भ्रमण	१-००	५-१५	६-१५

स्नान इत्यादि	०-३०	६-१५	६-४५
जप तथा ध्यान	१-००	६-४५	७-४५
मन्त्र-लेखन	०-१५	७-४५	८-००
भोजन तथा विश्राम	१-००	८-००	९-००
कीर्तन	१-००	९-००	१०-००
निद्रा	७-००	१०-००	५-००

साधना	काल
निद्रा	७-००
आसन तथा व्यायाम	०-५०
टहलना	१-३०
प्राणायाम	०-१०
मौन	०-१५
जप तथा ध्यान	२-००
स्वाध्याय	४-००
भोजन तथा विश्राम	३-४५
स्नानादि	१-००
निष्काम सेवा	३-००
मन्त्र-लेखन	०-३०
पूर्ण योग	२४-००

(छ) उत्तम साधकों के लिए साधना

आध्यात्मिक मार्ग में त्वरित उन्नति के लिए यह बहुत ही लाभदायक है। प्रातः चार बजे उठिए। किसी भी आसन पर जप करना प्रारम्भ कर दीजिए। चौदह घण्टे तक भोजन या पानी न लीजिए। आसन से न उठिए। सम्भव हो, तो

सूर्यास्त तक मल-मूत्र को रोके रखिए। यदि सम्भव हो, तो आसन भी न बदलिए। सूर्यास्त के समय जप बन्द कीजिए। सूर्यास्त के अनन्तर दूध तथा फल लीजिए। गृहस्थ जन छुट्टियों में इसका अभ्यास कर सकते हैं। महीने में एक बार या हफ्ते में एक बार इसका अभ्यास कीजिए।

१०. बारह सद्‌गुणों के ऊपर दश-दश मिनट के लिए साधना

इन बारह सद्‌गुणों पर दश-दश मिनट तक ध्यान कीजिए : १. जनवरी में नम्रता, २. फरवरी में आर्जव, ३. मार्च में साहस, ४. अप्रैल में धैर्य, ५. मई में करुणा, ६. जून में उदारता, ७. जुलाई में सच्चाई, ८. अगस्त में शुद्ध प्रेम, ९. सितम्बर में दानशीलता, १०. अक्तूबर में क्षमा, ११. नवम्बर में समता और १२. दिसम्बर में सन्तोष।

शुद्धता, उत्साह, संलग्नता तथा प्रसन्नता का भी विकास कीजिए।

कल्पना कीजिए कि आपमें वास्तव में ये गुण हैं। स्वयं से कहिए, "मैं धैर्यवान् हूँ। आज से मैं चिड़चिड़ा न बनूँगा। मैं अपने दैनिक जीवन में इस सद्‌गुण को व्यक्त करूँगा। मैं उन्नति कर रहा हूँ।" इस सद्‌गुण धैर्य के लाभों पर विचार कीजिए। अधैर्य से होने वाली हानियों का भी चिन्तन कीजिए। इसी प्रकार आप सभी सद्‌गुणों का विकास कर सकते हैं।

११. बीस महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक उपदेश

इन बीस उपदेशों में सारी योग-साधना का सारांश है। जो इन उपदेशों का मन लगा कर पालन करेगा वह कर्म, भक्ति, ज्ञान तथा योग को सहज ही प्राप्त कर लेगा। शीघ्र विकास के लिए तथा शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए ये कुंजी है।

१. ब्राह्ममुहूर्त-जागरण-नित्य-प्रति प्रातः चार बजे उठिए। यह ब्राह्ममुहूर्त ईश्वर के ध्यान के लिए बहुत अनुकूल है।

२. आसन- पद्मासन, सिद्धासन अथवा सुखासन पर जप तथा ध्यान के लिए आधे घण्टे के लिए पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठ जाइए। ध्यान के समय को शनैः-शनैः तीन घण्टे तक बढ़ाइए। ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य के लिए शीर्षासन अथवा सर्वांगासन कीजिए। हलके शारीरिक व्यायाम (जैसे टहलना आदि) नियमित रूप से कीजिए। बीस बार प्राणायाम कीजिए। मि

३. जप- अपनी रुचि या प्रकृति के अनुसार किसी भी मन्त्र (जैसे 'ॐ' 'ॐ नमो नारायणाय', 'ॐ नमः शिवाय', 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय', 'ॐ श्री शरवणभवाय नमः', 'सीताराम', 'श्री राम', 'हरि ॐ' या गायत्री) का १०८ से २१,६०० बार प्रतिदिन जप कीजिए (मालाओं की संख्या १ और २०० के बीच)।

४. आहार- संयम-शुद्ध सात्विक आहार लीजिए। मिर्च, इमली, लहसुन, प्याज, खट्टे पदार्थ, तेल, सरसों तथा हींग का त्याग कीजिए। मिताहार कीजिए। आवश्यकता से अधिक खा कर पेट पर बोझ न डालिए। वर्ष में एक या दो बार एक पखवाड़े के लिए उस वस्तु का परित्याग कीजिए जिसे मन सबसे अधिक पसन्द करता है। सादा भोजन कीजिए। दूध तथा फल एकाग्रता में सहायक होते हैं। भोजन को जीवन-निर्वाह के लिए औषधि के समान लीजिए। भोग के लिए भोजन करना पाप है। एक माह के लिए नमक तथा चीनी का परित्याग कीजिए। बिना चटनी तथा अचार के केवल

चावल, रोटी तथा दाल पर ही निर्वाह करने की क्षमता आपमें होनी चाहिए। दाल के लिए और अधिक नमक तथा चाय, काफी और दूध के लिए और अधिक चीनी न माँगिए।

५. ध्यान- कक्ष-ध्यान कक्ष अलग होना चाहिए। उसे ताले-कुंजी से बन्द रखिए।

६. दान- प्रतिमाह अथवा प्रतिदिन यथाशक्ति नियमित रूप से दान दीजिए अथवा एक रुपये में दस पैसे के हिसाब से दान दीजिए।

७. स्वाध्याय- गीता, रामायण, भागवत, विष्णुसहस्रनाम, आदित्यहृदय, उपनिषद्, योगवासिष्ठ, बाइबिल, जेन्द-अवस्ता, कुरान आदि का आधा घण्टे तक नित्य स्वाध्याय कीजिए तथा शुद्ध विचार रखिए।

८. ब्रह्मचर्य - बहुत ही सावधानीपूर्वक वीर्य की रक्षा कीजिए। वीर्य विभूति है। वीर्य ही सम्पूर्ण शक्ति है। वीर्य ही सम्पत्ति है। वीर्य जीवन, विचार तथा बुद्धि का सार है।

९. स्तोत्र- पाठ- प्रार्थना के कुछ श्लोकों अथवा स्तोत्रों को याद कर लीजिए। जप अथवा ध्यान आरम्भ करने से पहले उनका पाठ कीजिए। इसमें मन शीघ्र ही समुन्नत हो जायेगा।

१०. सत्संग- निरन्तर सत्संग कीजिए। कुसंगति, धूम्रपान, मांस, शराब आदि का पूर्णतः त्याग कीजिए। बुरी आदतों में न फँसिए। गामाया

११. व्रत - एकादशी को उपवास कीजिए या केवल दूध तथा फल पर निर्वाह कीजिए।

१२. जप- माला-जप-माला को अपने गले में पहनिए अथवा जेब में रखिए। रात्रि में इसे तकिये के नीचे रखिए।

१३. मौन-व्रत-नित्य-प्रति कुछ घण्टों के लिए मौन-व्रत कीजिए।

१४. वाणी-संयम-प्रत्येक परिस्थिति में सत्य बोलिए। थोड़ा बोलिए। मधुर बोलिए।

१५. अपरिग्रह-अपनी आवश्यकताओं को कम कीजिए। यदि आपके पास चार कमीजें हैं, तो इनकी संख्या तीन या दो कर दीजिए। सुखी तथा सन्तुष्ट जीवन बिताइए। अनावश्यक चिन्ताएँ त्यागिए। सादा जीवन व्यतीत कीजिए तथा उच्च विचार रखिए।

१६. हिंसा-परिहार कभी भी किसी को चोट न पहुँचाइए (अहिंसा परमो धर्मः)। क्रोध को प्रेम, क्षमा तथा दया से नियन्त्रित कीजिए।

१७. आत्म निर्भरता- सेवकों पर निर्भर न रहिए। आत्म निर्भरता सर्वोत्तम गुण है।

१८. आध्यात्मिक डायरी- सोने से पहले दिन-भर की अपनी गलतियों पर विचार कीजिए। आत्म-विश्लेषण कीजिए। दैनिक आध्यात्मिक डायरी तथा आत्म-सुधार रजिस्टर रखिए। भूतकाल की गलतियों का चिन्तन न कीजिए।

१९. कर्तव्य-पालन याद रखिए, मृत्यु हर क्षण आपकी प्रतीक्षा कर रही है। अपने कर्तव्यों का पालन करने में न चूकिए। सदाचारी बनिए।

२०. ईश- चिन्तन- प्रातः उठते ही तथा सोने से पहले ईश्वर का चिन्तन कीजिए। ईश्वर को पूर्ण आत्मार्पण कीजिए। यह समस्त आध्यात्मिक साधनों का सार है। इससे आप मोक्ष प्राप्त करेंगे। इन नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करना चाहिए। अपने मन को ढील न दीजिए।

१२. साधना-तत्त्व अर्थात् सप्त-साधन-विद्या

भूमिका

(क) हजारों टन सिद्धान्तों की अपेक्षा ग्राम-भर आचरण अधिक लाभप्रद है। योग, धर्म एवं दर्शन के ग्रन्थों में बताये हुए साधनों का अभ्यास कीजिए तथा आत्म-साक्षात्कार कीजिए।

(ख) इन बत्तीस शिक्षाओं के द्वारा सनातन-धर्म का सार-तत्त्व उसके शुद्धतम रूप में प्रस्तुत किया गया है। ये शिक्षाएँ नियत समय तक कार्य करने वाले आधुनिक व्यस्त गृहस्थों के लिए उपयुक्त है। अपनी सुविधानुसार इनमें परिवर्तन कर लीजिए और इनसे सम्बन्धित साधना की अवधि धीरे-धीरे बढ़ाते जाइए।

(ग) प्रारम्भ में केवल थोड़े से ऐसे संकल्पों का चयन कीजिए, जिनसे आपके स्वभाव और चरित्र में भले ही थोड़ा परन्तु निश्चित सुधार हो। बीमारी, कार्य-व्यस्तता या अपरिहार्य पूर्व-संकल्पित कार्यों के कारण यदि आप सक्रिय साधनाभ्यास न कर सकें, तो उसके स्थान पर बार-बार भगवद्-स्मरण कीजिए।

(१) आरोग्य-साधना

१. मिताहार : मिताहारी बनिए। हलका और सादा भोजन कीजिए। भोजन करने से पूर्व उसे भगवान् को अर्पण कीजिए। सन्तुलित आहार लीजिए।

२. रजस्तमोवर्धक पदार्थों का त्याग : यथा-सम्भव मिर्च, मसाले, इमली आदि राजसिक पदार्थों का सेवन कम कीजिए। चाय, काफी, ताम्बूल (पान), मांस-मछली, शराब तथा धूम्रपान का सर्वथा त्याग कीजिए।

३. व्रत-उपवास : एकादशी के दिन उपवास कीजिए। केवल दूध, कन्द और फल खाइए।

४. आसन-व्यायाम : योगासन तथा शारीरिक व्यायाम प्रतिदिन १५ से ३० मिनट तक कीजिए। प्रतिदिन दूर तक टहलने जाइए या ओजस्वी खेल खेलिए।

(२) प्राण-शक्ति-साधना

५. मौन-व्रत : प्रतिदिन २ घण्टे तथा रविवार को चार से आठ घण्टे तक मौन रहिए।

६. ब्रह्मचर्य व्रत: अपनी आयु तथा परिस्थितियों के अनुसार ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कीजिए। प्रारम्भ में महीने में एक बार से अधिक ब्रह्मचर्य भंग न करने का संकल्प कीजिए। इस अवधि को धीरे-धीरे बढ़ा कर वर्ष में एक बार तक ले आइए। अन्त में आजीवन ब्रह्मचर्य-पालन की प्रतिज्ञा कीजिए।

(३) चरित्र-साधना

७. वाणी-संयम : सत्य बोलिए। मधुर बोलिए। विनीत वचन बोलिए। कम बोलिए।

८. अहिंसा : मन, वचन और कर्म से किसी को भी कष्ट न पहुँचाइए। प्राणिमात्र पर दया-भाव रखिए।

९. आर्जव (सरलता) : दूसरों के साथ अपने व्यवहार में निष्कपटता, उदारता तथा सरलता का परिचय दीजिए।

१०. ईमानदारी : ईमानदार बनिए। कठोर परिश्रम (स्वेद) से जीविकोपार्जन कीजिए। अन्याय तथा अधर्म से मिलने वाला धन, वस्तु या उपहार मत स्वीकार कीजिए। सज्जनता (औदार्य) तथा सत्यनिष्ठा का विकास कीजिए।

११. क्षमा : जब आपको क्रोध आ जाये, तब उसे धैर्य, शान्ति, प्रेम, करुणा तथा सहिष्णुता द्वारा नियन्त्रित कीजिए। दूसरों के अपराध भूल जाइए और उन्हें क्षमा कर दीजिए। व्यक्तियों तथा घटनाओं के अनुकूल अपने को परिवर्तित करने के लिए तैयार रहिए।

(४) इच्छा-शक्ति-साधना

१२. मन-संयम : प्रतिवर्ष एक सप्ताह या एक महीने तक चीनी का और प्रत्येक रविवार को नमक का त्याग कीजिए।

१३. कुसंग-त्याग : ताश खेलना, उपन्यास पढ़ना, सिनेमा देखना और क्लबों में जाना बन्द कीजिए। दुर्जनों की संगति से दूर रहिए। सांसारिक व्यक्तियों से वाद-विवाद न कीजिए। ईश्वर में जिनकी श्रद्धा न हो या जो आपकी साधना की निन्दा करते हों, ऐसे लोगों से मिलना-जुलना बन्द कर दीजिए।

१४. सादा जीवन : अपनी आवश्यकताओं को कम कर दीजिए। अपनी सम्पत्ति को भी क्रमशः घटाते जाइए। 'सादा जीवन और उच्च विचार' अपनाइए।

(५) हृदय-साधना

१५. परोपकार: दूसरों की भलाई करना, यह परम धर्म है। कर्तत्व के अभिमान तथा कर्म-फल की आशा से अपने को मुक्त रखते हुए प्रति-सप्ताह कुछ घण्टे तक निष्काम सेवा कीजिए। अपने सांसारिक कर्तव्यों को भी इसी प्रकार कीजिए। कर्म पूजा है। इसे भगवान् को समर्पित कर दीजिए।

१६. दान : अपनी आय का दश प्रतिशत तक दान कीजिए। अपनी वस्तुओं में दूसरों को भी सहभागी बनाइए। संसार के सभी प्राणियों को अपना कुटुम्बी मानिए। "वसुधैव कुटुम्बकम् ।" स्वार्थ-वृत्ति का त्याग कीजिए।

१७. नम्रता : विनम्र बनिए। सब प्राणियों को मानसिक नमस्कार कीजिए। ईश्वर के अस्तित्व का सर्वत्र अनुभव कीजिए। मिथ्याभिमान, दम्भ तथा मिथ्याचार का त्याग कीजिए।

१८. श्रद्धा : गीता, गुरु और गोविन्द में अविचल श्रद्धा रखिए। ईश्वर को आत्म-समर्पण करते हुए प्रार्थना कीजिए- 'हे प्रभु! जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा ही हो। मैं कुछ भी नहीं चाहता।' समस्त परिस्थितियों में या घटनाओं में ईश्वरेच्छा को प्रधान समझ कर समत्व-भाव से उनके प्रति अपने को अर्पित कीजिए।

१९. सर्वात्म-भाव : सब प्राणियों में ईश्वर के दर्शन कीजिए और उनसे आत्मवत् प्रेम कीजिए। किसी से घृणा न कीजिए।

२०. नाम-स्मरण : सर्वदा ईश्वर का स्मरण करते रहिए। कम-से-कम प्रातःकाल सो कर उठने पर, दैनिक कार्यों में विराम के समय और रात में सोने से पूर्व ईश्वर का स्मरण अवश्य कीजिए। अपनी जेब में एक जप-माला रखिए।

(६) मानसिक-साधना

२१. गीता-स्वाध्याय : प्रतिदिन गीता का एक अध्याय या उसके १० से २५ स्लोकों का अर्थ-सहित अध्ययन कीजिए। मूल गीता को समझने के लिए यथेष्ट संस्कृत सीख लीजिए।

२२. गीता कण्ठस्थ करना धीरे-धीरे पूरी गीता को कण्ठस्थ कर लीजिए। गीता की एक पुस्तक सदा अपनी जेब में रखिए।

२३. स्वाध्याय: रामायण, भागवत, उपनिषद, योगवासिष्ठ या अन्य धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय प्रतिदिन अथवा छुट्टी के दिन कीजिए।

२४. सत्संग कीर्तन-सत्संग के कार्यक्रमों के तथा धार्मिक सभाओं के प्रत्येक अवसर का लाभ उठाइए। रविवार या छुट्टी के दिन ऐसे महासम्मेलनों का आयोजन कीजिए।

२५. मन्दिर-गमन : किसी भी देव-मन्दिर में या पूजा-स्थल पर प्रति सप्ताह कम-से-कम एक दिन अवश्य जाइए। उन स्थानों पर कीर्तन, व्याख्यान आदि की व्यवस्था कीजिए।

२६. एकान्त-सेवन : अवकाश या छुट्टी के दिनों में किसी पवित्र स्थान में जा कर एकान्त-सेवन कीजिए और सारा समय साधना में बिताइए अथवा सन्त-महात्माओं का सत्संग कीजिए।

(७) आध्यात्मिक साधना

२७. ब्राह्ममुहूर्त-जागरण : रात में जल्दी सो कर प्रातःकाल चार बजे उठिए। शौच, स्नान आदि से निवृत्त हो जाइए।

२८. जप, प्रार्थना, ध्यान आदि पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में बैठ कर पाँच से छह बजे तक प्राणायाम, ध्यान, जप, स्तोत्र, प्रार्थना और कीर्तन कीजिए। एक ही आसन में स्थिर हो कर बैठने का अभ्यास धीरे-धीरे कीजिए।

२९. सन्ध्या-पूजा : अपनी दैनिक सन्ध्या, गायत्री जप, नित्य-कर्म और पूजा नियमित रूप से कीजिए।

३०. मन्त्र-लेखन : अपने इष्ट-मन्त्र या भगवान् के नाम को प्रतिदिन १० से ३० मिनट तक एक पुस्तिका में लिखिए।

३१. संकीर्तन-भजन : रात्रि में स्वजनों, मित्रों आदि के साथ बैठ कर आधे से एक घण्टे तक नाम-संकीर्तन, स्तोत्र, प्रार्थना, भजन आदि का गायन कीजिए।

३२. दैनन्दिनी : उपर्युक्त रूपरेखा के अनुसार वार्षिक संकल्प लीजिए। आपमें नियमितता, दृढ़ता एवं स्थिरता का होना आवश्यक है। साधना का विवरण प्रतिदिन आध्यात्मिक डायरी में लिखिए। प्रति मास उस पर पुनर्विचार करते हुए अपनी त्रुटियों को सुधारिए।

१३. आध्यात्मिक दैनन्दिनी का महत्त्व

दैनिक आध्यात्मिक डायरी का पालन करना अनिवार्यतः आवश्यक है। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। जो लोग डायरी रखते हैं, उन्हें इसके लाभों का ज्ञान है। डायरी मन को ईश्वर की ओर प्रवृत्त करने में कोडे का काम करती है। डायरी आपकी गुरु तथा पथ-प्रदर्शक है। यह आँखें खोलने वाली है। यह दर्गुणों के दमन तथा नियमित आध्यात्मिक साधना में आपको सहायता देगी। यह मुक्ति तथा नित्य आनन्द के मार्ग को दिखलाती है। जो लोग त्वरित गति से उन्नति करना चाहते हैं, उन्हें अपने कार्यों का दैनिक उल्लेख करना चाहिए। यदि आप नियमित रूप से डायरी रखेंगे तो आपको सान्त्वना, मन की शान्ति तथा आध्यात्मिक मार्ग में शीघ्र उन्नति प्राप्त होगी। दैनिक डायरी का पालन कीजिए तथा इसके आश्चर्यजनक परिणाम का साक्षात्कार कीजिए।

महात्मा गान्धी सदा अपने विद्यार्थियों को दैनिक डायरी रखने की सलाह देते थे। मैं भी इस बात पर बहुत बल देता हूँ। मेरे साधक पाँच विभिन्न नोटबुक रखते हैं। एक नोटबुक में वे एक घण्टा प्रतिदिन इष्टमन्त्र का मौन हो कर लिखित जप करते हैं। नोटबुक में मन्त्र लिखने से बहुत धारणा प्राप्त होती है। साथ ही जप भी है। वे अपने कार्यों का भी दैनिक उल्लेख रखते हैं। वे पर्यायवाची शब्दों के लिए नोटबुक रखते हैं। जब कभी उन्हें कोई कठिन शब्द मिलता है तो वे उन शब्दों को उनके पर्यायवाची शब्दों के साथ लिख लेते हैं। उन्हें अधिकाधिक शब्दों का ज्ञान हो जाता है। हर सप्ताह वे अपनी नोटबुक को सावधानीपूर्वक पढ़ लेते हैं। वे दूसरी नोटबुक भी रखते हैं जिससे वे अपने दैनिक अध्ययन से प्राप्त मुख्य बातों को लिख लेते हैं। दूसरी नोटबुक में वे मुझसे समय-समय पर प्राप्त व्यावहारिक उपदेशों को लिख लेते हैं। इससे उनकी मनन-शक्ति बढ़ती है। जो व्यक्ति उपर्युक्त प्रकार से अपने जीवन को नियमित करता है, वह अल्पकाल में ही महापुरुष बन जायेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसकी साधना कीजिए और देखिए कि आपकी कितनी उन्नति होती है।

संसार के सारे महापुरुष डायरी रखते थे। बेंजामिन फ्रेंकलिन का जीवन-चरित्र आप लोगों को मालूम ही है। वे नित्य-प्रति झूठ बोलने तथा गलत कार्यों की संख्या लिख लिया करते थे। कालान्तर में वे पूर्ण मनुष्य हो गये। उनको अपने मन पर पूर्ण अधिकार था।

आपको अपनी डायरी में यह भी लिखना होगा कि प्रातः कितने बजे आप बिछावन से उठते तथा कितने बजे सोने के लिए जाते हैं, कितने घण्टे सोते हैं, आध्यात्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय, जप-माला की संख्या, आप दिन में कितने घण्टे ध्यान करते हैं.

आध्यात्मिक दैनन्दिनी (साप्ताहिकी)

क्रम-संख्या	प्रश्नावली	महीना							योग
		१	२	३	४	५	६	७	
१	कितने घण्टे सोये ?								
२	सो कर कब उठे ?								
३	कितनी माला जप किया ?								
४	नाम-स्मरण कितनी देर किया ?								
५	कितने प्राणायाम किये ?								
६	आसन कितनी देर किये ?								
७	एक आसन में कितनी देर तक ध्यान किया ?								
८	क्या ध्यान में नियमित रहे ?								
९	कितने श्लोक गीता के पढ़े या याद किये ?								
१०	सत्सङ्ग कितनी देर तक किया ?								
११	कितनी देर तक मौन रहे ?								
१२	कितनी देर तक निष्काम सेवा की ?								
१३	कितना दान किया ?								
१४	कितनी बार मन्त्र लिखा ?								
१५	कितनी देर व्यायाम किया ?								
१६	कितनी बार असत्य बोला और क्या आत्म-दण्ड दिया ?								
१७	कितनी बार क्रोध आया और क्या आत्म-दण्ड दिया ?								

१८	कितनी देर तक व्यर्थ सङ्ग किया ?								
१९	कितनी बार ब्रह्मचर्य खण्डित हुआ ?								
२०	कितनी देर धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय किया ?								
२१	कितनी बार बुरी आदतों को दबाने में असफल रहे और क्या आत्म-दण्ड दिया ?								
२२	कितनी देर इष्ट-देवता पर ध्यान किया ?								
२३	कौन-से गुण का विकास कर रहे हो ?								
२४	कौन-सी बुरी आदत को हटाने का प्रयत्न कर रहे हो ?								
२५	कौन-सी इन्द्रिय सता रही है?								
२६	कितने दिन व्रत और जागरण रखे ?								
२७	कब सोये ?								

नाम हस्ताक्षर

पता

आपकी भूल किस प्रकार की है तथा उसको सुधारने के लिए आपने स्वयं को उपवास, जप-माला में वृद्धि आदि के द्वारा किस तरह दण्डित किया। दिन में कितनी बार झूठ बोला, कितनी बार क्रोध किया, वह कितने समय तक रहा, उसको रोकने के लिए आपने कौन-सी विधियाँ अपनायीं. कितने प्राणायाम किये. कितनी देर आसन का अभ्यास किया, कितने घण्टे व्यर्थ ही गप-शप आदि में बिता दिये।

आप यह भी लिख सकते हैं कि कितने घण्टे दैनिक मौन रखा। शिवरात्रि, जन्माष्टमी अथवा अन्य दिनों आपने रात्रि-जागरण किया या नहीं? कितनी बार आप बुरी आदतों के नियन्त्रण में विफल हुए। इस पुस्तक में दी गयी डायरी का पालन कीजिए तथा देखिए कि आप उन्नति कर रहे हैं या नहीं। अपनी डायरी की एक नकल प्रति मास मेरे पास भेज दीजिए। छह महीने के लिए डायरी रखिए और इसके फल को देखिए। यदि आप शीघ्र आध्यात्मिक उन्नति चाहते हैं, तो कभी भी किसी बात को न छिपाइए। सांसारिक प्रकृति को बदलने के लिए कठोर साधना आवश्यक है। आप अपने

दोषों को न छिपायें। डायरी तो आपकी भलाई के लिए ही है जिससे आप स्वयं को सुधार सकें, दिव्य जीवन का विकास कर आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर सकें। यदि साधक सच्चा है, तो डायरी लिखने से ही उसकी आँखें खुल जायेंगी तथा यह डायरी उसे ईश्वर-साक्षात्कार का मार्ग दिखायेगी। सभी लोग धोबी डायरी तथा दूध डायरी रखते हैं; परन्तु इस महत्त्वपूर्ण डायरी-आध्यात्मिक डायरी पर कोई ध्यान नहीं देता जिसकी सहायता से मनुष्य अपनी भूलों को ठीक कर आत्म-साक्षात्कार या परम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

आपके मन में एक महान् चोर घुसा हुआ है। उसने आपकी आत्मिक मुक्ता चुरा ली है। वही आपकी चिन्ताओं एवं विपत्तियों का कारण है। वह आपको मोहित करता है। वह चोर आपका मन ही है। आप उसे कुचल डालें। आप उसे निर्ममतापूर्वक मार डालें। इस डायरी के अतिरिक्त उस चोर को मार डालने का अन्य कोई अस्त्र नहीं है। यह उसकी मनमानी को रोकती है और अन्ततः उसे मार ही डालती है। यदि आप दैनिक आध्यात्मिक डायरी का पालन करें, तो आपके सारे दोष दूर हो जायेंगे और अन्त में वह शुभ समय आयेगा जब आप क्रोध, असत्य, काम इत्यादि से पूर्णतः विमुक्त हो जायेंगे; आप पूर्ण व्यक्ति बन जायेंगे।

आपके माता-पिता ने इस शरीर को प्रदान किया है। उन्होंने आपको भोजन-वस्त्र दिये; परन्तु यह डायरी उनसे भी बढ़ कर है। यह मुक्ति तथा नित्य सुख के मर्म को बतलाती है। यह आपकी गुरु है। सप्ताह में एक बार इस डायरी के पृष्ठ उलटिए। यदि आप प्रति घण्टा अपने कार्यों को लिखें, तो आपकी उन्नति बहुत शीघ्र हो सकती है। वह मनुष्य बहुत सुखी है जो डायरी रखता है; क्योंकि वह ईश्वर के बहुत निकट है, उसकी संकल्प-शक्ति बहुत प्रबल होती है तथा वह दोषों एवं भूलों से मुक्त बनता है।

दैनिक डायरी रखने से आप तत्काल अपनी भूल सुधार सकते हैं। आप अधिक साधना कर शीघ्र उन्नति करेंगे। डायरी से बढ़ कर आपका कोई भी अच्छा मित्र अथवा गुरु नहीं है। यह आपको समय के मूल्य का ज्ञान करायेगा। महीने के अन्त में जप, स्वाध्याय, प्राणायाम, आसन, निद्रा आदि के कुल घण्टों का योग कीजिए। इससे आप जान जायेंगे कि धार्मिक साधना में आप कितना समय दे रहे हैं। आपको धीरे-धीरे जप तथा ध्यान में वृद्धि लाने का पर्याप्त अवसर है। यदि आप डायरी के हर प्रश्न को भरेंगे, तो आप एक मिनट भी व्यर्थ नहीं बिता सकते। तभी आप समय के मूल्य को समझेंगे।

आध्यात्मिक डायरी-सम्बन्धी उपदेश

सांसारिक व्यक्तियों का साथ व्यर्थ है। बुरी आदतों को खोज निकालिए तथा उन्हें दूर कीजिए। आप इस दिशा में सर्वोत्तम जानकार हैं।

बेकार गपशप में कम-से-कम समय दीजिए। संसार में रहते हुए तो इसका पूर्ण त्याग असम्भव-सा है। बातचीत को तुरन्त समाप्त कर डालिए। सावधान रहिए। थोड़ा बोलिए। मिलने के लिए चार से पाँच बजे के बीच का समय रखिए।

सब-कुछ ईश्वरार्पण-भाव से कीजिए। कर्तव्य कर्तव्य के लिए, काम काम के लिए-यही आपका आदर्श होना चाहिए। ज्यों-ज्यों आपमें शुद्धता बढ़ती जायेगी, आप निष्काम कर्म की भावना को समझते जायेंगे। जब तक मन स्वार्थपूर्ण कामनाओं से भरा हुआ है, तब तक यह समझना कठिन है कि निष्काम कर्म है क्या ?

शिवरात्रि तथा जन्माष्टमी के दिन सारी रात्रि का जागरण महत्त्वपूर्ण है। इससे आप निद्रा पर विजय पायेंगे, नींद में कमी होगी। धूम्रपान, चाय, काफी, तम्बाकू, दिवास्वप्न, उपन्यास-पठन, सिनेमा, अश्लील शब्द बोलना, अत्यधिक बातें करना, जूआ, ताश खेलना, मद्यपान, समाचार-पत्र पढ़ना, निन्दा करना, पिशुनता, कोकीन, अफीम आदि का सेवन ये सब बुरी आदतें हैं।

चिड़चिड़ापन क्रोध का ही मन्द रूप है। आत्म-प्रशंसा तथा अत्युक्ति असत्य के ही रूप हैं।

बुरे स्वप्न, कुदृष्टि, अपवित्र कामुक उत्तेजन, विपरीत लिंगी के प्रति आकर्षण अथवा मोह-ये सब ब्रह्मचर्य-पालन में खण्डन हैं। साधक को सावधानीपूर्वक इन सबका निषेध करना चाहिए।

आत्म-भाव अथवा नारायण-भाव के साथ रोगियों की सेवा, समाज अथवा देश की सेवा निष्काम कर्मयोग है।

अपनी डायरी में पापों, विफलताओं तथा गलतियों का उल्लेख करने में शर्म न कीजिए। आपको कदापि झूठ नहीं बोलना चाहिए। आप अपने लाभ के लिए ही डायरी रख रहे हैं।

यह आपकी उन्नति के लिए है। यह उस साधक की डायरी है जो सत्य के साक्षात्कार के लिए सत्य-मार्ग का अनुगमन कर रहा है। अपने दोषों को खुल कर स्वीकार कीजिए तथा भविष्य में उनको दूर कीजिए। आप अपनी डायरी में किसी बात को न छोड़ें। अच्छा होगा कि आप इस हफ्ते की साधना का अगले हफ्ते की साधना से मिलान करें। यदि प्रति सप्ताह ऐसा न कर सकें तो कम-से-कम महीने में एक बार तो कीजिए। तब आप विभिन्न साधनाओं में अपने अनुकूल व्यवस्था ला सकते हैं, जप तथा ध्यान में वृद्धि ला कर निद्रा आदि के समय को घटा सकते हैं। वह धन्य है जो दैनिक डायरी रखता है तथा इस सप्ताह के काम की तुलना पिछले सप्ताह के कार्यों से करता है, क्योंकि वह शीघ्र ही ईश्वर-साक्षात्कार करेगा।

बहुमूल्य समय को यों ही नष्ट न कीजिए। इतना ही पर्याप्त है कि आपने इतने वर्ष बेकार गप-शप में व्यतीत कर दिये। अब बस कीजिए। ऐसा न कहिए, "कल से मैं नियमित साधना करूँगा।" वह 'कल' कभी नहीं आयेगा। सच्चे बनिए तथा इसी क्षण से साधना प्रारम्भ कीजिए। यदि आप वास्तव में सच्चे हैं, तो ईश्वर आपकी सहायता के लिए सदा तैयार है। इस डायरी की एक नकल कर लीजिए, इसे भर कर प्रतिमास अपने गुरु के पास भेज दीजिए। गुरु आपका पथ-प्रदर्शन करेंगे, आपकी बाधाओं को दूर कर आगे के लिए आपको उपदेश देंगे।

१४. शीघ्र आध्यात्मिक उन्नति के लिए संकल्प

१. दैनिक आध्यात्मिक डायरी रखिए तथा महीने के अन्त में उसकी एक प्रति अपने गुरु के पास भेजिए। जो आपको आगे के लिए उपदेश देंगे।

२. दैनिक लिखित जप के लिए पुस्तिका रखिए तथा नित्य-प्रति स्याही से इष्टमन्त्र या गुरु-मन्त्र के एक या दो पृष्ठ लिखिए।

३. दैनिक अभ्यास के लिए कार्यक्रम बना लीजिए तथा हर हालत में उसका पालन कीजिए। विक्षेप तथा बाधा बहुत ही है। सदा सावधान तथा सतर्क रहिए।

४. नये वर्ष के लिए कुछ संकल्प कर लीजिए। संकल्प-पत्र नीचे दिया जा रहा है। किसी भी संकल्प को आप हटा सकते हैं या उसमें परिवर्तन ला सकते हैं अथवा कुछ और संकल्प जोड़ सकते हैं, जो आपकी प्रवृत्ति, सुविधा तथा उन्नति के अनुकूल हो।

५. अपने जीवन-क्रम को अचानक ही न बदल डालिए। अपनी संकल्प-शक्ति का विकास कर मन तथा इन्द्रियों को वशीभूत कर संकल्प-पालन द्वारा उन्नति कीजिए।

६. आत्म-संयम की कमी होने के कारण अनजाने ही अथवा परिस्थितियों के वशीभूत होने से यदि किसी भी संकल्प में आपको विफलता प्राप्त हो, तो आप कुछ माला अधिक जप करें अथवा शाम को भोजन त्याग दें जिससे आपके मन में संकल्प के महत्त्व की बात बैठ जाये।

७. संकल्प-पत्र की दो प्रतियाँ रखिए, एक प्रति को हस्ताक्षर के साथ अपने गुरु के पास भेज दीजिए। इससे आप संकल्पों के पालन में ढिलाई नहीं कर सकते। किसी भी बहाने से संकल्प को न तोड़िए।

८. अपने सभी मित्रों से प्रार्थना कीजिए कि वे भी संकल्प-पत्र, आध्यात्मिक डायरी तथा मन्त्र-लेखन पुस्तिका का पालन करें। इस प्रकार आप बहुतों को संसार-पंक से निकाल सकते हैं।

१५. प्रतिज्ञा-पत्र या संकल्प-पत्र

१. मैं नित्य ....मिनट आसन और प्राणायाम करूँगा।

२. मैं सप्ताह/पक्ष/माह में एक बार रात्रि को भोजन न कर केवल दूध और फल ही ग्रहण करूँगा।

३. मैं महीने में एक/दो एकादशी व्रत रखूँगा।

४. मैं अपने सुखोपभोग की एक वस्तु को एक बार उसे........ प्रतिदिन / महीने अथवा उसे............. दिनों/महीनों के लिए त्याग दूँगा।

५. मैं प्रतिदिन या सप्ताह या मास में एक बार से अधिक अपने को निम्नांकित दुर्व्यसनों से न डिगाऊँगा :

(अ) धूम्रपान, (ब) ताश खेलना, (स) सिनेमा देखना, (द) उपन्यास पढ़ना।

६. मैं.... मिनट /घण्टे नित्य तथा.... मिनट / घण्टे के लिए इतवार या अन्य छुट्टी के दिनों / महीनों में मौन व्रत रखूँगा और इस समय को धारणा, ध्यान, जप तथा अन्तर्निरीक्षण में लगाऊँगा।

७. मैं ....सप्ताह माह ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा या मैं प्रति सप्ताह/माह में... बार ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँगा।

८. मैं इस वर्ष सर्वथा सत्य-भाषण करूँगा।

९. मैं इस वर्ष सर्वथा प्रिय-भाषण करूँगा।

१०. मैं किसी के प्रति बरे विचार या द्वेष-भाव न रखूँगा।

११. मैं अपनी आय में से.... नये पैसे प्रति रुपये के हिसाब से दान करूँगा।

१२. मैं नित्य या सप्ताह में...... घण्टे निष्काम कर्मयोग का अभ्यास करूँगा।

१३. मैं...... माला जप नित्य करूँगा।

१४. मैं अपनी नोटबुक में नित्य-प्रति. गुरु-मन्त्र को लिखूँगा। ...... मिनट या.... पृष्ठों में इष्ट-मन्त्र या

१५. मैं गीता के....... श्लोकों का अर्थ सहित अध्ययन नित्य-प्रति करूँगा।

१६. मैं दैनिक आध्यात्मिक डायरी का पालन करूँगा तथा उसकी एक प्रति को अपने गुरु जी के पास भेजूंगा जिससे मुझे आगे के लिए उपदेश मिल सकें।

१७. मैं.........बजे प्रातः नित्य उठूँगा तथा.... घण्टा समय जप, धारणा, ध्यान, प्रार्थना आदि में लगाऊँगा।

१८. मैं पारिवारिक लोगों तथा मित्रों के साथ नित्य-प्रति.... घण्टा/मिनट रात्रि में संकीर्तन करूँगा।

दिनांक

हस्ताक्षर

नाम तथा पता

१६. साधना में सफलता का रहस्य

साधना में सच्चाई तथा नियमितता आध्यात्मिक मार्ग में सफलता का रहस्य है। विजय-परायणता की रंचमात्र कालिमा भी साधक के स्वभाव को कलंकित न करे। पूर्ण शुद्ध होने की ज्वलन्त कामना होनी चाहिए। जो लापरवाही के कारण यम-नियम की अवहेलना करता है, वह आध्यात्मिक मार्ग में कदापि उन्नति नहीं कर सकता। अमृतत्व का द्वार उस व्यक्ति के लिए खुला हआ है जो नियमित सतत ध्यान करता है जो वैराम्य विवेक तथा भक्ति से सम्पन्न है।

सतत आध्यात्मिक चैतन्य में ही स्थित रहिए; सदा अमर सुखमय आत्मा का ही चिन्तन कीजिए। आप शीघ्र ही लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे। अनवरत मुमुक्षुत्व के साथ-साथ ईश्वर के प्रति एकाग्र भक्ति बनाये रखिए। ध्यान की आदत सारे प्रलोभनों से आपको दर रखेगी तथा उनसे कलुषित न बनने देगी। पूर्ण-वैराग्यमय हृदय रखिए जिसमें यह दृढ़ संकल्प हो कि इसी जन्म में ईश्वर-साक्षात्कार करना है।

१७. आदर्श गृहस्थ साधक

इस व्यस्त जगत् में भी कुछ ऐसे साधक हैं जो ऋषिकेश, उत्तरकाशी अथवा वाराणसी में पूरे समय साधना करने वाले संन्यासियों से भी अधिक उग्र साधना कर लेते हैं। यहाँ एक व्यक्ति हैं श्री 'अ'।

श्री 'अ' सेना-विभाग के एक बड़े आफिसर हैं। वे भारतीय हैं। उनका जन्म उत्तर प्रदेश (तब युक्त प्रान्त) में हुआ है। उनको इंग्लैण्ड में सैनिक शिक्षा प्राप्त हुई। वे धार्मिक तथा सदाचारी हैं। इतना ही नहीं, वे नियमित साधना तथा गम्भीर ध्यान का अभ्यास करते हैं।

वे आश्रम में आये तथा कई दिनों तक यहाँ रहे। वे स्वयं अपना सामान अपने कन्धे के ऊपर रख कर पहाड़ी के ऊपर चढ़े, आश्रमवासियों तथा सेवकों की सेवा को उन्होंने अस्वीकार कर दिया। देखिए, वे कितने आत्म निर्भर तथा नम्र हैं।

वे बहुत ही सादे वस्त्र पहनते हैं। वे अपनी स्त्री के द्वारा बुनी हुई कमीज पहनते हैं। कोई भी उन्हें एक साधारण सैनिक ही समझेगा। वे सभी के साथ खुल कर मिलते हैं। उनमें बड़प्पन की भावना नहीं है। वे सरल तथा नम्र हैं। हमने उनकी कुटीर पर भोजन भेजा; परन्तु उन्होंने उस भोजन को ग्रहण न कर स्वयं नीचे उतर अन्नपूर्णा-गृह (लंगर) में ही भोजन किया। उन्होंने कहा- "मैं साधक हूँ। मैं यहाँ सीखने तथा अनुशासित बनने के लिए आया हूँ। मैं विशेष सेवा तथा व्यवहार नहीं चाहता।" वे स्वयं पानी का घड़ा अपने कन्धे पर रख कर पहाड़ी के ऊपर ले जाते थे।

वे प्रातः चार बजे उठ कर ध्यान का अभ्यास करते हैं। वे गम्भीर ध्यान में निमग्न हो जाते हैं। वे ध्यान में लीन हो जाते हैं। बाह्य ध्वनियाँ उन्हें आकृष्ट नहीं करतीं। सन्ध्या को वे गंगा-तट पर बैठ कर ध्यान करते हैं। वे कभी एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गँवाते। ध्यान ही उनके लिए आहार है।

समाज में वे लोगों से अधिक नहीं मिलते। वे कभी भी क्लब में नहीं जाते। वे अपने दैनिक कार्यक्रम का पूर्ण रूप से पालन करते हैं। वे समाज के कुछ नियमों तथा व्यवहारों से ऊपर उठ जाते हैं और होना भी ऐसा ही चाहिए। वे लोक-मत से भय नहीं खाते।

एक बार मेहतरों की हड़ताल थी। उन्होंने स्वयं पाखाना साफ किया। उनकी स्त्री ने भी उनकी सहायता की। वे आत्म-निर्भर, उन्नत विचारवान् तथा उदार सिद्धान्तों वाले मनुष्य हैं।

वे गरीबों की सेवा के बड़े प्रेमी हैं। उन्होंने अपने यहाँ निःशुल्क विद्यालय स्थापित किया है। वे शीघ्र ही चैरिटेबल औषधालय खोलने जा रहे हैं।

संसार में लोग साधारणतः इसकी शिकायत करते हैं- "हमें ध्यान के लिए समय ही नहीं है। हम बहुत ही व्यस्त हैं। घरेलू कार्य तथा आफिस के काम में सारा समय बीत जाता है। घर आने पर हम थक जाते हैं। हम जप नहीं कर सकते।" यह तो व्यर्थ शिकायत है। यहाँ पर एक बहुत ही व्यस्त व्यक्ति हैं जिनके ऊपर बहुत बड़े उत्तरदायित्व का कार्य है। वे किसी चुनाव-समिति के सभापति हैं। उनके पास विविध कार्य हैं; फिर भी वे कितने नियमित हैं तथा आध्यात्मिक साधना में उनकी कितनी दिलचस्पी है। मित्रो, आप उनके उदाहरण का अनुसरण करें तथा पूरी सच्चाई के साथ योग-पथ का अवलम्बन करें। जहाँ चाह है, वहाँ राह है। ईश्वर तो माँग तथा माँग पूर्ति का विषय है। क्या आप ईश्वर को चाहते हैं? क्या आप उनके दर्शन के लिए लालायित हैं? यदि माँग है, तो माँग-पूर्ति शीघ्र ही होगी। इस नश्वर जगत् की क्षुद्र वस्तुओं से ऊपर उठिए। श्रद्धा तथा मुमुक्षुत्व रखिए। आप उग्र साधना कर सकेंगे। आप शीघ्र ही ईश्वर-साक्षात्कार कर सकेंगे।

ऐसे साधकों की जय हो! ईश्वर का आशीर्वाद उन्हें प्राप्त हो !

१८. साधना के लिए कुछ संकेत

१. चंचल तथा कलुषित मन के द्वारा ध्यान अधिक लाभकर नहीं होता।

२. आध्यात्मिक जीवन में संलग्नता आवश्यक है। साधक मुक्ति-मार्ग में कदापि अपने प्रयत्नों को नहीं छोड़ता। बाधाओं, प्रलोभनों तथा प्रतिबन्धों के मिलने पर भी वह साधना में संलग्न रहता है।

३. जब इन्द्रियाँ अनियन्त्रित हों तथा विचार मलिन हों, तब ध्यान लगाना सम्भव नहीं होता। अतः कर्मयोग तथा विचार के द्वारा मन को स्थिर तथा शुद्ध बनाइए।

४. शरीर, मन तथा इन्द्रियों का दमन ही आत्म-संयम है।

५. इन्द्रिय तथा शरीर स्वभावतः बहिर्मुखी हैं। वे विषयों की ओर दौड़ते हैं। राजयोग के प्रारम्भिक अंगों के द्वारा उनकी बहिर्मुखी वृत्ति को रोक कर मुक्ति-मार्ग की ओर प्रवृत्त किया जाता है। यही आत्म-निग्रह है।

६. पिपासु साधक विषयों के सम्बन्ध में बातें करना भी नहीं चाहता।

७. ज्ञानी मनुष्य की इन्दियाँ विषयों की ओर नहीं दौडती हैं; अतः विचार का अभ्यास कीजिए।

८. मन में उठने वाली यह वृत्ति 'मैं सभी से बड़ा हूँ' अहंकार है। इसका परित्याग करना चाहिए।

९. इस वृत्ति के अभाव से मनुष्य मुक्ति की ओर अग्रसर होता है।

१०. नम्रता अभिमान की विरोधी है; परन्तु नम्रता सच्ची तथा प्रदर्शन रहित होनी चाहिए।

११. जब मनुष्य सोचता है कि यह विषय मेरा है तो 'ममता' वृत्ति उसके मन में घुस जाती है। उसमें अभिमान आ जाता है। तब वह उस विषय-वस्तु से प्रेम करने लगता है। तदनन्तर वह उस विषय से आसक्त हो जाता है। भान कीजिए कि सभी वस्तुएँ ईश्वर की हैं तथा आप इस जगत् के अस्थायी यात्री हैं।

१२. सतत समत्व बुद्धि साधक का आदर्श होना चाहिए।

१३. अनासक्ति, मोह का अभाव तथा समत्व बुद्धि-ये ज्ञान तथा शान्ति में सहायक हैं।

१४. इष्ट तथा अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति पर ज्ञानी न तो हर्ष करता है और न शोक ही। यही साधना का लक्ष्य है।एक प्राली के पान

१५. भक्त ईश्वर के प्रति अविचल निष्ठा रखता है। वह अन्य विषयों का विचार नहीं करता।

१६. भक्त का मन ईश्वर के साथ एक हो जाता है - ईश्वर में लीन हो जाता है।

१७. जिस तरह नदी समुद्र में मिल कर पूर्णतः एक बन जाती है, उसी तरह भक्त का मन ईश्वर के साथ मिल कर एक बन जाता है।

१८. सत्संग अथवा ज्ञानियों की संगति के द्वारा आत्म-ज्ञान की प्राप्ति होती है।

१९. भगवान् के नाम का जप तथा निष्काम सेवा के द्वारा चित्त शुद्ध होता है।

२०. बुराई अविद्या है। पाप अविद्या है। दोनों से बचो।

२१. आलस्य को आसन तथा प्राणायाम से जीतो।

२२. आत्मज्ञान ही शाश्वत है। अन्य सारे लौकिक ज्ञान गौण ही हैं।

२३. हृदय के पूर्णतः शुद्ध हो जाने पर सत्य का साक्षात्कार होता है।

२४. अध्ययन, मनन, समत्व बुद्धि, निम्न प्रकृति का दैवीकरण-ये सब आध्यात्मिक मार्ग के लिए अनिवार्य हैं।

२५. जप तथा ध्यान भी आध्यात्मिक मार्ग के लिए अनिवार्य हैं।

२६. काम, क्रोध, लोभ, मद, दम्भ, घृणा और आसक्ति ये सब अविद्या के कार्य हैं, इनसे मनुष्य संसार में जा फँसता है। स्थिर प्रयत्न के द्वारा इनका दमन करना चाहिए।

२७. यदि आप आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपको उन दुर्गुणों का दमन करना होगा जो आध्यात्मिक मार्ग के प्रतिबन्धक हैं।

२८. यदि आप उनके विपरीत सद्गुणों का अर्जन करेंगे, तो वे स्वतः ही नष्ट हो जायेंगे।

२९. दुर्गुणों के साथ संग्राम छेड़ कर उनका दमन करना कठिन है।

३०. जो मधुर, प्रसन्न, सच्चा, उदार तथा सरल है, वह शीघ्र ही उन्नति करेगा।

३१. अपनी वाणी में विवेकशील बनिए। यह वक्तृता से भी अधिक प्रभावक है। आप शान्ति का उपभोग करेंगे।

३२. आपकी समस्याओं के समाधान आपके पास ही हैं। विचार कीजिए। ध्यान कीजिए। आप जानेंगे।

३३. आपके अन्दर ही स्वर्ग है। बाह्य वस्तुओं में सुख को क्यों खोजते हो?

३४. इस प्रकार रहिए कि जिससे किसी को थोड़ी भी असुविधा न हो।

३५. सत्य एवं मिथ्या के बीच विवेक करना सीखिए।

३६. शुद्ध, विशाल, प्रेम-परिप्लावित हृदय से दान देना सीखिए।

३७. अन्तर्निरीक्षण करना सीखिए। पहले स्वयं में सुधार लाना सीखिए।

३८. अन्तर्दृष्टि डालिए तथा बुरी वृत्तियों का दमन कीजिए।
३९. यदि सम्यक् भाव, अनासक्ति तथा आत्मार्पण के साथ कर्म किया जाये, तो आपके सारे कार्य योग में बदल जायेंगे।

४०. विवेकयुक्त स्व-संकेत, प्रार्थना, ध्यान तथा जप के द्वारा मन और इन्द्रियों को वश में लाना सीखिए।

४१. मन को ईश्वर पर एकाग्र करना सीखिए। ईश्वर ही सबसे अधिक प्रिय है।

४२. निष्कामता साधक का प्रथम गुण है।

४३. धर्म तथा अध्यात्म के प्रति संकीर्ण बुद्धि अथवा मत न रखिए।

४४. अपनी कामनाओं को उच्छृंखल न बनाइए।

४५. अपने मन को सदा शुभ प्रभावों के प्रति उन्मुक्त रखिए।

४६. साधना में स्थिर, क्रमिक, सच्चाईपूर्ण, सहज बुद्धि तथा उत्साहयुक्त होना चाहिए।

४७. चैतन्य के विभिन्न स्तर हैं। दूसरे शब्दों में साधना का अर्थ है चैतन्य की उन्नति की प्रक्रिया।

४८. शरीर, मन तथा इन्द्रिय चैतन्य के गुण को उसी प्रकार धारण करते हैं जिस प्रकार लोहा चुम्बक की उपस्थिति में चुम्बकीय गुण ग्रहण कर लेता है।

४९. साधना तथा साध्य-दोनों एक ही हैं। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बुरा साधन उपयुक्त नहीं हो सकता। साधन के द्वारा ही साध्य के स्वभाव को जाना जा सकता है। मनुष्य अन्दर से सन्त तथा बाह्यतः दुष्ट हो, ऐसा नहीं हो सकता। अतः सांसारिक गुप्त वासनाओं पर सदा निगरानी रखिए जो आपके कर्मों तथा आचरण को प्रेरित करती हैं। अच्छे उद्देश्य की पूर्ति के लिए बुरे साधनों को अपनाने के औचित्य के विषय में आत्म-प्रवंचना न कीजिए। दूसरों को सुधारने का भार स्वयं पर ले कर गलत साधन के द्वारा ठीक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रवृत्त न बनिए। आपका उदाहरण ही दूसरों के लिए मूक प्रेरणा का कार्य करे।

१९. कबीर की साधना-विधि

१. तोड़ो जोड़ो।

२. खाली करो-भरो।

३. याद करो-भूल जाओ।

१. किसी ने कबीर से पूछा, "हे सन्त कबीर, आप क्या कर रहे हैं?" कबीर ने उत्तर दिया, "मैं तोड़ रहा है तथा फिर जोड़ रहा हैं। मैं अपने मन को विषयों से अलग करता है तथा उसे आत्मा या सर्वव्यापक सच्चिदानन्द परमात्मा से जोड़ता है।"कबीर की विधि को अपनाइए। भगवान् कृष्ण ने भी इसी विधि की शिक्षा दी है-

"अस्थिर तथा चंचल मन जितनी बार विषयों की ओर दौडे, उतनी ही बार उसे संयमित कर अपने वश में लाना चाहिए।" "तोडो-जोडो-इन शब्दों को मन में दुहराइए। तब आप स्वतः ही अपने मन को आत्मा में स्थिर कर सकेंगे।

२. विषयों को खाली कीजिए, आत्मा को भरिए। वैराग्य तथा अभ्यास-इन दोनों की शिक्षा भगवान् कृष्ण ने भी दी है:

"हे महाबाहु अर्जुन ! निश्चय ही मन दुर्दम्य तथा अशान्त है; परन्तु सतत अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा इसे वश में लाया जा सकता है।"

आप पातंजल योगसूत्र में भी इसकी प्रतिध्वनि पायेंगे :

"अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा मन का निग्रह होता है" (अध्याय १-१२)।

"वृत्तियों को पूर्णतः निरुद्ध करने के सतत प्रयास को अभ्यास कहते हैं" (अध्याय १-१३)।

"सतत उत्साह के साथ दीर्घ काल तक अभ्यास करने से वह स्थिर हो जाता है" (अध्याय १-१४)।

३. अपने वास्तविक स्वरूप को आपने क्यों भुला दिया है? क्योंकि आप शरीर, स्त्री, बच्चे, संसार, विषय आदि का स्मरण बनाये रखते हैं। अब इनको भूलने का प्रयत्न कीजिए। अपने वातावरण, भूतकाल तथा सब-कुछ को भूल जाइए। तब आप आत्मा का ही स्मरण करेंगे। भूलना महत्त्वपूर्ण साधना है।

अध्याय १९:साधना-सम्बन्धी प्रश्नोत्तरी

१. धर्म, साधु तथा योगी

प्रश्न : धर्म का उद्देश्य क्या है?

उत्तर : मनुष्य को हृदय-शुद्धि तथा ईश्वर-साक्षात्कार के लिए सहायता देना, दूसरों के साथ मिल कर रहना, आध्यात्मिक संस्कृति रखना तथा एकता को स्थापित करना।

प्रश्न : क्या कष्ट के बिना आध्यात्मिक उन्नति सम्भव नहीं है?

उत्तर : नहीं, दुःख मनुष्य को ढालता है। यह हृदय में करुणा भरता है तथा संकल्प-शक्ति तथा तितिक्षा-शक्ति को विकसित करता है।

प्रश्न : आप राम-नाम के हिमायती हैं। इसका जप कैसे किया जाये?

उत्तर : राम का अर्थ है शुद्धता, सत्य, शान्ति, आनन्द, परम अस्तित्व, परम

चैतन्य। नाम जप करते समय इन विशेषणों पर ध्यान कीजिए।

प्रश्न : सृष्टि के विषय में समझाइए, इसका कारण क्या है?

उत्तर : यह जगत् ईश्वर की माया-शक्ति अथवा प्रकृति का प्रक्षेप है। यह जीवों को उनके कर्म-भोग के लिए समर्थ बनाता है।

प्रश्न : क्या ईर्ष्या सबसे बड़ा दुर्गुण नहीं है?

उत्तर : हाँ, यह विपत्तियों तथा दुःखों का मुख्य कारण है।

प्रश्न : ऐसा क्यों है कि धनी लोग बुरे कर्मों को करते हुए भी सुखी हैं?

उत्तर : वे सुखी नहीं हैं। उनकी अवस्था दयनीय है। उनके मन भय तथा शोक से आक्रान्त हैं। वे विविध प्रकार के असाध्य रोगों से पीड़ित हैं।

प्रश्न : साधु तथा योगी में क्या अन्तर है?

उत्तर : साधु ईश्वर का भक्त है। योगी वह है जिसने राजयोग के अष्टांगयोग का अभ्यास किया है।

प्रश्न : प्राणायाम के अभ्यास से क्या लाभ है?

उत्तर: यह मन को धारणा तथा सुन्दर स्वास्थ्य प्रदान करता है।

प्रश्न: विषय-सुख तथा आनन्द में क्या अन्तर है?

उत्तर : विषय-सुख विषय-पदार्थों के सम्पर्क से प्राप्त होता है। यह परिवर्तनशील, गतिमान तथा मिथ्या है: परन्तु आनन्द नित्य है। यह आत्म-साक्षात्कार से प्राप्त होता है।

प्रश्न : कल्पना कीजिए कि किसी परिवार में मृत्यु हुई है। समत्व बुद्धि प्राप्त व्यक्ति की क्या दृष्टि होनी चाहिए ?

उत्तर : वह शान्त रहेगा। वह शोक से प्रभावित न होगा। वह जानता है कि आत्मा अमर है तथा मृत्यु परिवर्तन मात्र है।

प्रश्न : संसार के प्रारम्भ से ही राग-द्वेष चलते आ रहे हैं। क्या वे नित्य नहीं हैं?

उत्तर : नहीं, द्वेष नित्य नहीं है। प्रेम के पूर्ण विकास होने पर उसका अन्त हो जाता है। द्वेष बुरी वृत्ति है। यह शान्ति का शत्रु है।

प्रश्न : द्वेष का कारण क्या है?

उत्तर : अविद्या।

२. साक्षात्कार के लिए पूर्वापेक्ष्य

प्रश्न : क्या प्रेम नित्य है?

उत्तर : हाँ, शुद्ध प्रेम निश्चय ही नित्य है। शुद्ध प्रेम ईश्वर है तथा ईश्वर ही प्रेम है।

प्रश्न : साक्षात्कार के लिए क्या आवश्यक है?

उत्तर : श्रद्धा, भक्ति, वैराग्य, विवेक, करुणा, नम्रता, शुद्धता, शम, आत्म-संयम, विचार तथा निष्काम सेवा-भाव।

प्रश्न: कल्पना कीजिए कि कोई व्यक्ति निष्काम कर्म करता है तो उसके परिवार का क्या होगा ?

उत्तर : ईश्वर उसके परिवार की देख-भाल करेगा। उसके मित्र उसके परिवार की व्यवस्था करेंगे। सत्याग्रह के दिनों में कांग्रेस कार्यकर्ताओं के परिवार की देख-रेख धनी व्यवसायियों ने की थी।

३. मन्त्र जप का विज्ञान

प्रश्न : जप तथा ध्यान में क्या अन्तर है?-

उत्तर : देवता के मन्त्र का जप करना जप है। ध्यान उसके रूप अथवा विशेषण पर ध्यान करना है। ईश्वर-सम्बन्धी एक ही विचार को प्रवाहित रखना ध्यान है।

प्रश्न : जप सहित ध्यान तथा जप रहित ध्यान क्या है?

उत्तर : साधक मन्त्र जप करते समय इष्टदेवता की मूर्ति पर ध्यान भी करता है।

कृष्ण-भक्त 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का जप करता है। साथ ही श्रीकृष्ण भगवान् के चित्र का भी ध्यान करता है। यही जप सहित ध्यान है।

जप रहित ध्यान में भक्त कुछ समय तक जप करता है। तब जप स्वतः ही बन्द हो जाता है और वह ध्यान में स्थिर हो जाता है।

प्रश्न : क्या केवल जप से मोक्ष मिल सकता है?

उत्तर : हाँ, मन्त्र में रहस्यमयी शक्ति है। मन्त्र-शक्ति से ध्यान तथा समाधि लगते हैं

और भक्त ईश्वर के दर्शन करता है।

प्रश्न : क्या उन्नत साधक को माला का व्यवहार करना चाहिए?

उत्तर : उन्नत साधकों के लिए यह आवश्यक नहीं है; परन्तु यदि निद्रा उन्हें सताती है, तो वे माला से जप कर सकते हैं। मन के थक जाने पर भी मन को ढीला छोड़ने के लिए माला से जप कर सकते हैं।

प्रश्न : मन्त्र के बारम्बार जप से क्या लाभ है? ई: ए

उत्तर : इससे शक्ति मिलती है। यह आध्यात्मिक संस्कारों को गम्भीर बनाता है।

प्रश्न : क्या मैं दो या तीन मन्त्रों का जप कर सकता हूँ?

उत्तर : अच्छा होगा कि आप एक ही मन्त्र पर स्थिर रहें। यदि आप श्रीकृष्ण के भक्त हैं तो राम, शिव, दुर्गा, गायत्री इत्यादि में उसी के दर्शन करें। सभी एक ही ईश्वर के रूप हैं। कृष्ण की उपासना ही राम की उपासना अथवा देवी की उपासना है। ठीक उसी तरह आप इसका उलटा भी समझिए।

प्रश्न: माला का व्यवहार कैसे करें?

उत्तर : माला घुमाते समय तर्जनी का प्रयोग न कीजिए। अँगूठे तथा मध्यमा या अनामिका उंगली का प्रयोग कीजिए। एक माला पूरी हो जाने पर मेरु को पार न कीजिए। उलट कर जप करते जाइए। अपने हाथ को तौलिये से ढक कर रखिए जिससे माला दृष्टिगत न हो।

प्रश्न : क्या टहलते समय मैं जप कर सकता हूँ?

उत्तर : हाँ, आप मानसिक जप कर सकते हैं। निष्काम भाव से जप करने में कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

प्रश्न : मन्त्र जप करते समय क्या भाव रहना चाहिए।

उत्तर : आप अपने इष्टदेवता को गुरु या पिता अथवा मित्र के रूप में मान सकते हैं। जो भी भाव आपके अनुकूल हो, वही भाव रखिए।

प्रश्न : कितने पुरश्चरणों के बाद मैं ईश्वर-साक्षात्कार कर सकता हूँ?

उत्तर : साक्षात्कार जप की संख्या पर निर्भर नहीं है; वरन् शुद्धता, एकाग्रता तथा भाव पर निर्भर है जिनसे साधक ईश्वर-चैतन्य को प्राप्त कर लेता है। ठेकेदार जिस तरह काम को जल्दी पूरा करना चाहते हैं, उस तरह आपको जल्दबाजी में जप नहीं करना चाहिए। भाव, शुद्धता, मन की एकाग्रता तथा अनन्य भक्ति के साथ जप कीजिए।

प्रश्न : जप पुराने मलिन संस्कारों को किस तरह जला डालता है?

उत्तर : जिस तरह अग्नि में जलाने का गुण है, उसी तरह ईश्वर के नाम में भी सभी पापों तथा बुरे संस्कारों को जलाने का गुण है।

प्रश्न : क्या हम जप के द्वारा इन्द्रियों को वशीभूत कर सकते हैं?

उत्तर : हाँ, जप मन को सत्त्व से भर देता है। यह रजस् तथा मन एवं इन्द्रियों की बहिर्मुखी वृत्ति को नष्ट करता है। धीरे-धीरे इन्द्रियाँ वशीभूत हो जाती हैं।

प्रश्न : क्या गृहस्थ शुद्ध प्रणव का जप कर सकता है?

उत्तर : हाँ, यदि वह साधन-चतुष्टय से सम्पन्न है, यदि वह मन के विक्षेप से मुक्त है और यदि उसमें ज्ञानयोग-साधना के लिए प्रबल मुमुक्षुत्व है, तो वह ॐ का जप कर सकता है।

प्रश्न : ॐ का जप करते समय क्या मुझे सतत जप के द्वारा ॐ शब्द से एक बन जाना चाहिए।

उत्तर : जब आप ॐ का ध्यान करें या ॐ का जप करें तो आपको यह भाव बनाये रखना चाहिए कि 'मैं सर्वव्यापक शुद्ध सच्चिदानन्द आत्मा हूँ।' आपको शब्द से एक बनने की आवश्यकता नहीं है। अर्थ के साथ भावना की आवश्यकता है कि 'मैं ब्रह्म हूँ।'

प्रश्न : 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्र का अर्थ क्या है?

उत्तर : इसका अर्थ है- "भगवान् कृष्ण को नमस्कार।" वासुदेव का अर्थ है-सर्वव्यापी चैतन्य।

प्रश्न : भगवान् कृष्ण की मूर्ति तथा उनके ईश्वरीय विशेषणों पर कैसे ध्यान किया जाये ?

उत्तर : सर्वप्रथम दोनों आँखें खोल कर चित्र पर त्राटक का अभ्यास कीजिए। चित्र को सामने रखिए। तब आँखें बन्द कर चित्र का मानसिक चित्रण कीजिए। तब भगवान् के विशेषण सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता, शुद्धता, पूर्णता आदि पर ध्यान कीजिए।

प्रश्न : मैं मानसिक जप करने में समर्थ नहीं हूँ। मुझे होठ खोलने पड़ते हैं। मन्त्र के जप में अधिक समय लगता है तथा अक्षरों का स्पष्ट उच्चारण भी नहीं हो पाता। कृपया बतलाइए, ऐसा क्यों होता है? एक ही समय जप तथा ध्यान करने पर मैं अपने मन को ईश्वर पर स्थिर नहीं कर पाता। यदि मैं अपने मन को भगवान् पर स्थिर करता हूँ, तो मैं जप-माला फेरना भूल जाता हूँ। जब मैं माला फेरने लगता हूँ, तो ईश्वर पर ध्यान नहीं कर पाता।

उत्तर : आप पहले जोरों से मन्त्र का जप कीजिए, तब उपांशु जप कीजिए। कम-से-कम तीन महीने तक उपांशु जप के अनन्तर आप मानसिक जप करने में समर्थ होंगे। मानसिक जप अधिक कठिन है। जब सारे विचार विलीन हो जाते हैं, तब मानसिक जप से सुख की उपलब्धि होती है; अन्यथा आपका मन विषय-चिन्तन ही करता रहेगा तथा आप मानसिक जप में असमर्थ रहेंगे।

आप मानसिक जप तथा भगवान् का मानसिक चित्रण - दोनों साथ-साथ नहीं कर सकते। आपको चित्र पर त्राटक करना चाहिए तथा मानसिक जप करना चाहिए। माला फेरना प्रारम्भिक साधकों के लिए सहायक है। माला मन को ईश्वर की ओर प्रेरित करती है। यह जप करने की याद दिलाती है। मानसिक जप में कुशल हो जाने पर माला फेरना आवश्यक नहीं है। तब तक आपको माला घुमानी चाहिए तथा भगवान् के चित्र पर ध्यान करना चाहिए। आपको मानसिक चित्रण की आवश्यकता नहीं है।

मानसिक जप मन को ईश्वर पर ध्यान के लिए तैयार करता है। जब आप भगवान् के चित्र पर ध्यान करने में समर्थ हों, तो जब तक आप ऐसा कर सकें, करें। ज्यों-ही सांसारिक विचार मन में प्रवेश करें, आप मानसिक जप करना पुनः प्रारम्भ कर दें। कई वर्ष के कठिन परिश्रम के अनन्तर ही ध्यान में सफलता मिलती है। बहुत धैर्य की आवश्यकता है। प्रारम्भिक साधक कुछ दिनों के अभ्यास में ही ध्यान न लगते देख हतोत्साह हो जाते हैं।

प्रश्न : यदि बिना अर्थ जाने अथवा जल्दबाजी में मन्त्र जप किया जाये, तो इसका बुरा प्रभाव तो नहीं पड़ता ?

उत्तर : इसका कोई भी बुरा प्रभाव नहीं हो सकता; परन्तु जल्दी-जल्दी तथा बिना भाव के ही जप करने से आध्यात्मिक उन्नति धीमी होगी। बिना भाव तथा अर्थ के ही अनजाने में भी मन्त्र के उच्चारण से निःसन्देह लाभप्रद प्रभाव पड़ता है। जिस तरह अग्नि के निकट पड़ते ही जलावन जलने लगता है, उसी तरह जप भी अपना कार्य करने लगता है।

प्रश्न : वे कौन-से लक्षण हैं जिनसे यह ज्ञात हो कि मन्त्र साधक को लाभकर सिद्धहो रहा है?

उत्तर : मन्त्रयोग का अभ्यासी साधक ईश्वर की सत्ता को सदा अनुभव करेगा। वह अपने हृदय में दिव्य भाव का अनुभव करेगा। उसमें सारे दैवी गुणों का समावेश होगा। उसके मन तथा हृदय शुद्ध होंगे। वह रोमांच का अनुभव करेगा। वह प्रेमाश्रु की वृष्टि करेगा। वह ईश्वर के साथ पवित्र मिलन प्राप्त करेगा।

प्रश्न : क्या मानसिक जप वैखरी जप से अधिक शक्तिशाली है?

उत्तर : मानसिक जप निश्चय ही अधिक शक्तिशाली है। वैखरी तथा उपांशु जप में मन को इच्छानुसार कार्य करने का अवकाश रहता है। जिह्वा मन्त्र-जपती रहेगी और मन अन्य विचारों में लीन रहेगा। मानसिक जप सांसारिक विचारों

के मार्ग को बन्द कर डालता है। मन मन्त्र-शक्ति से भर जाता है। परन्तु आपको सतर्क हो कर मन को निद्रा के वशीभूत होने से बचाना चाहिए। कामना, निद्रा तथा विविध विषय-विचार मानसिक जप के प्रतिबन्धक हैं। नियमित अभ्यास, सच्चा प्रयास, निद्रा रहित सतर्कता के द्वारा मानसिक जप में पूर्ण सफलता मिल सकती है।

प्रश्न : क्या मन्त्र के द्वारा ज्ञान-प्राप्ति की मुझमें पर्याप्त क्षमता है?

उत्तर: हाँ, पूर्ण अविचल श्रद्धा रखिए। मन्त्र में अनन्त ईश्वरीय शक्तियाँ है। सतत उसका जप कीजिए। आप शक्ति, क्षमता तथा आत्म-बल प्राप्त करेंगे। सतत जप मे मन्त्र-चैतन्य जाग्रत होगा। आप प्रकाश प्राप्त करेंगे।

प्रश्न : मन्त्र जप करते समय भाव का क्या अर्थ है?

उत्तर: मन्त्र जप करते समय साधक दास्य-भाव, शिष्य-भाव, पुत्र-भाव वा अन्य कोई-सा भाव रख सकता है। वह सख्य-भाव, वात्सल्य-भाव या माधुर्य-भाव को रख सकता है।

वह ऐसी भावना रख सकता है कि ईश्वर उसके हृदय में आसीन है, ईश्वर से उसकी ओर सत्त्व प्रवाहित हो रहा है, मन्त्र उसके हृदय को शुद्ध बना रहा है; उसकी कामनाओं, तृष्णाओं तथा बुरे विचारों को जप नष्ट कर रहा है।

प्रश्न : क्या मैं केवल निष्काम सेवा का अभ्यास करूँ या जप तथा सेवा-दोनों का समन्वय करूँ ?

उत्तर : संयुक्त साधन अधिक शक्तिशाली है। सेवा, जप, ध्यान, स्वाध्याय, सत्संग तथा विचार का समन्वय कीजिए। दैनिक आध्यात्मिक डायरी रखिए। सारे दोष शीघ्र ही दूर हो जायेंगे। आप शीघ्र ही चित्त-शुद्धि प्राप्त करेंगे।

प्रश्न : क्या अधिक लाभदायी है- अधिक जप करना या अधिक स्वाध्याय करना ?

उत्तर : जप अध्ययन से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। आपने काफी अध्ययन कर लिया है। फिर भी यदि समय हो, तो कुछ प्रेरणात्मक ग्रन्थों को पढ़िए। अध्ययन बहुत ही लाभकर है। यह बुद्धि की एकाग्रता, उसका विकास, शिथिलन तथा उन्नयन की ओर सहायता देता है तथा ज्ञान की वृद्धि करता है।

४. जपयोग

प्रश्न : क्या मैं 'ॐ नमो नारायण' का जप करूँ जिससे सगुण तथा निर्गुण-दोनों प्रकार का जप हो जाये? नारायण-जप मेरी आँखों के सामने चतुर्भुजी मूर्ति को बनाये रखता है; परन्तु मुझे भगवान् कृष्ण की मूर्ति पर ध्यान करने की आदत है तथा मैं भगवान् कृष्ण की चतुर्भुजी मूर्ति की खोज में हूँ जिसके चरणों के पास अर्जुन हो। कृपया यह बताइए कि मैं भविष्य में क्या करूँ?

उत्तर : आपने भगवान् कृष्ण पर ध्यान के द्वारा स्पष्ट मानसिक चित्र तथा ध्यान-शक्ति का निर्माण कर लिया है। अब मूर्ति बदलने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसको बदलने पर भी आप आदतवश उसी का ध्यान करने लगेंगे। अतः उसी मूर्ति को बनाये रखिए। चतुर्भुजी कृष्ण की खोज न कीजिए। 'ॐ नारायण' शुद्ध मन्त्र नहीं है। 'ॐ नमो नारायणाय' शुद्ध मन्त्र है।

ॐ सगुण तथा निर्गुण-दोनों ही है। यदि आप प्रश्नोपनिषद् पढ़ेंगे, तो यह स्पष्ट हो जायेगा।

यदि आप मन्त्र बदलना चाहते हैं, तो आप 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का जप कर सकते हैं। आप कुछ समय तक इसका जप कर सकते हैं।

५. साधना-सम्बन्धी समस्याएँ

प्रश्न : विचार तथा निदिध्यासन में क्या अन्तर है?

उत्तर : प्राण, मन, बुद्धि तथा आनन्दमय कोश की मिथ्या उपाधियों का निषेध कर आत्म-चिन्तन करना ही विचार है। ब्रह्म पर गम्भीर ध्यान करना ही निदिध्यासन है?

प्रश्न : अन्तर्निरीक्षण तथा आत्म-विश्लेषण कैसे किया जाये ?

उत्तर : प्रातः चार बजे उठिए। पद्मासन या सिद्धासन में आँखें बन्द कर शान्त बैठ जाइए। भीतर देखिए। मन तथा वृत्तियों का निरीक्षण कीजिए। साक्षी बनिए। उनके साथ तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित न कीजिए। देखिए, कौन-सा गुण या वृत्ति काम कर रही है। सावधानीपूर्वक मानसिक कार्यशाला का निरीक्षण कीजिए। कभी-कभी शुभ एवं अशुभविचारों में संग्राम होगा, सत्त्वगुण तथा रजोगुण युद्ध कर रहे होंगे। कभी-कभी तमोगुण प्रवेश करना चाहेगा। आप नींद में मग्न हो जायेंगे अथवा आप काम, क्रोध, द्वेष आदि की वृत्तियों को देखेंगे। कभी-कभी दिव्य विचार प्रकट होंगे। शुभ उन्नत विचारों को उठाने का प्रयास कीजिए। ज्योति, समता, शान्ति तथा ज्ञान के सात्विक प्रवाहों को उत्पन्न कीजिए। नियमित ध्यान तथा मनन के द्वारा बुरी वृत्तियाँ स्वतः ही नष्ट हो जायेंगी। आप शुद्ध चित्त प्राप्त कर समाधि में प्रवेश करेंगे।

प्रश्न : यदि मानव-जाति से इतर जीवों की प्रगति क्रमिक है तथा यदि उन जीवों पर कर्म का नियम लागू नहीं है, तो ऐसा क्यों देखने में आता है कि एक गाय सुखपूर्ण जीवन बिताती है तथा दसरी कष्टमय जीवन ?

उत्तर : यह समझना गलत है कि मानवेतर प्राणी कर्म के नियम से पृथक् है। कर्म के नियमानुसार ही प्राणी उन्नति करते हैं। जो गाय सुखपूर्ण जीवन बिताती है, वह कोई मला मनुष्य है जिसे कुछ काल के लिए पाप के कारण गाय की योनि में डाल दिया गया है। दूसरी गाय बहुत ही पापात्मा है जो पुनः मानव-जन्म की प्राप्ति के लिए क्रमिक प्रगति प्राप्त करेगा। प्राकृतिक प्रगति के अनुसार जो जीव गाय के स्तर को प्राप्त करेंगे, वे न तो अत्यधिक सुखोपभोगी होंगे और न अति कष्टभोगी ही।

प्रश्न : यदि हम गत कर्मों से पूर्णतः बद्ध हैं, तो पुरुषार्थ करने से क्या लाभ?

उत्तर : आप बँधे नहीं हैं। आपकी स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति है। आप प्रारब्ध के फत को बदल नहीं सकते; परन्तु आप शुभ विचार तथा कर्म के द्वारा भविष्य को बदल सकते हैं। इस तरह आपका संकल्प शुद्ध तथा अदम्य हो जायेगा। प्रखर संकल्प के द्वारा आप आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर सकते हैं।

प्रश्न : ऐसा कहा जाता है कि जन्म, विवाह तथा मृत्यु भाग्य से निर्धारित हैं। क्या हम भाग्य को बदल कर अकेला जीवन बिता कर बन्धन से मुक्त नहीं हो सकते?

उत्तर : आप प्रबल इच्छा-शक्ति तथा आध्यात्मिक जीवन के द्वारा भाग्य को बदल सकते हैं।

प्रश्न : महात्माओं तथा साधुओं की बात अलग रखिए, हम जैसे साधारण व्यक्ति सीमित पुरुषार्थ के द्वारा किस तरह वर्तमान भाग्य को बदल सकते हैं?

उत्तर : आप भी महात्माओं तथा साधुओं की तरह अपने भाग्य को बदल सकते हैं; परन्तु कुछ काल तक आपको अपने गुरु के पथ-प्रदर्शन में रहना होगा।

प्रश्न : दुर्भाग्य क्या है?

उत्तर : उस अदृश्य शक्ति को दुर्भाग्य कहते हैं जो दुःखद अनुभवों को ला कर मनुष्य के धैर्य की जाँच करती है तथा मनुष्य ऐसा समझता है कि वह इससे अधिक अच्छे भाग्य के योग्य है। जीवन में दुर्घटना, संयोग, भाग्य जैसी कोई वस्तु नहीं है, मनुष्य के पूर्व कर्म ही इन नामों को धारण करते हैं।

६. हमारा लक्ष्य क्या हो ?

प्रश्न : आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर निर्वाण प्राप्त करना हमारा लक्ष्य हो या पुनः जन्म ले कर मानव-सेवा करना ?

उत्तर : मनुष्य का आत्म-साक्षात्कार तथा निर्वाण के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए। हमे सतत इसका प्रयत्न करना चाहिए कि हम पुनः इस संसार में जन्म न लें; परन्तु हमने जन्म धारण कर ही लिया है, इसलिए हमें सभी की सेवा करनी चाहिए। यदि पुनः जन्म मिले, तो हम निष्काम सेवा ही जारी रखेंगे; परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम पुनर्जन्म के लिए प्रार्थना करें।

आत्म-साक्षात्कार की इच्छा को स्वार्थ नहीं समझना चाहिए। आत्म-साक्षात्कार की चोटी पर चढ़ कर आप एकता का दर्शन कर सकते है, आत्मा ही रह जाता है, फिर स्वार्थ का निस्तार कहाँ ?

परन्तु यह सत्य है कि कुछ महान् सन्तों ने कहा है, “मैं निर्वाण नहीं चाहता; मैं कीर्तन करने के लिए पुनः जन्म चाहता हूँ। मैं आत्मा से योग प्राप्त करना नहीं चाहता। मैं बारम्बार जन्म ले कर मानव जाति की सेवा करूँगा।" हमें महात्माओं के शब्दों की परीक्षा करनी होगी। प्राचीन काल से चली आ रही एक विधि है जिसे अर्थवाद कहते हैं। महापुरुषों ने इस अर्थवाद के अनुसार ही लोगों में प्रेरणा भरी है। वे कभी-कभी साधना के किसी विशेष पहलू को अन्य सारी साधनाओं से श्रेष्ठ बतलाते हैं। इसका उद्देश्य है साधक को उस साधना का महत्त्व बतलाना।

किसी भी वस्तु को प्राप्त करने के लिए पूर्ण निष्ठा की आवश्यकता है। अधूरी निष्ठा से फल की प्राप्ति नहीं होती। हमें आदर्श के सिवाय अन्य किसी भी वस्तु की कामना नहीं करनी चाहिए। उदाहरणतः प्रेम-मार्ग में यह विशेषता है- "प्रेम प्रेम के लिए।" जब तक हम यह अनुभव करेंगे कि प्रेम मुक्ति का साधन है, तब तक हम पूर्ण आत्मार्पण नहीं कर सकते और यही प्रेम-मार्ग में आवश्यक है। पूर्ण आत्मार्पण की प्राप्ति के लिए ही सन्त जन भक्तों के समक्ष यह आदर्श रखते हैं, "हम भक्ति ही चाहते हैं। हम मुक्ति भी नहीं चाहते।" चार पुरुषार्थों में सर्वोच्च मुक्ति ही है। महात्मा जन कहते हैं, "प्रेम मोक्ष से भी बढ़ कर है।" इसका तात्पर्य है कि भक्त में प्रेम के प्रति ही अनन्य निष्ठा होनी चाहिए। परा भक्ति की प्राप्ति होने पर मोक्ष तो स्वतः ही प्राप्त हो जाता है।

७. मानसिक शुद्धता के साधन

प्रश्न : चित्तशुद्धि क्या है?

उत्तर : मन तथा हृदय की शुद्धि ही चित्तशुद्धि है।

प्रश्न : चित्तशुद्धि का फल क्या है?
साधना

उत्तर : दिव्य ज्योति का अवतरण होगा। जिस भाँति आप दर्पण में अपना मुख स्पष्टतः देख सकते हैं, उसी तरह आप शुद्ध चित्त में आत्मा को देख सकते हैं।

प्रश्न : चित्तशुद्धि की प्राप्ति के कौन-कौन-से साधन हैं?

उत्तर : आत्म-भाव के साथ मानव जाति की निष्काम सेवा, जप, कीर्तन, प्राणायाम, सात्त्विक आहार, सत्संग, धार्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय, गीता के सतरहवें अध्याय के श्लोक १४, १५ तथा १६ में वर्णित शारीरिक, मानसिक तथा वाचिक तप का अभ्यास, राजयोग में वर्णित यम-नियम तथा क्रियायोग का अभ्यास, गुरु तथा महात्माओं की सेवा, नियमित ध्यान, 'मैं कौन हूँ?' का विचार, एकान्तवास करते हुए अनुष्ठान, अग्निहोत्र और पंचमहायज्ञ का अभ्यास, अन्तर्निरीक्षण, आत्म-विश्लेषण-इन सभी से चित्तशुद्धि की प्राप्ति होती है।

प्रश्न : मैं गत छह वर्ष से ध्यान कर रहा हूँ, फिर भी मुझे सफलता क्यों नहीं मिलती ?

उत्तर : आपमें चित्तशुद्धि नहीं है।

प्रश्न : मैं कैसे जानूँ कि मुझमें चित्तशुद्धि है या नहीं ?

उत्तर : कामुक विचार, सांसारिक कामनाएँ, अपवित्र विचार, लैंगिक वासनाएँ, क्रोध, दर्प, दम्भ, अहंकार, लोभ, द्वेष, ईर्ष्या इत्यादि शुद्ध चित्त में उत्पन्न नहीं होंगे। विषय-पदार्थों में जरा भी आकर्षण न रह जायेगा। स्वप्न में भी आप बुरे विचारों को प्रश्रय न देंगे। आप करुणा, विश्व-प्रेम, क्षमा, समता, मन का सन्तुलन आदि सभी दैवी सम्पदाओं से विभूषित होंगे। ये ही लक्षण हैं जिनसे आप चित्तशुद्धि को पहचान सकते हैं।

प्रश्न : चित्तशुद्धि के लिए कितना समय लगेगा ?

उत्तर : यह मनुष्य की उन्नति की अवस्था तथा साधना की शक्ति पर निर्भर करता है। यदि वह उत्तम अधिकारी है, तो वह छह महीने में ही शुद्धता प्राप्त कर सकता है; किन्तु यदि वह मध्यम अधिकारी है, तो उसे छह वर्ष भी लग सकते हैं।

८. आत्म-साक्षात्कार की समस्याएँ

प्रश्न : क्या धर्मग्रन्थों के स्वाध्याय से आत्म-साक्षात्कार मिलेगा ?

उत्तर : नहीं, इससे आत्म-साक्षात्कार नहीं मिलता। हाँ, स्वाध्याय और बौद्धिक ज्ञान में सहायता मिलेगी; परन्तु यह तभी सम्भव है जब आपकी बुद्धि तीक्ष्ण हो और

आप सत्य-असत्य, नित्य-अनित्य का भेद समझ सकें। आत्म-साक्षात्कार बौद्धिक ज्ञान से बढ़ कर है। यह सत्य का आन्तरिक अनुभव है जो मनुष्य की प्रकृति के पूर्ण रूपान्तरण द्वारा ही प्राप्त होता है।

प्रश्न: आत्म-साक्षात्कार क्या है तथा उसकी प्राप्ति की व्यावहारिक साधना क्या है?

उत्तर : अपने स्वरूप-ज्ञान की पराकाष्ठा ही आत्म-साक्षात्कार है। परम सत्य की चेतना को प्राप्त करना ही आत्म-साक्षात्कार है। दूसरे शब्दों में जीव-चैतन्य का विश्वात्म-चैतन्य में विलीन होना आत्म-साक्षात्कार है। ब्रह्म-साक्षात्कार सभी ज्ञानों में महत्तम है। वह ब्रह्म अजर एवं अमर है। वह सभी नाम-रूपों का अधिष्ठान है, फिर भी वह परिवर्तनशील दृश्य से सदा अप्रभावित है। शरीर, इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि बाह्य कोश हैं जो आन्तरिक सत्य को आच्छादित करते हैं। वह सत्य ही ईश्वर, अल्ला अथवा ब्रह्म के नाम से पुकारा जाता है।

अपनी पाशवी प्रकृति को पूर्णतः रूपान्तरित करना, मानवी प्रकृति का अतिक्रमण करना तथा प्रसुप्त शक्तियों को जाग्रत करना-यही दिव्य तत्त्व के साक्षात्कार की प्रक्रिया है। पूर्ण नैतिक उन्नति, आत्म-विश्लेषण, आत्म-शुद्धि, धारणा, ध्यान, सबके प्रति निष्काम प्रेम तथा सभी की सेवा, सम्यक् वाणी तथा सम्यक् आचरण के द्वारा इसको प्राप्त किया जाता है।

९. हठयोग

प्रश्न : हठयोग क्या है?

उत्तर : इस योग से आसनों तथा मुद्राओं के द्वारा शरीर सबल बन जाता है तथा प्राण को अपान से युक्त कर उसे सुषुम्ना से हो कर सहस्रार चक्र में ले जाते हैं।

प्रश्न : क्या राजयोग के प्रारम्भ के लिए हठयोग का अभ्यास आवश्यक है?

उत्तर : हाँ, आसन तथा प्राणायाम अष्टांगयोग के दो अंग हैं। सबल शरीर के बिना आप राजयोग का अभ्यास नहीं कर सकते। यदि आपको आसन-जय प्राप्त नहीं है, तो आप ध्यान का अभ्यास कैसे कर सकेंगे? आपको पद्म, सिद्ध अथवा सुखासन पर स्थिरतापूर्वक तीन घण्टे तक बैठने की क्षमता होनी चाहिए; तभी आप अच्छी तरह ध्यान कर सकेंगे। यदि शरीर स्थिर है, तो मन भी स्थिर होगा। शरीर तथा मन के बीच गहरा सम्बन्ध है।

प्रश्न : क्या हठयोग का अभ्यास राजयोग की ओर ले जायेगा?

उत्तर : हाँ, हठयोग तथा राजयोग एक-दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते। जहाँ हठयोग समाप्त होता है, वहाँ राजयोग प्रारम्भ होता है। हठयोग शारीरिक पूर्णता की ओर सहायता देता है तथा सबल स्वस्थ शरीर राजयोग के अष्टांगों के अभ्यास-यम, नियम, धारणा, ध्यान तथा समाधि में सहायक है।

प्रश्न : क्या प्राणायाम के ही अभ्यास से सुप्त कुण्डलिनी शक्ति जग जायेगी?

उत्तर : नहीं, आसन, बन्ध, मुद्रा, प्राणायाम, जप, ध्यान, सबल शुद्ध विश्लेषणात्मक संकल्प, गुरु-कृपा और भक्ति ये सभी कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करेंगे।

प्रश्न : क्या यह कहना ठीक है कि राजयोग के अभ्यास के लिए प्राणायाम अनावश्यक है?

उत्तर : नहीं, प्राणायाम राजयोग के आठ अंगों में से एक है।

प्रश्न: क्या गुरु की सहायता के बिना प्राणायाम का अभ्यास करना हानिकारक है?

उत्तर : लोग व्यर्थ ही आतंकित रहते हैं। आप बिना गुरु की सहायता के सरल अभ्यासों को कर सकते हैं। यदि आप बहुत देर तक कुम्भक कर प्राण और अपान को मिलाना चाहते हैं, तो गुरु आवश्यक है। यदि गुरु आपको न मिले, तो साक्षात्कार-प्राप्त योगियों की लिखी पुस्तकें आपका पथ-प्रदर्शन करेंगी। हाँ, आपके निकट गुरु हो तो और भी अच्छा है, अन्यथा गुरु से शिक्षा ले कर उसका अभ्यास आप घर पर करें। आप अपने गुरु के साथ नियमित पत्र-व्यवहार कर सकते हैं। आप आधे मिनट से एक या दो मिनट तक श्वास रोक सकते हैं। यदि साक्षात्कार प्राप्त योगी न मिले, तो उन्नत साधक से शिक्षा प्राप्त कीजिए।

प्रश्न : खेचरी मुद्रा से क्या लाभ है?

उत्तर : इससे साधक श्वास को रोक सकता है। वह गम्भीर धारणा तथा ध्यान कर सकता है। वह क्षुधा तथा पिपासा से मुक्त रहेगा। वह श्वास को एक नासिका से दूसरी नासिका में सुगमता से बदल सकता है। वह आसानी से केवल कुम्भक का अभ्यास कर

प्रश्न : यदि साक्षात्कार प्राप्त गुरु न मिले, तो क्या करना चाहिए?

उत्तर : योग के उन्नत साधक को अपना गुरु बनाइए। वह पथ-प्रदर्शन करेगा। यदि आप वास्तव में तैयार है. यदि आप ज्ञानागार में प्रवेश करने योग्य है, तो आप अपने ही सद्गुरु अथवा परम पुरुष को अवश्य प्राप्त करेंगे। दाबाजे पर ही

प्रश्न: महात्मा जन भी कभी-कभी क्रोधित होते हैं. ऐसा क्यों?

उत्तर: उनका क्रोध आभास मात्र है। यह एक क्षण तक ही रहेगा। जल में चिह्न के समान ही यह क्षणिक है-वे साधक को सुधारने के लिए ही क्रोध का प्रदर्शन करते हैं। वे अन्तर में सदा शान्त रहते हैं।

प्रश्न : क्या मैं चित्तशुद्धि के बिना समाधि नहीं प्राप्त कर सकता ?

उत्तर : नहीं, जिस तरह उचित नींव के बिना महल का निर्माण नहीं हो सकता, उसी तरह चित्तशुद्धि के बिना समाधि की प्राप्ति नहीं हो सकती। जिस तरह कमजोर नींव पर निर्मित भवन गिर जायेगा, उसी तरह वह साधक जो चित्तशुद्धि के बिना समाधि प्राप्त करना चाहता है, पतित हो जायेगा। हृदय की शुद्धता आध्यात्मिक मार्ग की प्राथमिक आवश्यकता है-चाहे राजयोग, भक्तियोग या ज्ञानयोग में से कोई योग क्यों न हो।

प्रश्न : समाधि के अनुभव क्या हैं?

उत्तर : समाधि के अनुभव वर्णनातीत हैं। शब्द अधूरे हैं। भाषा अपूर्ण है। जिस तरह मनुष्य मिश्री के स्वाद को दूसरों को नहीं बतला सकता, उसी तरह योगी भी अपने अनुभव को भाषा में व्यक्त नहीं कर सकता। समाधि वह अनुभव है जिसे योगी अपरोक्षतः प्राप्त करता है। समाधि में योगी असीम सुख का अनुभव करता है तथा परम ज्ञान पाता है।

प्रश्न : समाधि में योगी को क्रमशः कैसे अनुभव मिलते हैं?

उत्तर : योग-विशेष के अनुसार समाधि के क्रम भी भिन्न हैं। भक्त शुद्ध मन द्वारा

भाव समाधि तथा महाभाव समाधि को प्राप्त करता है। श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा, रुचि, स्थायी भाव तथा महाभाव-ये भक्त की अवस्थाएँ हैं। राजयोगी सविचार, निर्विचार, सस्मिता, सवितर्क, सानन्द तथा असम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त करता है। वह ऋतम्भरा-प्रज्ञा, मधुभूमिका, धर्ममेघ तथा प्रसंख्यान आदि प्राप्त करता है। ज्ञानी समाधि, अन्तर्दृष्टि, अपरोक्षानुभूति, ज्ञानोदय, प्रकाश तथा परमानन्द का अनुभव करता है। वह मोह, तमस्, शून्य, असीम आकाश, अव्यक्तावस्था, असीम चैतन्य तथा असीम आनन्द को क्रमशः प्राप्त करता है। वेदान्ती इन सात भूमिकाओं-शुभेच्छा, सुविचार, तनुमानसी, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थाभावना तथा तुरीय से हो कर गुजरता है। ज्ञानयोगी सदा समाधि में रहता है। उसके लिए समाधि में तथा समाधि से बाहर का प्रश्न ही नहीं उठता।

प्रश्न: मन चमकीली रोशनी, सौन्दर्य, सुखद रंग, संगीत आदि से आकृष्ट हो जाता है। उसे स्थिर कैसे किया जाये ?

उत्तर: यदि आप वेदान्त-मार्ग का अनुगमन करेंगे, तो विवेक के द्वारा आप एग रूप से समझ लेंगे कि जो कुछ भी आप देखते है, वह दृश्य मात्र मिथ्या है; परन्तु जगत् का अधिष्ठान नित्य तथा सत्य है। अब मन बाह्य वस्तुओं की ओर नहीं दौड़ेगा। वह अपने मूल अन्तरात्मा की ओर मुड़ेगा। यदि आप विचार करें कि बाह्य वस्तुएँ आपकी आत्मा की ही अभिव्यक्ति हैं तथा आपमें ही स्थित हैं, तो मन विषय-पदायों की ओर नहीं दौडेगा। यदि आप भक्ति मार्ग का अनुगमन करते हैं, तो अपने मन को इष्टदेव के पादपद्मों में स्थिर करने का प्रयास कीजिए। शनैः शनैः मन स्थिर हो जायेगा।

प्रश्न : मन विश्वात्म कब बनेगा ?

उत्तर: जब ब्रह्मचर्य, क्षमा, विश्व-प्रेम, दया, करुणा, अपरिग्रह, सत्य तथा सन्तोष जैसे सद्गुणों के अर्जन से रजोगुण विनष्ट हो जायेगा, जब आप शुद्ध मन प्राम करेंगे, तब आपका मन विश्वात्म बन जायेगा। रजस् भेद स्थापित करता है, तोड़ता है तथा पृथक् करता है। रजस् ही मल है। सत्त्व शुद्धता है।

१०. आध्यात्मिक गुरु की आवश्यकता

प्रश्न : क्या आत्म-साक्षात्कार के लिए गुरु की आवश्यकता है?

उत्तर : निःसन्देह ! हर व्यक्ति के लिए गुरु आवश्यक है। प्रारम्भिक अवस्थाओं में साधक बहुत-सी कठिनाइयों तथा शंकाओं का सामना करेगा। उसका ऐसे व्यक्ति के साथ सम्पर्क होना चाहिए जो उस विषय में अधिक जानकार हो। साधारण लौकिक विज्ञान को भी गुरु से ही सीखना होता है। प्रारम्भिक छात्र स्वतः बिना गुरु की सहायता के अपने पाठों को पूरा नहीं कर पाता। आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए विश्वस्त पथ प्रदर्शक का होना अनिवार्य है। उसे

आध्यात्मिक साहित्य का अध्ययन करना चाहिए जिससे उसके विचार तथा बौद्धिक धारणाओं में आवश्यक परिवर्तन हो। उसके साथ-साथ उसे गुरु से सलाह लेनी चाहिए तथा श्रद्धा, भक्ति, उत्साह एवं आध्यात्मिक साधना में संलग्नता के द्वारा उसे आध्यात्मिक मार्ग का अनुगमन करना चाहिए। गुरु ही आपके दोषों को निकाल सकता है। अहंकार का स्वभाव ऐसा है कि आप स्वयं अपने दोषों को नहीं निकाल सकते तथा उनके हानिकारक प्रभावों से अवगत नहीं हो सकते। बहुत कम लोग ही ऐसे हैं जिनकी भावना परिपक्व है, जिनकी बुद्धि सूक्ष्म तथा आलोकित है और जिनका चित्त शुद्ध है-ऐसे लोग ही स्वयं आन्तरिक ईश्वरीय वाणी को सुन कर उसके अनुसार साधना कर सकते हैं।

प्रश्न: क्या ऐसे गुरु से योग सीखना आवश्यक है जिसने स्वयं योग साधना के द्वारा सिद्धि प्राप्त की हो?

उत्तर: हाँ, गुरु के पथ प्रदर्शन की आवश्यकता है; परन्तु साधक घर पर भी अधिक साधना के द्वारा उन्नति कर सकता है। यह जगत् महान् गुरु है। आप इससे बहत-सी बहमूल्य शिक्षाएँ सीख सकते हैं। गृहस्थ जीवन यापन करते हुए भी आप बहुत में सद्गुणों का विकास कर सकते हैं। प्रलोभनों के जगत् में रहते हुए भी आत्म-संयम का अभ्यास करना चाहिए। आप घर पर जप, आसन, प्राणायाम तथा ध्यान का अभ्यास कर सकते हैं। सरल तथा साधनामय जीवन बिताइए। सच्चे तथा उदार बनिए। अपनी स्त्री को भी गीता, रामायण आदि के अध्ययन के लिए प्रवृत्त कीजिए। इस तरह आप शनैः शनैः संन्यास-जीवन के कठिन नियमों के पालन में समर्थ हो सकेंगे। आध्यात्मिक डायरी का पालन कीजिए तथा अवलोकनार्थ मेरे पास भेजा कीजिए। छुट्टियों में यहाँ आइए तथा आवश्यक अनुशासन एवं प्रशिक्षण प्राप्त कीजिए। यदि आप अचानक अपने परिवार का त्याग करेंगे, तो इससे परिवार वालों को धक्का पहुँचेगा। शनैः शनैः त्याग कीजिए। कुछ वर्षों के अन्दर सारे बन्धन टूट जायेंगे। तब आप साधना में पूर्ण ध्यान दे सकेंगे।

प्रश्न : वास्तविक गुरु के स्वाभाविक गुण क्या है? क्या साधारण मनुष्य के लिए गुरु का चुनाव करना सम्भव है; यदि हाँ, तो कैसे ?

उत्तर : वास्तविक गुरु श्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिए- जो ग्रन्थों का ज्ञान रखता हो, जो ब्रह्म में स्थित हो, जो ज्ञानी, निष्काम तथा निष्पाप हो, वही वास्तविक गुरु तथा पथ-प्रदर्शक बन सकता है। गुरु अपने ज्ञान तथा क्षमता के द्वारा उन मनुष्यों को आकृष्ट कर लेता है जो उसके द्वारा पथ-प्रदर्शन प्राप्ति के योग्य हैं। जब मनुष्य ऐसा अनुभव करे कि वह अनायास ही किसी महापुरुष की ओर आकृष्ट हो गया है, जिसकी प्रशंसा तथा सेवा किये बिना वह रह नहीं सकता, जो शम, करुणा तथा आध्यात्मिक अनुभव की साकार मूर्ति हो, तो ऐसे महापुरुष को गुरु बनाना चाहिए। गुरु काम, क्रोध, लोभ, अभिमान, ईर्ष्या तथा स्वार्थ से मुक्त होगा। उसमें आत्म-संयम, शान्ति, पूर्ण ज्ञान, योगाभ्यास के साधनों का ज्ञान, सन्तुलित मन, समता, उदारता, सहनशीलता, क्षमा, धैर्य आदि सद्गुण होंगे। वह अपने साधकों की शंकाओं को दूर करने में समर्थ होगा, उसके समक्ष शंकाएँ स्वतः दूर हो जायेंगी। उसके पास निर्विकल्प समाधि से प्राप्त दिव्य ज्ञान होगा। उसकी उपस्थिति में आप शान्ति का उपभोग करेंगे, आप प्रेरणा प्राप्त करेंगे तथा समुन्नत बनेंगे। उसके समक्ष आपको अद्भुत आनन्द, सुख, शान्ति तथा परिवर्तन का अनुभव प्राप्त होगा। गुरु वही है जिसमें शिष्य कोई बुराई नहीं पाता तथा जो शिष्य के लिए आदर्श का काम करता है। संक्षेपतः गुरु ईश्वर का ही व्यक्त रूप है। जब आप किसी व्यक्ति में ईश्वरत्व देखें, तो उसे गुरु चुन लीजिए। गुरु तथा शिष्य के बीच का सम्बन्ध मौलिक तथा अभेद्य है। यह सम्बन्ध ईश्वर तथा मनुष्य के बीच के सम्बन्ध जैसा ही स्थायी है। यह प्राकृतिक नियम है कि जब संसार में कोई घटना घटित होने वाली हो, तो उसके लिए आवश्यक बातें ठीक समय पर आ मिलती हैं। जब शिष्य उच्च आलोक की प्राप्ति के लिए तैयार हो जाता है, तो ईश्वर की कृपा से अनुकूल गुरु स्वतः मिल जाता है।

११. श्रद्धा तथा भक्ति

प्रश्न : क्या श्रद्धा वही है जो मनुष्य को भगवान् की इच्छा जगाने के लिए समर्थ बनाती है?

उत्तर : श्रद्धा ईश्वर की इच्छा को नहीं पढ़ती; परन्तु मनुष्य को मानसिक विक्षेप से मुक्त बनने में समर्थ बनाती है। श्रद्धा असीम होने पर वह मनुष्य को ईश्वर-साक्षात्कार प्रदान करती है।

प्रश्न : श्रद्धा तथा भक्ति में क्या अन्तर है?

उत्तर : श्रद्धा ईश्वर की सत्ता में तथा गुरु के शब्दों में विश्वास को कहते हैं। भक्ति ईश्वर के प्रति प्रेम है। ईश्वर के अस्तित्व में श्रद्धा रखे बिना मनुष्य उसकी भक्ति नहीं कर सकता।

प्रश्न : जब श्रद्धा तथा भक्ति कुछ भी न हो, तो नाम जप कैसे सहायता करेगा?

उत्तर : वह सहायता देगा। ईश्वर के नाम में रहस्यमयी शक्ति है। नाम द्वारा हृदय में श्रद्धा तथा भक्ति-दोनों का जागरण होगा।

प्रश्न : शुद्ध भक्ति का विकास कैसे हो ?

उत्तर : ध्यान, प्रेम, जप, कीर्तन, सत्संग तथा भक्ति-सम्बन्धी पुस्तकों के गम्भीर अध्ययन से।

१२. भक्तियोग-सम्बन्धी प्रश्न

प्रश्न : भक्तियोग क्या है?

उत्तर : यह भक्ति का मार्ग है जिसमें ईश्वर के प्रति आसक्ति रहती है। ईश्वर मनुष्य की आत्मा का ही सखा है। उसके साथ आसक्ति होने से सांसारिक जीवन का अभाव, इच्छा तथा विपत्तियों का नाश हो जाता है। यह प्रेम-मार्ग है जो जीव को ईश्वर से युक्त करता है।

प्रश्न : वह क्या वस्तु है जो राम से भी बढ़ कर है?

उत्तर : राम का नाम।

प्रश्न : कैसे ?

उत्तर : श्री हनुमान् ने राम से कहा- "हे प्रभु, आपसे बढ़ कर एक वस्तु है।" श्री राम अचम्भित हुए। उन्होंने पूछा- "हे हनुमान् ! वह क्या वस्तु है जो मुझसे भी बढ़ कर है?" हनुमान् ने उत्तर दिया- "हे प्रभु, आपने नौका के सहारे नदी पार की थी; किन्तु मैंने आपके नाम के सहारे, उसी के बल से सागर को पार कर दिया। आपके नाम के प्रताप से समुद्र में चट्टानें भी तैरने लगीं। अतः आपका नाम आपसे भी बढ़ कर है।"

प्रश्न : वह कौन-सा महामन्त्र है, जो इस कलियुग में मुक्ति प्रदान करता है?

उत्तर : हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।।

प्रश्न : भक्ति क्या है?

उत्तर : भगवान् के प्रति परम आसक्ति तथा असीम प्रेम ही भक्ति है।

प्रश्न : भक्ति के अर्जन के लिए छह साधन कौन-से हैं?

उत्तर : भागवतों, साधुओं तथा संन्यासियों की सेवा, ईश्वर के नाम का जप, सत्संग, हरि-कीर्तन, भागवत अथवा रामायण का अध्ययन तथा वृन्दावन, पण्ढरपुर, चित्रकूट अथवा अयोध्या में वास-ये छह साधन हैं।

प्रश्न : कौन ईश्वर के नाम को गाने का अधिकारी है?

उत्तर : तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ।।

"जो तृण से भी अधिक विनम्र है, जो वृक्ष से भी अधिक सहनशील है, जो अपने मान की परवाह न कर दसरों को मान देता है, वह सभी समय भगवान् के नाम-गायन का अधिकारी है।"

प्रश्न : दिव्य अमृत कहाँ है?

उत्तर : विद्वान लोग कहते हैं कि अमृत समुद्र में, चन्द्रमा में, नागलोक में तथा स्वर्ग में मिलता है। यदि यह सत्य है तो समुद्र में लवण क्यों, चन्द्रमा में वृद्धि एवं ह्रास क्यों, सर्पों के मुख में विष क्यों तथा इन्द्र की मृत्यु क्यों? अतः वास्तविक अमृत भागवतों के कण्ठ में ही पाया जाता है।

प्रश्न : भक्तों को कैसे पहचाना जाये ?

उत्तर : भक्त किसी वस्तु की परवाह नहीं करते। उनके हृदय ईश्वर के चरण-कमलों में ही स्थिर रहते हैं। उनको किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति आसक्ति नहीं होती। वे ममता एवं अहंता रहित हैं। उनमें शोक तथा हर्ष का भेद नहीं रहता। वे दूसरों की किसी वस्तु को ग्रहण नहीं करते। वे सर्दी, गरमी तथा दुःख सह सकते हैं। उनके शत्रु नहीं होते। वे शान्त रहते हैं। उनका चरित्र अनुकरणीय होता है। उनके अधरों पर सदा भगवान् हरि का नाम रहता है। वे बहुत ही सदाचारी हैं। वे दूसरों की भावना पर कदापि आघात नहीं पहुँचाते। वे क्रोध, मद तथा घृणा से मुक्त रहते हैं।

प्रश्न : भक्ति-मार्ग में दो आन्तरिक शत्रु कौन से हैं?

उत्तर : काम तथा क्रोध।

प्रश्न : काम के अनुगामी दश पाप कौन-से हैं?

उत्तर : आखेटप्रियता, द्यूतक्रीड़ा, दिवा स्वप्न, गाली देना, कुटिल स्त्रियों का साहचर्य, मद्यपान, रागात्मक संगीतों का गायन, नृत्य, अश्लील संगीत तथा निरुद्देश्य भ्रमण।

प्रश्न : क्रोध के अनुगामी आठ पाप कौन-से हैं?

उत्तर : अन्याय, रुक्षता, अत्याचार, ईर्ष्या, दोष-दर्शन (छिद्रान्वेषण), वंचकता, कटु शब्द तथा निर्दयता।

प्रश्न : भक्ति के आठ लक्षण क्या हैं?

उत्तर : अश्रुपात, पुलक, कम्पन, रुदन, हास्य, स्वेद, मूर्च्छा तथा स्वरभंग।

प्रश्न : भगवान् ने अपने भक्तों की कैसे सहायता की?

उत्तर : भगवान् कृष्ण ने स्वयं नरसी मेहता की पुत्री के विवाहोत्सव का सम्पादन किया। नरसी की माँ के श्राद्ध के लिए वे घी लाये। अन्धे बिल्वमंगल का हाथ पकड़ कर उसे वृन्दावन पहुँचाया। भक्त नाई की अनुपस्थिति में उन्होंने राजा के पैर दबाये।

प्रश्न : भक्ति-मार्ग के पाँच अनिवार्य पूर्वापेक्ष्य क्या हैं?

उत्तर : भक्ति निष्काम होनी चाहिए। यह अव्यभिचारिणी होनी चाहिए। यह तैलधारावत् होनी चाहिए। साधक को सदाचार का पालन करना चाहिए। उसे साधना में बहुत सच्चा होना चाहिए। तभी ईश्वर-साक्षात्कार शीघ्र ही प्राप्त होगा।

प्रश्न : किसी भी गम्भीर साधना के लिए क्या करना चाहिए?

उत्तर : प्रातः चार बजे उठ जाइए। किसी भी आसन पर जप आरम्भ कीजिए। चौदह घण्टे तक कुछ भी भोजन या पान न कीजिए। यदि सम्भव हो सके, तो सूर्यास्त तक मल-मूत्र भी न त्यागिए। आसन को भी यथा-सम्भव न बदलिए। सूर्यास्त के समय जप बन्द कीजिए। तब दूध-फल का आहार कीजिए। छुट्टियों में सप्ताह, पक्ष अथवा महीने में एक बार इसका अभ्यास कीजिए।

प्रश्न : चालीस दिनों का अनुष्ठान कैसे किया जाये ?

उत्तर : प्रतिदिन ३००० के हिसाब से एक लाख पचीस हजार बार राम-नाम का जप कीजिए। चार बजे प्रातः उठिए। ऋषिकेश, हरिद्वार, प्रयाग, नासिक, वाराणसी, वृन्दावन, अयोध्या अथवा चित्रकूट में अनुष्ठान कीजिए। अन्तिम पाँच दिनों में प्रतिदिन ४००० जप कीजिए। आप एक ही आसन में नित्य बैठ कर एक लाख जप भी कर सकते हैं। अन्तिम दिन हवन कीजिए तथा ब्राह्मणों, साधुओं और संन्यासियों को भोजन दीजिए।

प्रश्न : निराकार साकार कैसे बन सकता है?

उत्तर : जिस तरह जल दो अवस्थाओं में रह सकता है- जल तथा बर्फ के रूप में, उसी तरह ब्रह्म निराकार तथा साकार के रूप में रह सकता है। भक्तों के भक्तिपूर्ण ध्यान के लिए निराकार ब्रह्म साकार रूप धारण करता है। वायु निराकार होते हुए भी चक्रावर्त (बवण्डर) के समय आकार धारण कर लेती है, उसी तरह ब्रह्म भी आकार धारण करता है।

प्रश्न : क्या भक्ति और ज्ञान अम्ल एवं क्षार की तरह एक-दूसरे के विरोधी हैं?

उत्तर : नहीं, ज्ञान से भक्ति गम्भीर बनती है। भक्ति का फल ज्ञान है। परा भक्ति तथा ज्ञान एक ही है। श्री शंकर, जो केवल अद्वैत ज्ञानी थे, भगवान् हरि, हर तथा देवी के महान् भक्त थे। श्री रामकृष्ण परमहंस काली के उपासक थे तथा उन्होंने अपने अद्वैत गुरु तोतापुरी से ज्ञान पाया। दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध ज्ञानी अप्पय्य दीक्षित भगवान् शिव के अनन्य भक्त थे।

प्रश्न: ज्ञानयोग तथा भक्तियोग दोनों का अभ्यास कैसे किया जाये? क्या भक्तियोग का ही अभ्यास करना अच्छा नहीं है?

उत्तर : हाँ, भक्तियोग का ही अभ्यास करें। आप भगवान् के चरण-कमलों का ध्यान करें। सारी कामनाएँ तथा तृष्णाएँ विनष्ट हो जायेंगी।

प्रश्न : दो प्रकार की भक्ति क्या है?

उत्तर : अपरा भक्ति और परा भक्ति।

प्रश्न : अपरा भक्ति क्या है?

उत्तर : भक्त का एक इष्टदेवता है। वह उस देवता की शास्त्रीय उपासना तथा पूजा करता है। वह मूर्ति-पूजा करता है।

प्रश्न : परा भक्ति क्या है?

उत्तर : भक्त सर्वत्र हरि को देखता है। उसका मन भगवान् के चरण कमलों में सदा स्थिर रहता है। उसकी भक्ति तैलधारावत् अविच्छिन्न रहती है। उसका प्रेम विश्वात्म है। उसे किसी भी प्राणी के प्रति लेशमात्र भी द्वेष नहीं है। वह समस्त जगत् को विश्व-वृन्दावन देखता है।

प्रश्न : सकाम भक्ति क्या है?

उत्तर : भक्त धन, पुत्र, रोग-मुक्ति अथवा किसी कार्य में सफलता-प्राप्ति के लिए ईश्वर की पूजा करता है।

प्रश्न : निष्काम भक्ति क्या है?

उत्तर : भक्त किसी फल की कामना नहीं करता। वह एकमेव ईश्वर को ही चाहता है। यह है प्रेम प्रेम के ही लिए।

प्रश्न : व्यभिचारिणी भक्ति क्या है?

उत्तर : दो घण्टे के लिए ईश्वर से प्रेम करना और बाकी समय स्त्री, पुत्र तथा सम्पत्ति से आसक्त रहना।

प्रश्न : भक्ति के नौ प्रकार क्या हैं?

उत्तर: श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्म-निवेदन।

प्रश्न : स्नेह, प्रेम, श्रद्धा तथा भक्ति में क्या अन्तर है?

उत्तर : अपनी सन्तान आदि छोटों के प्रति जो राग दिखाया जाता है, उसे स्नेह कहते हैं। स्त्री, मित्र आदि समान आयु वालों के प्रति राग को प्रेम कहते हैं। माता-पिता, गुरु आदि के प्रति प्रेम को श्रद्धा कहते हैं। ईश्वर के प्रति प्रेम को भक्ति कहते हैं।

प्रश्न : पाँच प्रकार की उपासना कौन-सी हैं?

उत्तर : शान्त-भाव, दास्य-भाव, सख्य-भाव, वात्सल्य-भाव तथा माधुर्य-भाव।

प्रश्न : पाँच श्रेणी की उपासना कौन-सी है?

उत्तर : मृतात्माओं तथा तत्त्वों की उपासना; ऋषियों, देवताओं एवं पितरों की उपासना; अवतारों की उपासना; सगुण ब्रह्म की उपासना तथा निर्गुण ब्रह्म की उपासना।

प्रश्न : भक्ति की चार अवस्थाएँ कौन-सी हैं?

उत्तर : मृदु भावना, उष्ण स्नेह, उत्कट प्रेम तथा ज्वलन्त अनुराग। दूसरा वर्गीकरण इस प्रकार है-स्तुति, आकर्षण, राग तथा परम प्रेम।

प्रश्न : चार प्रकार की मुक्ति क्या है?

उत्तर : सालोक्य-मुक्ति-भक्त विष्णु के लोक में निवास करता है। सामीप्य-मुक्ति-वह राजा के सहायक की भाँति ईश्वर के निकट रहता है। सारूप्य-मुक्ति-वह राजा के भाई अथवा युवराज की भाँति ईश्वर के समान रूप रखता है। सायुज्य-मुक्ति-वह जल में चीनी अथवा नमक की भाँति ईश्वर से एक हो जाता है।

प्रश्न : भक्तियोग का अभ्यास कैसे किया जाये ?

उत्तर : भक्ति-मार्ग के आचार्यों ने पाँच भावों को बतलाया है- वात्सल्य, सख्य, दास्य, माधुर्य तथा शान्त। आप किसी भी भाव को ग्रहण कीजिए जो आपके लिए स्वाभाविक हो। यह पता लगा लीजिए कि आपको अपने दैनिक जीवन में किसके प्रति-शिशु, मित्र, मालिक और प्रेमी- अधिकतम प्रेम है अथवा किसी भी विशेष व्यक्ति के प्रति नहीं है। उसी भाव से ईश्वर की पूजा कीजिए।

अनुभव कीजिए कि आप उसके साक्षात्कार के लिए ही जीवित हैं। ऐसा अनुभव कीजिए कि आप अनेकानेक नाम-रूपों में एक उसी प्रभु की सेवा कर रहे हैं। हर चेहरे में ईश्वर को ही देखिए। सभी को, यहाँ तक कि जानवरों को भी मानसिक नमस्कार कीजिए "हे प्रभु! मैं इन सभी में केवल आपको ही देख रहा हूँ।" समय-समय पर इस मन्त्र का ध्यान कीजिए- "हे प्रभु! मैं तेरा हूँ, सब तेरे हैं। तेरा चाहा ही हो कर रहेगा।"
आप शीघ्र ही गम्भीर भक्ति का विकास करेंगे। वह अन्दर से ही आपका पथ-प्रदर्शन करेगा। हर श्वास के साथ उसके नाम का जप कीजिए। प्रातः-सायं जप, कीर्तन तथा ध्यान में नियमित रहिए।

प्रश्न : भक्त के आवश्यक गुण क्या हैं? उनको कैसे प्राप्त किया जाये?

उत्तर : भक्त से नैतिक पूर्णता की सुगन्धि निकलती है। भक्त के हृदय में जब ईश्वर आसीन हो जाते हैं, तो भक्त में धर्म का निवास हो जाता है। उसका स्वभाव ही सदाचार-परायण हो जाता है। जिस तरह प्रकाश के साथ अन्धकार नहीं ठहर सकता, उसी तरह जहाँ ईश्वर है, वहाँ अधर्म कहाँ ?

आत्म-विश्लेषण के द्वारा अपने दुर्गुणों को खोज निकालिए। उसके विपरीत सद्गुण पर ध्यान कीजिए। जप तथा ध्यान करते समय अनुभव कीजिए कि भगवान् जो सब सद्गुणों का मूल तथा पूर्ण स्वरूप है, आपके हृदय में ही निवास करता है। वह उस सद्गुण को विकीर्ण कर आपके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को उससे परिप्लावित कर रहा है। व्यवहार-काल में इसका निश्चय कीजिए कि दुर्गुण आपसे दूर हो गया है। आपमें दैवी गुणों की वृद्धि होगी।

प्रश्न : साक्षात्कार का सबसे सुगम मार्ग क्या है?

उत्तर : सदा जप करना, भगवान् के नाम को जीवन का अंग बना लेना, सभी नाम-रूपों में उसी के दर्शन करना, अहंकार का उन्मूलन करना और राग-द्वेष को विनष्ट करना यही सुगम मार्ग है। जिसमें श्रद्धा तथा भक्ति नहीं हैं तथा जिसने भगवान् के चरण-कमलों में शरणागति नहीं ली है, उसके लिए आध्यात्मिक मार्ग छुरे की धार के समान ही कठिन है।

१ ३. वेदान्त-सम्बन्धी प्रश्न

प्रश्न : असीम क्या है?

उत्तर : जहाँ मनुष्य कुछ देखता नहीं, सुनता नहीं, वही असीम है। जहाँ भूत नहीं, भविष्य नहीं; जहाँ रूप नहीं, शब्द नहीं; जहाँ पूर्व तथा पश्चिम नहीं; जहाँ प्रकाश तथा अन्धकार नहीं; जहाँ सुख तथा दुःख नहीं; जहाँ क्षुधा-पिपासा नहीं; जहाँ देश-काल नहीं, वही असीम है।

प्रश्न : हम सभी ब्रह्म हैं, फिर यह अविद्या का आवरण कैसे आया?

उत्तर: यह अति प्रश्न है। सीमित बुद्धि जो देश, काल तथा कारण में फँसी हई है. इस समस्या का समाधान नहीं कर सकती। इस सम्बन्ध में दिमाग न लड़ाइए। घोडे के सामने गाडी न जोतिए। प्रथम अज्ञान को दूर कीजिए। आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लीजिए; तभी आप माया अथवा अविद्या के मूल को जान पायेंगे।

प्रश्न : आत्मा का स्वरूप क्या है? उसका साक्षात्कार कैसे होगा?

उत्तर : आत्मा का स्वरूप वर्णनातीत है। ऋषियों ने पथ-प्रदर्शन के लिए साधनार्थ कुछ परिभाषाएँ दी हैं। जैसे सत्, चित्, आनन्द, शान्तम्, शिवम्, अद्वैतम्, नाम-रूपों से परे, अतीत ये कुछ सांकेतिक परिभाषाएँ हैं। आपकी अन्तरात्मा जो सुषुप्ति के समय में भी जाग्रत है, जो आपके मन, इन्द्रिय तथा शरीर से परे है, वही आत्मा है।

सर्वप्रथम निष्काम कर्मयोग के द्वारा अपने चित्त को शुद्ध बनाइए। इसके साथ-ही-साथ जप, कीर्तन तथा प्राणायाम के अभ्यास से मन को स्थिर कीजिए। विचार कीजिए-'मैं कौन हूँ?' साधना में संलग्न रहिए। आप आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करेंगे।

१४. राजयोग-सम्बन्धी प्रश्न

प्रश्न : धारणा के लिए सुगम मार्ग क्या है?

उत्तर : भगवान् के नाम का जप। यह बात सदा ध्यान में रखिए कि पूर्ण धारणा एक ही दिन के अन्दर प्राप्त नहीं होती। आपको निराश हो कर साधना बन्द नहीं करनी चाहिए। शान्त रहिए। धीर बनिए। यदि मन भटके, तो चिन्ता न कीजिए। जप में नियमित रहिए। ध्यान के समय कभी भी ध्यान से न चूकिए। धीरे-धीरे मन स्वतः ईश्वर की ओर मुड़ जायेगा। एक बार ईश्वरीय आनन्द का सुख चख लेने पर मन को कुछ भी विचलित नहीं कर सकता।

प्रश्न : शौच क्या है? उसके कितने प्रकार हैं?

उत्तर : शौच अन्तर एवं बाह्य शुद्धता है। बाह्य शौच मिट्टी, जल तथा स्नान द्वारा किया जाता है। आन्तर शौच जप, प्राणायाम, विचार, स्वाध्याय, कीर्तन, ध्यान, अहिंसा का अभ्यास, सत्य, ब्रह्मचर्य, मैत्री, करुणा, मुदिता आदि के अर्जन द्वारा सम्भव है। आन्तर शौच ही अधिक महत्त्वपूर्ण है।

प्रश्न : ब्राह्ममुहूर्त में ध्यान करने से साधक को क्या लाभ होता है?

उत्तर : ब्राह्ममुहूर्त में मन

मन शान्त रहता है। वह सांसारिक विचारों से मुक्त रहता है। इस समय मन कोरे कागज की भाँति सांसारिक संस्कारों से मुक्त रहता है। इस समय मन को आसानी से ढाल सकते हैं। इस समय वातावरण में भी सत्त्व की प्रधानता रहती है। बाहर शोर-गुल का भी अभाव रहता है।

प्रश्न : ध्यान में बैठते ही मेरे मन में सांसारिक विचार भर जाते हैं। कब यह अशान्ति दूर होगी ?

उत्तर : बड़े नगर में आठ बजे सायंकाल को बड़ा कोलाहल रहता है। नौ बजे रात्रि को शोर-गुल शान्त होने लगता है। दश बजे के बाद वह और भी क्षीण हो जाता है। एक बजे सर्वत्र शान्ति छा जाती है। उसी तरह योगाभ्यास के प्रारम्भ में मन में अनेकानेक वृत्तियाँ रहती हैं। मन में अधिक अशान्ति तथा विक्षेप रहता है। धीरे-धीरे विचार-तरंगें विलीन होने लगती हैं; अन्ततः सारी वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती हैं। योगी पूर्ण शान्ति का उपभोग करता है।

प्रश्न : समाधि में शीघ्र कैसे प्रवेश किया जाये ?

उत्तर : अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों से सारे सम्पर्क तोड़ डालिए। किसी को पत्र न लिखिए। अखण्ड मौन का पालन कीजिए। अकेले रहिए। अकेले भ्रमण कीजिए। बहुत अल्प परन्तु पौष्टिक आहार लीजिए। यदि सम्भव हो, तो दुग्धाहार कीजिए। गम्भीर ध्यान में निमग्न हो जाइए। गहरा डूबिए। सतत अभ्यास रखिए। आप समाधि में निमग्न हो जायेंगे। सावधान रहिए। सहज बुद्धि का प्रयोग कीजिए। मन के साथ संघर्ष न कीजिए। मन में दिव्य विचारों को संचरित होने दीजिए।

प्रश्न : हरि पर ध्यान कैसे किया जाये ?

उत्तर : हरि के चरण-कमलों पर मन को स्थिर कीजिए। तब मन को उनके पीताम्बर, श्रीवत्स, कौस्तुभमणि, हाथों में कंगण, कानों में कुण्डल, शिर पर मुकुट; तब हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म की ओर क्रमशः ले जाइए और पुनः धीरे-धीरे नीचे उतर आइए।

प्रश्न : मन को कहाँ एकाग्र किया जाये ?

उत्तर : अनाहत चक्र में-हृदय-पद्म में अथवा त्रिकुटी- दोनों भौंहों के मध्य के स्थान में। यह आपकी रुचि पर निर्भर करता है।

१५. योग तथा दिव्य जीवन

प्रश्न : योग क्या है?

उत्तर : योग का अर्थ है 'मिलन' - जीवात्मा तथा परमात्मा का मिलन; ससीम चैतन्य का असीम चैतन्य में विलयन। मन का समत्व योग है। राग, अहंकार तथा दुर्बलताओं से मुक्ति योग है।

प्रश्न : क्या योग इस जगत् की सभी समस्याओं को सुलझा सकता है?

उत्तर : हाँ, निश्चय ही। योग ही एकमेव समाधान है। जगत् के क्षणभंगुर अनित्य रूप पर ध्यान कीजिए। विचार कीजिए। ऐसा समझिए कि जगत् के सारे सुख दुःख के ही मूल हैं। ऐसा जान लीजिए कि जगत् का एकछत्र सम्राट् बनने पर भी आप परम सुख नहीं पा सकते। योग के द्वारा ही परम सुख तथा परम शान्ति मिलनी सम्भव है। इस प्रकार सतत विचार से जब आपके हृदय में विवेक का प्रादुर्भाव होगा, तो योग में आपकी अविचल निष्ठा हो जायेगी।

प्रश्न : दिव्य जीवन के सिद्धान्त क्या है?

उत्तर : अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अनासक्ति तथा मुमुक्षुत्व-ये दिव्य जीवन के सिद्धान्त हैं। दिव्य जीवन ईश्वर में जीवन है। आप व्यावहारिक जगत् में रहते हुए भी दिव्य जीवन बिता सकते हैं- आवश्यकता है अहंकार, आसक्ति, तृष्णा आदि को त्याग देने की। हाथों को काम में संलग्न रखिए तथा मन को ईश्वर में।

प्रश्न : कौन श्रेयस्कर है- द्वैत अथवा अद्वैत दर्शन ?

उत्तर : दोनों ही विभिन्न रुचि वाले मनुष्यों के आदर्श हैं। भावना-प्रधान साधक भक्ति का अभ्यास करते हैं। बुद्धि-प्रधान प्रबल संकल्प वाले साधक ज्ञान (अद्वैत) का अभ्यास करते हैं। अद्वैतवादी ऐसा अनुभव करता है कि वह ईश्वर से एक ही है। दोनों से एक ही लक्ष्य की प्राप्ति होती है-ईश्वर-साक्षात्कार, जीव-चैतन्य का ईश्वर से मिलन।

प्रश्न : देहाध्यास का अर्थ क्या है? शंकराचार्य ने अस्पृश्य से कहा था- "मैं तुम्हारे शरीर तथा आत्मा को दूर हटाने को नहीं कहता, मैं तो देहाध्यास आदि को दूर हटाने को कहता हूँ।"

उत्तर : भ्रमवश शरीर के साथ आत्मा को अध्यस्त कर लेना - शरीर को ही आत्मा मान लेना देहाध्यास है।

प्रश्न : वेदान्त-पथ पर चलने का कौन अधिकारी है?

उत्तर : जिसने निष्काम कर्मयोग से मल को दूर कर लिया है, जिसने उपासना के द्वारा विक्षेप को दूर कर लिया है तथा जो साधन-चतुष्टय - विवेक, वैराग्य, षट् सम्पत् तथा मुमुक्षुत्व से सम्पन्न है, वही वेदान्ताभ्यास के लिए समर्थ है।

१६. जगत् तथा संन्यास

प्रश्न : मैं कब संसार का संन्यास करूँ ?

उत्तर : जिस दिन आपको पूर्ण वैराग्य हो जाये, उसी दिन इस संसार का संन्यास कर दीजिए। यही श्रुति (जाबालोपनिषद्) की घोषणा है। शुद्ध विवेक से ही वैराग्य की उत्पत्ति होनी चाहिए, अन्यथा आप स्थिर नहीं रह सकते, आप संन्यास-मार्ग में दृढ़ नहीं रह सकते।

प्रश्न: क्या यह जगत् असत्य है?

उत्तर : यह जगत् पारमार्थिक दृष्टि से असत्य है; यह विनश्वर, परिवर्तनशील तथा विरोधाभास से युक्त है। इसकी स्वतः कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। आत्म-साक्षात्कार में इसका निषेध हो जाता है।

अध्याय २०:साधकों को आवश्यक उपदेश

१. साधकों का पथ-प्रदर्शन

१. अपनी आवश्यकताओं को जितना कम कर सकें, उतना कम रखिए।

२. सभी परिस्थितियों के अनुकूल बन जाइए।

३. कभी भी किसी वस्तु या किसी व्यक्ति से आसक्त न बनिए।

४. जो-कुछ भी आपके पास हो, उसमें दूसरों को भी हिस्सा दीजिए।

५. सेवा करने के लिए सदा तैयार रहिए। कोई भी अवसर न खोइए। आत्म-भाव के साथ सेवा कीजिए।

६. अकर्ता तथा साक्षी-भाव रखिए।

७. नपे-तुले मधुर शब्द बोलिए।

८. ईश्वर-साक्षात्कार के लिए ज्वलन्त पिपासा रखिए।

९. अपनी सारी सम्पत्ति का संन्यास कर ईश्वर के प्रति आत्मार्पण कीजिए।

१०. आध्यात्मिक मार्ग तीव्र छूरे की धार के समान है। गुरु परमावश्यक है।

११. महान् धैर्य तथा संलग्नता रखिए।

१२. एक दिन के लिए भी अभ्यास न छोड़िए।

१३. गुरु केवल पथ-प्रदर्शन करेंगे, आपको स्वयं मार्ग पर चलना है।

१४. जीवन अल्प है। मृत्यु का समय अनिश्चित है। उग्रतापूर्वक योग-साधना में लग जाइए।

१५. नित्य-प्रति आध्यात्मिक डायरी का पालन कीजिए तथा उसमें अपनी उन्नति तथा विफलता को ठीक-ठीक अंकित कीजिए। अपने संकल्पों से न हटिए।

१६. ऐसी शिकायत न कीजिए कि साधना के लिए समय नहीं है। निद्रा तथा व्यर्थ बातचीत को कम कीजिए। ब्राह्ममुहूर्त में नियमित उठिए।

१७. ईश्वर का विचार संसार-चिन्तन को दूर भगाता है।

१८. प्रबल ब्रह्म-चिन्तन के द्वारा आप इस बात को भूल जाइए कि आप अमुक व्यक्ति हैं मनुष्य या स्त्री हैं।

१९. यदि आप किसी काम को आज ही कर सकते हैं, तो उसे कल के लिए कदापि न छोड़िए।

२०. अभिमान न कीजिए। अपनी क्षमताओं का प्रदर्शन न कीजिए। सरल तथा नम्र बनिए।

२१. सदा प्रसन्न रहिए। चिन्ताओं से मुक्त बनिए।

२२. उन वस्तुओं से उदासीन रहिए जिनसे आपको कोई तात्पर्य नहीं।

२३. सांसारिक मनुष्यों की संगति तथा बातचीत से दूर भागिए।

२४. नित्य-प्रति कुछ घण्टे एकान्त में रहिए।

२५. लोभ, ईर्ष्या तथा संग्रह-वृत्ति का परित्याग कीजिए।

२६. विवेक तथा वैराग्य के द्वारा अपने आवेगों को वश में लाइए।

२७. मन का सन्तुलन सदा बनाये रखिए

२८. बोलने से पहले दो बार सोच लीजिए। काम करने से पहले तीन बार सोच लीजिए।

२९. निन्दा, चुगली तथा दोष-दर्शन का परित्याग कीजिए। प्रतिक्रिया से सावधान रहिए।

३०. अपने दोषों तथा दुर्बलताओं का पता लगा लीजिए। दूसरों में सदा शुभ के ही दर्शन कीजिए। दूसरों के सद्गुणों की प्रशंसा कीजिए।

३१. दूसरों से आपको जो हानि पहुँची हो, उसे भूल जाइए तथा क्षमा कीजिए। जो आपसे घृणा करे, उसकी भी भलाई कीजिए।

३२. काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार को विषधर सर्प समझ कर त्यागिए।

३३. कितना भी दुःख सहने के लिए सदा तैयार रहिए।

३४. वैराग्य-वृद्धि के लिए कुछ उक्तियों को सदा अपने समक्ष रखिए।

३५. विषय-सुख को विष्ठा या मूत्र के समान ही हेय समझिए। उनसे आप तृप्ति नहीं पा सकते।

३६. सावधानीपूर्वक अपने वीर्य की रक्षा कीजिए। सदा अलग-अलग सोइए।

३७. स्त्रियों को ईश्वरीय माता मान कर उनका सम्मान कीजिए। लिंग-विचार का उन्मूलन कीजिए। सभी को साष्टांग नमस्कार कीजिए।

३८. हर चेहरे में, हर वस्तु में ईश्वर को देखिए।

३९. जब मन बुरी वासनाओं से आक्रान्त हो तो संकीर्तन, सत्संग तथा प्रार्थना का सम्बल लीजिए।

४०. शान्ति तथा वीरतापूर्वक बाधाओं का सामना कीजिए।

४१. यदि आप ठीक मार्ग पर हैं, तो समालोचनाओं की चिन्ता न कीजिए। अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा के आगे न झुकिए।

४२. दुष्टों तथा अशिष्ट व्यक्तियों का भी सम्मान कीजिए। उनकी सेवा कीजिए।

४३. अपने दोषों को स्पष्टतः स्वीकार कर कीजिए।

४४. अपने स्वास्थ्य की रक्षा कीजिए। नित्य नियमित आसन तथा व्यायाम में कभी भी न चूकिए।

४५. सदा स्फूर्ति बनाये रखिए।

४६. दान के द्वारा हृदय का विकास कीजिए। अनुपम दानशील बनिए। मनुष्य की आशा से भी अधिक दान दीजिए।

४७. कामनाओं से विपत्ति बढ़ती है। सन्तोष का विकास कीजिए।

४८. एक-एक कर इन्द्रियों का दमन कीजिए।

४९. बारम्बार विचार के द्वारा ब्रह्माकार वृत्ति का विकास कीजिए।

५०. अपनी सारी वृत्तियों पर नियन्त्रण रखिए। उन्हें शुद्ध तथा समुन्नत बनाये रखिए।

५१. जब कोई आपको अपमानित करे, गाली दे तथा व्यंगपूर्ण वचन बोले, तो क्रोधावेश में न आइए। यह तो शब्दों का जाल मात्र है।

५२. अपने मन को ईश्वर में स्थिर बनाये रखिए। सत्य में निवास कीजिए।

५३. पूर्णता के मार्ग में संलग्न बनिए।

५४. जीवन में निश्चित लक्ष्य बनाये रखिए तथा सावधानीपूर्वक आगे बढ़ते जाइए।

५५. मौन के लाभ अगणित हैं। इस अभ्यास को कभी भी न त्यागिए।

५६. शब्द, स्पर्श, दृष्टि तथा विचार-ये ही चार मुख्य साधन हैं जिनसे काम मन में प्रवेश कर सकता है। सावधान रहिए।

५७. ईश्वर के अतिरिक्त किसी के साथ भी घना सम्पर्क न बनाइए। दूसरों के साथ बहुत कम मिलिए।

५८. हर वस्तु में परिमित बनिए। अति सदा हानिकारक है।

५९. प्रतिदिन आत्म-विश्लेषण तथा अन्तर्निरीक्षण का अभ्यास कीजिए। अपनी उन्नति का अन्दाजा बनाये रखिए।

६०. आध्यात्मिक मार्ग में कुतूहल का त्याग कीजिए। अपनी शक्ति की रक्षा कीजिए तथा धारणा कीजिए। आहार, शरीर तथा सम्बन्धियों का विचार कम कीजिए।

आत्मा का विचार अधिक कीजिए। आपको इसी जन्म में साक्षात्कार करना है।

२. संन्यासियों को उपदेश (१)

जिस साधक में सच्चा विवेक तथा स्थायी वैराग्य है, जिसमें ज्वलन्त मुमुक्षुत्व है, जो संन्यास-मार्ग का अनुसरण कर रहा है, वही इन उपदेशों का वास्तविक मूल्यांकन कर सकता है। यह नारदपरिव्राजकोपनिषद् का सारांश है। इसके अतिरिक्त उन उपनिषदों एवं शास्त्रों का भी सारांश है जो त्याग, वैराग्य, दिव्य जीवन, सदाचार तथा संन्यासियों अथवा यतियों के लिए नियम आदि विषयों का प्रतिपादन करते हैं। मयीड रिश

भगवान् कृष्ण कहते हैं- "हे कुन्ती-पुत्र ! ज्ञान मनुष्य की भी उच्छृंखल इन्द्रियाँ प्रयत्न करने पर भी उसके मन को बलात् हटा ले जाती हैं।" अतः इन सारे उपदेशों का अक्षरशः पालन करना चाहिए। थोड़ी-सी भी ढिलाई होने पर भयंकर परिणाम की प्राप्ति हो सकती है। सावधान !

कुछ मामलों में सिद्धों का अनुसरण न कीजिए। उनके व्यवहार वास्तव में उपदेशप्रद होते हुए भी कभी-कभी रहस्यमय होते हैं। ऐसा न समझ बैठिए कि आप भी सिद्ध पुरुष ही हैं। अभी तो आपने केवल प्रवेश ही किया है। आप तो अभी तृतीय श्रेणी के भी साधक नहीं हैं। निम्न मन द्वारा बहुतों ने धोखा खाया है।

कुछ आधुनिक जन ऐसा कह सकते हैं कि इन नियमों में बहुत रूढ़िवाद है; परन्तु ऐसा रूढ़िवाद ही मनुष्य को आत्म-साक्षात्कार में सहायता दे सकता है। सुविधाजनक संन्यास से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती।णी एसीर

१. रुपये न रखिए। उसे स्पर्श भी न कीजिए। इससे बन्धन होगा। इससे आपमें अभिमान उत्पन्न होगा और आप पतित हो जायेंगे। आप लक्ष्य को भूल जायेंगे।

२. निष्कलंक आचरण बनाये रखिए। स्वल्प सन्देह के लिए भी कारण न दीजिए।

३. भिक्षा पर ही जीवन-निर्वाह कीजिए। इससे आप पूर्ण स्वतन्त्र बन जायेंगे।

४. गृहस्थ के घर में न घुसिए। उसके घर में भोजन न कीजिए।

५. केवल एक बार ही दोपहर में भोजन कर लीजिए। कम-से-कम, जितना आवश्यक हो, उतना ही भोजन कीजिए।

६. अपने पूर्व वास-स्थान, ग्राम, शहर या जिले में न जाइए। संन्यास के पश्चात् कम-से-कम बारह वर्ष तक इस नियम का पालन कीजिए।

७. किसी व्यक्ति को पत्र न लिखिए। इस संसार में किसी व्यक्ति के साथ भी सम्बन्ध न रखिए।

८. अपने व्यवहार के लिए केवल एक कम्बल तथा दो वस्त्र रखिए। उसके अधिक नहीं।

९. उत्तराखण्ड में अकेले तथा स्वतन्त्र रहिए।

१०. दूसरे के बिछावन पर न सोइए। दिन में न सोइए। निद्रा को जितना कम हो सके, कम कीजिए। F

११. मित्र न बनाइए। किसी व्यक्ति का साथ न कीजिए। साधकों का भी साथ न कीजिए। किसी व्यक्ति के साथ घना सम्पर्क न रखिए; विशेषकर महिलाओं के साथ।

१२. किसी पद अथवा कार्य को स्वीकार न कीजिए, चाहे वह अवैतनिक ही क्यों न हो।

१३. अपमानित होने पर भी अथवा मार खाने पर भी प्रतिक्रिया के लिए अपना हाथ कदापि न उठाइए। अपमान तथा नुकसान सहिए। आपको अपनी रक्षा करने का भी कोई अधिकार नहीं है।

१४. उन लोगों से बात न कीजिए जो आपके पूर्वाश्रम के सम्बन्धी हैं।

१५. अपने गैरिक वस्त्र को कदापि न त्यागिए, चाहे आपका गला ही क्यों न काट दिया जाये। आजीवन किसी भी हालत में वस्त्र न बदलिए।

१६. मांस-भक्षण, धूम्रपान अथवा मदिरापान आदि ऐसा कोई भी कार्य न करें जो आप पर या पवित्र संन्यासं पर कलंक बन जाये।

१७. अश्लील शब्द न बोलिए। आपकी वाणी गौरवपूर्ण हो तथा उसमें आध्यात्मिक शक्ति हो।

१८. उसी चटाई या बेंच पर न बैठिए जिस पर कोई स्त्री बैठी हुई हो। स्त्री भी पुरुण के प्रति इस नियम का पालन करे।

१९. किसी कमरे में स्त्री के साथ अकेले न बैठिए।

२०. व्यापार द्वारा जीवन-निर्वाह के लिए अर्थोपार्जन न कीजिए। धनोपार्जन के लिए ज्योतिषशास्त्र, हस्तरेखाविज्ञान आदि का अध्ययन न कीजिए।

२१. बीमारी की अवस्था में गृहस्थों को रुपया भेजने के लिए न लिखिए। परमेश्वर पर निर्भर रहिए।

२२. बच्चों के साथ न खेलिए। उन्हें प्यार न कीजिए।

२३. सर्वदा नम्रता का ही स्वरूप बने रहिए। ऐसा भाव बनाये रखिए कि आप मानव-जाति के सेवक हैं। दूसरों की सेवा तथा सहायता के लिए सदा तैयार रहिए।

२४. संन्यासाश्रम के आधार पर किसी से विशेष सम्मान तथा व्यवहार की अपेक्षा न रखिए। आपका एकमात्र कर्तव्य है सेवा करना तथा लक्ष्य पर ध्यान करना।

२५. आप स्वयं दूसरों को पहले प्रणाम कीजिए। दूसरों से पहले प्रणाम की अपेक्षा न कीजिए।

२६. गीत तथा नृत्य से दूर रहिए। किसी भी कला का अभ्यास न कीजिए।

२७. जगत् के परिवर्तनशील फैशन से प्रभावित न बनिए।

२८. जन-मत की परवाह मत कीजिए तथा सभी के आदर तथा आकर्षण का केन्द्र बनने के लिए प्रयास न कीजिए।

२९. सामाजिक, राजनैतिक तथा अन्य लौकिक संस्थाओं में भाग न लीजिए।

३०. किसी महिला को शिष्य न बनाइए, चाहे वह बड़ी भक्त ही क्यों न हो।

३१. किसी भी व्यक्ति को अपने पैर न दबाने दीजिए। नौकर न रखिए।

३२. मन, वचन तथा कर्म से किसी व्यक्ति को हानि न पहुँचाइए। कीड़ों को न कुचलिए। भूमि पर दृष्टि रखते हुए चलिए।

३३. जब तक औषधि लेना अनिवार्य न हो, तब तक औषधि से अलग रहिए। साधारण रोगों को धैर्यपूर्वक सहन करना चाहिए।

३४. चाँदी, पीतल, ताँबा इत्यादि के बने हुए ऐसे पात्र न रखिए, जिनसे आपको आसक्ति हो।

३५. जहाँ तक सम्भव हो, अपने हाथों में भिक्षा लेने की कोशिश कीजिए। पात्र का व्यवहार न कीजिए।

३६. यदि कोई व्यक्ति भिक्षा देना न चाहता हो या अच्छी परिस्थिति में न हो, तो पुनः उसके घर न जाइए।

३७. जो-कुछ भी भोजन, वस्त्र तथा आश्रय के लिए मिल जाये, उसी से तृप्त रहिए।

३८. जब कभी आप भिक्षा लें, तो उस व्यक्ति को मन-ही-मन आध्यात्मिक ज्ञान तथा मुक्ति के लिए आशीर्वाद दीजिए।

३९. कल के लिए कुछ जमा न रखिए। भूत को भूल जाइए। तत्काल वर्तमान में ही निवास कीजिए।

४०. शरीर के लिए तेल, इत्र, चन्दन, फूल आदि का प्रयोग न कीजिए।

४१. कुछ भक्तों के ऊपर स्थायी रूप से निर्भर न हो जाइए।

४२. किसी से हँसी-मजाक न कीजिए। सांसारिक व्यक्ति के साथ जोरों से न हँसिए। सदा शान्त तथा गम्भीर बने रहिए।

४३. समाचार-पत्र न पढ़िए। आपको इस जगत् तथा इसके कार्य-व्यापार से कुछ भी नहीं करना है।

४४. आध्यात्मिक साक्षात्कार के सम्बन्ध में उपदेश देने अथवा भिक्षा लेने के सिवा अन्य समयों में मुँह न खोलिए। भिक्षा के समय केवल 'नारायण हरि' कहिए।

४५. शिर को अच्छी तरह मुँडाये रखिए। मशीन कटिंग अथवा स्टाइलिश कटिंग न कराइए।

४६. गेरुए के अतिरिक्त अन्य रंगों के कपड़े न पहनिए।

४७. प्रारम्भ में कुछ समय के लिए परिव्राजक का जीवन व्यतीत कीजिए। तब साधना के लिए एक ही स्थान पर टिक जाइए।

४८. सदा पैदल चलिए। किसी सवारी का व्यवहार न कीजिए।

४९. सिद्धियों के प्रलोभन में न पड़िए। उनको पाने की कोशिश न कीजिए। अपनी आध्यात्मिक सिद्धियों का प्रदर्शन न कीजिए।

५०. सम्मान, प्रशंसा, पूजा तथा आदर का परित्याग कीजिए। अपमान तथा आलोचना के प्रति उदासीन रहिए।

५१. जगत् के सभी पदार्थों को तृणवत् समझिए।

५२. जान-बूझ कर गन्दा न रहिए। मन, वचन तथा कर्म से शुद्ध एवं स्वच्छ रहिए।

५३. आश्रम-निर्माण न कीजिए। शिष्य न बनाइए।

५४. प्रसिद्ध बनने की कोशिश न कीजिए। स्वयं को महात्मा के नाम से विज्ञापित न कीजिए। सभी कामनाओं की जड़ को ही काट डालिए। आपकी एकमेव कामना हो आत्म-साक्षात्कार।

५५. दूसरों को अपना फोटो न निकालने दीजिए। स्वयं को चित्रित न होने दीजिए।

५६. किसी प्रकार के खेल न खेलिए। सुखद मनोरंजन के विचार मन में न लाइए।

५७. व्यस्त मनुष्य की तरह न दौड़िए। जोरों से न चिल्लाइए।

५८. शिशुवत् सरल बनिए। दूसरों के साथ अपने सारे व्यवहारों को तोड़ डालिए।

५९. मार्ग में दृढ़तापूर्वक संस्थित हो जाने पर कम-से-कम एक सुयोग्य व्यक्ति को संन्यास में दीक्षित कीजिए।

६०. परब्रह्म पर ध्यान के सिवा इस जगत् में आपका कोई अन्य कर्तव्य नहीं है।

६१. शान्ति, ज्ञान तथा अक्षय सुख के विचार में सन्तृप्त बने रहिए।

६२. आप शरीर नहीं हैं। इससे आसक्त न बनिए।

६३. सदा अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों के प्रति अटल रहिए।

६४. सर्वत्र नित्य ब्रह्म ही स्थित है। उसके सिवा अन्य कुछ भी नहीं है। अतः मूक तथा ज्ञानी बनिए।

६५. यह न भूलिए कि जो कुछ आप देखते, सुनते, चखते, सूँघते, छूते अथवा अनुभव करते हैं, वह वास्तव में ब्रह्म ही है।

६६. जब तक आपसे कोई पूछे नहीं, बातचीत न कीजिए। यदि कोई व्यक्ति अशिष्टतापूर्वक बातें करे, तो मौन तथा उदासीन रहिए। जगत् के स्वभाव को समझ कर सदा मौन तथा उदासीन रहिए।

६७. कार्य-कुशलता तथा वक्तृता-शक्ति द्वारा मनुष्य सच्चा संन्यासी नहीं बनता। यश, सम्मान, पाण्डित्य तथा चमत्कार से मनुष्य सच्चा संन्यासी नहीं बनता। वैराग्य तथा आत्मज्ञान से ही मनुष्य सच्चा संन्यासी बनता है।

६८. उपनिषद तथा ब्रह्मसूत्र का अध्ययन अवश्य कीजिए। विशेषकर चातुर्मास के समय इनका अध्ययन अनिवार्य है।

६९. सदा ॐ तथा उसके अर्थ पर ध्यान करते रहिए और महावाक्यों के लक्ष्यार्थ का चिन्तन करते रहिए।

७०. याद रखिए कि आप अमर आत्मा हैं तथा सारा जगत् ब्रह्म ही है।

३. संन्यासियों को उपदेश (२)

१. जहाज या वायुयान से विदेश भ्रमण न कीजिए।

२. शिर पर पगड़ी अथवा टोपी न पहनिए।

३. जहाँ तक सम्भव हो सके, जूते तथा छाते का प्रयोग न कीजिए।

४. गद्दे पर न सोइए। कोमल तकिये का इस्तेमाल न कीजिए।

५. कलेण्डर से दिनांक न देखा कीजिए। तारीख, दिन, तिथि, नक्षत्र, एकादशी, अमावास्या, पूर्णिमा, जयन्ती, नववर्ष दिवस जानने की इच्छा न रखें। आपका मतलब केवल दिन तथा रात्रि से ही है।

६. पूर्वाश्रम के शरीर तथा मन को पूर्णतः मृत ही मानिए तथा यह समझिए कि आपने संन्यास ले कर शरीर तथा मन में नये जीवन का प्रारम्भ किया है।

७. अपने शरीर के कुण्डल अथवा अन्य आभूषणों को निकाल फेंकिए।

८. एक वस्तु तथा दूसरी वस्तु के बीच की भेद-भावना को विनष्ट कीजिए। सर्वत्र एकता देखने की कोशिश कीजिए।

९. व्यायाम आदि शरीर-निर्माण करने वाली कसरतों का अभ्यास न कीजिए।

१०. कुछ भी न लिखिए। इस आदत का परित्याग कीजिए। उपनिषद्, योगवासिष्ठ आदि आत्मज्ञान-सम्बन्धी पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य कोई पुस्तक न पढ़िए।

११. स्वयं दाढ़ी-केश न बनाइए। नाई पर ही निर्भर रहिए। जब तक नाई न मिले, तब तक उसे बढ़ाये रखिए।

१२. जगत् की वस्तुओं को जानने के लिए कुतूहल न रखिए। सारे प्रकार के कुतूहल को प्रारम्भ में ही मार डालिए।

१३. किसी घर के सामने बहुत देर तक भिक्षा के लिए प्रतीक्षा न कीजिए। शीघ्र भिक्षा न मिलने पर दूसरे स्थान को जाइए।

१४. जो आपको भिक्षा न दे, उसके प्रति द्वेष-भाव न रखिए।

१५. नये नाम तथा वस्त्र से आसक्त न बनिए। इससे आपका अभिमान सबल होगा।

१६. कुटीर में रहते समय ताला-कुंजी न रखिए।

१७. बहुत से संन्यासियों के साथ न रहिए। अकेले रहिए।

१८. संन्यास में स्थित हो जाने पर जहाँ तक सम्भव हो सके, भिक्षा लेने के लिए भी क्षेत्रों अथवा गृहों को न जाइए। एक स्थान पर बैठ कर जो कुछ भी आ जाये, उसी से तृप्त रहिए।

१९. संन्यास के अनन्तर अपनी टाइटिल या उपाधियों को न रखिए।

२०. भिक्षा-प्राप्ति के लिए किसी व्यक्ति की प्रशंसा न कीजिए। उसे प्रसन्न करने की कोशिश न कीजिए।

२१. रात्रि में लैंप अथवा दीप का प्रयोग न कीजिए। अन्धकार में रह कर ध्यान कीजिए।

२२. आसन तथा जप-माला का प्रयोग न कीजिए जिससे आसक्ति की आशंका हो। उसके खो जाने पर आपको शोक करना पड़ेगा।

२३. जानवरों पर सवारी न कीजिए। व्यक्तियों को वाहन न बनाइए।

२४. जब तक आपको बाध्य न किया जाये, आप उपदेश न दें अथवा प्रचार न करें।

२५. शरीर में विभूति, कुंकुम अथवा चन्दन न लगाइए।

२६. मन की स्थिरता तथा आत्म-चिन्तन के साथ-साथ शरीर को जितना स्थिर रख सकें, स्थिर रखिए।

२७. सात से अधिक घरों से भिक्षा न लीजिए। कुल भिक्षा आपके आहार के लिए कम-से-कम होनी चाहिए।

बनिए। २८. किसी दयनीय स्थिति को देख कर कदापि दुःखी, खिन्न तथा शोकाकुल न ਲਾਲੀ ਦੀ ਜਾਨ ਦਾ ਫਿ

२९. रात्रि में भ्रमण न कीजिए। सूर्यास्त के अनन्तर एक ही स्थान में रहिए।

३०. गाय, कुत्ते अथवा बिल्ली आदि से प्रेम न कीजिए। पालतू जानवर न रखिए। सर्प, बिच्छू, गाय, व्याघ्र, हिरन सभी के प्रति समदृष्टि रखिए।

३१. तैरना, उछलना, फिसलना, ताली पीटना अथवा सीटी बजाना-इन सबसे उपरत रहिए।

३२. भिक्षा लेते समय भिक्षा देने वाले के हाथ का स्पर्श न कीजिए।

३३. किसी के विरुद्ध मुकदमा न चलाइए। न्यायालय (कचहरी) न जाइए।

३४. यदि कोई व्यक्ति आपके कमण्डल, वस्त्र आदि ले जाये, तो उसे ऐसा करने दीजिए। उससे झगड़ा न कीजिए।

३५. यदि बलपूर्वक कोई आपको बन्धन में डाले अथवा जेल ले जाये, तो उसका विरोध न कीजिए। सन्तुलित मन से जाइए।

३६. अपना भोजन न पकाइए। अग्नि का स्पर्श न कीजिए। जैसा भी आहार मिल जाये, उससे ही सन्तुष्ट रहिए- चाहे वह कच्चा हो अथवा पका।

३७. अच्छी दृष्टि न रहने पर भी चश्मा न पहनिए।

३८. मृत्यु की चिन्ता न कीजिए। याद रखिए, आपके लिए मृत्यु नहीं है। आप नित्य समरस सच्चिदानन्द हैं।

४. पथ पर आलोक

१. मनुष्य में यदि मनुष्यत्व नहीं है, यदि उसमें करुणा, प्रेम, दया, आत्म-संयम, सदाचार, शील तथा नम्रता आदि सद्गुण नहीं हैं तो वह पशु ही है।

२. दयालु, कारुणिक, शुद्ध, प्रिय तथा उदार हृदय वाटिका है। शुभ संस्कार बीज हैं। दिव्य विचार मूल हैं। सात्त्विक गुण अंकुर हैं। सदय, प्रिय तथा सत्य वचन पत्ते हैं। सत्कर्म फूल हैं। मोक्ष फल है। अतः करुणा का विकास कीजिए। उन्नत विचारों को प्रश्रय दीजिए। सत्य बोलिए। सत्कर्म कीजिए। दिव्य फल का उपभोग कीजिए।

३. बुरे विचारों, दुर्गुणों, दोषों, दुर्बलताओं तथा बुरी आदतों से संग्राम न कीजिए। उनसे संग्राम करने पर वे अधिकाधिक सबल बनते जायेंगे तथा उनका दमन करना आपके लिए कठिन हो जायेगा। उन्नत दिव्य विचारों का अर्जन कीजिए। सद्गुणों का विकास कीजिए। अच्छी आदतों का निर्माण कीजिए। जप कीजिए। नियमित ध्यान कीजिए। ईश्वर में निवास कीजिए। सारे दोष पूर्णतः दूर हो जायेंगे।

४. सदाचार, आर्जव, शील, दया, उदारता, सेवा तथा करुणा के अभ्यास से आप उन पुरुषों के प्रभाव से बचे रहेंगे जो स्वार्थी हैं तथा जिनका आचरण ठीक नहीं है। धीरे-धीरे एक-एक कर इन सात्त्विक गुणों को जीत लेंगे। का अर्जन करते रहिए। आप सभी के हृदयों

५. विदर के ज्ञान, युधिष्ठिर के सदाचार, भीष्म की शुद्धता, कर्ण की उदारता, अर्जुन की वीरता तथा भीम के बल को प्राप्त कीजिए। आप महानता तथा अमृतत्व प्राप्त करेंगे।

६. प्रारम्भ में चार बजे प्रातः तथा आठ बजे सायंकाल को प्रेम-मिश्रण का पान कीजिए। तीन चम्मच प्रेम के साथ एक चम्मच श्रद्धा मिलाइए तथा आधा चम्मच भाव भी। इस मिश्रण में हरि-कीर्तन के दो चम्मच तथा जप का एक चम्मच और मिलाइए। इस मिश्रण का परिमाण क्रमशः बढ़ाते जाइए। अमृतत्व प्राप्ति के लिए यह अचूक औषधि है। इससे आप जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाइए।

७. तीन वस्तुओं का आहार कीजिए। तीन वस्तुएँ पहनिए। तीन वस्तुओं का अभ्यास कीजिए-अहिंसा, सत्य तथा ब्रह्मचर्य। तीन वस्तुओं को याद कीजिए-मृत्यु, संसार के दुःख तथा ईश्वर। तीन वस्तुओं का संन्यास कीजिए- अहंकार, कामना तथा राग। तीन वस्तुओं का अर्जन कीजिए नम्रता, अभय तथा प्रेम। तीन वस्तुओं का उन्मूलन कीजिए-काम, क्रोध तथा लोभ।

८. सारे सद्गुण, धन तथा कामनाओं का मूल कर्म है। जिसमें कर्तृत्व नहीं, उसमें वीर्य अथवा शक्ति नहीं होती है। धर्म तथा अर्थ का एकमेव लक्ष्य है मुक्ति की प्राप्ति। जो सद्गुण का अभ्यास नहीं करता, वह पाप ही करता है। सत्कर्मों का फल इस लोक या परलोक में प्राप्त होता है।

९. क्रोध को प्रेम से, काम को शुद्धता से, लोभ को उदारता से, अहंकार को नम्रता से तथा अभिमान को ईश्वरार्पण से दूर कीजिए। आप दिव्य बन जायेंगे।

१०. सच्चाई ही कल्याण का मार्ग है। विचारहीनता ही जन्म-मृत्यु का प्रशस्त पथ है। अपनी साधना में और अधिक उत्साह तथा और अधिक सच्चाई लाइए। आप शीघ्र ही अमृत को प्राप्त करेंगे। गिमा हामारीका में तर कि गए थ

११. कम बैठिए। अधिक सेवा कीजिए। सभी से प्रेम कीजिए। कम पहनिए। अधिक स्नान कीजिए। कम लीजिए। अधिक दीजिए। कम बोलिए। अधिक विचारिए। कम खाइए। अधिक चबाइए। कम प्रचार कीजिए। अधिक अभ्यास कीजिए। कम चिन्ता कीजिए। अधिक हँसिए। कम विषय-भोग कीजिए। अधिक काम कीजिए। कम सोइए। अधिक ध्यान कीजिए। आप सुन्दर स्वास्थ्य तथा आन्तरिक शान्ति का उपभोग करेंगे।

१२. अपने आवेगों का शिकार न बनिए। उन पर शासन कीजिए। उनका दमन कीजिए। उनके द्वारा स्वयं शासित न बनिए। जिस मनुष्य ने अपने आवेगों पर विजय पा ली है, वह शान्त मनुष्य है। वही वास्तव में बलवान् मनुष्य है।

१३. शक्ति, पद तथा धन के लिए घृणा, संघर्ष तथा लोभ का परित्याग कीजिए। नम्रता का मुकुट पहनिए। शुद्ध तथा सुखी बनिए। ईश्वर में अपनी श्रद्धा का निर्माण कीजिए। जप तथा ध्यान में स्थिर बनिए। प्रेम तथा ज्योति प्राप्त कीजिए।

१४. किसी व्रत के लेने पर अपने जीवन की बाजी लगा कर भी उसका पालन कीजिए। आपका गला ही क्यों न कट जाये, आप जीवित ही क्यों न जला दिये जायें, अपने व्रत से कदापि न डिगिए।

१५. यदि संकल्प-पालन में विफलता हो, तो पुनः संकल्प कीजिए। जिस तरह शिशु कई बार गिर कर ही चलना सीखता है, उसी प्रकार साधक भी अपने संकल्पों में कई बार विफल होते हैं। उन्हें बारम्बार प्रयास करना होगा। अन्ततः वे विजयी हो जायेंगे।

१६. यदि आप कुछ ईर्ष्यालु व्यक्तियों की आलोचना के कारण जन-सेवा का त्याग करेंगे, तो यह आपके लिए महान् क्षति होगी। आपकी आध्यात्मिक उन्नति पर गहरा आघात पड़ेगा। समालोचना का सामना करने के लिए आपमें नैतिक बल होना चाहिए। श्री राम तथा पाँच पाण्डवों ने जितना कष्ट सहन किया, उसके सामने आपका कष्ट तो कुछ भी नहीं है। अब तो अपना पुरुषत्व, नैतिक साहस तथा आध्यात्मिक बल दिखाइए। ध्यान के द्वारा जो आपने आन्तरिक बल प्राप्त किया है, उसकी परीक्षा अब हो रही है। क्या आपने वास्तव में गम्भीर ध्यान किया है, आपको अब तक पर्याप्त बल प्राप्त होना चाहिए था जिससे आप इन कठिनाइयों को मुस्कराते हुए सहन कर सकें। यदि आपमें बल नहीं है, तो इसका अर्थ है कि ध्यान में कुछ त्रुटि रह गयी थी। वास्तविक ध्यान प्रचुर आन्तरिक शक्ति प्रदान करता है।

१७. सेवा कीजिए तथा प्रेम कीजिए। दीजिए तथा त्यागिए। सहन कीजिए तथा तितिक्षु बनिए। दमन कीजिए। क्षमा कीजिए तथा भूल जाइए। यथा-व्यवस्था का गुण रखिए। प्रयास तथा प्रयत्न कीजिए। शुभेच्छा रखिए तथा शुद्ध बनिए। मनन कीजिए तथा विचार कीजिए। ध्यान तथा साक्षात्कार कीजिए। आप कैवल्य प्राप्त करें।

५. साधक में माधुर्य

इस जगत् में मधुर लोग बहुत ही कम पाये जाते हैं। यद्यपि माधुर्य स्त्रियों का गुण है; फिर भी इसे स्त्रियों में भी पाना कठिन है। अधिकतर स्त्रियाँ कठोर हृदय वाली होती हैं।

उनकी वाणी अल्प समय के लिए ही मधुर मालूम पड़ती है। व्यापारी व्यक्ति, वकील, डाक्टर तथा वेश्या बाह्यतः मधुर दिखायी पडते हैं। यह स्वाभाविक, स्थायी, लाभकारी तथा दिव्य माधुर्य नहीं है। यह झूठा आडम्बर है। यह व्यावसायिक है।

वास्तव मे मधुर मनुष्य दिव्य है। वह दसरों से कुछ भी आशा नहीं रखता है। उसका स्वभाव मधुर होता है। अपने माधुर्य के द्वारा वह दूसरों में सुख का संचार करता है।

माधुर्य सत्त्व से उत्पन्न होता है। दीर्घकालीन योगाभ्यास के अनन्तर रज-तम के दूर हो जाने पर माधुर्य ही अवशेष रहता है। यह सत्त्व का ही सारांश है। यह सिद्ध पुरुष से निसृत सुरभि है। यह तप, अनुशासन, योग तथा समाधि से प्राप्त आत्मिक सुगन्धि है।

आध्यात्मिक प्रचारक तथा जन-सेवक में माधुर्य का गुण होना आवश्यक है। इस सद्गुण के बिना कोई भी प्रचारक ठोस काम नहीं कर सकता है। जो मठ, आश्रम आदि की स्थापना करना चाहता है, उसे इस दिव्य सद्गुण को अवश्य ही रखना चाहिए।

योगाग्नि की घरिया में राजसिक अहंकार को गला डालना चाहिए, तभी यह स्वर्णिम

माधुर्य विभासित होगा। रजस् को मथ कर निकाल फेंकना चाहिए। तब सात्त्विक मन के तल पर माधुर्य का मक्खन उतराने लगेगा। वाणी में मधुर बनिए। आचार में मधुर बनिए। चाल-ढाल में मधुर बनिए। कीर्तन गाने में मधुर बनिए। भाषण देने में मधुर बनिए। दूसरों की सेवा में मधुर बनिए। इससे आपका माधुर्य बढ़ेगा।

सेवा, आत्म-संयम, मौन, प्रार्थना, प्राणायाम, ध्यान, अन्तर्निरीक्षण, आत्म-विश्लेषण तथा क्रोध-दमन के द्वारा माधुर्य का विकास कीजिए।

माधुर्य राधा-तत्त्व है। माधुर्य के द्वारा ही राधा के हृदय का निर्माण हुआ है। सत्य, प्रेम, सच्चाई, विश्व-प्रेम तथा लज्जा-ये सभी माधुर्य के ही विभिन्न रूप हैं। इन सात्त्विक गुणों का ही अनुपम योग माधुर्य है। इससें असीम शक्ति है।

तर्कशील, असहिष्णु, अधीर, घमण्डी, झगड़ालू तथा दोषान्वेषी व्यक्ति माधुर्य का विकास नहीं कर सकता है।

ब्रह्म की जय, जो माधुर्य-सागर है!

६. साधकों के लिए आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन

विश्वात्म-भावना आत्म-साक्षात्कार के लिए प्रथम कदम है। यह जीव की वैयक्तिक स्वतन्त्रता में बाधक नहीं है। इसका अभिप्राय है स्वार्थपरक कामनाओं तथा आवेगों का अतिक्रमण करना। इसका अर्थ है व्यक्तित्व के हानिकर प्रभावों का निषेध करना।

भौतिक पदार्थ उन व्यक्तियों को प्रदान कीजिए जिन्हें उनकी आवश्यकता है। इस प्रकार ही उन्हें ईश्वरार्पित किया जा सकता है। हम भौतिक पदार्थों को ईश्वर के प्रति इसलिए अर्पित नहीं करते हैं कि ईश्वर को उनकी आवश्यकता है, वरन् इसलिए कि हम अपने अहंभाव का निषेध कर पूर्ण आत्मार्पण की स्थिति प्राप्त कर लें।

आध्यात्मिक चैतन्य का विस्मरण अविद्या है। अपने प्रति स्वार्थपूर्ण प्रेम में ही अविद्या की जड़ छिपी हुई है। आत्मार्पण, सेवा, विचारशीलता, करुणा, सदाचार तथा भक्ति के द्वारा अहंकार-प्रधान स्वार्थ का निषेध करना ही ज्ञान है।

लोगों का मन घृणा तथा प्रतिकार की भावना से सन्तृप्त है। परन्तु यह भी बीत जायेगा। घृणा का प्रतिकार घृणा से नहीं किया जा सकता। यदि घृणा को घृणा से नष्ट करने का प्रयास किया जाये, तो यह अनन्त रूप से जारी रहेगा। यदि हृदय में इतनी शुद्धता नहीं कि क्षमा कर दिया जाये, तो एकमात्र विवेकपूर्ण तरीका है असहयोग करना। समय क्षमा का सन्देशवाहक है। समय पा कर घृणा दूर हो जायेगी।

अभिमानी न बनिए। दयालु, सच्चे तथा कारुणिक बनिए। मनन कीजिए तथा दमन कीजिए। अनुकूल बनिए। यथा-व्यवस्था का गुण रखिए। आपमें आध्यात्मिक चैतन्य दिनानुदिन विकसित होगा।

योगाभ्यास के द्वारा आपको अपनी अन्तस्थित प्रसुप्त शक्तियों तथा क्षमताओं को जाग्रत करना चाहिए। आपके अन्दर प्रचुर शक्तियाँ छिपी हुई हैं। साधारणतः नब्बे प्रतिशत शक्तियाँ सुप्त ही रह जाती हैं। इन्द्रिय-वृत्तियों का दमन कर इच्छा-शक्ति को विकसित कीजिए। धारणा का अभ्यास कीजिए। दिव्य गुणों का ध्यान कीजिए, जो आपके स्वरूप के ही अंग हैं। निम्न स्तर से चैतन्य को उच्च स्तर की ओर उन्नत कीजिए। ज्यों-ज्यों आपकी प्रगति होगी, त्यों-त्यों आपमें नयी शक्ति, नयी क्षमता तथा नये गुणों का विकास होगा। आत्म-दमन के द्वारा सारे भय का उन्मूलन हो जाता है, तब आप साहस तथा बल की प्रतिमूर्ति बन जायेंगे। तब आप अपनी परिस्थिति को परिवर्तित कर डालेंगे, दूसरों के जीवन में परिणति ला देंगे तथा रोगियों को स्वस्थ बना डालेंगे।

अन्तर्निरीक्षण तथा आत्म-विश्लेषण का अभ्यास कीजिए। दूसरों के भावों से यह समझ लीजिए कि आपमें कौन से दुर्गुण हैं तथा उन्हें दूर कीजिए। यह सत्य है कि आप हर व्यक्ति के इच्छानुसार नहीं बन सकते हैं; परन्तु फिर भी बुद्धिमानी इसी में है कि आप सामान्य जनता की राय का सम्मान करें।

बिना पूछे अपनी सम्मति न दीजिए। दूसरों की समालोचना करने से बचिए। आत्म-दमन कीजिए। अपने मित्र के दुर्गुणों को सीधे न कहिए।

काम, क्रोध, मद, लोभ तथा अहंकार से रहित जीवन ही दिव्य जीवन है। आत्मार्पण-भाव से युक्त हो कर शुद्धता तथा आध्यात्मिक ध्यानमय जीवन व्यतीत कीजिए। जाँच के समय, निराशापूर्ण परिस्थिति में ईश्वर में अविचलित श्रद्धा बनाये रखिए।

अन्तर्मुखी तथा ध्यानशील होना, एकान्तप्रियता, बाह्य वातावरणों से अलग रहना-ये आध्यात्मिक मार्ग के लिए आवश्यक आदर्श हैं। परन्तु इनके अपने दोष भी हैं। मनुष्य को सावधानीपूर्वक उन दोषों से बचना चाहिए। बहुत से लोग बाह्यतः अन्तर्मुखी है; परन्तु वे वास्तव में बहुत ही स्वार्थी, हठी तथा अभिमानी हैं। उनमें दानशीलता तथा निष्कामता लेशमात्र भी नहीं पायी जाती है। उनकी आध्यात्मिक प्राप्ति सन्देहास्पद ही है। उनका बाह्य धार्मिक प्रदर्शन स्नायु-दौर्बल्य के कारण हो सकता है। अतः मनुष्य को नम्रता, सेवा, अन्तर्निरीक्षण, आत्म-सुधार तथा शुभ-दर्शन के द्वारा दुर्गुणों का दमन करना चाहिए।

साधक को सदा निराशा के विरुद्ध संग्राम करना चाहिए। निराशापूर्ण विचार को तो स्थान ही नहीं मिलना चाहिए। हर वस्तु का उद्देश्य है। कठिनाइयाँ तथा विफलताएँ इसलिए आती हैं कि मनुष्य अपने जीवन के लक्ष्य के प्रति जागरूक रहे। जो दूसरों के उदाहरण से शिक्षा ग्रहण करता है, वह स्वयं अधिक कष्ट नहीं उठाता। भूलें स्वीकार कर लेनी चाहिए। उन्हें बनाये रखना स्वतः ही भारी भूल है। भूल से मनुष्य को और अधिक बुद्धिमान् बनना चाहिए तथा अधिकाधिक निश्चयपूर्वक ऐसी भूल का दमन करना चाहिए।

भ्रामक विषय-सुखों के लिए ही इन्द्रियों का तात्पर्य नहीं है, न तो मन का निर्माण भेद-भावना के सृजन के लिए ही हुआ है। मन तथा इन्द्रिय ईश्वर-साक्षात्कार के लिए हैं। यदि इनका दुरुपयोग किया गया, तो कष्ट भुगतना पड़ता है।

आध्यात्मिक चैतन्य के विकास में तीन बाधाएँ हैं—पहली है मल, दूसरी है विक्षेप तथा तीसरी है आवरण। स्वाध्याय, नाम जप तथा निष्काम सेवा द्वारा मल को दूर करना चाहिए। धारणा, आसन तथा प्राणायाम के द्वारा विक्षेप को दर करना चाहिए। आत्मा पर गम्भीर ध्यान के द्वारा आवरण को ध्वस्त करना चाहिए।

सम्यक् पुरुषार्थ के बिना संसार में कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। बिना सम्यक संकल्प के किसी भी साधना का श्रीगणेश नहीं हो सकता। अतः सत्य, शुद्धता तथा करुणा के मार्ग पर चलने के लिए संकल्प कीजिए। अपने विचार तथा कर्म में प्रगतिशील बनिए। सद्गुण, सदाचार तथा शुद्धता में प्रतिक्षण अग्रसर होते जाइए।

७. महान् सावधानी की आवश्यकता

मनुष्य के चरित्र-निर्माण में समाज का बड़ा हाथ है। मनुष्य अपने वातावरण, रीति-रिवाज तथा चाल-ढाल से बहुत ही प्रभावित होता है। वातावरण के द्वारा मनुष्य के विवेक, संकल्प तथा कर्तव्य-पालन में व्यवधान आ पड़ता है। मनुष्य अपने विचारों में शुद्ध तथा कर्तव्य-पालन में सच्चा हो सकता है; परन्तु फिर भी वातावरण के संकेतों के द्वारा वह सदाचार की ऊँचाई से गिर पड़ता है। वह भौतिकता के खड्डु में जा पड़ता है।

बहुत से साधक साधना के प्रारम्भ में ही ऐसा समझ बैठते हैं कि वे सभी बाधाओं को पार कर गये हैं। यह निरी मूर्खता है। किसी सिद्ध महात्मा से कुछ ही समय तक शिक्षा प्राप्त कर वे समझ बैठते हैं कि उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त हो गया है। वे संसार में पुनः प्रवेश करते हैं तथा साक्षात्कार प्राप्त महात्मा होने का स्वाँग रचते हैं। रोटी उनकी प्रमुख समस्या बन जाती है। वे कुछ काल तक गृहस्थों की सहायता प्राप्त करते हैं। उचित शिक्षा की कमी के कारण वे अल्प जाँच में भी खरे नहीं उतरते। कुछ लोग तो गृहस्थों की बातों में हाँ-में-हाँ मिलाना सीख लेते हैं। साधक! क्या आप साधना में सच्चे हैं? क्या आपको याद है कि आपने किसलिए समाज का परित्याग किया था? अतः छोटी-छोटी बातों में न पड़िए। यदि आपको कुछ प्राप्ति हुई भी है तो अभिमान न कीजिए। जब तक इन्द्रियों पर अधिकार प्राप्त न हो जाये, तब तक आप समाज में न जायें। जब तक दूसरे आपमें कामुकता की गन्ध पाते हैं, तब तक समाज में प्रवेश न करें। कीड़े को ज्यों-का-त्यों छोड़ दीजिए, तो वह कीड़ा ही बना रहता है; परन्तु यदि वह भ्रमर द्वारा बारम्बार दंशित होता है तो वह भ्रमर में ही परिणत हो जाता है। आपने लिंग-वृत्ति का भले ही दमन कर लिया है; परन्तु जिनके साथ आप मिलते हैं, वे आपको वैसा नहीं समझते। वे आपमें लिंग पाते हैं। कुछ तो आपको अपने जैसा समझ बैठते हैं तथा आपमें उन वृत्तियों का परिपोषण करने लगते हैं। आपमें पुनः लिंगाभिमान की उत्पत्ति हो जाती है। आप पतित हो जाते हैं!

साधना-सम्पन्न बनिए। यत्र-तत्र न दौड़िए। अविचल स्थिर रहिए। जहाँ हैं, वहीं रहिए। मन की महान् शान्ति को प्राप्त कीजिए। आध्यात्मिक स्पन्दनों का सृजन कीजिए। आप सक्रिय योगी बनें!

८. आध्यात्मिक प्रेरणा

आप बहुमूल्य मुक्ता हैं। आप नवीन पुष्प हैं। सावधान ! अपनी शुद्ध सुगन्धि को सुरक्षित रखिए। विशुद्ध रूप में इस पुष्प को ईश्वर पर अर्पित कर डालिए। आध्यात्मिक साधना ही आपका प्रमुख कर्तव्य है। अन्य सारी बातें पतन के लिए ही हैं। निम्न प्रकृति के धोखों से सावधान ! माया आध्यात्मिक उन्नति का स्वाँग रच कर मनुष्य को गिरा दिया करती है।

मैं आपकी भलाई के लिए ही कह रहा हूँ। मुझे आपकी सफलता की कामना है। मैं आपको आध्यात्मिक महापुरुष के रूप में देखना चाहता हूँ। उन तुच्छ मोहों को ठुकरा दीजिए। परम ईश्वरीय गुरु से बल प्राप्त कीजिए। दृढ़ संकल्प हो कर अपने जीवन के परम लक्ष्य की ओर अपनी दृष्टि फेरिए। आध्यात्मिक मार्ग में आगे बढ़ते जाइए। प्रलोभनों में न फँसिए। बन्धनों को तोड़ कर निम्न प्रभावों से मुक्त हो जाइए।

जब कभी भी आपमें क्रोध का समावेश हो, तो मौन हो जाइए तथा अवकाश के समय सोचिए कि यह क्रोध कितना निरर्थक है। इससे किसी को लाभ नहीं होता। यह सभी को दुःख ही देता है। बारम्बार सोचिए। क्रोध की परम मूर्खता पर हँसिए।

आपको इस जीवन में महान् कार्य करना है। आपका आदर्श भिन्न है। कभी भी दुर्बल भावना को प्रश्रय न दीजिए। सदा विवेकी बनिए। आप सभी प्रलोभनों से बच जायेंगे। हर क्षण सत्य-असत्य, भला-बुरा और शुद्ध-अशुद्ध के बीच विवेक कीजिए। आप सुरक्षित रहेंगे। इससे आप सावधान रहेंगे।

धारणा करते समय आपमें जरा भी तनाव नहीं होना चाहिए। धारणा अथवा त्राटक करते समय शान्त तथा शिथिल रहिए। यदि आप तनाव में रहेंगे, तो उल्टा प्रभाव पड़ेगा। आपके स्नायु और उत्तेजित हो जायेंगे।

एक निश्चित विचार की पृष्ठभूमि बनाये रखिए। जब कभी बुरा विचार घुसे, तो तत्क्षण इसी पृष्ठभूमि में लौट आइए। ॐ, इष्टदेवता अथवा अद्वैतिक विचार-प्रवाह को पृष्ठभूमि बना सकते हैं।

आध्यात्मिक साधक में उदार बुद्धि होनी चाहिए। वह दूसरों के दोषों को न देखे। प्रसन्नतापूर्ण धैर्य ही उदार हृदय का लक्षण है। साधक में सन्तोष तथा सहनशीलता के विशेष गुण होने चाहिए।

झूठ बोलने की आदत को इस प्रकार दर कीजिए। झूठ बोलने के कुछ समय बाद ही उस व्यक्ति के पास जा कर कह डालिए तथा उसके लिए क्षमा माँगिए। इस आदत को बनाये रखिए।

मन बहुत बड़ा सन्ताप दायक है। जब कभी मन आपको अपनी चालों में फँसाना चाहे, तो आप उन महात्माओं को याद कीजिए जिन्हें मन के साथ घोर संग्राम करना पड़ा था। मानसिक जप से मन शीघ्र शान्त हो जायेगा। साधक के संग्राम में मानसिक जप बहुत बड़ा अवलम्ब है। इससे साधक महान्-से-महान् जाँचों में खरा रह सकता है।

जो-कुछ भी साधना आप करें, उसमें अधिकाधिक शान्त रहें। उसके विषय में बातें न करें। आपकी साधना दूसरों को ज्ञात नहीं होनी चाहिए। विशेष पूजा, जप, पुरश्चरण तथा ध्यान का विज्ञापन न कीजिए। साधक की आन्तरिक साधना अज्ञात ही रहनी चाहिए।

सैकड़ों बार विश्वास करना तथा सैकड़ों बार धोखा खाना सर्वथा विश्वासहीन होने के कहीं अच्छा है; क्योंकि मानवीय प्रकृति में अविश्वास करने वाला व्यक्ति अन्ततः पागल हो जायेगा।

कर्मयोगी को बहुत ही मिलनसार, प्रिय, प्रसन्नमुख तथा मृदुभाषी होना चाहिए। उसे अहर्निश सेवा करनी चाहिए। यह तो ठीक है, परन्तु क्या इसी भावना को विपरीत लिंगों के साथ भी रखना चाहिए? स्त्रियों से सावधान रहिए।

आप निष्काम सेवी हैं। आपमें मिलनसारिता होनी चाहिए। परन्तु आप साधक हैं। ब्रह्मचारी हैं। आपका आदर्श संन्यास है। सदा इसका ध्यान रखिए। साधक को स्त्रियों से कुछ भी काम नहीं है। यदि उसे उनकी सेवा करना अनिवार्य ही हो जाये, तो वैयक्तिक सम्पर्क कम-से-कम रखना चाहिए।

आपको जानना चाहिए कि स्त्री अचिंत्य माया-शक्ति है जिसका एकमात्र उद्देश्य है भ्रमित करना, मोह में डालना। सोना अथवा धन मनुष्य के हाथ में आने पर ही मोहित करता है, परन्तु स्त्री तो दूर से ही मोहित कर लेती है। निःसन्देह वे देवी तथा माताएँ हैं। यह उस व्यक्ति के लिए सत्य है जिसने ऐसी दृष्टि प्राप्त कर ली है। यह आपके लिए नहीं है। अग्नि के ताप से आप दूर रह कर लाभ उठा सकते हैं; परन्तु निकट आने से आप जल ही जायेंगे। याद रखिए तथा सावधान रहिए।

सभी वस्तुएँ दिव्य हैं तथा सभी में कुछ-न-कुछ ईश्वरत्व का आविर्भाव है। परन्तु जब भगवान् कहते हैं, 'सरसामस्मि सागरः'- मैं जलाशयों में सागर हूँ, तो इसका यह अर्थ नहीं है कि आप सागर में कूद कर मर जायें। अतः गुरु तथा ऋषियों के उपदेशों का विवेकशील हो कर पालन करना चाहिए। वे कहते हैं, "सभी की सेवा करो, सभी से प्रेम करो, सभी को गले लगाओ।" परन्तु वे यह भी कहते हैं कि ब्रह्मचारी को स्वप्न में भी सी का चिन्तन नहीं करना चाहिए।

स्त्री के द्वारा विचित्र सम्मोहन शक्ति का सृजन होता है। यह अनिर्वचनीय तथा आपत्तिजनक है। मनुष्य कितना भी बुद्धिमान् तथा सबल मानस का क्यों न हो, यहाँ वह अशक्त हो जाता है। स्त्री के सम्बन्ध में सेवा का विचार न रखिए। ऐसे संयोग उपस्थित हो सकते हैं जिनसे आपको पतित हो जाना पड़े। सदा कर्मयोगी बने रहिए। सदा साधक बने रहिए। इस तरह आप संन्यास के आदर्श का पालन कर सकेंगे।

मेरी सलाह को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण कीजिए। आपको पछताना नहीं पड़ेगा। जहाँ भूमि खतरनाक तथा ढालदार है, वहाँ सावधानीपूर्वक चलिए। आप सम्पूर्ण सुख प्राप्त करें! आप सर्वव्यापक प्रभु का साक्षात्कार करें !

९. साधना और समाधि

आध्यात्मिक मार्ग में पदार्पण कीजिए। डरिए नहीं। आगे बढ़ते जाइए। आध्यात्मिक मार्ग में निराशा के लिए कोई भी स्थान नहीं है। उन्नति धीमी हो सकती है; परन्तु आप निश्चय की लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे। आपका जन्म इसीलिए हुआ है। सफलता निश्चित है। एक मिनट का प्रयास भी व्यर्थ नहीं जाता। भगवान् की प्रतिज्ञा को याद कीजिए- "कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।" पुनश्च, "न हि कल्याणकृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।"

शान्तिपूर्वक अभ्यास करते जाइए। अभ्यास तथा वैराग्य में नियमित रहिए। उनसे आप प्रकाश तथा आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लेंगे। अपने अन्तर्वासी परमात्मा में दृढ़ विश्वास रखिए।

किसी भी वस्तु में बुराई न देखिए। इस जगत् में सर्वत्र ही अपूर्णता है। इस विश्व के कोने-कोने में दोष भरा हुआ है। परन्तु इसके अन्तस्तल में ईश्वर-ही-ईश्वर है। वही एकमात्र सत्य है। दूसरों के दोषों को न देखिए। पहले अपने दोषों को सुधारिए। सदा विचार कीजिए- "हाँ, यह भला आदमी है। मैं उसके कर्म को पसन्द भले ही न करूँ; परन्तु वास्तव में वह भला ही कर रहा है। मुझे निश्चय है कि उसकी भावना अच्छी है।" इस तरह दूसरों के कर्म में सदा सद्भावना को ही देखिए।

आप अपने दोषों को भले ही याद न करें; परन्तु अपने दोष को स्वीकार कर लेना आपका कर्तव्य है। आप स्वयं अपने चित्त की शैतानी को नहीं जान पाते। यह सभी प्रकार की गलतियों को कर बैठता है: परन्तु करता है चालाकी के साथ। आप इसके विषय में कुछ नहीं जानते। यदि आप जानते भी हैं. तो यह आपको इस तरह चक्कर में डाल देता है कि आप समझने लगते हैं कि मानो आप मन के मालिक ही हैं। इस तरह कदापि न सोचिए। यदि कोई आदमी आपकी भूल की ओर इंगित करे, तो कदापि क्रोधित न होइए। इस अहंकार को विनष्ट करने का प्रयास कीजिए।

सभी प्राणियों का आदर करने के गुण का विकास कीजिए। पाप से घृणा कीजिए, पापी से नहीं। दूसरों का आदर करने से आपमें गम्भीरता आयेगी। इससे आपको महान् लाभ प्राप्त होगा। यदि आप इसका अभ्यास करें, तो इसके फल का आप साक्षात्कार करेंगे।

कितने भी व्यस्त आप क्यों न हों, स्वाध्याय के लिए कुछ समय अवश्य निकाल लीजिए। यदि आप विशेष अवकाश की प्रतीक्षा करेंगे, तो आप कदापि अध्ययन न कर पायेंगे। समुद्र में स्नान करने वाले को लहरों के स्तब्ध होने की कदापि प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए।

योगासन तथा प्राणायाम के अभ्यास में नियमित बनिए। शरीर को अधिक कष्ट कदापि न दीजिए; अन्यथा यह शरीर, जो आपका सहायक है, कमजोर तथा क्षीण हो जायेगा। यह शरीर असाध्य बीमारियों का घर बन जायेगा। इसको समझ लीजिए कि वैराग्य आन्तरिक स्थिति है, बाह्य प्रदर्शन नहीं। ऐसा न सोचिए कि शारीरिक आराम पर ध्यान देने से आप देहाध्यास को दूर नहीं कर सकेंगे। विषयों की तृष्णा ही बन्धन का कारण बनती है, आवश्यक वस्तुओं का सेवन बन्धन का कारण नहीं है।

साधना द्वारा आपमें अधिक प्रसन्नता, सुख, समत्व, शान्ति, सन्तोष, आनन्द, वैराग्य, निर्भयता, करुणा, विवेक, मनन, साहस, असंगता, अक्रोध, निरहंकारिता, निष्कामता, अनासक्ति आदि का विकास होना चाहिए। साधना से आपको सम्पन्न आन्तरिक जीवन, एकाग्र मन तथा शम की प्राप्ति होनी चाहिए। ये ही आध्यात्मिक उन्नति के लक्षण हैं। दर्शन, ज्योति, अनाहत नाद, दिव्य गन्ध आदि आध्यात्मिक उन्नति के परिलक्षक नहीं हैं। इनका उतना महत्त्व नहीं है, यद्यपि इनसे यह परिलक्षित होता है कि एकाग्रता की प्रथम भूमिका प्राप्त हो गयी है।

साधक कुछ ज्योति-दर्शन, अनाहत ध्वनि-श्रवण तथा दिव्य गन्ध के अनुभव कर लेने पर ऐसा सोच बैठते हैं कि वे सविकल्प समाधि प्राप्त कर चुके हैं तथा अब निर्विकल्प समाधि ही बाकी रह गयी है। यह भारी भूल है। समाधि सरल वस्तु नहीं है। समाधि के लिए आधार का पूर्ण संशोधन होना चाहिए। कुछ समाधि-प्राप्ति का ढोंग करते हैं; परन्तु वे भारी ठग हैं। लाखों में कोई एक ही समाधि प्राप्त कर सकता है। यदि आपने सदाचार, नैतिक गुण, विवेक तथा वैराग्य हैं तो आप भी समस्त संसार को शुद्ध बना सकते हैं।

प्रिय सौम्य ! ईश्वर-कृपा की प्राप्ति के अधिकारी बनिए ! सदा सुखी रहिए! ईश्वा आपको परम सुख प्रदान करे ! आपको आत्मज्ञान की प्राप्ति हो! आपको आध्यात्मिक ज्योति प्राप्त हो! आप समाधि तथा आध्यात्मिक सुख में संस्थित बनें!

१०. कुछ आध्यात्मिक 'निषेध'

ईश्वर को न भूलिए।
पराये धन का लोभ न कीजिए।
दूसरों की निन्दा न कीजिए।
सेवकों पर निर्भर न बनिए।

मन तथा इन्द्रियों के आदेश को न मानिए।
विषय-विचारों में न पड़िए। सिनेमा न देखिए।
उपन्यास तथा समाचार पत्र न पढ़िए।

अश्लील शब्द न बोलिए।
धूम्रपान तथा मदिरापान न कीजिए।
झूठ न बोलिए,
अधिक न बोलिए। एक पल भी व्यर्थ न खोइए।

अत्याचार न कीजिए।
दूसरों को अप्रसन्न न कीजिए।
तिल का ताड़ न बनाइए।
वीर्य का अपव्यय न कीजिए।
भविष्य के लिए योजना न बनाइए।
प्रतिकार कदापि न कीजिए।

११. साधना तथा गुरु (१)

एक गुरु तथा साधना की एक विधि में परायण होना बहुत ही आवश्यक है। कृपया गौतम तथा सत्यकाम जाबाल की कहानी सुनिए।

सच्चा ब्राह्मण वही है जिसमें ईश्वर-साक्षात्कार की पिपासा हो, जो सत्यवादी हो, जिसकी वाणी उसके विचार के अनुकूल हो तथा जिसके कर्म उसकी वाणी के अनुरूप हों। साधारणतः आप जगत् में पूर्ण विषमता पायेंगे। मनुष्य विचारते हैं एक प्रकार से, बोलते हैं दूसरे प्रकार से तथा करते हैं तीसरे प्रकार से। विचार, वाणी तथा कर्म एक-दूसरे से सहमत होने चाहिए, तभी मनुष्य आध्यात्मिक मार्ग में प्रवेश कर सकता है।

गौतम एक तपस्वी ब्राह्मण थे। उनके पास सत्यकाम जाबाल नामक शिष्य था। सत्यकाम ज्ञानार्जन के लिए गुरु के पास गया। गौतम ने क्या किया? उन्होंने सत्यकाम को चार सौ गायें दे दीं तथा कहा, "जंगल में जाओ, जब ये चार सौ गायें एक हजार हो जायें, तो लौट आना।" सत्यकाम ने गुरु के आदेश का अक्षरशः पालन किया।

आज हम देखते हैं कि साधक गुरु के पास जाता है, कुछ काल तक साधना करता है; परन्तु शीघ्र ही अपने गुरु तथा साधना की विधि को बदल डालता है। वह अधीर है। वह थोड़ा कीर्तन तथा जप करता है और सिद्धि-प्राप्ति की अपेक्षा करने लगता है।

मैं चेतावनी देता हूँ कि जो सिद्धियों का पिपासु है, वह आत्म-साक्षात्कार के लक्ष्य से दूर है। आध्यात्मिक मार्ग क्षुरे की धार के समान है तथा सिद्धियाँ पतन का कारण सिद्ध होंगीं। नया साधक इन सिद्धियों का दुरुपयोग कर बैठेगा। जो योग में स्थित है, वह कदापि सिद्धियों का दुरुपयोग नहीं कर सकता।

सत्यकाम बहुत ही धैर्यवान् था। वह उन चार सौ गायों के एक हजार की संख्या तक बढ़ जाने तक जंगल में ही रहा। पुरस्कार-स्वरूप माता प्रकृति ने स्वयं उसको दीक्षा दी। वनदेवों ने उसकी सहायता की। उसने जंगल में ही ब्रह्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लिया। जब वह गुरु के पास वापस पहुँचा, तो गुरु आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने उससे कहा, "मैं तुम्हारे मुख पर ब्रह्मवर्चस् देख रहा हूँ।" देखिए, सत्यकाम में कितना धैर्य था! आध्यात्मिक साक्षात्कार के लिए धैर्य अनिवार्य है। वास्तविक साधक को सिद्धियों का विषवत् त्याग कर डालना चाहिए। उसे ऐसा संकल्प कर लेना चाहिए- "मुझे गुरु के आदेश का पूर्णतः पालन करना चाहिए। यही मेरा कर्तव्य है।" उसे धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करनी चाहिए।

साधक गुरु-सेवा द्वारा शीघ्र ही शुद्धता प्राप्त कर लेता है। आजकल कोई भी गुरु-सेवा नहीं करना चाहता। शिष्यगण गुरु की बात कुछ समय तक सुनते हैं, परन्तु उसे आचरण में लाने का प्रयास नहीं करते। वे गुरु के साथ मिल कर काम करना नहीं चाहते। आजकल शिष्यों में गुरु के प्रति आदर का भाव नहीं है।

१२. साधना तथा गुरु (२)

साधना, योगाभ्यास तथा आध्यात्मिक जीवन-सम्बन्धी सूक्ष्म तत्त्वों को मनुष्य उस व्यक्ति से सीख सकता है जिसने आध्यात्मिक मार्ग में काफी दूरी तय कर ली है। यदि आपको इनका ज्ञान प्राप्त करना है, तो सर्वप्रथम आप इस ज्ञान की आवश्यकता को ठीक से समझ लीजिए। गुरु आपमें इस ज्ञान की चेतना को जाग्रत करता है तथा प्रशिक्षण देता है।

स्वरूपतः मनुष्य शुद्ध, बुद्ध तथा मुक्त आत्मा है; परन्तु उसने अपने स्वरूप का विस्मरण कर दिया है। गुरु ही उसे उसके स्वरूप की याद दिलाता है। गुरु तथा शिष्य के बीच पारस्परिक सहमति होनी चाहिए, तभी गुरु की शिक्षा शिष्य के जीवन में उतर सकती है।

ईश्वर ने प्रकृति की रचना इस प्रकार की है कि वह मनुष्य के लिए गुरु का काम करती है। यदि मनुष्य में सम्यक् रूप से ग्रहण करने की क्षमता है, तो वह प्रकृति तथा समस्त जगत् से बहुमूल्य शिक्षा ग्रहण कर सकता है।

विद्युत्-प्रवाह के द्वारा काष्ठ को चुम्बकीय नहीं बनाया जा सकता; परन्तु लोहा शीघ्र ही चुम्बकीय गुण ग्रहण कर लेता है। ठीक उसी प्रकार अधिकारी शिष्य शीघ्र ही आध्यात्मिक उन्नति करता है; परन्तु अनधिकारी शिष्य गुरु की शक्ति के होते हुए भी उससे लाभ नहीं उठा पाता। अधिकारी शिष्य प्रकृति रूपी गुरु से सर्वत्र शिक्षा ग्रहण करता है।

आपको भागवत के एकादश स्कन्ध में वर्णित अवधूत की कहानी मालूम ही है। अवधूत दत्तात्रेय ने प्रकृति की विविध वस्तुओं से शिक्षाएँ प्राप्त कीं।

आध्यात्मिक उपदेशों का मनुष्य के ऊपर प्रभाव क्यों नहीं पड़ता ? कल्पना कीजिए कि किसी वाटिका में सुमधुर फल लगे हुए हैं। चार या पाँच मनुष्य उन फलों का सेवन करते हैं। एक मनुष्य आध्यात्मिक रुचि वाला है। वह फल का सेवन कर नित्य जप तथा उपासना करता है, स्वयं सात्त्विक शक्ति प्राप्त करता है तथा दूसरों में उसे विकीर्ण करता है। दूसरा पहलवान है। वह उसी फल को खा कर व्यायाम का अभ्यास करता है। शारीरिक विकास करता है, दौड़ता है, कूदता है, तैरता है। तीसरा पेटू है। वह उसी फल को खा कर सोता है। वह अपने लिए और न दूसरी के लिए किसी काम का होता है। चौथा व्यक्ति मन्दाग्नि से पीड़ित है। वह फल खाता है, परन्तु पचा नहीं पाता। एक ही बाग का फल है। एक के लिए सात्त्विक, दूसरे के लिए राजसिक, तीसरे के लिए तामसिक तथा चौथे के लिए वही दुःखद है।

दूसरा उदाहरण है। इस पर मनन कीजिए। त्योहार के दिन बहुत से लोग मन्दिर में उपस्थित होते हैं। वातावरण गम्भीर तथा प्रेरणात्मक होता है। सच्चा भक्त पूजा तथा भाव में मग्न हो जाता है। दम्भी जन बाह्य प्रदर्शन करते रहते हैं। जेब काटने वालों की दृष्टि लोगों की जेबों पर लगी रहती है। अतः सभी सत्संग में एक-समान ही लाभ नहीं उठा पाते। लोग सत्संग में जाते हैं। कुछ लोग तो उपदेश ग्रहण करते हैं, कुछ व्यर्थ की बातों को ही अपना लेते हैं, कुछ वक्ता का मजाक उड़ाते हैं और कुछ उसके भाषण का विरोध करते हैं।

आप सर्प को दूध पिलाइए। वह जहर में ही बदल जायेगा।

मनुष्य का मन घरेलू मक्खी के समान है। वह सदा निम्न वस्तुओं की ओर ही दौड़ती है। मक्खी किसी मधुर वस्तु पर कुछ क्षण के लिए बैठेगी, फिर वह गन्दगी के ढेर पर जा बैठेगी। उसी तरह मन भी चंचल तथा निम्न स्वभाव वाला है।

मनुष्य बाह्यतः वीर जैसा मालूम पड़ता है; परन्तु अन्दर से कायर ही है। वह अहिंसा का व्रत लेता है; परन्तु उसमें अहिंसा नहीं रहती। यदि आपके हाथ पर मच्छर बैठे, तो आप बड़ी वीरतापूर्वक उसे कुचल डालेंगे। यह कितना सरल है। परन्तु यदि बिच्छू आपके पास आये, तो यह साहस आपमें नहीं रहता। यहाँ मनुष्य कायरता प्रकट करता है। अतः उसे सदा नम्र रहना चाहिए। उसे छोटी-छोटी वस्तुओं से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। वह सदा शिक्षा ग्रहण करने के लिए तैयार रहे। घरेलू मक्खी न बनिए जो कूड़े-करकट पर ही बैठना पसन्द करती है। मधुमक्खी की भाँति बनिए जो पुष्पों पर बैठ कर मधु ग्रहण करना ही पसन्द करती है।

१३. पुराणों में पथ-प्रदर्शन

पुराणों में अनेकानेक आध्यात्मिक रहस्य छिपे हुए हैं। आजकल लोग पुराणों के रहस्य को न समझ कर उन्हें व्यर्थ मानने लगे हैं; परन्तु निम्नांकित उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जायेगा कि उनमें महान् आध्यात्मिक तथ्य छिपे हुए हैं जिनसे मनुष्य परम लाभ प्राप्त कर सकता है।

दश अवतारों का ही उदाहरण लीजिए। उसमें साधक की आध्यात्मिक उन्नति का सारांश निहित है।

मत्स्यावतार से साधना का उद्घाटन होता है। मत्स्य-रूप से भगवान् सागर-तल से वेदों को ऊपर लाते हैं। वेद मानव जीवन के लक्ष्य का सम्यक् ज्ञान कराते हैं। यह ज्ञान अज्ञान-सागर में छिपा हुआ है। इसका उद्धार करना चाहिए। साधक के जीवन में यह प्रथम कदम है। यह ज्ञान धरातल पर आता है। यह मनुष्य का प्रथम जागरण है। मत्स्यावतार इसी का प्रतीक है। जीवन-लक्ष्य की चेतना अविद्या की गहराइयों से ऊपर आती है।

परन्तु अन्धकार की शक्तियाँ साधक को आगे बढ़ने नहीं देतीं। तब भले-बुरे में आन्तरिक संग्राम छिड़ जाता है। यही देवासुर संग्राम है जिसके लिए कूर्मावतार होता है। इस अवस्था में मन्थन की क्रिया साधक के लिए आवश्यक है। मन्थन के द्वारा अमृत की प्राप्ति होती है; परन्तु साथ ही में कालकूट का भी सामना करना होता है।

मनुष्य की प्रकृति की कुछ निम्न वस्तुएँ ऊपरी तल पर न आ कर नीचे अन्तस्तल में चली जाती हैं। निम्न प्रकृति के तत्त्व मनुष्य के चित्त में गहरे गड़ जाते हैं। साधक को उन्हें नष्ट करना होगा। उसे अन्दर घुस कर उनका हनन करना होगा। पुराणों में उसे हिरण्याक्ष बतलाया गया है। वाराह भगवान् ने पृथ्वी के भीतर प्रवेश कर हिरण्याक्ष को मारा था। ठीक उसी तरह आत्म-विश्लेषण के द्वारा चित्त में गम्भीर प्रवेश कर मन से काम, क्रोधादि सुप्त वासनाओं को विनष्ट करना होगा।

इसके पश्चात् महान् आन्तरिक संग्राम छिड़ जाता है। इस दैवी शक्ति के विरुद्ध मनुष्य की आसुरी प्रकृति विप्लव कर बैठती है। यह आसुरी प्रकृति हिरण्यकशिपु है। ईश्वरीय प्रकृति शिशु प्रह्लाद है। इस अवस्था में साधक आध्यात्मिक मार्ग में अभी शिशु ही है। अभी गम्भीर ज्ञान का अवतरण नहीं हुआ है। श्रद्धा, प्रेम तथा सतत प्रार्थना की ही अवस्था है। आसुरी अत्याचार के विरुद्ध भगवान् का अवतरण होता है। भगवान् द्विविध रूप में प्रकट होते हैं। यह रूप पूर्णतः ईश्वरीय नहीं है। उसके साथ-साथ भौतिक रूप सिंह का भी है। नृसिंह भगवान् गुरु-ईश्वर के प्रतीक हैं। सारे पशुओं में- क्योंकि सारे जीव पशु ही हैं गुरु सिंह-रूप है। गुरु ईश्वरीय भी है। यह गुरु नृसिंहावतार साधक का संरक्षण करता है। तब साधक आसुरी शक्तियों पर विजय पा लेता है।

पाप पराजित हो जाता है। साधक में धर्म का विकास होता है। इसके पश्चात् वामनावतार के लिए पथ-प्रशस्त हो जाता है। साधक शक्ति तथा सद्गुण का धनी बन जाता है। वह सम्राट् बलि के समान है। अभिमान घुस जाता है। शक्ति तथा सद्गुण के कारण साधक को आशातीत यश तथा ख्याति की प्राप्ति होती है। तब साधक के अभिमान को दूर करने के लिए भगवान् वामनावतार ग्रहण करते है। यह वामनावतार नम्रता है, क्योंकि नम्रता ही आध्यात्मिक अभिमान का सामना कर सकती है। साधक के अहकार का एक भाग इस शुभ कर्म में बाधा देना चाहता है; परन्तु नम्रता की ही विजय होती है। शुक्राचार्य की चालें नहीं चल पातीं; बलि पराजित होता है।

अब आध्यात्मिक जीवन एक निश्चित करवट बदलता है। प्रधान बाधाएँ अब बीत चलीं। अब साधक को प्रकृति से ही छुटकारा प्राप्त करना है। यही है परशुराम के द्वारा माता की हत्या। वह पुरुष- जमदग्नि के प्रति पूर्ण आत्मार्पण कर देता

है, जिससे ईश्वर की पूर्ण कृपा प्रवाहित हो सके। तदनन्तर परशुराम क्षत्रियों का संहार करते हैं। क्षत्रिय राजसी शक्ति के द्योतक हैं तथा राजसी शक्ति सारे कर्मों का आशय है। प्रकृति-चैतन्य से ऊपर उठ कर योगी अपने सारे कर्मों को आगामी तथा संचित कर्मों को विनष्ट कर डालता है। प्रारब्ध कर्म अभी बचा रहता है जो दशरथ तथा जनक के परिवार के रूप में प्रकट होता है। दशरथ दश इन्द्रिय का प्रतीक है, तो तीन स्त्रियाँ तीन गुणों से युक्त हैं तथा उनके चार पुत्र चार अन्तःकरण हैं। जनक पूर्णतः अनासक्त हो कर राज-कार्य करते हैं। यह ज्ञानी के लोक-संग्रह का प्रतीक है।

तदुपरान्त सुख तथा विजय का ही साम्राज्य है। सारी ईश्वरीय शक्तियाँ ज्ञानी के पास चली आती हैं। सम्पूर्ण देव-सेना - रामावतार की कपि-सेना उनके हाथ में है। एक सीढ़ी अभी बाकी है, वह है सविकल्प का अतिक्रमण कर उस धाम को प्राप्त करना जहाँ राम है। रामावतार इसका अतिक्रमण करता है- पुल निर्माण के अनन्तर रामराज्य की स्थापना होती है।

रामावतार के पश्चात् दूसरा अवतार है कृष्ण। यह जीवन्मुक्त अवस्था का परिचायक है। जीवन्मुक्त के लिए सब-कुछ लीला ही है। उसके लिए सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द है, सब दैवी लीला ही है। वह सहज ही समाधि की चेतना में स्थित रहता है।

बुद्धावतार-यह महान् जीवन की पराकाष्ठा है। यह चरम सन्ध्या है। बुद्ध अपनी किरणों को समेट बोधि-वृक्ष के नीचे निर्वाण में प्रवेश करते हैं। ज्ञानी परम अतीत ज्ञान-वृक्ष के नीचे निर्वाण में प्रवेश करता है तथा असीम के साथ एक हो कर अपने मूल धाम को लौट जाता है।

हाँ, अब कल्कि अवतार की बारी आती है। इसका क्या अर्थ है? इसका भी रहस्य है। जिस तरह सूर्य काले बादलों से मुक्त हो कर अपनी पूर्ण विभा में चमक उठता है, उसी तरह ज्ञानी का पूर्ण जीवन भी विभासित हो उठता है। यह ईश्वरीय शक्ति है जो अधर्म को नष्ट करती है। कल्कि अवतार सभी अधर्मों को विनष्ट कर ईश्वर के राज्य को संस्थापित करता है।

इस प्रकार दश अवतारों के रूप में जीवन के विकास को देखते हैं। मत्स्यावतार से जीवन का प्रथम प्रस्फुटन होता है तथा कल्कि अवतार से उसका विश्वात्म-विकास। यह तो उदाहरण के रूप में दिया गया है जिससे कि आप सभी पुराणों तथा शास्त्रों के गम्भीर उपदेशों को समझ सकें।

१४. श्री शंकराचार्य का साधना-पंचकम्

१. वेदों का नित्य-प्रति अध्ययन कीजिए। उनके आदेशानुसार कर्मों का पालन कीजिए। कर्मानुष्ठान के द्वारा ईश्वर की पूजा कीजिए तथा कर्म-फल को ईश्वर को अर्पित कर डालिए। सकाम कर्मों के प्रति कामना न रखिए। संसार के विषय-सुखों के दोषों का चिन्तन कीजिए। आत्म-साक्षात्कार की कामना में अटल रहिए। शीघ्र ही संसार-गृह का त्याग कीजिए।

२. ज्ञानियों का संग कीजिए। ईश्वर के प्रति दृढ़ निष्ठा रखिए। शान्ति आदि सद्गुणों का विकास कीजिए। तत्काल सकाम कर्मों का परित्याग कीजिए। सर्वोत्तम गुरु के पास जाइए। नित्य उसके चरण कमलों की सेवा कीजिए। ओंकार का ज्ञान प्राप्त कीजिए। उपनिषदों के महावाक्यों का श्रवण कीजिए।

३. महावाक्य के लक्ष्यार्थ का चिन्तन कीजिए। वेदान्त में आश्रय ग्रहण कीजिए। व्यर्थ विवादों से बचिए। श्रुतियों के अनुसार विचार कीजिए। 'अहं ब्रह्मास्मि' का अहर्निश विचार कीजिए। अहंकार को दूर कीजिए। आत्म-बुद्धि का निषेध कीजिए। आध्यात्मिक आचार्यों के साथ अनावश्यक बहस न कीजिए।

४. क्षुधा-व्याधि का उपचार कीजिए। औषधि के रूप में ही भिक्षा लीजिए। कभी भी स्वादिष्ट आहार न माँगिए। प्रारब्ध द्वारा जो कुछ भी मिल जाये, उसी में तृप्त रहिए। शीतोष्ण सहन कीजिए। व्यर्थ बातचीत का परित्याग कीजिए। उदासीन रहिए। जगत् के लोगों के प्रति करुणा तथा कटुता का परित्याग कीजिए।

५. एकान्त में सुखासन पर बैठिए। मन को परमात्मा में स्थिर कीजिए। परिपूर्ण ब्रह्म का साक्षात्कार कीजिए। आत्म-साक्षात्कार के पश्चात् जगत् विलुप्त हो जायेगा।
ज्ञान-शक्ति के द्वारा संचित कर्मों को आत्मा में विलीन कीजिए। वर्तमान कर्मों से जरा भी आसक्ति न रखिए। इस जीवन में प्रारब्ध का उपभोग कीजिए। प्रारब्धोपभोग के उपरान्त ब्रह्म में ही स्थित हो जाइए।ाम

जो इन पाँच श्लोकों का नित्य पाठ करते हैं तथा शान्त चित्त से इनके अर्थ का चिन्तन करते हैं, ब्रह्म की कृपा से उन्हें संसारानल से मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

अध्याय २१:साधकों के लिए प्रेरणात्मक स्वाध्याय

१. भौतिक शरीर तथा दिव्य जीवन

यह शरीर बुलबुला है। यह विद्युत् के समान है। यह जगत् दो दिनों का खेल है। आज इसका अवसान होता है। कल तक यह बना रहता है। इससे अधिक नहीं। जागो! जागो ! अमृत का अनुसन्धान करो। सच्चिदानन्द आत्मा में निवास करो।

दिव्य जीवन सत्य के नियमों पर आधारित परिपूर्ण जीवन है। दिव्य जीवन अमर जीवन है जिसमें आत्मा असीम एवं नित्य विकास को प्राप्त कर लेती है। यह सभी भूतों के एकमात्र लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार का साधन है। शान्ति, समता तथा समरसता ही दिव्य जीवन का लक्ष्य है।

२. दिव्य नाम का जप

ईश्वर के नाम का मौन-जप सभी व्याधियों के लिए सक्रिय महौषधि है। किसी भी परिस्थिति में एक दिन के लिए भी इसे बन्द नहीं करना चाहिए। यह आहार के समान है। यह क्षुधार्त आत्मा के लिए आध्यात्मिक आहार है।

३. मनुष्य तथा उसकी सीढ़ी

मनुष्य अपनी आशा से भी अधिक महान् है। वह नित्य तथा अमृत है। वह पूर्ण ज्ञान तथा अक्षय आनन्द है। उसको किसी भी वस्तु की कमी नहीं है। वह आप्तकाम है। वह परमानन्द है। यही परम सत्य है।

हर विफलता सफलता की सीढ़ी है। हर कठिनाई तथा निराशा आपकी श्रद्धा की जाँच है। हर व्याधि कर्म सम्बन्धी संशोधन है। हर दुःखद घटना आपकी ईश्वर-निष्ठा की जाँच है। हर प्रलोभन आपके आध्यात्मिक बल की परख है।

४. शान्ति, जीवन-लवण तथा संकीर्तन

जीवन का लवण है निष्काम सेवा। जीवन का अशन है विश्व-प्रेम। जीवन का जल है शुद्धता। जीवन का माधुर्य है भक्ति। जीवन की सुगन्धि है उदारता। जीवन का केन्द्र है ध्यान। जीवन का लक्ष्य है आत्म-साक्षात्कार।

संकीर्तन से बढ़ कर हृदय को कोमल बनाने वाला अन्य कोई साधन नहीं है। नास्तिकों तथा सारे प्रकार के पापियों के शुष्क हृदय को संकीर्तन द्रवीभूत बना देता है।

शान्ति ईश्वरीय गुण है। यह आत्मा का गुण है। लोभी व्यक्तियों के पास यह नहीं रहती। यह शुद्ध हृदय को परिपूरित करती है। यह कामी का परित्याग करती है। यह स्वार्थी जनों से दूर भागती है। अपने हृदय-प्रकोष्ठ में दृष्टि डालिए। परमात्मा में स्थित होने पर आप महान् शोक, क्षति तथा विफलता से भी विचलित नहीं हो सकेंगे। यह शान्ति आश्चर्यजनक है।

५. ज्ञानी, सुख तथा शक्ति

जिस तरह हिमालय तूफानों में अविचलित रहता है, उसी तरह ज्ञानी भी मानापमान, आदर-अनादर, लाभ-हानि, जय-पराजय से अविचलित रहता है।

वह मनुष्य सुखी है जो गुरु की देख-रेख में है। वह मनुष्य सुखी है जो गुरु की सेवा करता है तथा उसके निकट ध्यान करता है। जो गुरु की सेवा करता है, वह मार्ग जानता है। गुरु-कृपा के बिना मार्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती।

प्रेम भक्ति तथा आत्मार्पण के द्वारा ईश्वर के साथ योग प्राप्त करने का सबसे सरल मार्ग है। पूर्ण सच्चाई ही एकमेव शक्ति है जो आपको जीवन-लक्ष्य तक पहुँचाती है।

शक्तियों की शक्ति, जो मन को शक्ति प्रदान करता है; ज्योतियों की ज्योति, जो मन को ज्योतित करता है; द्रष्टाओं का द्रष्टा, जो मन की वृत्तियों तथा कार्य-व्यापारों का साक्षी है; आधारों का आधार, जिस पर मन सुषुप्ति में विश्राम करता है, वह ईश्वर ही है।

६. जीवन, द्रवित हृदय तथा ईश्वरीय कृपा

द्रवित हृदय, दानशील हाथ, सदय वाणी, सेवामय जीवन, समदृष्टि तथा निष्पक्ष भावना का अर्जन कीजिए। जाँच की घड़ियों में अपने मन को सदा शान्त बनाये रखिए।

ईश्वर आपके मन के उफानों का मूक अदृश्य श्रोता है। हर भोजन के समय ईश्वर आपका अदृश्य अतिथि है। ईश्वर आपके घर का मुखिया है। आप जो कुछ भी करते हैं, ईश्वर उसे देखता तथा सुनता है। ईश्वर में पूर्ण विश्वास रख कर सत्कर्म कीजिए।

जीवन बहुमूल्य वरदान है। ईश्वर-साक्षात्कार के लिए इसका सदुपयोग कीजिए।

भव्य आदर्श के बिना जीवन बिना पतवार की नौका है। मुमुक्षुत्व के बिना जीवन तो वनस्पति का ही जीवन है। ईश्वर के लिए जीओ तथा ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त करो।

अन्तरात्मा पर ध्यान के द्वारा मन पर विजय प्राप्त करना ही दिव्य जीवन का उपदेश है। सदाचार, आत्म-दमन, करुणा, उदारता, सत्य का अनुसन्धान, मानव-सेवा, ध्यान, आत्म-विचार यही दिव्य जीवन है।

७. मानवता, प्रेम तथा सज्जनता

एक ही जाति है मानव जाति। एक ही धर्म है- प्रेम का धर्म अथवा वेदान्त का धर्म। एक ही धर्म है-सत्य का धर्म। एक ही नियम है- कारण कार्य का नियम। एक ही भाषा है-हृदय की भाषा अथवा मौन की भाषा।

शिशुवत् होना अच्छा है; परन्तु शिशुपना रखना अच्छा नहीं है। भक्त बनना अच्छा है; परन्तु भावुक बनना अच्छा नहीं है। दृढ़ संकल्प रखना अच्छा है; परन्तु अलंबुद्धि अच्छा नहीं। अपने आदर्श पर अविचल रहना अच्छा है; परन्तु हठ करना अच्छा नहीं है। साहसी होना अच्छा है; परन्तु दूसरों के दोष को प्रकट करना अच्छा नहीं है।

प्रेम दिव्य है। प्रेम अमृत है। प्रेम इस पृथ्वी की सबसे बड़ी शक्ति है। प्रेम ही इस जगत् को रूपान्तरित कर सकता है। प्रेम ही इस पृथ्वी पर शान्ति ला सकता है। प्रेम ही दूसरों के हृदय पर विजय प्राप्त कर सकता है।

८. शुद्धता, मुमुक्षुत्व तथा साक्षात्कार

जिस तरह छोटा-सा बल्ब अत्यधिक विद्युत्-चाप को नहीं सह सकता, उसी तरह मन के मलिन रहने पर स्नायु तथा हृदय विश्वात्म-प्रवाह को सहन नहीं कर सकते। धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा कीजिए। उग्रतापूर्वक शुद्धता के मार्ग पर बढ़ते जाइए।

सत्संग से बढ़ कर कोई नौका नहीं है जो हमें संसार-सागर के दूसरे तट पर-निर्भयता तथा अमृतत्व के तट पर ले जाये।

आत्म-साक्षात्कार गुहावासियों का एकाधिकार नहीं है। बाह्य परिस्थितियाँ कभी-कभी सहायक हो सकती हैं; परन्तु आन्तरिक भाव ही सत्य वस्तु है। इसी भाव के द्वारा बाह्य परिस्थितियाँ भी सीमित हैं। आप स्वयं ही शोक एवं चिन्ता के जगत् का निर्माण करते हैं। कोई भी व्यक्ति उसे आपके ऊपर नहीं लादता।

आध्यात्मिक मुमुक्षुत्व से प्रदीप्त तथा भक्ति से सुरभित हृदय मनुष्य की अनुपम सम्पत्ति है। अतः निम्न प्रकृति को शुद्ध करने तथा परम सफलता की प्राप्ति के लिए कठिन प्रयत्न कीजिए।

९. साधना तथा शक्ति

ईश्वर जीवन, स्वास्थ्य, बल तथा शक्ति का उद्गम है। ईश्वर पर ध्यान करना ही सारी व्याधियों के लिए एकमेव महौषधि है। मांसपेशियों की शक्ति बढ़ाना आपका लक्ष्य नहीं है। रोग रहित रह कर अपनी साधना को जारी रखना ही आपका लक्ष्य है।

नित्य सुख ही मानव-प्रयास का एकमेव आदर्श है। जो ज्ञान के द्वारा शुद्ध है, जो शान्त है, जो अहंकार तथा ममता-रहित एवं आत्म-संयमी है, वही सारे पापों से मुक्त है।

शक्ति शिव का मार्ग है। मनुष्य माँ शक्ति के द्वारा जीवन के परम पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। उसकी कृपा की ओर दृष्टि रखिए। यहाँ तथा परलोक में सर्वत्र ही आपका कल्याण होगा।

१०. क्रोध, मन तथा आत्म-विजय

क्रोध अनात्म है। क्रोध शक्ति का अपव्यय कर मन को मलिन बनाता है। क्रोध पर विजय के द्वारा व्यक्ति आध्यात्मिक वीर बनता है। वह जीवन में सफलता तथा इस भूलोक में प्रतिक्षण सुख पाता है।

मन पर विजय ही मृत्यु पर विजय है। मशीनगन आदि से लड़े जाने वाले बाह्य युद्ध से भी मन के साथ आन्तरिक युद्ध अधिक भयंकर है। मन पर विजय पाना जगत् पर सैनिक विजय से भी अधिक कठिन है।

नैतिक शुद्धता, धारणा तथा ध्यान की प्राप्ति के लिए आपको मनोविज्ञान जानना होगा, मन की बुरी वृत्तियों को नष्ट करना होगा तथा उससे संग्राम छेड़ कर विजय प्राप्त करनी होगी।

प्रेम, सत्य तथा शुद्धता यही दिव्य जीवन के प्रासाद की नींव है। दिव्य जीवन रूपी मन्दिर के चार स्तम्भ हैं- ध्यान, शुद्धता, प्रेम तथा सदाचार। दिव्य जीवन यापन कीजिए तथा दिव्य बन जाइए।

११. करुणा, सत्संग तथा विवेक

विवेक तथा वैराग्य आत्मा के दो पंख हैं जिनसे आप आनन्द के असीम धाम की ओर उड़ कर जा सकते हैं। जो अपनी निम्नात्मा की मृत्यु प्राप्त करता है, वह अमर हो जाता है।

शुद्ध हृदय से ही दिव्य ज्योति विकीर्ण होती है। प्रार्थनाशील हृदय को ही ईश्वर-कृपा परिप्लावित करती है। कारुणिक हृदय ही ईश्वर का धाम है।

जिस तरह सलाई की एक तीली से ही कुछ ही क्षणों में रुई का ढेर भस्म हो जाता है, उसी तरह सत्संग से सारा अज्ञान अल्प काल में ही विदग्ध हो जाता है। यही कारण है कि शंकर आदि जनों ने सत्संग की महिमा का गान किया है।

भौतिक जगत् का जीवन आत्मज्ञान से प्राप्त नित्य जीवन के लिए तैयारी है। मृत्यु के बन्धन से जीवात्मा की मुक्ति ही मानव जीवन की सबसे बड़ी समस्या है।

जिस तरह एक लोहे से दूसरे लोहे को ढाला जाता है, उसी प्रकार शुद्ध मन से अशुद्ध मन को ढाला जाता है।

यदि विवेक-खड्ग से बहिर्मुखी चंचल मन को नष्ट कर दिया जाये, तो स्वयं-प्रकाश ब्रह्म का साक्षात्कार होगा।

१२. सत्य, वेदान्त तथा मानव-कल्याण

सत्य की ही विजय होती है, असत्य की कदापि नहीं। मिथ्या, विकल्प अथवा असत्य सफल नहीं हो सकते। सत्य ही शाश्वत है। ज्ञान-युक्त ध्यान से ही सत्य का साक्षात्कार होता है।

वेदान्त हर व्यक्ति से यही अपेक्षा रखता है कि वह मोह या स्वार्थी प्रेम तथा शरीर से राग को नष्ट कर शुद्ध, निरपेक्ष, विश्वात्म दिव्य प्रेम को विकसित करे। यह निराशावाद का प्रचार कदापि नहीं करता; अपितु यह आशावाद की पराकाष्ठा है।

अपनी आत्मा की महिमा का अनुभव कीजिए; तब प्रकृति आपकी आज्ञा का पालन करेगी तथा आप सभी तत्त्वों पर अपना शासन चला सकेंगे। अष्ट सिद्धियाँ तथा नौ ऋद्धियाँ आपके चरणों में लोटेंगी। वे हाथ जोड़ कर आपकी आज्ञा का अनुसरण करेंगी। यही वेदान्त का महान् उपदेश है।

जिस तरह कुत्ता गली में पड़ी हुई सूखी हड्डी को चबाते हुए परम सुख का अनुभव करता है। ऐसा करते समय कुत्ते के तालू से जो रुधिर निकलता है, वही उसके स्वाद का कारण है। उसी तरह सांसारिक व्यक्ति भी विषय पदार्थों में सुख की कल्पना कर लेते हैं। आप अपनी आत्मा में ही नित्य सुख, शान्ति तथा आनन्द को प्राप्त कर सकते हैं। वह आत्मा आपके अन्तरतम प्रकोष्ठ में अपनी सारी महिमा तथा ज्योति में विभासित है।

१३. अन्तर सुख तथा ईश्वर की सर्वव्यापकता

जल में तरंगों की उत्पत्ति होती है। वे जल पर ही आधारित रहती हैं तथा जल में ही विलीन हो जाती हैं। उसी तरह समस्त जगत् का एकमेव आधार ईश्वर ही है। इस तरह जान कर तथा भगवान् की सर्वव्यापकता का अनुभव कर ज्ञानी जन श्रद्धा एवं भक्ति के साथ सर्वत्र उसकी पूजा करते हैं। वह ब्रह्म सभी देश-काल में एक-समान ही है।

माला में बहुत से तरह-तरह के दाने लगे रहते हैं; परन्तु उन सभी को एक ही सूत्र सम्बन्धित करता है। वह सूत्र उसका आधार है। उसी तरह विभिन्न जीवों तथा जगत् में एक ही जीवन-सत्ता है- वह ब्रह्म है जो सभी का आधार है।

सुख अन्दर ही है। अपनी दृष्टि को आन्तरिक दिव्य ज्योति पर स्थिर कीजिए, वही सार्वभौमिक ज्योति का सारांश है, वही एकमेव विभासित हो कर शान्ति को प्रसारित करती है। ध्यान के लिए, एकान्त में बैठने के लिए तथा अन्तर की ओर दृष्टि डाल कर दिव्य ज्योति का अनुसन्धान करने के लिए अधिक समय निकालिए।

जो तैरना सीखना चाहता है, उसे कुछ दिनों तक तैरने का अभ्यास करना चाहिए। एक दिन के अभ्यास के अनन्तर ही कोई व्यक्ति समुद्र में तैरने का साहस नहीं कर सकता। उसी तरह यदि आप ब्रह्म-सागर में तैरना चाहते हैं, तो प्रारम्भ में आपको बहुत बार विफल प्रयास करना होगा, तभी आप अन्ततः सफल हो सकेंगे।

आपके अन्दर ईश्वर छिपा हुआ है। आपके अन्दर अमर आत्मा है। आपके अन्दर अक्षय आध्यात्मिक भण्डार है। आपके अन्दर आनन्द-सागर है। सुख-प्राप्ति के लिए अन्दर देखिए। उस सुख को आपने व्यर्थ ही इन नश्वर पदार्थों में खोजा है। सुख प्राप्त कर अपनी आत्मा में विश्राम कीजिए।

फूल खिलते तथा मुरझा जाते हैं। इसमें प्रशंसा तथा निन्दा की क्या आवश्यकता? जो-कुछ भी हमें प्राप्त हो, उसे बिना उत्तेजना, दुःख अथवा प्रतिक्रियात्मक आवेग के ही ग्रहण कर लेना चाहिए।

यदि स्त्री शुद्ध है, तो वह मनुष्य की रक्षा कर उसे शुद्ध बना सकती है। स्त्री राष्ट्र को शुद्ध बना सकती है। स्त्री घर को पवित्र मन्दिर बना सकती है।

बाह्य वस्तुओं में ही-धन तथा बच्चों में, शक्ति तथा पद में, दूकान-दूकान पर जाने में, उपहार ग्रहण करने में सुख नहीं है। वास्तविक सुख तो शुद्धता, वैराग्य तथा ध्यान के द्वारा अमर सुखमय आत्मा में ही पाया जाता है।

१४. ईश्वर तथा उसका नाम

ईश्वर है। ईश्वर ही सत्ता है। व्यर्थ विवादों को बन्द कीजिए। शुद्ध हृदय रखिए। मानव-जाति की सेवा कीजिए। ईश्वर से प्रेम कीजिए। सभी प्राणियों के प्रति प्रेम का व्यवहार रखिए।

इस दृश्य जगत् में भौतिक शरीर गतिशील छाया के समान है। सभी भूतों के अन्तर्वासी, सर्वव्यापक, परम, नित्य आत्मा में अविरल निष्ठा रखिए।

भाव तथा धारणा के साथ सतत जप के अभ्यास से मन की चंचलता दूर हो जायेगी तथा मन स्थिर एवं शान्त हो जायेगा।

पूर्व-स्वभावश मन प्रारम्भ में इधर-उधर दौड़ेगा; परन्तु ईश्वर के नाम का जप जादू की छड़ी के समान है जो इस उपद्रवी विच्छृंखल मन को अपने वश में कर लेगा।

१५. शरीर तथा मानव-जन्म

शरीर अनेकानेक विपत्तियों का मूल है। यह मलिनताओं से पूर्ण है। यह अनादर, अपमान, दुःख आदि का कारण है। यह फेन, बुदबुद या मृगतृष्णा के सदृश है। प्राणों के प्रयाण कर जाने पर यह शरीर काष्ठवत् पड़ा रहता है।

क्षुद्र उद्देश्य की पूर्ति ही इस शरीर का लक्ष्य नहीं है। यह शरीर यहाँ विवेकपूर्ण तपस्या के लिए है तथा परलोक में असीम सुख की प्राप्ति का एक साधन है। मानव-जीवन के लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार या ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति का यह साधन है। यह संसार-सागर से सन्तरण के लिए नौका है।

धन के द्वारा अमृतत्व की आशा नहीं की जा सकती। ऐसी ही उपनिषदों की घोषणा है: "न तो कर्म से, न सन्तान से, न धन से, प्रत्युत् सन्यास से ही मनुष्य अमृतत्व को प्राप्त कर सकता है।"

सभी प्राणियों के लिए मानव-जन्म दुर्लभ है। उसमें भी पुरुष-शरीर मिलना और भी कठिन है। यह कहा जाता है कि तीन वस्तुएँ दुर्लभ हैं तथा ईश्वरीय कृपा से ही वे प्राप्त होती है : (१) मनुष्यत्व, (२) मुमुक्षुत्व- मोक्ष के लिए ज्वलन्त कामना तथा (३) पूर्ण ज्ञानी का पथ-प्रदर्शन।

१६. साधना के लिए मुख्य अवलम्ब

ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो प्राप्य न हो। ऐसी कोई कठिनाई नहीं है जो साहस, संकल्प तथा उत्साह के द्वारा वशीभूत न की जा सके। विवेक-बुद्धि, आत्म-संयम का भाव तथा संन्यास ये ही मनुष्य तथा पशु के बीच भेद लाते हैं।

जब तक परम ज्ञान का सूर्य अहंकार के बादल से आच्छादित रहता है, तब तक आत्म-साक्षात्कार का पद्म प्रस्फुटित नहीं होता। आत्म-ज्योति और आत्मज्ञान मनुष्य की दृष्टि से ओझल हैं; परन्तु ये उनके लिए प्रकट हैं, जो नम्र, श्रद्धावान्, भक्त, विरक्त, धीर तथा साधन-चतुष्टय से सम्पन्न हैं।

आर्जव, सच्चाई, करुणा, नम्रता, जीवन के प्रति सम्मान या सभी प्राणियों के प्रति दया, परम निःस्वार्थता, सत्य, ब्रह्मचर्य, अलोभ, अदम्भ, निरभिमानता तथा विश्व-प्रेम - ये ही नैतिक जीवन के लिए आवश्यक हैं।

१७. योग की माँग तथा सांसारिक बुद्धि वाले मनुष्य

अनवरत ध्यान के अभ्यास के लिए योग सारे लौकिक व्यवहारों से पूर्ण अनासक्ति का उपदेश देता है। यह हृदय की आन्तरिक ज्योति अथवा किसी प्रिय वस्तु पर मन को एकाग्र करने की शिक्षा देता है।

कितना भी प्रयास आप क्यों न करें, कांटी पत्थर में प्रवेश नहीं कर पाती। उसी तरह धार्मिक विचार सांसारिक मनुष्यों के चित्त में प्रवेश नहीं कर पाते चाहे आप कहानियों, दृष्टान्तों तथा मनोरंजक उपदेशों के द्वारा ही उन्हें क्यों न शिक्षा दें।

१८. जीवन में कठिनाइयाँ तथा साधुओं के सन्देश

किसान दुर्भिक्ष के प्रति विलाप न करते हुए खेत जोतने में संलग्न रहे, अचानक वर्षा आयेगी और वह सम्पन्न फसल काट सकेगा। मनुष्य को सदा कार्यरत रहना चाहिए। सारी कठिनाइयाँ तथा प्रतिकूल परिस्थितियाँ विनष्ट शारदीय मेघ के समान गुजर जायेंगी। आप नित्य शान्ति तथा शाश्वत सुख की आध्यात्मिक फसल प्राप्त कर सकेंगे।

परम सत्य को विरोधात्मक शब्दों द्वारा ही सर्वोत्तम रूप से परिभाषित किया जा सकता है. "लघ से भी लघुतर, महान से भी महत्तर वह आत्मा है। बैठे हए भी वह दर चला जाता है। निश्चल रह कर भी वह सर्वत्र व्याप्त होता है।"

साधुओं के सन्देश भी सारांशतः समान ही हैं। वे सदा मनुष्यों को आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रेरित करते हैं।

साधक में शिशुवत् सरलता तथा श्रद्धा होनी चाहिए। जिस तरह माता के लिए शिशु तड़फता है, उसी तरह साधक को भगवान् के लिए तड़फना चाहिए। ज्वलन्त मुमुक्षुत्व से सम्पन्न हो कर आप शीघ्र आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लेंगे।

प्रेम, निष्काम सेवा, त्याग, संन्यास तथा ध्यान के द्वारा आत्मा को उन्नत तथा ईश्वरत्व में परिणत करते हैं।

१९. ईश्वर-चैतन्य तथा सच्चिदानन्द

ईश्वर के साथ मिलन को प्राप्त करना ही सदाचार तथा जीवन का चरम लक्ष्य है। मिथ्या, भ्रामक, तथा लघु अहं के विनष्ट हो जाने पर स्वतन्त्रता की अनोखी चेतना जग पड़ती है तथा नैतिक स्तर बहुत उन्नत हो जाता है। का

जिस प्रकार लोग आकाश में नीलिमा आरोपित करते हैं, उसी तरह अज्ञानवश वे शरीर तथा इन्द्रियों के स्वभाव एवं गुण को शुद्ध सच्चिदानन्द में आरोपित करते हैं।

आत्मा ही बुद्धि, इन्द्रिय आदि को उसी तरह प्रकाशित करता है जिस तरह ज्योति घटादि को प्रकाशित करती है; परन्तु आत्मा बुद्धि, मन, इन्द्रिय आदि जड़ पदार्थों से प्रकाशित नहीं होता।

तृण से भी अधिक विनम्र भाव से तथा वृक्ष से भी अधिक सहिष्णुता रख कर मनुष्य को हरि का कीर्तन करना चाहिए। अपने लिए सम्मान की कामना न करे, दूसरों को सम्मान दे।

चैतन्यघन, आनन्दघन, नित्य शुद्ध भगवान् हरि का नाम ही समस्त जगत् की वस्तुओं में महान् है। उसके समक्ष सारा जगत् स्वल्प है।

घृणा, लोभ, स्वार्थ, ईर्ष्या आदि मोथों को उखाड़ कर अपनी हृदय-वाटिका में मन की शान्ति को विकसित कीजिए। तभी आप उसे बाह्यतः प्रकट कर सकेंगे।

जिस तरह शिशु चलने के प्रयास में बारम्बार गिरता है, जिस तरह नौसिखिया साइकिल चलाने वाला बहुत बार गिर कर ही उस कला में कुशल बनता है, उसी तरह नया साधक भी अपने संकल्पों में कई बार गिर जाता है। उसे बारम्बार प्रयत्न करना चाहिए। अन्ततः उसी की विजय होगी।

२०. धैर्य, सन्तोष तथा ईश्वरीय ज्योति

मानव-जन्म, मुमुक्षुत्व तथा महात्मा पुरुष का सम्पर्क- ये सब ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त होते हैं। जो व्यक्ति इन साधनों को प्राप्त करके भी मुक्ति के लिए प्रयत्न नहीं करता, वह आत्मा का ही हनन करता है।

सन्तोष वास्तविक धन है; क्योंकि इससे मन की शान्ति प्राप्त होती है। वह मोक्ष-धाम का द्वारपाल है। यदि आप इस द्वारपाल का साथ करेंगे, तो उसके द्वारा आप अन्य द्वारपालों सत्संग, आत्म-विचार तथा शान्ति से भी परिचित बन सकेंगे।

जिस तरह बीज में फल, दूध में नवनीत, शिशुपन में वीर्य छिपा हुआ रहता है, उसी तरह बहुत-सी क्षमताएँ मनुष्य में छिपी रहती हैं। यदि आप मन को शुद्ध बना कर धारणा तथा ध्यान का अभ्यास करेंगे, तो वे सारी क्षमताएँ जाग्रत हो जायेंगी।

सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं। धर्म सत्य में ही निहित है। ऋषिगण उस अमर धाम को प्राप्त करते हैं जो सत्य का परम पद है।

साधना के द्वारा शुद्ध मन में दिव्य ज्योति का अवतरण होता है। शुद्ध उन्नत मन अवतरित होने वाली ज्योति को सुगमतया ग्रहण कर लेता है।

आवेग, कामना तथा प्राणिक कार्य-व्यापारों से सघन तल से छन कर दिव्य ज्योति का अवतरण होता है। अन्ततः यह समस्त शरीर को व्याप्त कर लेती है।

२१. प्रेम तथा ईश्वर-साक्षात्कार का रहस्य

अपने हृदय में प्रेम-मन्दिर का निर्माण कीजिए। परम जीवन का आनन्द लूटिए। शुद्धता में ही ईश्वर-साक्षात्कार का रहस्य छिपा हुआ है; आत्म-दमन में ही चरित्र-बल निहित है; वैराग्य में ही आध्यात्मिक उन्नति का रहस्य है। कामना से मुक्ति ही शुद्धता है। ध्यान तथा सन्तोष ही सुन्दर स्वास्थ्य तथा दीर्घ जीवन के रहस्य है।

जिस तरह जमीन को जोत कर, उसमें खाद डाल कर, मोथों को उखाड़ कर, वाटिका में सुन्दर फूल उत्पन्न करते हैं, उसी तरह आप मन-रूपी वाटिका में भक्ति-रूपी पुष्प उत्पन्न कीजिए। इसके लिए मन से काम, क्रोध, मोह, मद आदि मोथों को उखाड़ फेंकिए तथा दिव्य विचार के जल से उसका सिंचन कीजिए।

प्रेम अपने कोमल स्पर्श से सभी को जीत लेता है। प्रेम वह औषधि है जो हृदय के सारे घावों को भर देती है। प्रेम भावना का परिवर्तन करता है। प्रेम से सम्पूर्ण व्यक्तित्व का गठन होता है। प्रेम को अन्य किसी भी शक्ति से जीता नहीं जा सकता है। प्रेम एकता लाता है। यह समता, एकता, शान्ति तथा सुख के साम्राज्य में काम करता है। प्रेम ही सभी वस्तुओं पर अन्ततः विजय प्राप्त करा सकता है।

यदि प्रदीप को कपड़े की बहुत-सी परतों से ढक दिया जाये, तो उसकी रोशनी प्रखर नहीं रह सकेगी; परन्तु एक-एक कर वस्त्र की परतों को हटाने पर रोशनी शनैः-शनैः बढ़ने लगेगी। उसी तरह स्वयं-प्रकाश आत्मा से पंचकोशों को एक-एक कर हटाने से आत्मा का अधिकाधिक साक्षात्कार होने लगता है। 'नेति-नेति' सिद्धान्त के अनुसार शुद्ध आत्मा पर ध्यान के द्वारा एक-एक कर पंचकोशों का निषेध करते हैं।

जिस तरह राजा अपनी स्वतन्त्र इच्छा से ड्रामे के रंगमंच पर भिक्षुक का अभिनय करता है, उसी तरह सच्चिदानन्द ब्रह्म भी स्वतन्त्र इच्छा से लीला के लिए ही इस जगत् में जीव का अभिनय कर रहा है।

प्रबल आत्म-विश्वास तथा गुरु एवं ईश्वर में अटूट निष्ठा रखिए। आप हिमालय को उखाड़ सकते हैं, आप सागर को निगल सकते हैं।

ईश्वर के नामों में अनन्त शक्ति है। इस परमाणु युग में मनुष्य के ऊपर जिन विपत्तियों का आक्रमण हुआ है, उन सभी का एक ही समाधान है ईश्वर का नाम। परमाणु बम एक नगर को ही नष्ट कर सकता है; परन्तु ईश्वर का नाम समस्त जगत् को विनष्ट कर सकता है। यही ईश्वर के नाम की महिमा है।

एक रहस्यमयी बूटी है, ऐसी बूटी जो मनुष्य को दिव्य बना कर अमर बना देती है। उस बूटी से निर्मित शर्बत ही मधुर तथा स्फूर्तिदायक है। वह है 'हरिनाम-बूटी'।

नाम बहुत ही शक्तिशाली आहार है। नाम आहारों का आहार है। नाम सर्वाधिक सन्तुलित आहार है। नाम का आहार सर्वदा उपलब्ध है। यह सबसे सस्ता, सबसे सुगम तथा सबसे अधिक शक्तिशाली है। इसी नाम ने प्रह्लाद तथा ध्रुव को अमर बना दिया।

यदि आप ईश्वर से मिलने के लिए एक कदम आगे बढ़ें, तो वह आपसे मिलने को एक मील दौड़ता हुआ चला आता है। कितना दयालु तथा कारुणिक है वह ! उसका हाथ सदा आपकी पीठ पर है जिससे आप सदा संरक्षित रहें। अवलम्ब के लिए उसी पर अपना विश्वास जमाइए। उसके गुप्त हाथ का सर्वत्र अनुभव कीजिए। उसके चरणों में अपने अहंकार को अर्पित कर डालिए तथा सदा सुखी बने रहिए।

२२. ज्ञान तथा पूर्णता

बादलों के गतिमान होने पर चन्द्रमा भी गतिमान प्रतीत होता है, उसी तरह अविवेकी व्यक्ति को आत्मा क्रियावान् मालूम पड़ता है, जब कि वस्तुतः इन्द्रियाँ ही कार्य करती हैं।

ज्ञान तीक्ष्ण शस्त्र है। यह निश्चय ही आपको बुराई से बचाता है। यह सबसे मजबूत अभेद्य किला है। इसे परमाणु बम द्वारा भी विनष्ट नहीं किया जा सकता है। मनुष्य इस किले के अन्दर सुरक्षित रह सकता है।

अमर जीवन तथा शुद्ध चैतन्य की प्राप्ति ही पूर्णता है। यह किसी नयी वस्तु की प्राप्ति नहीं है। यह तो विस्मृत आन्तरिक खजाने की पुनर्प्राप्ति है।

बुद्धि बाह्य विषयों का ज्ञान प्रदान करती है। बुद्धि संघर्षमयी है। बुद्धि अनुमान करती तथा विश्वास करती है। बुद्धि प्रकृति से उत्पन्न है।

ईश्वर तथा उसकी शक्ति अभिन्न है। फूल तथा सुगन्धि, सूर्य तथा किरण, जीवन तथा शरीर के समान ही ईश्वर तथा उसकी शक्ति भी अभिन्न है। ईश्वर का मातृ-पहलू ही शक्ति है। वह ईश्वर का शक्ति स्वरूप है। शक्ति सच्चिदानन्द रूपिणी, चिन्मय रूपिणी, आनन्दमय रूपिणी है। माता की कृपा प्राप्त कीजिए।

यह शरीर ईश्वर का मन्दिर है। ईश्वर इस मन्दिर का अधिकारी है। वह अन्तर्यामी है। यह ईश्वर-साक्षात्कार के लिए एक निमित्त है, अतः इसे स्वस्थ एवं सबल बनाये रखना चाहिए। सदा ईश्वर का ही चिन्तन कीजिए तथा उससे पथ-प्रदर्शन और सहायता प्राप्त कीजिए।

असीम ब्रह्म ही आपके हृदय का केन्द्र है। इस अविद्या-आवरण को फाड़ डालिए। इस अहंकार को चूर्ण कर डालिए। मल को गला दीजिए। ब्रह्म के साथ एक बन जाइए।

जिस तरह कस्तूरी-मृग कस्तूरी की सुगन्धि का उपभोग करने के लिए भागता रहता है, उसी तरह मनुष्य भी इस भावना से उद्भ्रान्त बना रहता है कि नित्य परमात्मा उससे दूर है।

जिस तरह एक ज्योति को दूसरी ज्योति की आवश्यकता नहीं पड़ती, उसी तरह आत्मा भी अन्य किसी वस्तु द्वारा प्रकट नहीं होता।

यदि शिक्षा धार्मिक चैतन्य से रहित है, तो उसमें जीवन नहीं है; क्योंकि धर्म ही जीवन की सार्थकता है, धर्म ही जीवन-संग्राम का एकमेव लक्ष्य है। यदि धर्म का निषेध कर दिया गया, तो मर्त्य मनुष्य में हड्डी-मांस के अतिरिक्त अन्य कुछ शेष नहीं रहता।

जो ज्ञानी भद्र तथा क्षमाशील है, जो ईश्वर में विश्वास रखता है, जो विनीत है, जो सदा ईश्वर का स्मरण करता है, वह शाश्वत शान्ति के धाम को प्राप्त करता है।

२३. ईश्वर, उसका रूप तथा उसकी सत्ता

ईश्वर सर्वत्र है। सर्वत्र उसकी सत्ता का भान कीजिए। उनके नेत्र सब-कुछ देखते हैं, उसके हाथ सभी की रक्षा करते हैं। उसमें विश्वास रखिए। उसके मधुर नाम की शरण में जाइए। आपको किसी वस्तु से निराश होने की आवश्यकता नहीं है। आपको किसी वस्तु से भय खाने की आवश्यकता नहीं है।

सबसे महान् जन वे हैं जो आत्म-चैतन्य में निमग्न हैं। वे ईश्वर के इतने निकट हैं कि उनसे कर्म का निर्वाह नहीं हो सकता। अतः वे जगत् को अज्ञात हैं।

सन्त अथवा ज्ञानी राजाओं का राजा है। वह महान् धीर है। उसने सभी कामनाओं, घृणा तथा क्रोध को विनष्ट कर दिया है। वह सदा शान्त है। वह सुख तथा शान्ति विकीर्ण करता है। उसमें अन्तर्बाह्य आत्म-संयम है। वह अज्ञानी सांसारिकों को उद्बुद्ध करने के लिए संसार में विचरण करता है। वह सर्वत्र ईश्वर के दर्शन करता है।

जिस तरह अग्नि क्षार से, खड्ग कोश से, सूर्य बादल से, गर्भ उल्व से, लाल रत्न पृथ्वी से तथा गद्दा सदा खोल से ढका रहता है, उसी तरह ब्रह्म भी मांस तथा हड्डी से ढका हुआ है।

ईश्वर निराकार है, फिर भी वह सब आकारों का आकार है। सुख-दुःख आत्मा को स्पर्श नहीं कर पाते, क्योंकि आत्मा चैतन्य है। इसका साक्षात्कार कर मुक्त बन जाइए। "तत्त्वमसि" तू वही है।

जिस तरह चम्पा अथवा चन्दन की सुगन्धि सर्वत्र फैल जाती है, उसी तरह सदाचारी व्यक्ति की सुगन्धि भी सर्वत्र व्याप्त हो जाती है।

जिस तरह वृक्ष के मूल में जल-सिंचन करने से उसका तना, उसकी शाखाएँ तथा उसके पत्ते सभी सप्राणित होते हैं तथा जिस तरह प्राण का अन्न से पोषण होने पर इन्द्रियाँ तृप्त होती हैं, उसी तरह भगवान् हरि की पूजा सभी देवताओं को प्रसन्न करती है।

लोग घने जंगलों में, पर्वत के शिखर पर, झीलों तथा बगीचों में भगवान् की अर्चना के लिए फूल की खोज में जाते हैं, फिर भी वे परमानन्द नहीं प्राप्त करते। यदि वे अपने हृदय रूपी निष्कलंक एक फूल को ही ईश्वर पर अर्पित कर दें, तो उन्हें नित्य सुख की प्राप्ति सुगमतया हो जाये।

जो शम से सम्पन्न है, वह सदा सर्वत्र सुखी रहेगा। शम की प्राप्ति मनुष्य को जितना सुखी बनाती है, उतना जगत् का सारा धन भी उसे सुखी नहीं बना सकता।

जिस तरह गंगा नदी पूर्व की ओर प्रवाहित होती है, पूर्व की ओर ढालों से हो कर गिरती है, उसी तरह योगी भी ध्यानाभ्यास के द्वारा समाधि की ओर प्रवाहित होता है, समाधि की ओर ढालों से गिरता है तथा समाधि की ओर प्रवृत्त होता है।

जो निर्भय-निष्काम, अहंता-ममता रहित, नम्र, श्रद्धावान् तथा सत्यावलम्बी है, वह शीघ्र ही अविनश्वर ज्ञान को प्राप्त कर लेगा। पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शान्ति तथा नित्य सुख-ये ही आत्म-साक्षात्कार के फल हैं।

२४. उपमा तथा वरदान

जिस तरह बाज से पीछा किये जाने पर पक्षी गृह में प्रवेश करता है तथा उपयुक्त स्थान के अभाव में तुरन्त ही बाहर निकल जाता है, उसी प्रकार मन भी विषय-पदार्थों में बाह्यतः भटकता रहता है; क्योंकि सूक्ष्म आत्मा में निवास करना उसे कठिन प्रतीत होता है।

सन्तोष जीवन का आनन्द है। सन्तोष की शीतल सुधा-धारा कामाग्नि का शीघ्र ही उपशमन कर देगी। ईश्वर के साम्राज्य अथवा शान्ति के धाम का सन्तोष प्रधान द्वारपाल है।

जिस तरह पारसमणि के स्पर्श से लोहा सोने में परिणत हो जाता है, उसी तरह पाशवी प्रकृति का मनुष्य भी उन्नत योगी के सतत सत्संग से शनैः-शनैः सन्त में परिणत हो जाता है।

यह जगत् प्रेम से उत्पन्न है, प्रेम में स्थित है तथा अन्ततः प्रेम में ही विलीन होता है। प्रेमहीन हृदय निर्जन मरुस्थल के समान है। ईश्वर प्रेम-सागर है।

सदाचारमय जीवन सबसे महान् वरदान है। गुरु-सेवा सबसे बड़ी संशोधक है। सन्तोष सबसे बड़ा धन है। निर्विकल्प समाधि महत्तम सुख है।

रोग वरदान है। यह ईश्वर का सन्देशवाहक है। यह कृपापूर्ण कार्य है जिसका उद्देश्य आपके मन को अन्तर्मुखी बनाना तथा उसे ईश्वर की ओर प्रेरित करना है।

भगवन्नाम का जप मन-मुकर को निर्मल करता, काम-वन को दग्ध करता तथा सम्पूर्ण व्यक्तित्व को आनन्द-वारि में निमज्जित करता है।

२५. पार्थिव जीवन तथा मुक्त ज्ञानी

मुक्त ज्ञानी करुणा-सागर है। वह महान् आध्यात्मिक वीर है। शरीर तथा इन्द्रियों के साथ उसका तादात्म्य-सम्बन्ध नहीं है। उसमें यह भावना नहीं है कि 'मैं कर्ता हूँ।'

पार्थिव जीवन प्रलोभनों तथा कष्टों से भरा हुआ है। जिसमें वास्तविक वैराग्य तथा दृढ़ विवेक है, वह मार तथा शैतान से प्रलोभित नहीं हो सकते।

जिसने कामना रूपी मगर को परम वैराग्य रूपी खड्ग से मार डाला है, वह निर्बाध रूप से इस संसार-सागर का सन्तरण कर जाता है।

सत्य से बढ़ कर कोई तप नहीं। करुणा के बढ़ कर कोई सद्गुण नहीं। आत्म-सुख से बढ़ कर कोई सुख नहीं। आध्यात्मिक धन से बढ़ कर कोई धन नहीं।

सन्तोषी मनुष्य के लिए समस्त जगत् का साम्राज्य भी सड़ें हुए तृण के समान ही है। जो असन्तुष्ट है, वह निश्चय ही दुःखी तथा गरीब है।

आत्म-साक्षात्कार का सुख अवर्णनीय है। गूँगा मनुष्य गुड़ का स्वाद लेते समय कुछ नहीं कह पाता। वैसा ही यह भी है।

२६. आत्म-संयम तथा ब्रह्मज्ञान

ईश्वर-साक्षात्कार के लिए आत्म-संयम की प्रथम आवश्यकता है। क्षमा, धैर्य, तितिक्षा, सहनशीलता तथा अक्रोध आदि का अर्जन कर नित्य-प्रति आत्म-संयम का अभ्यास कीजिए।

सद्गुरु के साथ रहना सबसे महान् वरदान है; गंगा के तट पर जप करना सबसे बड़ा आध्यात्मिक भण्डार है, सुन्दर स्वास्थ्य रखना सबसे बड़ा आशीर्वाद है, समाधि-सुख का आस्वादन करना सबसे बड़ा वरदान है।

शमयुक्त व्यक्ति के मन में ब्रह्मज्ञान स्वतः ही उदित हो जाता है। शम बहुत ही महत्त्वपूर्ण गुण है जिसे साधक को अवश्य रखना चाहिए। यह शान्ति तथा मुक्ति का सन्देशवाहक है।

विक्षिप्त मन ही आत्मा का शत्रु है। मन अपनी विक्षेप-शक्ति के द्वारा अनन्त वासनाओं तथा संकल्पों को उत्पन्न करता है। सतत ब्रह्म-विचार के द्वारा इस चंचल मन को विनष्ट कर डालिए।

जिस तरह दर्पण धूल से मलिन हो जाता है, उसी तरह ब्रह्म भी अविद्या से आवृत है। अतः मनुष्य इस अविद्या से भ्रमित हो रहे हैं। आत्मज्ञान प्राप्त कर लेने पर यह अविद्या विलुप्त हो जाती है।

२७. सद्गुण तथा भक्ति

वास्तविक प्रेम सागर के समान अथाह, आकाश के समान व्यापक तथा हिमालय के समान अविचल है। शुद्ध प्रेम व्यक्तित्व को समुन्नत करता है, हृदय को शुद्ध करता तथा जीवन को पवित्र करता है।

जहाँ दया, नम्रता तथा शुद्धता है वहाँ आध्यात्मिकता स्वतः आ जाती है, साधुता विभासित होने लगती है, ईश्वरत्व का अवतरण होता है तथा पूर्णता प्रकट होती है।

भक्तों की सेवा, ईश्वर के नाम का जप, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय, तीर्थस्थलों में निवास, सत्संग, भगवन्नाम का कीर्तन-ये भक्ति-अर्जन के छह साधन हैं।

हरि का भक्त सदा सरल तथा नम्र रहता है। उसके अधर पर सदा हरि का नाम रहता है। एकान्त में वह अविरल अश्रुपात करता है। वह सदाचारी होता है। वह सभी का मित्र है। उसमें समदृष्टि है। वह सदा सत्कर्म ही करता है। वह दूसरों की भावनाओं पर कदापि आघात नहीं पहुँचाता है। वह सभी भूतों में हरि का दर्शन करता है।

भक्ति को प्राप्त किया जा सकता है। भक्तों तथा भागवतों का सतत सत्संग, भगवान् के नाम का निरन्तर जप, भगवान् का अनवरत स्मरण, प्रार्थना, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय, हरि-कीर्तन, भक्तों की सेवा आदि के द्वारा भक्त के हृदय में भक्ति का संचार होता है।

राम-नाम की उपासना कदापि व्यर्थ नहीं जाती। बचपन में किया गया तैरने का अभ्यास भविष्य में बड़ा काम देता है। सुखद अथवा दुःखद किसी भी अवस्था में राम-नाम का जप निश्चय ही सुन्दर फल प्रदान करेगा। खेतों में बीज किसी तरह बोइए, उनसे फसल की प्राप्ति होती ही है।

२८. जप तथा उपनिषद् के स्वाध्याय का फल

हर मनुष्य में अनेक शक्तियाँ हैं। जिस तरह सभी वस्तुओं को जला देना अग्नि का स्वभाव ही है, उसी तरह ईश्वर के नाम में पापों तथा कामनाओं को जला देने की५२८

साधना

स्वाभाविक शक्ति है। जप सहज हो जाना चाहिए। जप ईश्वर-साक्षात्कार के लिए सबमे सुगम तथा सरल साधन है।

जीवन का माधुर्य भक्ति है। जीवन की सुगन्धि उदारता है। जीवन का केन्द्र ध्यान है। जीवन का लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार है।

उपनिषदों के सतत स्वाध्याय से आपका मन समुन्नत होगा तथा आप ज्ञान की प्रथम भूमिका प्राप्त कर लेंगे। ॐ पर अर्थ तथा भाव के साथ ध्यान करने से आप आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लेंगे।

२९. वैराग्य, अभ्यास तथा ध्यान

जिस तरह रसायन द्वारा शुद्ध किये जाने पर सोना चमक उठता है, उसी तरह वैराग्य तथा अभ्यास के द्वारा मन के शुद्ध होने पर योगी विभासित हो उठता है।

उर्वरा भूमि में भी यदि उस बीज को डालिए, जो एक सेकेण्ड के लिए भी अग्नि पर रख दिया गया है, वह उग नहीं सकता। उसी तरह मन भी यदि विषय-पदार्थों की ओर अल्पमात्र भी प्रवृत्ति रखता है, तो दीर्घ ध्यान के रहते हुए भी योग के पूर्ण फल को प्राप्त नहीं कर सकता।

दूध में नवनीत की तरह आत्मा सभी भूतों में गुप्त है। सूक्ष्मदर्शी जन, जिनमें सूक्ष्म बुद्धि है, इसे नियमित गम्भीर ध्यान के द्वारा देख सकते हैं।

वह साधक जिसका मन शान्त है, जो ठीक-ठीक विचारता तथा कर्म करता है, जिसने इन्द्रियों का दमन किया है, जो समाधान तथा समत्वयुक्त है, वही सतत दीर्घ ध्यान के द्वारा ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है।

जो त्याग के धर्म का अभ्यास करता है, जो मिताहार करता है तथा अपनी इन्द्रियों को वशीभूत रखता है वह अचल, नित्य, स्वयं-प्रकाश, प्रकृति से परे ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेता है।

इस शान्ति के महान् शत्रु-मन को मारने के लिए विवेक तथा वैराग्य अमोघ अश्व हैं। विवेक तथा वैराग्य का नाम सुनते ही तृष्णाएँ दूर भाग जाती हैं। जिस तरह सूर्य के समक्ष अन्धकार टिक नहीं सकता उसी तरह विवेक तथा वैराग्य के समक्ष कामनाएँ टिक नहीं सकीं।

जिस तरह लवण की डली में अन्तर्बाह्य एक ही स्वाद है, उसी तरह आत्मा भी अन्तर्बाह्य प्रज्ञानघन है। ज्ञानी एक-रस चैतन्यघन का ही साक्षात्कार करता है।

दृढ़ संकल्प वाले व्यक्ति के लिए छुरे की धार के समान पथ पर भी कठिनाई नहीं है। अन्तर से हर कदम बल की प्राप्ति होती है। आत्मज्ञान के लिए उग्र तपस्या तथा शारीरिक कष्ट की आवश्यकता नहीं है।

जीवन इन्द्रियों से भी अधिक प्रिय है। राजा आदि अपराधी को प्राणदण्ड की सजा दे, तो अपराधी मृत्यु की अपेक्षा इन्द्रियों का हरण अच्छा मानता है। आत्मा जीवन से भी अधिक प्रिय है; क्योंकि यह आनन्द-स्वरूप है।

मन्त्र-जप से स्पन्दन उठते हैं। स्पन्दन से निश्चित रूपों का निर्माण होता है। 'ॐ नमः शिवाय' के जप से मन में भगवान् शिव की आकृति का निर्माण होता है। 'ॐ नमो नारायणाय' के जप से मन में भगवान् हरि का चित्रण होता है।

तर्क तथा बुद्धि के द्वारा भगवान् के नाम की महिमा प्रमाणित नहीं की जा सकती। भक्ति, श्रद्धा तथा सतत जप के द्वारा इसे निश्चय ही अनुभव द्वारा जाना जा सकता है।

३०. अज्ञान तथा काम

अज्ञान तथा पापयुक्त आदतों के कारण विवेक-बुद्धि का ह्रास होता है। यदि मनुष्य साधुओं के संग में रहे, तो शीघ्र ही वह इस दोष से मुक्त हो जायेगा।

घनीभूत राग, घृणा, ईर्ष्या, चिन्ता, क्रोधावेश ये सब शरीर के कोशाणुओं को नष्ट कर हृदय, जिगर, गुर्दे, तिल्ली तथा पेट की व्याधियों को उत्पन्न करते हैं।

क्रोध तथा लोभ के कारण मनुष्य दूसरों से द्वेष रखने लगता है। करुणा तथा आत्मज्ञान के द्वारा यह विलुप्त हो जाता है। दूसरों के दोष-दर्शन से भी इसकी उत्पत्ति होती है। बुद्धिमान् मनुष्य में विवेक के कारण यह शीघ्र ही विलुप्त हो जाता है।

अपने हृदयोद्यान में प्रेम की कुमुदनी, शुद्धता का गुलाब, साहस का चम्पक, नम्रता का मन्दार तथा करुणा की चमेली लगाइए।

जिस तरह शीतकाल में स्वेटर आपके शरीर में गरमी ला कर आपको सुख देता है, उसी तरह आत्मज्ञान भी आपको चिन्ता, शोक, दुःख आदि ठण्ढी बयारों से बचा कर नित्य शान्ति, असीम आनन्द तथा अमर सुख प्रदान करता है।

३१. दिव्य सौन्दर्य के प्रतिनिधि

सुन्दर पुष्प अदृश्य सौन्दर्यों-के-सौन्दर्य की याद दिलाता है। यह ईश्वर का प्रतीक है। पुष्प के समान सुरभित बनिए तथा सुख एवं शान्ति का संचार कीजिए।

जगत् के सारे कार्य एक नियम द्वारा संचालित हैं। वह नियम है कारण कार्य का नियम अथवा कर्म का नियम। यह नियम ही आन्तरिक समरसता तथा जगत के विधान को बनाये रखता है। इस महान् नियम से कोई भी वस्तु बची नहीं रह सकती।

इस जगत् में सुख की सारी आशाएँ दुःख, निराशा तथा शोक में परिसमाप्त होती हैं। सुख दुःख से मिला हुआ है, सौन्दर्य कुरूपता से और दया क्रोध तथा कटु शब्दों से मिला हुआ है। इस जगत् में कोई वास्तविक संबल नहीं जिस पर निर्भर रहा जाये। धन तथा अधिकार मन को अभिमान से भर डालते हैं।

३२. शुद्धता का मार्ग

पाप नैतिक जीवन के विनाशक हैं। वे विषाक्त मोथें हैं जो शीघ्र ही बढ़ कर नैतिक जीवन की वाटिका के सभी फूलों को नष्ट कर डालते हैं। दृढ़ प्रयत्न के द्वारा पापों को निर्मूल किये बिना तथा आत्मशुद्धि के बिना किसी का भी नैतिक कल्याण सम्भव नहीं है। नैतिक कल्याण सदा खतरे में ही रहेगा।

रेलगाड़ी का जड़ इंजन बुद्धिमान् चालक के बिना नहीं चल सकता, उसी प्रकार यह जड़ शरीर रूपी इंजन भी बुद्धिमान् चालक ईश्वर के बिना नहीं चल सकता। शरीर की सत्ता से इस शरीर के संचालक ईश्वर की सत्ता का अनुमान लगाया जा सकता है।

जीवन मलिनता से शुद्धता, घृणा से विश्व-प्रेम, मृत्यु से अमृतत्व, अपूर्णता से पूर्णता, दासता से स्वतन्त्रता, अनेकता से एकता, अज्ञान से नित्य ज्ञान, दुःख से नित्य सुख, दुर्बलता से असीम शक्ति की ओर यात्रा है।

ध्यान रहस्यमयी सीढ़ी है जो इस भूलोक से कैलास, वैकुण्ठ या ब्रह्म तक लगी हुई है। यह मिथ्या से सत्य, तमस् से ज्योति, अशान्ति से नित्य शान्ति, अज्ञान से ज्ञान तथा मृत्यु से अमृतत्व की ओर ले जाता है।

देवेश इन्द्र धन-सम्पत्ति का स्वामी होते हुए भी उस सुख का उपभोग नहीं कर सकते जो स्वरूपनिष्ठ ज्ञानी को निष्कामता तथा समदृष्टि द्वारा प्राप्त होता है।

जिस तरह मनुष्य फिटकरी के द्वारा गन्दे जल को स्वच्छ बना डालता है, उसी प्रकार ब्रह्म-चिन्तन के द्वारा मलिन मन को, जो वासनाओं तथा संकल्पों से भरा हुआ है, शुद्ध किया जाता है। तभी वास्तविक प्रकाश की प्राप्ति होती है।

३३. ज्ञानी तथा समदृष्टि

साधु अथवा ज्ञानी आध्यात्मिक धोबी है। वह ज्ञान का साबुन लगाता है, अपने वस्त्रों को शम की चट्टान पर पटकता है तथा उन्हें ज्ञान-गंगा में धोता है।

समदृष्टि ज्ञान की परख है। निःस्वार्थता सदाचार की परख है। ब्रह्मचर्य नैतिक जीवन की परख है। एकता आत्म-साक्षात्कार की परख है। नम्रता भक्ति की परख है।

दृश्य एक ही है; परन्तु साधारण व्यक्ति वृक्षों तथा झाड़ियों को देखता है, कलाकार प्रकृति के सौन्दर्य से मोहित हो जाता है। सन्त ईश्वरीय सृष्टि के सहारे अपने प्रियतम प्रभु के दर्शन करता है।

मुमुक्षुत्व का अर्थ है- उन्नत होना, उन्नत लक्ष्य के लिए तीव्र कामना रखना। सबसे उन्नत लक्ष्य ईश्वर ही है। ईश्वर ही सारी मानवी महत्त्वाकांक्षाओं का लक्ष्य है।

३४. विचार तथा मधुर आचरण

प्रिय मनुष्य का आचरण मधुर होता है। वह इतनी मानसिक ज्योति, प्रेम तथा आनन्द को विकीर्ण करता है कि सभी ग्राहक हृदयों में वह प्रतिबिम्बित होने लगता है। वह दयालु, कृपालु तथा उदार है। वह क्रोध से मुक्त है।

विचारहीन मनुष्य जिसने वाणी का संयम नहीं किया, वह बिना विचारे बोला करता है और फलतः पश्चात्ताप करता है। वह लज्जित तथा अपमानित होता है। अतः सदा विचारशील बनिए।

इस जगत् में सन्तुष्ट मन सबसे बड़ा वरदान है। मनुष्य की आत्मा पर इसका लाभकारी प्रभाव पड़ता है। यह सभी प्रकार की सांसारिक वासनाओं, दुःखों, चिन्ताओं तथा कष्टों को नष्ट कर मनुष्य को शान्त, सुखी तथा सम्पन्न बनाता है। यह अमूल्य मुक्ता है।

३५. प्रसन्नता तथा ईश्वर से एकता

प्रसन्नता की शक्ति विचित्र है। प्रसन्नता एक शक्ति है। प्रसन्न मनुष्य में बड़ी सहन-शक्ति होती है। वह अधिक कार्य भी कर सकता है, वह अधिक अच्छाईपूर्वक करेगा तथा अधिक उत्साह भी रखेगा। सूर्य का प्रकाश फूलों के लिए जैसा आह्लादक है वैसे ही मुदिता तथा आनन्दपूर्ण मुस्कान मनुष्य के लिए है।

ध्यान वायुयान के समान है जो साधक को नित्य आनन्द, शाश्वत शान्ति और अमृत सुख के धाम में उड़ा कर ले जाता है। ध्यान सारे दुःख, कष्ट तथा शोक को नष्ट कर एकता की दृष्टि प्रदान करता है।

सन्तोष ईश्वर की देन है जिसे आप ईश्वर में श्रद्धा तथा आत्मार्पण द्वारा प्राप्त करते हैं। आपकी दैनिक साधना में स्वाध्याय को नियमित स्थान मिलना चाहिए। ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्मार्पण के द्वारा ही मानसिक शान्ति की प्राप्ति होती है। वह ईश्वर ही पिता, मित्र, दार्शनिक तथा गुरु है। विपत्ति के समय ईश्वरेच्छा ही हमारी सहायता करती है।

जिस प्रकार समुद्र में डाले गये बरतन का जल बरतन के टूट जाने पर समुद्र में विलीन हो जाता है, उसी तरह ध्यान द्वारा शरीर-पात्र को तोड़ देने पर जीवात्मा परमात्मा से एक बन जाता है।

ब्रह्मचर्य प्रकाशमान ज्योति है जो मानव शरीर-गृह में चमकता है अथवा जीवन का पूर्ण विकसित पुष्प है जिसके चतुर्दिक् शक्ति, धैर्य, ज्ञान, शुद्धता तथा धृति के भ्रमर मँडराते रहते हैं। दूसरे शब्दों में जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य से सम्पन्न है, उसे इन सभी गुणों की प्राप्ति होती है।

जिस तरह रंगीन जल उजले वस्त्र में अच्छी तरह प्रवेश पा लेता है, उसी तरह ज्ञानी के उपदेश साधकों के हृदय में अच्छी तरह प्रवेश पा सकते हैं यदि उनका मन शान्त तथा चित्त शुद्ध हो।

३६. मनुष्य अपनी परिस्थितियों का निर्माता

मनुष्य परिस्थितियों का दास नहीं है, वह उनका निर्माता है। चरित्रवान् व्यक्ति परिस्थितियों के द्वारा ही अपने जीवन का निर्माण करता है। वह स्थिरतापूर्वक प्रयत्न करता रहता है। वह पीछे नहीं देखता, वरन् बाधाओं से भयभीत हुए बिना ही आगे बढ़ता जाता है।

यदि आप इस जगत् को ईश्वर की लीला समझ लेंगे, तो आपकी सारी विपत्तियाँ विलुप्त हो जायेंगी; आप शान्ति तथा सुख का उपभोग करेंगे।

बाह्य वस्तुओं की कल्पनाएँ मन की किरणों को विक्षिप्त कर देती हैं, संकल्प तथा शरीर को दुर्बल बनाती हैं तथा मूल्यवान् जीवन को नष्ट कर देती हैं। अपनी सारी कामनाओं को ईश्वर में केन्द्रित कीजिए। आप सब-कुछ प्राप्त कर लेंगे।

तीव्र कामना के द्वारा ही विषय-पदार्थों की प्राप्ति होती है। अपने जीवन के हर क्षण को ईश्वर की तीव्र कामना में बिताइए। यदि आपमें ईश्वर के लिए उतनी ही तीव्र कामना है, जितनी कि डूबते हुए मनुष्य में श्वास-वायु को अन्दर ले जाने के लिए होती है, तो आप इसी क्षण ईश्वर को प्राप्त कर लेंगे।

३७. योग- धार्मिक अनुभव की पराकाष्ठा

योग सभी धार्मिक अनुभवों की पराकाष्ठा है। योगाभ्यास के द्वारा योगी उन चमत्कारों को कर सकता है जो विज्ञान से भी परे हैं। योग का लक्ष्य है मन को शान्त बनाना जिससे यह मन से परे आत्मा को बिना विकृति के प्रतिबिम्बित कर सके। जीवन के परम लक्ष्य के साक्षात्कार के लिए योग निश्चित स्पष्ट मार्ग प्रदान करता है।

स्पष्ट दृष्टि, शम, आत्म-संयम, धैर्य, श्रद्धा, मन का समाधान, जगत् के प्रति उदासीनता तथा मुमुक्षुत्व-ये ध्यान के लिए पूर्वपिक्ष्य हैं।

३८. कामना का मूल तथा ब्रह्म-साक्षात्कार

अपूर्णता की भावना और शरीर, मन तथा अहंकार के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध से कामना की उत्पत्ति होती है। कामना वह बीज है जिसमें अनवरत जन्मों के अंकुर लगते हैं। कामना अज्ञान से उत्पन्न है। काम-वृत्ति तथा यौन सम्बन्धी कामना मौलिक कामना है। कामना का विनष्ट होना ही अज्ञान का विनाश है।

भार वहन करने वाला व्यक्ति गरमी के दिनों में अपने भार को उतार कर आराम करता है। उसी प्रकार बुद्धि संसार-भार को वहन करती है तथा ध्यान के द्वारा उस भार को उतार कर नित्य शान्ति प्राप्त करती है। एक घण्टे का ध्यान दश वर्षों के अध्ययन से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।

जिसने ब्रह्म-साक्षात्कार किया है, वह मौन हो जाना चाहता है। जब तक असीम का साक्षात्कार नहीं होता, तभी तक वाद-विवाद चलते रहते हैं।

परम आनन्द ही परम सत्य है। इन्द्रिय-सुख के स्तर से क्रमशः ऊपर उठ कर अतीत आध्यात्मिक अनुभव कीजिए, जहाँ नाम-रूप विलुप्त हो जाते हैं तथा आत्मानन्द ही रह जाता है। समि

जो सर्वव्यापक, शान्त, अद्वितीय, आनन्दमय आत्मा को देख लेता है, उसके लिए कुछ भी प्राप्त करने योग्य तथा जानने योग्य शेष नहीं रह जाता।

३९. सदाचार तथा मार्ग की बाधाएँ

सदाचार, शुद्ध तथा सच्चा व्यवहार, सच्चरित्रता, नैतिक पूर्णता और दिव्य गुणों का अर्जन-ये सभी धर्मों के आधार हैं। वास्तविक धर्म किसी भी अन्य धर्म का विरोध नहीं करता।

ज्ञानी ज्ञान का प्रचारक है। वह संसार के तमसाच्छन्न सागर में मानव जाति के पथ-प्रदर्शनार्थ आलोक स्तम्भ है। ज्ञानी आत्मज्ञान का मूल उद्गम है।

आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में विक्षेपकारक वस्तुएँ अथवा विघ्नकारक वस्तुएँ परीक्षापत्र के समान हैं। उनकी उपेक्षा न कीजिए। अपनी शक्ति के अनुसार शान्तिपूर्वक उनका उत्तर दीजिए। फल की चिन्ता न कीजिए। अपने मन को सदा शुद्ध तथा सबल बनाये रखिए।

४०. व्यापक ब्रह्म तथा सूक्ष्म शरीर

कामना, कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रिय, प्राण, बुद्धि तथा मन से निर्मित सूक्ष्म शरीर आत्मा की उपाधि है।

राजा ने अपनी लीला के लिए भिक्षु का अभिनय किया, एक ऋषि ने अपनी लीला के लिए मूर्ख का नाट्य किया। उसी प्रकार यह जगत् भी ब्रह्म की लीला है।

जिस तरह गन्ने का रस गन्ने में व्याप्त है, जिस तरह नमक पानी में घुल कर पानी को व्याप्त कर लेता है, जिस तरह नवनीत दूध को व्याप्त है, उसी तरह ब्रह्म भी सभी जड़ एवं चैतन्य वस्तुओं को व्याप्त करता है।

सूक्ष्म बीज से विशाल वट वृक्ष उत्पन्न हुआ है, उसी तरह सूक्ष्म तत्त्व से यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ है।

कारण तथा कार्य को एक देखना ही अस्तित्व की एकता के साक्षात्कार का मार्ग है। समस्त जगत् को ईश्वर की अभिव्यक्ति समझिए।

ईश्वर-कृपा जीवन का सबसे बड़ा भण्डार है। यदि आत्मार्पण है, तो कृपा प्रवाहित होती है। आत्मार्पण के अनुपात से ही ईश्वरीय कृपा का भी अवतरण होता है; जितना अधिक आत्मार्पण होगा, उतनी ही अधिक कृपा की प्राप्ति होगी।

४१. वेदान्त-ज्ञान का मार्ग

वेदान्त में बुद्धि-बल द्वारा सत्य को प्राप्त किया जाता है। भक्ति में भावना तथा प्रेम की शक्ति से ईश्वर-साक्षात्कार को प्राप्त किया जाता है।

आत्मा के लिए ज्ञान तथा वैराग्य दो पंख के समान हैं जिनसे वह मुक्ति, शान्ति तथा अमर आनन्द के धाम में विचरण कर सके।

सारी आध्यात्मिक साधनाएँ अज्ञान के आवरण को ध्वस्त करने के लिए ही हैं, जिससे मनुष्य अपने पड़ोसी में आत्मा के दर्शन कर सके। हृदय में ज्ञान के उदय होते ही अज्ञान भाग खड़ा होता है।

जब तक अहंकार है, तभी तक अज्ञान भी है। अहंकार के रहते मुक्ति नहीं हो सकती। अहंकार विपरीत भावना है।

४२. श्रद्धा तथा भगवत्प्रेम

प्रेम तथा सेवा दिव्य जीवन की दो कुंजियाँ हैं। धर्म तथा जीवन दो नहीं, एक ही हैं। सदा दिव्य जीवन यापन कीजिए। मनुष्य में तथा मनुष्य के द्वारा सदा ईश्वर का अध्ययन, ध्यान, उसकी पूजा तथा सेवा कीजिए।

ईश्वर के प्रति जितना गहरा प्रेम होगा, उतनी ही अधिक आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति होगी। ईश्वर-ज्ञान की चरम सीमा ईश्वर के साथ योग है। आध्यात्मिक उन्नति के अनुसार मनुष्य में ईश्वर-प्रेम भी जन्मजात है।

ईश्वर सारे सुखों का मूल है। सारे प्राणी उसमें निवास करते हैं। वह शान्ति, ज्ञान तथा आनन्द का स्वरूप है। वह सत्य, प्रेम, सौन्दर्य तथा शुभ है।

ईश्वर एक है। ईश्वर तथा उसका नियम एक है। ईश्वर प्रेम तथा नियम है। ईश्वर शुद्ध आत्मा है। ईश्वर मार्ग तथा लक्ष्य है। ईश्वर ही आपका सच्चा माता-पिता, मित्र तथा गुरु है।

श्रद्धा घाव भरती है। श्रद्धा सृजन करती है। श्रद्धा चमत्कार दिखाती है। श्रद्धा पर्वतों को चलायमन कर सकती है। श्रद्धा ही वह ज्योति है जिससे ईश्वर को खोजा जा सकता है। श्रद्धा दुर्बल को बलवान् तथा कायर को वीर बनाती है। श्रद्धा असम्भव को सम्भव कर दिखाती है।

सदा इसकी भावना कीजिए कि ईश्वर आपके साथ, आपके अन्दर तथा आपके बाहर सर्वत्र है। आप असीम बल, आन्तरिक शान्ति तथा सुख प्राप्त करेंगे। आप परिवर्तित हो जायेंगे।

४३. आन्तरिक ज्योति तथा सच्चा ज्ञानी

आपके अन्दर हर समस्या की कुंजी है। आपके अन्दर ही वह ज्ञान है जो हर परिस्थिति में आपका पथ-प्रदर्शन कर सके तथा आपके अन्दर वह बल है जिससे आप दिव्य महिमा तथा ईश्वरीय ऊँचाइयों को प्राप्त कर सकते हैं।

जब मनोमय कोश में सत्त्वगुण कार्य करता है तो अद्‌भुत शान्ति की प्राप्ति होती है, मन का विक्षेप बन्द हो जाता है तथा धारणा-शक्ति बढ़ती है। जब विज्ञानमय कोश में सत्त्वगुण का स्पन्दन होता है तो प्रखर ज्ञान, शक्तिशाली मेधा तथा सूक्ष्म बुद्धि (गम्भीर विषयों को समझने की बुद्धि) का समावेश होता है।

केश श्वेत होने के कारण मनुष्य बड़ा नहीं होता। केवल वृद्धावस्था तो खोखली वृद्धता है। वही वृद्ध है जो सत्य, सद्‌गुण, प्रेम, अहिंसा, आत्म-दमन तथा सम्यक् व्यवहार से सम्पन्न है, जो मलों से मुक्त तथा ज्ञानी है।

जिस तरह फूल के खिलते ही मधुमक्खियाँ आ कर बैठने लग जाती हैं, उसी प्रकार सबल व्यक्तित्व की ओर अपेक्षाकृत दुर्बल मन वाले व्यक्ति स्वतः ही आकृष्ट होते हैं।

४४. धर्म की परिभाषा तथा ईश्वर-परायण जीवन

ईश्वर का ज्ञान तथा उसकी उपासना में विश्वास को धर्म कहते हैं। यह क्लब-टेबुल पर बहस का विषय नहीं है। यह सत्य आत्मा का साक्षात्कार है। यह मनुष्य की गम्भीरतम आकांक्षा की पूर्ति है। इसके साक्षात्कार के लिए ही जीवन का हर क्षण व्यतीत कीजिए। धर्महीन जीवन तो वास्तव में मृत्यु ही है।

मनुष्य जैसा बोता है वैसा ही काटता है। सत्कर्म अच्छे फल प्रदान करते हैं तथा दुष्कर्म बुरे फल। कर्म का नियम ही संसार की विविधता का कारण है।

महत्त्वाकांक्षी युवकों के लिए एकान्त कष्टप्रद है; परन्तु जो विरक्त तथा ध्यान-परायण हैं, उनके लिए यह बड़ा ही लाभप्रद है।
आत्म-भाव से मानव-सेवा, कारण कार्य के वास्तविक तथ्य का विवेक, वैराग्य, शम, आत्म-दमन, धारणा, श्रद्धा, शुद्धता तथा निष्कामता के द्वारा मनुष्य परम ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

जो अहंता तथा राग से मुक्त हैं, जिन्होंने इन्द्रियों का दमन कर लिया है तथा जो ध्यान में लीन रहते हैं, ऐसे धार्मिक आत्मा ही अमरानन्द तथा नित्य शान्ति को प्राप्त कर लेते हैं जहाँ से फिर लौटना नहीं होता।

ईश्वर की प्राप्ति के लिए कला, विज्ञान तथा पाण्डित्य की आवश्यकता नहीं है, उसके लिए तो प्रेम तथा भक्ति से परिप्लावित ऐसे हृदय की आवश्यकता है, जो ईश्वर-प्राप्ति के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ हो तथा एकमात्र उससे ही प्रेम करता हो।

४५. आध्यात्मिक उन्नति की बाधाएँ तथा कष्ट का महत्त्व

ईश्वर के लिए जीवन यापन कीजिए। ईश्वर-दर्शन के लिए अनवरत प्रयत्नशील बनिए। धर्म का अभ्यास कीजिए। निष्काम सेवा, भक्ति तथा पूजा, मनन तथा ध्यान के द्वारा ईश्वर-साक्षात्कार कीजिए।

राग-द्वेष आत्मा की उन्नति में बाधक हैं। इन ग्रन्थियों का भेदन करना होगा तथा ऊँच-नीच की भावनाओं का परित्याग करना होगा। तभी अमृतत्व धाम में प्रवेश करने का प्रयत्न करना चाहिए।

जिस तरह लोभी मनुष्य धन-संचय में बड़ा सावधान रहता है तथा वह एक पैसा भी खर्च नहीं करता, वह उसे अपना रुधिर ही समझता है, उसी तरह साधकों को भी चाहिए कि अपनी सारी शक्ति को बचा कर उसे ईश्वर के लिए लगायें।

वृक्ष पर ही पकने वाला फल बड़ा मधुर होता है; परन्तु इसमें दीर्घ समय लग जाता है। जो वृक्ष कई सालों में बढ़ता है, वह बहुत ही मजबूत तथा उपयोगी होता है। उसी प्रकार दीर्घ काल तक उग्र साधना करने वाले साधक सक्रिय तथा पूर्ण योगी बन जाते हैं। आजकल साधक बहुत ही अधीर रहते हैं। वे दो-तीन वर्ष में ही योगी बनना चाहते हैं। वे अल्प प्राणायाम, शीर्षासन तथा कुछ जप से ही योगी बन जाना चाहते हैं।

कष्ट मन को ईश्वर की ओर फेर देता है। कष्ट हृदय में करुणा का संचार करता तथा उसे कोमल बनाता है। कष्ट मनुष्य को बल प्रदान करता है। कष्ट वैराग्य को उत्पन्न करता है। जिस तरह पत्तों को निचोड़ने से ही रस टपकता है, उसी तरह कष्ट में ही लोगों को सत्य की पहचान होती है। अतः कष्ट आशीर्वाद ही है। यह जगत् की सर्वोत्तम वस्तु है।

धारणा से परमानन्द, आध्यात्मिक शक्ति, विशुद्ध सुख तथा शान्ति की प्राप्ति होती है। धारणा से गम्भीर ज्ञान, गम्भीर अन्तर्चक्षु, अपरोक्षानुभूति तथा ईश्वर-योग की प्राप्ति होती है। यह आश्चर्यमय विज्ञान है।

जिस तरह शिशु माँ की गोद में पूर्ण सुरक्षा तथा शान्ति पाता है, जिस तरह जमींदार सम्राट् के प्रति आत्मार्पण कर पूर्ण सुरक्षा का उपभोग करता है, उसी तरह साधक भी ईश्वर के चरणों में पूर्ण आत्मार्पण कर शाश्वत शान्ति तथा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर सकता है।

४६. जगत्, मन तथा प्रार्थना

जगत् मन-रूपी दर्पण में प्रतिबिम्ब मात्र है। मन दर्पण है। दर्पण के हटा लेने पर प्रतिबिम्ब बिम्ब से जा मिलता है। उसी प्रकार मन के आत्मा में विलीन होने पर यह जगत् अलग सत्ता के रूप में नहीं रह पाता। यह सारा जगत् ब्रह्म ही है। इस मन का अस्तित्व ही विपत्ति, कष्ट तथा क्लेशों का कारण है।

सुख का अनुभव आन्तरिक है। बाह्य पदार्थों में सुख नहीं है, वे मनुष्य में सुख का केवल उत्तेजन करते हैं। विषय-सुख आत्म-सुख का प्रतिबिम्ब मात्र है। इच्छा की पूर्ति होने पर मन आत्मा की ओर मुड़ता है तथा अल्प समय के लिए आत्मा में विश्राम कर सुख का अनुभव करता है। एकमेव आत्मा अथवा ब्रह्म ही सुख का स्वरूप है। प्रजा, कोष एवं राजा के बिना राजा राजा नहीं है। सुगन्धि के बिना फूल फूल नहीं है। जल के बिना नदी नदी नहीं है। उसी प्रकार ब्रह्मचर्य के बिना मनुष्य मनुष्य नहीं है।

क्षुधा, काम, भय तथा निद्रा-ये मनुष्य तथा जानवर, दोनों में पाये जाते हैं। ज्ञान तथा विचार ही मनुष्य को पशु से पृथक् करते हैं। जिनमें लिंग-विचार गहरा गड़ा हुआ है, वे करोड़ों जन्मों में भी वेदान्त को समझ कर ब्रह्म में संस्थित नहीं हो सकते।

प्रार्थना द्वारा मनुष्य ईश्वर के साथ योग-प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होता है। गुरुत्वाकर्षण अथवा आकर्षण शक्ति के समान यह भी सत्य है। प्रार्थना की शक्ति अनिर्वचनीय है। इसे पूज्य भाव तथा श्रद्धा एवं भक्ति से परिप्लावित हृदय से करना चाहिए।

जिसमें अनुकूल के प्रति राग नहीं तथा प्रतिकूल के प्रति द्वेष नहीं, जो आत्म-संयम का अभ्यास करता है, जो किसी प्राणी की हिंसा नहीं करता, वह सदाचारी तथा सन्त है।

विश्व-प्रेम ही सदाचार का आधार है, निष्काम सेवा भित्ति है; विवेक, वैराग्य, सद्‌गुणों का अर्जन तथा मुमुक्षुत्व ये स्तम्भ हैं, नित्य सुख ही प्रासाद है। इस प्रासाद में परम प्रभु का निवास है। उसकी पूजा कीजिए।

खोखली प्रार्थना तो अनुरणित पीतल पात्र के समान ही है। सच्ची प्रार्थना ही साधकों को अगला कदम दर्शाती है। इस कष्टकर मार्ग में प्रार्थना ही विश्वस्त साथी है।

४७. ईश्वर-चैतन्य के गुण

शान्तं शिवं सुन्दरम्; भास्वर, शुद्ध तथा अमर- यही है सर्वव्यापक आत्मा के चैतन्य का स्वभाव। इस अन्तर चैतन्य का साक्षात्कार करना ही आध्यात्मिक जीवन का सार है। मह

हर धर्म नित्य सत्य का ही नया विवेचन है। यह सत्य काल-प्रवाह से नष्ट हो गया था जिसे पुनः प्रकट किया गया। अतः साधुओं तथा पैगम्बरों की आवश्यकता है।

अन्नदान दाता के हृदय को शुद्ध करता है। जो अन्नदान करता है तथा दूसरों को खिलाने में आनन्द लेता है, वह विश्व-प्रेम तथा विश्व-बन्धुत्व को विकसित करता है। वह अनुभव करता है कि ईश्वर सभी के हृदय का निवासी है तथा सभी

को भोजन देता है। यह भाव कि वह इन लोगों में ईश्वर को ही खिलाता है, उसके हृदय को शीघ्र ही शुद्ध बना डालता है।

चोर चाँदनी में चोरी का काम कर सकता है; परन्तु इस कार्य के लिए चन्द्रमा दोषी नहीं हो सकता। उसी प्रकार मनुष्य के अहंकार-प्रधान कर्मों से ईश्वर दोषी नहीं होता, यद्यपि ईश्वर ही अहंकार को ज्योति प्रदान करता है।

यदि पैर में काँटा चुभ जाये, तो उसे दूसरे काँटे से सावधानीपूर्वक निकालते हैं; परन्तु काँटा निकल जाने के बाद दोनों काँटों को फेंक दिया जाता है तथा मनुष्य सुखी हो जाता है। उसी प्रकार दुर्गुण तथा अविद्या को सद्गुण तथा ज्ञान के द्वारा दूर करना चाहिए और शान्ति प्राप्त करने के अनन्तर उन दोनों का अतिक्रमण कर परमानन्द में निमग्न हो जाना चाहिए।

वीरता, उदारता, विशालता, दृढ़ता तथा उन सभी के प्रति उपेक्षा जिनसे चरित्र कलंकित होता है-इन गुणों का समावेश ही आत्मा की भद्रता है। स्वार्थ, कायरता, कापुरुषता तथा नीचता से मुक्ति ही भद्रता है। यह पूर्णता, चरित्र की महानता, हृदय की विशालता तथा श्रेष्ठता है। जिसका विचार उन्नत है, वही भद्र है। भद्रता मन तथा हृदय का सूक्ष्म अंश है जो ईश्वर से युक्त है।

४८. अविवेक, क्रोध तथा हृदय की भावना

अनुचित, विचारहीन, विवेक रहित कर्म से सभी विपत्तियों का जन्म होता है। दुःखों से विमुक्ति के लिए सदाचार ही राजपथ है। शुद्धता आपके अन्तर्बाह्य व्याप्त होनी चाहिए। प्रिय बनिए, दूसरों के प्रति उदार दृष्टिकोण रखिए, अपने व्यवहार में उदार बनिए।

क्रोध सबसे बड़ा शत्रु है। सन्तोष नन्दन वन है तथा शान्ति कामधेनु है। अतः क्षमाशील बनिए। आत्मा शरीर, प्राण, इन्द्रिय तथा बुद्धि से पृथक् है। यह स्वयं-प्रकाश, अपरिवर्तनशील, शुद्ध तथा निराकार है।

भाषाएँ बहुत हैं; परन्तु हृदय की भाषा तथा मानसिक चित्र एक ही है। गायों के रंग विभिन्न हैं; परन्तु दूध का रंग एक ही है। प्रचारक बहुत हैं; परन्तु उपदेशों का सार एक ही है। पूजा के तरीके भिन्न-भिन्न हैं; परन्तु ब्रह्म अथवा ईश्वर एक ही है।

४९. साधुता तथा हृदय की कोमलता

अहंकार को नष्ट करना ही साधुता का समारम्भ है। नित्य जीवन ही साधुता की चरम सीमा है। ब्रह्मचर्य ही साधुता की कुंजी है। विश्व-प्रेम ही साधुता की ज्योति है। सद्गुण ही साधुता का आभूषण है। समदृष्टि ही साधुता का लक्षण है। नियमित ध्यान ही साधुता का पथ है। यम-नियम साधुता की नींव हैं।

नित्य शान्ति तथा आनन्द के साम्राज्य को प्राप्त करने के लिए प्रेम ही साक्षात् मार्ग है। यह सृष्टि का जीवन है। मीरा, तुकाराम, गौरांग आदि भक्तों के पीछे यही प्रेरक था। अतः शुद्ध निष्काम प्रेम का विकास कीजिए। शुद्ध प्रेम दुर्लभ वस्तु है। शनैः शनैः इसका अर्जन कीजिए। द्वेष, संकीर्ण बुद्धि आदि सभी दुर्गुण दूर हो जायेंगे। प्रेम मन का महान् संशोधक है।

जब मनुष्य ज्ञान से प्रदीप्त होता है, तब उसकी बुद्धि ब्रह्म का ही एक अंश बन जाती है तथा वह ज्ञानी ब्रह्मज्ञान की अग्नि में कर्म के बन्धन को जला डालता है।

गायें विभिन्न रंग की होती हैं; परन्तु दूध एक ही रंग का होता है। उसी तरह ज्ञान भी एक ही है, यद्यपि शरीर विभिन्न हैं।

संसार के अरण्य में मोह की विस्तृत छाया में जीव रूपी साँड़ सो रहा है। वह पाप-पंक में फँसा हुआ है, अज्ञान उसे हाँक रहा है तथा विषय-भोगों के कोड़े उस पर बरस रहे हैं। वह कामना की दृढ़ रज्जु से बँधा हुआ है तथा समय-समय पर व्याधि रूपी मक्खियाँ उसे दंश मारती हैं।

यह साँड़ दुःखों के बोझ से कराह रहा है। आगे-पीछे की सतत गति से परिश्रान्त हो कर वह असंख्य जन्म-मृत्यु के गम्भीर स्रोत में जा गिरा है। ज्ञानी का काम अपने अनवरत प्रयास के द्वारा इस जीव रूपी साँड़ को उठाना है।

शास्त्रों के ज्ञान तथा विद्वत्ता के अतिरिक्त मनुष्य में द्रवित हृदय होना चाहिए। करुणा रहित तप, श्रद्धा रहित दान, शुद्धता रहित आध्यात्मिक साधना, सहानुभूति रहित हृदय, प्रार्थना रहित जीवन मरु-मरीचिका के समान ही निष्फल है।

प्रेम, करुणा, शुद्धता, सत्य तथा अहिंसा-ये ईश्वर-साक्षात्कार के लिए सीढ़ी हैं। सत्संग, सन्तोष, वैराग्य तथा धैर्य ही विभिन्न सोपान हैं। जिनसे मनुष्य ईश्वर के साम्राज्य में प्रवेश करता है।

५०. कला, जीवन तथा भक्ति

कला ईश्वर का वरदान है तथा कलाकार ईश्वर का ही अंश है। ईश्वर की स्तुति के लिए अपनी कला का प्रयोग कर कलाकार अपने ईश्वरत्व को विकसित करता है। वह अधिकाधिक ईश्वरीय बनता जाता है। इस प्रकार अपनी कला का सदुपयोग कर कलाकार संसार-सागर का सन्तरण कर सकता है।

दुःख का परित्याग कर नित्य सुख प्राप्त करना ही जीवन का लक्ष्य है। इस जगत् में जीवन दुःखयुक्त है। यदि आप दुःख, शोक तथा सन्ताप से दूर रहना चाहते हैं, तो आपको पुनर्जन्म का परित्याग करना होगा। इसके लिए ब्रह्मज्ञान ही एकमेव साधन है।

वास्तविक जीवन ईश्वरीय ही है; क्योंकि ईश्वर के सिवा अन्य किसी की सत्ता नहीं है तथा वह ईश्वर प्रेम है। दिव्य जीवन का स्वागत कीजिए। मनुष्य सदा असीम सुख की प्राप्ति तथा दुःख से पूर्ण विमुक्ति के लिए प्रयत्न करता रहता है। जब वह सांसारिक जीवन से सुख पाने की खोज में विफल रहता है, तब वह अपने मन को आनन्द-सागर भगवान् की ओर लगाता है।

सन्तुलित मन ही ज्ञान की परख है। शुद्धता सद्गुण की परख है। आत्मार्पण भक्ति की परख है। अहिंसा आचरण की परख है। ब्रह्मज्ञान आत्म-साक्षात्कार की परख है।

सद्ग्रन्थों में वर्णित हृदय मांसमय नहीं है। यह रहस्यमय ईश्वरीय तत्त्व है जो सचेतन है, जो अनुभव करता है, जो उन्नत भावनाओं से पूर्ण है तथा जो ईश्वर का वास-स्थान है।

नाम हृदय को शुद्ध बनाता है। नाम वासनाओं को विनष्ट करता है। नाम आपको मोक्ष प्रदान करता है। नाम सारे पापों को जला देता है। नाम सम्पत्ति प्रदान करता है। नाम कष्टों का निवारण करता है। नाम आपके लिए वरदान है। नाम ही आपके लिए सच्चा धन है। यदि आप एक लाख बार नाम का जप करेंगे, तो आपको असीम आध्यात्मिक धन की प्राप्ति होगी। ईश्वर का नाम असीम सुख प्रदान करता है। एक ही क्षण में सभी महान् पाप विलुप्त हो जाते हैं। अपने पापों के गट्ठर को खोलिए।

जो ईश्वर के नाम का आस्वादन करता है, जो आनन्दाश्रु की वृष्टि करता है, जिसको रोमांच हो उठता है, जो सभी भूतों के प्रति कारुणिक तथा दयालु है, जो यह जानता है कि उसके स्त्री, बच्चे, धन तथा सम्पत्ति सब-कुछ ईश्वर के ही हैं, वही महान् भक्त है।

५१. ईश्वर का बौद्धिक ज्ञान

ईश्वर मूल तथा सार है। वह ज्योतियों की ज्योति है। वह ज्ञान है। यह आनन्द है। यह अनुशासन, भक्ति तथा ध्यान से प्राप्य है। ईश्वर का बौद्धिक ज्ञान ईश्वर-साक्षात्कार के लिए प्रथम कदम है। ईश्वर के अस्तित्व में ज्वलन्त श्रद्धा रखिए, ऐसी श्रद्धा जो हर समय ईश्वर के अदृश्य हाथ का आपको अनुभव कराती है, वह श्रद्धा जो अपने साथ-साथ निश्चय भी रखती है।

ईश्वर के साथ योग-प्राप्ति के लिए सदाचार तथा चित्त शुद्धि प्रमुख आवश्यक तत्त्व हैं। सुन्दर मन तथा शुद्ध हृदय में ही ईश्वर की ज्योति स्पष्टतः प्रतिबिम्बित होती है।

जो अहंकार तथा राग से मुक्त हैं, जिन्होंने इन्द्रियों का दमन कर लिया है तथा जो ध्यान में लीन रहते हैं, ऐसे धर्मात्मा ही उस अमरानन्द तथा शाश्वत धाम की प्राप्ति के लिए समर्थ हैं जहाँ से किसी बन्धन की प्राप्ति नहीं होती।

जिस तरह मनुष्य खोये हुए पशुओं को उनके पद-चिह्नों से प्राप्त कर लेता है, उसी तरह मनुष्य आध्यात्मिक मूल्यों के पद-चिह्न से उस परिपूर्ण को प्राप्त कर लेता है।

विचार, विवेक, वैराग्य तथा ज्ञान के द्वारा मनुष्य को इस संसार-सागर का सन्तरण कर अमृतत्व के विशोक धाम को प्राप्त करना होगा।

ईश्वर मुक्ता तथा उसकी आभा है, वह बीज तथा जीवन है, वह कली तथा फूल है, वह मार्ग तथा लक्ष्य है। चींटी, हाथी तथा मनुष्य में एक ही आत्मा है। जिस रूप का भक्त चिन्तन करता है, उसी रूप में भगवान् उसे दर्शन देते हैं।

५२. अमृतत्व की खोज

अधिकार, सुख तथा यश, राजनीति तथा विषय-भोग; पाण्डित्य, धन तथा शुष्क विद्वत्ता का जीवन शाश्वत शान्ति तथा अमृतत्व प्रदान नहीं कर सकता।

जीवन महान् दुःख है। जीवन काल के असीम सागर में यात्रा है जहाँ प्रत्येक वस्तु सदा परिवर्तनशील है। जीवन अज्ञान के साथ घोर संग्राम है। जीवन मन तथा इन्द्रियों के साथ भयंकर युद्ध है।

मनुष्य अमृतत्व, ज्ञान, नित्य सुख तथा शान्ति के लिए लालायित रहता है। वह शुद्धता, भक्ति, विवेक, वैराग्य तथा ध्यान के द्वारा इन्हें प्राप्त कर सकता है।

इस क्षणभंगुर जगत् में प्रत्येक जीव के हृदय में नित्य सुख की प्राप्ति की एक प्रबल कामना है। हर व्यक्ति में, हर प्राणी में दुःख तथा शोक के प्रति गहरी अरुचि है। यह जीवन का प्रथम सार्वभौम रूप है।

जन्मान्ध व्यक्ति दिन और रात्रि को नहीं जानता है। उसी प्रकार जिस मनुष्य में विवेक नहीं है, वह नहीं जानता कि सत्य क्या है, असत्य क्या है; ठीक क्या है, गलत क्या है; लाभप्रद क्या है, हानिकर क्या है।

अन्धकार के बीच भी जीवन बना रहता है। भौतिक जीवन के मध्य में भी दिव्य जीवन मनुष्य को ईश्वरत्व की ओर ले जा रहा है।

योग तथा ध्यान के दबाव से मन के विविध मल निकल आते हैं; जिस तरह छह महीने तक बन्द पड़े हुए घर को बुहारने से काफी गन्दगी निकलती है। साधकों को अपने मन का निरीक्षण करना चाहिए। उपयुक्त साधनों द्वारा एक-एक कर सारे दुर्गुणों को दूर करना चाहिए।

५३. गौरांग तथा नाम का चमत्कार

शची देवी अपने पुत्र को पालने पर झुलाते समय हरि-नाम गाती थीं-"हरि हरि बोल, बोल हरि बोल, मुकुन्द माधव गोविन्द बोल।" इस प्रकार उन्होंने अपने पुत्र में भक्ति-माधुर्य का संचार कर जगत् के लिए गौरांग को जन्म दिया जिन्होंने बंगवासियों के दृष्टिकोण को ही बदल डाला। उसी प्रकार भाव सहित भगवान् के नाम को जपने से चमत्कार हो सकता है।

जिस प्रकार उपद्रवी घोड़ा सवार को भी अपने साथ भगा ले जाता है, उसी प्रकार क्रोधावेश भी जीव को भगा ले जाता है। कुशल सवार की भाँति जीव इन्द्रिय तथा आवेश रूपी घोड़ों को वशीभूत कर परमानन्द धाम को प्राप्त कर लेता है।

धर्म के क्षेत्र में एशियाई, अफ्रीकी, अमरीकी का भेद नहीं है। यहाँ तो सभी ईश्वर की सन्तान हैं। उसी ईश्वर को विश्व के महान् मन्दिर में पूजिए तथा धर्म के वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त कीजिए।

सत्य, अहिंसा, शुद्धता, निःस्वार्थता, सभी प्राणियों के प्रति प्रेम, आत्म-दमन, हृदय की विशालता, सहनशीलता तथा नीति-नियमों का पालन-यही व्यावहारिक धर्म है।

भला क्या है? इसके विषय में विचार ही नीति-शास्त्र है। यह भला-बुरा, उचित-अनुचित और सद्गुण-दुर्गुण की धारणाओं का विश्लेषण करता है। दार्शनिक विचार के लिए नैतिक अनुशासन पूर्वापेक्षित है।

५४. नैतिक जीवन तथा आवेगों का दमन

सदाचार, आत्म-विजय, करुणा, उदारता, सत्य की खोज, मानव जाति की सेवा, ध्यान तथा विचार यही दिव्य जीवन है।

सुख भीतर ही है। अन्दर दिव्य ज्योति पर अपनी दृष्टि जमाइए, जो सार्वभौम ज्योति की ही सार है, एकमेव वही विभासित है, वह शान्ति का प्रसार करती है। ध्यान के लिए, एकान्त में बैठने के लिए तथा अन्तर्योति पर ध्यान करने के लिए अधिक समय दीजिए।

हर मृत्यु यह याद दिलाती है, हर घण्टी यह कहती है, "अन्त निकट है।" हर दिन आपके बहुमूल्य जीवन के एक अंश को मिटा देता है। अतः सतत साधना में आपको संलग्न हो जाना चाहिए।

जब मन शान्त है, जब इन्द्रियाँ स्तब्ध हैं, जब बुद्धि काम करना बन्द कर देती है, तब आप मौन में प्रवेश करते हैं जहाँ अथाह शान्ति है।

उफनते आवेगों के नियन्त्रण से तथा राग-द्वेष, सुख-दुःख और हर्ष-शोक के विक्षेपों के दमन से शान्ति की प्राप्ति होगी।

५५. आदर्श

बल में भीम अथवा हनुमान् के समान बनिए। आकाश के समान विशाल मानस रखिए। समुद्र के समान गम्भीर बनिए। हिमालय के समान दृढ़ तथा स्थिर बनिए। चमेली के समान सुरभित बनिए।

आत्म-भाव के साथ मानव-सेवा, कारण कार्य का विवेक, वैराग्य, शम, आत्म-संयम, एकाग्रता, श्रद्धा, शुद्धता तथा निष्कामता के द्वारा मनुष्य परम ज्ञान को प्राप्त कर लेता है।

जिस प्रकार अग्नि में दाहकता स्वाभाविक गुण है, उसी प्रकार भगवान् शिव के नाम में पापों, संस्कारों तथा वासनाओं को जला कर शाश्वत शान्ति प्रदान करने का स्वाभाविक गुण है।

राम सर्वत्र है। राम सत् है। राम चित् है। राम आनन्द है। गुलाब की सुगन्धि राम है। पत्तियों में हरियाली राम है। सूर्य की भास्वरता राम है। दक्षिणी बयार के संगीत में राम का मधुर नाम मिला हुआ है। सर्वत्र उसका अनुभव कीजिए। सभी भूतों में उसका दर्शन कीजिए।

जो छिपे खजाने को नहीं जानता, वह उसे प्राप्त नहीं कर सकता, भले ही वह उस पर दिन में कई बार गुजरे। ठीक उसी प्रकार आप नित्य ही गम्भीर निद्रा में ब्रह्म में प्रवेश करते हुए भी ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर पाते। यदि ज्ञान के द्वारा अज्ञान को दूर कर दिया जाये, तो आप परम तत्त्व का साक्षात्कार कर लेंगे।

जिस तरह पद्म-पुष्प तथा हंस अपनी रक्षा के लिए जल पर ही निर्भर रहते हैं, उसी प्रकार भक्त अपने जीवन की रक्षा के लिए भगवान् पर ही निर्भर रहते हैं। वे भगवान् कृष्ण को अपना प्राणनाथ अथवा प्राणवल्लभ जानते हैं।

जिस प्रकार एक ज्योति से अनेक ज्योतियाँ जल उठती हैं, उसी प्रकार भागवत की आत्मा एक होते हुए भी ईश्वरीय शक्ति के द्वारा सभी शरीरों में प्रवेश कर जाती है।

जिस तरह तेल बीज में छिपा हुआ है, जिस प्रकार मक्खन दूध में, मन मस्तिष्क में, गर्भ गर्भाशय में, सूर्य बादलों में, अग्नि काष्ठ में, चीनी अथवा लवण जल में, सुगन्धि कलियों में, ध्वनि ग्रामोफोन रेकार्ड में, रक्त-कीटाणु रक्त में, स्वर्ण मुद्रा में गुप्त है, उसी तरह ईश्वर सभी वस्तुओं में गुप्त है।

५६. धर्म तथा प्रेम की महिमा

जहाँ सत्य है वहीं धर्म है, जहाँ लोभ है वहीं पाप है तथा जहाँ भक्ति है वहाँ भगवान् है।

सदाचार से बढ़ कर कोई धर्म नहीं है। सदाचार से शान्ति मिलती है। सदाचार जीवन तथा सम्पत्ति से भी अधिक मूल्यवान् है। सदाचार आनन्द का प्रवेश-द्वार है।

प्रेम में हृदय अधिकाधिक कोमल हो जाता है। प्रेम आनन्द का धाम है। यह एक आवश्यक वस्तु है। यह ईश्वर-भक्ति की चरम सीमा है।

प्रेम की गली अति सँकरी है। इसमें दो नहीं प्रवेश कर सकते। जहाँ 'मैं' है वहाँ ईश्वर नहीं, जहाँ ईश्वर है वहाँ मैं नहीं रहता।

मौन में ईश्वर की धीमी वाणी का श्रवण कीजिए। श्रद्धा की शक्ति का साक्षात्कार कीजिए। ईश्वर की कृपा का अनुभव कीजिए। मुक्ति-मार्ग से अवगत बनिए।

जिस तरह अग्नि ताप से, शीतलता हिम से, मनुष्य छाया से विलग नहीं हो सकते, उसी प्रकार राधा भी श्री कृष्ण से विलग नहीं हो सकीं। राधा की पूजा ही भगवान् कृष्ण की वास्तविक पूजा है। भगवान् श्री कृष्ण की पूजा में राधा की पूजा का समावेश है। राधा प्रेम तथा भक्ति की स्वरूप थीं।

सत्य अन्तर से बिना शब्द के बोलता है। यह मौन की भाषा है। यह ईश्वर की वाणी है। शुद्ध अन्तःकरण आनन्द प्रदान करता है। इसमें कष्ट नहीं है।

५७. आत्म-संयम के घटक

आत्म-संयम सभी व्रतों में उत्तम है। मधुर वाणी, उदारता; द्वेष, क्रोध तथा घृणा का अभाव, धैर्य, तितिक्षा, क्षमा, अहिंसा, शील, मुदिता, सदाचार, सत्य, आर्जव तथा दृढ़ता-इन सभी का योग ही आत्म-संयम है।

कोयले में आग सुलगने में देर लगती है; परन्तु बारूद पल मात्र में ही आग पकड़ लेती है। उसी तरह मलिन हृदय में ज्ञानाग्नि बहुत समय में प्रदीप्त होती है; परन्तु शुद्ध हृदय में पल मात्र में ही ज्ञानाग्नि जल उठती है। फूल तोड़ने में जितना समय लगता है, उससे भी कम समय में आत्मज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।

५८. मौन, इसका अर्थ तथा इसका स्थान

मौन कहाँ है। क्या यह जंगल में है या गुहा में? यह हृदय में है। मौन क्या है? मौन चैतन्य है, मौन आनन्द है, मौन शान्ति है।

किस तरह मौन की प्राप्ति हो ? विचारों तथा आवेगों को शान्त कर मौन में प्रवेश कीजिए।

५९. मध्यम मार्ग

आध्यात्मिक मार्ग सूक्ष्म मार्ग है। यह आपको सीधे ईश्वर की ओर ले जाता है। इससे विचलित न होइए। अति की ओर न जाइए।

आहार, निद्रा, कर्म तथा विहार में मध्यम मार्ग को ग्रहण कीजिए। किसी की भी अवहेलना न कीजिए। किसी कार्य में भी अति न कीजिए।

अति भोग से आप क्लान्त हो जायेंगे। अति तपस्या से आप मनोव्याधि प्राप्त करेंगे। अति आहार से रोग उत्पन्न होगा। अति उपवास से आप दुर्बल हो जायेंगे। अति कार्य से आप थक जायेंगे। आलस्य से तो आप जीवन में ही मृतक बन जायेंगे।

अतः स्वर्णिम मध्यम मार्ग का अनुगमन कीजिए। यही मार्ग है जिससे मनुष्य महापुरुष बनते हैं तथा महापुरुष ईश्वर बन जाते हैं।

६०. उन्नतिशील जीवन

हर दिन कुछ अधिक बुद्धिमान् बनना,
मन तथा शरीर को अपने अनुशासन में रखना,
अपने आन्तरिक जीवन को शुद्ध तथा सबल रखना,
अपने जीवन को षड्रिपुओं से मुक्त रखना,
अपने हाथों को बुराई से बचाये रखना,
घृणा, द्वेष तथा मद से उपरत रहना,
प्रेम-द्वार को प्रशस्त रखना,

सभी से मुदित-हृदय से मिलना,
जीवन की विषमताओं को समता में परिणत करना,
दूसरों के भार में हाथ बंटा कर उसकी थकावट कम करना,
भटके हुए पथिकों को मार्ग दिखाना,
जो-कुछ हमारे पास है, वह हमारा नहीं है-ऐसा जानना,
हम कभी भी अकेले नहीं हैं- ऐसा अनुभव करना,
इनके लिए ही हम दिनानुदिन प्रार्थना करेंगे,
और तभी हमारा यह जीवन उन्नतिशील बनेगा।

६१. कल्याण-पथ

सत्य-सम्भाषण तथा अपने दैनिक कर्मों में सत्य के अभ्यास से सत्य को प्राप्त कीजिए।

धार्मिक जीवन के लिए अभिरुचि बनाये रखिए।

यदि आप जिह्वा को वश में कर लें, तो सारी इन्द्रियाँ वशीभूत हो जायेंगी।

अहंकार का त्याग ही सच्चा त्याग है।

विषय-सुख कदापि पूर्ण नहीं है। यह अच्छी तरह जान लीजिए।

किसी भी परिस्थिति में ईश्वर आपको क्यों न रखे, यह आपकी उन्नति के लिए ही है। कृपया हतोत्साह न होइए।

बाधाओं की चिन्ता न कीजिए। वे सभी दूर हो जायेंगी।

सभी प्रकार के वातावरण में आप अनुकूल तथा यथा-व्यवस्थित बनिए। आप शान्ति तथा शक्ति प्राप्त करेंगे।

जहाँ आप हैं, वहीं आप योग का अभ्यास कर सकते हैं।

सच्चे बनिए। सत्यपरायण बनिए। सावधान बनिए। सतर्क बनिए। वीर बनिए। सदाचारी बनिए। सफलता तथा महिमा आपको प्राप्त होगी।

इस जीवन के ठीक मूल्य को समझ लीजिए। यह पूर्ण नहीं है। इसमें सदा अभाव की चेतना बनी रहती है।

उस बात की प्रतिज्ञा आप न कीजिए जिसका पालन आप न कर सकें। यदि प्रतिज्ञा करें, तो उसे हर हालत में पूरा करें।

दूसरे क्या कहते हैं अथवा क्या विचारते हैं, इसके विषय में कदापि चिन्ता न कीजिए। ठीक कर्म कीजिए। शुद्ध अन्तःकरण रखिए तथा सुखपूर्वक विचरण कीजिए।

वह धन्य है जो इस सन्तापयुक्त भौतिक जीवन से ऊब चुका है जो दिव्य जीवन के लिए लालायित है। द्विगुणित धन्य वह है जिसमें विवेक तथा वैराग्य है, जो महात्माओं के पास सत्संग करता है, जो दिव्य जीवन यापन करने के लिए प्रयत्नशील है। त्रिगुणित धन्य वह है जो सदा ईश्वर में ही निवास करता है, जो सर्वत्र हर चेहरे में, हर भावना में, हर वृत्ति में, हर परमाणु में ईश्वर की सत्ता का अनुभव करता है।

६२. श्री शंकराचार्य का मानसिक पूजा-श्लोक

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहम्,

पूजा ते विषयोपभोग रचना निद्रा समाधिस्थितिः ।
संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो,
यद्यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ।।

ध्यान के प्रारम्भ में इस मन्त्र का पाठ कीजिए :

ॐ तत् सत् !

६३. ध्यान के लिए अवधूतगीता के कुछ महत्त्वपूर्ण श्लोक

जन्ममृत्युर्न ते चित्तं बन्धमोक्षौ शुभाशुभौ ।
कस्त्वं रोदिषि रे वत्स, नामरूपं न ते न मे ।।१।।

अहमेवाव्यय अनन्त शुद्धविज्ञानविग्रहः ।
सुखं दुःखं न जानामि कथं कस्यापि वर्तते ।।२।।

वेदान्तसारसर्वस्वं ज्ञानं विज्ञानमेव च ।
अहं आत्मा निराकारः सर्वव्यापी स्वभावतः ।।३।।

न मानसं कर्म शुभाशुभं मे न कायिकं कर्म शुभाशुभं मे।
न वाचिकं कर्म शुभाशुभं मे ज्ञानामृतं शुद्धं अतीन्द्रियोऽहम् ।।४।।

महदादि जगत्सर्वं न किंचित् प्रतिभाति मे।
ब्रह्मैव केवलं सर्वं कथं वर्णाश्रमस्थितिः ।।५।।

६४. विजयी जीवन

विवेकपूर्ण जीवन बिताइए। सुखी जीवन बिताइए। दूसरों की सेवा के लिए जीवन बिताइए। दूसरों को उन्नत बनाने के लिए जीवित रहिए। सन्मतिपूर्ण हृदय रखिए। आध्यात्मिक मार्ग में अपने से छोटे बन्धुओं को सहायता दीजिए। उनके मार्ग पर प्रकाश डालिए। उनसे पूर्णता की आशा न कीजिए। उनके प्रति दयालु बनिए। जिस तरह आप अपनी साधना कर रहे हैं, उसी तरह वे यथाशक्ति साधना कर रहे हैं। उनकी सहायता कर के आप भी उन्नत होंगे।

सत्य के साम्राज्य में गम्भीर रूप से प्रवेश कीजिए। सत्य के साक्षात्कार के लिए मुमुक्षुत्व रखिए। सत्य के लिए अपना सर्वस्व त्याग कर डालिए। सत्य के लिए मरिए। सत्य बोलिए। सत्य ही जीवन तथा शक्ति है। सत्य अस्तित्व है। सत्य ज्ञान है। सत्य आनन्द है। सत्य मौन है। सत्य शान्ति है। सत्य ज्योति है। सत्य प्रेम है। सत्य को जानने के लिए जीवन रखिए। वह सत्य सदा आपका पथ-प्रदर्शन करे। वह सत्य आपका केन्द्र, आदर्श तथा लक्ष्य बन जाये।

६५. आत्मवृक्ष, साधना तथा समाधि

आत्मा बीज है। अहिंसा, ब्रह्मचर्य तथा सत्य-ये वायु, जल तथा ज्योति हैं।

धर्म मूल है, आध्यात्मिक ज्ञान का प्रसार तथा निष्काम सेवा तना तथा शाखाएँ हैं।

ईश्वर के नाम कोमल पल्लव हैं।

ध्यान में डुबकी लगाना कली है।

निर्विकल्प समाधि पुष्प है।

ब्रह्म में पूर्ण आनन्द फल है।

बीज से फल की प्राप्ति होना ही साधना है।

अध्याय २२:साधना-गीत

१. साधना-गीत

सीताराम सीताराम सीताराम बोल,
राधेश्याम राधेश्याम राधेश्याम बोल ।
साधना है मन को स्थिर करना तथा उसे ईश्वर में लगाना।
इससे मिलता है मुक्ति, आनन्द, शान्ति, अमरत्व।
किसान ज्यों हल जोतता है त्यों ही संलग्न रहो।
उत्साह रखो, स्थिर रहो अपनी नित्य साधना में।
तन्द्रा, आलस्य तथा मनोराज्य नष्ट करो,
रात्रि में हलका आहार करो, निद्रा को भगा दो।
जप, कीर्तन, ध्यान में नियमित बनो।
साधना में नियमितता है अति आवश्यक ।
मुंज के समान आत्मा को पंचकोशों से पृथक् करो।
शान्ति, मुदिता, सन्तोष, निर्भयता,
आध्यात्मिक उन्नति के ये हैं परिलक्षक।

२. साधना का सारांश

स्वार्थ त्यागिए	नारायण	काम हटाइए	सदाशिव
इन्द्रिय-दमन कीजिए	नारायण	सत्कर्मी बनिए	सदाशिव
सेवा, प्रेम कीजिए	नारायण	अहंकार नष्ट कीजिए	सदाशिव
हृदय शुद्ध बनाइए	नारायण	धारणा, ध्यान कीजिए	सदाशिव
वीर बनिए, प्रसन्न रहिए	नारायण	निष्काम सेवा से	सदाशिव
सहनशील बनिए	नारायण	उदार बनिए	सदाशिव
दानी बनिए	नारायण	सच्चा बनिए	सदाशिव
सदय कर्म कीजिए	नारायण	सरल तप कीजिए	सदाशिव

समय नष्ट न कीजिए	नारायण	कटु शब्द न बोलिए	सदाशिव
अश्लील शब्द न बोलिए	नारायण	झूठ न बोलिए	सदाशिव
चार बजे प्रातः उठिए	नारायण	जप कीजिए	सदाशिव
ईश्वर के रूप पर	नारायण	नियमित ध्यान कीजिए	सदाशिव
उनके गुणों का चिन्तन	नारायण	वह सर्वव्यापक है	सदाशिव
वह सर्वशक्तिमान् है	नारायण	वह सर्वज्ञ है	सदाशिव
वह सर्वान्तर्वासी है	नारायण	वह करुणा-सागर है	सदाशिव
वह प्रेमपूर्ण है	नारायण	वह सुख-निधान है	सदाशिव
अहंकार नष्ट करना	नारायण	सब कामना त्यागना	सदाशिव
सब आसक्ति त्यागना	नारायण	संन्यास का रहस्य है	सदाशिव
आप संसार में रह कर	नारायण	ईश्वर-दर्शन करेंगे	सदाशिव
संसार में रहिए	नारायण	पर संसारी न बनिए	सदाशिव
सांसारिकता त्यागिए	नारायण	वीर्य-रक्षा कीजिए	सदाशिव
यही सच्चा धन है	नारायण	यही सारी शक्ति है	सदाशिव
आध्यात्मिक मार्ग में	नारायण	अधूरेपन को स्थान नहीं	सदाशिव
पूर्ण पालन कीजिए	नारायण	सारे यौगिक नियम	सदाशिव
कितनी देर तक रहेंगे	नारायण	गृहस्थ-बन्धन में	सदाशिव
उन्नति कीजिए	नारायण	ऊँचा उठिए, जानिए	सदाशिव
भविष्य में न कहिए	नारायण	'यह मेरी स्त्री है'	सदाशिव
'यह मेरा पुत्र है'	नारायण	'यह मेरा घर है'	सदाशिव
आत्मा का अनुभव कीजिए	नारायण	सारे रूपों में	सदाशिव
हर जगह	नारायण	जीवन को अनुशासित कीजिए	सदाशिव

व्यर्थ बातें त्यागिए नारायण उपन्यास न पढ़िए सदाशिव

आपको पर्याप्त समय मिलेगानारायण साधना के लिए सदाशिव

सिनेमा न जाइए नारायण ताश न खेलिए सदाशिव

धूम्रपान न कीजिएनारायण शराब न पीजिए सदाशिव

यूरोप के साधक भी नारायण धूम्रपान, मांस त्याग दिये सदाशिव

पर कुछ हिन्दू साधक नारायण अभी भी पीते हैं सदाशिव

वे अभी भी दुर्बल हैं नारायण कितनी दयनीय अवस्था है सदाशिव

अब जप कीजिए नारायण बाद में ध्यान सदाशिव

तब कीर्तन कीजिएनारायण तब आसन कीजिए सदाशिव

तब गीता पढ़िए नारायण तब गरीबों की सेवा कीजिए सदाशिव

तब सत्संग कीजिएनारायण तब टहलने जाइए सदाशिव

तब प्राणायाम कीजिए नारायण तब मन्त्र लिखिए सदाशिव

कार्यक्रम का पालन कीजिए नारायण पूर्ण रूप से सदाशिव

घूस न लीजिए नारायण एक पैसा भी सदाशिव

यह बुरा है नारायण यह बहुत ही बुरा है सदाशिव

यह बहुत ही बुरा है नारायण यह अति बुरा है सदाशिव

इससे बिगड़ जायेगा नारायण आपका नाम-चरित्र सदाशिव

यह ले जायेगा आपको नारायण निम्न योनि में सदाशिव

कलंकित होना नारायण मृत्यु से भी बुरा है सदाशिव

यह लज्जाजनक है नारायण यह अपमानजनक है सदाशिव

यह अपयशकारक है नारायण यह स्वर्ग-अवरोधक है सदाशिव

सात्त्विक आहार कीजिए	नारायण	मांस, लहसुन त्यागिए	सदाशिव
प्याज भी छोड़िए	नारायण	आपका मन शुद्ध होगा	सदाशिव
रात्रि में	नारायण	हलका आहार कीजिए	सदाशिव
या दूध-फल लीजिए	नारायण	आप उठ सकेंगे	सदाशिव
प्रातः सबेरे	नारायण	ध्यान के लिए	सदाशिव
नित्य डायरी लिखिए	नारायण	आप उन्नति करेंगे	सदाशिव
इससे सहायता मिलेगी	नारायण	मन को वश में करने में	सदाशिव
अपने संकल्पों पर टिकिए	नारायण	जरा भी न डिगिए	सदाशिव
अविचल रहिए	नारायण	इच्छा-शक्ति बढ़ेगी	सदाशिव

३. आध्यात्मिक उपदेश

सावधान बनिए तथा वासनाओं को नष्ट कीजिए। भला बनिए तथा भले कर्म कीजिए। दृढ़ बनिए तथा इन्द्रियों का दमन कीजिए। शान्त बनिए तथा सत्य का साक्षात्कार कीजिए। प्रसन्न बनिए, मुस्कराइए तथा हँसिए। वीर बनिए तथा मार्ग का अनुगमन कीजिए। नम्र बनिए तथा अभिमान को मार डालिए। शुद्ध बनिए तथा काम को नष्ट कर डालिए। अपने ध्यानाभ्यास में नियमित बनिए। अपनी साधना में स्थिर बनिए। अपने प्रति सच्चे बनिए। अपने गुरु के प्रति सच्चे बनिए। सभी भूतों के प्रति दयालु बनिए। निष्काम, ममता रहित तथा क्रोध रहित बनिए। अपने आन्तरिक जीवन में सम्पन्न बनिए। दैनिक जीवन में कार्यरत रहिए। अपनी वाणी में सत्यवादी बनिए। सभी लोगों के प्रति उदार बनिए। सदाचारी, भद्र तथा शिष्ट बनिए। विचारशील, स्पष्टवादी तथा दानशील बनिए। योगाभ्यास करते समय धैर्य रखिए। सुख-दुःख में समत्व बुद्धि रखिए। आत्मा में निवास कर शान्त रहिए। आत्मा में स्थिर हो कर आनन्द प्राप्त कीजिए।

४. सच्ची साधना

(सुर-हिन्दुस्तानी भैरवी सुन प्यारे मोहन)

करो सच्ची साधना, हे मेरे सौम्य,
(करो सच्ची साधना....)

साधना-साधना-साधना-साधना।

जन्म-मृत्यु से मुक्त बनने के लिए, परमानन्द प्राप्ति के लिए,

मैं बताऊँगा निश्चित मार्ग, सुनो हो कर सावधान,
(करो सच्ची साधना....)

प्रथम प्राप्त करो साधना-चतुष्टय,
तब जाओ गुरु-चरणों में,
श्रवण, मनन के अनन्तर, करो अभ्यास निदिध्यासन,
(करो सच्ची साधना...)

पहले दूर करो पुराना देहाध्यास, करो शिवोऽहम् भावना का अभ्यास,
तब दूर करो आवरण, साक्षात्कार करो आत्मस्वरूप ।
(करो सच्ची साधना...)

५. उपदेश

रखो उदार शुद्ध अन्तःकरण, शिष्ट आचरण, सत्य का स्पष्ट ज्ञान,
जीवन के प्रति विस्तृत दृष्टिकोण, नयी आध्यात्मिक दृष्टि,
शुद्ध ग्रहणशील मन, गुरु-भक्ति की भावना,
शिशुवत् स्वभाव, साधुओं की सेवा-भावना,
दुःखियों के लिए शुद्ध, द्रवित हृदयधर्म की रक्षा के लिए वीरता।

६. साधना-सप्ताह के लिए संगीत

राम भजो राम भजो राम भजो जी; राम कृष्ण गोविन्द गोपाल भजो जी।

(१)

आप आये हैं ऋषिकेश करने उग्र साधना,
मत याद कीजिए सब्जी और गरम पकौड़ा।
आप आये हैं साधना-सप्ताह में करने योग,
मत सोचिए दूध, फल और दही-बड़ा।
आप आये हैं ऋषिकेश करने योगाभ्यास,
मत सोचिए चपाती खिचड़ी और परौंठा।
आप आये हैं ऋषिकेश करने तपश्चर्या,
मत याद कीजिए लड्डू, पेड़ा, गरमागरम जलेबी,
क्या लज्जा नहीं आती बारम्बार इन्द्रिय-सुख लेने में?
कृपया सीखिए शिक्षा निम्न जानवरों से
बस, बस, बस, खाना-पीना अब बस,

उठो जागो, उठो जागो, पलक न गिराओ,
बस, बस, बस, काफी हुआ गपशप,
बस, बस, बस, अब करो बस उपन्यास, समाचार-पत्र।

(२)

ठीक समय पर जाओ सत्संग, प्रवचन में,
समय निष्ठा से पाओगे सफलता, सम्पत्ति ।
समय है गतिमान, समय है बहुमूल्य, समय है सम्पत्ति,
हर क्षण को लगाओ आध्यात्मिक साधना में।-
चिन्ता न करो सुन्दर आहार तथा आराम के लिए,
सदा लगे रहो जप-कीर्तन-ध्यान में।
रूखा-सूखा थोड़ा खाके,
आसन में बैठो,
हरि स्मरण, हरि जपो, हरि ध्यान करो।

कदम-कदम करके योग-सीढ़ी पर चढ़ो,
आप शीघ्र पायेंगे निर्विकल्प समाधि।

यही लक्ष्य है, यही आदर्श है, यही है केन्द्र,
यहाँ आप पायेंगे नित्य सुख और शान्ति ।

(३)

इस साल बहुत गायें मर गयीं, दूध नहीं मिलता,
गंगा जल पान कर सुखी बनो।

आवश्यकता के बल से भी प्रकृति को लौटो,
दूध बिना चाय पिओ और सुखी बनो।

आप आटा-दाल भी नहीं पा सकते, अन्न पर नियन्त्रण है
अन्न का मूल्य बहुत ही बढ़ा हुआ है।

सारे भारत में महान् विपत्ति छायी है,
ईश्वर से प्रार्थना करो विश्व-शान्ति के लिए।

ॐ तत्सत् ॐ तत्सत् ॐ तत्सत् ॐ,
ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॐ ।

हरि ॐ तत्सत्,
श्री ॐ तत्सत्, शिव ॐ तत्सत् ॐ।

७. साधक का गीत

मैं हर दिन एक नयी वस्तु सीखूँगा।
मैं हर दिन एक शुभ कर्म करूँगा।

मैं नित्य आसन करूँगा तमस् हटाने के लिए।
मैं सूर्य नमस्कार करूँगा आलस्य भगाने के लिए।
मैं सद्‌गुण का अभ्यास करूँगा
मन को सात्त्विक बनाने के लिए।
मैं मन को बनने न दूँगा ऋणात्मक या तामसिक ।

मैं सदा सावधान और संलग्न रहूँगा।
मैं सदा आगे बढूँगा जीवन-लक्ष्य पाने के लिए।

मैं सदा उसमें न रमूँगा, जिसमें सांसारिक रमते हैं।
मैं अपने मन को उनकी नकल न करने दूँगा।

मैं युधिष्ठिर के समान बनने का प्रयत्न करूँगा।
मैं उस मार्ग पर चलूँगा जिस पर बुद्ध गये हैं।

मैं वैसा जीवन बिताऊँगा जैसा कबीर, नानक, रामदास ने बिताया
मैं भीष्म, शंकर, गुरु दत्तात्रेय का आदर्श अपनाऊँगा।

मैं भगवान् बुद्ध तथा पैगम्बर मुहम्मद के उपदेश याद करूँगा।
मैं भगवान् कृष्ण तथा व्यास के उपदेशों पर चलूँगा।

मैं असावधान बन कर ऐसा न कहूँगा, "खतरा नहीं है।"
मैं मूढ़ बन कर ऐसा न कहूँगा, "मैं पूर्ण सुरक्षित हूँ।"

मैं सभी दिशाओं से स्वयं को बचाऊँगा।
माया के सूक्ष्म कार्यों से किलेबन्दी करूँगा।

अविद्या के प्रलोभनों तथा जाँचों से बचने के लिए
मैं बल तथा शान्तिपूर्वक अपनी रक्षा करूँगा।

भविष्य में ऐसा न कहूँगा कि "एक बार के लिए ही इसका उपभोग करूँगा।"

यह 'एक बार' बढ़ कर हजार बार हो जायेगा।
यह 'एक बार' मुझको अन्धे खड्ड में गिरायेगा।

यह 'एक बार' मुझको पतन में डालेगा।
मैं कदापि न कहूँगा, "शनैः शनैः" और शुभ कर्म में विलम्ब न करूँगा।

सुअवसर एक बार आते तथा शीघ्र चले जाते हैं।
ईश्वर की कृपा, पूज्य गुरु की कृपा से मैंने माया की चाल जान ली है।

मैं भविष्य में कठिन तप तथा ध्यान करूँगा।
मैं अपने संकल्प दृढ़ बनाऊँगा तथा शिव-त्रिशूल धारण करूँगा।

८. साधना

सावधान बन कर कामनाओं को नष्ट कीजिए।
भला बनिए तथा भले कर्म कीजिए।

दृढ़ बनिए तथा इन्द्रियों का दमन कीजिए।
शान्त बनिए तथा सत्य का साक्षात्कार कीजिए।

प्रसन्न बनिए, मुस्कराइए तथा हँसिए।
वीर बनिए तथा मार्ग पर चलिए।

नम्र बनिए तथा अभिमान को नष्ट कीजिए।
शुद्ध बनिए तथा काम को मार गिराइए।

ध्यान में नियमित बनिए। साधना में स्थिर बनिए।
अपनी आत्मा के प्रति सच्चे बनिए। अपने गुरु के प्रति सच्चे बनिए।

सभी भूतों के प्रति दयालु बनिए। निःस्वार्थ, ममता रहित, क्रोध रहित बनिए।
अपने आन्तरिक जीवन में धनी बनिए, अपने दैनिक जीवन में सक्रिय बनिए।

अपनी वाणी में सत्यवादी बनिए। लोगों के प्रति उदार बनिए।
धार्मिक, सुशील तथा शिष्ट बनिए। विचारशील, सरल तथा दानी बनिए।

योगाभ्यास करते समय धीर बनिए। सुख-दुःख में सन्तुलित बनिए।
आत्मा में निवास कर शान्त बनिए। आत्मा को प्राप्त कर सुखी बनिए।

अध्याय २३ :साधकों के कुछ अनुभव

१. साधना का उद्देश्य

मनुष्य अपने नैसर्गिक अनुभव से सन्तुष्ट नहीं है, यही कारण है कि वह अपनी बुद्धि की सहायता ले कर अपने अनुभव क्षेत्र को विस्तृत बनाना चाहता है। विचार से विवेक बढ़ता है। विवेक अनुभव की गहराई तथा सीमा को मापता है। मनुष्य की अशान्तात्मा सुखद वस्तु के शाश्वत अनुभव की खोज में सदा संलग्न रहती है।

नैसर्गिक परिपूर्तियों के सीमित क्षेत्र में जीवन का वास्तविक सुख नहीं पाया जा सकता। वह अनुभव जो शाश्वत है, उस वस्तु में नहीं पाया जा सकता जो अशाश्वत है। असीम से ही असीम सुख की प्राप्ति हो सकती है। वह असीम तत्त्व मनुष्य की अन्तरात्मा ही है। यह सभी भूतों में एक अखण्ड चैतन्य है। इस चैतन्य का साक्षात्कार ही जीवन का लक्ष्य है।

इन्द्रिय-प्रवृत्ति-प्रधान नैसर्गिक स्तर का बुद्धि-विवेक-प्रधान मानव-स्तर में रूपान्तरण करना होगा तथा मानव-स्तर से आन्तरिक आध्यात्मिक अनुभव के अपरोक्ष स्तर को प्राप्त कर साक्षात्कार करना होगा।

धारणा, ध्यान, सत्य, निष्काम सेवा, निःस्वार्थ प्रेम, शुद्धता, पवित्रता, आत्म-संयम आदि सद्गुणों का अर्जन तथा इनके विपरीत दुर्गुणों का दमन-ये आध्यात्मिक उन्नति के लिए आवश्यक हैं। यही साधना का मुख्य अंग है।

इन साधनाओं में तरह-तरह के अनुभव प्राप्त होते हैं। ये अनुभव साधक की मनोवैज्ञानिक संवेद्यता पर निर्भर हैं। ये अनुभव साधना के मापदण्ड नहीं हैं। इससे अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि मनुष्य में दैवी प्रकृति का विकास हो तथा उसकी अभिव्यक्ति बौद्धिक, प्राणिक तथा भौतिक स्तर पर हो।

नीचे जर्मन साधक हैन्स फ्रैंक की आध्यात्मिक डायरी का सारांश दिया जा रहा है।

हैन्स फ्रैंक नित्य-प्रति चार बजे प्रातः उठते हैं तथा पन्दरह मिनट तक अपने इष्टदेवता पर ध्यान करते हैं, अपने इष्टमन्त्र की दो सौ माला जप करते हैं, आधे घण्टे तक धार्मिक साहित्य का अध्ययन करते हैं, पन्दरह मिनट तक आसन का अभ्यास करते हैं तथा १२० बार प्राणायाम करते हैं। वे एक घण्टे के लिए मौन धारण करते तथा धैर्य, मनोबल एवं अन्य सद्गुणों पर धारणा का अभ्यास करते, उन्हें विकसित करते तथा अधैर्य, उद्वेग तथा दुर्बलताओं को दूर करने के लिए प्रयत्न करते हैं।

हैन्स फ्रैंक को बहुत से अनुभव मिले हैं। वे लिखते हैं-

"सन्ध्या के समय जब मैं प्रार्थना करता था कि ईश्वर मुझे अपने दर्शन दे, तो मैंने एक भास्वर ज्योति देखी। वह सूर्य के समान ही प्रकाशमान थी। वह ज्योति मेरे बायें भाग से निकल कर मेरे सामने कुछ देर तक ठहरी रही।

"ग्यारह दिनों के पश्चात् सायंकालीन ध्यान के समय वह ज्योति पुनः प्रकट हुई। वह बहुत ही प्रकाशमान थी। मेरे पैरों में विचित्र संवेदना हो रही थी। वह ज्योति बढ़ती रही। वह ढाई घण्टे तक बनी रही।

"दूसरे दिन मेरे समक्ष नीली ज्योति का वृत्त प्रकट हुआ; सारा कमरा प्रकाशमान हो चला।

"चार दिन के पश्चात् जब मैं धैर्य, सुख तथा उत्साह पर ध्यान कर रहा था, मैंने अपने चतुर्दिक् महान् शान्ति का अनुभव किया। मेरे मन में अचानक यह विचार उठा- 'मैं क्या करूँ?' तुरन्त मेरे सामने एक पुस्तक प्रकट हुई; परन्तु ज्यों ही मैं पढ़ने लगा, दो हरे-पीले रंग की और पुस्तकें भी प्रकट हो गयीं। उनसे पहली पुस्तक छिप गयी। मैं पहली पुस्तक का नाम पढ़ना चाहता था, परन्तु पुस्तक स्वयं मेरे समक्ष आयी तथा उस पर कुछ भी न लिखा था। मुझमें यह भावना उठी कि मैं बाद में इसको जान सकूँगा।"

यहाँ इन अनुभवों की लम्बी व्याख्या देने की आवश्यकता नहीं है। ये साधक की उन्नति के लक्षण हैं। यदि साधक इनसे विक्षिप्त न हो कर संलग्नतापूर्वक साधना करता रहे तो वह परम साक्षात्कार प्राप्त कर सकता है।

श्री हैन्स फ्रैंक के पत्रों का उत्तर निम्नांकित रूप से दिया गया था, उनसे आप भी लाभ उठा सकेंगे :

"आप पन्दरह मिनट नित्य-प्रति इष्टदेवता पर ध्यान कर रहे हैं, उसमें इस प्रकार परिवर्तन लाइए तथा समय में वृद्धि लाइए।

"अपने सामने इष्टदेवता का चित्र रखिए। सुखासन पर बैठ जाइए। रीढ़ तथा शिर को एक-सीध में रखिए। स्थिर दृष्टि से चित्र की ओर देखिए तथा अपनी आँखों को बन्द कर दोनों भौंहों के बीच उसका मानसिक चित्रण कीजिए। मानसिक चित्र के विलीन हो जाने से पर आँखें खोल दीजिए तथा कुछ देर के लिए पूर्ववत् ध्यान जमाइए। पुनः आँखें बन्द कर वैसा ही कीजिए।

"आप सुख, पवित्रता आदि सद्गुणों पर स्वतन्त्र रूप से ध्यान कर सकते हैं; परन्तु ध्यान करते समय उन गुणों को इष्टदेव से सम्बन्धित करने पर अधिक लाभ होगा। इसी उद्देश्य को ले कर मानसिक जप को भी ध्यान से युक्त करते हैं।

"किसी विशेष रूप पर ध्यान करने मात्र से ही अधिक लाभ नहीं होगा, क्योंकि भौतिक रूप आपके ध्यान के सारे दायरे को एकाग्र नहीं बना सकता। ध्यान में सारे उपर्युक्त सम्बन्ध भी निहित होने चाहिए।

"आध्यात्मिक साधना का उद्देश्य यह है कि साधक की प्रकृति में- उसमें आदर्श, प्रवृत्ति, विचार तथा कर्म में अनुकूल परिणति हो।

"मनुष्य में दैवी प्रवृत्ति को विकसित करना ही साधना का उद्देश्य है। दैवी प्रवृत्तियाँ, मानव-प्रवृत्तियों के विपरीत नहीं हैं। वे मानव-प्रवृत्तियों का चरम विकास है।"

२. साधकों के अनुभव

१. "चार बजे प्रातः सो कर उठते ही मेरे मस्तिष्क में एक चमक उठी, वह श्री स्वामी शिवानन्द जी की प्रकाशमान मूर्ति थी। इसके साथ-साथ परम शान्ति और सुख का अनुभव हुआ। मैंने उस शिशु के सरल सुख का अनुभव किया जो

अपनी माँ की गोद में पड़ा हो। वह सुख महान् था। उसके चले जाने पर मुझे दुःख हुआ। स्वामी जी ने मुझे वह अनुभव प्रदान किया होगा।"

- बी. ए. सलेम

२. "अँधेरे में मैं ताराओं के समान नीली ज्योतियों को देखता हूँ। प्रातः प्रार्थना करते समय दोनों भौंहों के बीच में एक नक्षत्र देखता हूँ। यह नीला जाज्वल्यमान् नक्षत्र है।"

- पी. के. आर., फोर्ट, मुम्बई

३. "एक रात सुप्तावस्था में मुझे लगा कि मेरा सारा शरीर स्पन्दित हो रहा है। मैं शीघ्र ही उठ कर बैठ गया। ध्यान-काल में भी मैंने उस स्पन्दन को अधिक तीव्रता से अनुभव किया। मुझे मालूम पड़ा कि कमर के नीचे का भाग जल रहा है।"

- एन. एन. ओलवक्कोट

४. "७ दिसम्बर '४६ को मुझे बड़ा ही आश्चर्यजनक अनुभव मिला। मैंने एक ही बैठक में पूर्ण धारणा तथा जप के साथ एक सौ प्राणायाम किये। पहले पच्चीस प्राणायाम में मेरा मन शान्त रहा। दूसरे पन्दरह प्राणायाम में मेरा मन अशान्त हो चला तथा मुझे अपना आसन बदलना पड़ा। दूसरे चालीस प्राणायाम में मेरा मन धीरे-धीरे इन्द्रियों से पृथक् हो चला। अगले बीस प्राणायाम में मेरा मन शिशु की भाँति मेरे वश में हो चला। मुझमें पूर्ण शान्ति थी। कमरे के बाहर मैंने तीव्र शीत का भी अनुभव किया।"

-एस. जी., आनन्द कुटीर

५. "जब मैं सोने जाता हूँ, मन स्वतः ही शरीर से परे चला जाता है और मैं सो जाता हूँ। कुछ भी याद नहीं रहता। न दृष्टिगत होता है और न सुना ही जाता है। सब-कुछ किसी सत्ता में विलीन हो जाता है। अचानक कोई रहस्यमय चैतन्य काम करता है। मैं अनुभव करता हूँ कि मैंने आँखें खोल दी हैं तथा कोई मूर्ति विभिन्न रूपों में प्रकट होती है। वह कभी मनुष्य, स्त्री (भवानी के रूप में), पाँच उँगलियों के आकार में, सात ज्योति-बिन्दुओं के रूप में अथवा प्रकाशमान ज्योति के रूप में दिखायी पड़ती है। उन रूपों का अन्त नहीं।"

- के. सी. के.

६. "दिनांक १६, समय साढ़े आठ बजे रात्रि- मैं सोने जा रहा था। बैठते ही मेरी इन्द्रियाँ अचानक अशक्त बनने लगीं। द्विविध व्यक्तित्व प्रकट हुआ। मेरे समान ही मूर्ति वाला व्यक्ति मेरी ओर बढ़ा। उसने चटाई समेट कर एक ओर रख दी तथा किसी अज्ञात दिशा को चला गया। मार्ग में एक पाश्चात्य संन्यासी मिला, जिससे उसने आध्यात्मिक उन्नति के विषय में वार्तालाप किया। कुछ देर बातें करने पर उसने इस शरीर को पकड़ लिया तथा उसकी खाल उतार कर वायु में फेंकदी। इस तरह वह शरीर रहित हो कर उस संन्यासी से बातें करता रहा। उसने यह प्रश्न किया कि शरीर पुनः प्रकट कैसे होता है? इसके उत्तर में उसने कुछ संकेत दिये। उन्होंने कहा कि वह भूत स्वयं उसे जान सकेगा। कुछ काल के अनन्तर शरीर का पुनर्निर्माण हुआ तथा वह मूर्ति विद्युत् गति से आ कर चटाई को बिछा कर मेरे शरीर में प्रवेश कर गयी। इस बीच कोई भी बाह्य शब्द सुनायी नहीं पड़ता था। आन्तरिक चेतना इस सारे चलचित्र को देख रही थी।

"दिनांक १७, समय दश बजे रात्रि, स्थान मद्रासी धर्मशाला, हरिद्वार- मैं भोलागिरी आश्रम के किसी संन्यासी महात्मा से बातें कर चाँदनी में बैठा प्राकृतिक दृश्य देख रहा था।

"मेरे हृदय से मेरे समान ही व्यक्ति निकला और कुरसी को धकेल कर उड़ चला। एक पल में ही वह उस स्थान को चला गया जो पार्थिव दृश्य से अतीत था। वहाँ न सूर्य था, न चन्द्र था और न पर्वत अथवा घर ही थे; परन्तु वह आकाश अधिक प्रकाशमान हो रहा था। शरीर से निकलते समय उस मूर्ति का शरीर उस मूर्ति के समान था; परन्तु उस शरीर को कहीं फेंक कर वह छाया रहित हो चलता रहा। आगे बढ़ने पर कुछ परछाईं वाली मूर्तियाँ उसके निकट आ गर्मी तथा उसके लिए आगे बढ़ना आसान न था; भीड़ बढ़ती गयी। किसी प्रकार का नारा भी जोरों से लगाया जा रहा था। ऐसा मानो वर्षों तक चलता रहा। वह गतिमान भूत पुनः मेरे शरीर में प्रवेश कर गया। मेरे शरीर में गरमी अधिक बढ़ गयी थी।

"दिनांक २०, समय साढ़े तीन बजे अपराह्न - अभी टाइप का काम अधूरा ही था कि वह व्यक्ति शरीर से निकल कर सभी रजिस्टरों को यथास्थान रख कर चला गया, किस रास्ते से गया यह कहा नहीं जा सकता। उस समय मैं किसी को पुकार भी नहीं सकता था जो कि मुझे पूर्व-चेतना में ला दे। आधे मिनट तक यह संघर्ष चलता रहा। तदनन्तर मन तथा नेत्र बाह्य गति का अनुपालन करने लगे। सुरभित पवन चल रहा था तथा सम्पूर्ण स्थान सुगन्धि से पूर्ण था। बिना किसी साथी के अकेले ही वह बहुत से स्थानों से गुजरता रहा। कुछ नीले गतिमान चक्र के समान थे तथा कुछ लाल वर्तुलाकार सीढ़ियों की तरह। वह आकार तथा छाया रहित भूत कभी उजला तो कभी स्वर्णिम रंग को धारण करता था तथा एक दाने के समान ही दिखायी पड़ता था। इन क्षेत्रों का भेदन करते हुए वह धवल स्थान को जा पहुँचा। कुछ समय तक वह वहाँ स्थिर रहा तथा त्वरित गति से बैठे हुए शरीर के पास उसी रूप में आ कर रजिस्टर तथा टाइपराइटर को पूर्ववत् रख कर मेरे शरीर में लौट आया। शरीर में बड़ी गरमी बढ़ चली।

"दिनांक २०-७-४६, मैं नहीं जानता और न ठीक समय को ही बतला सकता हूँ। सोते समय, चलते समय, बैठते समय तथा भोजन करते समय अचानक मेरी आँखें स्वतः ही बन्द हो जाती हैं तथा मन किसी धूमिल आकृति पर एकाग्र हो जाता है।

"दिनांक ३१-७-४६, आज भोजन के उपरान्त दोपहर में ध्यान करते समय वह मूर्ति मेरे सामने बिलकुल निकट आ गयी। अचानक एक आवाज हुई मानो खोपड़ी ही फट पड़ी हो। मैं नहीं जानता, क्या हुआ। वह धूम के समान वस्तु विशाल झील में बदल गयी।

"दिनांक १०-८-४६, गम्भीर ध्यान में आवाजें बन्द हो जाती हैं। मैं अनुभव करता हूँ मानो कानों को बन्द कर दिया गया हो। छोटी आवाजें तो सुनायी पड़ती हैं; परन्तु जोर की आवाजें नहीं सुनायी पड़तीं।

"दिनांक २४-८-४६, कभी-कभी वह धूमाकृति कई रूपों में बदल जाती है-मनुष्य के चेहरे, कुरूप चेहरे, गन्दे कंकाल तथा कभी-कभी स्थूल चेहरे में। वे कभी-कभी प्रसन्न तथा हँसते हुए दिखायी देते हैं। एक बार वे बौद्ध भिक्षु की तरह दिखायी दिये।

"दिनांक ३०-८-४६, दो-तीन बार मैंने स्वयं अपने चेहरे को ही अपने समक्ष

देखा मानो मैं दर्पण में देख रहा हूँ।"

- डी. एम. एस. कोटुगस्तोत

"ध्यान करते समय एकाएक ऐसा मालूम पड़ा कि मैं पक्षी के समान वायु का भेदन करता हुआ उड़ रहा हैं। मैं उड़ता रहा। अन्त में मैं गुरुदेव के चरणों में उतर पड़ा। तब मेरे मन में साष्टांग प्रणाम करने का विचार उठा। मैंने साष्टांग प्रणाम किया। मैं पूनः अपने स्थान पर आ गया। मैं ऐसा थक गया था मानो मैंने लम्बी यात्रा की हो। यह घटना साढे सात बजे या आठ बजे प्रातः घटी।"

- श्री आर. आर. एस., कडुलूर

३. सामूहिक साधना

छुट्टियों के समय का सदुपयोग कीजिए। ताश खेलने, गपशप करने, भोजन करने, दृश्य देखने अथवा निरुद्देश्य भटकने में ही समय का अपव्यय न कीजिए। मानव-जन्म पाना बड़ा ही कठिन है। ईश्वर-चैतन्य को प्राप्त करना ही जीवन का लक्ष्य है। छुट्टियों का सदुपयोग होना चाहिए। हर क्षण को पूजा तथा ध्यान में लगाना चाहिए। उत्साह तथा लगन के साथ अपनी साधना प्रारम्भ कीजिए तथा सीधे लक्ष्य की ओर अग्रसर होते जाइए।

सामूहिक साधना में विचित्र शान्ति तथा आनन्द है। यदि छह व्यक्ति ही हों तो भी सामूहिक साधना अवश्य करनी चाहिए, अन्यथा व्यक्तिगत साधना करने पर वे निद्रा के वशीभूत हो सकते हैं।

सामूहिक ध्यान, प्रार्थना, संकीर्तन, प्रभातफेरी, लिखित जप तथा अखण्ड कीर्तन, गीता या रामायण का पाठ इत्यादि वैयक्तिक ध्यान, संकीर्तन अथवा साधना से अधिक शक्तिशाली तथा लाभप्रद हैं। एकत्र हो कर ध्यान अथवा संकीर्तन का अभ्यास कीजिए। सामूहिक आध्यात्मिक साधना में सभी के संयुक्त प्रयास के कारण बहुत ही लाभ होता है।

इससे विशाल विचार-प्रवाह का निर्माण होता है। यह प्रवाह उन लोगों को सहायता देता है जो इसी प्रकार की सामूहिक साधना में भाग लेते हैं। व्यक्तियों की संख्या जितनी अधिक होगी, उतना ही विशाल विचार-प्रवाह होगा, उतना ही अधिक आन्तरिक आध्यात्मिक शक्तियों का जागरण होगा। जहाँ सामूहिक आध्यात्मिक साधना की जाती है, वहाँ सिद्ध गण नित्य उपस्थित रहते हैं। समान वस्तुएँ एक-दूसरे को आकृष्ट कर लेती हैं। यही ईश्वरीय नियम है। ऋषि तथा योगी अपने स्पन्दन इन स्थानों को भेजते हैं। जिनमें अन्तर्दृष्टि है, वे इन आध्यात्मिक प्रवाहों को देख सकते हैं।

सामूहिक प्रयास से उनके शरीर तथा मन के स्पन्दन अनुकूल बन जाते हैं तथा इससे उनमें अधिक ग्राहकता आ जाती है। पंचकोश तालबद्ध हो कर स्पन्दित होने लगते हैं। यदि पंचकोशों में तालबद्धता है, तो ध्यान अथवा समाधि की प्राप्ति स्वतः ही हो जायेगी। उन सभी का ध्यान एक ही लक्ष्य पर जम जाता है। वे एक-साथ सोचते, एक-साथ भावना करते तथा एक-दूसरे को प्रोत्साहित करते हैं।

दैनिक सामूहिक साधना के अतिरिक्त छुट्टियों में एक सप्ताह अथवा तीन दिन के लिए विशेष साधना का कार्यक्रम रखना चाहिए। कलियुग में इस तरह का आध्यात्मिक सम्मेलन अथवा सामूहिक साधना महायज्ञ है। इन आध्यात्मिक साधनाओं का मुख्य तात्पर्य यह है कि भौतिकवादी प्रभावों से दबे हुए मनुष्यों में आध्यात्मिक चेतना का जागरण हो तथा जिनमें आध्यात्मिक चेतना पहले से ही जाग्रत है, उनमें अधिकाधिक शक्ति का संचार हो।

जब कई व्यक्ति एकत्र हो कर ध्यान करते हैं अथवा ईश्वर के नाम का गायन करते हैं तो विशाल आध्यात्मिक प्रवाह का निर्माण होता है-जो महाशक्ति है। इससे साधकों का हृदय शुद्ध होता है। वातावरण आध्यात्मिक बन जाता है और साधक भाव-समाधि की ओर उन्नत हो जाते हैं। सामूहिक साधना में यह विशेष लाभदायक है। ये आध्यात्मिक स्पन्दन

दूर-दूर देशों में जा कर मन को उन्नत बनाते तथा सभी के लिए सान्त्वना, बल, शान्ति तथा समता का सन्देश देते हैं। शक्तिशाली स्पन्दनों के द्वारा विरोधी शक्तियाँ नष्ट हो जायेंगी तथा समस्त संसार में शान्ति तथा आनन्द का साम्राज्य होगा।

संन्यासियों तथा योगियों के उपदेशों से भी लोगों का कल्याण होता है। आध्यात्मिक सम्मेलन लोगों में स्थायी एकता तथा प्रेम का निर्माण करता है।

कलियुग में एक आध्यात्मिक सम्मेलन सौ राजसूय यज्ञ अथवा सौ सौम-यज्ञों के बराबर है। एक आध्यात्मिक सम्मेलन के फल को यदि आप तराजू के एक पलड़े पर रखें तथा सौ राजसूय यज्ञों के फल को दूसरे पलड़े पर, तो पहला पलड़ा ही भारी होगा।

आध्यात्मिक सम्मेलन के लाभ अवर्णनीय हैं। आप नवीन भारत, नवीन यूरोप तथा नवीन जगत् का निर्माण कर डालेंगे। आध्यात्मिक तरंगें असाध्य बीमारियों को दूर करेंगी, समस्त सांसारिक संस्कारों को रूपान्तरित करेंगी तथा भौतिकता का नाश कर सभी में आध्यात्मिकता भरेंगी। आध्यात्मिक सम्मेलन उन साधकों को नित्य सुख के धाम को ले जायेगा जो निष्काम भाव तथा शुद्धता के साथ इसमें भाग लेते हैं।

४. साधकों को उपदेश

१. साधना-सप्ताह में भाग लेने के लिए आते समय आध्यात्मिक सात्त्विक भावना रखिए। साधना-सप्ताह में छुट्टियों का मजा लेने के लिए न आयें। हाँ, आपको अधिक गम्भीर तथा उदास बनने की आवश्यकता नहीं; परन्तु छुट्टी वाली भावना न रखिए। इससे यहाँ का गम्भीर वातावरण बिगड़ जायेगा तथा आप भी अधिक आध्यात्मिक लाभ न प्राप्त कर सकेंगे।

२. आफिस का काम करते समय आपका विशेष पहनावा रहता है। आप विशेष अवसर पर विशेष वस्त्र पहनते हैं। साधना-सप्ताह में वैसे वस्त्र पहन कर न आयें, मानो आप विवाहोत्सव में आ रहे हों। सादे वस्त्र पहनिए। इससे साधना में अधिक सहायता मिलेगी। दूसरे लोग भी आपके सादे वस्त्र का स्वागत करेंगे। इससे बड़प्पन की भावना, भेद-भावना आदि दूर हो जायेंगी। भड़कीली रेशमी पोशाक न पहनिए।

३. पुरुषों तथा स्त्रियों को कम-से-कम साधना-सप्ताह के दिनों में फैशन की सारी चीजें; केश सँवारना, तेल लगाना, इत्र आदि का व्यवहार त्याग देना चाहिए। सदा यह चेतना बनाये रखिए कि आप साधक हैं तथा ठोस साधना के लिए ही यहाँ पधारे हैं।

४. बड़े दिन की छुट्टियों में दो अतिरिक्त कम्बल तथा पर्याप्त ऊनी वस्त्र भी साथ लाइए। सभी से यह प्रार्थना है कि व्यक्तिगत साधना के लिए एक आसन, एक जप-माला, एक गीता, एक मन्त्र-लेखन पुस्तिका, एक कलम, एक नोट-बुक, एक टार्च, एक जल-पात्र तथा अन्य वैयक्तिक व्यवहार की वस्तुएँ साथ लेते आयें।

५. आश्रम में कमरों की कमी है। अतः आपसे प्रार्थना है कि इस अभाव को दृष्टि में रखते हुए यथाव्यवस्थित बनें। अवकाश के समय अपनी वैयक्तिक साधना गंगा के तट पर एकान्त स्थान में अथवा अपने कमरे में करिए। पूर्ण मौन तथा शान्ति का पालन होना चाहिए, विशेषकर भजन हाल में जहाँ सामूहिक साधना का कार्य चलता है।

६. साधना में आहार का विशेष महत्त्व है। बहुत हलका तथा साधारण आहार खा कर आप अधिकाधिक साधना कर सकेंगे। यदि पेट में अधिक भार रखेंगे तो ब्राह्ममुहूर्त में उठना कठिन हो जायेगा, आपका मन स्थूल हो जायेगा। अतः सदा हलका मिताहार कीजिए। भोजन के समय तथा अवकाश के समय में सभी साधकों को मौन रहना चाहिए।

७. जिह्वा पर नियन्त्रण के लिए सप्ताह में एक दिन बिना नमक के भोजन दिया जायेगा।

८. अपनी भलाई के लिए ही साधना-सप्ताह के दिनों में धूम्रपान, पान-भक्षण, स्वयं दादी बनाना तथा उत्तेजक पदार्थों का सेवन न कीजिए। यह आत्म-संयम के लिए आवश्यक है। जो इन आदतों को त्यागने का संकल्प कर लेते हैं, उन्हें इसके खण्डित होने पर प्रायश्चित्त करना चाहिए। गंगा-तट पर कुछ अधिक माला जप कीजिए या विश्वनाथ मन्दिर में जप कीजिए अथवा उपवास आदि के द्वारा स्वयं को दण्डित कीजिए।

९. सन् १९४३ से प्रारम्भ अखण्ड कीर्तन में हर साधक को आधे घण्टे से एक घण्टे तक अवश्य भाग लेना चाहिए।

१०. साधना-सप्ताह में कोई भी साधक नित्य-प्रति पाँच घण्टे से अधिक न सोये।

११. हर साधक आध्यात्मिक डायरी का पालन करे तथा संकल्प-पत्र को भर कर मुझे अर्पित करे।

१२. साधक कुछ निष्काम सेवा भी कर सकते हैं। हर व्यक्ति को निष्काम सेवा की क्लास में अवश्य भाग लेना चाहिए।

१३. (क) क्लास में भाग लेते समय अपने मित्रों से बाचतीत करने के प्रलोभन का

संवरण करना चाहिए। यदि कोई कार्यक्रम आपको अच्छा न लगे, तो थोड़े धैर्य के साथ उसको सहन कीजिए। यदि आप अशान्ति प्रकट करेंगे, तो अन्य का ध्यान भी उचट जायेगा।

(ख) व्याख्यान देते समय वक्ता से एकाएक प्रश्न कर बैठना गलत है। यदि आप

कुछ पूछना चाहते हैं, तो आपको इसके लिए अनुमति ले लेनी चाहिए और तब अपनी बात कहनी चाहिए। बहुत आवश्यक हो, तभी ऐसा करना चाहिए।

(ग) वक्ता से हँसी न कीजिए। किसी भी सस्ती बात को न लाइए। यह इस आध्यात्मिक कार्य के लिए अनुपयुक्त है।

(घ) अवकाश के समय अपनी बातचीत करने की प्रवृत्ति को रोके रखिए।

(ङ) कभी-कभी विवाद के द्वारा अप्रिय शब्दों का प्रयोग होने लगता है। यह दिव्य जीवन के सम्मान के विरुद्ध है। अपनी वार्ता में संक्षिप्त तथा युक्तियुक्त बनिए। पूर्व-वक्ताओं को उत्तर देने में समय न बिताइए। सदा मधुर तथा शिष्ट शब्द बोलिए।

(च) नोट-बुक रखिए। प्रवचनों की मुख्य बातों को नोट कर लीजिए। केवल सुन कर चले न जाइए। शिक्षा ग्रहण कीजिए।

(छ) जो अपने परिवार के साथ आते हैं, वे अपने बच्चे तथा पत्नी को प्रवचन आदि स्वयं समझा दिया करें यदि वे प्रवचनों को ठीक-ठीक न समझ सकें तो। यदि महिलाएँ अपनी मातृभाषा में भाषणों का अनुवाद सुनना चाहती हैं, तो वे इसके लिए अध्यक्ष को सूचना दें।

१४. जो ठीक समय पर नहीं आता, जो लिखित जप की क्लास में भाग नहीं लेता या प्रातः ध्यान की क्लास में या हवन आदि कार्यक्रमों में बिना किसी कारण के ही भाग नहीं लेता, जो क्लास चलते समय बीच में से ही उठ कर चला जाता है, जो देर करके आता है, जो भजन हाल में अनावश्यक बातें करता है, उसे एक रुपये या अधिक दण्ड में देने होंगे, इसे अध्यक्ष निर्धारित करेगा। दण्ड से प्राप्त धन का उपयोग गरीबों को भोजन देने अथवा मन्दिर की पूजा में किया जायेगा।

अध्याय २४:शिवानन्द-साधना-सप्तशती

१. दिव्य जीवन के आधार

१. यदि मन मूढ़ हो चला हो तो कीर्तन द्वारा उसे जाग्रत कीजिए: यदि विक्षिप्त हो तो प्राणायाम, उपासना तथा ध्यान के द्वारा उसे शान्त बनाइए यदि आसक्त हो तो विवेक तथा वैराग्य के द्वारा उसे विरक्त बनाइए।

२. अनुभव से संस्कार होते हैं. संस्कार से वासना तथा वासना से वृत्ति होती है। तदनन्तर कल्पना के द्वारा वृत्तियाँ इच्छा में बदल जाती हैं और तब अहंकार इच्छा से युक्त हो जाता है: फलस्वरूप वह इच्छा तृष्णा बन जाती है, तब आप चेष्टा के लिए प्रवृत्त होते हैं। मन की यह प्रक्रिया चलती रहती है।

३. आप नये संस्कारों के निर्माण को रोक सकते हैं तथा भूत के संस्कारों को बन्द कर सकते हैं। वृत्ति के उठने पर उसके विषय में न सोचिए, अपने ध्यान को फेर लीजिए, उस वृत्ति को विलीन हो जाने दीजिए। अपनी कल्पना की उड़ान को रोकिए। कल्पना ही वृत्ति को बलवती बनाती है।

४. अत्यधिक कामनाओं के भार का परित्याग कीजिए। यदि कामनाओं को बढ़ने दिया गया, तो वे संकल्पाग्नि के लिए जलावन का काम करती हैं। कामनाओं के जलावन को हटा देने पर संकल्पाग्नि बुझ जायेगी।

५. यद्यपि वृत्ति तथा संस्कार अनन्त हैं तथा उनकी जड़ गहरी जमी हुई है, फिर भी विवेक, विचार, सत्संग तथा स्वाध्याय के द्वारा उनको विनष्ट किया जा सकता है।

६. सांसारिक बातचीत में न पड़िए। विषय-पदार्थों की बातों से मन विषयमुखी बन जाता है। सदा परमात्मा-सम्बन्धी तथा आध्यात्मिक बातें कीजिए। मूल धाम को लौट जाइए। आप अमृतत्व तथा नित्य सुख को प्राप्त करेंगे। वह मूल परब्रह्म है।

२. अनासक्ति के लिए अनुशासन

७. यदि आप ईश्वर-साक्षात्कार करना चाहते हैं, तो अनियन्त्रित कामनाओं का दमन अत्यावश्यक है। अपने आवेगों के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित न कीजिए। इस प्रकार आप अनासक्ति के भाव का अर्जन कर सकेंगे।

८. जब बाह्य पदार्थों के आकर्षण आपके लिए नहीं रहेंगे, तब आप शान्ति प्राप्त कर लेंगे; मन सबल तथा स्थिर हो जायेगा तथा आपकी धारणा अनोखी हो जायेगी।

९. धारणा-शक्ति के द्वारा आपकी इच्छा ईश्वरीय इच्छा से एक बन जाती है तथा आप अपने शरीर, बच्चे, सम्पत्ति तथा देश से और विविध व्यवहार से अनासक्त रह सकते हैं।

१०. आसक्ति, द्वेष तथा मोह-ये दुःख तथा पाप के मूल हैं। उन ज्ञानी जनों को दुःख जरा भी प्रभावित नहीं कर सकता जो जगत् के सभी नश्वर पदार्थों को क्षुद्र बुलबुले-सा अनित्य समझते हैं।

११. अनासक्ति का अर्थ है स्वयं को उन वस्तुओं से विरक्त बनाना जिनके साथ हम आसक्त हैं। आसक्ति से मुक्ति ही अनासक्ति की स्वतन्त्रता है। दिव्य विचारों को उत्पन्न कीजिए तथा जीवन के संकटों से ऊपर उठ जाइए।

३. योग-साधना का अभ्यास

१२. दीर्घकालीन संयम तथा घोर संग्राम के अनन्तर ऋषियों ने अन्तर्दृष्टि को प्राप्त किया। ऐसी दृष्टि सामान्य मनुष्यों में नहीं होती। अतः निरन्तर कठिन साधना का व्रत लीजिए।

१३. योगाभ्यास से आपका चरित्र सबल बनेगा और आप अपनी परिस्थितियों का सामना कर तथा उन्हें सुलझा कर उन पर विजय प्राप्त कर लेंगे।

१४. ईश्वर के सतत जप से आपका हृदय सत्त्व से परिपूर्ण हो जायेगा तथा जीवन की कठिन-से-कठिन परिस्थिति का आप शान्तिपूर्वक सामना कर सकेंगे।

१५. योगाभ्यास मन को शुद्ध कर अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है। सभी के प्रति समदृष्टि तथा समत्व-बुद्धि योग है।

४. साधना का सर्वोत्तम रूप

१६. इस आधुनिक युग में सारे आध्यात्मिक साधनों में जप सर्वोत्तम है। यह सबसे सुगम भी है। ईश्वर के नाम के जप को ही अपने जीवन का अवलम्ब बना डालिए।

१७. 'ॐ तत्सत्' बहुत ही महत्त्वपूर्ण मन्त्र है। इस मन्त्र के जप से मनुष्य सिद्ध बन जाता है। इस मन्त्र के जप से मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है।

१८. सत्ययुग में जिसको ध्यान से, त्रेतायुग में यज्ञ से तथा द्वापरयुग में पूजा से प्राप्त किया जाता था, उसे कलियुग में नाम जप से प्राप्त करते हैं।

५. साधकों के लिए योग्यताएँ

१९. जिन लोगों ने इसका साक्षात्कार किया है कि विषय-सुख क्षणभंगुर, भ्रामक, खोखला तथा निस्सार है, वे ही आध्यात्मिक मार्ग पर चलने के योग्य हैं।

२०. सच्चे साधकों को हर प्रकार के व्यवहार में पूर्णतः सच्चा होना चाहिए।

२१. योग-मार्ग के साधक को नम्र, सरल, भद्र, शिष्ट, सहनशील, कारुणिक तथा दयालु होना चाहिए।

२२. अविचल श्रद्धा साधक को असीम के साथ सम्बद्ध कर देती है।

२३. धैर्य, उत्साह तथा लौह संकल्प से युक्त व्यक्ति ही आध्यात्मिक मार्ग पर चल सकता है।

२४. ज्वलन्त वैराग्य तथा मुमुक्षुत्व के बिना शम, दम, तितिक्षा आदि के अभ्यास विफल रहेंगे। वे सभी कामावेग में बह जायेंगे।

२५. भक्तियोग के साधक में पर्याप्त शुद्ध भावना होनी चाहिए, ज्ञानयोग के साधक

में शम की आवश्यकता है तथा कर्मयोग के साधक को चाहिए कि वह अपने हृदय को दूसरों के हृदय में विलीन करने की कला जाने।

२६. साधक को आशा, कामना तथा लोभ से मुक्त होना चाहिए।

२७. जो सुख तथा दुःख में स्थिर है, वही अमृतत्व की प्राप्ति के लिए सबसे अधिक योग्य है।

२८. जिस तरह रंगीन पानी सफेद वस्त्र में अच्छी तरह मिल जाता है, उसी तरह ज्ञानी का उपदेश भी उन साधकों के हृदय में प्रवेश कर जाता है जिनका मन शुद्ध तथा शान्त है।

२९. जो व्यक्ति मधुर, दयालु, शान्त, मिलनसार तथा नम्र है, जो दूसरों के हृदयों में प्रवेश करने की कला जानता है, वही सुखी तथा शान्त रह सकता है।

३०. जो अपने आराम तथा सुख की उपेक्षा कर सदा दूसरों की सहायता के लिए तैयार रहता है, वह आध्यात्मिक मार्ग में उन्नत है।

३१. परीक्षाओं, निराशाओं तथा कठिनाइयों में अविचल श्रद्धा होनी चाहिए। जब मनुष्य अपने को पूर्णतः निस्सहाय अनुभव करता है, तब उसे अन्तर से आशा तथा सहायता प्राप्त होती है।

३२. पूर्णता, मानसिक अनासक्ति तथा कठिन आत्म-संयम-ये लक्ष्य प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं।

३३. वही अधिकारी साधक है जिसने निष्काम सेवा द्वारा अपने हृदय को शुद्ध बना लिया है, जिसे गुरु तथा शास्त्र के वचनों में श्रद्धा है तथा जो साधन चतुष्टय से सम्पन्न है।

३४. सदाचार, आर्जव, आकुलता, दया, उदारता, सेवा तथा करुणा- ये साधक के श्रेष्ठ गुण हैं।

३५. अमरत्व तथा नित्य सुख की प्राप्ति कुतूहलपूर्ण साधना से सम्भव नहीं है। इसके लिए अनवरत सावधानी तथा प्रबल पुरुषार्थ की आवश्यकता है।

३६. जिसमें शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक शक्ति है, वह आदर्श आत्मा है। वह शीघ्र ही आध्यात्मिक मार्ग में सफलता प्राप्त कर सकता है।

३७. ब्रह्म को जानने की इच्छा उसी व्यक्ति में उत्पन्न होती है जिसका मन शुद्ध है, जो कामनाओं से मुक्त है तथा जो इस दृश्य जगत् के विषयों को हेय समझता है।

३८. यदि योगी अपने प्रारम्भिक साधनों-यम-नियम में स्थित नहीं है, तो वह मार अथवा शैतान के प्रलोभनों में अनजाने ही जा फँसता है।

३९. काम तथा स्वार्थ से पूर्ण स्थूल मन आध्यात्मिक जीवन के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। नोट

४०. घृणा साधक का भयंकर शत्रु है। प्रेम आध्यात्मिक जीवन का सम्बल है।

४१. जिनमें पर-दोष-दर्शन की आदत है, वे साधक साधना में उन्नति नहीं कर

४२. जिसका स्वभाव मलिन है तथा जिसमें संयम की कमी है, वह आध्यात्मिक मार्ग में त्वरित उन्नति नहीं कर पाता, उसकी अन्तर्दृष्टि भी मन्द रहती है।

६. इन्द्रिय-संयम तथा आत्म-शुद्धि

४३. आत्म-शुद्धि ही नित्य सुख के धाम के लिए प्रवेश पत्र है। आत्म-संयम तथा आत्म-संशोधन के बिना जीवन सम्भव नहीं है। आत्म-संयम से शक्ति, वीर्य, स्फूर्ति तथा मानसिक बल की प्राप्ति होती है।

४४. जब तरंगें विलीन हो जाती हैं, तब आप झील के नीचे के तल को देख लेते हैं, उसी तरह मन की वृत्तियों के विलीन होने पर आप आत्मा को देख सकेंगे।

४५. मन की शुद्धता से पूर्णता की प्राप्ति होती है। मनुष्य को मन की शुद्धता बनाये रखने के लिए सतत प्रयत्नशील बनना चाहिए। आपको मन की वृत्तियों का दमन कर उन पर शासन करना चाहिए।

४६. गुरु, साधु, गरीब तथा बीमार की सेवा चित्त की शुद्धता के लिए महौषधि है। भाव के साथ उदार कार्यों को करना हृदय की शुद्धता तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए महत्त्वपूर्ण है।

४७. सत्त्व से युक्त सबल बुद्धि द्वारा अपने प्राण तथा इन्दियों को अपने अधीन रखिए।

४८. कामनाओं का त्याग, प्राणायाम तथा सद्विचार- ये मन के कर्मों को नष्ट करेंगे तथा काम एवं मोह की उत्पत्ति को रोकेंगे।

४९. कठिन तप कीजिए। तप से बढ़ कर अन्य कोई शक्तिशाली साधन नहीं है जिससे उपद्रवी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखा जाये। सतत तप से इन्द्रियाँ कमजोर पड़ जाती हैं तथा अन्ततः निरुद्ध हो जाती है।

५०. लोहा जब तक आग पर रहता है, तब तक वह लाल दहकता रहता है; परन्तु आग से हटा लेने पर उसका लाल रंग दूर हो जाता है। उसी प्रकार यदि आप ईश्वरीय चैतन्य का स्वाद चखना चाहते हैं, तो मन को सदा नियन्त्रण में रखिए। आपको ब्रह्म की आध्यात्मिक अग्नि में इस मन को घुला देना होगा।

५१. शुद्ध बनिए। उपद्रवी इन्दियों को शान्त कीजिए। मन को शान्त बनाइए। मन की बहिर्मुखी वृत्तियों को शान्त बनाइए।

५२. यदि ठीक विधि आपको मालूम है, तो आप सुगमतापूर्वक मन को वशीभूत कर सकते हैं। आपको ईश्वर में दृढ़ श्रद्धा होनी चाहिए। अपने मन तथा प्रकृति का विश्लेषण कीजिए। अपनी वृत्तियों का निरीक्षण कीजिए तथा प्रार्थना कीजिए। अपने स्वभाव तथा दोषों का अध्ययन कीजिए और उन्हें दूर करने का प्रयत्न कीजिए।

५३. इन्द्रियों का संयम कीजिए। उन्हें पूर्ण अनुशासन में रखिए। विवेक और वैराग्य के द्वारा उनका दमन कीजिए। घर पर भी संन्यासी का सा जीवन व्यतीत कीजिए। कष्टों तथा दुःखों को सहने की शक्ति बढ़ाइए। अपनी आवश्यकताओं को कम कीजिए। अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिए अधिक व्यय न कीजिए। मन को अहंकार, कामना, तृष्णा तथा आसक्ति से मुक्त रखिए। आप आत्म-शुद्धि प्राप्त करेंगे।

५४. मन के नियन्त्रण के लिए दो तरीके हैं- योग अर्थात् मन की वृत्तियों को रोकना तथा ज्ञान अथवा ब्रह्म-विचार। कुछ लोगों के लिए योग अनुकूल है तथा कुछ लोगों के लिए ज्ञान। यह साधक की रुचि, शक्ति तथा प्रवृत्ति पर निर्भर है। जिसे स्थायी निवास-स्थान, भोजन का प्रबन्ध तथा अन्य यौगिक आवश्यकताएँ प्राप्त हैं, वह योगाभ्यास कर सकता है। जो विरक्त है तथा एक स्थान में न रह कर घूमता रहता है, वह विचार कर सकता है।

५५. हे राम ! आपका मन अभी भी कच्चा तथा स्थूल है। इसको पूर्णतः बदल देने की आवश्यकता है। इसमें अभी भी सांसारिक वृत्तियाँ भरी पड़ी हैं। सावधान रहिए। जाग्रत रहिए। चौकन्ने रहिए।

५६. मन को कभी भी ढीला न छोड़िए। यदि बच्चे को मारपीट कर अनुशासित न करेंगे, तो वह बिगड़ जायेगा। आपको हर गलती पर मन को दण्डित करना होगा तथा इन्द्रियों को उनके स्थान पर ही रोके रखना होगा। उन्हें जरा भी खिसकने न दीजिए। जब कभी कोई इन्द्रिय अपना शिर उठाना चाहे, तो विवेक-दण्ड को उठा लीजिए। अभ्यास के द्वारा आत्म-संयम तथा आत्म-शुद्धि को प्राप्त कीजिए।

७. साधना में बाधाएँ

५७. आध्यात्मिक मार्ग कण्टकाकीर्ण, ढालदार तथा कठिन है; परन्तु उस सद्गुण-सम्पन्न व्यक्ति के लिए यह सुगम है जिसे ब्रह्मनिष्ठ गुरु का पथ-प्रदर्शन प्राप्त है।

५८. निश्चय ही आध्यात्मिक मार्ग में बहुत-सी बाधाएँ हैं। यह छुरे का मार्ग है। आप कई बार गिर पड़ेंगे; परन्तु आपको शीघ्र ही उठ कर अधिक उत्साह, वीरता तथा प्रसन्नता के साथ इस मार्ग पर चलना होगा। हर बाधा आपके लिए सफलता की सीढ़ी बन जायेगी।

५९. आध्यात्मिक मार्ग में हर साधक को विविध प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अपनी सारी शक्ति लगा कर द्विगुणित उत्साह के साथ इस मार्ग पर अग्रसर बनिए।

६०. यदि आप व्यर्थ बातचीत तथा अफवाहों का श्रवण करना बन्द कर दें, यदि आप दूसरों के मामले में न पड़ें, तो आप सभी बाधाओं से मुक्त बने रहेंगे।

६१. यदि सांसारिक विचार आपके मन में प्रवेश करना चाहें, तो उनका तिरस्कार कर दीजिए। आध्यात्मिक मार्ग में स्थिर निष्ठा रखिए।

६२. सभी वस्तुओं को अच्छी तरह समझ लीजिए। आवेग को भ्रमवश भक्ति समझ लेते हैं। संकीर्तन के समय जोरों से उछलने-कूदने को भाव, अधिक कूदने के कारण थक कर मूर्छित हो जाने को भाव-समाधि, राजसिक अशान्ति तथा हलचल को कर्मयोग, तामसिक व्यक्ति को सात्त्विक व्यक्ति, वातव्याधि के कारण रीढ़ में वायु की गति को कुण्डलिनी, तन्द्रा अथवा निद्रा को समाधि, मनोराज्य को ध्यान तथा शारीरिक नग्नता को जीवन्मुक्ति समझ लेते हैं। ये सब आध्यात्मिक मार्ग में बाधाएँ हैं। साधक को इनका पूर्णतः त्याग कर आगे बढ़ते जाना चाहिए।

६३. उदासी, शंका तथा भय- ये उन्नत साधकों के भी आध्यात्मिक मार्ग की मुख्य बाधाएँ हैं। सद्विचार तथा सत्संग के द्वारा इन्हें दूर करना चाहिए।

६४. कभी-कभी उदासी आपको कष्ट देगी। मन उपद्रव करेगा। इन्द्रियाँ आपके पैरों को घसीटेंगी। छिपी वासनाएँ प्रकट हो कर आपको सन्तप्त करेंगी। विषय-विचार आपके मन को विक्षुब्ध करेंगे। वीर बनिए। अडिग रहिए। इन बाधाओं का सामना कीजिए। इन बाधाओं से तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित न कीजिए। जप के समय में वृद्धि कीजिए। ये सारी बाधाएँ दूर हो जायेंगी।

६५. शंका अथवा अनिश्चितता आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। इससे आध्यात्मिक उन्नति रुक जाती है। सत्संग, स्वाध्याय, सद्विचार तथा युक्ति द्वारा इसको दूर करना चाहिए।

६६. वासना बहुत ही शक्तिशाली है। इन्द्रिय तथा मन बहुत ही उपद्रवी हैं। बारम्बार संग्राम छेड़ कर विजय प्राप्त करनी होगी। यही कारण है कि आध्यात्मिक मार्ग को छुरे का मार्ग बतलाया गया है। प्रबल निश्चय तथा लौह संकल्प वाले व्यक्ति के लिए कोई कठिनाई नहीं है।

६७. आपमें काम-वृत्ति छिपी हुई है। यह सबसे भयानक शत्रु है। काम से क्रोध तथा अन्य सभी विकार उत्पन्न हो जाते हैं। ये साधक के आध्यात्मिक धन का अपहरण करते हैं।

६८. शक्ति का स्राव, छिपी हुई वासनाएँ, इन्द्रिय-संयम में कमी, साधना में ढिलाई, वैराग्य का क्षीण होना, मुमुक्षुत्व में कमी तथा साधना में अनियमितता-ये सब बाधाएँ हैं।

६९. अति आहार, श्रमदायक कार्य, अधिक बातचीत, रात्रि में भारी भोजन, लोगों से अधिक मिलना-जुलना साधक के लिए बाधाएँ हैं।

७०. बहस करना त्यागिए। मौन बन जाइए। मन को आराम देने के लिए व्यर्थ बातचीत अथवा विचारों में न फँसिए। गम्भीर बनिए। ईश्वर के विषय में ही चिन्तन कीजिए और बोलिए भी।

७१. शक्ति, नाम, यश तथा धन अहंकार को ठोस बना डालते हैं। वे व्यक्तित्व को दृढ़ बनाते हैं। अतः यदि आप आध्यात्मिक मार्ग में सफलता चाहते हैं तो उनका संन्यास कीजिए।

७२. शक्ति की कामना पवन के समान है जो आध्यात्मिक दीपक को बुझा डालती है। थोड़ी भी ढिलाई होने पर, सिद्धियों की कामना के आते ही साधक अज्ञान के अन्धकार में निमग्न हो जाता है। असावधान साधक को वशीभूत

करने के लिए प्रलोभन सदा प्रतीक्षा कर रहे हैं। सूक्ष्म मानस तथा गन्धर्वलोक के प्रलोभन इस जगत् के प्रलोभनों से अधिक शक्तिशाली हैं।

७३. जिस योगी ने अपने इन्द्रिय, मन तथा प्राण का दमन किया है, वह विभिन्न सिद्धियों को प्राप्त करता है; परन्तु वे बाधाएँ ही हैं।

७४. वृत्तियों को रोकिए। मन को शान्त बनाइए। संस्कारों के तल से जो वृत्ति उठे, उसका दमन कीजिए। वीरतापूर्वक सभी बाधाओं का सामना कर सफलता से विभूषित हों। आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कीजिए।

८. अहंकार-जन्म-मृत्यु का बीज

७५. अहंकार मनुष्य की सबसे अधिक खतरनाक दुर्बलता है। यह पतन की ओर ले जाता है।

७६. अहंकार के कारण मनुष्य समझता है कि वही सब-कुछ कर रहा है और वह बन्धन में पड़ जाता है।

७७. जिस क्षण अहंकार आ जाता है, उसी क्षण ईश्वरीय शक्ति का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है।

७८. अहंकार के वशीभूत हो कर ही मनुष्य बुरे कर्म करता है।

७९. अहंकार रहस्यमय गैस है जो विचारशील व्यक्ति के लिए विलीन हो जाता है; परन्तु अविवेकी संसारी व्यक्ति के लिए यह चट्टान की तरह प्रतीत होता है, जिसे बारूद तथा बम से भी ध्वस्त नहीं कर सकते।

८०. अहंकार को विनष्ट कर, राग-द्वेष को नष्ट कर, ब्रह्म से तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित कर साधक जीवन्मुक्त बन सकता है।

८१. नम्रता वह प्रबल बम है जिससे अहंकार का प्रासाद ध्वस्त हो जाता है।

८२. अहंकार को नष्ट करने की साधना ही अहिंसा है।

८३. जो किसी भी वस्तु की कामना नहीं करता, जो हर समय मन की शान्ति बनाये रखता है, वह अहंकार-भावना से प्रभावित नहीं होता।

८४. जो अहंकार से मुक्त हैं, उन्हें भला कर्म करके भी कुछ प्राप्त नहीं करना है और न बुरा कर्म करके ही कुछ क्षति उठानी है।

८५. अपनी आत्मा को जानने की इच्छा, मुक्ति की कामना, सदाचारी जीवन बिताने की प्रेरणा- ये सब सात्त्विक अहंकार से ही उत्पन्न हैं।

९. कामना सभी दुःखों का मूल कारण

८६. कामना शान्ति की शत्रु है। काम भक्ति का शत्रु है। काम ज्ञान का वैरी है। लैंगिक कामना सबसे प्रबल कामना है। विवेक, वैराग्य, 'मैं कौन हूँ?' का विचार तथा नियमित ध्यान के द्वारा इस कामना को नष्ट कर डालिए।

८७. कामना ही पुनर्जन्म तथा सभी प्रकार के दुःख, शोक आदि की कारण है। कामना से ही विभिन्न प्रकार के संकल्प-विकल्प उत्पन्न होते हैं।

८८. कामनाएँ अनेक हैं। वे अजेय तथा सदा अतृप्त हैं। भोग से उनकी तृप्ति नहीं होती, वरन् उनमें अधिक दृढ़ता ही आती है।

८९. तृष्णा से अहंकार बढ़ता है। अहंकार से नाम-रूप, मन तथा शरीर की उत्पत्ति होती है। नाम-रूप से इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। इन्द्रियों से स्पर्श, स्पर्श से संवेदन, संवेदन से ग्रहण, ग्रहण से जन्म, जन्म से वृद्धता, मृत्यु, शोक तथा दुःख की उत्पत्ति होती है। यह तृष्णा घनीभूत दुःख ही है। वैराग्य, संन्यास, आत्म-संयम तथा ध्यान के द्वारा तृष्णाओं की ज्वाला को बुझा दीजिए।

९०. कामनाओं के नष्ट होने पर ईश्वर की प्राप्ति होती है। कामना से आसक्ति होती है। कामना ही पुनर्जन्म लाती है। कामनाओं के जाल को नष्ट कर डालिए तथा मन को शुद्ध बनाइए। शुद्ध मन को परमात्मा में लगा दीजिए तथा नित्य सुख के अमर धाम को प्राप्त कर लीजिए।

९१. मन अपनी कामनाओं के द्वारा इस जगत् से आबद्ध है। जब वह सांसारिक कामनाओं से मुक्त हो जाता है, तब उसे मोक्ष कहते हैं। मन की कामना के कारण ही विषयों में आकर्षण होता है।

९२. जो कामनाओं से मुक्त है, वही सम्राट् है। चाहे वह राजा हो या रंक, जिसमें बहुत-सी कामनाएँ हैं, वह दरिद्र ही है।

९३. जहाँ इच्छा है वहाँ जगत् है। इच्छाओं का नाश ही आनन्द है। निष्काम मनुष्य प्रकृति के तत्त्वों पर भी अपना साम्राज्य स्थापित कर लेता है।

९४. ब्रह्म को जानने की इच्छा ही सभी इच्छाओं की परिपूर्ति है।

९५. शक्ति की कामना हवा के झोंके का काम करती है जिससे योग-दीप बुझ जाता है।

९६. कुण्डलिनी के जग जाने पर भी आपको अधिक लाभ न होगा, यदि आपके चित्त में अभी भी वासनाएँ तथा इच्छाएँ बनी हुई हैं।

९७. कामनाओं के उन्मूलन से ही शम की प्राप्ति होती है।

९८. मन सदा स्पन्दशील है। स्पन्दन कभी-कभी तीव्र तो कभी-कभी मन्द हो जाता है। मन का संवेदन ही शीतोष्ण और सुख-दुःख उत्पन्न करता है।

९९. जन्म-मृत्यु का चक्र दुःखमय है। विवेक, वैराग्य, त्याग तथा ईश्वर पर ध्यान के द्वारा कामाग्नि को बुझा दीजिए। आप नित्य सुख के धाम को प्राप्त कर लेंगे।

१०. तीन प्रधान शत्रु

१००. नरक के तीन द्वार है-काम, क्रोध तथा लोभ। ज्ञानी पुरुष को उन्नति के लिए इनका उन्मूलन करना चाहिए।

१०१. काम से बढ़ कर कोई अग्नि नहीं, क्रोध से बढ़ कर कोई दुर्गुण नहीं, घृणा से बढ़ कर कोई पाप नहीं तथा गाली से बढ़ कर कोई तलवार नहीं है।

१०२. कामुक दृष्टि से देखना आँखों के लिए ब्रह्मचर्य-खण्डन है, कामुक बातें सुनना कानों के लिए और कामोत्तेजक शब्द बोलना जिह्वा के लिए ब्रह्मचर्य का भंग है।

१०३. जो विषय-सुखों में अधिक अनुरक्त है, जिसका मन नियन्त्रित नहीं है, जो अपने आहार में असंयमी है तथा जो आलसी है, वह शीघ्र ही विनाश को प्राप्त करेगा।

१०४. किसी भी बुरी आदत को यहाँ तक कि कुछ ही दिनों की चाय पीने की आदत को त्याग देना बड़ा ही कठिन मालूम पड़ता है। काम, क्रोध तथा लोभ तो पुराने वैरी हैं। इनका त्याग करना कोई खिलवाड़ नहीं है। वैराग्य के सतत अभ्यास से ही मनुष्य मन पर विजय पा सकता है।

१०५. कामुक आकर्षण, कामवृत्ति, कामुक विचार-ये ईश्वर-साक्षात्कार में बड़े बाधक हैं। काम-प्रवृत्ति के विलीन हो जाने पर यौन आकर्षण साधक को दीर्घ काल तक कष्ट देता है। नेत्र इन्द्रिय बड़ा उत्पात मचाती है। कामुक दृष्टि न रखिए। यह आँखों का ब्रह्मचर्य-खण्डन है। सभी चेहरों में ईश्वर-दर्शन का प्रयत्न कीजिए। बारम्बार विवेक, वैराग्य तथा विचार के प्रवाह को उत्पन्न कीजिए। अन्ततः आप ब्रह्म में संस्थित हो जायेंगे। बारम्बार दिव्य विचारों को उत्पन्न कीजिए तथा जप एवं ध्यान के समय में वृद्धि लाइए। कामुक विचार विनष्ट हो जायेंगे।

१०६. जिसमें सच्चा विवेक, वैराग्य तथा सच्ची श्रद्धा है, वह काम का शिकार नहीं बन सकता।

१०७. यौन-क्रिया की पुनरावृत्ति से कामुक तृष्णा बलवती होती जाती है तथा उसको नष्ट करना कठिन हो जाता है।

१०८. काम मनुष्य को भिक्षुओं का भी भिक्षु बना देता है।

१०९. आत्म-साक्षात्कार के महान् आदर्श का त्याग किसी मोहिनी स्त्री को सन्तुष्ट करने के लिए किया जाये-यह महान् लज्जा की बात है। अपनी आँखें खोलिए। इस

जगत् की नग्नता को देखिए। सब-कुछ क्षणभंगुर है। एकमेव सर्वव्यापक ब्रह्म ही सत्य है। इसे जान कर ज्ञानी बन जाइए। इसे जान कर सदा सुखी रहिए।

११०. जहाँ काम है वहाँ राम नहीं, जहाँ राम है वहाँ काम नहीं।

१११. हर हालत में काम का दमन करना चाहिए। काम को दबाने से कोई भी रोग नहीं होता; प्रत्युत् आप अधिक शक्ति, सुख तथा शान्ति प्राप्त करते हैं। काम को दबाने के लिए सक्रिय साधन भी हैं। प्रकृति के विरुद्ध जा कर ही मनुष्य प्रकृति से आत्मा को प्राप्त कर सकता है। जिस तरह मछली धारा के विरुद्ध नदी में तैरती है, उसी तरह आपको भी सांसारिक प्रवाह के विरुद्ध जाना होगा।

११२. काम के दमन से आप आत्मा द्वारा वास्तविक सुख का उपयोग करेंगे। सारी गीता में आप इस भाव की प्रधानता पायेंगे कि जिस मनुष्य ने काम पर विजय प्राप्त कर ली है, वही सबसे सुखी है।

११३. यदि आप गम्भीरतापूर्वक साधना का अभ्यास करें- एकाग्र निष्ठा तथा धारणा का अभ्यास करें, तो काम पर विजय पाना बड़ा ही आसान है। इसके लिए आहार-संयम बहुत ही आवश्यक है। सात्विक आहार कीजिए। विचार कीजिए। ईश्वरीय मूर्ति पर तथा सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता आदि ईश्वरीय गुणों पर ध्यान कीजिए। स्त्रियों पर कामुक भाव से दृष्टि न डालिए। सड़कों तथा गलियों में चलते समय अपने इष्टदेव पर ध्यान कीजिए तथा अपने पैर के अँगूठे की ओर दृष्टि डाले रखिए।

११४. बुरे विचार से स्त्री की ओर कभी न देखिए। आत्म-भाव, मातृ-भाव, बहन-भाव अथवा देवी-भाव रखिए। इसमें आप अनेक बार विफल हो सकते हैं। इस भाव को बारम्बार बनाये रखने का प्रयत्न कीजिए। जब कभी मन स्त्रियों की ओर जाये, तो उसके समक्ष हड्डी-मांस के कंकाल का स्पष्ट चित्र लाइए। इससे मन में वैराग्य आ जायेगा। आप पुनः काम-दृष्टि का पाप न करेंगे।

११५. यदि मन काम-दृष्टि से स्त्रियों की ओर दौड़े, तो आत्म-दण्ड दीजिए। रात्रि का भोजन त्याग दीजिए। बीस माला अधिक जप कीजिए।

११६. क्रोध काम का ही विकास है। यदि आपने काम पर विजय पा ली है, तो क्रोध भी विजित हो चुका है। क्रोध पर विजय पाने से आपमें परम शान्ति तथा आनन्द का समावेश होगा।

११७. रजस् तथा तमस् के प्रधान होने पर क्रोध की वृत्ति उठती है। किसी व्यक्ति से असन्तुष्ट होने पर यह दुःखद भावना की वृत्ति अन्तःकरण में उठती है। यह शान्ति, ज्ञान तथा भक्ति की महान् शत्रु है।

११८. क्रोध का निवास सूक्ष्म शरीर में है। परन्तु जिस प्रकार मिट्टी के घट से जल का स्राव होता है, उसी प्रकार यह स्थूल शरीर में स्रवित हो कर चला जाता है। जिस तरह अग्नि में राँगा गल जाता है, उसी तरह काम तथा क्रोध मन को गला डालते हैं।

११९. क्रोध से आठ प्रकार के पाप उत्पन्न होते हैं। सारे दुर्गुण तथा दुष्कर्म क्रोध से उत्पन्न होते हैं। यदि आप क्रोध का दमन कर लें, तो अन्याय, रुक्षता, अपमान, ईर्ष्या, दूसरों के धन का अपहरण, हिंसा, कटु शब्द तथा कठोरता आदि सारे दुर्गुण स्वतः ही नष्ट हो जायेंगे।

१२०. क्रोध से मोह, मोह से स्मृति-भ्रम, स्मृति-भ्रम से बुद्धिनाश तथा बुद्धिनाश से सर्वनाश हो जाता है।

१२१. आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार सारे रोगों की जड़ क्रोध ही है। वात व्याधि, हृदयरोग तथा स्नायविक रोग क्रोध से ही उत्पन्न होते हैं।

१२२. अत्यधिक वीर्य-क्षय भी क्रोध तथा चिड़चिड़ेपन का कारण है। काम मूल है तथा क्रोध उसका वृक्ष। आपको सर्वप्रथम काम को नष्ट करना होगा, तब क्रोध का वृक्ष स्वतः नष्ट हो जायेगा।

१२३. अज्ञान तथा अहंकार ही क्रोध का मूल है। विचार के द्वारा ही अहंकार को दूर किया जा सकता है।

१२४. यदि किसी साधक ने क्रोध पर विजय पा ली है, तो उसकी आधी साधना समाप्त हो चली। क्रोध पर विजय का अर्थ है काम पर विजय। जिसने क्रोध पर विजय पा ली है, वह कोई भी बुरा कर्म नहीं कर सकता।

१२५. यदि थोड़ा भी चिड़चिड़ापन आ जाये, तो सारी बातचीत पूर्णतः बन्द कर डालिए तथा मौन-व्रत का पालन कीजिए। नित्य-प्रति एक या दो घण्टे मौन का अभ्यास करना क्रोध-दमन के लिए बहुत ही सहायक है। सदा मधुर तथा कोमल वचन बोलिए।

१२६. यदि क्रोध पर विजय पाना कठिन जान पड़े, तो तुरन्त ही उस स्थान को छोड़ दीजिए। क्रोध के वास्तविक कारण को ढूँढ़ निकालिए तथा उसका उन्मूलन कीजिए।

१२७. अत्यधिक उत्तेजक परिस्थितियों में भी सदा शान्त बने रहिए। भूखा रहने पर अथवा किसी रोग से पीड़ित होने पर आप साधारणतः अधिक चिड़चिड़े बन जाते हैं। आपको क्रोध पर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

१२८. क्रोध की वृत्ति के साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित न कीजिए। साक्षी बने रहिए। आत्मा से तादात्म्य-सम्बन्ध रखिए। मानसिक कार्यालय के साक्षी बने रहिए।

१२९. अपने साथियों के चुनाव में सावधान रहिए। संन्यासियों, भागवतों तथा महात्माओं का सत्संग कीजिए। वीर्य की रक्षा कीजिए। मादक द्रव्यों का सेवन न कीजिए। तम्बाकू न लीजिए।

१३०. बड़ा पण्डित होने पर भी आपको लोभ से मुक्त बनना चाहिए।

१३१. जननेन्द्रिय के दमन से भी जिह्वा इन्द्रिय का दमन करना अधिक कठिन है।

१३२. जिह्वा पर विजय पाये बिना मनुष्य अपनी इन्द्रियों का स्वामी नहीं बन सकता।

११. स्वार्थ- महापातक

१३३. स्वार्थ सारे पापों का मूल है। यह अज्ञान से उत्पन्न है। स्वार्थी मनुष्य लोभी तथा पापी होता है। वह ईश्वर से दूर है। वह अपने स्वार्थ के लिए कुछ भी कर सकता है। उसमें चरित्र नहीं है। उसे मन की शान्ति का जरा भी अनुभव नहीं है।

१३४. यदि मनुष्य स्वार्थी तथा कृपण है तो वह व्यर्थ ही जीवित रहता है। यदि उसमें उदार हृदय नहीं, दया और सहानुभूति नहीं, यदि वह धर्म, तप तथा ध्यानमय जीवन नहीं बिताता, यदि वह धार्मिक संस्थाओं, गुरु तथा सन्तों की सेवा नहीं करता तो उसका जीवन व्यर्थ ही है।

१३५. स्वार्थ-भावना से आध्यात्मिक उन्नति में बाधा पहुँचती है। यदि कोई अपनी स्वार्थ-भावना को नष्ट कर दे, तो उसकी आधी साधना समाप्त हो गयी। इस स्वार्थ भाव के उन्मूलन के बिना समाधि सम्भव नहीं है। इस महारोग को दूर करने के लिए साधक को अपनी सारी शक्ति लगा देनी चाहिए। दीर्घ काल तक निष्काम सेवा द्वारा इसे विनष्ट करते हैं।

१३६. स्वार्थी मनुष्य अधार्मिक है। उसमें आसक्ति तथा भेदभाव का बोलबाला है। वह दिव्य गुणों का विकास नहीं कर सकता। जो स्वार्थ रहित है, जिसमें धार्मिक वृत्ति है, उसमें योगी बनने की कामना उत्पन्न होगी।क সামনে

१३७. स्वार्थ हृदय को संकीर्ण बनाता है तथा मनुष्य को हिंसक कार्य और पर-सम्पत्ति के अपहरण के लिए बाध्य करता है। स्वार्थ के द्वारा ही मनुष्य बुरे कर्मों में प्रवृत्त होता है।

१३८. स्वार्थ के कारण ही आप परिवार के सदस्यों तक ही सीमित हो चले हैं। आप सदा यही सोचते हैं-"मेरा परिवार उन्नति करे। केवल हम लोग ही सुखी रहें। हमें दूसरों के सुख से क्या काम?"

१३९. किसी भी व्यक्ति से अधिक घना सम्पर्क न रखिए और न मित्रता का अभाव ही हो। किसी भी चीज में अति होना बुरा है, अतः सदा मध्यम मार्ग को अपनाइए।

१२. व्यावहारिक साधना के मुख्य सिद्धान्त

१४०. कुछ और अधिक धैर्य रखिए। अधिक क्षमाशील, अधिक उदार, अधिक प्रिय, अधिक गुरु-सेवा में अनुरक्त बनिए।

१४१. बिजली का बल्ब बोलता नहीं; अपितु प्रकाश देता है। प्रकाश स्तम्भघोषणा नहीं करता; अपितु नाविकों को पथ दिखलाता है। शुद्ध बनिए। धार्मिक बनिए।

भले बनिए। भला करिए। आपका जीवन सूर्य की भाँति भास्वर हो जायेगा।

१४२. मन को ज्ञान का साबुन चाहिए जिससे प्रेम का मल घुल जाये।

१४३. प्रेम कभी विफल नहीं होता। प्रेम ईर्ष्या नहीं करता। प्रेम दीर्घ काल तक कष्ट सहन करता है। प्रेम दयालु है। प्रेम कभी अभिमान से फूलता नहीं। प्रेम इस पृथ्वी की सबसे बड़ी शक्ति है। प्रेम एकता लाता है। प्रेम सदा देता रहता है। प्रेम कभी व्यापार नहीं करता।

१४४. साधक का जीवन उग्र तप, भक्ति, संयम तथा शुद्धता के द्वारा चरित्र-निर्माण के लिए ही व्यतीत होना चाहिए।

१४५. यदि आपमें अभिमान, कामना तथा अहंकार का अल्प लेश भी रहेगा, तो आप ईश्वर-साक्षात्कार नहीं कर सकते।

१४६. सारे भेद, सारी विभिन्नताएँ मिथ्या हैं।

१४७. बिना बादल के वर्षा नहीं, बिना वर्षा के उपज नहीं, बिना बीज के फूल नहीं, बिना ईश्वर-कृपा के आनन्द कहाँ? बिना ध्यान के सुख कहाँ ?

१४८. आपके अन्दर हर समस्या की कुंजी है; हर परिस्थिति में पथ-प्रदर्शन के लिए ज्ञान है तथा ईश्वरीय महिमा को प्राप्त करने के लिए बल है।

१४९. विश्व-प्रेम के विकास में ही आध्यात्मिक उन्नति, समाज का कल्याण तथा समस्त जगत् की शान्ति है। अतः कार्यरत रहिए तथा समस्त जगत् में विश्व-प्रेम का प्रसार कीजिए।

१५०. प्रेम ही मनुष्य की आत्मा का स्वरूपभूत गुण है। स्वर्ग-धाम में प्रवेश के लिए यह परमावश्यक गुण है।

१५१. प्रेम सक्रिय है। यह निष्काम सेवा के रूप में व्यक्त होता है।

१३. आन्तर आध्यात्मिक अनुशासन

१५२. मन को समझिए। मन को पढ़िए। इसकी चालों को अच्छी तरह जान लीजिए। इसका व्यवस्थापन करना, नियन्त्रण करना तथा इसे वशीभूत करना सीख लीजिए। जिसने मन-रूपी सर्प को जीत लिया, वह मोक्ष के धाम को प्राप्त कर लेगा।

१५३. सतत अभ्यास तथा स्थिर वैराग्य के द्वारा मन के ऊपर विजय निश्चित है। मन पर विजय प्राप्त करना कुछ दिनों अथवा महीनों की बात नहीं है।

१५४. इन्द्रियों को उनके विषयों से समेट लीजिए। मन की किरणों को एकत्र कर लीजिए। मन को दोनों भौंहों के बीच आज्ञा चक्र में लगाइए।

१५५. मन की मलिनताओं का नाश ही मोक्ष है। यदि विवेक के द्वारा मन को नष्ट कर दिया जाये, तो माया आपको पीड़ित नहीं करेगी।

१५६. मन को पालतू बनाइए। अपनी सारी वृत्तियों को एकत्र कर लीजिए। मन को शान्त रखिए। बुरी बातों का विचार न कीजिए। आप अमृत-धाम में प्रवेश कर लेंगे।

१४. ज्ञानयोग की साधना

१५७. 'सच्चिदानन्दत्वम्' ही आपका वास्तविक स्वरूप है। अपने वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार करना ही जीवन का लक्ष्य है। इसे स्वरूप साक्षात्कार कहते हैं। विवेक तथा विचार द्वारा ही यह प्राप्य है। सत्य-असत्य, नित्य-अनित्य तथा आत्मा-अनात्मा के बीच भेद पहचानना ही विवेक है। 'मैं कौन हूँ? मेरा क्या स्वरूप है? आत्मा क्या है?' इसको ठीक से सोचना ही विचार है।

१५८. कालेजों से प्राप्त ज्ञान आपको मानसिक शान्ति प्रदान नहीं कर सकता। वह तो भूसे के समान ही है। प्रिय सौम्य ! उस उपदेश के लिए पूछिए जिससे अश्रुत श्रुत, अमत मत तथा अदृष्ट दृष्ट बन जाता है। वही वास्तविक ज्ञान है।

१५९. इतने वेदान्तिक ग्रन्थों के अध्ययन से क्या लाभ ? चित्सुखी, खण्डन-खांड्यम् आपको उन्मत्त बना देंगी, आप मार्ग से अलग चले जायेंगे। आजकल बहुत अधिक वेदान्तिक गपशप चलते हैं; परन्तु वास्तविक वेदान्त नहीं। लोग

एकता, समता की बातें करते हैं; परन्तु छोटी-छोटी बातों के लिए लड़ा भी करते हैं। वे ईर्ष्या तथा द्वेष से पूर्ण हैं। वे पूर्णतः नीच तथा संकीर्ण वृत्ति के हैं।

१६०. आप इतनी पुस्तकें क्यों पढ़ते हैं? इससे कोई लाभ नहीं है। आपके हृदय में ही महान् ग्रन्थ है। इस अक्षय पुस्तक को पृष्ठों के उलटिए। आप सब-कुछ जान लेंगे। आँखें बन्द कर लीजिए। इन्द्रियों को समेट लीजिए। विचारों को शान्त कर लीजिए। मन को निस्तरंग बना दीजिए। आत्मा में गम्भीर डुबकी लगाइए। आपको समस्त ज्ञान का प्रकाश होगा। आपको अपरोक्ष ज्ञान होगा। शंकाएँ विलीन हो जायेंगी। सारे मानसिक सन्ताप दूर हो जायेंगे। सारे विवाद, गरमागरम बहस बन्द हो जायेंगे, शान्ति तथा ज्ञान ही रह जायेंगे।चि

१६१. यह जगत् मानसिक जाल है। यह भ्रम तथा दीर्घ स्वप्न है। आप व्यापक आत्मा हैं। इस विचार में निष्ठा रखिए।

१६२. वेदान्त आपकी हड्डियों, स्नायुओं तथा कण-कण में प्रवेश करे। मोह का पूर्ण परित्याग होना चाहिए। आपके पास जो कुछ भी है- शारीरिक, मानसिक, नैतिक अथवा आध्यात्मिक उसमें दूसरों को भी भागीदार बनाइए। यही सच्चा वेदान्त है। मैं मौखिक वेदान्त में विश्वास नहीं करता। यह पूर्ण पाखण्ड है। व्यावहारिक वेदान्त का स्वल्पांश भी मनुष्य को उन्नत बना कर उसे अमर और निर्भय पद पर पहुँचा सकता है।

१६३. ईशावास्य उपनिषद् को मौखिक याद कर लीजिए। यह दैनिक स्वाध्याय के लिए महत्त्वपूर्ण है। ध्यान के समय भी इन श्लोकों को पढ़िए।

१६४. 'अहं ब्रह्मास्मि' भाव के द्वारा आपको जीव-भाव को नष्ट करना होगा। व्यावहारिक बुद्धि के द्वारा जीव-भाव का निर्माण होता है। आपको इस व्यावहारिक बुद्धि को शुद्ध बुद्धि के द्वारा विनष्ट करना होगा। का है जान के

१६५. ध्यान के द्वारा हृदय में विभासित आत्मा में निवास करके ही आप विश्राम प्राप्त कर सकेंगे। आरामकुरसी पर बैठने अथवा शय्या पर लेटने से जो आराम पाते हैं; वह आराम आराम नहीं है।

१६६. मैं तो व्यावहारिक वेदान्त में विश्वास करता हूँ। मैं ठोस आध्यात्मिक साधना में विश्वास करता हूँ। मैं सांसारिक प्रवृत्ति के पूर्ण रूपान्तरण में विश्वास करता हूँ। हमें पूर्णतः निर्भय बनना चाहिए। यही आत्ममय जीवन का लक्षण है। अधिक शब्द नहीं। अधिक बातें नहीं। अधिक विवाद, वितण्डा नहीं। अधिक अध्ययन नहीं। अधिक भ्रमण नहीं। ॐ में निवास कीजिए। सत्य में निवास कीजिए। एक स्थान में रहिए। मौन में प्रवेश कीजिए। महामौनी बन जाइए। महामौनी ब्रह्म है। वही शान्ति है। शान्ति मौन है।

१६७. आपके हृदय में अमृत का सागर है। जो तीनों तापों से सन्तप्त हैं, उन्हें श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन के द्वारा इस अमृत का पान करना चाहिए।

१६८. स्वयं के द्वारा स्वयं को ऊँचा उठाइए। स्वयं ही आत्म-निरीक्षण कीजिए। स्वयं शुद्धता लाइए। स्वयं अनुशासन कीजिए। स्वयं आत्मा का साक्षात्कार कीजिए; क्योंकि आत्मा ही इस क्षुद्र अहं का स्वामी है। आत्मा ही एकमेव आश्रय, आधार तथा अवलम्ब है।

१६९. सारे पैर भगवान् विराट् के हैं- ऐसा अनुभव कीजिए। आप इसी क्षण साक्षात्कार कर लेंगे। कठिन प्रयत्न कीजिए।

१७०. अन्तरात्मा का अनुभव कीजिए। अन्तर्यामी के प्रति सच्चे बनिए। ॐ की याद रखिए। सत्य में निवास कीजिए। ॐ में निवास कीजिए। आप व्यापक आत्मा हैं। सब-कुछ आत्मा ही है।

१७१. अपने वास्तविक स्वरूप को विवेक तथा वैराग्य के द्वारा जान लीजिए। संशय-भावना, असम्भावना तथा विपरीत भावना से पूर्णतः मुक्त बनिए। यही ज्ञानाभ्यास है। आप सब जीवन्मुक्त हैं।

१७२. सनातन नियम, महान् योजना तथा सर्वोच्च विधान को समझिए। अपने ईश्वरीय धाम ॐ, आत्मा, ब्रह्म को जानिए तथा अनुभव कीजिए। शम, दम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि के द्वारा मन को मूल में लगाइए।

१७३. पाँच इन्द्रियों से स्वयं को अलग कीजिए। पाँच को त्यागिए। पाँच से ऊपर उठिए। पाँच को नष्ट कीजिए। पाँच से अलग हटिए। ये पाँच अज्ञान से उत्पन्न हैं। ये माया के जादू हैं। आत्मा ही सत्य है। वह आँखों की आँख है। उसे जान कर मुक्त हो जाइए।

१७४. मैं जानता हूँ कि आप उपर्युक्त विषय भली-भाँति समझ गये होंगे, फिर भी मैं उसे दुहराये देता हूँ। माया, अविद्या अथवा मोह की शक्ति महान् है। आप बहुत बार आत्मिक भाव का विस्मरण कर देते हैं। मन पर बारम्बार जोर डालना आवश्यक है।

१७५. यही आपका कर्तव्य है। इसके लिए ही आपने शरीर धारण किया है। अन्य सारे कर्तव्य मानसिक कल्पना मात्र हैं। आपका कोई कर्तव्य नहीं है। आपके लिए कोई उत्तरदायित्व नहीं है। आप सदा मुक्त हैं। आप नित्य मुक्त हैं। आपके लिए जन्म-मृत्यु नहीं हैं। आप सर्वव्यापक तथा ज्योतियों की ज्योति हैं।

१७६. 'तत्त्वमसि' तू वही है। आप सर्वव्यापक आत्मा हैं। आप अमर आत्मा हैं। ध्यान के द्वारा आत्मा का साक्षात्कार कीजिए। मन आपको ठगता है तथा प्रलोभित करता है। इस महान् वैरी मन को नष्ट कर डालिए।

१७७. ॐ का जप, भाव तथा अर्थ के साथ प्रणव का जप निर्गुण उपासना की एक विधि है। दूसरी विधि है साक्षी-भाव। सारी वृत्तियों से तथा बाह्य वस्तुओं से स्वयं को अलग कीजिए। आप वृत्तियों के साक्षी बन जाते हैं। इस साधना के साथ-साथ आप काम भी कर सकते हैं। सदा इसका जप कीजिए- "ॐ साक्षी, ॐ साक्षी।"

१७८. विचारिए - सारे शरीर आपके ही हैं। अपने शरीर के साथ विशेष आसक्ति न रखिए। एक शरीर-विशेष में ही बद्ध न बने रहिए। कहिए, "सारे शरीर मेरे हैं"- विकास प्राप्त कीजिए। विराट् से एक बन जाइए। वेदान्त-साधना का यह प्रथम सोपान है। यह स्थूल विकास है।

१७९. हिरण्यगर्भ के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित कीजिए। यह सूक्ष्म विकास है। यह द्वितीयावस्था है। ईश्वर के साथ एक बनिए जो सभी कारण शरीरों का योग है। अन्ततः ब्रह्म का साक्षात्कार प्राप्त कीजिए। स्थूल को सूक्ष्म में, सूक्ष्म को कारण में, कारण को आत्मा में या ब्रह्म में विलीन कर दीजिए। यह लय क्रम है।

१८०. 'तत्त्वमसि' तू वही है। आप ब्रह्म हैं। इस विचार में स्थित हो जाइए। सदा प्रसन्न रहिए। अभय रहिए। पंचकोशों से अपनी आत्मा को उसी तरह अलग कीजिए जिस तरह मूँज घास से उसके डण्ठल को अलग करते हैं।

१८१. आत्मा में गुप्त खजाना है। खोजिए। वह आपके हृदय में ही है। खोजने से पहले कामिनी-कंचन का परित्याग कीजिए। आप काम तथा ईश्वर-दोनों को एक-साथ नहीं पूज सकते।

१८२. आत्मा को न भूलिए। निःस्वार्थ धार्मिक कर्म कीजिए। इन्द्रियों का दमन कीजिए। मनुस्मृति के अनुसार धर्म-मार्ग का अनुसरण कीजिए। तब आप शान्त, सबल तथा शक्तिशाली बन जायेंगे। आप ज्योतिष्मान् नक्षत्र तथा प्रकाश स्तम्भ बन जायेंगे।

१८३. मैं सर्वत्र, ऊपर-नीचे, भीतर-बाहर ईश्वर को ही देखता हूँ। अपनी दृष्टि बदल डालिए। आप यहीं स्वर्ग प्राप्त कर लेंगे। इसका निश्चय रखिए।

१८४. शान्ति में आत्मा का अनुभव कीजिए। कार्य करते समय आत्मिक महिमा तथा शान्ति को व्यक्त कीजिए। कष्टों तथा विपत्तियों में अविचल रहिए। चट्टान की तरह स्थिर रहिए। ज्ञानी में चट्टानवत् दृढ़ता होती है। आपका जीवन तथा ध्यान एक बन जाये।

१८५. आप आत्मा का साक्षात्कार कैसे कर सकेंगे? सत्य, तप, सम्यक् ज्ञान तथा ब्रह्मचर्य द्वारा।

१८६. यदि आप शरीर-चैतन्य से ऊपर उठें, यदि आप देहाभिमान का त्याग करें, यदि आपका मन आत्मा में स्थित हो जाये, तो आप निःसन्देह सुखी, शान्त तथा मुक्त हो जायेंगे।

१८७. वीरतापूर्वक कहिए- "मैं ईश्वर हूँ, मैं ब्रह्म हूँ।" निश्चय कीजिए। यह आपका जन्माधिकार है। भयभीत न बनिए। उत्तिष्ठ। साक्षात्कार कीजिए। सत्य की घोषणा कीजिए। दूसरों को सत्य का ज्ञान दीजिए। उनकी सहायता कीजिए।

१८८. 'अहं ब्रह्मास्मि' का जप करते समय स्थूल शरीर को या अहंकार को ब्रह्म न समझिए। साक्षी अथवा प्रत्यगात्मा ही ब्रह्म है। सारी बाह्य वस्तुओं का निषेध कीजिए। आप अमरत्व को प्राप्त करेंगे।

१८९. तृष्णा ही सबसे बड़ी बाधा है। सारी तृष्णाओं के दमन से आप इसी क्षण निर्वाण प्राप्त कर लेंगे। याद रखिए, तृष्णा की जड़ें गहरी गड़ी हुई हैं। वे चित्त में हैं। सावधानीपूर्वक उनका अन्वेषण कीजिए।

१९०. "मैं असंग, अकर्ता, साक्षी, त्रिगुणातीत हूँ" - इन विचारों का सतत मनन कीजिए। यही निर्गुण ध्यान है।

१९१. हर चेहरे में ईश्वर को देखिए। मन को शान्त कीजिए। विचारों को मौन बनाइए। ईश्वरीय धाम में प्रवेश कर ईश्वर का साक्षात्कार कीजिए।

१९२. मेरे प्रिय साधक ! मैं सदा आपके साथ हूँ। भय न कीजिए। हम अभेद हैं। आपको शान्ति प्राप्त हो! मेरी ज्योति आप सभी को प्रकाशित करती है। मेरी शान्ति आप सभी की आत्मा को प्रसन्न करती है। वह ईश्वरीय ज्योति कभी मन्द न हो ! आपके मन तथा हृदय में शान्ति का संचार हो ! ॐ शान्ति !

१९३. अहं-भावना का परित्याग कीजिए। ममता का त्याग कर आत्मा में निवास कीजिए। आप इसी जन्म में जीवन्मुक्त हो विभासित हो उठेंगे।

१९४. मैं वह सर्वव्यापक आत्मा हूँ जो एक चिदाकाश, अखण्ड, सर्वभूतान्तरात्मा है। इस भाव में स्थित होने का प्रयास कीजिए। तब मन की चंचलता दूर हो जायेगी। आप नित्य सुख प्राप्त करेंगे।

१९५. आप जानते हैं कि दर्पण में आपके चेहरे का प्रतिबिम्ब मिथ्या है। उसी तरह यह जगत्, शरीर तथा मन मिथ्या हैं। अस्तित्व ही ठोस सत्य है। आप वास्तव में परमात्मा हैं। आप अस्तित्व से एक हैं। इस दृष्टान्त को सदा याद रखिए। फिर यह जगत् आपके लिए आकर्षक नहीं रहेगा। आप काम करते समय भी सहजावस्था में रहेंगे।

१९६. शिर, हृदय तथा हाथ (ज्ञान, भक्ति तथा कर्म) का समन्वय होना चाहिए। यही पूर्णता है। आपमें शंकर की बुद्धि तथा बुद्ध का हृदय होना चाहिए। शुष्क वेदान्ती तो हेय हैं।

१५. पथ पर आलोक

१९७. मेरे मित्र, आप भी महान् सन्त क्यों नहीं बनते ? इस कलियुग में अल्प समय में ही ईश्वर-साक्षात्कार किया जा सकता है। यह ईश्वर की कृपा है। आपको कठिन तपस्या करने की आवश्यकता नहीं है। थियोसोफी के अनुसार इस मानव जाति में मन की काफी प्रगति हो चली है।

१९८. किसी मन्त्र का नित्य-प्रति २१,६०० बार जप कीजिए। सत्य बोलिए। क्रोध का दमन कीजिए। दान कीजिए। अपने से बड़ों, साधुओं, संन्यासियों, भक्तों, गरीबों तथा बीमारों की आत्म-भाव से सेवा कीजिए। आप शान्ति, आनन्द तथा अमृतत्व प्राप्त करेंगे। F

१९९. अलग कमरे में अकेले रहिए। काम प्रबल होने पर जप की संख्या बढ़ा दीजिए। दो सौ माला या इससे अधिक जप कीजिए। एक दिन के लिए पूर्ण उपवास कीजिए। दूसरे दिन केवल दूध-फल का आहार कीजिए। सरल प्राणायाम कीजिए। श्वास तब तक बन्द रखिए, जब तक साठ बार ॐ का जप न कर लें। एक अध्याय गीता पढ़िए। अपनी स्त्री से न बोलिए। हँसिए नहीं। अलग कमरे में रहिए। मन को किसी-न-किसी वस्तु में पूर्णतः लगाये रखिए। यह बहुत आवश्यक है। ब्रह्मचर्य के लिए यह सर्वोत्तम साधना है। इत्र, पुष्प आदि का प्रयोग न कीजिए। सस्ते उपन्यासों को न छुइए। थियेटर, सिनेमा न जाइए। कठोर गद्दी पर सोइए।

२००. मन्त्र-जप करते समय मन्त्र के अर्थ को भी याद रखिए। राम, कृष्ण, शिव-इन सभी का अर्थ है सच्चिदानन्द, शुद्धता, पूर्णता, ज्योति, नित्यता तथा अमृतत्व।

२०१. कण्ठ में एक वर्ष तक, हृदय में तीन वर्ष तक तथा नाभि में एक वर्ष तक जप कीजिए।

२०२. जप के अभ्यास में प्रगति करने पर आपकी त्वचा का प्रत्येक छिद्र, प्रत्येक रोमकूप स्वतः मन्त्र का जप करेगा। सारा शरीर मन्त्र से स्पन्दित हो उठेगा। आप ईश्वर-प्रेम में मग्न हो जायेंगे। आप पुलक का अनुभव कर आनन्दाश्रु बहायेंगे। आप प्रेरणा, प्रकाश, भाव-समाधि, अन्तर्दृष्टि, अपरोक्षानुभूति प्राप्त करेंगे। आप कविताएँ करेंगे। आपको विविध सिद्धियाँ प्राप्त होंगी।

२०३. एकान्त बगीचे में जा कर दो या तीन घण्टे तक मौन जप अथवा गीता या उपनिषद् का स्वाध्याय कीजिए। घर लौटने पर आपमें काफी ताजगी रहेगी, आपमें नव-स्फूर्ति रहेगी। आपमें प्रेम का संचार होगा।

२०४. जितना अधिक आप जप की संख्या बढ़ायेंगे, उतना ही अधिक आप सबल, शुद्ध तथा शान्त बनते जायेंगे।

२०५. भगवान् शिव का सदा स्मरण कीजिए। उसी में निवास कीजिए। उसमें गहरा गोता लगाइए। उसी में विलीन हो जाइए। सारे सांसारिक विचारों का त्याग कीजिए। भगवान् शिव आपको समुन्नत बनायेंगे। दृढ़ श्रद्धा रखिए। आध्यात्मिक साधना में वीरतापूर्वक अग्रसर होते जाइए। पीछे न देखिए। दायें-बायें न देखिए।

२०६. यदि कोई भी व्याधि डाक्टरों द्वारा असाध्य ठहरायी जाये, तो भगवान् के नाम का जप प्रारम्भ कर दीजिए। उच्च स्वर से ॐ के जप के द्वारा प्रणव-स्पन्दनों से मन तथा शरीर को भर दीजिए। प्राणायाम भी कीजिए। आप स्वस्थ हो जायेंगे। श्रद्धा रखिए। भगवान् का नाम महान् नौका है जिससे आप संसार-सागर को पार कर जायेंगे।

२०७. तीन घण्टे तक मौन रहने से वाक् इन्द्रिय के अत्यधिक रजस् पर नियन्त्रण होता है। एक ही आसन पर तीन घण्टे बैठे रहने पर आसन-जय की प्राप्ति होती है तथा पैरों की राजसिकता कम होती है। आसन तथा मौन से सत्त्वगुण की वृद्धि होती है।

२०८. उपर्युक्त तरीकों को व्यवहार में ला कर कमरे में अकेले कुछ घण्टे रहिए। किसी से न मिलिए। कानों को मोम से भर डालिए। इससे आप बाह्य शोरगुल से बच जायेंगे तथा आपमें आन्तरिक जीवन का समावेश होगा अथवा अँगूठों से कानों को बन्द कर लीजिए (योनिमुद्रा)। अब गम्भीरतापूर्वक जप तथा ध्यान कीजिए। आपको शान्ति मिलेगी। सच्चाईपूर्वक अभ्यास कीजिए। इससे अधिक मैं क्या कहूँ। मैं गाय के मुँह में घास नहीं डाल सकता। उसे स्वयं ही चरना होगा। स्वयं ही अमृत का पान कीजिए।

२०९. हर साल एक सप्ताह या एक पक्ष के लिए बनारस, प्रयाग, नासिक, हरिद्वार, ऋषिकेश जैसे तीर्थ स्थानों में रहिए तथा गम्भीरतापूर्वक जप कीजिए। महात्माओं का सत्संग कीजिए। इससे आपको मन की शान्ति मिलेगी, आप आध्यात्मिक बन जायेंगे तथा कालान्तर में आपकी आसुरी प्रकृति रूपान्तरित हो जायेगी।

१६. विशेष आध्यात्मिक उपदेश

२१०. दूसरों के साथ अधिक न मिलिए। अधिक मिलने-जुलने से मन में ईर्ष्या का समावेश हो जाता है।

२११. आपके प्रति दूसरों द्वारा की हुई गलतियों को शीघ्र भूल जाइए। जितनी बार हो सके, इसको याद रखिए- "भूल जाइए तथा क्षमा कर दीजिए।"

२१२. दूसरों के द्वारा अपमान तथा भर्त्सना सहने की कोशिश कीजिए। इससे आपकी संकल्प-शक्ति बढ़ेगी। आध्यात्मिक साधक के लिए प्रशंसा तथा सम्मान विष के समान हैं। अपमान तथा अनादर जिज्ञासु के लिए आभूषण हैं।

२१३. अपनी आवश्यकताओं को कम कीजिए। नित्य प्रति कुछ घण्टों के लिए मौन-व्रत का पालन कीजिए। नित्य-प्रति कमरे में दो घण्टे एकान्त में रहिए तथा ईश्वर के नाम अथवा किसी मन्त्र का जप कीजिए। दूसरों से बहस न कीजिए। नाम तथा यश की कामना का परित्याग कीजिए। यदि आप छह मास तक ऐसा करेंगे, तो मैं निश्चय दिलाता हूँ कि आपको मानसिक शान्ति मिल जायेगी। यदि आपको इससे आध्यात्मिक लाभ न हो, तो आप मेरी हँसी उड़ा सकते हैं; परन्तु पहले मेरे कथनानुसार साधना कर लीजिए।

२१४. प्रतिज्ञा करने में ढीला बनिए; परन्तु पहले पालन करने में जल्दी करिए।

२१५. अकेले रहिए। अधिक मिलिए-जुलिए नहीं। कुछ घण्टों के लिए नित्य-प्रति मौन रखिए।

२१६. एक प्रकार की साधना में टिके रहिए। उससे हटिए नहीं। अपनी साधना में स्थिर रहिए। एक गुरु, एक स्थान तथा एक विधि में स्थिर रहिए। याद रखिए कि लुढ़कते बेलन से कोई विशेष कार्य नहीं बन पाता।

२१७. आपको संकल्पवान् व्यक्ति बनना चाहिए। किसी वस्तु के लाभ-हानि का विचार अच्छी तरह से एक बार, दो बार, तीन बार कर लेना चाहिए। एक बार प्रतिज्ञा कर लेने पर उसे बदलिए नहीं; हर हालत में उसे पूर्ण कीजिए। इससे आपका आत्म-बल बढ़ेगा।

२१८. आप अपने लिए आदर्श तथा सिद्धान्त रखिए। बलपूर्वक स्थिरता के साथ उन पर डटे रहिए। जरा भी उनसे न हटिए।

२१९. यदि आप साधुओं, वेदों तथा स्मृतियों के आदेशों का ठीक-ठीक पालन करेंगे, यदि आप यम-नियम का अभ्यास करेंगे तो आपकी सारी विपत्तियों का अवसान हो जायेगा; आप अन्धकार के पथ पर नहीं बढ़ेंगे।

२२०. दूसरों की भावनाओं, भावुकताओं, विचारों तथा धारणाओं का आदर कीजिए। झगड़ा न कीजिए। साधक के लिए सहनशीलता प्रमुख गुण है। यदि आप सहनशील नहीं हैं, तो आपको मानसिक शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

२२१. इस सापेक्ष जगत् में कुछ भी पूर्णतः गलत तथा कुछ भी पूर्णतः ठीक नहीं है। हर व्यक्ति के कथन में कुछ-न-कुछ सत्य अवश्य है। इसे याद रखिए।

२२२. अपने मित्रों की संख्या न बढ़ाइए। वास्तव में इस जगत् में कोई भी सच्चा मित्र नहीं है। लोग स्वार्थवश एक-दूसरे से मिलते जाते हैं। आत्मा ही एकमेव वास्तविक मित्र है। ईश्वर ही आपका सच्चा मित्र है। आप उसको भूल भी जायें; परन्तु वह सदा आपका कल्याण करता है।

२२३. हे साधक ! इन बातों को नित्य याद रखिए- (क) उन साधुओं तथा महात्माओं को याद रखिए जो अपने लक्ष्य को प्राप्त कर चुके हैं जैसे दत्तात्रेय, शंकर, ज्ञानदेव, रामदास, तुलसीदास आदि। इससे साधना में आपको काफी प्रेरणा प्राप्त होगी। (ख) मृत्यु, व्याधि, जरा तथा अन्य जागतिक विपत्तियों को सदा याद रखिए। (ग) याद रखिए कि यह जगत् आकाश की नीलिमा के समान असत्य है। वे विचार आपमें वैराग्य उत्पन्न करेंगे।

२२४. किसी भी व्यक्ति से, विशेषकर स्त्री से अधिक निकट सम्पर्क न रखिए। सन्निकटता से घृणा उत्पन्न होती है। आपको अच्छी तरह मनोविज्ञान का ज्ञान होना चाहिए; तभी आप कुशलतापूर्वक विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के साथ रह सकते हैं।

२२५. नियम के पालन में जरा भी ढिलाई न कीजिए। ईश्वरीय मामलों में हँसी न उड़ाइए। आपको गम्भीर होना चाहिए; अन्यथा आपकी उन्नति सम्भव नहीं है। आप अपनी पुरानी आदतों को बदल न सकेंगे।

२२६. सभी के प्रति दयालु बनिए। इन्द्रियों पर विश्वास न रखिए। ये दोनों अभ्यास मोक्ष के लिए पर्याप्त हैं।

२२७. 'सत्यं वद' सच बोलिए, 'धर्म चर' - धर्म का आचरण कीजिए। इससे भी आप मोक्ष को प्राप्त कर लेंगे।

२२८. इन्द्रियों का दमन ही वेदों का सारांश है।

२२९. आपका एकमेव कर्तव्य इन्द्रियों का दमन करना है। यही मुख्य कर्तव्य है। अन्य सारे कर्तव्य गौण हैं। आपके भीतर ईश्वर छिपा हुआ है। वह 'सर्वभूतेषु गूढः' है। उसी को व्यक्त करना आपका लक्ष्य है। वह 'सर्वभूतान्तरात्मा' तथा सर्वभूताधिवासः' है।

२३०. आध्यात्मिक डायरी का पालन कीजिए। अपनी उन्नति, अपने दैनिक कार्यक्रम तथा अन्य विशेष बातों को लिखते जाइए।

२३१. गुरुजनों, माता-पिता, साधु-संन्यासी आदि के प्रति सच्चाई तथा भाव के साथ सम्मान रखिए।

२३२. ईश्वर भी किसी को कैवल्य मोक्ष प्रदान नहीं कर सकता। हर व्यक्ति को स्वतः पुरुषार्थ करना होगा। पुरुषार्थ ईश्वर-स्वरूप ही है। इससे आप असंग ज्ञान को प्राप्त कर लेंगे।

२३३. आपको सारी मानसिक दुर्बलताओं से मुक्त होना होगा। मिथ्या भय, विकल्प, भ्रान्ति आदि से मुक्त बनिए। तभी आप वास्तव में सुखी बनेंगे।

२३४. सड़क पर चलते समय यत्र-तत्र न देखिए। इससे विक्षेप होगा। अपनी नासिका के अग्र भाग को देखिए। नित्य इसका अभ्यास कीजिए। यही आपकी आदत बन जायेगी।

२३५. अपने वैयक्तिक व्यय को बहुत कम रखिए- पन्दरह या बीस रुपये से अधिक नहीं। सरल जीवन तथा उच्च विचार ही आपका आदर्श होना चाहिए।

२३६. यदि आपको विधि मालूम है, तो मन को नियन्त्रित करना बड़ा ही आसान है। आपको ईश्वर में प्रबल निष्ठा तथा सच्ची लगन होनी चाहिए। सूर्य भले ही पश्चिम में उगने लगे; परन्तु आप अपने निश्चय से विचलित न होइए।

२३७. सांसारिक बुद्धि वाले मनुष्यों का साथ करना साधक के लिए उतना ही भयावह है जितना कि स्त्रियों का साथ। सावधान !

२३८. आपको रोग क्यों मिलता है? बुरे कर्मों के प्रक्षालन के लिए, आपमें सत्त्व तथा सद्गुणों को भरने के लिए, तितिक्षा, करुणा तथा प्रेम की वृद्धि के लिए एवं ईश्वर-स्मरण के लिए। इस संसार में दुःख सर्वोत्तम वस्तु है। इससे आपका आन्तरिक चक्षु खुल पड़ता है। दुःख से ही दर्शन की उत्पत्ति होती है। दर्शन दुःख के कारण को ढूँढ़ निकालता है तथा अज्ञान-निवारण के द्वारा दुःख-निदान का मार्ग प्रशस्त करता है।

२३९. सभी लोगों को दुःख एवं विपत्तियों से लाभ नहीं होता है। दुःख के समय अहंकार थोड़ा क्षीण हो जाता है; परन्तु स्वस्थ होते ही अहंकार द्विगुणित रूप से लौट आता है। विवेकी जन ही इससे लाभान्वित होते हैं।

२४०. समय का अपव्यय न कीजिए। एक मिनट भी न खोइए। साधकों के लिए समय बहुमूल्य है। ध्यान कीजिए। साक्षात्कार कीजिए। अमृत रस का पान कीजिए।

२४१. कौन आज्ञा दे सकता है? वही जो आज्ञा-पालन करना जानता है। आज्ञा-पालन महान् त्याग है।

२४२. खिचड़ी खा कर तथा जल पी कर सन्तुष्ट एवं सुखी रहिए। सन्तुष्ट मन तो सदा सुखी है। ब्रह्मा तथा इन्द्र भी आपसे ईर्ष्या करेंगे।

२४३. दूसरों की हँसी न उड़ाइए। दूसरों को घृणा से न देखिए। दूसरों के शब्दों एवं भावनाओं का आदर कीजिए। दूसरों की प्रशंसा कीजिए एवं अपने दोषों को दूसरों के सामने खोल कर रख दीजिए।

२४४. अपने को छिपाये रखिए। अपने कौशल तथा योग्यता का प्रदर्शन न कीजिए। नाम तथा यश की परवाह न कीजिए। नाम तथा यश को तृण, मल, धूलि तथा विष समझिए। तभी आपको शान्ति मिलेगी।

२४५. अपने विचारों का निरीक्षण कीजिए। एकान्त में बैठिए। अपने मन एवं स्वभाव का विश्लेषण कीजिए। वृत्तियों को देखिए तथा प्रार्थना कीजिए। अपने स्वभाव एवं दोषों का अध्ययन कीजिए तथा उपर्युक्त साधनों द्वारा उन्हें दूर करने की कोशिश कीजिए ।

२४६. स्वयं को जगत् में नहीं के बराबर समझिए। इस प्रकार आप अपने अहंकार एवं मद को दूर कर सकेंगे। सदा भूमि पर बैठिए। कुरसी, सोफा, बेंच, गद्दे आदि का त्याग कीजिए। श्रमपूर्वक कार्य कीजिए। दूसरों की सेवा कीजिए। दूसरों की बड़ाई कीजिए। दूसरों के दोषों को प्रकट न कीजिए।

२४७. जब कोई व्यक्ति आपकी बुराई करे, तो उसको क्षमा कर दीजिए तथा उसके प्रति दया कीजिए। उसके लिए प्रार्थना कीजिए। उसकी भलाई कीजिए। उससे प्रेम कीजिए। अपमान तथा नुकसान सहिए। इससे आपकी संकल्प-शक्ति बढ़ेगी।

२४८. हठयोगी अपने शरीर तथा प्राण से साधना प्रारम्भ करते हैं। उनका सिद्धान्त है कि प्राण के नियन्त्रण से मन भी नियन्त्रित हो जायेगा। यह मन्द अधिकारियों के लिए है।

२४९. राजयोगी अपनी साधना मन से प्रारम्भ करते हैं। वे वृत्तियों का दमन कर मन को शून्य बना डालते हैं। वे संयम का अभ्यास करते हैं। यम तथा नियम के अभ्यास से वे सद्गुणों का विकास करते हैं। विचार के बिना हठयोगी मन में सद्गुणों की वृद्धि नहीं कर सकता।

२५०. ज्ञानयोगी बुद्धि तथा संकल्प के द्वारा अपनी साधना प्रारम्भ करता है। तान्त्रिक लोग शक्ति द्वारा साधना प्रारम्भ करते हैं।

२५१. भक्ति, श्रद्धा तथा आत्मार्पण के द्वारा भक्त साधना प्रारम्भ करते हैं। उनमें उन्नत भावनाएँ होती हैं। वे शरीर तथा जगत् को भूल जाते हैं।

२५२. ब्रह्म-भावना में स्थित हो जाइए। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' - 'ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है', इस विचार को सदा मन में बनाये रखिए।

२५३. पाप गलती मात्र है। पाप अज्ञान है। ब्रह्मज्ञान के द्वारा पाप का अतिक्रमण कीजिए।

१७. निवृत्ति-साधना

२५४. विषयों के प्रति सारे रागों तथा बन्धनों का परित्याग करना ही सच्चा संन्यास है। यह मानसिक असंग एवं आत्म-निषेध की अवस्था है। वासना, स्वार्थ तथा आसक्ति के विनाश से ही वास्तविक संन्यास सम्भव है।

२५५. सारे स्वार्थपूर्ण कर्म तथा उनके फल का त्याग ही संन्यास है। कर्तापन की भावना का परित्याग ही संन्यास है। द्वन्द्वों से अतीत हो जाना संन्यास है।

२५६. केवल भावुकता तथा जोश के द्वारा इस मार्ग में अधिक लाभ नहीं होता। संन्यासी को मौन तथा शाश्वत उत्साह का जीवन्त उदाहरण बन जाना चाहिए।

२५७. एकान्तवास, मौन-व्रत तथा इन्द्रिय-दमन का अभ्यास करना चाहिए। इससे उन्नत संन्यास के लिए सफलता मिलेगी तथा मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होगा।

२५८. यह जगत् दुःखमय है। मन हर क्षण प्रलोभित करता तथा धोखा देता रहता है। मन की भ्रान्ति के कारण ही दुःख को सुख समझ बैठते हैं। गम्भीरतापूर्वक चिन्तन कीजिए। यह जगत् बुझता हुआ अग्नि का गोला है। सारे सुख प्रारम्भ में मधुर लगते हैं, परन्तु अन्त में विषाक्त हैं।

२५९. इन्द्रियाँ आपको हर क्षण धोखा देती हैं। इन्द्रियाँ बहुत ही बलवती हैं तथा बुद्धिमान् लोगों को भी वशीभूत कर लेती हैं। ये क्षणिक सुख देती हैं; परन्तु वह सुख, नित्य दुःख, शोक, व्याकुलता तथा भ्रम से युक्त रहता है।

२६०. ज्ञानी जन इसकी घोषणा करते हैं कि कर्म से अथवा सन्तान से अथवा धन से अमृतत्व प्राप्त नहीं हो सकता, वैराग्य से ही अमृतत्व पाया जाता है।

२६१. विषय-जीवन भी क्या कोई जीवन है? यह दुःख, सभी प्रकार के पाप, दुर्बलता, आसक्ति, गुलामी की वृत्ति, दुर्बल इच्छा-शक्ति, उग्र प्रयास तथा संघर्ष से युक्त है। विषय-जीवन में आप अमृतत्व नहीं प्राप्त कर सकते हैं। यह आपको नरक के खड्ड में जा गिरायेगा। जितना ही अधिक आप विषय-सुख के पीछे दौड़ेंगे, उतना ही अधिक आप अशान्त एवं दुःखी बनेंगे।

२६२. मान, आदर, उपाधि, नाम तथा यश का परित्याग कीजिए। ये सभी निस्सार हैं। इनमें आपको नित्य तृप्ति नहीं मिल सकती। ये आपके अभिमान को ही मजबूत बनायेंगे। ये सभी मन के लिए उत्तेजक हैं। ये मन में अशान्ति लायेंगे। यही कारण है कि राजा भर्तृहरि, राजा गोपीचन्द तथा भगवान् बुद्ध ने राज्य, धन तथा सम्मान का परित्याग कर दिया।

२६३. क्या राज्य की प्राप्ति महत्त्वपूर्ण नहीं है? क्या कश्मीर अथवा अन्य रमणीय स्थानों में प्रसूनों से सुसज्जित ग्रीष्म-अट्टालिकाओं में रहना अच्छा नहीं है? क्या मृगनयनी युवती महारानियों का संग प्रिय नहीं है? फिर भी बुद्धिमान् जनों ने इन सारी वस्तुओं को तृणवत् समझ कर आत्म-साक्षात्कार करने के लिए अरण्यवास को ही अंगीकार किया।

२६४. प्रबल संकल्प रखिए। निवृत्ति-मार्ग ग्रहण कर लेने पर घर जाने की बात कदापि मन में न लाइए। साहस, मन की स्थिरता तथा जीवन में निश्चित उद्देश्य रखिए।

यदि आप अपनी सारी सम्पत्ति, शरीर तथा जीवन को भी त्यागने के लिए तैयार हैं, तो आप संन्यास ग्रहण कर निवृत्ति-मार्ग का अनुसरण कर सकते हैं।

२६५. संन्यास-मार्ग गुलाब के फूलों से भरा हुआ नहीं है। इसमें बहुत कंटक तथा बाधाएँ हैं; परन्तु यह मार्ग आपको सम्राटों का सम्राट् बना डालेगा।

२६६. जो संन्यास-मार्ग ग्रहण करना चाहते हैं, उन्हें श्रमपूर्ण जीवन तथा रूखा-सूखा भोजन खाने के लिए स्वयं को प्रशिक्षित करना होगा; तभी वह संन्यासी-जीवन के कष्टों को सह सकेंगे। उन्हें आलसी नहीं बनना चाहिए। मानसिक जीवन का सदुपयोग करना चाहिए, तभी शीघ्र उन्नति सम्भव है।

२६७. विषयों के आकर्षण तथा तरह-तरह के बन्धन मनुष्य को इस संसार में फँसा डालते हैं। सारे आकर्षण तथा बन्धनों को तोड़ कर उनका संन्यास ही वास्तविक संन्यास है। जो मनुष्य आकर्षण तथा बन्धन से मुक्त है, वह असीम सुख तथा परम आनन्द का उपभोग करता है।

२६८. ये ही पाँच प्रकार के विषय-सुख स्वर्ग में भी हैं; परन्तु वे अधिक सूक्ष्म हैं। विवेकी मनुष्य के लिये वे शाश्वत सुख प्रदान नहीं कर सकते। विवेकी मनुष्य स्वर्ग के भी सारे सुखों का परित्याग करता है। वह उन सभी को लात मारता है। वह अच्छी तरह जानता है कि ब्रह्मानन्द-सागर की एक बूँद भी इन तीनों लोकों के सुखों से प्राप्त होना सम्भव नहीं है।

१८. योग-साधना का विज्ञान

२६९. ईश्वर से युक्त हो जाना योग है। योग वह आध्यात्मिक विज्ञान है जो जीवात्मा तथा परमात्मा के मिलन की शिक्षा देता है।

२७०. योग का लक्ष्य है मनुष्य को प्रकृति के झंझटों से मुक्त करना तथा अपने स्वरूप का साक्षात्कार कर मुक्त हो जाना।

२७१. योगाभ्यास के द्वारा आप अपने आवेश, काम, क्रोधादि पर विजय पा लेंगे; आप प्रलोभनों का संवरण कर सकेंगे तथा मन के विक्षेपों को दूर रख सकेंगे।

२७२. भाषणों तथा पत्र-व्यवहार से योग नहीं सीखा जा सकता। यौगिक साधक को गुरु के अधीन रह कर कुछ वर्ष तक तपस्या, अनुशासन तथा ध्यानमय उग्र जीवन व्यतीत करना होगा, तभी वह योगी हो सकता है।

२७३. ऐसे बहुत से लोग हैं जो प्रातः आठ बजे से रात्रि के आठ बजे तक व्यवसाय चलाते हैं। आठ से दश बजे रात्रि तक वे अच्छे योगी हैं। वे कुछ आसन, क्रिया तथा प्राणायाम का अभ्यास करते, हठयोग तथा कुण्डलिनीयोग की पुस्तकें पढ़ते तथा उनकी मनमानी व्याख्या कर लेते हैं। संसार में रहते हुए भी संसार से बाहर रहिए। यही सर्वोच्च योग है।

२७४. मिताहार कीजिए। सात्त्विक आहार कीजिए। ब्रह्मचर्य का पालन कीजिए। इन्द्रियों का दमन कीजिए। शुद्ध वायु में श्वास लीजिए। गुरु के अधीन किसी एकान्त स्थान में निवास कीजिए जहाँ उन्नत आध्यात्मिक स्पन्दन हो। तब योगाभ्यास कीजिए; तभी आप योग में सफलता प्राप्त करेंगे।

२७५. हर वस्तु में ईश्वर को देखिए। बुराई को भलाई में परिणत कर डालिए। यही वास्तविक योग है। इससे आप आत्म-साक्षात्कार कर अज्ञान के पाशों को तोड़ सकेंगे; आप नित्य वस्तु में निवास करेंगे।

२७६. ब्रह्म का साक्षात्कार करना तथा ईश्वर में निवास करना यही योग का सारांश है।

१९. पुरुषार्थ तथा भाग्य

२७७. मनुष्य पुरुषार्थ द्वारा सब-कुछ कर सकता है।

२७८. आलसी बन कर ईश्वर को न पुकारिए। उठिए, काम कीजिए; क्योंकि ईश्वर उन्हीं की सहायता करते हैं जो स्वयं अपनी सहायता कर लेते हैं।

२७९. "उद्धरेदात्मनात्मानम्" आत्मा का उद्धार आत्मा से ही करते हैं। साधक को सारी साधना स्वयं ही करनी होगी। केवल जादू से तो आत्म-साक्षात्कार होने का नहीं।

२८०. जिनमें संसार का सच्चा ज्ञान है, जिन्हें इसके विषय में सारा सत्य मालूम है, वे अपने पुरुषार्थ द्वारा अपनी आत्मा को सांसारिक पदार्थों की तृष्णा एवं कामना से मुक्त बना लेते हैं।

२८१. सच्चाईपूर्वक स्वयं ही अपनी मुक्ति के लिए प्रयत्नशील बनिए। गुरु तो केवल पथ-प्रदर्शन करेगा। आपको स्वतः ही योग की सीढ़ी पर प्रत्येक कदम रखना होगा।

२८२. ऐसा उलाहना न दीजिए कि आपको अवसर की कमी है। जैसी आपकी इच्छा होगी, वैसा मार्ग स्वतः ही तैयार हो जायेगा। यदि आप वास्तव में ही सच्चाईपूर्वक प्रयत्नशील हैं, तो आपको स्वतः सुअवसर प्राप्त होंगे। जो सच्चाईपूर्वक प्रयत्न करते हैं, उन्हें ईश्वर की सहायता प्राप्त होती है।

२८३. प्रारब्ध तथा पुरुषार्थ एक ही हैं। प्रारब्ध पूर्व-जन्म का पुरुषार्थ ही है। यह अनन्त श्रृंखला है। सत्पुरुषार्थ द्वारा आपको सुखमय फल प्राप्त होंगे। मार्कण्डेय ने पुरुषार्थ द्वारा ही अमृतत्व प्राप्त कर लिया। सावित्री ने यम के पाश से अपने पति सत्यवान् को छुड़ा लिया। प्रारब्ध पर ही निर्भर रहने से मनुष्य भाग्यवादी बन जाता है। यह आध्यात्मिक उन्नति का महान् शत्रु है। इससे साधक दुर्बल बन जाता है। उसमें इच्छा-शक्ति नहीं रह

२८४. अपने भाग्य की चिन्ता न कीजिए। मनुष्य के विचार, आदत तथा चरित्र से ही भाग्य का निर्माण होता है। आप अपनी हार्दिक कामना के अनुसार भाग्य को बदल सकते हैं। पुरुषार्थ की आवश्यकता है। मनुष्य अपने भाग्य का विधाता है।

२८५. सारे योगवासिष्ठ में आप यह विचार पायेंगे कि मनुष्य पुरुषार्थ के द्वारा अमृतत्व प्राप्त कर सकता है। पूर्व जन्म के कर्मों से ही भाग्य का निर्माण हुआ है। भगवान् बुद्ध भी सफलता के लिए सम्यक् प्रयास पर बल देते हैं।

२०. ब्रह्मचर्य - सारी साधनाओं का आधार

२८६. ब्रह्मचर्य ही जीवन-क्षेत्र में सफलता की कुंजी है। आध्यात्मिक उन्नति के लिए यह परमावश्यक है। कान एम

२८७. अज्ञानी मनुष्यों की कामुकता को दूर करने के लिए ब्रह्मचर्य से बढ़ कर कोई औषधि नहीं है। यह साधक को ब्रह्म में प्रतिष्ठित करता है।

२८८. मन, वचन तथा कर्म में शुद्धता रखना ही ब्रह्मचर्य है। इससे मनुष्य आत्म-साक्षात्कार कर लेता है।

२८९. वीर्य ही विचार, बुद्धिमत्ता, जीवन तथा चेतना का सार है।

२९०. एक बार के लैंगिक भोग में जितनी शक्ति का अपव्यय होता है। वह दश दिनों के शारीरिक श्रम में लगी शक्ति के बराबर है तथा तीन दिनों में खर्च मानसिक शक्ति के समान है। र र्भि

२९१. योगी अखण्ड ब्रह्मचर्य के द्वारा दिव्य शक्ति को सुरक्षित रखता है।

२९२. जो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं करते, वे क्रोध, ईर्ष्या, आलस्य, भय आदि के गुलाम बन जाते हैं।

२९३. जिसने काम पर पूर्णतः विजय पा ली है, वह ब्रह्म ही है।

२९४. ब्रह्मचर्य के विषय में दो मत नहीं हो सकते। कोई भी विवेकी व्यक्ति पुत्र-प्राप्ति नहीं करना चाहता। गृहस्थ का जीवन ब्रह्मचर्य-पालन के अनुकूल नहीं है। एक सन्तान के उत्पन्न होते ही गृहस्थ को अपनी पत्नी से मातृवत् बरताव करना चाहिए।

२९५. ब्रह्मचर्य से तात्पर्य केवल जननेन्द्रिय का ही संयम नहीं है, वरन् सभी इन्द्रियों का संयम है।

२९६. शारीरिक तथा मानसिक ब्रह्मचर्य के पालन के लिए मन को सदा कार्य में संलग्न रखना सर्वोत्तम उपाय है।

२९७. भगवान् के नाम का जप, सात्त्विक आहार, सत्संग, स्वाध्याय, प्राणायाम, कीर्तन, विचार, विवेक इत्यादि कालान्तर में काम-वृत्ति का उन्मूलन कर डालेंगे।

२९८. कुछ समय एकान्त में रहने पर ही ब्रह्मचर्य का सम्यक् ज्ञान होना सम्भव है।

२९९. सदा कौपीन तथा लंगोटी पहनिए। इससे ब्रह्मचर्य-पालन में सहायता मिलेगी तथा आप स्वस्थ, सम्पत्तिवान् तथा ज्ञानी बनेंगे।

३००. संसार के दुःखों को याद कीजिए; विषयों की निस्सारता और स्त्री तथा सन्तान से होने वाले बन्धन का चिन्तन कीजिए।

३०१. सदा याद रखिए- "ईश्वर की कृपा से मैं नित्य-प्रति शुद्ध होता जा रहा हूँ। विषय-सुख आते हैं; परन्तु ठहरते नहीं। भौतिक शरीर तो मिट्टी का ही पुतला है। सब-कुछ विनष्ट हो जायेगा। ब्रह्मचर्य ही एकमेव साधन है।"

२१. भलाई, शुद्धता तथा ज्ञान

३०२. वह भद्र पुरुष जो सदा जगत् की भलाई करता है तथा दिव्य विचारों को प्रश्रय देता है, संसार के लिए वरदान-स्वरूप है।

३०३. शुभ कर्म तथा मधुर वाणी वाला व्यक्ति किसी को शत्रु नहीं बनाता। यदि आप वास्तव में आध्यात्मिक उन्नति करना चाहते हैं, तो उन लोगों की भलाई कीजिए जो आपको विष देने या कष्ट पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं।

३०४. शुद्धता से ज्ञान तथा अमृतत्व की प्राप्ति होती है। शुद्धता दो प्रकार की है-बाह्य अथवा शारीरिक, आन्तर अथवा मानसिक। मानसिक शुद्धता ही अधिक आवश्यक है। भौतिक शुद्धता भी चाहिए। आन्तरिक मानसिक शुद्धता में संस्थित होने पर मन की प्रसन्नता, एकाग्रता, इन्द्रिय-जय तथा आत्म-साक्षात्कार के लिए योग्यता की प्राप्ति होती है।

३०५. शुद्धता योगी के लिए सर्वोत्तम मुक्ता है। यह ज्ञानी का सर्वोत्तम खजाना है। यह भक्त का सर्वोत्तम धन है।

३०६. करुणा का अभ्यास, दानशील कर्म, सदय सेवा-ये हृदय को शुद्ध तथा कोमल बनाते हैं, और हृदय-पद्म को प्रस्फुटित कर साधक को दिव्य ज्योति के ग्रहण के लिए समर्थ बनाते हैं।

३०७. जप, कीर्तन, ध्यान, दान, प्राणायाम- ये सारे पापों को जला कर हृदय को शुद्ध बना देते हैं।

३०८. सत्य सर्वोत्तम ज्ञान है। सत्य जन-मत पर निर्भर नहीं होता। सत्य सनातन है। सत्य का ही साम्राज्य है। जो सत्यवादी तथा शुद्ध हैं, वे मरते नहीं। जो असत्यवादी तथा कामुक हैं, वे पहले से ही मरे हुए हैं।

३०९. यदि आप आत्मा का साक्षात्कार करना चाहते हैं, तो आपका मन शुद्ध होना चाहिए। जब तक मन सारी कामनाओं, तृष्णाओं, चिन्ताओं, मोहों, अभिमान, काम, राग, द्वेष आदि को निकाल नहीं फेंकता, तब तक वह परम शान्ति तथा विशुद्ध आनन्द के अमर धाम में प्रवेश नहीं कर सकता।

३१०. मन की तुलना एक बगीचे से की जाती है। जिस तरह बाग लगाने से पहले भूमि को जोतते-गोड़ते, खाद देते, मोथें अलग करते तथा पानी देते हैं, उसी प्रकार आप अपने हृदय से काम, क्रोधादि मलों को दूर कर, उसे दिव्य विचारों से सिंचित कर भक्ति-पुष्प का अर्जन कर सकते हैं। मोथों तथा कँटीली झाड़ियाँ वर्षा के दिनों में उग आती हैं और ग्रीष्म ऋतु में छिपी रहती हैं; परन्तु उनकी जड़ें भूमि के अन्दर रहती हैं। उसी तरह मन की वृत्तियाँ सचेतन मन की ऊपरी सतह पर आती हैं और अदृश्य हो कर बीज की अवस्था में रहती हैं। वे संस्कार पुनः वृत्ति बन जाते हैं। जब वाटिका साफ है, जब मोथे अथवा काँटें नहीं है, तब आप अच्छे फल प्राप्त कर सकते हैं। उसी तरह जब हृदय तथा मन शुद्ध हैं, आप गम्भीर ध्यान के फल को प्राप्त करेंगे। अतः अपने मन को मलों से मुक्त बनाइए।

३११. यदि आप नित्य-प्रति अपनी थाली साफ न करें, तो उसकी चमक चली जायेगी। मन के विषय में भी यही बात है। यदि नियमित ध्यान के अभ्यास से इसे साफ न किया जाये, तो यह भी मलिन हो जाता है।

३१२. सत्य बोलने से मनुष्य चिन्ताओं से मुक्त रहता है तथा शान्ति एवं शक्ति प्राप्त करता है।

३१३. सत्य बोलना योगी का सर्वोत्तम गुण है। यदि सत्य तथा एक हजार अश्वमेघ यज्ञों को एक तराजू में तोला जाये, तो सत्य का पलड़ा ही भारी होगा।

३१४. ईश्वर सत्य है। सत्य बोलने से ही उसका साक्षात्कार किया जा सकता है। मन, वचन तथा कर्म से सत्य बोलना चाहिए।

३१५. सत्य, आत्म-संयम, ईर्ष्या का अभाव, क्षमा, लज्जा, सहनशीलता, निष्काम दानशीलता, विचारशीलता, आत्मनिष्ठा, सतत करुणा तथा अहिंसा-ये सत्य के ही रूप हैं।

३१६. कुछ लोगों का कहना है कि यदि भलाई के लिए झूठ बोला जाये, तो उसे सत्य ही मानना चाहिए। कल्पना कीजिए कि किसी अधर्मी राजा ने किसी सन्त को अकारण ही फाँसी की सजा दी है। यदि झूठ बोलने से उस सन्त का जीवन बच जाये, तो यह सत्य ही है।

३१७. सदा हर परिस्थिति में सत्य बोलने से योगी को वाक्-सिद्धि की प्राप्ति होती है। जो-कुछ भी वह सोचता अथवा कहता है, वह सत्य हो जाता है। वह विचार मात्र से जो चाहे कर सकता है।

३१८. सत्य के पालन से ही इस आत्मा की प्राप्ति सम्भव है। सत्य से बढ़ कर कुछ भी नहीं है। यह उपनिषद् की घोषणा है। युधिष्ठिर तथा सत्यव्रती हरिश्चन्द्र के जीवन देखिए। संकट-काल में भी वे सत्य से डिगे नहीं।

२२. दान-साधना का एक रूप

३१९. दान सहज तथा अबाध होना चाहिए। दान देने की आदत ही हो जानी चाहिए। आपको दान देने में सुख का अनुभव करना चाहिए।

३२०. आप ऐसा न सोचें कि 'मैंने बड़ा दानशील कर्म कर दिया है। मुझे स्वर्ग प्राप्त होगा। दूसरे जन्म में मैं धनी बनूँगा। यह दान-कर्म मेरे पापों को धो डालेगा। मेरे समान दानशील व्यक्ति इस शहर में कोई नहीं है। लोग मुझे दानी कहते हैं।"

३२१. आपका हृदय विशाल होना चाहिए। गरीबों के लिए अपने रुपये ठीकरों की भाँति फेंकिए; तभी आप अद्वैत-भाव-समाधि तथा विश्व-प्रेम का विकास कर पायेंगे।

३२२. कुछ लोग दान करते हैं तथा अपना नाम समाचार-पत्रों में देखने के लिए आतुर रहते हैं। यह दान का तामसिक रूप है।

३२३. आपका बायाँ हाथ यह न जान पाये कि दाहिना हाथ क्या दे रहा है। अपनी दानशीलता का विज्ञापन न कीजिए। यदि लोग आपकी स्तुति करें, तो आपके हृदय में हर्ष नहीं होना चाहिए।

३२४. आपको नित्य कुछ दानशील कर्म करने की पिपासा होनी चाहिए। दान का कोई भी सुअवसर न खोइए। आपको अवसर बनाने चाहिए। सहज दान से बढ़ कर कोई योग अथवा यज्ञ नहीं है।

३२५. उदार वृत्ति को विकसित कीजिए। आप राजाओं के राजा बन जायेंगे। यदि आप दान करेंगे, तो जगत् का सारा धन आपका हो जायेगा। धन आपके पास आने लगेगा। यह प्रकृति का अविचल, अकाट्य तथा अमिट नियम है। अतः दान दीजिए। सभी के साथ हिस्सा बँटाइए। दूसरों को उत्तम भाग दीजिए।

३२६. आदर, नम्रता तथा आनन्द के साथ दान देना चाहिए। सम्यक् भाव के साथ दान देने से आप ईश्वर-साक्षात्कार कर लेंगे।

२३. कष्ट सफलता का सोपान

३२७. कष्ट के बिना शक्ति नहीं आ सकती। कष्ट के बिना सफलता सम्भव नहीं। बिना शोक, बिना प्रताड़ना के कोई भी सन्त नहीं बन सकता। हर कष्ट का उद्देश्य मनुष्य का विकास तथा उत्थान ही है।

३२८. कष्ट से सहनशीलता, करुणा तथा ईश्वर में श्रद्धा की वृद्धि होती है। इससे अहंकार भी दूर होता है। विपत्ति छिपी हुई वरदान ही है। यह मनुष्य के हृदय में सहनशीलता तथा करुणा की वृद्धि करती तथा उसके मन को ईश्वर की ओर प्रेरित करती है।

३२९. निर्धनता से नम्रता, बल, सहनशीलता, उत्साह आदि की वृद्धि होती है तथा विलासिता से आलस्य, मद, दुर्बलता, तमस् तथा बुरी आदतों का विकास होता है।

३३०. जब प्रकृति मनुष्य को महापुरुष बनाना चाहती है, तब वह उसे यातना प्रदान करती है।

३३१. आध्यात्मिक मार्ग में जो भी कठिनाई आती है, वह अधिक सबल बनने के लिए सुअवसर है। जो कष्ट सहन करना जानता है, उसे मानसिक शान्ति प्राप्त होती है।

३३२. प्रतिकूल वातावरण तथा बाधाएँ आपको अधिकाधिक संग्राम करने देने में सहायक हैं। कठिन जाँच तथा विपत्ति के समयों में कमजोर व्यक्ति भी शक्तिशाली बन जाता है।

३३३. वास्तविक वीर कष्ट में ही आनन्द उठाता है। वह दूसरों की सेवा करने, दूसरों को प्रसन्न बनाने तथा स्वयं को सन्मार्ग पर लाने के लिए प्रसन्नतापूर्वक कष्ट सहता है।

२४. साधना तथा आत्म-साक्षात्कार

३३४. अज्ञात मार्ग पर, जो छुरे की धार के समान तीव्र है, यात्रा करना आध्यात्मिक जीवन है।

३३५. आध्यात्मिक मार्ग में स्थिरतापूर्वक उत्साह एवं साहस के साथ आगे बढ़ते जाइए।

३३६. सच्चे साधक को यात्रा के अन्त में महान् आलोक की प्राप्ति होगी।

३३७. साधक को अकेले ही अन्धकार में यात्रा करनी होगी, श्रद्धा की ज्योति मार्ग को प्रकाशित करेगी तथा भक्ति का बल उसको सहारा देगा।

३३८. आगे का मार्ग देखा नहीं जा सकता। आगे बढ़ना अनिश्चित है तथा असावधान साधक के लिए बहुत से खड्ड हैं; परन्तु सच्चे साधक को हर कदम पर ईश्वरीय कृपा प्राप्त होती है।

३३९. पाशवी प्रकृति पर विजय प्राप्त करना तथा उसे दैवी शक्ति में परिणत करना ही आध्यात्मिक जीवन है।

३४०. साधक के लिए सत्य ही यथार्थ बन जाता है। यही आत्म-साक्षात्कार है।

३४१. सत्य की परम ज्योति पर स्थिर रहिए। आध्यात्मिक यात्रा में आप प्रकाश पायेंगे।

३४२. हे राम ! पीछे न देखिए। आगे बढ़ते जाइए। आप निश्चय ही अमर सुख की प्राप्ति कर लेंगे।

३४३. विजयी बनिए, शान्ति का मुकुट पहनिए तथा अमरानन्द-धाम में प्रवेश कीजिए। वह धाम देश-काल से परे स्वयंप्रकाश है।

२५. आध्यात्मिक जीवन के लिए आवश्यक

३४४. मन की शुद्धता, वैराग्य, अहंकार का विनाश, ज्वलन्त मुमुक्षुत्व तथा स्थिरता-ये ईश्वर-साक्षात्कार के लिए आवश्यक हैं।

३४५. शुद्धता, श्रद्धा, भक्ति, वैराग्य, अनवरत प्रयास के बिना मुक्ति सम्भव नहीं है।

३४६. यदि आपका हृदय शुद्ध है, तो दुर्बलता तथा दोष स्वतः ही विलुप्त हो जायेंगे।

३४७. आपमें श्रद्धा, भक्ति, शम, नम्रता, वैराग्य तथा सच्चाई होनी चाहिए। तभी आप शाश्वत शान्ति प्राप्त कर सकते हैं।

३४८. निष्कामता सभी साधनाओं तथा योगों के लिए प्रारम्भ से अन्त तक आवश्यक है।

३४९. तोड़िए तथा जोड़िए। मन को विषयों से तोड़िए तथा ईश्वर से जोड़िए। यही धर्म का सारांश है। यही सारी आध्यात्मिक साधनाओं का सारांश है।

३५०. आध्यात्मिक जीवन का यही अर्थ है- अहंकार से मुक्त हो कर नित्य तत्त्व में जीवन-यापन करना।

३५१. भक्ति, आत्मार्पण तथा अनुशासनये ज्ञान, नित्य सुख तथा शाश्वत शान्ति के साधन हैं।

३५२. सारे भेद एवं नानात्व के भावों को नष्ट कीजिए। सर्वग्राही बनिए।

३५३. साधुओं और सन्तों का साथ कीजिए। आप समुन्नत होंगे। आपको प्रेरणा प्राप्त होगी।

३५४. गुरु और शिष्य के सक्रिय सहयोग के बिना ब्रह्मविद्या में उन्नति सम्भव नहीं है।

३५५. गुरु में शिष्य की पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिए।

३५६. हर व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से ईश्वर को अपने निकट लाता है।

३५७. हे राम ! आपका जीवन सदा के लिए शुद्धता का आलोक बने। भक्ति और ज्ञान की ज्योति से अपने मन को शुद्ध बनाइए।

३५८. वह सत्य का ही मार्ग है जिससे ज्ञानी जन सिद्धि-लाभ करते हैं। मुक्ति के लिए दूसरा कोई भी मार्ग नहीं है।

३५९. आपको कला, विज्ञान, अध्ययन तथा पाण्डित्य की आवश्यकता नहीं है ईश्वर-साक्षात्कार के लिए श्रद्धा, शुद्धता तथा भक्ति की ही आवश्यकता है।

३६०. श्रद्धा, प्रेम तथा आशा के द्वारा आपमें शक्ति संचार होगा। अतः इन तीनों से सम्पन्न बनिए।

३६१. हृदय की शुद्धता ईश्वर-प्राप्ति का द्वार है।

३६२. ईश्वर में अविचल श्रद्धा रखिए। सद्ग्रन्थों तथा गुरु के वचनों में भी अडिग श्रद्धा रखिए। तभी आप ईश्वर साक्षात्कार प्राप्त करेंगे।

३६३. अपने हृदय में सरलता तथा प्रेम से; सत्य, निर्भयता, शुद्धता एवं भक्ति से तथा ज्ञान से आप अमर सुख तथा नित्य शान्ति को प्राप्त कर सकते हैं।

३६४. शुद्ध बनिए। भला बनिए। नम्र बनिए। श्रद्धावान् बनिए। भक्त बनिए। तभी आप ईश्वर को जान सकेंगे।

२६. आध्यात्मिक साधना की महत्ता

३६५. आध्यात्मिक जीवन आत्म-साक्षात्कार की कुंजी है।

३६६. साधक को अनवरत तथा नियमित साधना करनी चाहिए।

३६७. किसी भी परिस्थिति में साधना की अवहेलना नहीं करनी चाहिए।

३६८. श्वास लेने की भाँति ही साधना आपके जीवन का अंग ही बन जाये।

३६९. आत्म-संयम तथा अन्य सद्गुणों से सम्पन्न बनिए। ये मुक्ति के साधन हैं।

३७०. सारे विवाद तथा झगड़ों को बन्द कीजिए। व्यावहारिक बनिए। कर्म कीजिए। ब्रह्म के साथ अपना सम्बन्ध खोज निकालिए।

३७१. त्याग, निष्काम सेवा तथा भक्ति के बिना ईश्वर-साक्षात्कार सम्भव नहीं है।

३७२. प्रार्थना कीजिए तथा ध्यान कीजिए। आप मुक्ति की कुंजी प्राप्त करेंगे।

३७३. निष्काम सेवा, उदारता तथा ध्यान से शीघ्र ही ईश्वर साक्षात्कार की प्राप्ति होगी।

३७४. नियमित अभ्यास के द्वारा ध्यान में कुशल बनिए। मन के विक्षेप को रोकिए। परमात्मा में निवास कीजिए। आप आत्म-साक्षात्कार करेंगे।

३७५. चिरकाल तक उग्रतापूर्वक प्रयत्न करना चाहिए; तभी आप निम्नात्मा पर प्रभुत्व जमा सकते हैं।

३७६. आप कल ही या कई जन्मों के अनन्तर समाधि प्राप्त करेंगे- यह आपके मन की शुद्धता, साधना की उग्रता, वैराग्य, विवेक तथा मुमुक्षुत्व पर निर्भर करता है।

३७७. बहस न कीजिए। अधिक प्रश्न न कीजिए। अभ्यास कीजिए। विवेक कीजिए। ध्यान कीजिए। साक्षात्कार कीजिए।

३७८. आत्म-साक्षात्कार के लिए प्रयत्न करना ही वास्तविक पुरुषार्थ है।

३७९. नैतिक तथा आध्यात्मिक अनुशासनों के पालन से अन्ततः आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है।

३८०. आपको स्वयं ही योग की सीढ़ी पर अपना कदम रखना होगा।

२७. मुख्य साधना

३८१. विषय-भोगों का परित्याग कीजिए। इन्द्रिय-विषयों को जीत लीजिए। ध्यान कीजिए तथा उपनिषदों के ज्ञानामृत को छक कर पान कीजिए।

३८२. जब तक 'अहं ब्रह्मास्मि' की निष्ठा न हो जाये, तब तक आत्म-संयम, शम, वैराग्य, उपनिषदों का स्वाध्याय आदि सद्गुणों का अभ्यास आवश्यक है।

३८३. पहले अपने हृदय को शुद्ध बना लीजिए। स्वार्थ, लोभ, द्वेष तथा घृणा से मुक्त बनिए।

३८४. जब मन पूर्णतः शुद्ध हो जायेगा, जब सारी वासनाएँ नष्ट हो जायेंगी, जब आप तीनों गुणों का अतिक्रमण कर लेंगे, तभी आपको निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति होगी।

३८५. भक्तियोग उनके लिए है जो न तो पूर्णतः विरक्त ही हैं और न अधिक आसक्त ही हैं।

३८६. जिस नाम तथा रूप में आप ईश्वर की उपासना करेंगे, उसी नाम-रूप से आप ईश्वर का साक्षात्कार करेंगे।

३८७. कर्म तथा उपासना- ये सीढ़ी हैं जो ज्ञान तक पहुँचाते हैं।

३८८. शरीर स्थिर तथा अविचल बन जाता है। मन शान्त तथा अचल बन जाता है और साधक कर्म तथा उपासना द्वारा शुद्ध बन कर वेदान्तिक ध्यान के लिए समर्थ बन जाता है।

३८९. स्वाध्याय, सत्संग, वैराग्य तथा मुमुक्षुत्व इनसे भाव की वृद्धि होती है।

३९०. भाव के बढ़ने पर जप से बहुत ही लाभ होता है।

३९१. पहले विवेक तथा वैराग्य-जात मुमुक्षुत्व होना चाहिए, फिर आत्म-साक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील बनना चाहिए।

३९२. नम्रता आपकी पथ-प्रदर्शिका है। नम्रता आपके लिए गुरु है।

३९३. ऐसी समत्व-बुद्धि बनाये रखिए जो ज्ञान तथा विवेक से सदा ओत-प्रोत हो।

३९४. शम, मौन तथा विश्व-प्रेम का अर्जन कीजिए।

३९५. सत्य, विश्व-प्रेम, शुद्धता तथा नम्रता का अभ्यास कीजिए। उग्रतापूर्वक नियमित ध्यान कीजिए। आपको प्रकाशमय अनुभूति मिलेगी।

३९६. धार्मिक बनिए। थोड़ा खाइए। थोड़ा सोइए। थोड़ा बोलिए। सदाचारी बनिए। खूब ध्यान कीजिए। ईश्वर साक्षात्कार प्राप्त कीजिए।

३९७. हृदय की शुद्धता वह कुंजी है जिससे अपरोक्षानुभूति का द्वार खुलता है तथा परम सुख की प्राप्ति होती है।

३९८. आपकी श्रद्धा सच्ची तथा स्थिर हो। आप आध्यात्मिक उन्नति करेंगे।

३९९. अनवरत मुमुक्षुत्व बनाये रखिए। सच्चाईपूर्वक प्रयत्नशील बनिए। अथक सेवा कीजिए। सहज ध्यान कीजिए। आप शीघ्र ही लक्ष्य को प्राप्त करेंगे।

४००. कुछ भी कामना न कीजिए। कुछ भी चाहना न रखिए। आप धन्य हो जायेंगे। आप राजाओं के राजा बन जायेंगे। आप पूर्णता प्राप्त करेंगे।

४०१. ध्यान, प्रार्थना तथा एकाग्र निष्ठा से आप ईश्वर, उसके सौन्दर्य, उसकी महिमा तथा उसकी गरिमा के दर्शन प्राप्त करेंगे।

४०२. ईश्वर के नाम का सतत मानसिक तथा वाचिक जप और उस पर एवं उसके ऐश्वर्यों पर ध्यान के द्वारा आप ईश्वर साक्षात्कार प्राप्त करेंगे।

४०३. प्रेम के परम अनुभव में द्वैत के सारे भावों को खो डालिए।

४०४. वैराग्य, विवेक तथा ध्यान के द्वारा मन के विक्षेप को रोकिए।

४०५. सदा मानसिक जप कीजिए "प्रेम, आनन्द, शान्ति।" सारे बुरे विचार विलीन हो जायेंगे।

४०६. आप विषय-पदार्थों से कलंकित, मलिन तथा प्रलोभित बनते हैं। विरक्त हृदय से ईश्वर पर ध्यान कीजिए। यही एकमेव औषधि है।

४०७. मांस को क्रास पर चढ़ा दीजिए। दिव्य जीवन बिताइए। आत्मा का साक्षात्कार कीजिए।

४०८. ईश्वर के ध्यान का मार्ग लम्बा तथा कठिन है। उसके लिए संक्षिप्त मार्ग नहीं है।

४०९. हर व्यक्ति को एक ही प्रकार का संयम करना होगा। हर व्यक्ति को मानव-सेवा तथा जप से मन को शुद्ध बनाना होगा।

४१०. आज्ञाकारिता, समय-पालन तथा शुद्धता - अनुशासन के ये तीन घटक हैं।

४११. उठिए। वीर बनिए। प्रसन्न बनिए। आत्मा पर निर्भर रहिए। अन्दर से शक्ति तथा बल प्राप्त कीजिए।

२८. साधना में सफलता का रहस्य

४१२. सच्चाई तथा नियमितता आध्यात्मिक मार्ग में सफलता के रहस्य हैं।

४१३. ब्रह्मचर्य के बिना साधना असम्भव है।

४१४. जो साधक लापरवाही के कारण यम-नियम की अवहेलना करता है, वह आध्यात्मिक जीवन में कदापि उन्नति नहीं कर पाता।

४१५. मन, वचन तथा कर्म में पूर्ण शुद्धता ही ब्रह्मचर्य है।

४१६. हर विचार, हर भावना स्फटिकवत् शुद्ध होनी चाहिए।

४१७. साधक का चरित्र निष्कलंक होना चाहिए।

४१८. ब्रह्मचारी के स्वभाव में इन्द्रिय-परायणता का अल्प लेश भी न हो।

४१९. साधक में शुद्धता के लिए प्रबल कामना हो।

४२०. निष्कलंक शुद्धता की प्राप्ति के लिए उसमें उत्कट इच्छा होनी चाहिए।

४२१. काम-वृत्ति का पूर्णतः परित्याग हो जाना चाहिए। सर

४२२. यही मापदण्ड है जिसे साधक को प्राप्त करना चाहिए।

४२३. ब्रह्मचर्य की महिमा तथा गरिमा कभी भी आँखों से ओझल न हो।

४२४. परम शुद्धता ईश्वरत्व के लिए आवश्यक गुण है।

४२५. सच्चा ब्रह्मचारी इस पृथ्वी पर ईश्वर ही है।

४२६. जब मन के सारे मल दूर हो जायेंगे, तो आत्मज्ञान की प्राप्ति होगी।

४२७. मन के दमन में बुद्धिमानी से काम लीजिए। बुरी वृत्तियों के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित न कीजिए।

४२८. अपने अन्तरस्थ ईश्वर के प्रति आत्मार्पण कीजिए। इससे आप ईश्वरीय पूर्णता प्राप्त करेंगे।

४२९. साधक का जीवन त्याग तथा साधना की लम्बी श्रृंखला है।

४३०. वह दूसरों की सेवा के लिए ही जीता है। वह दूसरों को सुखी बनाता है।

४३१. जिसे वैराग्य, विवेक तथा भक्ति प्राप्त हैं; जो नियमित रूप से सतत ध्यान का अभ्यास करता है, उसके लिए मुक्ति का द्वार खुला हुआ है।

४३२. जो नम्र तथा क्षमाशील है, जिसने इन्द्रियों का दमन किया है तथा जो ईश्वर का सतत स्मरण करता है, वह परम शान्ति के धाम को जाता है।

४३३. जो शान्त, धीर, उत्साही तथा सच्चा है, वह आध्यात्मिक मार्ग में महान् उन्नति कर पायेगा।

२९. प्रलोभनों पर विजय पाइए

४३४. उन्नत साधकों पर भी प्रलोभनों का आक्रमण होता है। अधिक उग्र साधना कीजिए तथा अधिक वैराग्य बढ़ाइए।

४३५. हर प्रलोभन आपके आध्यात्मिक बल की जाँच है।

४३६. हर कठिनाई ईश्वर में आपकी श्रद्धा की परख है।

४३७. हर रोग कर्म का संशोधन है।

४३८. अनुशासन रहित मनुष्य अपने गुहा जीवन में मनोराज्य का निर्माण करता रहता है।

४३९. निम्न प्रकृति के नष्ट हुए बिना जंगलों अथवा गुफाओं में जाना व्यर्थ है।

४४०. जो कामनाएँ तथा तृष्णाएँ व्यस्त जीवन में छिपी रहती है, वे मौन तथा एकान्त में प्रकट हो जाती हैं।

४४१. साधक ज्यों-ही जंगल में पूर्ण एकान्तवास करता है, त्यों-ही उसकी निम्न प्रकृति उपद्रव कर देती है।

४४२. उन्नत योगी को भी प्रलोभन प्राप्त होते हैं; परन्तु वह ईश्वर की कृपा तथा शुभ संस्कारों से सुरक्षित रहता है।

४४३. अपने मन को पूर्णतः नियन्त्रित कीजिए। इसे उन्नत आध्यात्मिक अनुभव के ग्रहण तथा अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त बनाइए।

४४४. इस विषय-जगत् में माया ही स्वामी है; परन्तु उससे अधिक शक्तिशाली ईश्वर की कृपा, ध्यान की शक्ति, भक्ति, विवेक तथा वैराग्य हैं।

४४५. साहस, दृढ़ता तथा उत्साह-ये संकल्प के संगी हैं।

४४६. यदि आप स्वयं को अच्छी तरह जान लें, तो लोगों के स्तुति करने पर आपको हर्ष नहीं होगा।

४४७. ध्यान के समय प्रलोभनों का आक्रमण होने पर आपका इष्टदेव आपके चतुर्दिक् संरक्षक व्यूह का निर्माण करेगा। भय न कीजिए। वीर बनिए। वीरतापूर्वक बढ़ते जाइए। श्रद्धा रखिए।

४४८. आपको ध्यान-काल में विशाल शून्य तथा तमस् को पार करना होगा।

डरिए नहीं। आप ईश्वर की कृपा से ज्योति प्राप्त करेंगे। धीर बनिए। बढ़ते जाइए।

४४९. ध्यान में भूतगण आपको हानि पहुँचाने का प्रयत्न करेंगे। ईश्वर आपको बल प्रदान करेगा। अविचल रहिए। आपकी ही विजय होगी।

४५०. लोहे की शय्या आपके लिए गुलाब की शय्या बन जायेगी। विरोधी तत्त्व आपके लिए फूलों में परिणत हो जायेंगे। आपमें ईश्वर के प्रति परम श्रद्धा होनी चाहिए।

४५१. आपके चित्त से तामसिक विचार निकल कर आप पर अन्दर से आक्रमण करेंगे।

४५२. ये विचार विविध भयानक आकृतियों में प्रकट होंगे। ये आपको भयभीत करने का प्रयास करेंगे; परन्तु ईश्वर की कृपा तथा ध्यान की शक्ति द्वारा ये विनष्ट हो जायेंगे।

४५३. आप भय, वासना तथा काम-वृत्ति से मुक्त हैं या नहीं, इसकी परीक्षा की जायेगी।

४५४. उन्नत स्वर्गिक शक्तियाँ भी आपको प्रलोभन देंगी। उनका शिकार न बनिए।

४५५. आपके समक्ष सुन्दर स्वर्गिक सुन्दरियाँ प्रकट होंगी। वे गाना गायेंगी, नाचेंगी तथा मुस्करायेंगी। वे आपको पथ-भ्रष्ट करने के लिए प्रयत्न करेंगी। सावधान !

४५६. वैरागी बनिए। उनकी मलिनता, खोखलेपन, अपूर्णता तथा अनित्यता को पहचान लीजिए। विवेक के खड्ग तथा वैराग्य की कुल्हाड़ी का प्रयोग कीजिए।

३०. ध्यान कीजिए और आत्म-साक्षात्कार कीजिए

४५७. सच्चा बनिए। ध्यान कीजिए। सेवा कीजिए। पूर्णता के लक्ष्य को प्राप्त कीजिए।

४५८. एकान्तवास कीजिए। बाह्य व्यवहारों से अलग हो जाइए। आत्मा पर ध्यान कीजिए। परब्रह्म में स्थित हो जाइए।

४५९. आपके हृदय की गहराइयों में अमूल्य आत्म-मुक्ता छिपी हुई है। आत्मा को जान कर सुखी हो जाइए।

४६०. गम्भीर ध्यान के द्वारा हृदय के प्रकोष्ठ में गोता लगा कर इस मुक्ता को प्राप्त कर लीजिए।

४६१. अपने हृदय के प्रकोष्ठों में गहरा गोता लगा कर दिव्य रस का आस्वादन कीजिए।

४६२. आत्मा पर ध्यान के द्वारा अपने मन से संसार को मिटा डालिए।

४६३. शरीर का निषेध कीजिए। स्वयं को सर्वव्यापक, अमर, अभय आत्मा से एक कीजिए।

४६४. सभी प्राणियों के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित कीजिए। इससे विश्वरूप-दर्शन, विश्वात्म-चैतन्य तथा अद्वैत-साक्षात्कार होगा।

४६५. यदि आप अमर बनना चाहते हैं, तो वैयक्तिक चेतना को विनष्ट कर डालिए।

४६६. अहंकार को कुचल डालिए। मन को गला डालिए। अज्ञान के परदे को फाड़ डालिए। ब्रह्म से एक बन जाइए।

४६७. अस्तित्व की एकता के साक्षात्कार से स्वार्थ तथा अहंकार निर्मूल हो जायेंगे तथा आप अनुभव करेंगे कि आपकी आत्मा सभी की आत्मा है।

४६८. 'सोऽहम्'- 'मैं वही हूँ' पर ध्यान के द्वारा आत्मा की पूजा कीजिए। शान्ति, करुणा, क्षमा, नम्रता, विवेक तथा वैराग्य के पुष्प चढ़ाइए। काम-क्रोधादि पशुओं की बलि दीजिए।

४६९. अपने वास्तविक स्वरूप के प्रति जग जाना ही साक्षात्कार है।

४७०. जब सारी वृत्तियाँ विलीन हो जाती हैं, तब आत्मा स्वयमेव प्रकट हो जाती है।

४७१. आप अपनी ही आत्मा में शाश्वत शान्ति प्राप्त करेंगे।

४७२. जब आप यह साक्षात्कार करेंगे- 'मैं परम चैतन्य हूँ', तो यही वास्तविक स्वतन्त्रता है।

४७३. निष्काम सेवा, भक्ति तथा अमर आत्मा पर ध्यान के द्वारा ही कैवल्य मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है।

४७४. निष्काम सेवा तथा भक्ति अहंकार को उभय पक्ष से विनष्ट कर डालती है।

४७५. अहंकार का विनाश ही चैतन्य का साक्षात्कार है।

३१. आदर्श साधक

४७६. जिस साधक में विवेक तथा वैराग्य है, वह मन की बहिर्मुखी वृत्तियों को रोकता है, उपद्रवी इन्द्रियों का दमन करता है तथा अमर सुख के धाम को प्राप्त कर लेता है।

४७७. सत्यान्वेषी साधक में गुरु तथा उपनिषदों के प्रति परम श्रद्धा होनी चाहिए।

४७८. जो स्थिर है, जो काम-वृत्ति से रहित है, वह ज्ञान तथा तप के द्वारा ब्रह्म के दर्शन करता है।

४७९. किसी भी समय, किसी भी परिस्थिति में, किसी भी उद्देश्य से, किसी भी प्रकार की हिंसा आध्यात्मिक साधक के लिए करणीय नहीं है।

४८०. हे साधक ! फुफकारने की भी आवश्यकता नहीं है। मन सदा नीचे की ओर सहज प्रवृत्त होता है। मधुर बनो। भद्र बनो। सदा कोमल स्वभाव रखो।

४८१. आत्म-संयम तथा शुद्ध चरित्र-ये योग के लिए परमावश्यक हैं।

४८२. पूर्णतः सच्चा होना योगी अथवा साधक का मुख्य गुण है।

४८३. साधक के जीवन की नींव अधूरे सत्य पर नहीं, वरन् पूर्ण सत्य पर ही होनी चाहिए। वह पूर्ण सत्य से कभी न डिगे।

४८४. सत्य के साक्षात्कार के लिए आपको सत्य में ही निवास करना होगा; आपको सत्य के ही स्वरूप को प्राप्त कर लेना होगा।

४८५. साधक को आध्यात्मिक जीवन की सफलता के लिए शम, करुणा आदि दिव्य गुणों को विकसित करना चाहिए।

४८६. सरल बनिए। शुद्ध बनिए। शिशुवत् बनिए। ईश्वर के साथ चलिए तथा बातें कीजिए।

४८७. ऐसे साधक का मिलना बहुत ही कठिन है जो मोक्ष के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की चिन्ता नहीं करता, जो समस्त जगत् को तृणवत् समझता है तथा जो जन्म-मृत्यु से छुटकारा पाने के लिए सतत ध्यान करता है।

४८८. जो भी भोजन आपके समक्ष आये, उसे खा लीजिए। जीवन की हर परिस्थिति में सुखी रहिए। प्रार्थना कीजिए तथा ध्यान कीजिए। मुमुक्षुत्व रखिए तथा वैराग्यवान् बनिए। तभी आप ईश्वरीय आध्यात्मिक प्रवाह को प्राप्त करेंगे।

३२. साधना पर आलोक (क)

४८९. साधना क्रमबद्ध बनायी हुई सचेतन आध्यात्मिक गति है।

४९०. साधना सीमित मानव-प्रकृति को असीम ईश्वरत्व में परिणत करने की विधि है।

४९१. साधना आध्यात्मिक मार्ग में सफलता की कुंजी है।

४९२. काम पर विजय ही सत्य तथा साधना का सारांश है।

४९३. साधना के जीवन को प्रारम्भ करने से पहले आध्यात्मिक प्रेरणा का अनुभव कीजिए।

४९४. एकान्त स्थान में बैठिए। इन्द्रियों को समेट लीजिए। निम्न मन का दमन कीजिए। आत्मा में स्थित बनिए। इस प्रकार आध्यात्मिक विजय प्राप्त कीजिए।

४९५. अमर, नित्य सुखमय आत्मा का सतत चिन्तन कीजिए। आप शीघ्र ही निश्चित रूप से लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे।

४९६. जितना ही अधिक आप संसार से विरक्त बनेंगे, उतना ही अधिक आप आत्मा से सुख एवं आनन्द का अनुभव करेंगे।

४९७. जितनी ही अधिक आपके हृदय से सांसारिकता कम होगी, उतनी ही अधिक आपमें ईश्वर-प्रेम की इच्छा बढ़ेगी।

४९८. विवेक करना सीखिए। प्रबल मुमुक्षुत्व रखिए। सदा ईश्वर का स्मरण रखिए। इससे आप शीघ्र ही ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त कर लेंगे।

४९९. प्रबल निश्चय, दृढ़ संकल्प, गम्भीर प्रयास, अडिग उत्साह, धैर्य तथा संलग्नता के द्वारा ही किसी भी कार्य में परम सफलता प्राप्त होगी।

५००. विद्वत्ता एक वस्तु है तथा साक्षात्कार दूसरी वस्तु।

५०१. मन की वाणी का श्रवण न कीजिए। मौन में ध्यान के द्वारा परमात्मा की वाणी का श्रवण कीजिए।

५०२. तपस्या ज्ञान-प्राप्ति का साधन है; क्योंकि तप के द्वारा मन ध्यान के लिए समर्थ बनता है।

५०३. मन तथा आवेगों पर नियन्त्रण लाये बिना केवल शारीरिक तपस्या से ज्ञान की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

५०४. ग्रीष्मकाल के दिनों में धूप में खड़े तथा शीतकाल में जल में खड़े रहना मन्द बुद्धि वाले मनुष्यों की मूर्खतापूर्ण तितिक्षा है।

५०५. जिस तरह दीमक के वल्मीक को तोड़ने से उसके अन्दर का सर्प नष्ट नहीं होता, उसी तरह शरीर को कितना भी कष्ट देने से मन का विनाश नहीं होता।

५०६. धारणा तथा ध्यान ही वास्तविक तप हैं।

३३. साधना पर आलोक (ख)

५०७. अपनी सारी शक्ति लगा कर अपने मन से सभी विषय पदार्थों को भगा डालिए।

५०८. अहंकार-रूपी बकरे तथा क्रोध-रूपी भैंसे की बलि चढ़ाइए।

५०९. गेरुआ वस्त्र पहनने, भस्म लगाने, शिर मुँडवाने, माला पहनने, कमण्डल धारण करने तथा योग-दण्ड रखने से मनुष्य संन्यासी या साधु नहीं होता।

५१०. आध्यात्मिक साधना के लिए दृढ़-संकल्प होना प्रथम आवश्यकता है।

५११. इसके बाद पुरुषार्थ करना दूसरा कदम है।

५१२. सभी इन्द्रियों का दमन करना, सत्य बोलना, सभी से प्रेम करना यही साधना का सारांश है।

५१३. मन, वचन तथा कर्म से विरक्त तथा शुद्ध होना, सन्तुष्ट तथा प्रसन्न रहना, मोह रहित रहना, सावधान रहना, सदा ईश्वर को याद करना- यही साधना का सारांश है।

५१४. 'अनुशासन' तथा 'प्रगति'- ये योग-वेदान्त के मन्त्र हैं।

५१५. ठीक विचारिए। सत्य बोलिए। सत्कर्म कीजिए। आप शाश्वत शान्ति के साम्राज्य को प्राप्त करेंगे।

५१६. सामूहिक साधना से सभी की शक्ति प्रत्येक व्यक्ति के लिए सहायक बनेगी।

५१७. उसी का अवलम्बन कीजिए जो आपको ईश्वरत्व की ऊँचाई पर ले जाता हो।

५१८. सावधानीपूर्वक आध्यात्मिक पौधे का पोषण कीजिए।

५१९. निम्न प्रवृत्तियों के प्रति ढीला रहने पर आप आपत्ति के धाम को ही प्राप्त करेंगे।

५२०. इस मामले में बहाना करने अथवा किसी प्रकार कारण खोज कर छुट्टी पाने से लाभ न होगा।

५२१. आत्म-साक्षात्कार के गौरव तथा असीम महिमा को भी सदा याद रखिए।

५२२. साथ-ही-साथ सांसारिक जीवन के दोषों को याद रखिए।

५२३. उन सभी का परित्याग कीजिए जिनके कारण आप इस भूलोक से आबद्ध हो जाते हैं।

३४. साधना पर आलोक (ग)

५२४. सांसारिक बातें आध्यात्मिक उन्नति में बड़ी बाधक हैं।

५२५. आध्यात्मिक प्रस्फुटन के लिए विलासिता बाधक है।

५२६. मांस, मछली, शराब आदि वस्तुएँ मनुष्य के स्वभाव को स्थूल बनाती हैं तथा वे आध्यात्मिक उन्नति की वैरी हैं।

५२७. हे अभिमान के टोकरे ! अपने पाण्डित्य को दूर फैकिए। अपने व्यक्तित्व का निषेध कीजिए। पार्थक्य को दूर कीजिए। अहंकार को मिटा डालिए।

५२८. पेटू, बातूनी, इन्द्रिय-परायण, आलसी तथा हठी व्यक्ति ब्रह्मज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकते।

५२९. किसी सम्बन्धी की मृत्यु तथा जीवन में किसी विफलता से उत्पन्न वैराग्य आध्यात्मिक उन्नति में सहायक न होगा।

५३०. जप तथा ईश्वर पर ध्यान के अभ्यास से मन से विषय-पदार्थों का स्मरण दूर हो जाता है तथा ईश्वरीय विचार का ही प्रवाह बना रहता है।

५३१. जप तथा ध्यान मन से सारे विषय-विचारों को भगा देते हैं तथा एक ईश्वरीय विचार को ही बनाये रखते हैं।

५३२. साधक ईश्वर के अतिरिक्त सभी विचारों को त्याग देता है तथा अपने अस्तित्व को भी भूल जाता है।

५३३. ज्ञानी सभी में एक ही आत्मा को देखता है; भक्त सभी में अपने इष्ट को देखता है तथा कर्मयोगी अथवा राजयोगी इनमें से किसी एक को अपनी साधना का आधार बनाता है।

५३४. अनुशासन, मानसिक समत्व तथा अन्तर्दृष्टि के द्वारा शान्ति की प्राप्ति होती है।

५३५. सभी मार्ग एक ही लक्ष्य को प्राप्त कराते हैं।

५३६. प्रवृत्ति, रुचि तथा योग्यता के अनुसार साक्षात्कार के लिए मार्ग भी भिन्न-भिन्न हैं।

५३७. मानसिक विकास की विविध अवस्थाओं में धार्मिक विचार एवं अभ्यास के विभिन्न प्रकारों की आवश्यकता है।

३५. साधकों को सलाह

५३८. हे आध्यात्मिक वीर ! आगे बढ़ते जाइए। हे दिव्य सैनिक ! आपके कदम दृढ़ हों, आपका संकल्प प्रबल हो तथा आपकी दृष्टि सदा प्रदीप्त हो।

५३९. निराश न बनिए। उत्साही बनिए। सोचिए तथा अनुभव कीजिए कि आप यह नश्वर शरीर नहीं, वरन् अमर आत्मा हैं।

५४०. ईश्वर आपके जितना निकट है, उतने निकट कोई वस्तु नहीं है।

५४१. जागिए अपने अन्दर तथा चतुर्दिक् ईश्वर की सत्ता का अनुभव कीजिए।

५४२. आपके कष्ट तथा दुःख आकस्मिक हैं। वे आपके स्वरूप में नहीं हैं।

५४३. अपने बल में भीम की भाँति बनिए। शुद्धता में हिमालय की बर्फ की भाँति धवल बनिए। धैर्य में माता वसुन्धरा की भाँति बनिए।

५४४. धीर बनिए। उत्साही बनिए। जितना सम्भव हो सके, कीजिए तथा शेष को ईश्वर पर अर्पित कर दीजिए। उसी पर अवलम्बित रहिए। वह आपकी रक्षा करेगा।

५४५. ज्यों-ज्यों आप उन्नति करेंगे, त्यों-त्यों आध्यात्मिक मार्ग सुगमतर होता जायेगा।

५४६. प्रतीक्षा कीजिए तथा प्रार्थना कीजिए। ज्योति में अग्रसर होइए।

५४७. सजग रहिए। विचारशील रहिए।

५४८. इसी क्षण से सच्चाईपूर्वक आध्यात्मिक मार्ग में बढ़ते जाइए। उठिए, कटिबद्ध बनिए। धारणा तथा ध्यान का अभ्यास कीजिए।

५४९. अपनी सारी शक्ति की बचत कीजिए। उन्नत उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही उन शक्तियों का उपयोग कीजिए।

५५०. किसी व्यक्ति के साथ सांसारिक प्रेम-पाश में न फँसिए।

५५१. ध्यान कीजिए तथा आन्तरिक मौन का सृजन कीजिए।

५५२. जिसमें काम, अभिमान तथा स्वार्थ का लेश है, वह ईश्वर के साम्राज्य को प्राप्त नहीं कर सकता।

५५३. अपनी मुक्ति के लिए प्रयत्नशील बनिए। कोई भी आपको नहीं बचा सकता। आप स्वयं ही अपने को बचा सकते हैं।

५५४. शुद्धता, सत्य, अहिंसा तथा तप से सम्पन्न जीवन के द्वारा ही मनुष्य आध्यात्मिक साक्षात्कार के मार्ग पर चलने का अधिकारी बनता है।

५५५. अनुशासित मन आपके लिए बहुत ही सहायक सिद्ध होगा।

५५६. कोई भी आपको जन्म-मृत्यु से बचा नहीं सकता। अपने प्रयास के द्वारा ही आपको मुक्ति प्राप्त करनी होगी।

५५७. नियमित साधना, सत्संग, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय तथा आत्मा पर ध्यान के द्वारा दिव्य ज्योति को सदा प्रखर बनाये रखिए।

५५८. अल्प आध्यात्मिक साधना भी शान्ति तथा सुख प्रदान करती है।

५५९. आपके अन्दर गुरुओं का गुरु है। यदि आप अपने विचारों तथा उफनते आवेगों को शान्त कर देंगे और ध्यानपूर्वक आन्तरिक गुरु की वाणी को श्रवण करेंगे, तो वह आपको शिक्षा देगा तथा आपको लक्ष्य की ओर ले जायेगा।

५६०. जो शुद्ध तथा सत्यवादी है, वह आन्तरिक वाणी का श्रवण कर सकता है।

५६१. सांसारिक जीवन के कोलाहल में आन्तरिक वाणी सुनने में नहीं आती। शुद्ध बनिए। धारणा कीजिए। ध्यान कीजिए। इन्द्रियों को शान्त कीजिए। आन्तरिक वाणी सुनिए। आध्यात्मिक मार्ग की ओर बढ़ते जाइए।

५६२. सदा आशा बनाये रखिए।

५६३. किसी भी वस्तु से भय न कीजिए। आप अमर आत्मा हैं। शान्ति बनाये रखिए।

५६४. जो-कुछ आप कल करना चाहते हैं, उसे आज ही कर लीजिए। जो आज करना चाहते हैं, उसे अभी कर लीजिए।

५६५. तू ब्रह्म है। तेरी शक्ति अनन्त है। ध्यान के द्वारा इसका साक्षात्कार कीजिए।

३६. आत्म-साक्षात्कार

५६६. मित्रो ! जागिए। अज्ञान को नष्ट कीजिए। आपके शिर के निकट मृत्यु खड़ी है।

५६७. उठो ! जागो और अधिक मत सोओ। सत्य का साक्षात्कार करो।

५६८. ईश्वर-प्राप्ति की शुभेच्छा रखिए तथा अपने अन्दर से शक्ति प्राप्त कीजिए। विकसित होइए। उन्नति कीजिए।

५६९. भय न कीजिए। श्रद्धा रखिए। ध्यान कीजिए। आप निश्चय ही लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे।

५७०. शुभेच्छा रखिए। आत्मा को जानिए। अपने गत ईश्वरत्व को प्राप्त कीजिए। सत्य का ज्ञान कीजिए।

५७१. अपने अन्दर आध्यात्मिक ज्योति को सदा प्रखर जलते रहने दीजिए।

५७२. साहसपूर्वक आगे बढ़ते जाइए। प्रलोभनों का शिकार न बनिए।

५७३. एक ही धर्म है और वह है सत्य का मार्ग।

५७४. आध्यात्मिक प्राप्ति के लिए कोई भी सरल मार्ग नहीं है।

५७५. नित्य सुख की प्राप्ति के लिए आपको बहुत त्याग करना होगा।

५७६. अक्षय आध्यात्मिक भण्डार की प्राप्ति के लिए आपको बहुत हानि उठानी पड़ेगी।

५७७. ध्यान के द्वारा अन्तरात्मा से साहस तथा आध्यात्मिक बल प्राप्त कीजिए।

५७८. इन्द्रियों के स्वामी बन जाइए। विषय-पदार्थ, मन तथा आत्मा के बीच सन्तुलित जीवन यापन कर आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कीजिए।

५७९. श्रद्धा तथा वैराग्य के साथ साहसपूर्वक बढ़ते जाइए तथा आत्मा पर सतत ध्यान कीजिए। आप आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लेंगे।

५८०. आपके हृदय के अन्दर ज्योतियों की ज्योति है। इसका साक्षात्कार कर मुक्त हो जाइए।

५८१. गम्भीर मुमुक्षुत्व रखिए। सतर्क रहिए। वीर बनिए।

५८२. आत्म-दमन तथा निष्कामता का अभ्यास कीजिए। आप आध्यात्मिक चेतना तथा प्रकाश का अनुभव करेंगे।

५८३. भय न कीजिए। कामनाओं का परित्याग कीजिए। एक मिनट भी व्यर्थ न खोइए। ईश्वर पर निर्भर रहिए।

५८४. अपने मन को शुद्ध बनाइए। अपने हृदय के अन्तर्वासी पर ध्यान कीजिए। सुखी तथा मुक्त होने के लिए यही एकमेव मार्ग है।

३७. कैवल्य का मार्ग (क)

५८५. यदि आप सीमित शरीर से तादात्म्य सम्बन्ध रखेंगे, तो आप मरणशील बन जायेंगे। असीम ब्रह्म के साथ एकता स्थापित कीजिए। आप अमर बन जायेंगे।

५८६. इन्द्रियों को समेटिए तथा विकसित बनिए। इन्द्रियों से हटिए; परन्तु ईश्वर की ओर मुड़िए।

५८७. सन्तोष का परिधान पहनिए। शम का तकिया रखिए तथा शान्ति में शयन कीजिए।

५८८. विवेक की धूप अर्पित कीजिए। वैराग्य का तेल डालिए। ज्ञान का दीप जलाइए।

५८९. विवेक का अंजन लगाइए। आप नयी विशाल दृष्टि प्राप्त करेंगे।

५९०. शरीर को मन से हटा कर आत्मा में लगा दीजिए। आपको शीतोष्ण का अनुभव न होगा। इससे आपको सच्ची तितिक्षा प्राप्त होगी।

५९१. भले-बुरे के बीच विवेक कीजिए तथा श्रेय-मार्ग का अवलम्बन कीजिए।

५९२. इस आध्यात्मिक भाव को बनाये रखिए- "मैं अपने जीवन को भले ही त्याग दूँ; परन्तु आध्यात्मिक मार्ग से रंचमात्र भी विचलित नहीं हो सकता। मैं अपने इस व्रत को कदापि न तोडूंगा।"

५९३. योजनाएँ न बनाइए। सांसारिक बुद्धि वाले मनुष्य ही योजनाएँ बनाते हैं। सांसारिक उन्नति की कामना रखने वाले ही योजना बनाते हैं।

५९४. आप दिव्य हैं। इसके अनुसार ही जीवन बिताइए। अपने दिव्य स्वरूप का अनुभव तथा साक्षात्कार करिए।

५९५. परम ज्योतिर्मय पुरुष को जानिए। अज्ञानान्धकार का अतिक्रमण कीजिए। मृत्यु से परे जाइए।

५९६. निष्कामता का अभ्यास कीजिए। आत्म-त्याग कीजिए। आत्मार्पण कीजिए। आत्म-विश्लेषण का अभ्यास कीजिए। आत्म-निषेध कीजिए। आत्म-दमन कीजिए। आत्म-शुद्धि लाइए। आप आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करेंगे।

५९७. निष्कामता हृदय को विकसित करती है, विषयासक्ति को नष्ट करती है, अहंकार को ध्वस्त करती है तथा ईश्वरीय कृपा को प्राप्त कराती है।

५९८. आत्मार्पण तथा भगवत्प्रेम पदत्राण हैं जिन्हें पहन कर साधक आध्यात्मिक मार्ग के कंटकों तथा बाधाओं से बच जाता है।

५९९. निरभिमानता, नम्रता तथा शुद्धता - ये छायादार फलद वृक्ष हैं जो आध्यात्मिक मार्ग के साधकों को छाया प्रदान कर उनके श्रम का निवारण करते हैं।

६००. मार्ग ढालू है; परन्तु सच्चा साधक हतोत्साह नहीं होता। वह हर कदम पर ईश्वरीय कृपा का अनुभव करता है।

६०१. सारे ज्ञान के मूल को जानिए। ईश्वरीय योग की शान्ति में आत्मा की आवाज सुनिए। अपने हृदय के अन्तरतम से ज्ञान के विकिरण का अनुभव कीजिए।

३८. कैवल्य का मार्ग (ख)

६०२. ईश्वर आपके अन्दर है। अपने संकल्प को दृढ़ बनाइए।

६०३. अन्दर खोजिए। आप जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करेंगे।

६०४. सांसारिक जीवन की निस्सारता तथा सत्यता पर दृढ़ विश्वास हुए बिना, वैराग्य तथा आत्म-संयम के बिना आपको आध्यात्मिक मार्ग से अधिक लाभ न होगा।

६०५. आत्म-साक्षात्कार सर्वोच्च लक्ष्य है।

६०६. शान्त बनिए। मौन बनिए। आत्म-साक्षात्कार कीजिए।

६०७. ईश्वर के ऊपर किसी का एकाधिकार नहीं है। प्रत्येक मुमुक्षु साधक ईश्वर के ऐश्वर्य का उपभोग कर सकता है। वह उसमें निवास कर सकता है।

६०८. आप स्वरूपतः अमर हैं। स्वयं को मार्ग के लिए योग्य बनाइए।

६०९. स्वयं को जानने का अर्थ है सबको जानना।

६१०. पूर्णता का लक्ष्य कीजिए। वीरतापूर्वक जीवन-संग्राम में युद्ध कीजिए।

६११. बुद्धिमानीपूर्वक जीवन यापन कीजिए। अन्दर खोजिए तथा उद्देश्य-प्राप्ति के लिए तल्लीन रहिए।

६१२. पूर्णता की चोटी पर चढ़िए। आपको यहीं आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करना है।

६१३. ईश्वरीय प्रकाश तथा ईश्वर के साथ एकता यही आध्यात्मिक मार्ग का लक्ष्य है।

६१४. ध्यान अथवा समाधि के समय जब अज्ञान का आवरण उठ जायेगा, तब आत्मा परमात्मा की ज्योति में विलीन हो जायेगी।

६१५. यदि आपमें दिव्य ज्ञान तथा आध्यात्मिक बल है तो संसार आपकी बातों को उत्सुकतापूर्वक सुनेगा, आपका अनुगमन करेगा तथा आपके आदेशों का पालन करेगा। सभी लोग आपके सन्देश पर श्रद्धापूर्वक चलेंगे। मानव जाति को शान्ति, सुख एवं उन्नति का राजपथ प्राप्त हो जायेगा।

६१६. एकान्तवास, मौन, ध्यान तथा लौह-संकल्प-पूर्वक भक्ति का अभ्यास कीजिए। आप शीघ्र ही आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करेंगे।

६१७. पण्डित के विषय में उसके जीवन पर्यन्त के उपदेशों से उसका मन कुछ तो शुद्ध अवश्य ही हुआ होगा; परन्तु उसे अधिक लाभ तब होता, जब वह स्वयं को ही पहले उपदेश देता तथा साधना-मार्ग पर चलता।

३९. मार्ग में उन्नति

६१८. संन्यास का अभ्यास कीजिए। आध्यात्मिक साधना में उग्रतापूर्वक तथा श्रमपूर्वक संलग्न रहिए। आप मोक्ष प्राप्त करेंगे।

६१९. विचार, स्मृति, इच्छा, निरीक्षण-शक्ति- इन सभी को प्रशिक्षित कीजिए। नियमित ध्यान कीजिए। आप विश्व के साथ एकरस हो जायेंगे।

६२०. अग्निलोक के वासियों के साथ सूक्ष्म सम्पर्क अथवा अनुभव होना आन्तरिक आध्यात्मिक उन्नति का परिचायक है। आपमें अधिक शुद्धता आ गयी है।

६२१. स्वप्न बहुत ही अच्छे हैं तथा वे प्रोत्साहन प्रदान करते हैं। उस कृपा के लिए ईश्वर को हार्दिक कृतज्ञता प्रकट कीजिए तथा प्रार्थना कीजिए।

६२२. अधिकांश स्वप्न प्रतीकात्मक होते हैं। 'नदी पार करना' - यह योग-मार्ग में किसी बाधा पर विजय-प्राप्ति का परिचायक है। आपमें अधिक शुद्धता आ गयी है।

६२३. मुमुक्षुत्व, त्याग, विवेक, वैराग्य तथा ध्यान के बिना कोई भी उन्नति नहीं कर सकता। Par

६२४. इन्द्रियों का दमन, राग-द्वेष का शमन, सभी प्राणियों के लिए करुणा तथा ध्यानाभ्यास के द्वारा आप अमृतत्व को प्राप्त कर लेंगे।

६२५. भक्ति, अज्ञान तथा कामनाओं से मुक्ति, ईश्वर-कृपा, ज्ञान, निष्कामता और सेवा-इनसे आप ईश्वर के समान बन जायेंगे।

६२६. विवेक, वैराग्य तथा अनुशासन- ये तीन आध्यात्मिक मुक्ता है।

६२७. स्वार्थ, अभिमान तथा दम्भ- ये आध्यात्मिक मार्ग के महान् कंटक हैं।

६२८. उन्हीं लोगों को ईश्वरीय ज्ञान सुलभ है जो साहसी, धीर, उत्साही, स्थिर व्रती, ध्यान में नियमित तथा लक्ष्य में तल्लीन हैं।

६२९. साधक को चाहिए कि वह साधना तथा सेवा के बीच सुन्दर सन्तुलन बनाये रखे।

६३०. ब्रह्मविद्या का दान तभी सफल होता है, जब वह उन्हें दिया जाता है जिनका हृदय शुद्ध है, जो ब्रह्म के लिए प्रबल मुमुक्षुत्व रखते हैं, जिनके पास श्रद्धा तथा भक्ति हैं और जो अपना कर्तव्य ठीक-ठीक करते हैं।

६३१. आत्म-विचार ही सर्वोत्तम एवं सर्वोच्च साधना है।

६३२. शरीर तथा प्रणव-रूपी दो अरणियों के घर्षण से आध्यात्मिक अग्नि उत्पन्न होती है।

६३३. मौन तथा आत्मावलम्बन में ही आपकी शक्ति निहित है।

६३४. ध्यान में एक बार भी भगवान् का मानसिक चित्रण करना, एक बार भावपूर्वक ईश्वर-नाम का उच्चारण करना भी मनुष्य के लिए प्रबल रूपान्तरण लाने की शक्ति रखता है।

६३५. ईश्वरीय स्वरूप पूर्ण है। ईश्वर के निकट होना ही पूर्णता के निकट आना है।

आप वास्तव में मुक्त ही हैं; परन्तु अज्ञानवश आपको इसकी चेतना नहीं है।

४०. साधना-जीवन का एकमेव उद्देश्य

६३६. साधना वास्तविक धन है। यही एकमेव सत्य है। दूध में मक्खन है; परन्तु मंथन द्वारा ही इसे निकाला जा सकता है। उसी तरह साधना द्वारा ही ईश्वर-साक्षात्कार सम्भव है।

६३७. जो कोई भी आध्यात्मिक साधना आप करें, चाहे वह जप हो, आसन हो अथवा प्राणायाम हो, उसे नित्य-प्रति नियमित एवं क्रमिक रूप से करना चाहिए। आप नित्य सुख अथवा अमृतत्व को प्राप्त कर लेंगे।

६३८. यदि आप संलग्नतापूर्वक गम्भीर साधना का अभ्यास करेंगे, यदि आप साधना में नियमित रहेंगे, तो अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी।

६३९. जो-कुछ भी संयोगवश प्राप्त हो जाये, उससे ही सन्तुष्ट रहिए तथा विरक्त हो कर साधना में संलग्न हो जाइए।

६४०. साधना में नियमित रहना अत्यावश्यक है। जो नियमित ध्यान करता है, वह शीघ्र समाधि प्राप्त कर लेता है। जो अनियमित है तथा यदा-कदा प्रयास कर दिया करता है, उसे इष्ट-प्राप्ति नहीं होगी।

६४१. जप, धारणा, ध्यान, स्वाध्याय, सत्संग तथा परोपकार में अपने मन को सदा संलग्न रखिए।

६४२. कुछ भले कार्य, कुछ शुद्धतापूर्ण कार्य आपको साधना में बहुत सहायता देंगे। वृत्तियों तथा मलों को दूर करना सबसे महत्त्वपूर्ण साधना है। एक स्थान, एक गुरु तथा साधना की एक प्रणाली पर टिके रहने से विक्षिप्त मन को वशीभूत किया जा सकता है।

६४३. जिसने शम तथा दम के अभ्यास से मन को अन्तर्मुख कर लिया है तथा जिसमें मुक्ति के लिए तीव्र इच्छा है, वह सतत गम्भीर ध्यान के द्वारा अपनी आत्मा में ही परमात्मा के दर्शन करता है।

६४४. अपनी आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा आप समस्त जगत् को चलायमान कर सकते हैं।

६४५. आध्यात्मिक डायरी मन को धर्म की ओर प्रेरित करने के लिए कोड़े का काम करती है।

६४६. स्वार्थ से आध्यात्मिक उन्नति पिछड़ जाती है। यदि स्वार्थ नष्ट कर दिया गया, तो आधी साधना समाप्त हो गयी।

६४७. चार बजे प्रातः उठ कर ध्यान अवश्य कीजिए। प्रारम्भ में स्थूल ध्यान कीजिए। मूर्ति में ईश्वर की सत्ता का अनुभव कीजिए तथा शुद्धता, पूर्णता, सर्वव्यापकता, चैतन्य, आनन्द, परम शक्तिमत्ता इत्यादि विशेषणों पर ध्यान कीजिए। मन के इधर-उधर दौड़ने पर उसे पुनः लक्ष्य पर लगा दीजिए। रात्रि को ध्यान के लिए दूसरी बार बैठिए। अभ्यास में नियमित रहिए।

४१. साधना तथा ध्यान

६४८. ध्यान सांसारिक विचारों को बन्द करता, सत्त्व की वृद्धि करता, सुन्दर स्वास्थ्य प्रदान करता, आपको दिव्य बनाता, दुःख तथा शोकों को नष्ट करता और जन्म-मृत्यु को विनष्ट कर सुख तथा शान्ति प्रदान करता है।

६४९. शुद्ध हृदय से नियमित ध्यान के द्वारा सभी व्यक्तियों के लिए ब्रह्म का साक्षात्कार सुलभ है। अमरात्मा पर ध्यान करने से चित्त के सारे विचार उड़ जायेंगे।

६५०. जिस प्रकार ताँबे को रसायन द्वारा सोने में बदला जाता है, उसी प्रकार ध्यान द्वारा विषयी मन शुद्ध मन में परिणत हो जाता है। नियमित ध्यान से अपरोक्ष ज्ञान के द्वार खुलते हैं, मन शान्त तथा स्थिर होता है, आनन्द का अनुभव होता है तथा साधक परब्रह्म के सम्पर्क में आ जाता है। जिस तरह दूध से मक्खन निकालते हैं, उसी तरह ध्यानाभ्यास द्वारा ब्रह्म को प्राप्त करते हैं।

६५१. सांसारिक विपत्तियों तथा क्लेशों से मुक्त होने के लिए ध्यान ही एकमेव साधन है। आप ईश्वरीय गुण विकसित करेंगे तथा नियमित ध्यान से आध्यात्मिक पथ का निर्माण होगा। मन सदा शुद्ध रहेगा।

६५२. यम-नियम तथा चित्त-शुद्धि के बिना एकाएक ध्यान के लिए छलाँग लगाना लाभकर नहीं है। चित्त-शुद्धि के बिना ध्यान करना बहुत ही दुष्कर प्रतीत होगा।

६५३. यदि शीघ्र साक्षात्कार करना है तो जिस तरह आप प्रातः, दोपहर, सायं तथा रात्रि को दिन में चार बार भोजन करते हैं, उसी तरह दिन में चार बार ध्यान कीजिए।

६५४. जब बाह्य शब्द सुनायी नहीं पड़ते, जब शरीर तथा वातावरण के विचार नहीं रहते, जब आन्तरिक शान्ति प्रकट होती है, तब जानिए कि यह ध्यान की गम्भीरावस्था है। धारणा तथा ध्यान के अभ्यास में लाल, नीली, हरी आदि बहुत प्रकार की ज्योतियाँ आयेंगी और लुप्त हो जायेगी। ये बहुत प्रोत्साहन का काम करती हैं। इनकी उपेक्षा कीजिए तथा आगे बढ़ते जाइए। इन ज्योतियों के उद्गम स्थल को प्राप्त कीजिए।

६५५. ध्यान के समय ईश्वर-सम्बन्धी एक ही वृत्ति-प्रवाह को बनाये रखिए। अन्य वृत्तियों का दमन कीजिए। भगवान् हरि या किसी भी इष्टदेवता की मूर्ति पर मन को स्थिर कर धारणा बढ़ाइए। इस मानसिक चित्र को मानस-पटल पर बारम्बार लाइए। सारे अपवित्र विचार भाग जायेंगे।

६५६. आपमें मुदिता होनी चाहिए, जोरों का हँसी-ठहाका नहीं। प्रतिकूल परिस्थितियों में ध्यान का अभ्यास करते रहने से आप सबल बन जायेंगे। आपको प्रखर व्यक्तित्व प्राप्त होगा।

६५७. निद्रा ध्यान की बड़ी बाधा है। आपको सावधान तथा सतर्क रहना चाहिए। रात्रि में हलका आहार कीजिए। इससे आपको ध्यान में सहायता मिलेगी।

६५८. अशान्ति, पलायनवादिता, निद्रा, आलस्य, मन का विक्षेप, विद्वेष, घृणा, क्रोध, काम-वासना-ये ध्यान के बाधक हैं।

६५९. इष्टदेवता पर धारणा कीजिए। सतत त्राटक के साथ अपने मन्त्र का जप कीजिए। चित्र आपके मन में स्पष्ट हो जायेगा। आप उस चित्र पर अनवरत ध्यान कर सकते हैं।

६६०. ध्यान का अभ्यास साधक को समाधि के शिखर तक पहुँचायेगा जहाँ सारे सांसारिक दुःख निर्मूल हो जायेंगे तथा साधक को सुखमय अवस्था की प्राप्ति होगी।

४२. ब्रह्म-चैतन्य

६६१. मन सदा ही परमात्मा का चिन्तन करे। इसके लिए यम आदि यौगिक अभ्यास, 'तत्त्वमसि' का लक्ष्यार्थ-चिन्तन तथा अन्य साधन आवश्यक हैं।

६६२. संकल्प-विकल्प का परित्याग कर मन द्वारा ही ब्रह्म का साक्षात्कार सम्भव है।

६६३. जिस तरह अग्नि में लोहा तादात्म्य-सम्बन्ध के द्वारा अग्नि के समान ही लाल हो जाता है, उसी तरह ब्रह्म के सम्पर्क से मन चैतन्य तथा शक्ति ग्रहण कर लेता है।

६६४. जिस तरह लहरें सागर के जल पर निर्भर हैं, उसी तरह मन परमात्मा पर निर्भर है।

६६५. तीतापन और मीठापन पत्तियों में नहीं है, बल्कि स्वाद लेने वाले में ही है। ये मन की उपज हैं। यह मन ही है जो विषयों में रंग, रूप, गुण आदि आरोपित करता है। जिस किसी वस्तु का भी मन गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करता है, उसी वस्तु का रूप वह ग्रहण कर लेता है।

६६६. शत्रु तथा मित्र, पाप तथा पुण्य, सुख तथा दुःख मन में ही हैं। हर व्यक्ति कल्पना द्वारा एक भला-बुरा जगत् निर्माण कर लेता है।

६६७. इन्द्रियों के मार्ग से मन का बहिर्मुख होना तथा इसके फलस्वरूप अनुभव पाना जीव के अज्ञान से ही सम्भव है।

६६८. द्रष्टा एवं दृश्य का यह सारा अनुभव मन की कल्पना ही है। जो केवल कल्पना में ही है, वह परम सत्य नहीं हो सकता।

६६९. मन के कार्य ही वास्तव में कर्म कहे जाते हैं। मन को वशीभूत करने से ही मुक्ति मिलती है। माया मन तथा मन की कल्पना द्वारा ही ऊधम मचाती है। मन के नष्ट होने पर सत्य का पूर्ण साक्षात्कार होगा।

६७०. सुख तथा दुःख मन के धर्म हैं। मन के संयम से मनुष्य सभी द्वन्द्वों से मुक्त बन जाता है। वह ज्ञान को प्राप्त कर लेता है।

६७१. मित्र, उदासीन तथा शत्रु से बना हुआ यह जगत् अज्ञान से ही उत्पन्न है। सुषुप्ति में यह जगत् नहीं रहता। इससे यह स्पष्ट है कि जब मन है, तभी जगत् भी है यदि आप धारणा तथा समाधि के द्वारा मन को नष्ट कर दें, तो जगत् विलुप्त हो जायेगा।

६७२. मलिन मन सूक्ष्म वासनाओं के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। यही अनेक जन्मों को रचता है। जब मन विषय-कामनाओं से मुक्त हो जाता है, जब वह आत्मा में स्थित हो जाता है तब यह जगत् पूर्णतः विलुप्त हो जाता है। विषयों के विचार की प्रवृत्ति ही बन्धन का कारण है। मलिन मन का विनाश ही मुक्ति है। कामनाओं के नष्ट होने पर मन शुद्ध हो जाता है।

६७३. यह जगत् तथा अन्य विषयों का आधार मन ही है। वे मन से पृथक् स्थित नहीं रह सकते। राग तथा विषय-विचारों के संन्यास से निम्न मन विनष्ट हो जायेगा। मन का समत्व ही वास्तविक सुख प्रदान करता है। F

६७४. यदि मन शुद्ध तथा विक्षेप से रहित है, तो आप अपने अन्दर एवं सर्वत्र परमात्मा के दर्शन करेंगे।

६७५. निम्न नैसर्गिक मन पर आधिपत्य के सिवा अन्य कोई साधन नहीं है, जिससे इस संसार-सागर का सन्तरण किया जा सके।

६७६. मन की लीला के द्वारा निकट भी दूर हो जाता है तथा दूर भी निकट। मन पल मात्र में जगत् का सृजन अथवा प्रलय कर सकता है।

६७७. मन को कामनाओं से कदापि कलंकित न होने दीजिए। उसे इन्द्रियों से हो कर बाहर न जाने दीजिए। यदि मन इन्द्रियों से युक्त न हो, तो इन्द्रियाँ स्वतः कुछ नहीं कर सकतीं। जैसा मन देखता है- सुन्दर अथवा कुरूप, सुखी अथवा दुःखी-वैसा ही यह जगत् भी प्रतीत होता है।

६७८. यदि कोई व्यक्ति विषय-कामनाओं से, राग-द्वेष, अभिमान, काम, क्रोध, ममता, अहंकार अदि से मुक्त है, तो उसका मन विनष्ट हो चला है। विवेक से विषयी मन क्षीण हो जाता है।

६७९. मन पर विजय से मनुष्य अपने मूल ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। मन के समत्व से संयमी मनुष्य शाश्वत सुख को प्राप्त कर लेता है।

६८०. जिसने शम तथा मन की शान्ति को प्राप्त कर लिया है, उसके सुख के समक्ष समस्त संसार का भोग तथा सुख नहीं के समान है।

६८१. जब मन आत्मा का आज्ञाकारी नौकर बन जाये, तभी वास्तविक मुक्ति प्राप्त हो सकती है। जब मन विनष्ट हो जाये, जब वह कामना, तृष्णा से मुक्त हो जाये, तभी मोक्ष की प्राप्ति होती है। साधक शान्ति में निवास करता है तथा आत्म-राज्य में शाश्वत सुख प्राप्त करता है।

४३. परम श्रेय की कुंजी

६८२. बल ही जीवन है। निर्बलता मृत्यु है। आत्मज्ञान-सम्भूत बल रखिए। परमात्मा के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित कर सारी दुर्बलताओं को नष्ट कर डालिए। बल ही परम कल्याण की कुंजी है।

६८३. मांस खाइए। मदिरा पीजिए। होटल में रहिए। इससे आप राक्षस बन जायेंगे। दूध-फल खाइए। गंगा-तट पर रहिए। जप तथा ध्यान कीजिए। आप आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करेंगे। आप ब्रह्म बन जायेंगे।

६८४. सभी दुर्गुणों को दूर कीजिए। सद्गुणों को प्रश्रय दीजिए। हृदय को शुद्ध बनाइए। विचारों को स्वच्छ कीजिए। सभी की सेवा कीजिए। सभी से प्रेम कीजिए। ईश्वर का ध्यान कीजिए। ईश्वर के प्रति भक्ति रखिए। मन, वचन तथा कर्म से किसी को आघात न पहुँचाइए। एकान्त में रहिए। मनन कीजिए। विचार कीजिए। ध्यान कीजिए। यही ज्ञानियों तथा सन्तों का उपदेश है।

६८५. किसी वस्तु की कामना न कीजिए। बदले में कुछ अपेक्षा न रखिए। गंगा की तरह, पुष्प-वृक्षों की तरह, चन्दन की तरह देते जाइए।

६८६. प्रेम, आदर, दया तथा मुदिता के साथ हर व्यक्ति का स्वागत कीजिए। आप नहीं जानते कि किस रूप में ईश्वर आपके समक्ष प्रकट हो जाये।

६८७. जो दूसरों के लिए जीता है, वही वास्तव में जीता है। स्वार्थी मनुष्य जीवित होते हुए भी मृत ही है।

६८८. दूसरों की भलाई तथा सेवा करना ही आपका सिद्धान्त होना चाहिए। गरीब तथा पीड़ितों की सेवा करना आपका कर्तव्य है। अपने लाभ के लिए जरा भी न सोचिए।

६८९. गरीब की सेवा कीजिए। उसमें ईश्वर को देखिए। यह आपके लिए महान् क्षेत्र है। धर्मशाला निर्माण करने, कुएँ खुदवाने क्यों जाते हैं?

६९०. डाकू भी महान् ऋषि बन गये हैं। पापी भी कल का भावी सन्त ही है। अतः प्रयत्न कीजिए। शुद्ध बनिए। सन्तों के पास जाइए।

६९१. ईश्वर की आरती करते समय अपने सारे रागों को जला डालिए।

६९२. अपने दैनिक जीवन में शुद्ध निःस्वार्थ प्रेम का अभ्यास कीजिए। सभी जीवों को अपने प्रेम में स्थान दीजिए। सभी प्रकार की घृणा को कुचल डालिए। हृदय को विकसित कीजिए। यही सच्ची संस्कृति तथा सभ्यता है।

६९३. सभी जीवन एक ही हैं। यह जगत् एक निकेतन ही है। सभी मानव परिवार के सदस्य हैं। सारी सृष्टि सप्राण है। कोई भी व्यक्ति उस पूर्ण से अलग नहीं है। मनुष्य स्वयं को दूसरों से अलग रख कर क्लेशों का निर्माण करता है। विलगाव ही मृत्यु है। एकता नित्य जीवन है। विश्व-प्रेम का अर्जन कीजिए। सभी को सन्निविष्ट कीजिए। सभी को आलिंगन कीजिए। दूसरों की योग्यता को पहचानिए। सारे जातिगत एवं धार्मिक अवधानों को तोड़ डालिए। सभी भूतों से उस अद्वैत सत्ता का साक्षात्कार कीजिए। पशुओं की रक्षा कीजिए। सभी जीवन पवित्र है। तभी यह जगत् सौन्दर्य का स्वर्ग बनेगा, शान्ति तथा समता का धाम बनेगा।

६९४. कौपीन मात्र रख कर ही मुक्त रूप से विचरण कीजिए। भिक्षा में जो भी मिल जाये, उसी में निश्चिन्त रहिए। ध्यान के सुख का उपभोग कीजिए। सन्तोष-अमृत का पान कीजिए। क्या गंगा जी के शीतल स्फूर्तिदायक जल से भी बढ़ तक कोई स्वादिष्ट शर्बत है? हरित भूमि पर सोइए। हाथ ही तकिये का काम करें। तीनों लोकों का राज्य भी आपको प्रलोभित नहीं कर सकता।

६९५. मन के आनन्द रहित कार्यों में साथ न दीजिए। आत्मार्पण कीजिए। नियमित जप कीजिए। शीघ्र ही आपका हृदय प्रस्फुटित होगा।

६९६. गरीब, बीमार, साधु तथा देश की सेवा करना, पतितों को उठाना, अन्धों को राह दिखाना, पीड़ितों को सान्त्वना देना, कष्ट-पीड़ितों को सुखी बनाना ये ही आपके आदर्श हों। ईश्वर में पूर्ण श्रद्धा रखना, अपने पड़ोसी के साथ अपनी आत्मा के समान ही प्रेम करना, पूरे मन तथा हृदय के साथ ईश्वर की भक्ति करना, गाय, पशु, बच्चे तथा स्त्री की रक्षा करना यही आपके सिद्धान्त हों। ईश्वर साक्षात्कार ही आपका लक्ष्य हो।

४४. साधना तथा कुछ अनुभव

६९७. जब आपको आत्मा की कुछ झलक प्राप्त हो, जब आप प्रखर ज्योति देखें, जब आपको कुछ अनोखा आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त हो, तो भय से पीछे न हटिए। साधना को न त्यागिए। उन्हें भ्रान्ति न समझिए। वीर बनिए। सुखपूर्वक आगे बढ़ते जाइए।

६९८. किसी सुखासन पर बैठिए। आँखें बन्द कर लीजिए। कल्पना कीजिए कि कुछ भी नहीं है। तब यह कल्पना कीजिए कि ईश्वर के सिवा कुछ भी नहीं है। ईश्वर ही सर्वत्र है।

६९९. धारणा तथा ध्यान के प्रारम्भ में आप कपाल के केन्द्र में प्रखर ज्योति देखेंगे। यह एक या आधा मिनट ठहर कर लुप्त हो जायेगी। ज्योति ऊपर से या बगल से चमक सकती है। कभी-कभी छह अथवा आठ इंच व्यास का सूर्य किरणों के साथ अथवा किरणों से रहित दृष्टिगत होगा। आप अपने गुरु की मूर्ति अथवा उपास्यदेव की मूर्ति को भी देख सकते हैं।

७००. यदि आप शीघ्र ही समाधि में प्रवेश करना चाहते हैं, तो अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों आदि से अपने सारे सम्बन्धों का विच्छेद कर लीजिए। एक महीने अखण्ड मौन-व्रत का पालन कीजिए। बहुत थोड़ा परन्तु पौष्टिक आहार लीजिए। केवल दूध पर ही रहिए। गम्भीर ध्यान में निमग्न हो जाइए। गम्भीर गोता लगाइए। आप समाधि में निमग्न हो जायेंगे। सतत अभ्यास कीजिए। सावधान रहिए। हर कदम पर अपनी सहज बुद्धि का प्रयोग कीजिए। मन के साथ उग्र संघर्ष न कीजिए। अकेले टहलिए। मन के साथ बहुत ही कोमलतापूर्वक व्यवहार कीजिए। ईश्वरीय विचार तथा ईश्वरीय भावनाओं को धीरे-धीरे प्रवाहित होने दीजिये।

ॐ तत्सत् !